रि मठ री

ए समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ० हरिनाराय दीक्षित
एम० ए० पीएच० डी० व्याकरणाचार्य
सांख्ययोगाचार्य साहित्याचार्य साहित्यरत्न
रीडर तथा अध्यक्ष संस्कृत विभाग
कुमायूं विश्वविद्यालय नैनीताल (उ० प्र०)

र ीय वि
दिल्ली (भारत) वाराणसी

प्रकाशक :

१ भारतीय विद्या प्रकाशन (प्रधान ऑफिस)
१, यू० बी०, जवाहर नगर, बैंग्लो रोड,
दिल्ली-११०००७

२. पोस्ट बॉक्स न० १०८, कचौडी गली,
वाराणसी-२२१००१

प्रथम संस्करण १९८२

मूल्य : १००.०० (सौ रुपये)

मुद्रक :

रघु कम्पोजिंग एजेन्सी द्वारा आर० के० भारद्वाज प्रिंटर्स,
[illegible] विश्वास पार्क, शाहदरा, दिल्ली-११००३२

समर्पण

जिन्हें समर्पित करके मैं
इस ी पूजा को
करता खुश; वह चले गये हैं
पथपरि क मेरे।
फिर भी जिनकी आ ीषों से
निर्भय ा हुआ हूँ;
कीर्तिशेष उन गुरुचरणों में
भाव समर्पित मेरे॥

—हरिनारायण दीक्षित

विषयानुक्रमणिका

प्रस्तावना

विषय का महत्त्व

मानव ने जब से लिखना सीखा है तब से काव्यकला की अभिव्यक्ति का माध्यम या तो पद्य रहा है या फिर गद्य। इस तथ्य का जीवन्त उदाहरण सस्कृत साहित्य है। इसमे पद्यात्मक एव गद्यात्मक काव्यो की एक अत्यन्त प्रौढ एव समृद्ध परम्परा विद्यमान है।

सहृदय विद्वानो को विदित है कि रमणीयता एव लयात्मकता की दृष्टि से सस्कृत का न केवल पद्यात्मक साहित्य ही, अपितु गद्यात्मक साहित्य भी प्रसिद्ध है। तभी तो आलोचना के क्षेत्र मे अश्वघोष, कालिदास, कुमारदास, भारवि, माघ, श्रीहर्ष आदि पद्यात्मक काव्यकारो की भाँति ही सुबन्धु, दण्डी, आदि गद्यात्मक काव्यकारो का महत्त्व स्वीकार किया गया है। इतना ही नही, बल्कि कहने वालो ने तो यहाँ तक कह दिया है कि कविता की कसौटी गद्य है।

मैं तो समझता हूँ कि पद्य एव गद्य तो साहित्यसरिता के दो ऐसे किनारे है, जिनके सहारे विचारसलिल प्रवहमान होता है। हाँ, इतना अवश्य है कि इनमे पद्यात्मक विधा छन्दो की शृङ्खला मे जकड़ी हुई है, जबकि गद्यात्मक विधा मे साहित्यकार के लिए ऐसी कोई विवशता नही है। वह स्वतन्त्रता से अपने विचारो को अभिव्यक्त कर सकता है। लेकिन उसे यह स्वतत्रता पड़ती बडी मँहगी है। क्योकि गद्य मे साहित्यिक अभिव्यक्ति देने के लिए उसे अपनी शब्दयोजना एव भावाभिव्यजना पर विशेष ध्यान देना पडता है। जरा सी असावधानता होते ही वाक्य की गठन शिथिल हो जाती है और भाव की सम्प्रेषणीयता मे भी मन्थरता आ जाती है।

सस्कृत साहित्य के गद्यकाव्यकारो मे आजतक प्रमुख रूप से सुबन्धु, दण्डी, बाण भट्ट, विश्वेश्वरपाण्डेय, अम्बिकादत्तव्यास आदि कतिपय साहित्यकारो के ही व्यक्तित्व एव कृतित्व का परिशीलन हुआ है। लेकिन अभी अन्य अनेक गद्यकथाकारो की कृतियाँ उपेक्षित ही पडी हुई हैं। उन्हे यदि प्रकाश मे लाया जाए, तो सस्कृत वाङ्मय की न केवल अभिवृद्धि ही होगी, अपितु उसके कथा साहित्य की रोचक विविधता एव आधुनिक औपन्यासिक विधा के प्राचीन स्वरूप का भी बोध हो सकेगा। परिणामस्वरूप आज पाचभौतिक जगत् की भाँति सस्कृतेतर-साहित्यिक जगत् मे भी अकृतज्ञता का जो साम्राज्य फैलता जा रहा है उस पर भी बहुत कुछ नियन्त्रण हो सकता है।

खेद का विषय है कि महाकवि धनपाल की साहित्यिक प्रतिभा को आज तक

समीक्षा की निष्पक्ष कसौटी पर कसने का सफल प्रयास नही किया गया है। समीक्षकों एव इतिहास लेखको ने प्राचीन गद्यकाव्यकारो मे केवल सुबन्धु, दण्डी और बाणभट्ट को ही महत्त्व दिया है। पर वे यह भूल जाते हे कि धनपाल का आविर्भाव सस्कृत साहित्य की गद्यविधा के मध्यातर मे हुआ था। उनके सामने उनके पूर्ववर्ती सुबन्धु, दण्डी और बाण की कृतियाँ उपस्थित थी। उन्होने उन्हे पढा था और समझा था कि उन कृतियो की शैली कथा की आत्मा (कथानक की आनन्दमयी धारा) का पोषण करने मे समर्थ नही है।[1] अत उन्होने 'तिलकमञ्जरीकथा' लिखकर कथाकाव्य के स्वरूप मे एक अनुपम निखार दिया, जो आज के लोकप्रिय औपन्यासिक स्वरूप से काफी मिलता-जुलता है।

वास्तव मे धनपाल एक सफल कथाकाव्य (उपन्यास) कार थे। क्योंकि उत्कृष्ट काव्य[2] किंवा उत्कृष्टकाव्यकार[3] की उन्हे पूरी-पूरी परख थी। चूँकि वह जैनधर्म मे दीक्षित हो गए थे, अत सनातन धर्मावलम्बी समीक्षक उनकी प्रतिभा की आभा को उपेक्षा के मोटे आवरण मे सतत आच्छादित किए रहे, और उनकी काव्यकला को सदैव देखा-अनदेखा करते रहे। निस्सन्देह ही यह मनोवृत्ति किसी भी सवेदनशील मनीषी की दृष्टि मे साहित्य जगत् के लिए हितकर नही हो सकती। क्योकि किसी भी कलाकार की कला को उसकी व्यक्तिगत धार्मिक आस्था के परिवेश से नही घेरना चाहिए।

हमारा यह शोधग्रन्थ जहाँ एक ओर सस्कृत साहित्य की गद्यात्मक विधा के एक महान् साहित्यकार, जिसका मूल्याङ्कन आज तक या तो उपेक्षित रहा है या फिर अन्यायग्रस्त रहा है, की सर्जनाशील साहित्यिक प्रतिभा को समीक्षा के क्षेत्र मे याथातथ्येन

---

१. अखण्डदण्डकारण्यभाज प्रचुरवर्णकात्।
व्याघ्रादिव समाघ्रातो गद्याद्व्यावर्तते जन ॥
वर्णयुक्ति दधानापि स्निग्धाञ्जनमनोहराम्।
नातिश्लेषघना श्लाघा कृतिर्लिपिरिवाश्नुते ॥
अश्रान्तगद्यसन्ताना श्रोतॄणा निर्विदे कथा।
जहाति पद्यप्रचुरा चम्पूरपि कथारसम् ॥
सत्कथारसबन्ध्येषु निबन्धेषु नियोजिता।
नीचेष्विव भवन्त्यर्था प्रायो वैरस्यहेतव ॥
—तिलकमञ्जरीकथा, नि० सा० प्रे० १९३८,
प्रस्तावना भाग श्लोक १५-१८

२. काव्य तदपि किं वाच्यमवाञ्चि न करोति यत्।
श्रुतमात्रममित्राणा वक्त्राणि च शिरासि च ॥
—तिलकमञ्जरीकथा, प्रस्तावना भाग, श्लोक १२

३ (क) स्वादुता मधुना नीता पशूनामपि मानसम्।
मदयन्ति न यद्वाच किं तेऽपि कवयो भुवि ?॥ —वही, श्लोक ११

(ख) केचिद्वचसि वाच्येऽन्ये केऽप्यशून्ये कथारसे।
केचिद्गुणे प्रसादादौ धन्या सर्वत्र केचन ॥ —वही, श्लोक ३७

प्रकट करेगा, वहाँ दूसरी ओर सस्कृत साहित्य मे आधुनिक औपन्यासिक विधा की सत्ता को भी सिद्ध करेगा। फलस्वरूप सस्कृतेतर साहित्य के भी विद्वानो की दृष्टि मे सस्कृत की गद्यात्मक विधा का मूल्य बढेगा। इतना ही नही, बल्कि सुबन्धु की जटिल एव बाण की अनियन्त्रित शैली से त्रस्त हुए साहित्यकार एव सहृदय पाठक को कथा के क्षेत्र मे सरस, सुबोध, कौतूहलपूर्ण एवं रोचक भाषाशैली की उपलब्धि भी होगी, जिसके प्रचार से सस्कृत भाषा की दुरूहता भी दूर हो सकेगी।

आज सस्कृत साहित्य की गद्यविधा मे बाणभट्ट का साम्राज्य है। उनकी कादम्बरी के नशे मे सभी समालोचक झूम रहे है, पर उन्हे पता नही है कि कादम्बरी के अलावा भी कुछ है, जो उन्हे अधिक आवर्जित कर सकता है; और वह है श्री धनपाल की 'तिलकमञ्जरीकथा'। कादम्बरी यदि नशा है तो तिलकमञ्जरी टॉनिक है; जिससे लाभ ही लाभ है, हानि कुछ भी नही। दरअसल देखा जाए तो तिलकमञ्जरीकथा मे कादम्बरी कथा के गुण तो सभी मिलेगे, पर दोष एक भी नही। इसके साथ ही साथ उसमे धनपाल का अपना बहुत कुछ है जो उसे कथाकाव्य की कसौटी पर खरा उतार देता है। अत· आज के इस औपन्यासिक युग मे सस्कृत साहित्य की कथाकाव्यात्मक विधा का गौरव बढाने मे तिलकमञ्जरीकथा का यह आधुनिक समीक्षात्मक अध्ययन कादम्बरीकथा के समीक्षात्मक अध्ययन से कही अधिक उपयोगी सिद्ध होगा।

धनपाल की तिलकमञ्जरीकथा मे चित्रकला, मूर्त्तिकला और वास्तुकला का भी प्राजल स्वरूप देखने को मिलता है। अत मेरा विश्वास है कि यह शोधग्रन्थ केवल कथा-साहित्यकारो के लिए ही नही, बल्कि चित्रकारो, मूर्त्तिकारो और वास्तुकारो के लिए भी महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगा।

इस दिशा मे किए गए प्रयत्न एव उनकी अपर्याप्तता

यद्यपि कुछ विद्वानो ने महाकवि धनपाल एव उनकी तिलकमञ्जरीकथा को समझने की चेष्टाएँ की है, लेकिन उन्हे सफलता प्राप्त नही हुई है। क्योकि उनकी वे चेष्टाएँ छुट-पुट ही हैं, उनमे पूर्णता नही है। ऐसे विद्वानो मे प्रभावकचरितकार श्री प्रभाचन्द्रसूरि, प्रबन्धचिन्तामणिकार श्री मेरुतुङ्गाचार्य, पण्डित प्रभुदासबेचरदास, मुनिराज श्रीसुशीलविजय, श्रीदक्षविजयगणि, श्रीनाथूरामप्रेमी तथा श्रीभवदत्तशास्त्री उल्लेखनीय है।

श्रीप्रभाचन्द्रसूरि ने अपने 'प्रभावकचरित' नामक प्रबन्धकाव्य मे 'महेन्द्रसूरि-प्रबन्ध' नामक प्रबन्ध मे धनपाल की जीवनचर्या एव साहित्यिक सम्पदा का परिचयमात्र दिया है। इसी प्रकार श्रीमेरुतुङ्गाचार्य ने भी अपने 'प्रबन्धचिन्तामणि' नामक प्रबन्धग्रथ मे 'धनपाल पण्डित प्रबन्ध' नामक प्रबन्ध मे धनपाल की जीवनी एव साहित्यिक प्रतिभा का परिचय कराया है। पण्डित प्रभुदास बेचरदास ने एक 'तिलकमञ्जरीकथासाराश' नामक छोटी-सी पुस्तक लिखी है। उसकी भूमिका मे उन्होने धनपाल के जीवन से सम्बन्धित कुछ ऊहापोह कर लिया है। मुनिराज श्रीसुशीलविजय ने भी गुजराती भाषा मे एक छोटी-सी पुस्तिका लिखकर धनपाल की जीवन गाथा को प्रस्तुत करने का प्रयत्न

किया है। उनकी इस पुस्तिका का आधार श्रीप्रभाचन्द्रसूरिकृत प्रभावकचरित एव पडित प्रभुदासबेचरदासकृत तिलकमञ्जरीकथासाराश की भूमिका ही है। श्रीदक्षविजयगणि ने विजयलावण्यसूरीश्वर ज्ञानमन्दिर, बोटाद (सौराष्ट्र) से प्रकाशित हुई तिलकमञ्जरीकथा की सस्कृत भाषा मे जो भूमिका लिखी है, उसी मे उन्होने थोडा-सा परिचय धनपाल की साहित्यिक प्रतिभा का भी दे दिया है। स्मरण रहे कि यह प्रकाशन अभी अपूर्ण ही है। अब आते है श्रीनाथूरामप्रेमी। इन्होने हिन्दी भाषा मे 'जैनसाहित्य और इतिहास' नामक एक ग्रन्थ लिखा है। उसमे एक स्थान पर, अति सक्षेप में, एक पृष्ठ पर धनपाल का परिचयमात्र दिया गया है। श्रीभवदत्तशास्त्री ने निर्णयसागर प्रेस, बम्बई से सन् १९३८ मे प्रकाशित हुई तिलकमञ्जरीकथा की सस्कृत भूमिका लिखते हुए धनपाल का कुछ परिचय दिया है जो श्रीमेरुतुङ्गाचार्यकृत प्रबन्धचिन्तामणि पर आधारित है।

इस प्रकार हम देखते है कि उपर्युक्त सभी विद्वानो के प्रयत्न नितरा सक्षिप्त हैं। उनमे मात्र परिचयात्मकता तो है, पर समीक्षात्मक परिशीलन का अभाव है। फलस्वरूप धनपाल की साहित्यिक प्रतिभा, जो तिलकमञ्जरीकथा के रूप मे प्रतिबिम्बित हुई है, का समूचा एव सुव्यवस्थित मूल्याङ्कन अछूता ही रह गया है।

प्रस्तुत शोधकार्य की प्रेरणा का स्रोत

मुझे सस्कृत साहित्य का इतिहास लिखने वाले कुछ पाश्चात्य एव पौरस्त्य विद्वानो के इतिहास ग्रन्थो मे धनपालकृत तिलकमञ्जरीकथा का अतीव सूक्ष्म परिचय पढने को मिला। इसी प्रसग मे उसकी 'कादम्बरीकथा' से हीनता सूचक कुछ तुलना भी पढने को मिली। सोचा कि यह कौन-सी कथाकृति है जो कादम्बरीकथा के समानान्तर भावो पर आधारित है? इसे पढा क्यो न जाए? पर पुस्तक (तिलकमञ्जरीकथा) के अभाव मे मेरी यह इच्छा मन के एक कोने मे आई गई हो गई। सयोगवश एक दिन डी० एस० बी० गवर्नमेण्ट कालेज, नैनीताल के मुख्य पुस्तकालय के सस्कृत सेक्शन मे घुणाक्षरन्याय से तिलकमञ्जरीकथा की एक प्रति देखने को मिल गई। यह प्रति निर्णयसागर प्रेस, बम्बई से सन् १९३८ मे प्रकाशित हुई थी। मेरी पुरानी इच्छा फिर से नई हो गई। पुस्तक को आद्योपान्त पढा, तो विदित हुआ कि इतिहास लेखको ने न तो धनपाल के साथ न्याय किया है और न ही उनकी तिलकमञ्जरीकथा के साथ। उन्होने तो उसे शायद बिना पढे ही अपनी आग्रहपूर्ण आलोचना का शिकार बना लिया है। तभी तो वे उसके प्रमुख पात्रो के भी सम्बन्धो को समझने मे भूल कर गए है। उन्हे तो उसके नायक के नाम की भी सही जानकारी नही हो सकी है।

यह कटुसत्य मुझे बडे आश्चर्य एव दुःख के साथ प्रकट करना पड रहा है कि भारत के मूर्धन्य मनीषियो ने भी तिलकमञ्जरीकथा को स्वय पढकर समझने की कोशिश नही की है, वे केवल पश्चिमी विद्वानो की ही धारणा को दुहराते रहे है।

धनपाल की साहित्यिक प्रतिभा के साथ किया गया यह उपेक्षापूर्ण अन्याय मुझे अच्छा नही लगा। मैने अनुभव किया कि आज के औपन्यासिक युग के पाठको एव समीक्षको के लिए अद्यावधि उपेक्षित इस तिलकमञ्जरीकथा का औपन्यासिक परिवेश

मे किया गया अपेक्षित समीक्षात्मक अध्ययन अवश्य ही एक नया उपहार होगा। बस फिर क्या था, मै आगरा विश्वविद्यालय की शोधोपाधि समिति से आज्ञा लेकर इस शुभकार्य मे हृदय से जुट गया, और उसका परिणाम आपके समक्ष है।

शोध ग्रन्थ पर विहग दृष्टि

प्रस्तुत ग्रन्थ को नौ अध्यायो मे समाप्त किया गया है। छठे, आठवे और नवे अध्याय को छोडकर प्रत्येक अध्याय को दो-दो सोपानो मे विभक्त किया गया है। इन सभी अध्यायों का पृथक्-पृथक् प्रतिपाद्य विषय इस प्रकार है—

प्रथम अध्याय के प्रथम सोपान मे महाकवि धनपाल के व्यक्तित्व का आधार सहित परिचय दिया गया है। उनके पिता और पितामह, भाई और वहिन, शिक्षा और दीक्षा, पत्नी और सन्तान आदि के सम्बन्ध मे जानकारी देते हुए उनके देश एव काल का, ऐतिहासिक प्रमाणो के आधार पर, निरूपण किया गया है। उन्हे मालव देश के तीन-तीन (सीयक, मुञ्ज और भोज) राजाओ का जो आश्रय एव आदर प्राप्त था, उसका भी यथासम्भव एव इतिहास-सम्मत अन्वेषण कर लिया गया है। इसी सन्दर्भ मे धनपाल की विद्वत्ता, सहृदयता, दयालुता, निर्भीकता एव परोक्षदर्शिनी प्रतिभा के भी रोचक, पर सत्य, सस्मरणो की चर्चा कर ली गई है, जो धनपाल के आभ्यन्तर व्यक्तित्व की प्रवल परिचायक है। इसके अतिरिक्त जैनधर्म के सम्बन्ध मे धनपाल की विभिन्न विचार-धाराओ का भी सटीक विवरण दिया गया है। क्योकि धनपाल के जीवन-पथ मे जबर-दस्त मोड़ देने का श्रेय जैनधर्म को ही है। यहाँ इस तथ्य से इनकार नही किया जा सकता कि यदि धनपाल की मुठभेड़ जैनधर्म से न होती, तो साहित्य के क्षेत्र मे उनकी कुछ भी अहमियत न होती। सोपान के अन्त मे उनके जीवनदर्शन पर भी प्रकाश डाला गया है, ताकि पाठको को विदित हो सके कि धनपाल का वैचारिक स्तर क्या-कैसा था ?

प्रथम अध्याय के द्वितीय सोपान मे काव्य के दायरे और धनपाल के स्वरो पर विचार कर लिया गया है। इसमे काव्य के शास्त्रीय स्वरूप पर प्रकाश डालने के लिए सर्वप्रथम सस्कृत समीक्षक भरत, भामह, दण्डी, वामन, कुन्तक, भोज, मम्मट, हेमचन्द्र, विद्यानाथ, जयदेव, विश्वनाथ एव पण्डितराज जगन्नाथ की काव्यपरिभाषाओ पर प्रकाश डाला गया है। इसी सन्दर्भ मे पाश्चात्त्य समीक्षक अरस्तू, सर पी० सिडनी, वर्ड्सवर्थ, पी० वी० शैले और डॉ० जानसन के विचारो को भी प्रस्तुत किया गया है। इस सन्दर्भ मे छोडा हिन्दीसमीक्षको को भी नही है। चिन्तामणि, कुलपति, श्रीपति, सोमनाथ, महावीरप्रसाद द्विवेदी, रामचन्द्र शुक्ल, श्यामसुन्दरदास, गुलावराय, जयशकरप्रसाद, महादेवी वर्मा, नन्ददुलारे बाजपेयी, एवं डॉ० राकेश की काव्य-स्वरूप विषयक मान्यताओ को उद्धृत किया गया है। तत्पश्चात् नीरक्षीरविवेक से इन सभी उपर्युक्त विद्वानो की काव्यपरिभाषाओ को समीक्षा के निकष पर कसते हुए उनके गुण दोषो का आकलन किया गया है। फलस्वरूप सवका समन्वय करते-करते एक नई काव्य परिभाषा को अभिव्यक्ति मिल गई है।

काव्य परिभाषा का अनुशीलन करने के वाद काव्य के प्रमुख भेदो का सङ्कलन

करते हुए हम गद्यकाव्य के स्वरूप एव वैशिष्ट्य के विश्लेषण मे प्रवृत्त हुए है। साथ ही साथ गद्य साहित्य की दो प्रमुख विधाओ—कथा और आख्यायिका—मे भी भेदक रेखा खीचने का प्रयत्न किया है। इस प्रकरण के स्पष्टीकरणहेतु भामह, दण्डी, रुद्रट आदि प्राचीन आचार्यों के अभिप्रायो की निष्पक्ष किंवा आग्रहमुक्तिपूर्वक समीक्षा करके अपना अभिमत प्रकट किया है। इसी सन्दर्भ मे सस्कृत के कतिपय प्राचीन गद्यकाव्यकारो की जानकारी के साथ ही साथ हमारे आलोच्य महाकवि धनपाल के गद्यकाव्यस्वरूपविषयक विचारो की व्याख्या आ गई है, जो प्राकृत विषय से चोली-दामन जैसा सम्बन्ध बनाए हुए है। तत्पश्चात् सोपान के अन्तिम चरण मे धनपाल की सभी रचनाओ की सूची प्रस्तुत करके उनकी प्रमुख कृति तिलकमञ्जरीकथा का प्ररोचनात्मक सक्षिप्त परिचय देकर सुधी पाठको की तद्विषयक जिज्ञासा को जागरित किया गया है।

द्वितीय अध्याय के प्रथम सोपान मे कथाकाव्य (उपन्यास) के प्रमुख तत्त्व 'कथानकतत्त्व' का विश्लेषण किया गया है। इस प्रकरण मे भी हमने अपने विचारों को उदार अभिव्यक्ति देनी चाही है। इसके लिए केवल सस्कृत साहित्य के भरत, धनञ्जय, रामचन्द्रगुणचन्द्र, विश्वनाथ, सर्वेश्वराचार्य आदि मनीषियो की ही नही, वल्कि हिन्दी जगत् के डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ० भगीरथमिश्र, डॉ० प्रतापनारायण टण्डन, डॉ० सुरेश सिनहा, श्रीपदुमलालपन्नालाल बक्शी आदि, तथा पाश्चात्य जगत् के श्री ई० एम० फार्स्टर, श्री डब्ल्यू० एच० हडसन, श्री एडविन म्योर आदि विद्वानो की भी विचारधारा का परिशीलन करके निष्कर्ष निकालने का प्रयत्न किया है। यथास्थान अपनी अनुभूतियों एव सवेदनाओ को भी लिख देने का लोभ सवृत नही कर पाया हूँ। कथानक का स्वरूप कैसा होता है? कथाकाव्य मे उसका क्या महत्त्व है? उसकी मौलिक विशेषताएँ क्या होती है? उसके कितने वर्गभेद हो सकते है? आदि-आदि नैसर्गिक जिज्ञासाओ का समीक्षात्मक समाधान प्रस्तुत करने मे हमने, अपनी समझ से तो, कोई प्रमाद नही किया है। इसके बाद उपन्यास के कथानक मे नाटकीय तत्त्वो की औचिती को सिद्ध करते हुए आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम नामक पाँच अवस्थाओ, जिन्हे पाश्चात्य मनीषी क्रमश. इनीशियल इन्सीडेण्ट, राईजिग एक्शन, क्लाइमेक्स, फालिग् एक्शन और कन्क्लूजन के नाम से जानते हैं, के स्वरूप पर शास्त्र-सम्मत प्रकाश डालकर आलोच्यकृति तिलकमञ्जरीकथा मे उनकी यथास्थान स्थिति को स्पष्ट किया है। इसी सन्दर्भ मे बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य नामक पाँच अर्थप्रकृतियो का भी तिलकमञ्जरीकथा मे अन्वेषण कर लिया गया है।

इसी अध्याय के द्वितीय सोपान मे सबसे पहिले तिलकमञ्जरीकथा का साराश प्रस्तुत किया गया है। सम्भव है कि यह साराश कलेवर की दृष्टि से कुछ लम्बा-चौडा प्रतीत हो। लेकिन पाठको को भ्रान्तिरहित एव सरससुविधापूर्वक अविकल कथावस्तु समझने मे अवश्य ही सहायक सिद्ध होगा। साराश के प्रस्तुतीकरण मे भाव श्री धनपाल के ही है, भाषा हमारी है। इसके बाद यह विचार किया गया है कि धनपाल ने 'तिलक-मञ्जरीकथा के कथानक मे कौतूहल की सर्जना एव रक्षा करने मे कहाँ तक सफलता प्राप्त की है? और इसमे कोई सन्देह नही रहा है कि कौतूहल के निर्वाह से वह शत-

प्रतिशत सफल रहे है। आगे चलकर मुख्य-कथा एव सहायक-कथाओ के उपकार्य-उपकारक भाव पर सूक्ष्मेक्षिकया समीक्षा प्रस्तुत की गई है, जिसमे धनपाल खरे उतरे है। तत्पश्चात् यह समझने का प्रयत्न रहा है कि तिलकमञ्जरीकथा मे कथानक की विशेषताओ का समावेश है या नही ? और खुशी है कि इस दृष्टि से भी हमे धनपाल की ओर से निराश नही होना पडा है। इसके बाद तिलकमञ्जरीकथा के कथानक का आधार खोजने का प्रयत्न किया गया है; और फिर उसमे मौलिकता एव आध्यात्मिकता की प्रतीति का विश्लेषण करते हुए सोपान को समाप्त कर दिया गया है।

तृतीय अध्याय मे तिलकमञ्जरीकथा के पात्रो की समीक्षा है। इसके प्रथम सोपान मे पौरस्त्य एव पाश्चात्त्य मनीषियो की पात्र-विषयक मान्यताओं को दृष्टिकोण मे रखते हुए पात्रो का विभिन्न पहलुओ से वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है। तत्पश्चात् द्वितीय सोपान मे तिलकमञ्जरीकथा के प्रमुख-प्रमुख पात्रो के बाह्य एव आभ्यन्तर व्यक्तित्व को चित्रित किया गया है, जो धनपाल के पात्रचरित्राभिव्यजनकौशल को भी प्रकट कर देता है।

चतुर्थ अध्याय मे तिलकमञ्जरीकथा के भावपक्ष एव कलापक्ष पर सिंहावलोकन किया गया है। इसके प्रथम सोपान मे भावपक्ष की मीमासा है, जिसमे सबसे पहले कविता के भावपक्ष के स्वरूप एव महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है; और फिर उसके बाद रसानुभूति की प्रक्रिया का मनोवैज्ञानिक परिचय एव सोदाहरण दिग्दर्शन करा दिया गया है। इसके बाद हम तिलकमञ्जरीकथा के अङ्गी रस एव अङ्ग रसो की अभिव्यजना पर उदाहरण सहित विचार करने मे प्रवृत्त हो गए हैं, और हमने पाया है कि धनपाल अपने प्रतिपाद्यविषयोपयोगी रसो की अभिव्यजना करने मे सफल रहे है। इसी सन्दर्भ मे तिलकमञ्जरीकथा मे अभिव्यजित सभी रसो के विभाव अनुभाव और व्यभिचारिभावो की अभिव्यक्ति पर भी विश्लेपण कर लिया गया है। साथ ही साथ तिलकमञ्जरीकथा मे उपलब्ध होने वाली भाव, रसाभाव, भावाभास, भावोदय, भावशान्ति, भावसन्धि एव भावशबलता की अभिव्यजना को भी उपेक्षित नही किया गया है। इस प्रकार धनपाल की तिलकमञ्जरीकथा के भावपक्ष की गवेषणा एव उसकी अभिव्यक्ति मे सर्वाङ्गीणता लाई गई है।

इस अध्याय का द्वितीय सोपान कलापक्ष से सम्बन्धित है। आरम्भ मे कलापक्ष का स्वरूप क्या है ? उसकी सीमा क्या है ? और उसके भेद कितने है ? इत्यादि प्रश्नो का समाधान देने का प्रयत्न किया गया है। तत्पश्चात् भाषा-शैली, गुण, अलङ्कार और छन्द की दृष्टि से तिलकमञ्जरीकथा की शास्त्रीय समीक्षा की गई है, जिससे पता चलता है कि काव्यकला के इन सभी पहलुओ की दृष्टि से तिलकमञ्जरीकथा एक सफल कथाकृति है। इसमे भाषा का आर्जवसहित प्रवाह, शैली का रोचक आकर्षण, गुणो का अमन्द सयोग, अलङ्कारो की आनुपातिक झङ्कार और छन्दो की मनोमोहक लयात्मकता—कुल मिलाकर ये सब पाठक के मनोमस्तिष्क पर एक अमिट छाप छोड जाते है। तत्पश्चात् पात्रो के सवाद, अन्तर्द्वन्द्व, देशकाल और वाग्वैदग्ध्य की दृष्टि से भी तिलकमञ्जरीकथा का निष्पक्ष मूल्याङ्कन किया गया है। स्मरण रहे कि इन सभी प्रकरणो मे आग्रहमुक्त

होकर ही विश्लेषण किया गया है। जहाँ कहीं भी कमी दिखाई दी है, वहाँ उसे अवश्य ही उल्लिखित कर दिया गया है। पर ऐसे स्थल है बहुत ही कम।

पाँचवे अध्याय मे हमने धनपाल की वर्णनकुशलता का निरूपण किया है। यह अध्याय भी दो सोपानो मे विभक्त है। प्रथम सोपान मे धनपालकृत प्राकृतिक सम्पदा की अभिव्यक्ति को दर्शाया गया है। इसमे सबसे पहले काव्य मे प्रकृति-चित्रण के महत्त्व पर विचार करते हुए धनपाल के प्रकृति-प्रेम पर प्रकाश डाला गया है। तदनन्तर उनकी तिलकमञ्जरीकथा मे वर्णन का विषय बने हुए पातालस्पर्शी समुद्र का, गगनचुम्बी पर्वतो का, बियावान जगलो का, सरयूतीरवर्त्ती सुरम्य उपवन का, विस्मयाधायक एव आह्लाद-वर्धक अदृष्टपारसरोवर का, मनोरम कल्पवृक्षवन, का, सुनहरे प्रभात का, शान्त सन्ध्या का तथा वर्षा और वसन्त का वर्णन करके धनपाल की परिकल्पनात्मक प्रतिभा को सुधी पाठको के समक्ष लाने का रोचक प्रयास किया गया है। इन सभी सन्दर्भो मे भी हमारी केवल समीक्षाशील भाषा ही है, परिकल्पनाएँ तो धनपाल की ही है।

इसी अध्याय के द्वितीय सोपान मे धनपाल की वैकृतिक (कृत्रिम) वस्तु-वर्णन-कला को परखने की कोशिश की गई है। आरम्भ मे वस्तु-वर्णन के स्वरूप पर विचार कर लिया गया है, साथ ही साथ वस्तु-वर्णन के प्रति धनपाल की रुचि की ओर भी सकेत कर दिया गया है। तदुपरान्त तिलकमञ्जरीकथा मे वर्णित अयोध्या और काची नगरियो के कामरूप देश के, सिद्धायतन के नाम से प्रख्यात जैनमन्दिरो के, जिनेन्द्र प्रतिमाओं के, नारियो की चारुता एव चेष्टाओ के, नौका द्वारा की गई समुद्रीय यात्रा के तथा युद्ध के वर्णनो का नमूना प्रस्तुत करके धनपाल की वर्णन-कला कुशलता का विश्लेषण करके सोपान की इतिश्री की गई है।

ग्रन्थ के छठे अध्याय मे तिलकमञ्जरीकथा मे चित्रित हुई तत्कालीन सामाजिक, सास्कृतिक, आर्थिक एव राजनैतिक स्थिति का विहगावलोकन किया गया है। कहते है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। यह कथन धनपाल की साहित्य-साधना पर भी हमे पूर्णत चरितार्थ होता हुआ दिखाई दिया है। उन्होंने प्रयत्न तो नही किया, किन्तु फिर भी सामाजिक, सास्कृतिक एव राजनैतिक चेतनाओ की अभिव्यजना उनकी कृति मे पर्याप्तरूपेण हो गई है। हाँ, आर्थिक चेतना अवश्य ही कुछ उपेक्षित है।

सातवाँ अध्याय धनपाल के साहित्यिक आदान-प्रदान के लेखा-जोखा से सबधित है। यह भी दो सोपानो मे विभक्त है। पहले सोपान मे धनपाल पर उनके पूर्ववर्त्ती साहित्यकारो (विशेष रूप से कथाकाव्यकारो) का प्रभाव दिखाया गया है। सोपान के पूर्वार्द्ध मे आदान-प्रदान के स्वरूप एव प्रकारो पर प्रकाश डाला गया है। इस सन्दर्भ मे हमने आनन्दवर्द्धन, राजशेखर, बिल्हण और पण्डितराज जगन्नाथ के विचारो की निष्पक्ष मीमासा करते हुए साहित्यिक आदान-प्रदान की औचिती की शास्त्रीय मान्यता को उजागर किया है। तत्पश्चात् गुणाढ्य, सुबन्धु, बाणभट्ट और दण्डी के कथाकाव्यो का धनपाल की तिलकमञ्जरीकथा पर जो भाषात्मक, भावात्मक किवा कलात्मक प्रभाव पडा है, उसका तुलनापूर्वक सोदाहरण निरूपण किया है।

इस अध्याय के दूसरे सोपान मे धनपाल का परवर्त्ती साहित्यकारो (विशेष रूप

से कथाकाव्यकारो) पर प्रभाव दिखाया गया है। इनमे चार साहित्यकार (पल्लीपाल धनपाल, पण्डित लक्ष्मीधर, श्री पद्मसागर और श्रीकृष्णमाचार्य) तो ऐसे है जिन पर धनपाल का जबर्दस्त प्रभाव है। इन लोगो ने तिलकमञ्जरीकथा की कथावस्तु को तो पूरा का पूरा अपना ही लिया है, साथ ही साथ उसकी भाषा और उद्भावनाओ को भी कही-कही ले लिया है। इनके अतिरिक्त विश्वेश्वर पाण्डेय, अम्बिकादत्त व्यास, शङ्कर लाल, रङ्गनाथ दीक्षित तथा श्रीकृष्ण शर्मा की भी कथाकृतियो मे झलकने वाले धनपाल के प्रभाव का सोदाहरण एव तुलनात्मक प्रस्तुतीकरण करके उनकी तिलकमञ्जरीकथा की महत्ता एव उपादेयता को ध्वनित किया गया है।

आठवे अध्याय मे हमारा प्रयत्न रहा है कि तिलकमञ्जरीकथा को आधुनिक उपन्यासकला के परिप्रेक्ष्य मे परखा जाय। इसके लिए हमने आरम्भ मे उपन्यास के स्वरूप एव भेदो को अभिव्यक्ति दी है। इस अध्याय मे पाठको को हम यह विश्वास दिला सके है कि तिलकमञ्जरीकथा को भी उपन्यास (साहित्यिक उपन्यास) की लोकप्रिय साहित्यविधा मे गिना जाना चाहिए। इतना ही नही, बल्कि आज के उपन्यासो मे फिल्मीकरण की योग्यता एव प्रवृत्ति को देखकर हमने तिलकमञ्जरीकथा को फिल्माङ्कन की दृष्टि से भी परखा है, और पाया है कि वह किसी कुशल निर्देशक के निर्देशन मे सिनेमा स्टेज पर बडी रोचकता के साथ फिल्मायी भी जा सकती है।

अब आता है नवम अध्याय। यह अन्तिम अध्याय है। इसमे आरम्भ मे ग्रन्थ का उपसहार किया गया है। इस सन्दर्भ मे यह विचार किया गया है कि धनपाल की सस्कृत साहित्य को क्या देन है? उन्होने तिलकमञ्जरीकथा के माध्यम से साहित्यकारो को क्या सन्देश देना चाहा है? उनका और उनकी तिलकमञ्जरीकथा का सस्कृत साहित्य मे क्या स्थान है? हमने अपने शोध-ग्रन्थ की अभिव्यक्ति को ध्यान मे रखते हुए उपर्युक्त तथ्यो पर निष्पक्ष विहगावलोकन किया है। फलस्वरूप हम कह सकते है कि "तिलकमञ्जरीकथा सस्कृत गद्य साहित्य की कादम्बरीकथा के समान ही एक अमूल्य निधि है, बल्कि अधुनातन औपन्यासिक शिल्प की दृष्टि से तो यह उससे बढकर भी है। धनपाल ने इसमे भावपक्ष एव कलापक्ष का जो समन्वय कर दिखाया है वह अन्य किसी भी कथा-कृति मे उपलब्ध नही होता है। एक नही, बल्कि दो-दो कथानको का अमन्द प्रवाह, भाषा की प्रासादिकता, भावो की सरसता और भव्यता, परिकल्पनाओ का आकर्षक इन्द्रजाल, शैली की रंगीन चमक, अलङ्कारो की मोहनी खनक तथा बीच-बीच मे आए हुए उत्कृष्ट छन्दो की रागिनी—इन सबके आनुपातिक एव परस्परोपकारक मजुल सम्प्रयोग से धनपाल ने अपनी तिलकमञ्जरीकथा को एक सर्वाङ्गसुन्दर तथा प्राणवती रचना के रूप मे प्रस्तुत किया है।

अन्त मे चार परिशिष्ट भी दिए गए है। इनमे से प्रथम परिशिष्ट में धनपाल की अन्य रचनाओ के प्रतिपाद्य विषय का समीक्षात्मक परिचय दिया गया है। साथ ही साथ इस सम्भावना पर भी विश्वास किया गया है कि धनपाल ने अपनी इन रचनाओ की सर्जना इसी क्रम से की होगी, जिस क्रम से ये यहाँ वर्णित हैं।

दूसरे परिशिष्ट मे सूक्तियो की उपयोगिता पर सकेत करके धनपाल के साहित्य

मे उपलब्ध होने वाली पचपन सूक्तियो का सङ्कलन किया गया है। ये सूक्तियां धनपाल की प्रौढ एव निर्भ्रान्त विचारधारा की परिचायक है। तीसरे परिशिष्ट मे अन्य विद्वानो या साहित्यकारो द्वारा धनपाल के विषय मे कहे गए प्रशसापरक वचनो का सग्रह किया गया है, और चतुर्थ परिशिष्ट मे सहायक ग्रन्थो की सूची देकर ग्रन्थ को समाप्त कर दिया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के, अथ से लेकर इति तक, पढने से यह तथ्य हथेली पर रक्खे हुए आमलक के समान स्पष्ट हो जाएगा कि धनपाल एक उत्कृष्ट कोटि के कथाकाव्य (उपन्यास) कार थे। हृदयपक्ष एव बुद्धिपक्ष का मजुल समन्वय करने का उन्हे बहुत ही अच्छा अनुभव था। उनकी लेखनी मे बुद्धि नर्तकी को हृदय की रागिनी के स्वरो से बाँध रखने की अद्भुत क्षमता थी। फलस्वरूप उनकी तिलकमञ्जरीकथा सस्कृत साहित्य की गद्यात्मक विधा की निस्सन्देह ही एक उत्तम कृति है। उसे आज का भी पाठक निश्चय ही पसन्द करेगा। साम्प्रदायिकता के सङ्कीर्ण दायरे अथवा आलस्य की धुन्ध मे फँसे हुए सस्कृत के समालोचको ने धनपाल की आज तक जो उपेक्षा की, सो की; पर अब उन्हे चाहिए कि वे धनपाल के इस अभिनव मूल्याङ्कन का समादर करें; और धनपाल को तथा उनकी कृति तिलकमञ्जरीकथा को सस्कृत साहित्य की एक अभिनन्दनीय उपलब्धि समझने मे अब जरा भी सङ्कोच नही करे।

प्रस्तुत शोध-ग्रन्थ की अनुसन्धान शैली

हमने अपने इस शोध-ग्रन्थ मे न तो कुछ अमूल लिखा है, और न कुछ अनपेक्षित कहा है। इसमे हमने जो कुछ भी लिखा है उसका आधार है, और जो कुछ भी कहा है वह आवश्यक है। हमने प्रयत्न किया है कि अपने प्रत्येक प्रतिपाद्य विषय एव उपविषय का पहले शास्त्रीय विश्लेषण करें, तत्पश्चात् उसी भाव-भूमि पर आलोच्य कृति तिलकमञ्जरीकथा की समीक्षा करें। इसके लिए हमने सस्कृत साहित्य के अतिरिक्त हिन्दी तथा पाश्चात्य समीक्षको की कृतियो का भी जी भर के उपयोग किया है।

यह ठीक है कि हमारे शोध-ग्रन्थ का विषय एक हजार साल पहले का है। किन्तु उसे परखने वाली हमारी बुद्धि और आँखे आधुनिक हैं। हमारा प्रयत्न रहा है कि हम अपने अतीत को वर्तमान से मिलाकर देखे, और यह समझने की कोशिश करे कि क्या सचमुच ही हमारा अतीत 'आउट ऑफ डेट' है? यदि नही है तो उसे हम वही प्यार दे जो हम अपने वर्तमान को देते है। यदि हम उसे प्यार नही दे सकते तो आदर तो अवश्य ही दे। इसके लिए हमे चाहिए कि हम देश, काल एव सम्प्रदाय की भावना-शृङ्खलाओ से अपने-आप को मुक्त रक्खें।

प्रस्तुत शोध-ग्रन्थ की भाषा

हमारे सस्कृत प्रेमी कुछ हितैषियो की इच्छा थी कि हम सस्कृतनिष्ठ हिन्दी मे लिखे क्योकि हम सस्कृत के शिक्षक है, और हमारा शोध-विषय भी सस्कृत से सम्बद्ध है। लेकिन हमे उनकी यह बात जँची नही।

हम चाहते हैं कि हमारे शोध-ग्रन्थ को पढ़ने और समझने मे पाठको को अलग-अलग श्रम न करना पडे। वे इधर पढते जाएँ और उधर अर्थ चट से उनकी समझ मे अपने आप घर करता जाए। हमारे विचार केवल प्रबुद्ध पाठको तक ही सीमित न रहे, वे सामान्य पाठकों के भी अन्तस्तल को छू सके। तभी तो हमारे धनपाल और उनकी तिलकमञ्जरीकथा की अधिकाधिक ख्याति हो सकेगी। इसके लिए हमने यह परमावश्यक समझा कि हमारी भाषा एव शैली इतनी सुबोध एव इतनी रोचक होनी चाहिए कि वह सामान्य पाठको के भी दिल और दिमाग को प्रभावित कर सके। कहना न होगा कि ऐसी भाषा (हिन्दी) मे न केवल उर्दू के ही, बल्कि अंग्रेजी भाषा के भी प्रचलित शब्दो का समावेश, कम से कम आज के इस परिवेश मे स्वाभाविक ही है।

इसके अलावा हमारे शोध-ग्रन्थ का विषय भी तो औपन्यासिक विधा से ही सम्बद्ध है। सभी जानते हैं कि यह विधा विद्वान् पाठको को ही नही, बल्कि सामान्य पाठको को भी बेहद पसन्द है। इस दृष्टि से भी हमे अपने शोध-ग्रन्थ की भाषा एव शैली 'सर्वजन-बोधाय' एव 'सर्वजनसुखाय' बनानी पड़ी है। भला सोचिए भी तो सही, केबरे नर्तकी क्या कभी बनारसी साड़ी मे अपना नृत्तकौशल दिखा सकती है? जाहिर है कि हरगिज नही। तो भला फिर जनसाधारणप्रिय औपन्यासिक विधा एव औपन्यासिक कृति की समीक्षा मे सस्कृत की घनिष्ठ गरिमा से दबी हुई हिन्दी भाषा सामान्य पाठको के मनोमस्तिष्क तक विचारों को अविकल एव तुरन्त ही कैसे पहुँचा सकती है?

बस, इन्ही कुछ कारणो से हमने अपने इस शोध-ग्रन्थ की भाषा को निहायत ही सरल एव सुबोध रूप देने का 'रिस्क' लिया है। आशा है कि सहृदय एव सुधी पाठक इस प्रयास को प्रोत्साहन देगे।

आभार प्रदर्शन

प्रस्तुत शोध-ग्रन्थ के लेखन का निर्देशन हमारे परमादरणीय गुरुवर श्रीलक्ष्मी चन्द्र जी कौशिक (भूतपूर्व अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, बरेली कॉलेज, बरेली) ने किया है। इन्होने अपने उत्कृष्ट वैदुष्य, पारदर्शिनी प्रतिभा, दीर्घकालीन अध्यापनानुभव एव शिष्य-वत्सलता से हमे सदैव उपकृत किया है। इस शोध-ग्रन्थ मे जो कुछ भी सार एव निखार आया है, यह सब इन्ही के प्रशस्त पथप्रदर्शन का परिणाम है। हम इनके हृदय से आभारी एव कृतज्ञ हैं।

इनके अतिरिक्त सस्कृत, हिन्दी एव पाश्चात्य साहित्य जगत् के अनेक समीक्षको की कृतियो से हमे अनुपम सहायता प्राप्त हुई है। अत हम उन सभी विद्वानो के हृदय से आभारी एव कृतज्ञ है।

प्रस्तुत शोध-ग्रन्थ के परीक्षको का भी मैं हृदय से आभारी हूँ। उन्होने इस ग्रन्थ को पसन्नता तथा प्रशसापूर्वक पसन्द करके मुझे संस्कृत साहित्य के समीक्षा-जगत् मे साधिकार विचरण करने की सत्प्रेरणा एव सत्स्फूर्त्ति देकर मेरा महान् उपकार किया है।

मैं अपने कुमायूँ विश्वविद्यालय का भी आभारी हूँ। यहाँ से मुझे इस ग्रन्थ के प्रकाशनार्थ आर्थिक सहायता प्राप्त हुई है, जिसके अभाव मे इसका शीघ्र प्रकाशन सम्भव

नही था। इसी सदर्भ मे मै अपने प्रकाशक का भी सस्नेह आभार प्रकट करता हूँ। इन्होंने बडे ही उत्साह के साथ मेरे इस ग्रन्थ के प्रकाशन का भार उदारतापूर्वक अपने ऊपर ले लिया और थोडे ही समय मे बडी ही कुशलता के साथ इस कार्य को सम्पन्न कर लिया।

अब मैं सहृदय, सुविज्ञ, सुधी पाठको और इस अभिनव शोध-ग्रन्थ के अतराल को और अधिक लम्बा न करके इसे उनके करकमलो मे प्रस्तुत करता हूँ, और आशा करता हूँ कि वे मेरे इस प्रयास को पसन्द करेंगे।

—हरिनारायण दीक्षित

सस्कृत विभाग,
कुमायूँ विश्वविद्यालय,
नैनीताल (उ० प्र०, भारत)।

१

महाकवि धनपाल का जीवनचरित

प्रथम—सोपान

पूर्वज

महाकवि धनपाल के पितामह का जन्म मध्यप्रदेश के 'साकाश्य' नामक प्रसिद्ध नगर मे हुआ था।[१] उनका नाम देवर्षि था। वह ब्राह्मण थे। धनी, दानी और दयालु भी वह बहुत थे। फलस्वरूप दूर-दूर तक उनकी प्रसिद्धि थी। उनके एक पुत्र था, जिसका नाम था सर्वदेव। यह सभी शास्त्रो का मर्मज्ञ था, धार्मिक कार्यो मे विशेष रुचि रखता था, साथ ही साथ काव्यनिर्माण मे भी वह पर्याप्त कुशल था। वह पूरा महात्मा ही था; लगता था मानो ब्रह्मा का अवतार हो। सुधी पाठको! यह सर्वदेव ही हमारे महाकवि धनपाल का पिता था।[२] यह उज्जयिनी नगरी मे रहता था।

भाई-बहिन

धनपाल का एक छोटा भाई था, जिसका नाम था शोभन। यह सुन्दर बहुत था, शायद इसीलिए इसका नाम 'शोभन' रक्खा गया होगा। यह व्याकरण, दर्शन और साहित्य-विद्या का अच्छा-खासा विद्वान् था; ब्रह्मचारी भी था; और अपने पिता का परमभक्त था। उनकी इच्छा को पूरा करने के लिए यह जीवन भर सच्चा ब्रह्मचारी और सच्चा जैन साधु बनकर रहा। जैन धर्म के चौबीस तीर्थंकरो की वन्दना मे इसका लिखा हुआ एक अनुपम स्तुति काव्य मिलता है। शरीर त्याग करते समय शोभन ने अपने बड़े भाई धनपाल से इसकी टीका लिखने का अनुरोध किया था, जिसे धनपाल ने बडे आदर के साथ पूरा भी किया।[३]

धनपाल की एक बहिन भी थी, इनसे छोटी, जिसका नाम था सुन्दरी। यह भी विदुषी थी। धनपाल ने इसी के लिए 'पाइअलच्छीनाममाला' (प्राकृतलक्ष्मीनाममाला) नामक प्राकृतशब्दकोष की रचना की थी।[४] धनपाल अपने इन दोनो भाई-बहिनो को बहुत प्यार करते थे।

शिक्षा-दीक्षा

सर्वदेव के बडे बेटे धनपाल की बुद्धि बडी पैनी थी। उसने अपनी किशोरावस्था मे ही सस्कृतवाङ्मय मे प्रगाढ पाण्डित्य प्राप्त कर लिया था। उसकी तर्क शक्ति एव

काव्यनिर्माणकला अद्भुत थी। वेद, वेदाग, पुराण, धर्मशास्त्र और स्मृतिग्रन्थो मे उनकी गहरी पहुँच हो गई थी।

दाम्पत्य

मुनिराज श्री सुशीलविजय[५], श्री दक्षविजयगणि[६] एव श्री मफतलाल झवेरचन्द्र[७] आदि गुजराती सस्कृत-समीक्षको की धारणा है कि धनपाल ने एक अति सुन्दर, सुशील, कुलीन और विदुषी विप्रकन्या से अपना विवाह किया था, जिसका नाम था धनश्री। आशा है कि उसके साथ धनपाल का दाम्पत्यजीवन अच्छा बीता होगा।

सन्तान

श्री मेरुतुगाचार्यविरचित 'प्रबन्धचिन्तामणि' नामक ग्रन्थ मे 'धनपालप्रबन्ध' को पढने से लगता है कि सन्तान के नाम पर धनपाल के केवल एक कन्या थी। उसका नाम हो सकता है बालपण्डिता हो।[८] मुनिराज श्री सुशीलविजय की अवधारणा है कि उसका नाम तिलकमञ्जरी रहा होगा। तभी तो धनपाल ने अपनी उस इकलौती, दुलारी, प्यारी और विदुषी पुत्री के नाम को अमर करने के लिए अपने 'कथाकाव्य' का नाम 'तिलकमञ्जरी' रखा होगा।[९] पर उनकी यह अवधारणा है चिन्तनीय। क्योकि सस्कृत गद्यकाव्यकारो मे कथानायिका के नाम पर कृति का भी नाम निर्धारित करने की एक अच्छी-खासी प्रथा रही है। अत मेरी समझ से यह भी तो सम्भव है कि धनपाल ने भी उसी प्रथा से प्रभावित होकर कथानायिका के नाम पर ही अपनी कथाकृति का नाम 'तिलकमञ्जरी' रखा हो।

देश एव काल

धनपाल मालव देश की नई राजधानी धारानगरी के निवासी थे। कुछ विद्वानो की यह धारणा है कि धनपाल पहिले तो अपने पिता सर्वदेव के साथ उज्जयिनी नगरी मे ही रहते थे। पर जब जैनधर्म के आचार्य श्री महेन्द्रसूरि के प्रभाव मे आकर सर्वदेव ने, धनपाल की इच्छा के विपरीत, अपने छोटे पुत्र शोभन को जैनसाधु बना दिया तो वह नाराज होकर उज्जयिनी छोडकर धारानगरी मे बस गए थे।[१०] लेकिन कुछ विद्वान् ऐसे भी है जो यह मानते है कि सर्वदेव ही अपने सारे परिवार को लेकर धारानगरी मे आ बसे थे, और जैनधर्मोपदेशक आचार्य श्री महेन्द्रसूरि से भी उनकी मुलाकात धारा मे ही हुई थी।[११] स्मरण रहे कि 'पाइअलच्छीनाममाला' लिखते समय भी धनपाल ने अपने आपको धारानगरी का ही रहने वाला बताया है।[१२]

वास्तव मे धनपाल ने अपने जीवन के अधिकाश महत्त्वपूर्ण एव क्रियाशील क्षण राजामुञ्ज और राजा भोज की छत्रच्छाया मे ही बिताए थे। इसलिए यह नितरा स्वाभाविक है कि जब तक इन राजाओ की राजधानी उज्जयिनी नगरी मे रही होगी तब तक धनपाल भी उज्जयिनी मे ही रहे होगे, और जब इन लोगो ने धारानगरी को अपनी राजधानी बनाया होगा तो यह भी धारा मे ही आ गए होगे। इतिहासविदो का कहना है

कि राजा भोज ने अपनी राजधानी उज्जयिनी से हटाकर धारानगरी मे स्थापित कर ली थी।[13]

कुछ लेखकों की यह भी परिकल्पना है कि राजा भोज से नाराज होकर धनपाल कुछ दिनो तक सत्यपुर (सार्चोर) नामक तीर्थस्थान मे रहे थे।[14] श्री मेरुतुंगाचार्य का कहना है कि उन दिनो वह 'नाणा' नामक किसी गाँव मे रहे थे।[15] वाद मे भोज ने उन्हे प्रसन्न करके फिर से धारानगरी मे ही बुला लिया था। इस विश्लेषण से इतना निष्कर्ष तो अवश्य ही निकल आता है कि धनपाल का अधिकांश जीवन धारानगरी मे ही व्यतीत हुआ था।

अब मैं महाकवि धनपाल के स्थितिकाल को स्पष्ट करने के लिए यहाँ उन्ही की रचनाओ से उपलब्ध होने वाले कुछ आवश्यक एव प्रामाणिक तथ्यों की मीमांसा प्रस्तुत कर रहा हूँ, जो इस प्रकार है—

(क) अपनी 'पाइअलच्छीनाममाला' नामक प्रथम रचना का समय विक्रम सवत् १०२९ उन्होने स्वयं लिखा है।[16] इन दिनो परमार वश का छठाँ राजा श्रीहर्ष (देव) (जो सीयक द्वितीय और सिंहभट्ट के नामो से भी जाना जाता था, तथा जो मुञ्ज का पिता था) राज्य कर रहा था।[17] धनपाल ने भी मुञ्ज के पिता के, श्रीहर्ष और श्री सीयक, दो नाम बताए है (देखिए तिलकमञ्जरी, प्रस्तावना श्लोक स० ४१)।

(ख) धनपाल ने तिलकमञ्जरी कथा की प्रस्तावना के अन्तिम श्लोक मे सूचित किया है कि परम विद्वान् राजा श्री मुञ्ज ने उन्हे 'सरस्वती' की उपाधि से गौरवान्वित किया था।[18] धनपाल ने इस मुञ्ज का एक और नाम बताया है—वाक्पतिराज।[19] इतिहास लेखकों का कहना है कि परमार वश मे यह द्वितीय वाक्पतिराज है।[20] इसका राज्यकाल विक्रम सवत् १०३१ से लेकर १०५० तक अवश्य ही रहा है। क्योकि एक ओर तो वि० स० १०३१ और १०३६ मे इसके द्वारा लिखे गए दो दानपत्रों की उपलब्धि हो चुकी है[21], और दूसरी ओर श्री अमितगति के 'सुभाषितरत्नसन्दोह' नामक ग्रन्थ की समाप्ति पर यह लिखा मिलता है कि उसने अपने इस ग्रथ को राजा मुञ्ज के शासनकाल मे विक्रम सवत् १०५० की पौषशुक्लापञ्चमी तिथि को पूरा किया।[22]

(ग) धनपाल ने यह भी लिखा है कि उन्होने अपनी तिलकमञ्जरी कथा की रचना, राजा मुञ्ज के भतीजे, राजा भोज के विनोद के लिए की है।[23] इतिहासकारो की धारणा है कि भोज का राज्य-काल वि० स०१०६६ से लेकर १०९९ तक अवश्य ही रहा है।[24] इसी वीच के उसके लिखे हुए दो दानपत्र (जिनमे एक तो वि० स० १०७६ का लिखा हुआ है और दूसरा वि० सं० १०७८ का है।) भी मिले है।[25] राजा भोज ने अपने 'राजमृगाङ्ककरण' नामक ज्योतिषशास्त्र के ग्रन्थ का रचनाकाल, 'शाके वेदर्तुनन्दे' लिखकर, शक सवत् ९६४ वताया है, जो वि० स० १०९९ मे पडता है।[26] इसके अतिरिक्त राजा भोज के उत्तराधिकारी जयसिह (प्रथम) का एक दानपत्र मिला है, जो वि० स० १११२ का लिखा हुआ है।[27] इससे स्पष्ट है कि वि० स० १११२ के पूर्व, वि० स० ११०० के लगभग, राजा भोज की मृत्यु हो चुकी थी।

पाइअलच्छीनाममाला और तिलकमञ्जरी से प्राप्त होने वाले तथ्यो की इस

उपर्युक्त मीमासा से यह बात साफ जाहिर होने लगती है कि धनपाल को मालवदेश के परमारवशीय परमप्रतापी तीन-तीन राजाओ (सीयक, मुञ्ज और भोज) के राज्यकाल मे रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।[२८] उस देश मे विक्रम सं० की सम्पूर्ण ग्यारहवी शताब्दी इन्ही राजाओ के राज्यकाल मे व्यतीत हुई है।

इतने विश्लेपण से अब हम इस निष्कर्ष पर पहुँच चुके है कि धनपाल के स्थिति काल की आरम्भिक सीमा वि० स० १०२९ (जब उन्होने पाइअलच्छीनाममाला की रचना की थी) से कम से कम २० वर्ष पूर्व, वि० स० १००९ मे, मानी जानी चाहिए। क्योकि यह उनकी आरम्भिक रचना है, और इसको लिखते समय उनकी आयु कम से कम २० वर्ष तो रही ही होगी। उनके स्थितिकाल की उत्तरसीमा वि० स० १०९० तक मानी जा सकती है। क्योकि भोज के राज्य मे इन्होने १२ वर्षो तक जैन साधुओं का प्रवेश बन्द कराया था।[२९] जाहिर है कि भोज वि० स० १०६६ के लगभग गद्दी पर बैठा था। इसका मतलब है कि यह वि० स० १०७८ के बाद ही जैनधर्म के भक्त हुए होंगे; और तभी इन्होने कुछ दिनो बाद वि० स० १०८० के लगभग अपने आश्रयदाता राजा भोज के जैनधर्म विषयक कौतूहल को शान्त करने के लिए उनके मनोविनोदार्थ 'तिलक-मञ्जरी कथा' की रचना की होगी।

यहाँ हमे यह भी समझ लेना चाहिए कि 'तिलकमञ्जरी कथा' की रचना के बाद भी धनपाल दश-पाँच साल अवश्य ही जीवित रहे होगे, और उन्ही दिनो मे उन्होने अन्य छोटे-मोटे जैनस्तुति काव्यो की रचना की होगी। इस प्रकार हम धनपाल का स्थितिकाल वि० स० १००९ से लेकर वि० स० १०९० तक मान सकते है, जो ईशवीय सन् के मुताबिक ९५२ से लेकर १०३३ तक होता है।

राजाश्रय

धनपाल को मालव-नरेश मुञ्ज और भोज—दोंनो ही—का क्रम-क्रम से आश्रय प्राप्त हुआ था। स्वय विद्वान् होने के कारण दोनो इनकी बडी इज्जत करते थे। इनकी नवनवोन्मेषशालिनी सर्वतोमुखी प्रतिभा से प्रभावित होकर श्री मुञ्ज ने इन्हे 'श्रीकूर्चाल सरस्वती' की उपाधि से विभूषित किया था।[३०] वह अपने राज-दरबार मे हमेशा बड़े आदर और स्नेह के साथ इन्हे 'सरस्वती' के 'सरनेम' से बुलाया करता था।[३१] मुञ्ज का भतीजा राजा भोज भी इन्हे खूब मानता था। सचमुच ही धनपाल उन दोनो राजाओ की सभा के सर्वश्रेष्ठ रत्न थे। राजा भोज तो धनपाल को प्राय अपने साथ ही रखता था।[३२] सम्भव है कि राजकार्य मे भी वह इनकी मन्त्रणा लेता हो। मुझे तो लगता है कि उन दोनो का सबध अकबर और बीरबल जैसा रहा होगा। धनपाल ने 'तिलकमञ्जरी कथा' की रचना भी राजा भोज के मनोविनोद के लिए ही की थी।[३३]

व्यक्तित्व की दृढता

धनपाल का व्यक्तित्व भी काफी दृढ था। उसमे गम्भीरता एव निर्णायकता तो गजब की थी। उन्हे सच्चाई पसन्द थी। दो-टूँक बात कहने मे वह कभी भी, किसी से

भी, जरा भी नही डरे। उनकी युक्तियो की अकाट्यता ने उनके व्यक्तित्व की दृढता मे चार-चाँद लगा दिए थे। उन्हे अपने ज्ञान पर पूरा-पूरा भरोसा था। किसी भी कीमत पर वह ऐसी बात नही मानते थे जो उनकी बुद्धि को असगत और भ्रामक प्रतीत हो। जब तक उन्हे जैनधर्म की अच्छाइयो का स्वय अनुभव नही हुआ, तब तक वह इसकी हिमायत करने वाले अपने पिता की भी आज्ञा का उल्लघन् करते रहे, और जब उन्हे शोभनमुनि एव महेन्द्रसूरि के सत्सग से जैन-धर्म की अनुपम विशेषताओ की अनुभूति हो गई, तो अपने आश्रयदाता एव परमप्रतापी राजा भोज की भी परवाह किए बगैर उस धर्म की जीवनपर्यन्त दुहाई देते रहे। यह उनकी व्यक्तिगतवैचारिकदृढता का ज्वलन्त प्रमाण है।

वास्तव मे जैनी-दीक्षा लेने के बाद धनपाल को अपने व्यक्तित्व की रक्षा मे सारा सुख दाँव पर लगा देना पडा था। क्योकि सनातन धर्मावलम्वी होने के कारण राजा भोज को इनके कुछ जैन-सिद्धान्तो से अरुचि रहती थी। फलस्वरूप दोनो मे धार्मिक मतभेद स्वाभाविक था। लेकिन धनपाल अपने विचारो मे सदैव दृढ रहे। वह राजा भोज के दबाव मे कभी नही आए। इस सम्वन्ध मे राजा भोज के साथ उनकी अनेक दन्तकथाएँ सुनने और पढने मे आती है। ये दन्तकथाएँ उन दिनो की है जब धनपाल जैनधर्म मे दीक्षित हो चुके थे; अहिसा के रग मे रँग चुके थे; और देवी-देवताओ की पूजा के नाम पर फैले हुए पाखण्ड की पोल जान चुके थे। लीजिए, उनमे से कुछ के प्रसग इस प्रकार है—

(क) राजा भोज शिकार के लिए गए हुए थे। अपने साथ धनपाल को भी ले गए थे। साथ मे और भी बहुत से लोग थे। राजा ने एक हिरण को निशाना बनाया और अपना तीखा बाण चला दिया। हिरण घायल हो गया। राजा ने उस छटपाते हुए हिरण का वर्णन करने के लिए धनपाल को इशारा किया। धनपाल का दिल रो पड़ा, उसने राजा भोज की नाराजगी की परवाह किए वगैर दो-टूंक, पर सोलहो आने सही, बात कह डाली—

रसातल यातु यदत्र पौरुष, कुनीतिरेपा शरणो ह्यदोपवान्।
विहन्यते यद् बलिनापि दुर्वलो, ह हा महाकष्टमराजक जगत्॥

अर्थात् यह सरासर अन्याय है कि एक वेसहारा, निरपराध और दुर्वल प्राणी की हत्या वलवान् करे। ऐसा पराक्रम तो रसातल को चला जाए (तभी कुछ भला हो)। हाय, यह तो वडे ही दु.ख की वात हे कि दुनियाँ मे अराजकता फैलती जा रही है।

इस उपर्युक्त काव्यमयी भर्त्सना से राजा भोज नाराज हुआ, तो धनपाल ने अपने विचारो की पुष्टि मे एक युक्ति भी दी—

वैरिणोऽपि हि मुच्यन्ते प्राणान्ते तृणभक्षणात्।
तृणाहारा सदैवैते हन्यन्ते पशव कथम्?॥

(मुँह मे घास दबा लेने से जब मौत के घाट उतार दिए जाने वाले शत्रुओ को भी छोड दिया जाता है, तो फिर हमेशा घास ही खाने वाले इन पशुओ को क्यो मारा जाता है?)

कवि की उपर्युक्त युक्ति-युक्त उक्ति का भोज पर गहरा प्रभाव पड़ा, और उन्होंने उस दिन से शिकार खेलना वन्द कर दिया।

(ख) एक वार राजा भोज धनपाल को एक यज्ञशाला मे ले गए। यज्ञ हो रहा था। एक खम्भे मे वँधा हुआ वलि का वकरा मिमयाँ रहा था। उसे देखकर भोज धनपाल से पूँछ वैठे कि—'कहिए कविवर ! यह वकरा क्या कह रहा है ?' सुनकर धनपाल ने बड़ी गम्भीरता और दृढता के साथ उत्तर मे कहा कि राजन् ! इस वकरे का कहना है कि—

नाह स्वर्गफलोपभोगरसिको नाभ्यर्थितस्त्व मया,
सन्तुष्टस्तृणभक्षणेन सतत साधो न युक्त तव।
स्वर्गं यान्ति यदि त्वया विनिहता यज्ञे ध्रुव प्राणिनो,
यज्ञ किं न करोषि मातृपितृभि पुत्रैस्तथा वान्धवै ॥

(अर्थात् हे महाशय ! तुम्हारा यह कार्य उचित नही है। मुझे स्वर्ग का सुख नही चाहिए, मैंने तुमसे प्रार्थना भी नही की है, मैं तो घास खाकर हमेशा सन्तुष्ट रहता हूँ। यदि यज्ञ मे तुम्हारे द्वारा मारे हुए प्राणी सचमुच ही स्वर्ग ही मे जाते हैं तो फिर यज्ञ मे अपने माता-पिता और भाईयो को क्यो नही मारते हो ?)

सुना आपने धनपाल का जवाव ? यज्ञप्रेमी, परमप्रतापी और आश्रयदाता राजा भोज को इतना कटु सत्य उत्तर देना कोई साधारण वात नही है। भोज जव इस युक्ति-सगत उत्तर से हतप्रभ हुए तो धनपाल ने अपनी वात कुछ और आगे वढाई। उन्होंने कहा—राजन् !

यूप छित्त्वा पशून् हत्वा कृत्वा रुधिरकर्दमम्।
यद्येव गम्यते स्वर्गे नरके केन गम्यते ? ॥

(अर्थात् वलि के पशु को वांधने के लिए खम्भा काट कर लाने से, पशुओ को मारने से और (यज्ञशाला मे) खून का कीचड उत्पन्न करने से यदि स्वर्ग मिलता है, तो जरा यह भी तो वताइए कि नरक कैसे मिलता है ?)

धनपाल के व्यक्तित्व की दृढता और युक्तियो की अकाट्यता से जव राजा भोज निरुत्तर हो गया तो धनपाल ने समझाया—

राजन् !

सत्य यूपस्तपो ह्यग्नि कर्माणि समिधो मम।
अहिसामाहुति दद्यादेप यज्ञ सनातन ॥

सच्चा यज्ञ तो वह है जिसमे सत्य का यूप हो, तपस्या की अग्नि हो; कर्म की समिधाएँ हो; और अहिंसा की आहुति हो।

भोज की समझ मे वात आ गई।

(ग) एक वार राजा भोज ने गाय की वन्दना की, पर महिषी (भैंस) की उपेक्षा। धनपाल को यह भेद-भाव कुछ पसन्द नही आया। अत उन्होने राजा से सवाल कर दिया—

अमेध्यमश्नाति विवेकशून्या स्वनन्दनं कामयतेऽभिपक्ता ।
खुराग्रश्रृङ्गं विनिहन्ति जन्तून् गौर्वन्द्यते केन गुणेन राजन् ? ॥
पय.प्रदानसामर्थ्याद् वन्द्या चेन्महिषी न किम् ? ।
विशेषो दृश्यते नास्या महिषीतो मनागपि ॥

हे राजन् ! आप गाय की वन्दना (उसके) किस गुण को देखकर कर रहे है ? (वह) अपवित्र वस्तु खाती है; विवेक से शून्य है, कामासक्त होकर अपने पुत्र से ही सम्भोग कर लेती है; (और अपने) खुरो तथा सीगो से लोगो को मारती (भी) है । यदि दूध देने के कारण वन्दनीय है तो फिर महिषी क्यो नही ? (महिषी तो गाय से ज्यादा दूध देती है ।) (इसलिए मुझे तो) महिषी से गाय मे जरा भी विशेषता नही दिखाई देती है ।

राजा क्या कहे ।

स्पष्ट है कि उपर्युक्त घटनाएँ धनपाल के हृदय की दयालुता, मस्तिष्क की तर्कशीलता और व्यक्तित्व की दृढता की प्रबल परिचायिका हैं ।[38]

एक अनहोनी किवदन्ती

कहा गया है कि धनपाल ने जब अपनी लिखी हुई 'तिलकमञ्जरी कथा' राजा भोज को सुनाई तो उसे सुनकर वह बहुत प्रभावित हुए । उन्होने धनपाल से कहा कि कविवर ! यदि आप अपनी इस कथा मे थोड़ा परिवर्तन कर दे, अर्थात् मगलाचरण मे 'स व पातु जिन.' के स्थान पर 'स व पातु शिव', अयोध्या के स्थान पर धारा, शक्रावतारतीर्थ के स्थान पर महाकालेश्वर का मन्दिर, ऋषभदेव के स्थान पर शकर और मेघवाहन के स्थान पर मेरा (भोज का) नाम लिख दे तो मै आपको वही दूँगा जो आप माँगेंगे । पर धनपाल बिके नही, उन्होने बडी दृढता से जवाब दिया कि राजन् ! जिस प्रकार जुगनू और सूरज मे, सरसो और सुमेरु मे, काँच और सोने मे, धतूरे और कल्पवृक्ष मे बडा अन्तर है उसी प्रकार तुम मे और उनमे है । अरे दो मुँह वाली, बिना पढी-लिखी लोहे की तराजू ! तुझे क्या कहूँ ? जो तू गुन्जा के साथ सोने को तोलती हुई पाताल में न गई ।

धनपाल के इस उत्तर से राजा भोज बहुत अधिक कुपित हो गए और उन्होने उस ग्रन्थ को धधकती हुई आग मे फैक दिया, फलस्वरूप देखते-देखते वह राख हो गया ।

दु खी होकर धनपाल अपने घर लौट आए । उन्हे अपनी काव्यसम्पदा के जलाए जाने का गहरा ग़म था । लेकिन जब उनकी अल्पवयस्क पुत्री को घटना का पता लगा तो उसने कहा—पिताजी ! आप चिन्ता न करे । आपकी लिखी हुई वह कथा मुझे याद है, मैं आपको लिखा दूँगी । धनपाल को बडी राहत मिली, और फिर उन्होने अपनी पुत्री से सुन-सुन कर कथा को दुबारा लिपिबद्ध करना शुरू कर दिया । लेकिन पुत्री आधा ही लिखा पाई, आगे का वह भी भूल चुकी थी । अत उत्तरार्ध की रचना धनपाल को दुबारा करनी पडी ।

इस घटना से दु खी होकर धनपाल ने धारा नगरी छोड दी, और दूसरी जगह जाकर रहने लगे । बाद मे जब एक दिन धर्म नामक किसी विद्वान् ने आकर भोज की

सभा को शास्त्रार्थ के लिए चुनौती दे दी और जब कोई उसका मुकाबिला न कर सका, तो भोज ने अपनी सभा की लाज रखने के लिए धनपाल को बडे आदर के साथ बुलाया। धनपाल के सामने वह पण्डित नही टिक सका। राजा भोज बहुत खुश हुए और उन्होने धनपाल को फिर जाने नही दिया। फलस्वरूप धनपाल फिर से भोज की सभा की शोभा बढाने लगे।[३५]

लेकिन यह किवदन्ती मुझे बड़ी ही अनहोनी लगती है। इसलिए मेरे दिल और दिमाग मे इसने घर भी नही कर पाया है। भोज जैसे विद्वान्, विवेकशील एव साहित्य-रसमर्म्मज्ञ व्यक्ति ने ऐसा ईर्ष्यापूर्ण और निन्दनीय अपकृत्य किया होगा, यह बात मेरी समझ मे नही आती। राजा भोज स्वय भी बहुत बडे साहित्यकार थे, उनके लिखे हुए आज अनेक ग्रन्थ पाए जाते है। वह साहित्यसाधना का मूल्य भलीभाँति जानते थे। धनपाल के लिए भी उनके हृदय मे प्रगाढ श्रद्धा थी। अत यह किवदन्ती, कि राजा भोज ने ईर्ष्या और क्रोध के वशीभूत होकर धनपाल की 'तिलकमञ्जरी कथा' को आग मे जला दिया, विश्वास करने योग्य प्रतीत नही होती। इस सम्बन्ध मे तथ्यो की मीमासा प्रस्तुत है—

(क) कुछ लोगो की दृष्टि मे इस किवदन्ती का आधार एक पद्य है। उनकी मान्यता है कि एक बार भोज ने धनपाल से पूँछा कि कहिए कविवर ! किस ग्रन्थ की रचना कर रहे हो ? तो उत्तर मे धनपाल ने निम्नलिखित पद्य सुनाया —

आरनालगलदाहशकया मन्मुखादपगता सरस्वती।
तेन वैरिकमलाकचग्रहव्यग्रहस्त, न कवित्वमस्ति मे ॥

(अर्थात् पीतल की नली जैसे गले मे जल जाने की आशका से सरस्वती मेरे मुँह से निकलकर भाग गई है। इसलिए······मुझमे कविता करने की क्षमता नही रही है।) लोगो ने इस पद्य मे 'दाहशका' शब्द को 'तिलकमञ्जरीकथादाह' रूप भोज के अपकृत्य का अभिव्यजक माना है।[३६] लेकिन यह पद्य वल्लाल कवि विरचित भोज-प्रबन्ध मे जालन्धर देश से आए हुए किसी कवि का बताया गया है।[३७] साथ ही वहाँ 'आरनाल' शब्द का अर्थ भी 'काँजी' (निहायत खट्टा और बासा पेय) लिया गया है जो उसके दारिद्रय का सूचक है। अत. इस पद्य पर आधारित दन्त-कथा का धनपाल के साथ सम्बन्ध असगत सिद्ध हो जाता है।

(ख) धनपाल के जीवन मे यदि इतनी बडी अप्रिय घटना घटी होती तो वह इसकी चर्चा कही न कही अवश्य ही करते। इस विषय मे उनका मौन इस किवदन्ती की असत्यता का द्योतक प्रतीत होता है।

(ग) यदि यह घटना सत्य होती तो धनपाल 'तिलकमञ्जरी कथा' को दुबारा उतारते समय प्रस्तावना के श्लोको मे से उस श्लोक को अवश्य ही निकाल बाहर करते, जिसमे उन्होने लिखा है कि यह कथा 'नि शेषवाड्मयविद्' और 'अवदातचरित' राजा भोज के मनोविनोद के लिए लिखी है।[३८] पर ऐसा उन्होने नही किया। इससे सिद्ध है कि भोज से उनकी कोई अनबन नही हुई।

(घ) किंवदन्ती के प्रारूप को देखते हुए ऐसा लगता है कि जैनधर्म को सनातन धर्म की अपेक्षा अच्छा सिद्ध करने के लिए जैनधर्मावलम्बी श्री मेरुतुंगाचार्य, श्री प्रभाचन्द्रसूरि आदि चरित लेखको ने इसकी प्ररोचक कल्पना कर दी होगी, और बाद मे जिसने एक घटित् घटना का स्थान ले लिया होगा।

(ङ) 'प्रबन्धचिन्तामणि' की किसी प्रति मे यह भी लिखा मिलता है कि धर्म-नामक पण्डित से शास्त्रार्थ करने के लिए जब भोज ने रूठे हुए धनपाल को बुलाया था तो उस समय भोज द्वारा कुशलक्षेम पूंछे जाने पर उत्तर मे धनपाल ने "पृथुकार्त्तस्वरपात्र भूपितनि शेषपरिजन देव। विलसत्करेणुगहन सम्प्रति सममावयो सदनम् ।।" कहकर अपनी दयनीय अवस्था को सूचित किया था।[३६] लेकिन धनपाल के व्यक्तित्व की दृढ़ता एव स्वाभिमानिता को देखते हुए इस बात पर विश्वास नही किया जा सकता। पहली बात तो यह है कि धनपाल गरीब नही थे, और दूसरी यह है कि यदि भोज ने उनकी 'तिलकमञ्जरीकथा' को जलाया होता तो वह उनके सामने अपनी दीनता कभी भी प्रकट नही करते, क्योकि वह बेहद स्वाभिमानी थे।

परोक्षदर्शिनी प्रतिभा

धनपाल प्रत्युत्पन्नमति थे। सरस्वती उन्हे सिद्ध थी। किसी भी विषय का किसी भी समय फडकता हुआ काव्यमय वर्णन कर देना तो उनके लिए साधारण सी बात थी। पर इन सभी विशेषताओ के साथ ही साथ उनमे एक विशेषता अनुपम थी, और वह थी उनकी परोक्षदर्शिनी प्रतिभा। इसके सहारे वह परोक्ष को प्रत्यक्ष की भाँति देख लेते थे।

(अ) एक बार भोज की सभा मे एक समुद्रीय व्यापारी ने आकर मोम की पट्टी पर उभरे हुए कुछ पद्य भेट किए और बताया कि समुद्र के बीचो-बीच पानी मे डूबे रहने के बावजूद भी पानी से रहित एक शिव-मन्दिर की दीवाल मे ये पद्य खुदे हुए है। उसने वही से उन्हे मोम की पट्टी पर उभार लिया है। सभा मे वे पद्य पढे गए। उनमे अन्तिम पद्य अधूरा था, जो इस प्रकार है—

अयि खलु विषम पुराकृताना भवति हि जन्तुषु कर्मणा विपाक ।

सभा के अन्य पण्डितो ने इस पद्य की पूर्ति करनी चाही, पर भोज को पसन्द नही आई। उनका इशारा पाकर धनपाल ने इस प्रकार पूर्ति की—

हरशिरसि शिरासि यानि रेजुर्हरिहरि तानि लुठन्ति गृध्रपादै ।।

भोज को पसन्द आ गई। पर सभा के अन्य पण्डितो को असूया हुई। उसके निराकरण के लिए समुद्र मे मन्दिर की खोज की गई। वहाँ यही पंक्ति खुदी हुई थी।

(ब) एक बार राजा भोज तीन दरवाजो वाले मण्डप मे बैठे थे। धनपाल भी साथ थे। परखने की दृष्टि से राजा ने पूँछा कि बताओ मैं किस द्वार से निकलूँगा ? धनपाल ने सोचा, और इस प्रश्न का उत्तर लिखकर चिह्न सहित मिट्टी के गोले मे बन्द करके समीपस्थ सेवक् को सौंप दिया। भोज भी कम न थे, वह किसी भी दरवाजे से नही निकले। उन्होने दीवाल तुडवाई और बाहर आए। बडी उत्सुकता से धनपाल का पहले

से ही लिखा हुआ उत्तर पढा। उसमे उनके निकलने का ठीक वही ढंग लिखा था जो उन्होने अपनाया था।

भोज धनपाल को मान गया।

शास्त्रीय ज्ञान

धनपाल एक महाकवि ही नही, वल्कि एक उद्भट विद्वान् भी थे। उनकी विद्वत्ता उनकी रचनाओ मे भरी पडी है। व्याकरण, दर्शन, काव्य, छन्द, ज्योतिप आदि शास्त्रो मे उनकी पहुँच पूरी थी। गद्य लेखक होने के बावजूद भी इनकी छन्दोरचनानैपुणी अद्भुत थी। प्राकृत भाषा के भी छन्द को वह बडी आसानी से सस्कृत मे खपा लेते थे। छन्दोविद् आचार्य हेमचन्द्र ने अपभ्रश भापा के पाँच चरणो वाले मात्रा नामक छन्द के उदाहरण के रूप मे उनकी तिलकमञ्जरी कथा से भी एक पद्य उद्धृत किया है।[४०] धनपाल के विविध-शास्त्रीय ज्ञान का पूरा-पूरा निचोड उनकी कृतियो मे अनायास ही देखने को मिलता है।

धनपाल को प्राकृत भाषा का भी प्रौढ ज्ञान था। उन्होने इस भापा का 'पाइअलच्छीनाममाला' के नाम से एक शव्दकोश भी तैयार किया था।[४१] अपने स्तुति काव्यो की रचना मे उन्होने प्राकृत-भाषा को ही प्रमुखता दी है। श्रीऋपभपचाशिका की प्राकृत गाथाएँ तो बडी ही सरस है।[४२] चित्रकला और मूर्तिकला की जिन वारीकियो की ओर धनपाल ने अपने पाठको का ध्यान आकृष्ट किया हे वे सचमुच ही दिल मे घर कर लेने वाली है। कथानायिका तिलकमञ्जरी के चित्र के वर्णन के द्वारा और जिनेन्द्र भगवान् की प्रतिमाओ के वर्णन द्वारा धनपाल ने चित्रकारो को चित्रकला मे और मूर्तिकारो को मूर्तिकला मे निखार लाने के लिए बहुत कुछ सिखा दिया है। उन्होने जैन मन्दिरो और नागरिको के भवनो की रूपरेखा का वर्णन करके भारतीय वास्तुकला पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला है।

धनपाल का भौगोलिक ज्ञान यदि प्रशसनीय नही है तो निन्दनीय भी नही है। उन्होने भारत के उत्तर-पूर्वीय भू-भाग और पर्वतीय सम्भाग का वर्णन बडे विश्वास के साथ किया है। दक्षिण-भारत के समुद्रीय-तटो और पर्वतमालाओ से भी उनका अच्छा-खासा परिचय है। इसके अतिरिक्त धनपाल को भारतीय सस्कृति और समाज की मान्यताओ का भी पूर्ण ज्ञान है। उसे उन्होने अपनी 'तिलकमञ्जरी कथा' मे यत्र-तत्र अभिव्यजित भी किया है, जिसका समीक्षात्मक विश्लेषण पाठको को प्रस्तुत शोध-ग्रन्थ मे आगे उपलब्ध होगा।

तीन धनपाल

भारतीय साहित्य मे धनपाल के नाम से तीन व्यक्तियो का पता चलता है। एक तो धनपाल धक्कड, दूसरे अपने आलोच्य महाकवि धनपाल और तीसरे पल्लीपाल धनपाल।[४३] इनमे महाकवि धनपाल का परिचय इस सोपान मे दिया ही जा रहा है, पल्लीपाल धनपाल का परिचय इसी शोध-ग्रन्थ मे आगे चलकर सप्तम अध्याय के द्वितीय सोपान मे आपको मिल जाएगा। अव बचते है धनपाल धक्कड, जिनका परिचय देना यहाँ

आवश्यक प्रतीत हो रहा है।

यह (धनपाल धक्कड़) अपभ्रंश भाषा के साहित्यकार थे। इनकी लिखी हुई 'भविसयत्तकहा' (भविष्यदत्त कथा) नामक एक कथाकृति उपलब्ध होती है, जिसका दूसरा नाम 'सुयपचमीकहा' भी माना जाता है। भाषा की शिथिलता एव विविधरूपता के आधार पर विद्वानो ने इस कथाकृति का रचनाकाल ईशा की दशवी शताब्दी मानना चाहा है।[४४] इसका प्रकाशन, गायकवाड ओरिएण्टल सीरीज मे ग्रन्थाँक सख्या २० पर सन् १९२३ मे हो चुका है।

इनके जीवन चरित के विषय मे इन्ही की कृति से जो थोडी-बहुत जानकारी हो सकी है वह यह है कि यह वणिग्वश के थे और इनका 'सरनेम' धक्कड था। इनके पिता का नाम मायेश्वर और माता का नाम धनश्री था।[४५] यह जैनधर्म के मानने वाले थे। डॉ० जैकोवी का अनुमान है कि यह दिगम्बरजैन-सम्प्रदाय के अनुयायी रहे होगे। पर हमे यहाँ यह भी याद रखना चाहिए कि यह सरस्वती के भी कृपा-पात्र थे।[४६]

यह लोककवि थे। इनका हृदय उदार एव सवेदनशील था। अत इनकी कथा-कृति जन-जीवन के अधिक निकट है। इन्होने, राजा के लिए नहीं, प्रजा के लिए लिखा है। इनकी कथा का नायक (भविष्यदत्त) एक वणिक्पुत्र है। उसके भाग्य की कथा कहकर इन्होने जन-जीवन की भाग्य-कथा कहनी चाही है; और इसमे इन्हे सफलता भी काफी मिली है।

धनपाल और जैनधर्म : एक परिचर्चा

धनपाल ने अपने जीवन मे जैनधर्म का मूल्याँकन तीन बार किया। आरम्भ मे वह इस धर्म के प्रति काफी उदासीन रहे, बीच मे इसके प्रति ईर्ष्यालु हो गए, पर बाद मे इसके परम समर्थक एव भक्त बन गए और विधिवत् दीक्षा लेकर पूरे श्वेताम्बर जैन हो गए। उनके इन अन्तिम दो परिवर्तनो की पृष्ठभूमि मे उनके पिता सर्वदेव, अनुज शोभन तथा जैनधर्म के आचार्य महेन्द्रसूरि का बहुत बड़ा हाथ है।

कहा जाता है कि एक बार उज्जयिनी[४७] मे जैनाचार्य श्री महेन्द्रसूरि[४८] पधारे। नगर मे उनके गुणो की धूम मच उठी। सनातन-धर्मावलम्बी होने के कारण सर्वदेव, जो धनपाल के पिता थे, पहले तो उनके गुणो को सुना-अनसुना करते रहे, पर जब देखा कि उनकी ख्याति दिनो-दिन बढती जा रही है तो एक दिन वह भी गए और उनसे बात करके काफी प्रभावित भी हो गए, तथा रोज भी जाने लगे।

एक दिन उनसे अपने घर मे पूर्वजो द्वारा गाढकर रखे हुए धन का पता पूँछा तो सूरि ने कहा कि यदि आप 'अपनी' सम्पत्ति का आधा भाग मुझे देने का वचन दे तो मैं आपके पूर्वजो की जमीन मे छिपी हुई दौलत को बता सकता हूँ। सर्वदेव ने शर्त सहर्ष मान ली। सूरि के बताए हुए स्थान को खोदा गया तो वहाँ, कहते है, ४० लाख स्वर्ण टक (एक विशेष प्रकार का सिक्का) निकले।[४९]

सर्वदेव ने प्रसन्नता एव कृतज्ञतापूर्वक श्री महेन्द्रसूरि से प्रार्थना की कि वह शर्त के मुताबिक बीस लाख स्वर्ण-टक स्वीकार करे। पर सूरि जी ने साफ मना कर दिया।

उन्होने कहा कि शर्त के अनुसार आपको 'अपनी-निजी' सम्पत्ति का आधा भाग देना चाहिए, न कि पूर्वजो की सम्पत्ति का। यदि आप अपना वचन पूरा करना चाहते है तो मुझे जैनधर्म के प्रचार के लिए अपने विद्वान् एव सुयोग्य दोनो पुत्रो मे से, जो आपकी निजी सम्पत्ति है, किसी एक को दे दीजिए। सर्वदेव बडे असमजस मे पड गए। घर आकर अपने पुत्रो (धनपाल और शोभन) से सब कह दिया। धनपाल को महेन्द्रसूरि का यह प्रपच अच्छा नही लगा। उसने अपनी प्रखर युक्तियो से जैनधर्म की निन्दा करते हुए अपने पिता को जैनियो के सम्पर्क से दूर रहने की सलाह दी। शोभन छोटा था। उसे वह देने मे हिचकिचाए। कुछ दिनो बाद श्री महेन्द्रसूरि भी दूसरे स्थान को चले गए। बात आई-गई हो गई।

प्रतिज्ञा को पूरा न करने से उत्पन्न पाप का प्रायश्चित्त करने के लिए सर्वदेव तीर्थ-यात्रा पर चले गए।[५०] इधर शोभन, पढा-लिखा तो था ही, अपने पिता की इच्छा को पूरा करने के लिए, धनपाल के काफी रोकने और समझाने के बावजूद भी, श्री महेन्द्रसूरि की सेवा मे चला गया और उनका शिष्य बन गया। इस घटना से धनपाल के मन मे जैनधर्म के प्रति विद्रोह की भावना भर गई। वह जैनियो से बुरी तरह से चिढ गए; और अपने भाई का बदला चुकाने की गरज से उन्होने राजा भोज को समझा-बुझाकर सारे मालवदेश से जैनियो को बाहर निकलवा दिया। उनका यह क्रोध १२ साल तक रहा।

इस बीच शोभन की तपस्या मे निखार आ चुका था। वह शोभन से शोभनमुनि बन चुका था। अत श्री महेन्द्रसूरि ने उसे ही धनपाल को शिक्षा देने के लिए एक बार धारा नगरी भेजा। धनपाल अपने उस छोटे भाई को पहचान न सके; और उसकी हँसी उडाने लगे। पर शोभनमुनि के शान्त एव मृदुल व्यवहार से उन्हे प्रभावित होना पडा। बाद मे तो धनपाल ज्यो-ज्यो शोभनमुनि के सम्पर्क मे आते गए त्यो-त्यो उनकी विद्वत्ता, दयालुता, सहिष्णुता, तपोनिष्ठा, सदाचार, त्याग आदि गुणो से उनके भक्त बनते ही गए।[५१] साथ ही साथ जैनधर्म के प्रति पुरानी घृणा दूर होती गई और उसकी जगह श्रद्धा पनपती गई। उनके धार्मिक विचारो मे आमूल परिवर्तन हो गया। वह विधिवत् जैनी-दीक्षा लेने का विचार करने लगे। एक दिन जब उन्हे यह मालूम हुआ कि वही महात्मा उनका छोटा भाई शोभन है, तब तो उनके हर्ष का ठिकाना ही न रहा। अपने भाई के जीवन को सुधारने वाले श्री महेन्द्रसूरि के प्रति उनके हृदय मे श्रद्धा एव आदर का स्रोत फूट पडा। राजा भोज को समझा-बुझाकर उन्होने जैनाचार्यों के प्रवेश-निषेध का प्रतिबन्ध (जो उन दिनो तक कुछ शिथिल भी हो गया था, क्योकि तभी तो शोभन मुनि आ सके होगे) हटवाया और श्री महेन्द्रसूरि को सादर आमन्त्रित किया। वह आए, उनका सार्वजनिक उपदेश हुआ, जिसे सुनकर धनपाल का हृदय आनन्द से गद्गद हो गया, और फिर वह उनके विधिवत् शिष्य हो गए। शीघ्र ही सब ओर उनके इस धर्म-परिवर्तन की खबर फैल गई।

धनपाल की सहज बातो से देवी-देवताओ के ठेकेदार बनने वाले व्यावसायिक पण्डितो को ऐसा अनुभव होने लगा जैसे कि उनके कर्मकाण्ड के पाखण्ड का पर्दा-फाश हो जाएगा। वे धनपाल की विद्वत्ता एव राजप्रियता से तो पहले से ही ईर्ष्या रखते थे,

अत इस अनुभव ने उन्हें सनातनधर्मावलम्वी राजा भोज को जैनधर्मावलम्वी धनपाल के खिलाफ वरगलाने की प्रेरणा दे डाली। फलस्वरूप वे भोज के कान भरने लगे। राजा भोज भी धनपाल की धार्मिक विचारधारा के इस जवरदस्त मोड़ से काफी परेशान हुए। उन्होने धनपाल की जैनधर्म-विषयक निष्ठा को सव तरह से परखा, पर धनपाल ने सभी अवसरो पर जैन धर्म की सर्वलोकमगलकारिणी विचारधारा का ही समर्थन किया। अन्ततोगत्वा राजा भोज भी जैनधर्म के जिज्ञासु हो गए।[५२]

धनपाल की जैनधर्म मे गहरी पहुँच हो गई थी। वह श्वेताम्वरशाखा के अनुयायी थे। आदितीर्थंकर श्री ऋषभनाथ मे उनकी प्रगाढ निष्ठा थी[५३], पर कृपा अन्य तीर्थंकरो की भी चाहते थे।[५४] अन्तिम तीर्थंकर श्री महावीरस्वामी की भी महिमा से वह काफी प्रभावित हुए थे।[५५]

जैनधर्म के आगम और पुराणो का भी उन्होने पर्याप्त परिशीलन किया था, जिसका प्रभाव उनकी 'तिलकमञ्जरी कथा' पर साफ नजर आता है। उन्होने उसके कथानक मे अयोध्या[५६], जम्वूद्वीप[५७], नन्दीश्वरद्वीप[५८], वैताढ्यपर्वत[५९], अष्टापद (कैलास) पर्वत[६०], रथनूपुरचक्रवाल[६१], गगनवल्लभ[६२] आदि जिन स्थानो की चर्चा की है वे सभी जैनधर्म के आगमो और पुराणो मे प्रतिष्ठा पा चुके है। उनकी ज्वलनप्रभ और प्रियगुसुन्दरी नामक देवदम्पति के पुनर्जन्म की कल्पना भी निराधार नही प्रतीत होती है।[६३] तिलकमञ्जरी मे (पृ० सं० ३४४ पर) जिस रथयात्रोत्सव की चर्चा आई है वह जैनधर्म का प्रमुख महोत्सव रहा है, इस वात को सभी जैनी मानते है। दरअसल धनपाल ने 'तिलकमञ्जरी कथा' की रचना करके जैनागम की कौतूहलवर्धक कथाओ को ही सरस एव साहित्यिक स्वरूप प्रदान किया है।[६४] उनकी 'पाइअलच्छीनाममाला' तथा 'सस्कृत-नाममाला' को छोडकर अन्य रचनाओ मे तो उनकी जैनीनिष्ठा प्रत्यक्ष ही है। कुल मिलाकर अन्त मे हम कह सकते है कि धनपाल की काव्यप्रतिभा से जैनधर्म की पर्याप्त श्रीवृद्धि हुई है।

धनपाल का जीवनदशन

अपने छोटे भाई शोभनमुनि की प्रेरणा से जैनधर्म के सम्पर्क मे आने से पहले धनपाल की भौतिक महत्त्वाकाक्षाएँ वडी प्रवल थी। मालवाधीश मुञ्ज और भोज जैसे राजाओ की कृपापात्रता प्राप्त होने के कारण धनपाल को सासारिक सुख-सुविधाओ के प्रति काफी लगाव रहा था। पर जैनी विचारधारा के प्रत्यक्ष प्रवाह मे पडते ही उनका जीवनदर्शन वदल गया था।

धनपाल के जीवन मे अहिसा और दया का मूल्य सर्वोपरि हो गया था। वह किसी भी कीमत पर किसी भी जीव की हिंसा को पसन्द नही करते थे। यही कारण था कि सनातन-धर्मियो के हिंसा (वलिदान) पूर्ण यज्ञो का भी वह विरोध किया करते थे। उनकी दृष्टि मे वलिपशु के रुधिर से गीली बनी हुई यज्ञशालाएँ यज्ञकर्त्ता को निश्चय ही नरक पहुँचाने वाली हैं, और पुण्य के नाम पर पाप को वढावा देने वाली है। वह सत्य, अहिंसा, तपस्या एव आत्मकर्म विश्लेषण को ही सच्चा यज्ञ मानते थे। उनकी दृष्टि मे

जीवमात्र को जीने का जन्म-सिद्ध अधिकार है। निरीह एव निरपराध पशुओं के शिकार को वह एक महान् पाप मानते थे।[६५] दूसरे (जीव) को पीडा न पहुँचाने के सिद्धान्त से रहित सभी शास्त्रो को वह घास-फूस के समान वेकार समझते थे।[६६]

धनपाल की दृष्टि मे किए हुए कर्मो का फल अवश्य ही भोगना पडता है। वह दैवगति के रूप मे या होनहार (भवितव्यता) के रूप मे अकाट्य होकर मनुष्य के जीवन को अवश्य ही प्रभावित करता है। कोई उसे रोक नही सकता है।[६७] उन्होने ससार की असारता तथा सम्पदा और प्रतिष्ठा की क्षणभगुरता को भी सच माना था।[६८] स्थिति की परिवर्तनशीलता पर भी उनका विश्वास था।[६९] तिलकमञ्जरी कथा के प्रमुख पात्र उनके इस विश्वास के प्रबल परिचायक है।

धनपाल को पुनर्जन्म मे पूरा-पूरा विश्वास था। उनकी धारणा थी कि जीव को अपने अच्छे-बुरे कर्मो के अनुसार ही अच्छी-बुरी योनि मे जन्म मिलता है। उनकी यह भी धारणा थी कि यदि मनुष्य चाहे तो लोकोपयोगी शुभ-कार्य करके अपने भावी जीवन को उदात्त बना सकता है। ज्वलनप्रभ एव प्रियगुसुन्दरी की जीवनगाथा इस तथ्य का ज्वलन्त उदाहरण है। वह दाम्पत्य-प्रेम को शाश्वत मानते थे। समय एव शरीर की प्रतिकूलताओ मे भी वह उसकी अजरता और अमरता को स्वीकार करते थे। धनपाल की दृष्टि मे सखा प्रेम का भी स्थान उच्च था।

असमीक्ष्यकारिता किंवा अदूरदर्शिता को भी धनपाल अच्छा नही समझते थे। उनकी दृष्टि से मनमानी करने वाला व्यक्ति सकटो मे फँस सकता है।[७०] धनपाल जैन-मन्दिरो का बहुत सम्मान करते थे। उनका ख्याल था कि इन मन्दिरो की परिसरभूमि मे किसी को किसी सवारी पर बैठकर नही चलना चाहिए। यहाँ तक कि इनके ऊपर से वायुविमान भी नही निकालना चाहिए। इसी अपराध से तो यक्ष ने गन्धर्वक के विमान की गति रोकी थी।[७१]

राजाओ के सम्पर्क मे रहते-रहते धनपाल की यह भी धारणा बन चुकी थी कि राज-सेवा सर्वाधिक क्लेशदायिनी होती है। क्योकि राजसेवक को जरा-सी भूल पर बडे से बडा दण्ड मिल सकता है।[७२]

इस प्रकार कुल मिलाकर हम सक्षेप मे कह सकते है कि धनपाल के विचारो मे सत्य, अहिंसा और दया की प्रमुखता थी, कर्मफल के अनुसार विधि के विधान की स्वीकृति थी, ससार की परख थी, परिस्थितियो की परिवर्तनशीलता की अनुभूति थी; प्रेम की अमरता थी, विमृश्यकारिता थी, व्यवहारकुशलता थी, निर्भीकता थी और साथ ही साथ दीन-वत्सलता भी थी।

सन्दर्भ

१ शान्तिनिकेतन, बगाल से प्रकाशित श्री जिनविजय द्वारा सम्पादित 'प्रबन्धचिन्तामणि' मे 'साकाश्य' शब्द का प्रयोग गोत्रपरक मिलता है (देखिए उक्तग्रन्थ, पृ० स० ३६)। इसके अनुवादक डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी ऐसा ही माना है (देखिए : उक्तग्रन्थ, पृ० स० ४५)। किन्तु प्रभाचन्द्रसूरि कृत 'प्रभावकचरित' मे—

"सांकाश्यस्थानसंकाशा वय वर्णेषु वर्णिता । चतुर्वेदविद साङ्गपारायणभृत सदा ॥" लिखा मिलता है (देखिए · उक्तग्रन्थ, महेन्द्रसूरिप्रबन्ध, श्लोक स० ४३)। इससे स्पष्ट है कि उन्होने इस शब्द का प्रयोग स्थानपरक किया है। धनपाल ने अपने पितामह को 'साकाश्यनिवेशजन्मा' कहा है (देखिए . तिलकमंजरी कथा, प्रस्तावना श्लोक सं० ५१)। इस शब्द मे प्रयुक्त हुआ 'निवेश' शब्द निश्चय ही स्थान शब्द का पर्यायवाचक है, और जो अपने पूर्ववर्त्ती साकाश्य शब्द को अपने नाम के रूप मे साथ लिए हुए है। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि बम्बई से प्रकाशित (शास्त्री रामचन्द्र दीनानाथ द्वारा सम्पादित) 'प्रबन्धचिन्तामणि' मे भी धनपाल के पिता को काश्यप-गोत्रोत्पन्न बताया गया है, न कि सांकाश्यगोत्रोत्पन्न (देखिए उक्तग्रन्थ का धनपाल प्रबन्ध)। निर्णयसागर, बम्बई से प्रकाशित तिलकमजरी के सपादक पण्डित भवदत्त शास्त्री भी धनपाल के पिता सर्वदेव का गोत्र काश्यप ही मानते है (देखिए : उक्तग्रथ की संस्कृत भूमिका, पृ० स० २)।

२. आसीद् द्विजन्माखिलमध्यदेशप्रकाशसाकाश्यनिवेशजन्मा ।
अलब्ध देवर्पिरिति प्रसिद्धि यो दानवर्पित्वविभूषितोऽपि ॥
शास्त्रेष्वधीती कुशलः क्रियासु बन्धे च बोधे च गिरा प्रकृष्ट ।
तस्यात्मजन्मा समभून्महात्मा देवः स्वयम्भूरिव सर्वदेव ॥
तज्जन्मा जनकाङ्घ्रिपकजरज सेवाप्तविद्यालवो,
विप्रः श्रीधनपाल इत्यविशदामेतामबध्नात्कथाम् ।
अक्षुण्णोऽपि विविक्तसूक्तिरचने यः सर्वविद्याब्धिना,
श्री मुजेन सरस्वतीति सदसि क्षोणीभृता व्याहृत. ॥
······तिलकमंजरी कथा, प्रस्तावना श्लोक स० ५१-५३

३. (क) अब्जायताक्ष समजायतास्य श्लाघ्यस्तनूजो गुणलब्धपूज ।
य· शोभनत्व शुभवर्णभाजा न नाम नाम्ना वपुषाऽप्यधत्त ॥
कातन्त्रचन्द्रोदिततन्त्रवेदी यो बुद्धबौद्धार्हततत्त्ववेत्ता ।
साहित्यविद्यार्णवपारदर्शी निदर्शन काव्यकृता बभूव ॥
कौमार एव क्षतमारवीर्यश्चेष्टा चिकीर्षन्निव रिष्टनेमे ।
यः सर्वसावद्यनिवृत्तिगुर्वीं सत्यप्रतिज्ञो विदधे प्रतिज्ञाम् ॥
अभ्यस्यता धर्ममकारि येन जीवाभिघात कलयापि नैव ।
चित्र चतु सागरचक्रकाचिस्तथापि भूर्व्यापि गुणस्वनेन ॥
एता यथामति विमृश्य निजानुजस्य तस्योज्ज्वलां कृतिमलकृतवान् स्ववृत्त्या ।
अभ्यर्थितो विदधता त्रिदिवप्रयाण तेनैव साम्प्रतकविर्धनपालनामा ॥
······आगमोदयसमिति, बम्बई से स० ४७ पर प्रकाशित 'शोभनस्तुति' पर धनपाल की टीका का मगलाचरण, श्लोक स० ३-७

(ख) "तस्यैव ज्येष्ठभ्रातुर्धनपालस्य ।"
······उपर्यूक्त टीका की पुष्पिका का अश ।

४. "धारानगर्याः परिष्ठितेन मार्गे स्थितायाः अनवद्ये ।
कार्ये कनिष्ठभगिन्या सुन्दरीतिनामधेयाया. ।।
कवयोऽन्धजनकृपाकुशल इति पदानामन्तिमा वर्णाः ।
नाम्नि यस्य क्रमशस्तेनैषा विरचिता देशी ।।"
...'पाइअलच्छीनाममाला' (बी० वी० एण्ड कम्पनी, भावनगर प्रकाशन) पृ० ४५
५. गुजराती भाषा मे, परमार्हतमहाकवि श्री धनपाल, (जैन सस्ता-साहित्य, अहमदाबाद प्रकाशन) पृ० स० ७
६. तिलकमजरी, सस्कृत भूमिका (विजयलावण्यसूरीश्वर ज्ञानमन्दिर, वोटाद, गुजरात प्रकाशन) पृ० १६
७ वही, गुजराती भूमिका (वही) पृ० २६
८ श्री मेरुतुगाचार्य, प्रबन्धचिन्तामणि, (शान्तिनिकेतन प्रकाशन) पृ० ४१
९. गुजराती भाषा मे, परमार्हतमहाकवि श्री धनपाल, पृ० ६४-६८
१०. देखिए (क) 'पाइअलच्छीनाममाला' की भूमिका (भावनगर प्रकाशन, १९१६ ई०)
(ख) 'राजा भोज' पृ० २१७-२१८, लेखक—श्री विश्वेश्वरनाथ रेउ ।
११. देखिए (क) 'तिलकमजरी कथा साराश', लेखक–प० प्रभुदास वेचरदास पारिख ।
(ख) 'परमार्हतमहाकविश्रीधनपाल', लेखक—मुनिराज श्री सुशीलविजय ।
१२. पाइअलच्छीनाममाला (भावनगर प्रकाशन) पृ० ४५
१३ राजा भोज, पृ० ८१-८२ तथा २२३, लेखक—श्री विश्वेश्वरनाथ रेउ ।
१४. परमार्हतमहाकविश्रीधनपाल, पृ० ८३-८५, लेखक—मुनिराजश्रीसुशीलविजय ।
१५. प्रबन्धचिन्तामणि (शान्तिनिकेतन प्रकाशन) पृ० ४१, लेखक—मेरुतुगाचार्य ।
१६ "विक्रमकालस्य गते एकोनत्रिंशदुत्तरे सहस्रे ।
मालवनरेन्द्रधाट्या लुण्ठिते मन्नखेडे ।।
× × ×
कवयोऽन्ध-जन-कृपा-कुशल इति पदानामन्तिमा वर्णा ।
नाम्नि यस्य क्रमशस्तेनैषा विरचिता देशी ।।
......पाइअलच्छीनाममाला, (भावनगर प्रकाशन) पृ० ४५
१७ देखिए (क) जैनसाहित्य और इतिहास, पृ० ३२७-३२८, लेखक–श्रीनाथूरामप्रेमी ।
(ख) राजा भोज, पृ० १९, लेखक—श्रीविश्वेश्वरनाथ रेउ ।
१८. तज्जन्मा जनकाङ्घ्रिपकजरज सेवाप्तविद्यालवो,
विप्र श्रीधनपाल इत्यविशदामेतामबध्नात्कथाम् ।
अक्षुण्णोऽपि विविक्तसूक्तिरचने य सर्वविद्याब्धिना,
श्रीमुजेन सरस्वतीति सदसि क्षोणीभृता व्याहृत ।।
......तिलकमजरी (नि० सा० प्र० १९३८), प्रस्तावना भाग, श्लोक स० ५३
१९ तिलकमजरी, प्रस्तावना श्लोक स० ४३
२० राजा भोज, पृ० १९ तथा मालवे के परमारवशीय राजाओ से सम्बन्धित नक्शे, लेखक—श्री विश्वेश्वरनाथ रेउ ।

२१. देखिए · (क) 'इण्डियन एण्टिक्वेरी', भाग-६, पृ० ५१-५२
(ख) वही, भाग-१४, पृ० १६०

२२. समारूढे पूतत्रिदशवसतिं विक्रमनृपे
सहस्रे वर्षाणां प्रभवति हि पचाशदधिके।
समाप्त पचम्यामवति धरणिं मुजनृपतौ
सिते पक्षे पौपे वुधहितमिद शास्त्रमनघम्॥
······अमितगति, मुभाषितरत्नमन्दोह, श्लोक स० ६२२

२३ तिलकमजरी, प्रस्तावना श्लोक स० ५०

२४ राजा भोज, पृ० ६५ और ६८, लेखक—श्रीविश्वेश्वरनाथ रेउ।

२५. देखिए (क) प्राचीन भारतीय लेखो का अध्ययन, द्वितीय खण्ड, पृ० १७६-१८१, लेखक—श्री वासुदेव उपाध्याय।
(ख) राजा भोज पृ० १०८-१२३, लेखक—श्रीविश्वेश्वरनाथ रेउ।

२६ एपिग्राफिया इण्डिका, भाग-१, पृ० २३३, टिप्पणी स० ५१

२७. देखिए : (क) वही, भाग-३ पृ० ४८-५०
(ख) प्राचीन भारतीय लेखो का अध्ययन, द्वितीय खण्ड, पृ० १८१-१८२, लेखक—श्रीवासुदेव उपाध्याय।

२८. जैन साहित्य और इतिहास, पृ० ४६८, लेखक—श्रीनाथूराम प्रेमी।

२९. प्रवन्धचिन्तामणि, पृ० ३६ (शान्तिनिकेतन प्रकाशन) लेखक—मेरुतुंगाचार्य।

३०. "प्राहेति विरुद तेऽस्तु 'श्रीकूर्चालसरस्वती'॥"
······प्रभावकचरित, महेन्द्रसूरि प्रवन्ध, श्लोक स० २७१

३१. तिलकमंजरी, प्रस्तावना भाग, श्लोक स० ५३

३२. प्रवन्धचिन्तामणि, धनपाल प्रवन्ध, पृ० ३६ से ४२

३३. "नि शेपवाङ्मयविदोऽपि जिनागमोक्ता
श्रोतुं कथा समुपजातकुतूहलस्य।
तस्यावदातचरितस्य विनोदहेतो,
राज्ञ· स्फुटाद्भुतरसा रचिता कथेयम्॥"
—तिलकमंजरी, प्रस्तावना, श्लोक स० ५०

३४. देखिए · (क) प्रबन्धचिन्तामणि का 'धनपालपण्डितप्रवन्ध', पृ० ३७-३८
(ख) राजा भोज पृ० १६३-२६५

३५. देखिए (क) मेरुतुगाचार्य कृत 'प्रवन्धचिन्तामणि', 'धनपाल प्रवन्ध', पृ० ४१
(ख) श्रीप्रभाचन्द्रमूरिकृत 'प्रभावकचरित', का 'महेन्द्रसूरि प्रवन्ध'।
(ग) श्री मुशीलविजयमुनिकृत, 'परमार्हत महाकविधनपाल' (गुजराती भापा मे) पृ० ६४-६८

३६. सुशीलविजयकृत 'परमार्हत महाकविधनपाल' (गुजराती भापा मे पृ० ८३-८४

३७. वल्लालविरचित 'भोजप्रवन्ध' (कलकत्ता प्रकाशन १९२३), भोजजालन्धरीयकवि-सवाद, पृ० २३५-२३६

३८. नि शेषवाङ्मयविदोऽपि जिनागमोक्ता'
श्रोतु कथा समुपजातकुतूहलस्य ।
तस्यावदातचरितस्य विनोदहेतो
राज्ञ स्फुटाद्भुतरसा रचिता कथेयम् ॥
—तिलकमजरी, प्रस्तावना श्लोक स० ५०

३९ मेरुतुगाचार्यकृत 'प्रबन्धचिन्तामणि' (शान्तिनिकेतन प्रकाशन, १९३३) पृ० ४१

४०. प्रायोग्रहणात् सस्कृतेऽपि । यथा—
शुष्कशिखरिणि कल्पशाखीव, निधिरधनग्राम इव, कमलखण्ड इव मारवेऽध्वनि ।
भवभीष्मारण्य इह, वीक्षितोऽसि मुनिनाथ ! कथमपि ॥
—हेमचन्द्रसूरिकृत 'छन्दोऽनुशासन', अध्याय ५, सूत्र १७ का उदाहरण ।

४१. इसी शोधग्रन्थ का प्रथम परिशिष्ट देखिए ।

४२. वही

४३ श्री नाथूरामप्रेमी जैनसाहित्य और इतिहास, पृ० ४०८-४११

४४. डॉ० राजवशसहाय हीरा, अपभ्रश साहित्य परम्परा और प्रवृत्तियां, पृ० २६

४५. धक्कडवणिवसि माएसरहो समुब्भविण ।
धणसिरि होवि सुवेण विरहउ सरसइ सभविण ॥ —भविसयत्तकहा, १/९

४६. सरसइबहुलद्धमहावरेण······। —भविसयत्तकहा, १/४

४७. श्री सुशीलविजय की अवधारणा के अनुसार यह घटना धारा नगरी की है ।
—'परमार्हत महाकविधनपाल', पृ० १३

४८. श्रीमेरुतुङ्गाचार्य ने इनका नाम श्री वर्धमानसूरि बताया है (देखिए . 'प्रबन्धचिन्तामणि' का धनपालप्रबन्ध), किन्तु प्रभाचन्द्रसूरि ने महेन्द्रसूरि ही बताया है (देखिए : 'प्रभावकचरित' का महेन्द्रसूरिप्रबन्ध)। प० प्रभुदासबेचरदास भी महेन्द्रसूरि ही मानते है (देखिए उनका 'तिलकमञ्जरी कथासाराश')। मै भी समझता हूँ कि धनपाल के दीक्षागुरु का नाम महेन्द्रसूरि ही हो सकता है, वर्धमानसूरि नही। क्योकि तिलकमञ्जरी की प्रस्तावना मे धनपाल ने महेन्द्रसूरि के नाम पर तो श्रद्धासुमन चढाये हैं (देखिए उनकी तिलकमञ्जरीकथा, प्रस्तावना श्लोक स० ३४), पर वर्धमानसूरि का कही नाम तक नही लिया है।

४९ चत्वारिंशत् सुवर्णस्य टङ्कलक्षा विनिर्ययु ।
—प्रभावकचरित का महेन्द्रसूरिप्रबन्ध ।

५० श्री सुशीलविजय की धारणा है कि सर्वदेव ने महेन्द्रसूरि को दिये हुए वचन की चर्चा अपनी मृत्यु के समय अपने पुत्रो से की थी, और चाहा था कि उन दोनो मे से कोई एक महेन्द्रसूरि का शिष्य बन कर उन्हे (सर्वदेव को) वचनमुक्त करे। इस पर धनपाल तो बिगड गया था, पर शोभन ने अपने पिता को वचन दिया था कि वह अवश्य ही उनकी इच्छा को पूरी करेगा। तदुपरान्त सर्वदेव का शरीरान्त हो गया था। —देखिए सुशीलविजयकृत 'परमार्हतमहाकविश्रीधनपाल', पृ० १९-२३

५१ इस सन्दर्भ मे कुछ विद्वान् लेखको का लिखना है कि शोभनमुनि ने धनपाल के दो

दिन के पर्युषित (बासे) दही मे कीडो का पड जाना प्रत्यक्ष सिद्ध करके दिखाया था; और उनकी यह बात भी कसौटी पर सत्य निकली थी कि विषमिश्रित अन्न को देख कर तोता चिल्लाने लगता है और चकोर की आंखो का रग बदलने लगता है।

—देखिए—(क) मेरुतुङ्गाचार्यकृत 'प्रबन्धचिन्तामणि' का 'धनपालप्रबन्ध'।

(ख) प्रभाचन्द्रसूरिकृत 'प्रभावकचरित' का 'महेन्द्रसूरि प्रबन्ध'।

(ग) सुशीलविजयकृत 'परमार्हतमहाकविश्रीधनपाल'।

५२. तिलकमञ्जरीकथा, प्रस्तावनाभाग, श्लोक ५०

५३. देखिए—(क) धनपालकृत 'ऋषभपञ्चाशिका'।

(ख) धनपालकृत 'तिलकमञ्जरीकथा', प्रस्तावनाभाग, श्लोक १-४

५४ तिलकमञ्जरीकथा, प्रस्तावनाभाग, श्लोक २

५५. धनपालकृत 'श्रीवीरस्तुति', 'वीरस्तुति' तथा 'सत्यपुरीयश्रीमहावीरउत्साह'।

५६. देखिए:—(क) बेचरदासदोशीकृत 'जैनसाहित्य का बृहद् इतिहास' (बी० एच० यू० प्रकाशन, १९६६) भाग-१, पृ० १८२-१८३

(ख) कैलाशचन्द्रशास्त्रिकृत 'जैनधर्म' (जैनसघ मथुरा प्रकाशन), पृ० ३२५

५७. डॉ० जगदीशचन्द्र जैन तथा डॉ० मोहनलालमेहताकृत 'जैनसाहित्य का बृहद् इतिहास' (बी० एच० यू० प्रकाशन, १९६६) भाग-२, पृ० ११३-१२६

५८. डॉ० प्रेमसागरजैनकृत 'जैनभक्तिकाव्य की पृष्ठभूमि', पृ० १३२ तथा भूमिका भाग पृ० १३

५९. वही, पृ० ११४

६०. वही, पृ० ११८

६१. आचार्यदामनन्दिकृत 'पुराणसारसग्रह', पृ० ९२, ज्ञानपीठकाशी, प्रकाशन।

६२. वही, पृ० ९४

६३ वही, पृ० १-३२

६४. तिलकमञ्जरी, प्रस्तावना श्लोक ५०

६५. श्रीमेरुतुङ्गाचार्यकृत 'प्रबन्धचिन्तामणि', धनपालप्रबन्ध, पृ० ३७-३८

६६. किं ताए पढियाए पयकोडीए पलालभूयाये।
जत्थित्ति अं न नाय परस्य पीडा न कायव्वा॥ —प्रबन्धचिन्तामणि, पृ० ३७

६७. तिलकमञ्जरी, पृ० ११२, ३४५-३२६

६८. वही, पृ० २४४, ३४५-३४६

६९. वही, पृ० ४०६

७०. वही, पृ० १४८

७१. वही, पृ० ३८१-३८२

७२. वही, पृ० ११२-११३

द्वितीय सोपान

काव्य के दायरे और धनपाल के स्वर

काव्य के शास्त्रीय मानदण्ड

'नवनवोन्मेषशालिनी' प्रतिभा-वल्लरी की उन्मुक्त गोद मे विकसित होने वाले 'काव्य-कुसुम' की सर्वांगीण रूपरेखा को लक्षण के एक सूक्ष्म सूत्र मे बाँधना, कोई आसान काम नही है। हम देखते है कि शुरू से लेकर आज तक 'काव्य' की न जाने कितनी परिभाषाएँ बनी; न जाने कितने आचार्यो ने उसे लक्षण के दायरे मे बाँधना चाहा, न जाने कितने कला-पारखियो ने इसे परखने के लिए अपने-अपने मानदण्ड स्थापित किए, पर यह पूरी तौर से किसी की भी पकड मे नही आया, यह नितनूतन जो ठहरा। विविधता भी इसमे कमाल दर्जे की रही है, तभी तो जिसने जिस रूप मे इसे देखना चाहा उसे यह उसी रूप मे दिखाई दिया। इस मायने मे तो हम इसे 'उल्लेखालकार' का शाश्वत उदाहरण भी मान सकते है।

काव्यशास्त्र का इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि 'काव्य' की अनेक परिभाषाएँ बनी है, और आज भी बनती जा रही है। उनकी यह अनेकता ही इस बात का प्रमाण है कि उनमे से प्रत्येक मे कुछ न कुछ कमी अवश्य ही रह जाया करती होगी, क्योकि तभी तो दूसरी परिभाषाओ को जन्म मिलता रहा होगा। यह सर्वसम्मत तथ्य है कि मूर्त्त पदार्थो की अपेक्षा अमूर्त्त पदार्थो की परिभाषा करना कुछ ज्यादा कठिन होता है क्योकि वे (अमूर्त्त पदार्थ) केवल भावात्मक एव रागात्मक सवेदनाओ की ही उपज होते हैं। अत. सवेदनाओ की विविधता से उनमे भी विविधता की सम्भावना स्वाभाविक रूप से रहा करती है। प्रस्तुत सन्दर्भ से सम्बन्धित 'काव्य' भी एक ऐसा ही अमूर्त्त पदार्थ है। मुझे तो लगता है कि हवा के झोको से उठाई गई सरोवर की लहरो मे तैरते हुए फूल के समान ही यह काव्य-कुसुम भी समीक्षको की सवेदना-लहरियो मे आज भी तैर रहा है, और मजे की बात तो यह है कि कोई भी लहर इसे पकडने मे समर्थ नही हो पा रही है। इसका प्रमुख कारण मानव-समाज की बदलती हुई परिस्थितियाँ और बढते हुए सम्पर्क है। मानव के व्यावहारिक क्षेत्र मे परिवर्तन आते ही काव्य के क्षेत्र मे भी परिवर्तन का आना स्वाभाविक ही होता है। नही तो फिर साहित्य समाज का दर्पण ही कैसा? पर इतना निश्चित है कि काव्य मे एक सार्वभौम और शाश्वत सत्य छिपा रहता है, जो किसी भी युग की कविता मे देखा जा सकता है, जिस पर न कोई देश हावी हो सकता है, न कोई

काल, और न कोई व्यक्ति ही। महादेवी वर्मा ने इस सन्दर्भ मे साफ जाहिर कर दिया है कि—

"कविता मनुष्य के हृदय के समान ही पुरातन है, परन्तु अब तक उसकी कोई ऐसी परिभाषा न बन सकी जिसमे तर्क-वितर्क की सम्भावना न रही हो। धुँधले अतीत भूत से लेकर वर्तमान तक, 'वाक्य रसात्मक काव्यम्' से लेकर आज के शुष्क बुद्धिवाद तक जो कुछ काव्य के रूप और उपयोगिता के सम्बन्ध मे कहा जा चुका है वह परिभाषा मे कम नही, परन्तु अब तक न मनुष्य के हृदय का पूर्ण परितोष हो सका है और न उसकी बुद्धि का समाधान। यह स्वाभाविक भी है, क्योकि प्रत्येक युग अपनी समस्याएँ लेकर आता है, जिनके समाधान के लिए नई दिशाएँ खोजती हुई मनोवृत्तियाँ उस युग के 'काव्य' और 'कलाओ' को एक विशिष्ट रूपरेखा देती रहती है। मूल-तत्त्व न जीवन के कभी बदले है, और न काव्य के, कारण वे उस शाश्वत चेतना से सम्बद्ध है जिसके तत्त्वतः एक रहने पर ही जीवन की अनेक-रूपता निर्भर है।" (देखिए—महादेवी का विवेचनात्मक गद्य, पृ० ४६)

चूंकि 'काव्य' का यह चिरन्तन सत्य पुराने से पुराने और नये से नये आलोचको द्वारा निर्धारित की गई सभी काव्य-परिभाषाओ मे समाया हुआ है, इसलिए मेरे लिए अब यह आवश्यक हो जाता है कि मैं काव्य के स्वरूप को समझने के लिए सस्कृत के पुरातन आचार्य भरतमुनि से लेकर आजतक के कुछ प्रमुख-प्रमुख काव्यसमीक्षको के, इस सम्बन्ध मे, विचार प्रस्तुत करूँ। साथ ही साथ भिन्न-भिन्न काल मे उत्पन्न होने वाले प्रमुख भारतीय और पश्चिमी समालोचको द्वारा स्थापित किए गए काव्य के शास्त्रीय मानदण्डो (लक्षणो) की जिज्ञासा रखने वाले सुधी पाठको को सुविधा पहुँचाने की दृष्टि से मैं यह भी उचित समझता हूँ कि पहले तो यहाँ भिन्न-भिन्न काव्य-लक्षणो की एक सूची प्रस्तुत कर दी जाए और तदनन्तर उनकी समीक्षा की जाए। अच्छा, तो लीजिए वह सूची इस प्रकार है—

·स्कृत समी क

(क) भरतमुनि की दृष्टि मे

मृदुर्ललितपदाढ्य गूढशब्दार्थहीन
जनपदसुखबोध्य युक्तिमन्नृत्ययोज्यम्।
बहुकृतरसमार्ग सन्धि-सन्धानयुक्त
भवति जगति योग्य नाटक प्रेक्षकाणाम्॥[1]

(लोक मे नाटक रोचक हुआ करता है। इसकी रचना कोमल और ललित पदो से की जाती है, इसमे शब्दो का अर्थ दुरूह नही होता है, यह लोगो को आसानी से समझ मे आ जाता है, इसमे समुचित नृत्य की सयोजना होती है, रसो का प्रवाह होता है, और कथावस्तु की सन्धियो का सयोग रहा करता है।)

(ख) भामह की दृष्टि मे।

शब्दार्थौ सहितौ काव्यम् ....।[2]

(अर्थात् शब्द और अर्थ मिलकर ही काव्य होता है।)

(ग) दण्डी की दृष्टि मे

शरीर तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली।[3]

(अभीप्सित किवा मनोरम अर्थ से विभूषित शब्दावली ही काव्य का शरीर है।)

(घ) वामन के मत में

काव्य ग्राह्यमलङ्कारात्।······काव्यशब्दोऽय गुणालङ्कारसस्कृतयो शब्दार्थयोर्वर्तते। भक्त्या तु शब्दार्थमात्रवचनोऽत्र गृह्यते।[4]

(काव्य, अलकार (के योग) से उपादेय होता है। · यहाँ यह काव्य शब्द, गुण तथा अलकार से सम्पृक्त शब्द तथा अर्थ के लिए प्रयुक्त किया गया है। हाँ, लक्षणा से यह केवल शब्द और अर्थ का भी बोधक है।)

(ङ) अग्निपुराणकार की दृष्टि मे

काव्य स्फुरदलङ्कार गुणवद् दोषवर्जितम्।[5]

(जहाँ अलकार स्पष्ट दिखाई दे, और जो गुणो से युक्त तथा दोपो से रहित हो, ऐसे वाक्य को काव्य कहते है।)

(च) कुन्तक की दृष्टि मे

शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविव्यापारशालिनि।
बन्धे व्यवस्थितौ काव्य तद्विदाह्लादकारिणि॥[6]

(भाव यह है कि सहृदयो को आह्लादित करने वाले, एव मन को आकर्षित करने वाले कवि व्यापार से युक्त वाक्य-विन्यास मे सुन्दर ढंग से व्यवस्थित एव साहित्यमय (अनुकूल) शब्द और अर्थ को काव्य कहा जाता है।)

(छ) भोज की दृष्टि मे

निर्दोष गुणवत्काव्यमलङ्कारैरलङ्कृतम्।
रसान्वित कवि कुर्वन् कीर्तिं प्रीतिं च विन्दति॥[7]

(दोषो से रहित और गुणो से भरपूर, तथा अलकारो से युक्त एव रस से सराबोर काव्य का निर्माण करके कवि ससार मे कीर्त्ति और प्रसन्नता को प्राप्त करता है।)

(ज) मम्मट के मत मे

तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुन क्वापि।[8]

(दोपो से रहित तथा गुणो से युक्त और कही-कही अलकारो के अभाव से भी युक्त शब्द और अर्थ काव्य कहलाते है।)

(झ) हेमचन्द्र की दृष्टि मे

अदोषौ सगुणौ सालङ्कारौ च शब्दार्थौ काव्यम्।[9]

(दोपो से रहित तथा गुण-अलकारो से युक्त, शब्द और अर्थ को काव्य कहते हैं।)

(ञ) विद्यानाथ की दृष्टि में

गुणालङ्कारसहितौ शब्दार्थौ दोषवर्जितौ काव्यम् ।[10]

(अर्थ स्पष्ट है ।)

(ट) जयदेव की दृष्टि मे

निर्दोषा लक्षणवती सरीतिर्गुणभूषिता ।
सालङ्काररसानेकवृत्तिर्वाक्काव्यनामभाक् ॥[11]

(दोषो से रहित, अक्षर सहति आदि लक्षणो से युक्त, रीतियो और गुणो से विभूषित, अलकारो मे अलङ्कृत, तथा रसमयी वृत्तियो से युक्त वाक्य को काव्य कहा जाता है ।)

(ठ) विश्वनाथ के मत में

वाक्य रसात्मक काव्यम् ।[12]

(रसात्मक वाक्य को काव्य कहते है ।)

(ड) पण्डितराज जगन्नाथ की दृष्टि मे

रमणीयार्थप्रतिपादक शब्दः काव्यम् ।[13]

(जो शब्द मन मे लोकोत्तर आह्लाद को उत्पन्न करने वाले (रमणीय) अर्थ का प्रतिपादक होता है, वह काव्य कहलाता है ।)

पाश्चात्य समीक्षक

(ढ) अरस्तू की दृष्टि में

"Epic, Poetry, tragedy, comedy.. ...are all in their conception modes of imitation by means of longuage alone, and that either in prose and verse........."[14]

(महाकाव्य, काव्य, त्रासदी, कामदी आदि······ये सभी, अपने आप मे अनुकरण के विचारात्मक तरीके ही है। · ··केवल भाषा के माध्यम से अनुकूल की जाने वाली एक और कला है, जो गद्य और पद्य के रूप मे पाई जाती है ।)

(ण) सर् पी० सिडनी की दृष्टि मे

"Poetry is an art of imitation."[15]

(काव्य-रचना (तो) अनुकरण की एक कला है ।)

(त) वर्ड्सवर्थ के विचार से

'Poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings, it takes its origin from emotions recollected in tranquillity "[16]

(काव्य प्रबल अनुभूतियो का स्वाभाविक उच्छलन है, जो शान्ति के क्षणो मे स्मृति का विषय बने हुए मनःसवेगो से फूट निकलता है ।)

(थ) पी० बी० शैले के शब्दो में

(1) ' Poetry is the record of the best and happiest moments of the happeist and best minds."

(ii) "Poetry in a general sense, may by defined as the expression of the imagination."[१७]

(i) (निहायत प्रसन्न एव निहायत ही अच्छे मस्तिष्को के निहायत अच्छे और निहायत प्रसन्न क्षणो के लेखा-जोखा को 'कविता' कहते है।)

(ii) (सामान्य तौर पर कविता की यह परिभाषा की जा सकती है कि वह कल्पना की अभिव्यक्ति है।)

(द) डॉ० जोनसन के शब्दो में

"Poetry is the art of uniting pleasure with truth by calling imagination to the help of reason."[१८]

(युक्तिपूर्ण कल्पना के माध्यम से सचाई के साथ आनन्द की सयोजना को कविता कहते है।)

(ध) चैम्बर्स शब्दकोश के अनुसार

"Poetry is the art of expressing, in melodious words, thoughts which are the creations of imagination and feelings."[१६]

(कल्पना और अनुभूति से उत्पन्न विचारो को मधुर शब्दो मे अभिव्यक्त करने की कला ही कविता है।)

हिन्दी ीक्षक

(न) चिन्तामणि के शब्दो मे

सगुणालकारन सहित दोषरहित जो होय।
शब्द अर्थ ताको कवित कहत विबुध सब कोय॥[२०]

(प) कुलपति के शब्दो मे

जग से अद्भुत सुखसदन शब्दरु अर्थ कवित्त।
यह लक्षण मैंने कियो समुझ ग्रन्थ बहु चित्त॥[२१]

(फ) श्रीपति के शब्दो मे

शब्द अर्थ विन दोप गुन अलकार रसखान।
ताको काव्य बखानिए श्रीपति परम सुजान॥[२२]

(ब) सोमनाथ के स्वरो मे

सगुन पदारथ दोप बिनु पिंगल मत अविरुद्ध।
भूपनजुत कवि कर्म जो सो कवित्त कहि सुद्ध॥[२३]

(भ) महावीरप्रसाद द्विवेदी के शब्दो मे

"कविता प्रभावशाली रचना है, जो पाठक या श्रोता के मन पर आनन्ददायी प्रभाव डालती है।··· ··मनोभाव शब्दो का रूप धारण करते है, वही कविता है चाहे वह पद्यात्मक हो चाहे गद्यात्मक।······अन्त.करण की वृत्तियो के चित्र का नाम कविता है।"[२४]

(म) रामचन्द्रशुक्ल के शब्दो मे

"······जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की यह मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द-विधान करती आई है, उसे कविता कहते है।"[२५]

(य) श्यामसुन्दरदास के शब्दो मे

"······काव्य वह है जो हृदय मे अलौकिक आनन्द या चमत्कार की सृष्टि करे।"[२६]

(र) गुलाबराय के शब्दो मे

"रसप्रधान साहित्य काव्य कहलाता है और ज्ञानप्रधान साहित्य· · ··शास्त्र कहलाता है।"[२७]

(ल) जयशकार प्रसाद के शब्दो मे

"······इसीलिए कवित्व को आत्मा की अनुभूति कहते है।··· ·काव्य आत्मा की सकल्पात्मक अनुभूति है, जिसका सम्बन्ध विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान नही है। वह एक श्रेयमयी प्रेय रचनात्मक ज्ञानधारा है।"[२८]

(व) महादेवी वर्मा के शब्दों मे

"कविता कवि विशेष की भावनाओ का चित्रण है, और यह चित्रण इतना ठीक है कि उससे वैसी ही भावनाएँ किसी दूसरे के हृदय मे आविर्भूत होती है।"[२९]

(श) आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दो मे

"······काव्य तो प्रकृत मानव-अनुभूतियों का, नैसर्गिक कल्पना के सहारे, ऐसा सौन्दर्यमय चित्रण है जो मनुष्यमात्र मे स्वभावत. अनुरूप भावोच्छ्वास और सौन्दर्य-सवेदन उत्पन्न करता है।"[३०]

(ष) डॉ० राकेश के शब्दो मे

"······We may say that poetry is that which interests, and, at the same time, which is not any other definite art or science."[३१]

(·····हम कह सकते है कि कविता वह है जो आनन्दित करे, साथ ही साथ जो कोई दूसरी कला और विज्ञान न हो।)

हालाँकि काव्य-परिभाषाओ की यह सूची अभी और भी काफी लम्बी बन सकती है, लेकिन यह होगी अनावश्यक। क्योकि उपर्युक्त परिभाषाएँ ही 'काव्य' की रूपरेखा प्रस्तुत करने के लिए काफी है। अत. अब मैं इन्हे ही समीक्षा की कसौटी पर कसता हुआ

काव्य के रूप को अपने सुधी पाठको के समक्ष रखने का प्रयास कर रहा हूँ ।

भारतीय संस्कृत-समीक्षको मे नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरतमुनि का नाम सबसे पहले लिया जाता है । यद्यपि इन्होने सामान्य रूप से 'काव्य' के स्वरूप पर कोई प्रकाश नही डाला है, कारण इनकी दृष्टि 'दृश्य काव्य' तक ही सीमित रही है, तथापि नाटक के लिए इन्होने जिस प्रकार के स्वरूप की परिकल्पना की है, वह सामान्य रूप से 'काव्य' की भी रूपरेखा दे जाती है ।[32] उसके अनुशीलन से काव्य का जो रूप उभरता है वह कुछ इस प्रकार है—

(अ) काव्य की शब्दशय्या कोमल एव ललित होनी चाहिए ।

(आ) अर्थ बोध मे दुरूहता और अविश्वसनीयता नही होनी चाहिए ।

(इ) प्रतिपाद्य भावना के अनुकूल संवेदना को उभारने की क्षमता होनी चाहिए ।

(ई) जिसमे नृत्यबद्धता भी हो, और कथावस्तु की सन्धियाँ (उतार-चढाव) भी हो ।

साफ जाहिर है कि भरतमुनि की परिभाषा के, ऊपर गिनाये गए, इन पहलुओ मे से यदि हम अन्तिम पहलू को 'दृश्य काव्य' परक मानकर छोड दे तो बाकी बचे हुए तीन पहलुओ से 'काव्य' मात्र का एक अच्छा-खासा रूप सामने आ जाता है, जिससे पता चलता है कि भरत की दृष्टि काव्य की कोमलता एव सुबोधता की ओर ही अधिक झुकी हुई है, जबकि 'काव्य' मे शौर्य, क्रोध और जुगुप्सा जैसे भावो की भी अभिव्यञ्जना हुआ करती है। अत उनकी इस 'काव्य-परिभाषा' मे अव्याप्ति दोष लगता नजर आता है ।

भरतमुनि के बाद सबकी निगाह भामह पर अटकती है। इन्होने 'शब्द और अर्थ (दोनो) के सहभाव' को काव्य माना है ।[33] उनकी यह काव्य-परिभाषा नितान्त व्यापक है। यह केवल काव्य के लिए ही लागू नही होती, बल्कि व्याकरण, दर्शन, ज्योतिष आदि अन्य शास्त्रो पर भी लागू हो जाती है। अत इसमे अतिव्याप्ति दोष पाया जाता है, और सच बात तो यह है कि 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्' लिखकर भामह ने काव्य की परिभाषा दी भी नही है। क्योकि उनके मूल ग्रन्थ[34] से इस प्रसग का परिशीलन करने से विदित होता है कि उन दिनो काव्य मे शब्दालकार और अर्थालकार की प्रधानता को लेकर आलोचको के दो वर्ग बन गए थे, एक शब्दालकार की प्रधानता का गीत गा रहा था तो दूसरा अर्थालकार को महत्त्व दे रहा था। मेरा विश्वास है कि भामह ने अपनी सवेदना के आधार पर अलकारवादियो के इसी आपसी विवाद को मेटने की दृष्टि से 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्' लिखकर काव्य मे दोनो ही प्रकार के अलकारो की उपादेयता सिद्ध करनी चाही होगी।

हाँ, इतना अवश्य मानना पडेगा कि भामह ने अपने इस 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्' वाक्य द्वारा परवर्त्ती आचार्यो को काव्य की परिभाषा करने के लिए 'शब्द' और 'अर्थ' के सहभाव को विरासत के रूप मे प्रदान किया है। हम देखते भी है कि सस्कृत के अधिकाश आचार्यो की काव्य परिभाषाएँ शब्द और अर्थ के सहभाव पर ही आधारित है।

दण्डी ने काव्य मे 'इष्टार्थ' को प्रधानता दी है। अपने इस इष्टार्थ को उन्होने तो

स्पष्ट नहीं किया है, लेकिन टीकाकारो की धारणा है कि सरस, मनोहर और आह्लादपूर्ण अर्थ की अभिव्यञ्जना करने वाली 'पदावली' को ही दण्डी ने काव्य माना है।[35] वामन ने भामह के 'शब्द' और 'अर्थ' को काव्य के सिंहासन पर आरूढ करने के लिए यह अनुभव किया कि उन्हे गुणो और अलकारो से भी विभूषित किया जाए।[36] उनकी इस धारणा का परवर्त्ती आचार्यो ने काफी स्वागत किया। अग्निपुराणकार ने इसमे थोड़ा परिवर्तन भी किया। उन्होने काव्य को दोषो से वचाये रखने की भी वात कही।[37]

कुन्तक ने भी शब्द और अर्थ के सहभाव को काव्य माना है। लेकिन तभी, जबकि उसमे सुनने वाले के दिल को खुश करने की क्षमता रखने वाला 'वाँकापन' भी हो। इनका सारा जोर वक्रोक्ति पर है, जिसे आज 'भणिति-वैदग्ध्य' या 'कथन-चातुर्य' कहा जाता है। भोज ने अग्निपुराणकार की ही वात दोहरा दी है। मौलिकता के नाम पर उसमे वस एक विशेपण और जोड दिया है—'रसान्वितम्'।

अव आते है आचार्य मम्मट। इन्होने भी वही कहा, जो वामन, अग्निपुराणकार और भोजदेव ने कहा था। लेकिन साथ ही साथ इनकी दृष्टि वामन के 'काव्यशोभाया कर्त्तारो धर्मा गुणा' (३, १, १) तथा 'तदतिशयहेतवस्त्वलकारा' (३, १, २) सूत्रो पर भी गई, और जरा गहराई से गई। फलस्वरूप इन्हे प्रेरणा मिली कि काव्य मे अलकारो का होना कोई जरूरी नही है। इनके अनुभव ने भी इस तथ्य की पुष्टि की। परिणामस्वरूप इन्होने अपनी काव्य-परिभाषा मे 'शब्दार्थौ' का एक विशेपण जोड दिया—'अनलकृती पुन क्वापि'।[38] हालाँकि इनके इस विशेषण ने अलकारवादियो के दिल पर काफी चोट पहुँचाई, लेकिन कविता के क्षेत्र मे हृदयपक्ष को वडी राहत मिली, और धीरे-धीरे उसकी प्रधानता को भी स्वीकृत किया जाने लगा।

हेमचन्द्र और विद्यानाथ की काव्य-परिभाषाओ का आशय बिल्कुल समान ही दिखाई देता है। इन लोगो ने नई वात कुछ भी नही कही है। जयदेव ने कलापक्ष को प्रधानता दी है। अत· उन्होने गुण एव अलकारो के अतिरिक्त रीतियो और वृत्तियो को भी काव्य का आवश्यक अग मान लिया है। इससे काव्य-परिभाषा के साथ ही साथ उनकी वुद्धिवाद की दासता का भी अच्छा-खासा अन्दाज लग जाता है।

विश्वनाथ का विश्वास है कि रसात्मक वाक्य ही काव्य होता है। इनकी भी यह परिभाषा अव्याप्ति दोप की चपेट मे आ जाती है। क्योकि वस्तुध्वन्यात्मक और अलकार-ध्वन्यात्मक काव्य मे यह लागू नही हो पाती। इधर पण्डितराज जगन्नाथ को 'अर्थ' मे काव्यत्व पसन्द नही है। वह उसे 'रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाले' शब्दमात्र मे ही सिद्ध करते है। वह चाहते है कि हृदय मे लोकोत्तर आह्लाद की अनुभूति कराने वाले शब्द को काव्य कहा जाए।

पाश्चात्य समीक्षक अरस्तू और सिडनी 'काव्यकला' की कोई समुचित परिभाषा तो दे न सके, लेकिन उसे 'अनुकृति' वताकर उसके प्रति एक वितृष्णा पैदा करने की असफल कोशिश अवश्य कर गए है। वर्ड्सवर्थ के विचार देखने-सुनने मे तो काफी आकर्पक लगते है, लेकिन उनमे भी अतिव्यापकता का रोग लगा हुआ है। कारण कि वे भी काव्य-सीमा का उल्लघन करने की क्षमता रखते है। उधर शैले की काव्य-परिभाषा

मे अव्याप्ति नजर आती है। क्योकि उन्होने उसकी पहुँच कवि को केवल 'प्रसन्नता' तक ही सीमित कर दी है, जबकि काव्य के वियोगात्मक पक्ष मे दिल को 'रोना' करने की ज्यादा शक्ति होती है।[३६] इस तथ्य को वह स्वय भी स्वीकार करते हैं।[४०] डॉ. डॉ० जानसन ने काव्य के रूप को परखने मे अवश्य ही कुछ सफलता प्राप्त की है। सचाई के साथ आनन्द की सर्जना, और वह भी औचित्यपूर्ण कल्पनाओ के सहारे, सचमुच ही अपने आप मे कविता बन जाती है। परन्तु 'चैम्बर्स-शब्दकोश' की काव्य-परिभाषा जितनी स्पष्ट एव सही है उतनी यहाँ उद्धृत अन्य किसी भी पाश्चात्य काव्यसमीक्षक की नही। यह परिभाषा भारतीय मनोभूमि के काफी करीब है। कुन्तक की 'वक्रोक्ति', विश्वनाथ की 'रसात्मकता' और पण्डितराज की 'रमणीयता' की इस पर लगता है कि जैसे छाया पड गई हो।

हिन्दी समीक्षको की परिभाषाओ मे मौलिकता का प्राय अभाव रहता है। क्योकि इनमे जो प्राचीन है वे तो सस्कृत के काव्याचार्यो से प्रभावित दिखते है; और जो अर्वाचीन है उन पर प्राय पाश्चात्य समीक्षको का रग चढ जाता है। मैने काव्य की परिभाषा करने वाले जिन हिन्दी समीक्षको का उल्लेख किया है उनमे चिन्तामणि पर हेमचन्द्र और विद्यानाथ का, कुलपति पर मम्मट और विश्वनाथ का, श्रीपति पर भोज का, और सोमदेव पर कुछ जयदेव का प्रभाव स्पष्ट ही परिलक्षित हो रहा है। महावीर प्रसाद द्विवेदी, श्यामसुन्दरदास और गुलावराय की दृष्टि मे काव्य आनन्दात्मक है। पर उनकी भी इस धारणा पर विश्वनाथ की छाया झलकती है। रामचन्द्रशुक्ल भी हृदय की रस-लीनता को काव्य की सज्ञा देने के हिमायती है।

जयशकरप्रसाद की काव्य-परिभाषा का आधार आत्मा की सकल्पात्मक अनुभूति है। दूसरे शब्दो मे हम उसे दिल का-तुजर्मा कह सकते हे। पर उनकी इस काव्य-परिभाषा पर 'छायावाद' का पर्दा पडा हुआ है। फलस्वरूप इसे लोकप्रियता नही मिल सकी है। महादेवी वर्मा की काव्य-परिभाषा मे अव्याप्ति दोप है। क्योकि वह गीतकाव्य की परिधि मे घिरी हुई है।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी की काव्य-परिभाषा अपेक्षाकृत व्यापक है। इन्होने काव्य मे मानवीय अनुभूति, कल्पना और सुन्दरता की त्रिवेणी के दर्शन किए है। लेकिन ध्यान रहे कि इन्होने जिस 'सुन्दरता' का नाम लिया है वह 'रसात्मकता' के अतिरिक्त अन्य कुछ नही है। डॉ० राकेश ने भी 'आनन्ददायकता' को ही काव्य का स्वरूपाधायक तत्त्व माना है। पर उनकी काव्य-परिभाषा की शब्दावली को देखने से लगता है कि उन्होने इस बात का ध्यान नही दिया कि उनकी काव्य-परिभाषा अतिव्याप्ति दोप की पकड़ मे बुरी तरह से आ जाएगी। क्योकि वह सगीतकला और चित्रकला पर भी उतनी ही लागू हो जाती है जितनी कि काव्यकला पर।[४१]

उपर्युक्त समीक्षको की काव्य-परिभाषाओ का परिशीलन करने से मस्तिष्क एक अच्छी-खासी उलझन मे फँस जाता है। 'जे मुँह तै बात' की कहावत याद आने लगती है, और सबसे बडे धर्मसकट की बात तो यह उठ खडी होती है कि किस समीक्षक के मत को स्वीकृत किया जाए, क्योकि है तो ये सभी एक से एक धुरन्धर ही।

लेकिन इस सम्बन्ध में मेरी धारणा यह है कि सस्कृत समीक्षको मे से विश्वनाथ और जगन्नाथ की काव्य-परिभाषाओ मे वेदान्तियो की 'भागत्यागलक्षणा' को चरितार्थ किया जाना चाहिए। हमे उन दोनो की ही परिभाषाओ के आपत्तिजनक अशो को त्याग कर उनके उपादेय अशो को कुछ इस प्रकार से सँजो लेना चाहिए कि उनसे एक सर्वांग-सुन्दर 'काव्य-परिभाषा' निखर उठे। हम देख चुके है कि विश्वनाथ की काव्य-परिभाषा मे 'रसात्मक' अश आपत्तिजनक है, और जगन्नाथ की काव्य-परिभाषा मे 'शब्द' अंश। अत हमे चाहिए कि इन दोनो ही अशों को हटा दे। विश्वनाथ की काव्य-परिभाषा के 'वाक्य' अश को, तथा जगन्नाथ की काव्य-परिभाषा के 'रमणीयार्थप्रतिपादक' अश को काव्यत्व की दृष्टि से सर्वथा उपादेय समझकर इन दोनो ही अशो को अपना ले। रहा दोनो का 'काव्यम्' अश, सो विधेय के रूप मे अभीष्ट है ही। इस प्रकार भागत्यागलक्षणा का सहारा लेते हुए दोनो की ही काव्य-परिभाषाओ मे से जो एक सर्वांगसुन्दर काव्य-परिभाषा बनेगी, मैं समझता हूँ कि उसका रूप इस प्रकार होगा—

"रमणीयार्थप्रतिपादक वाक्य काव्यम्।"

(अर्थात् चित्त में लोकोत्तर आह्लादमयी भावना को उच्छलित करने वाले वाक्य-विन्यास को काव्य कहते है।)

मेरा यह भी विश्वास है कि यह परिभाषा प्रत्येक युग मे काव्य के शाश्वत स्वरूप को अपने आप मे सुरक्षित रखेगी। थोडा सा ही प्रयत्न करने पर इसमे आपको भरत का 'मार्दव' एव 'लालित्य', दण्डी का 'इष्टार्थ', वामन का 'सौन्दर्य', कुन्तक का 'भणिति-वैदग्ध्य', मम्मट का 'शब्दार्थयुगल', विश्वनाथ की 'रसात्मकता', जगन्नाथ की 'रमणीयता', अरस्तू की 'अनुकृति', वर्डसवर्थ का 'भावोच्छलन', जॉनसन का 'आनन्द', जयशकर प्रसाद की 'अनुभूति', डॉ० राकेश का 'इण्टरेस्ट' आदि सब कुछ मिल जाएगा। यही कारण है कि मैं यहाँ विश्वनाथ और जगन्नाथ की परिभाषाओ के भागत्यागलक्षणा-त्मक समन्वित स्वरूप की उपेक्षा करके नये सिरे से काव्य की परिभाषा करने की आवश्यकता नही समझता हूँ।

काव्य के भेद

यहाँ 'काव्य भेद' से मेरा तात्पर्य काव्य की विधाओ से है। साहित्यकार अपनी काव्य-रचनाओ को भिन्न-भिन्न विधाओ मे प्रस्तुत किया करते हैं। उनकी उन विधाओ मे से जिस विधा मे जितना ही ज्यादा आकर्षण होता है अन्य समकालीन परवर्ती साहित्यकार उसकी उस विधा को उतना ही अधिक अपनाने लगते है। इस सबका परिणाम यह होता है कि साहित्य-रस की धारा अनेक रूपो मे वह निकलती है, और भिन्न-भिन्न प्रकार की रुचि रखने वाले पाठको के मन को अपने विविध प्रकार के आनन्द-सलिल मे अवगाहन कराया करती है।

भारतीय समीक्षको ने काव्य के भेदो और उपभेदो का विस्तार से निरूपण किया है। मौलिक रूप से इन्द्रियग्राहकता के आधार पर काव्य के सर्वप्रथम दो भेद किए है—दृश्यकाव्य एव श्रव्यकाव्य।[४७] इनमे दृश्यकाव्य के 'रूपक' और 'उपरूपक' के नाम

से फिर दो भेद कर दिए गए हैं, जिनमे रूपक के दस[४३] और उपरूपक के अट्ठारह[४४] भेद स्वीकृत किए गए है।

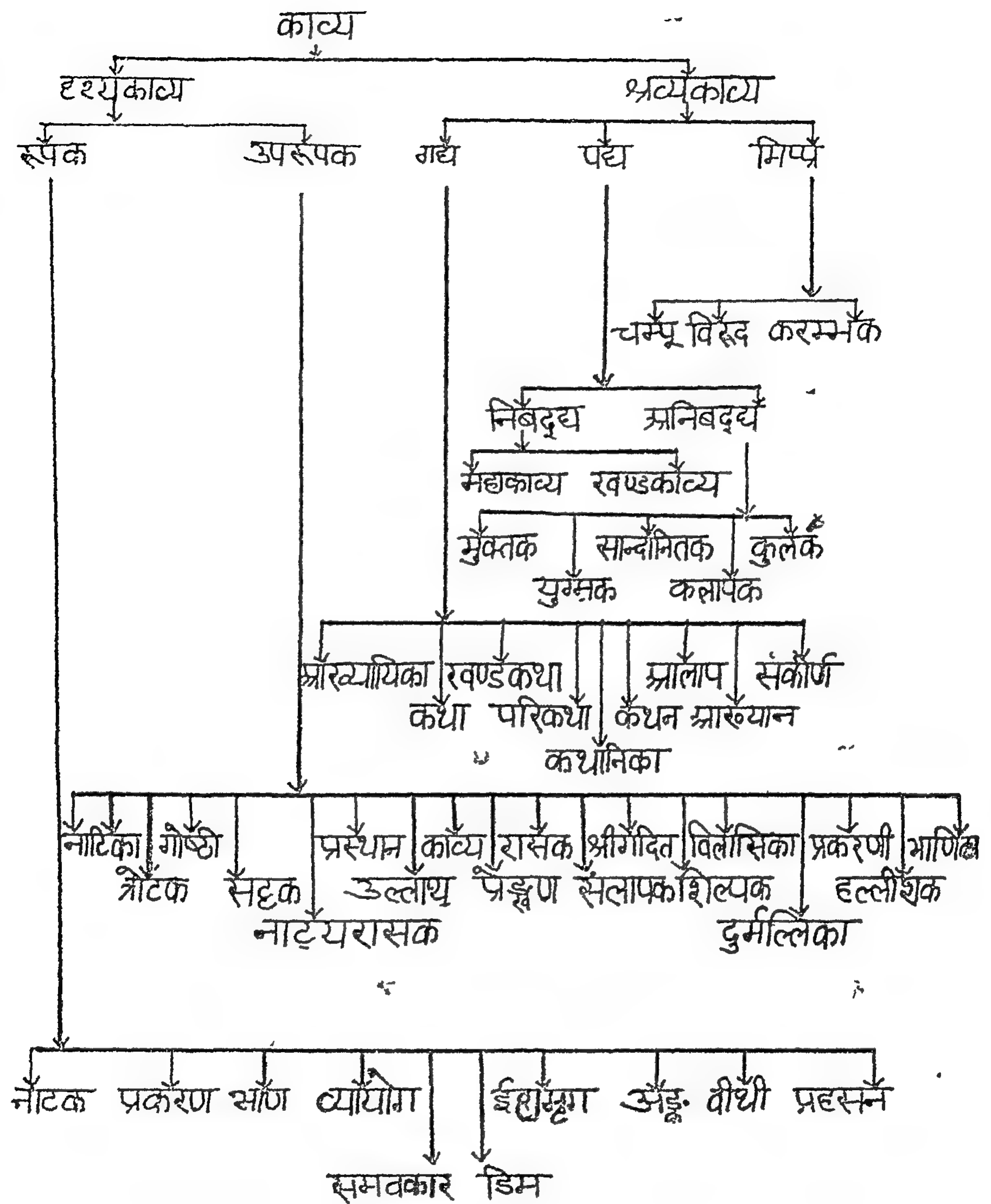
श्रव्यकाव्य को सबसे पहले गद्य, पद्य और मिश्र (चम्पू) के भेद से तीन तरह का मान लिया ज ता है।[४५] पुन इनके भी कई शास्त्रीय उपभेद हुए हैं। इनमे शब्द सङ्घटना के आधार पर गद्य के अग्निपुराणकार[४६] ने तीन (चूर्णक, उत्कलिका और वृत्तसन्धि), और विश्वनाथ ने (इनके 'मुक्तक' को जोडकर) चार भेद माने है।[४७] इसके अतिरिक्त प्रतिपाद्य विषय के आधार पर गद्य के आख्यायिका, कथा, खण्डकथा, परिकथा तथा कथानिका के नाम से, अग्निपुराणकर ने पाँच भेद और भी किए हैं।[४८] लेकिन विश्वनाथ ने इस दृष्टि से 'कथा' और 'आख्यायिका' के नाम से केवल दो ही भेद माने हैं।[४९]

प्रसिद्ध उपन्यासकार प० अम्बिकादत्त व्यास ने अग्निपुराणकार द्वारा निर्धारित पाँच भेदो मे अपनी ओर से कथन, आलाप, आख्यान और सकीर्ण नामक चार भेदो को मिलाकर उनकी सख्या नौ कर दी है। इतना ही नही, वल्कि उन्होने इन नौ भेदो मे से भी कथा, खण्डकथा और कथन के दो-दो, कथानिका और आलाप के तीन-तीन और परिकथा के चार भेद करके इन सवकी सख्या उन्नीस वताई है। व्यासजी ने पुन. इन उन्नीस भेदो के भी अरवो उपभेद कर डाले है, जो अनावश्यक एव अरुचिकर भी हो गए है।[५०]

पद्यकाव्य के सर्वप्रथम दो भेद सामने आते है; पहला अनिवद्ध और दूसरा निवद्ध।[५१] आज की भापा मे इन्ही दोनो को क्रमश 'मुक्तककाव्य' और 'प्रवन्धकाव्य' के वहुचर्चित नामो से जाना जाता है।[५२] लेकिन वस्तुस्थिति कुछ और ही है, और वह यह है कि जिस प्रकार नाटक 'रूपक' के अन्य भेदो के समान उसका एक भेद है, पर्याय नही, उसी प्रकार 'मुक्तक' भी 'अनिवद्ध' काव्य के अन्य भेदो के समान उसका एक भेदमात्र ही है, न कि पर्याय। पर प्रसिद्धिवश यह (मुक्तक) शब्द उस (अनिबद्ध) शब्द का पर्यायवाची जैसा ही वन गया है।

विश्वनाथ ने[५३] इसी प्रकार के 'अनिवद्ध' काव्य के मुक्तक, युग्मक, सान्दानितक, कलापक और कुलक— (ये) पाँच भेद किए है, और 'निवद्ध' काव्य के महाकाव्य एव खण्डकाव्य के नामो से दो भेद किए है। अव रह गया गद्यपद्यात्मक (मिश्रित) काव्य, सो विश्वनाथ ने उसे भी—चम्पू, विरुद और करम्भक नामो से—तीन भेदो मे विभक्त कर दिया है। लेकिन मोटे तौर पर आज के लोग इस गद्यपद्यात्मक विधा को केवल 'चम्पू' के नाम से ही जानते और पुकारते है।

अतिसक्षेप मे काव्य के ये ही उपर्युक्त भेद है। इन्हे सुविधा से एक नजर मे देखने के लिए मैं इन भेदो का एक रेखाचित्र भी नीचे प्रस्तुत किए देता हूँ—


काव्य
दृश्यकाव्य
श्रव्यकाव्य
रूपक
उपरूपक
गद्य
पद्य
मिश्र
चम्पू विरुद करम्भक
निबद्ध
अनिबद्ध
महाकाव्य खण्डकाव्य
मुक्तक
सान्दानितक
कुलक
युग्मक
कलापक
आख्यायिका
खण्डकथा
आलाप
संकीर्ण
कथा
परिकथा
कथन
आख्यान
कथानिका
नाटिका
गोष्ठी
प्रस्थान
काव्य
रासक
श्रीगदित
विलासिका
प्रकरणी
भाणिका
त्रोटक
सट्टक
उल्लाप्य
प्रेङ्खण
संलापक
शिल्पक
हल्लीशक
नाट्यरासक
दुर्मल्लिका
नाटक
प्रकरण
भाण
व्यायोग
ईहामृग
अङ्क
वीथी
प्रहसन
समवकार
डिम

कुछ आचार्यों ने 'ध्वनि' को आधार मानकर भी 'उत्तमोत्तम', 'उत्तम', 'मध्यम' और 'अधम' (अवर) के नामो से काव्य के भेद किए है।[५४] लेकिन इस वर्गीकरण मे काव्य के प्रतिपाद्य विषय पर ध्यान नही दिया गया है। अत काव्य की विधाओ को स्पष्ट करने मे यह वर्गीकरण असमर्थ ही रहता है।

गद्यकाव्य की मौलिक विशेषताएँ

गद्यकाव्य की एकमात्र असाधारण एव आधारभूत विशेषता यह है कि इसमे साहित्यकार की लेखनी 'छन्द' की बेडियो और हथकडियो से सर्वथा मुक्त रहती है। उसे छन्दोविशेष की निर्धारित वर्णसख्या किवा मात्रासख्या की चहारदीवारी मे बन्द नही रहना पडता है। वह अपनी प्रतिभा का खुलकर प्रयोग कर लेती है। हमारे आचार्यो ने भी गद्यकाव्य का लक्षण निर्धारित करते समय उसकी इसी विशेषता को ध्यान मे रखा है। आचार्य दण्डी[५५] और अग्निपुराणकार[५६]—दोनो ही—ने बडे मिलते-जुलते शब्दो मे कहा है कि 'पद' (चरण) रहित पदावली को 'गद्य' कहना चाहिए।' साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ भी छन्दोयोजना की झझटो से मुक्त काव्य को ही 'गद्यकाव्य' की सज्ञा दे गए है।[५७]

लेकिन इस 'छन्दोमुक्तता' के साथ ही गद्यकाव्य मे काव्य की अन्य सामान्य विशेपताओ का होना भी परमावश्यक है। छन्दोमुक्तता तो गद्यकाव्य की पद्यकाव्य से भेदिकामात्र है। मेरा तात्पर्य यह है कि गद्यकाव्य में भी वाक्यो की मृदुलता, सुन्दरता, चमत्कारजनकता, सरसता, रमणीयता और हृदयावर्जकता का होना उतना ही अपेक्षित है जितना कि पद्यकाव्य मे। बल्कि मैं तो यह कहूँगा कि उससे भी कही ज्यादा, क्योकि पद्यकाव्य मे तो छन्द की ध्वन्यात्मकता, अनुरणनात्मकता और लयात्मकता का कुछ ऐसा समाँ सा वँध जाता है कि उसमे काव्य की किरकिरी का आभास जल्दी नही मिलता। पर गद्यकाव्य मे ऐसा नही है। उसकी किरकिरी को छिपाने के लिए छन्द नाम का कोई कवच नही होता है। इसीलिए उसे अपने आप मे काव्य की इन सभी अपेक्षित विशेषताओ को बडे अच्छे ढँग से सँजोए रखना पडता है ताकि पाठको का मन उखडे नही। गद्यकाव्य के इसी पहलू को लेकर 'गद्य कवीना निकष वदन्ति' जैसी कहावत भी चल पडी है। मैं अपनी इस धारणा की पुष्टि मे डॉ० भगीरथ मिश्र के मत को भी उद्धृत करना चाहूँगा। उन्होने लिखा है—

"· ··इसके अन्तर्गत भी काव्य के सभी तत्त्व विद्यमान रहते है, अर्थात् काव्य के अन्तर्गत समाविष्ट होने वाला गद्य वह है जिसमे भाषा तो व्याकरणसम्मत और छन्द निरपेक्ष हो, परन्तु उसमे कल्पना, अनुभूति, विचार आदि तत्त्वो की सघनता विद्यमान हो··· ··आलकारिता, उक्तिवैचित्र्य, मुहावरे, व्यग्य आदि का समावेश भी गद्य की उस परिधि के भीतर रहता है, जो काव्य का एक रूप है। ऐसी दशा मे पद्यकाव्य से मूलत विभेदक तत्त्व छन्द का है।"[५८]

गद्यकाव्य के जो दो प्रमुख एव सर्वाङ्गसुन्दर भेद है, उनके नाम है—कथा और आख्यायिका। आचार्यो ने इन दोनो के स्वरूप को प्रकाश मे लाने के लिए इनकी कुछ

विशेषताएँ बताई हैं, जिनके समुदित स्वरूप के आधार पर हम 'गद्यकाव्य' की भी विशेषताओं का सकलन कर सकेंगे।

आचार्य भामह का कहना है कि 'कथा' कवि के अभिप्रायपूर्ण कथनो से युक्त होती है। इसमे कन्याहरण, सग्राम, वियोगादि का वर्णन होता है। इसमे 'वक्र' और 'अपरवक्र' नामक छन्दो का तथा उच्छ्वासो का प्रयोग नही किया जाता है। कथा का वर्णन अन्य पुरुप द्वारा किया जाता है, न कि स्वय कथा के नायक द्वारा। भला कुलीन पुरुप अपने गुणो का वर्णन स्वय कैसे कर सकता है ?[५६]

अग्निपुराणकार की धारणा है कि कथा, 'गद्यकाव्य' का वह भेद है जिसमे रचयिता अतिसक्षेप में श्लोको द्वारा अपने वश का प्रशमात्मक परिचय देता है और मुख्यकथा की अवतारणा के लिए अवान्तर कथा की परिकल्पना करता है। इसमे परिच्छेदों का अभाव रहता है। हाँ, कही-कही 'लम्बक' हो सकते है।[६०]

आचार्य रुद्रट का दृष्टिकोण अपेक्षाकृत अधिक व्यापक है। उन्होने 'कथा' के लिए 'महाकथा' शब्द का प्रयोग करते हुए जो कुछ लिखा है, उसका आशय है कि महाकथा लिखने के लिए कवि को चाहिए कि वह सर्वप्रथम अपने इष्ट देवता को और गुरु को नमस्कार करे, फिर सक्षेप मे अपना और अपने वश का परिचय दे। तदनन्तर अनुप्रासगर्भित एवं अल्पसमास-युक्त गद्य मे नगर आदि का वर्णन करता हुआ कथा के शरीर (कथानक) की रचना करे। वह चाहे तो आरम्भ मे किसी ऐसी अवान्तर कथा को भी रख सकता है जिसके आधार पर मुख्य कथा का दामन थामा जा सके, और उसे आगे भी बढाया जा सके। कथा का परिणाम कन्याप्राप्ति आदि होना चाहिए। इतना ही नही, उसमे शृंगार रस का सागोपाग वर्णन भी होना चाहिए। भापा यदि संस्कृत है तो केवल गद्य मे ही लिखना चाहिए। सस्कृत के अतिरिक्त अन्य प्राकृत आदि भापाओ मे लिखना हो तो पद्यो (गाथाच्छन्दों) मे लिखे। गद्य का प्रयोग करे, तो बहुत ही कम करे।[६१]

दण्डी ने भामह की खासतौर से खबर ली है। उन्होने उनकी 'कथा' विपयक मान्यता का खण्डन करते हुए कहा है कि कथा का वर्णन नायक भी कर सकता है। अपने वास्तविक गुणो के कथन मे दोप नही होता। इसी प्रकार आर्याच्छन्द की तरह उसमे 'वक्र' और 'अपरवक्र' छन्दो का प्रयोग भी किया जा सकता है, और जब उसमे लम्बक हो सकते है तो फिर उच्छ्वास क्यो नही ?[६२]

विश्वनाथ ने दण्डी के विचारो को पुष्ट करते हुए लिखा है कि 'कथा' मे केवल गद्य द्वारा ही सरस कथावस्तु का निर्माण किया जाता है। इसमे कही 'आर्या', कही 'वक्र' और कही 'अपरवक्र' छन्द का भी प्रयोग कर लिया जाता है। शुरू-शुरू मे पद्यात्मक मगलाचरण रहता है, और दुर्जनो तथा सुजनो के स्वभाव की भी, पद्यो मे ही, चर्चा कर ली जाती है।[६३]

'कथा' के समान ही गद्यकाव्य का एक दूसरा प्रमुख भेद है, 'आख्यायिका'। इसके स्वरूप के विपय मे भामह का कहना है कि जिस गद्य काव्य मे प्रकरण की अस्तव्यस्तता न हो, शब्द, अर्थ और पदो मे श्रवणीयता तथा उदात्तता हो, सारा कथानक

उच्छ्वासो मे विभक्त हो, और समय-समय पर भावी घटनाओं की सूचना देने वाले वक्त्र और अपरवक्त्र छन्दो का प्रयोग हो, उसे आख्यायिका कहना चाहिए।[६४]

अग्निपुराणकार ने 'गद्यकाव्य' के उस भेद को 'आख्यायिका' कहा है जहाँ रचयिता अपने वश की प्रशसा गद्य मे ही काफी विस्तार से करता है; जिसमे कन्याहरण, सग्राम, वियोग, विपत्ति आदि का वर्णन किया जाता है, काव्यशास्त्रीय रीति, वृत्ति और प्रवृत्ति का जहाँ बोलबोला होता है, इतिवृत्त का विभाजन उच्छ्वासो मे होता है, अल्प समासयुक्त कर्कश शब्दावली का प्रयोग होता है, और जिसमे यत्र-तत्र वक्त्र या अपरवक्त्र छन्द भी पाये जाते है।[६५]

रुद्रट का विचार है कि आख्यायिका मे भी कवि को 'कथा' के समान ही आरम्भ मे गुरु और इष्ट देवता को नमस्कार करना चाहिए। उसे चाहिए कि वह अन्य कवियो की प्रशसा, राजा की भक्ति और दूसरे के गुणो का भी वर्णन करे। अपना और अपने वंश का गद्य मे ही विस्तार से वर्णन करे। कथानक का विभाजन उच्छ्वासो मे करे। पहले उच्छ्वास को छोडकर अन्य उच्छ्वासो के आरम्भ मे प्रस्तुत अर्थ की व्यञ्जना कराने वाले श्लेपालकार से युक्त दो-दो आर्याच्छन्दो का विधान करे। कभी-कभी बीच-बीच मे भी सशयग्रस्त अर्थ का निश्चय कराने के लिए या तो आर्या, या अपरवक्त्र, या फिर पुष्पिताग्रा छन्द का उपयोग कर ले, अथवा अधिकाश मालिनी छन्द को ही अपनाये।[६६]

दण्डी ने आख्यायिका और कथा के भेद का खण्डन किया है। वह इन दोनो को एक ही जाति का मानते है, और भेद केवल नामो का बतलाते हैं।[६७] विश्वनाथ भी आख्यायिका को बहुत कुछ कथा जैसा ही मानते हैं, उनका कहना है कि इसमे कवि अपने वश का भी वर्णन करता है, साथ ही साथ अन्य कवियो का भी वर्णन कर लेता है। कही-कही पद्य भी देखने को मिल जाते है। कथावस्तु का बटवारा आश्वासो मे किया जाता है। आश्वास के आरम्भ मे किसी न किसी वर्णन के बहाने आर्या, वक्त्र, अपरवक्त्र छन्दो मे से किसी एक छन्द के द्वारा भावी घटना को सूचित कर दिया जाता है।[६८]

कथा और आख्यायिका जो गद्य-काव्य की काफी व्यापक एव महत्त्वपूर्ण विधाएँ है, के इन उपर्युक्त स्वरूपो पर सम्मिलित रूप से विचार करने पर जो समन्वित तथ्य हमारे सामने उभरते है, उन्हे हम गद्यकाव्य की विशेषताओ के रूप मे भी ले सकते है, जो इस प्रकार है—

(क) काव्य की सामान्य विशेषताएँ तो होती ही है।
(ख) इतिवृत्त (कथानक) के वर्णन मे छन्द का बन्धन कतई नही होता।
(ग) विशिष्ट अवसरो पर बीच-बीच मे आर्या, वक्त्र, अपरवक्त्र, पुष्पिताग्रा और मालिनी छन्दो का प्रयोग हो सकता है।
(घ) प्रस्तावना पद्यो मे प्रस्तुत की जाती है।
(ङ) प्रस्तावना मे मगलाचरण, दुर्जननिन्दा, सुजनप्रशसा, अतीत एव वर्तमान काल के कवियो की चर्चा, अपने वश की विद्वत्ता और अपनी निरभिमानिता का परिचय पद्यो मे प्रस्तुत किया जाता है।

(च) अन्त तक पहुँचते-पहुँचते नायक को कमनीय कान्ता या राज्य-सम्पत्ति की प्राप्ति कराई जाती है।
(छ) जीवन के परिकल्पनात्मक विविध उतार-चढाव भी देखने को मिलते है।
(ज) शृगार रस की प्रमुखता रहती है।
(झ) अवान्तरकथा की सर्जना से मुख्यकथा का विकास किया जाता है।
(ञ) आख्यायिका लिखते समय—
(१) कथावस्तु का विभाजन उच्छ्वासो या आश्वासो मे किया जाता है।
(२) पहले उच्छ्वास को छोड़कर शेष उच्छ्वासो के आरम्भ मे 'उच्छ्वास-कथासूचक' दो पद्य (प्रायः आर्याच्छन्द) भी रहते हैं।
(३) आरम्भिक उच्छ्वासो मे कवि अपने वश का भी विस्तार सहित उदात्त वर्णन कर लेता है।
(४) ऐतिहासिकता का आधार रहता है।

ध्यान रहे कि गद्यकाव्य की ये जो उपर्युक्त विशेषताएँ सकलित की गई है उनका आधार मैंने कथा और आख्यायिका—दोनो ही—को बनाया है। इसका कारण यह है कि मैं अनुभव करता हूँ कि, गद्य-काव्य की सारी सम्पदा इन्ही दोनो विधाओ मे अन्तर्निहित है।

कथा और आख्यायिका

हम देखते है कि भारतीय आचार्यो ने 'कथा' और 'आख्यायिका' के बीच मे भेदक रेखा खीचने का काफी प्रयास किया है। मगर वे ऐसा करते समय असली भेदक रेखा का खीचना भूलते रहे हैं। परिणामस्वरूप उनके लक्षणो मे अतिव्याप्ति बनी ही रही है और जिसका नतीजा यहाँ तक हुआ कि आचार्य दण्डी ने इन दोनो को एक कह डाला।

जाहिर है कि बाणभट्ट ने अपनी 'कादम्बरी' को 'कथा' तथा 'हर्षचरित' को 'आख्यायिका' कहा है।[६६] अत इन्ही दो प्रमुख एव विख्यात लक्ष्य-ग्रन्थो के आधार पर कथा और आख्यायिका के भेदक तत्त्वो की खोज करनी चाहिए, जो मेरे विश्वास के अनुसार, इस प्रकार हो सकते हैं—

कथा	आख्यायिका
(क) कवि की केवल कोमल कपोल-कल्पना के तानो-बानो मे ही विकसित होती है।	(क) ऐतिहासिकता के धरातल पर कल्पना की पायल पहनकर आगे बढती है।
(ख) कथावस्तु को उच्छ्वासो, परिच्छेदो आदि मे विभाजित नही किया जाता।	(ख) कथावस्तु उच्छ्वासो या आश्वासो मे विभक्त रहती है।
(ग) कवि अपने वश का परिचय अति सक्षेप मे प्रस्तावना भाग मे ही पद्यो द्वारा दे लेता है।	(ग) कवि अपना परिचय आरम्भिक उच्छ्वासो मे विस्तार के साथ गद्य मे देता है।

(घ) उच्छ्वास ही नही होते।	(घ) प्रथम उच्छ्वास को छोड़कर सभी उच्छ्वासों के आरम्भ मे उच्छ्वास-कथाव्यञ्जक दो पद्य (प्राय आर्या-च्छन्द) रहा करते हैं।

हालाँकि हमने इन उपर्युक्त भेदक तत्वो के आधार पर कथा और आख्यायिका के बीच एक दीवाल खडी की ही है, लेकिन हम जानते है कि हमारी यह दीवाल भी टिकाऊ साबित नही हो सकती। क्योकि तेजी से बदलते हुए युग के परिवेश मे फँसी हुई काव्य की यह लोकप्रिय 'गद्य-विधा' किसी शास्त्रीय नियम विशेष मे बँधी नही रह सकती। दण्डी के 'दशकुमारचरित', अम्बिकादत्तव्यास के 'शिवराजविजय', और श्रीनिवास शास्त्री के 'चन्द्रमहीपति' आदि गद्यग्रन्थो (उपन्यासो) को देखने मे यह दीवाल खोखली नजर आ सकती है।

वास्तव मे कथा और आख्यायिका—दोनो ही—गद्यकाव्य के दो पहलू है, दो शैलियाँ है। जिस तरह दो सगी बहिने एक-दूसरे के कपडे बदलकर पहन लेती है और अच्छी भी लगती है, ठीक उसी तरह गद्यकाव्य की ये दो सगी विधाएँ (कथा और आख्या-यिका) भी एक-दूसरे के दायरे मे आती-जाती दिखाई देती रहती हैं। अब यदि हम इन्हे अलग-अलग देखना ही चाहते है तो हमे केवल इतना याद रखना होगा कि गद्यकाव्य का जो कथानक ऐतिहासिकता पर आधारित हो वह आख्यायिका है, और जहाँ केवल कल्प-नाओ का ही जाल हो वह कथा है।

संस्कृत के प्राचीन गद्यकाव्यकार

यह सच है कि आज हमारे सामने प्राचीन गद्यकारो की गणना करते समय सबसे पहले सुबन्धु, बाण और दण्डी के ही नाम झट से आ खडे होते है, और हमारी 'प्राचीन के प्रति गौरव भावना' के पात्र बन जाते हैं। पर दरअसल बात कुछ और भी समझ मे आती है। बाणभट्ट के 'हर्षचरित', दण्डी की 'अवन्तिसुन्दरीकथा', और खासकर अपने धनपाल की 'तिलकमञ्जरीकथा' के प्रस्तावना भागो के अनुशीलन से विदित हुआ है कि इनके अतिरिक्त कुछ और भी गद्यकार हुए है, जिनकी कृतियो ने इन्हे अवश्य ही प्रभावित किया होगा।

यद्यपि उनकी वे कथाकृतियाँ मूल्याकन के लिए आज उपलब्ध नही हो पा रही है, पर बाण, दण्डी, धनपाल आदि ने बडे आदर के साथ उनकी चर्चा करके यह सिद्ध कर दिया है कि वे साहित्य-जगत् की बहुमूल्य निधि थी।

बाणभट्ट ने अपने 'हर्षचरित' मे 'वासवदत्ता' और 'बृहत्कथा' नामक दो गद्यग्रंथो की ओर भट्टारहरिचन्द्र नामक एक उत्कृष्ट गद्यकाव्यकार की चर्चा बडे चाव से की है।[७०] उन्होने अपनी कादम्बरीकथा को भी 'अतिद्वयी' कहकर किन्ही दो स्पृहणीय कथाग्रन्थो की ओर सकेत किया है जो शायद बृहत्कथा और वासवदत्ता रही हो।[७१] दण्डी ने भी अपनी 'अवन्तिसुन्दरीकथा' की प्रस्तावना मे किसी 'मनोवती' नामक कथाकृति का जिक्र किया है।[७२]

धनपाल ने गगा जैसी पावन 'तरगवती' नामक कथाकृति की वडी श्रद्धा के साथ चर्चा की है।[७३] इसके रचयिता का नाम श्रीपादलिप्तसूरि माना जाता है। उन्होंने शान्त-रसप्रधान 'समरादित्यकथा' की ओर भी सकेत किया है।[७४] इनके अतिरिक्त कुलशेखर वर्मा द्वारा विरचित 'आश्चर्यमञ्जरी' और शीला भट्टारिका द्वारा पाञ्चाली रीति मे लिखी गई किसी गद्यरचना का भी उल्लेख हुआ है।[७५] जल्हण कृत 'सूक्तिमुक्तावली' से यह भी पता चलता है कि रामिल और सौमिल्ल नामक किन्ही दो कथाकारो ने भी 'शूद्रक कथा' नामक किसी कथाकृति की सर्जना की थी। यह सौमिल्ल अवश्य ही कोई बहुत बड़े कवि रहे होगे, क्योकि तभी तो कालिदास जैसे महाकवि ने भी इनकी प्रशसा की है।[७६]

इन उपर्युक्त तथ्यो को देखते हुए यह निश्चय वडे इत्मीनान से किया जा सकता है कि सस्कृत साहित्य मे सुबन्धु, वाण और दण्डी के अतिरिक्त भी कई ऐसे प्राचीन गद्य-कार हो गए हैं जिनकी उन दिनो काफी धूम थी। आज उनकी कृतियो की अनुपलब्धि को हम सस्कृत साहित्य का दुर्भाग्य ही कहकर सन्तोष कर लेते है, जबकि चाहिए यह कि उनकी निष्ठापूर्वक गवेषणा करें।

धनपाल की साहित्यिक पृष्ठभूमि

धनपाल ने 'तिलकमञ्जरी कथा' लिखकर जो साहित्य साधना की है उसकी उन्हे अपने पूर्ववर्त्ती साहित्यकारो की विरासत के रूप मे एक अच्छी खासी पृष्ठभूमि मिली थी। उन्होने उस अमूल्य साहित्यिक पृष्ठभूमि का अपनी तिलकमञ्जरीकथा की भूमिका मे वडे मनोयोग के साथ उल्लेख भी किया है।

हालाँकि उनके सामने साहित्य की—'पद्यात्मिका', 'गद्यात्मिका', एव 'उभया-त्मिका'—तीनो ही प्रकार की विधाएँ थी, दृश्यकाव्य की भी एक स्वस्थ परम्परा उन्हे मिली थी, कालिदास, भारवि, माघ, प्रवरसेन, भवभूति, वाक्पतिराज, राजशेखर आदि अनेक उत्कृष्ट साहित्यकारो की उत्कृष्ट कृतियाँ उनके समक्ष थी, लेकिन हम देखते हैं कि उनका मन सर्जनात्मक रूप मे 'गद्यात्मक विधा' की ही ओर अधिक आकृष्ट हुआ है। इसका प्रमुख कारण जहाँ एक ओर कौतूहलपूर्णकथा से युक्त गद्यकाव्य की सहज लोक-प्रियता है, वहाँ दूसरी ओर सुवन्धु की वासवदत्ता, भट्टारहरिचन्द्र की मालतीकथा, वाण-भट्ट की कादम्बरी एव हर्षचरित, दण्डी की अवन्तिसुन्दरी एव दशकुमारचरित, श्रीपाद-लिप्तसूरि की तरंगवती कथा जैसी गद्यकृतियो की हृदयावर्जकता एवं रोचकता भी है।

लगता है कि पद्यात्मक महाकाव्यो की प्रतिस्पर्धा से प्रेरित होकर कुछ साहित्य-कारो ने साहित्य के गद्यात्मक पहलू को पुष्ट करने का सकल्प जैसा ले लिया था। यही कारण है कि उन दिनो गद्यकाव्यो (जिन्हे आज की भाषा मे उपन्यास कह सकते है) का प्रणयन वडी अभिरुचि के साथ होने लगा था। छन्दो की जजीरो से छुट्टी दिलाने वाली इस विधा ने साहित्यकारो और पाठको—दोनो ही—को लिखने-पढने की सुविधा पहुँचा कर,खूब आकृष्ट किया। कहना न होगा कि कादम्बरी और दशकुमारचरित जैसी लोक-प्रिय कथा-कृतियाँ इस तथ्य का ज्वलन्त प्रमाण है।

लोकप्रिय गद्यात्मक सर्जना की उन स्वर्णिम रश्मियो ने धनपाल की भी प्रतिभा को ऊष्मा पहुँचाई, उसे उर्वर बनाया, और कुछ लिख डालने की उसमे इच्छा पैदा कर दी। फलस्वरूप सुबन्धु, बाणभट्ट और दण्डी के रोमाटिक गद्यकाव्यरत्नो (उपन्यासो) की आभा के परिवेश ने धनपाल की मनीषा को घेर लिया। बाणभट्ट के बहुरगी वर्णन तो उनके दिल और दिमाग पर छा ही गए। वास्तव मे देखा जाए तो धनपाल की प्रतिभा को सर्जनाशील बनाने का श्रेय बाणभट्ट की कादम्बरी और श्रीपादलिप्तसूरि की तरगवती कथा को ही दिया जाना चाहिए। उन्होने कादम्बरी की रोमाटिकता और तरगवती कथा की पावनता का अपनी तिलकमञ्जरी कथा मे बडी सफलता के साथ समन्वय भी कर दिखाया है।

इस उपर्युक्त विहगावलोकन के पश्चात् मेरी यह धारणा बनी है कि धनपाल की साहित्यसाधना की पृष्ठभूमि मे साहित्य की गद्यात्मक विधा की लोकप्रियता, सरलता, सुन्दरता और रोचकता का बहुत बडा हाथ रहा है। इस सन्दर्भ मे बाणभट्ट की अलौकिक प्रतिभा से होड लगाने की धनपाल की भीतरी इच्छा को भी नजर अन्दाज नही किया जा सकता। कुछ भी हो, पर इसमे कोई शक नही है कि धनपाल को अपनी साहित्यसाधना के लिए एक बहुत ही उत्कृष्ट, सुन्दर, भासुर एव लोकप्रिय साहित्यिक आलोक मिला था, जिसमे बैठकर उन्होने अपनी आदर्शमयी कल्पना के जगमगाते हुए बहुमूल्य मोतियो को कथा के मजबूत रेशमी धागे मे पिरोया था।

धनपाल की रुचि और गद्यरचना का रूप

धनपाल एक सहृदय साहित्यकार थे। उनकी रुचि ललित एव सरस थी। कठोरता, दुर्बोधता, नीरसता, समरसता एव शरीर के सहज सौन्दर्य की छठा को दबा देने वाली सज-धज उन्हे अपने जीवन मे भी पसन्द नही थी। वह कोमलता, अभिव्यजकता, रसात्मकता एव विविधता के हिमायती थे। आभूषण भी उन्हे वे ही अच्छे लगते थे जो शरीर की शोभा मे चार चाँद अवश्य लगाएँ। काव्य के विषय मे भी उनकी ऐसी ही धारणा थी।

धनपाल को कथात्मक गद्यरचना की जो पृष्ठभूमि मिली थी वह मुख्य रूप से तिरगी थी। उनके सामने एक ओर गौडी शैली के सिद्ध गद्यकार सुबन्धु का विकटबन्ध गद्य था, जो सभगश्लेप की जजीरो मे बुरी तरह जकडा हुआ था। फलस्वरूप जिसे समझने के लिए कभी-कभी 'कोश पश्यन् पदे' की उक्ति को भी चरितार्थ करना पडता था। क्योकि सुबन्धु ने जानबूझ कर उसके प्रत्येक शब्द मे श्लेषालकार ठूँस-ठूँस कर भर दिया था।[77] अतः धनपाल को सुबन्धु की गद्यरचना का यह रूप जरा भी नही भाया। दूसरी ओर पाचाली शैली के मर्मज्ञ महाकवि बाणभट्ट की दो उत्कृष्ट गद्यरचनाएँ उनके सामने थी हालाँकि ये रचनाएँ धनपाल को काफी अच्छी लगी, लेकिन साथ ही साथ उन्होने यह भी अनुभव किया कि उन रचनाओ के गद्य की अविश्रान्त धारा मे बहते-बहते पाठक का मन कुछ थकने सा लगता है। अत उन्होने बाणभट्ट की शैली को भी पूरी तौर से अनुकरण करने योग्य नही समझा। धनपाल की निगाह मे उन दिनो इन दो शैलियो के

अतिरिक्त गद्यरचना के लिए एक तीसरी शैली भी थी, जिसे चम्पू[७८] कहते है। लेकिन धनपाल को इस शैली मे लिखी गई नलचम्पू आदि जो भी कथाएँ मिली, उनमे उन्हे पद्यो की वहुलता से गद्य का वास्तविक आनन्द लुप्त-सा होता हुआ नजर आया। अत यह शैली भी उन्हे कुछ जँची नही।

यद्यपि धनपाल सहृदय थे, विद्वानो और साहित्यकारो का सम्मान करते थे, लेकिन सही वात कहने मे वह कभी नही चूकते थे। उन्होने जव देखा कि गद्य-रचना या तो श्लेषालकार और विकटवन्धता के चगुल मे फँसती जा रही है, या अपनी एकरूपता से पाठको को 'बोर' करने वाली वनती जा रही है, या फिर अपनी विजातीय पद रचना की पिछलग्गू होती जा रही है तो उनसे रहा नही गया, और उन्होने उसके इन अहृद्य रूपो का खुलकर विरोध किया; ताकि अन्य गद्यकार अपनी कथात्मक गद्य सर्जना मे ये भूले न करे। उनकी बड़ी सवल धारणा है कि—

"अखण्डदण्डकारण्यभाजः प्रचुरवर्णकात्।
व्याघ्रादिव भयाघ्रातो गद्याद् व्यावर्तते जनः॥
वर्णयुक्ति दधानापि स्निग्धाञ्जन-मनोहराम्।
नातिश्लेपघना श्लाघा कृतिर्लिपिरिवाश्नुते॥
अश्रान्तगद्यसन्ताना श्रोतृणा निर्विदे कथा।
जहाति पद्यप्रचुरा चम्पूरपि कथारसम्॥"[७९]

अर्थात् घने जगल के समान दुर्गम, लम्वे-लम्वे समासो वाले और वर्णनो की भरपूर गद्यकाव्य से लोग उसी तरह मुँह मोड़ लेते है जिस प्रकार घने जगल मे रहने वाले चितकवरे शेर से डरकर राहगीर भाग खड़े होते हैं। इस प्रकार की गद्यरचना मे शब्द-योजना कितनी ही प्यारी और जनमनोहारिणी क्यो न हो, लेकिन श्लेपालकार की कठिन और घनी लपेट मे फँसी रहने के कारण उसकी तारीफ उसी प्रकार नही होती जिस प्रकार कि सुन्दर और मनोहर अक्षरो से युक्त होने के बावजूद भी अक्षरो के एक-दूसरे मे मिल जाने के कारण लिपि की (तारीफ) नही होती। एकमात्र गद्य की अविरल धारा वाली कथा भी पाठको को कुछ 'वोरियत' पैदा करने लगती है, और पद्यो की चक्की मे पिसती हुई चम्पूकथा भी गद्य का असली मजा नही दे पाती।

स्पष्ट है कि आरम्भ के दो श्लोको मे वह सुबन्धु के गद्य का विरोध कर रहे हैं; और अन्तिम श्लोक के पूर्वार्ध मे वह वाण के गद्य की एकरूपता पर कुछ आपत्ति प्रकट कर रहे हैं, तथा उसके उत्तरार्ध मे उन्होने त्रिविक्रमभट्ट आदि चम्पूकारो की पद्यबहुला गद्यरचना पर भी नीरसता का आक्षेप किया है।

वास्तव मे धनपाल चाहते थे कि गद्यरचना ऐसी हो जिसमे कथा का प्रवाह हो; शव्द-शय्या मे प्रासादिकता और अर्थगम्भीरता हो; रस का अमन्द निष्यन्द हो, भावो की विशदता एव सुन्दरता हो, तथा कल्पनाओ का समुचित आरोह और अवरोह हो।[८०] वह श्लेपालंकार की कठिनता से उत्पन्न होने वाली 'काव्य-किरकिरी' को 'काव्यसुधा' मे नही रहने देना चाहते थे, और उन्होने उसे अपनी तिलकमञ्जरीकथा मे रहने भी नही दिया है। फलस्वरूप हम देखते है कि उनकी गद्यरचना न तो सुबन्धु की गद्यरचना के समान

एकरूपता की शिकार है, और न त्रिविक्रम की गद्यरचना के समान विजातीय पद्यो की दबोच मे ही आई है। उसमे कथावस्तु की कौतुकता, शब्दो की सुबोधता, अर्थ की रमणीयता, समासो की अनुकूलता, यत्र-तत्र पद्यो की आस्वादपरिवर्तनशीलता, अलकारो की रसोपस्कारकता आदि वे सभी विशेपताएँ है जो सहृदयो के हृदय मे कथा का अमन्दानन्दसन्दोह भर सकती है।

धनपाल की रचनाएँ

मात्र लिखने के लिए धनपाल नही लिखते थे। वह या तो 'सद्य. परिनिर्वृतये' लिखते थे, या फिर 'कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे'। यही कारण है कि उनकी रचनाओ मे आत्मा की सच्ची आवाज भर गई है। मेरा विश्वास है कि उनकी रचनाएँ, चाहे वे आकार मे छोटी हो या वडी, गुणात्मक दृष्टि से सभी को वडी महत्त्वपूर्ण प्रतीत होगी। चूँकि वह परमविद्वान् एव साहित्यकार राजा भोज के परमप्रिय सभा-पण्डित एव सभाकवि थे, अत भोज की साहित्यसुधाविपयक प्यास को बुझाने के लिए वह प्रतिदिन कुछ न कुछ काव्यसर्जना करते ही रहते थे, जो भोज जैसे सहृदय के लिए भी 'हृद्यानवद्य' हुआ करती थी। काश ! उसका अविरल लेखा-जोखा मुझे आज मिल सका होता !

मैं समझता हूँ कि प्रस्फुटित काव्य-रचना के अतिरिक्त धनपाल की लिखी हुई छोटी-वडी कुल मिलाकर नौ काव्य-रचनाएँ है। उनके नाम इस प्रकार है—

(१) पाइअलच्छीनाममाला (प्राकृतलक्ष्मीनाममाला)।
(२) सस्कृत नाममाला।
(३) चतुर्विशतिजिनस्तुतिटीका
(४) ऋषभपचाशिका।
(५) तिलकमञ्जरीकथा।
(६) श्रीवीरस्तुति।
(७) वीरस्तुति।
(८) सत्यपुरीयश्रीमहावीरउत्साह।
(९) श्रावकविधि।

अब मै अगले पृष्ठो मे सर्वप्रथम तिलकमञ्जरीकथा की कथाकाव्य (उपन्यास) की दृष्टि से सागोपाग तथा अत्याधुनिक समीक्षा प्रस्तुत करूँगा। तत्पश्चात् अन्त मे प्रथम परिशिष्ट मे उनकी अन्य रचनाओ का भी सक्षिप्त समीक्षात्मक परिचय दूँगा, जिससे पाठको को उनकी धार्मिक मनोभूमि का भी पता लग जाएगा।

धनपाल की श्रेष्ठ उपलब्धि तिलकमञ्जरीकथा

धनपाल ने अपने जीवन मे साहित्यसाधना का जो बीज बोया, उसका श्रेष्ठ एव मधुरतम फल उन्हे तिलकमञ्जरी कथा के रूप मे उपलब्ध हुआ। यह रचना उनकी सभी रचनाओ मे श्रेष्ठ है। कहना न होगा कि उन्होने यदि इस तिलकमञ्जरीकथा को न लिखा होता तो आज उन्हे कोई भी साहित्यकार के नाम से न जानता होता। मेरा विश्वास है कि तिलकमञ्जरीकथा ही उनकी ऐसी रचना है जिसके बल पर वह बाणभट्ट जैसे लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार के समकक्ष, वल्कि किसी मायने मे तो उनसे उत्कृष्ट भी, कहलाने के अधिकारी हुए है।

यह तिलकमञ्जरीकथा वास्तव मे दो आदर्श देवदम्पतियो के परिणत प्यार की

ऐसी अमर वेल है जो पुण्य के क्षीण होने से प्राप्त होने वाले दूसरे जन्म मे भी मुरझाई नही है, और अनुकूल अवसर पाते ही पुन लहलहा उठी है। प्यार की उस वेल को देश और काल की दीवाले भी नही रोक पाई है। भूलोक से शुरू होने वाली और विद्याधरो के देश मे पूर्ण होने वाली यह एक अतीव रोमाटिक एव रोचक कथा है। इसे लिखकर धनपाल ने मनुष्यलोक और विद्याधरलोक के वीच की गहरी खाई को पाटने का अच्छा प्रयत्न किया है; और मानव को धरातल से ऊँचा उठने की प्रेरणा भी दी है।

इस कथा का नायक अयोध्या के चक्रवर्ती सम्राट् मेघवाहन का पुत्र राजकुमार हरिवाहन है, जो धीर एव उदात्त प्रकृति का है। नायिका, वैताढ्य पर्वत की दक्षिण श्रेणी मे स्थित विद्याधरो के देश मे रथनूपुरचक्रवाल नामक नगरी मे रहने वाले विद्याधरो के चक्रवर्ती सम्राट् चित्रसेन की पुत्री, विद्याधर राजकुमारी तिलकमञ्जरी है। यह स्वभाव से निहायत ही सरल एव कोमल है तथा ललितकलाओ मे प्रवीण है। इस कथा का सहनायक है सिहलद्वीप के राजा चन्द्रकेतु का पुत्र युवराज समरकेतु, जो बहुत ही भावुक एव सहिष्णु युवा है। सहनायिका के रूप मे काञ्चीनरेश कुसुमशेखर की प्रियपुत्री राजकुमारी मलयसुन्दरी आती है, जो प्यार की बेल को अपने आँसुओ से सीचती रहती है। धनपाल ने इन दो प्रेमियुगलो की रोमानी दास्तानो को ताने और वाने के रूप मे लेकर अपनी कल्पना-तुरी से कुछ इस प्रकार की कलात्मक वुनाई की है कि पाठको के लिए एक अतीव मनोहर एव रागरजित कथा-पट तैयार हो गया है।

तिलकमञ्जरीकथा मे पाञ्चाली रीति है, पर वह वैदर्भी रीति का भी दामन थामे हुए है। इसी प्रकार माधुर्यगुण भी अपने वन्धु प्रसादगुण के कन्धे से कन्धा मिलाए हुए है। इस कथा मे प्रमुख पात्रो के जीवन के घात-प्रतिघातो, किवा उतार-चढावो की वादियो मे शृगाररस की सरिता अपने सयोग और वियोग नामक दोनो किनारो मे थपेड़े मारती हुई आनन्द-पयोधि की ओर उद्दाम गति से वहती हुई नजर आती है। कल्पना के कोमल कलेवर मे अलंकार-विन्यास की कला भी धनपाल को खूब आती है। उन्होने अपनी कविताकामिनी का जो 'मेक-अप' किया है वह दरअसल बहुत ही प्यारा है।[८१]

धनपाल ने अपनी इस रचना का आरम्भ आशीर्वादात्मक मगलाचरणसूचक "स व. पातु जिन. कृत्स्नमीक्षते य प्रतिक्षणम्। रूपैरनन्तैरेकैकजन्तोर्व्याप्त जगत्त्रयम्।" पद्य से किया है, और लगातार छ' पद्यो तक वह जैनतीर्थकरो की वन्दना करते रहे है। सातवें श्लोक मे कवियो की सर्वमान्य एव आराध्यदेवी सरस्वती की प्रशसा करना वह नही भूलते है। इसके वाद सत्कवियो की प्रशसा, ईर्ष्यालु एव दुर्जन समीक्षको की परिहरणीयता, मात्र तुकवन्दी करने वाले वचकाना कवियो की उपेक्षणीयता, महाकवियो की निरभिमानिता, लम्बे-लम्बे समासो और कठिन-कठिन श्लेषो के भार से लदे हुए प्रचण्ड गद्य की उद्वेजकता, पद्यो की भरमार से भरे हुए चम्पू-काव्य के कथानक की नीरसता आदि का निरूपण करने के लिए उन्होने ग्यारह श्लोको की रचना की है। तदनन्तर सैंतीसवे श्लोक तक उन्होने क्रम से (व्यास, वाल्मीकि, गुणाढ्य, प्रवरसेन, तरगवतीकथाकार श्रीपादलिप्तसूरि, जीवदेव, कालिदास, वाणभट्ट, पुलिन्दभट्ट, माघ, भारवि, समरा-

दित्यकथाकार श्रीहरिभद्र सूरि, भवभूति, वाक्पतिराज, तारागणनामककाव्यकार श्री भद्रकीर्ति सूरि, यायावरकवि राजशेखर, अपने गुरु श्रीमहेन्द्र सूरि, रुद्रकवि और कर्दमराज) उन्नीस साहित्यकारो की प्रशसात्मक चर्चा की है। इसके बाद उन्होंने अपने आश्रयदाता राजाभोज के पूर्वजो का परिचय देने मे पांच बडे-बडे पद्य खर्च किए हैं; और फिर बडे-बडे ही सात पद्यो मे भोजराज के ऐश्वर्य का बडा ही फडकना हुआ वर्णन किया है। पचासवे पद्य मे उन्होने अपने आश्रयदाता एव 'नि शेषवाङ्मयविद्' राजा भोज की जैनागमसम्बन्धिनी कथा को सुनने की इच्छा को पूरा करने के लिए तिलकमञ्जरीकथा लिखने की बात कही है। तत्पश्चात् दो पद्यो मे, अतिसक्षेप मे, अपने पितामह और पिता का परिचय देकर ५३वे पद्य मे अपने को मुञ्जराज का कृपापात्र बताते हुए और अपनी काव्यकला-विषयक-निरभिमानिता को प्रकट करते हुए उन्होने तिलकमञ्जरी की स्वय सर्जना करने की सूचना दी है।[८२]

तदनन्तर हम देखते है कि धनपाल ने अपनी प्रतिभा की प्रखरता एव हृदय की भावुकता तथा कोमलता का सुन्दर समन्वय करते हुए अपनी तिलकमञ्जरीकथा का 'अस्ति' पद से आरम्भ किया है[८३], और अन्ततोगत्वा उसकी 'आनन्दः' पद से इति की है।[८४] मैं समझता हूँ कि उनकी यह कथा निस्सन्देह ही अपने आदि और अन्त के शब्दो से मिलकर बनते हुए 'अस्त्यानन्द' वाक्य के माध्यम से पाठको के लिए 'आनन्द' की अभिव्यजना सदैव करती रहेगी।

सन्दर्भ

१. नाट्यशास्त्र, अध्याय १६, कारिका १२४
२. काव्यालङ्कार, १/१६
३. काव्यादर्श, परिच्छेद १, कारिका १०
४. काव्यालङ्कार, सूत्रवृत्ति, अधिकरण १, अध्याय १, सूत्रवृत्ति १
५. अग्निपुराण, अध्याय ३३७, श्लोक ७
६. वक्रोक्तिजीवित, उन्मेष १, कारिका ७
७. सरस्वतीकण्ठाभरण, परिच्छेद १, कारिका २
८ काव्यप्रकाश, उल्लास १, कारिका ४ का पूर्वार्ध।
९. काव्यानुशासन, (नि० सागर, प्रकाशन १९३४) पृ० १९
१०. प्रतापरुद्रयशोभूषण।
११. चन्द्रालोक, मयूख १, कारिका ७
१२. साहित्यदर्पण, परिच्छेद १, कारिका ३ प्र० च०।
१३. रसगङ्गाधर, आनन १
१४. पोयटिक्स।
१५ 'एन् अपोलोजी फार पोयट्री'।
१६. 'प्रीफेस् टू लॅरिकल बील्लीड्स'।

१७. 'ए डिफेन्स ऑफ पोयट्री'।
१८. 'लाइफ ऑफ मिल्टन'।
१६. 'चैम्बर्स डिक्शनरी'।
२०. कविकुलकल्पतरु, १/६
२१. रसरहस्य, प्रकरण १, छन्द २०
२२. काव्यसरोज।
२३. रसपीयूषनिधि, तरग ६, छन्द २
२४. रसज्ञरञ्जन, पृ० ५०
२५. रसमीमासा, पृ० १
२६. साहित्यालोचन, पृ० ४४
२७. सिद्धान्त और अध्ययन, पृ० २३
२८. काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृ० १७
२६. डॉ० रामदत्त शर्मा लिखित 'पौरस्त्य एवं पाश्चात्य काव्यसिद्धान्त' मे उद्धृत पृ० ७०
३०. आधुनिक साहित्य, पृ० ४०७
३१ साइकॉलॉजिकल स्टडीज इन रस, पृ० ३३
३२. नाट्यशास्त्र, अध्याय १६, कारिका १२४
३३. काव्यालङ्कार, १/१६
३४. वही, १/१३-१५
३५. रङ्गाचार्य कृत टीकासहित दण्डी का काव्यादर्श, पृ० ८, (पूना प्रकाशन)।
३६. काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति, १/१/१
३७. अग्निपुराण, ३३७/७
३८. काव्यप्रकाश, १/४
३६. वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान।
उमड़कर आँखो से चुपचाप, वही होगी कविता अनजान ।।
—सुमित्रानन्दन पन्त, पल्लव (आँसू शीर्षक) पृ० ६५
४०. Our sweetest songs are those that tell of saddest thoughts.
—P. B. Shelley. To the Skylark. Stanza 18
४१. साइकॉलॉजिकल स्टडीज इन रस, पृ० ३३
४२. (क) काव्य प्रेक्ष्यं श्रव्य च।
—हेमचन्द्र, काव्यानुशासन, अध्याय ८, पृ० ३७९ (निर्णय सा० प्रकाशन)।
(ख) दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्य द्विधा मतम्।
—विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, परिच्छेद ६, कारिका १ का पूर्वार्ध।
४३. नाटकमथ प्रकरण भाणव्यायोगसमवकारडिमाः।
ईहामृगाङ्कवीथ्य. प्रहसनमिति रूपकाणि दश ।।
—वही, परिच्छेद ६, कारिका ३

४४ नाटिका त्रोटक गोष्ठी सट्टक नाट्यरासकम् ।
प्रस्थानोल्लाप्यकाव्यानि प्रेङ्खण राराक तथा ॥
सलापक श्रीगदित शिल्पक च विलासिका ।
दुर्मल्लिका प्रकरणी हल्लीशो भाणिकेति च ॥
अष्टादश प्राहुरुपरूपकाणि मनीषिण ।
विना विशेष सर्वेषा लक्ष्म नाटकवन्मतम् ॥
—वही, परिच्छेद ६, कारिका ४-६

४५ गद्य पद्य च मिश्र च काव्यादि त्रिविध स्मृतम् ॥
—अग्निपुराण, अध्याय ३३७, श्लोक ८ का उत्तरार्ध ।

४६. चूर्णिकोत्कलिकावृत्तसन्धिभेदात् त्रिरूपकम् ।
—वही, अध्याय ३३७, श्लोक ९ का उत्तरार्ध ।

४७. वृत्तगन्धोज्झित गद्य मुक्तक वृत्तगन्धि च ।
भवेदुत्कलिकाप्राय चूर्णिक च चतुर्विधम् ॥
—विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, परिच्छेद ६, कारिका ३३० का उत्तरार्ध एव ३३१ का पूर्वार्ध ।

४८ आख्यायिका कथा खण्डकथा परिकथा तथा ।
कथानिकेति मन्यन्ते गद्यकाव्य च पञ्चधा ॥
—अग्निपुराण, अध्याय ३३७, श्लोक १२

४९. आख्यानादयश्च कथाख्यायिकयोरेवान्तर्भावान्न पृथगुक्ता ।
—विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, परिच्छेद ६, कारिका ३३५ का वृत्तिभाग ।

५० अम्बिकादत्तव्यास, गद्यकाव्यमीमासा, पृ० ३२-५३

५१. पद्यमनेकभेदम् । तदनिबद्ध निबद्ध च ।
—वामन, काव्यालङ्कारसूत्र, अधिकरण १, अध्याय ३, सूत्र २५-२६

५२. अनिबद्ध मुक्तक निबद्ध प्रबन्धरूपमिति प्रसिद्धि ।
—वामन, काव्यालङ्कार सूत्र १, ३, २७ गोपेन्द्रत्रिपुरहरभूपालविरचित 'काव्यालङ्कार कामधेनु' नामक टीका ।

५३. साहित्यदर्पण, परिच्छेद ६, कारिका ३१४-३३७

५४ देखिए—(क) मम्मट, काव्यप्रकाश, उल्लास १
(ख) 'तच्चोत्तमोत्तमोत्तममध्यमाधमभेदाच्चतुर्विधम्' ।
—जगन्नाथ, रसगङ्गाधर, आनन १, कारिका २ की पूर्वपीठिका ।
(ग) 'त्रिविध तावत्काव्यम्, ध्वनिगुणीभूतव्यङ्ग्यचित्रभेदात्' ।
—अप्पय दीक्षित, चित्रमीमासा, ग्रन्थारम्भप्रकरण ।

५५ अपाद पदसन्तानो गद्यम् ··· ।
—काव्यदर्श, परिच्छेद १, कारिका २३ का प्रथम चरण ।

५६ अपाद पदसन्तानो गद्य तदपि गद्यते ।
—अग्निपुराण, अध्याय ३३७, श्लोक ९ का पूर्वार्ध ।

५७. वृत्तगन्धोज्झित गद्यम् ।

—साहित्यदर्पण, परिच्छेद ६, कारिका ३३० का तृतीयचरण ।

५८. काव्यमनीषा, पृ० १३२

५९ काव्यालङ्कार, १/२७-२९

६०. अग्निपुराण, अध्याय ३३७, श्लोक १५ का उ० तथा १६-१७ का प्रथम चरण ।

६१ काव्यालङ्कार, अध्याय १६, कारिका २०-२३

६२. काव्यादर्श, परिच्छेद १, कारिका २४-२७

६३. साहित्यदर्पण, परिच्छेद ६, कारिका, ३३२ उ०, ३३३

६४ काव्यालङ्कार, १/२५-२६

६५. अग्निपुराण, अध्याय ३३७, श्लोक १३, १४ तथा १५ का पूर्वार्ध ।

६६ काव्यालङ्कार, अध्याय १६ कारिका २४-३०

६७. तत्कथाख्यायिकेत्येका जाति सञ्ज्ञाद्वयाङ्किता ।

—दण्डी, काव्यादर्श, परिच्छेद ६, कारिका २८ का पूर्वार्ध ।

६८. साहित्यदर्पण, परिच्छेद ६, कारिका ३३४-३३५ तथा ३३६ पू० ।

६९. (क) ....धिया निवद्धेयमतिद्वयी कथा ।।

—कादम्बरी, प्रस्तावना भाग, श्लोक २०

(ख) करोम्याख्यायिकाम्भोधौ जिह्वाप्लवनचापलम् ।।

—हर्षचरित, प्रस्तावना भाग, श्लोक १९

७०. (क) "कवीनामगलद् दर्पो नून वासवदत्तया ।
शक्त्येव पाण्डुपुत्राणा गतया कर्णगोचरम् ।।"

—हर्षचरित, प्रस्तावना भाग, श्लोक ११

(ख) "समुद्दीपितकन्दर्पा कृतगौरीप्रसाधना ।
हरलीलेव नो कस्य विस्मयाय वृहत्कथा ।।"

—वही, श्लोक १७

(ग) "पदवन्धोज्ज्वलो हारी कृतवर्णक्रमस्थिति ।
भट्टारहरिचन्द्रस्य गद्यवन्धो नृपायते ।।"

—वही, श्लोक १२

७१. कादम्बरी, प्रस्तावना श्लोक २०

७२ "धवलप्रभवा राग सा तनोति मनोवती ।"

—अवन्तिसुन्दरीकथा, प्रस्तावना भाग, श्लोक २१

७३ "प्रसन्नगम्भीरपथा रथाङ्गमिथुनाश्रया ।
पुण्या पुनाति गङ्गे वगा तरङ्गवती कथा ।।"

—तिलकमञ्जरी कथा, प्रस्तावना भाग, श्लोक २३

७४. वही, श्लोक २९

७५ "दूरादपि सता मध्ये लिखित्वाश्चर्यमञ्जरीम् ।
कुलशेखरवर्माख्यश्चकाराश्चर्यमञ्जरीम् ।।"

"शब्दार्थयो समो गुम्फ. पाञ्चाली रीतिरिष्यते ।
शीलाभट्टारिकावाचि वाणोक्तिषु च सा यदि ॥"
—जल्हण, सूक्तिमुक्तावली ।

७६ "प्रथितयशसा भाससौमिल्लककविपुत्रादीना प्रबन्धानतिक्रम्य वर्तमानकवेः कालिदासस्य क्रियाया कथ बहुमान. ॥"
—मालविकाग्निमित्र, प्रस्तावना भाग ।

७७. सरस्वतीदत्तवरप्रसादश्चक्रे सुबन्धु सुजनैकबन्धु. ।
प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्धविन्यासवैदग्ध्यनिधिर्निबन्धम् ॥
—वासवदत्ता, प्रस्तावना श्लोक १३

७८. गद्यपद्यमय काव्य चम्पूरित्यभिधीयते ।
—विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, परिच्छेद ६, कारिका ३३६ का उत्तरार्ध ।

७९. तिलकमञ्जरी, प्रस्तावना भाग, श्लोक १५-१७

८०. वही, श्लोक १७, २३, २४ और १८, ३०, ३३

८१ धीरोदात्तगुणोपेतो नायको हरिवाहन ।
नायिका सरला मुग्धा रम्या तिलकमञ्जरी ॥
नाम्ना समरकेतुस्तु पीठमर्दोऽस्ति भावुक ।
पताकानायिका ज्ञेया कन्या मलयसुन्दरी ॥
वैदर्भीसहिता रीति पञ्चाली परिराजते ।
माधुर्येण समायुक्त प्रसादो विद्यते गुणः ॥
रसोऽस्यामस्ति शृङ्गार प्रसादत्वेन वर्णित. ।
विलसन्ति च पद्यानि यत्र तत्र कथान्तरे ॥
घटनाना परीवर्त्ता वैचित्र्येण समन्विता ।
चमत्कुर्वन्ति चेतासि भावकाना विशेषत ॥
—लेखक

८२ तिलकमञ्जरीकथा, प्रस्तावना श्लोक १-५३

८३. अस्ति रम्यतानिरस्तसकलसुरलोका··· ·····।
—तिलकमञ्जरी, पृ० ७

८४. ··· ·····अभिचस्कन्द परमा वृद्धिमानन्द ।
—वही, पृ० ४२८

२

कथानक-तत्त्व का विश्लेषण

प्र ोपान

कथानक : एक परिचय

'कथानक' शब्द 'कथ्' धातु से बनता है।[1] भट्टोजिदीक्षित ने अपने सिद्धान्त-कौमुदी नामक ग्रन्थ के चुरादिगण मे 'वाक्य-प्रबन्ध' (कहने) के अर्थ मे 'कथ्' धातु का ही पाठ किया है। साथ ही 'वाक्य-प्रबन्ध' शब्द मे आये हुए 'प्रबन्ध' शब्द के कोशगत[2] अर्थ पर ध्यान देते ही बुद्धि अवलम्ब स्वीकार कर लेती है कि 'कथानक' शब्द मे 'कथ्' धातु पूर्णतया चरितार्थ होती है।

सामान्य रूप से 'कथानक' शब्द का प्रयोग वर्णनीय विषय के 'साहित्यिक कथात्मक रूप' के लिए होता है; और यह 'कथात्मक रूप' केवल उपन्यास साहित्य मे ही नही, बल्कि साहित्य की महाकाव्य, खण्डकाव्य, नाटक और यहाँ तक कि सन्देशकाव्य एव गीतिकाव्य आदि अन्य विधाओ मे भी उपलब्ध होता है। हाँ, इतना अवश्य है कि अन्य विधाओ की अपेक्षा (नाटक को छोडकर) औपन्यासिकविधा मे कथानक का स्वरूप प्रमुख रूप से उभरता है। क्योकि किसी भी उपन्यास की सफलता उसके कथानक पर ही निर्भर रहती है।

अक्सर देखा सुना जाता है कि बहुत से पढ़े-लिखे लोग 'कथानक' शब्द का अर्थ कहानी समझ बैठते हैं, और फिर उनकी दृष्टि मे 'कथा' और 'कथानक' मे कोई भेद नही रह जाता, अपितु दोनो एक-दूसरे के पर्य्यायवाचक बन जाते हैं। पर आलोचनाजगत् मे विचरणशील मनीषी इन दोनो मे अन्तर मानने लगा है। लेकिन यह अन्तर होता सूक्ष्म ही है। हम कथा और कथानक मे भेद प्रकट करने की इच्छा से कह सकते है कि 'कथा' मे केवल घटनाओ की प्रधानता हुआ करती है। वहाँ श्रोता या पाठक सदैव 'आगे क्या हुआ'? की जिज्ञासारूपिणी लहरो मे तैरता रहता है। किन्तु कथानक मे घटनाओ के पौर्वापर्य एव कार्यकारणसम्बन्ध की प्रमुखता रहती है। उदाहरणार्थ—'यह हुआ' तो कथा है; और यह इस तरह से 'इसलिए हुआ' कथानक है।

वास्तव मे कथा और कथानक मे भेद करने की प्रवृत्ति पाश्चात्य समीक्षको की देन है। उनके यहाँ दो शब्द प्रचलित हैं—एक 'स्टोरी' और दूसरा 'प्लाट'। बस, इन्ही दोनो शब्दो के लिए अधुनातन भारतीय मनीषियो ने क्रम से 'कथा' और 'कथानक' शब्दो

का प्रयोग शुरू कर दिया है। साथ ही साथ जिस आधार पर पाश्चात्य समीक्षको ने 'स्टोरी' और 'प्लाट' मे भेद दर्शाया है, उसी आधार पर यहाँ के भी विद्वानो ने (प्रमुख रूप से हिन्दी साहित्य के विद्वानो ने) 'कथा' और 'कथानक' मे भेद मानना शुरू कर दिया है।

प्रस्तुत प्रसग मे मुझे पाश्चात्य समालोचक श्री ई० एम० फार्स्टर का विवेचन याद आता है। वह लिखते है—हम परिभाषा कर चुके है कि कालक्रमानुसार घटनाओं का वर्णन कथा (स्टोरी) है, अब हम कथानक (प्लाट) की परिभाषा करते है। यद्यपि कथानक मे भी घटनाओ का वर्णन मिलता है, किन्तु विशेप वल उनके कार्यकारण-सवध पर ही रहता है। 'राजा मर गया और तब रानी भी मर गई'—यह एक कथा है। 'राजा मर गया और तब उसके वियोग मे रानी भी मर गई'—यह एक कथानक है। हालाँकि कथानक मे कालक्रमानुसार वर्णन होता है, लेकिन कार्यकारण-सम्वन्ध उसके ऊपर छाया रहता है। 'रानी मर गई', किन्तु किसी ने न जाना कि क्यो (मर गई) ? जब यह खोज हुई कि इस (रानी के मरने) का कारण राजा की मृत्यु का (गहरा) शोक था, तो यह एक ऐसा कथानक बन जाता है, जिसमे अधिकाधिक विकसित होने का रहस्य छिपा है। यह (प्लाट-कथानक) कालक्रम को ठुकरा देता है और कथा से भी दूर हट जाता है, पर हाँ, ऐसा करने मे वह कथानक) अपनी सीमाओ का अवश्य ध्यान रखता है। मान लीजिए कि रानी की मृत्यु हो गई। अब यदि यह (रानी की मृत्यु) कथा (स्टोरी) मे हुई है तो हम पूंछेगे कि 'फिर क्या हुआ ?' और यदि यही मृत्यु कथानक (प्लाट) मे हुई है तो हम जानना चाहेगे कि 'क्यो' ? वस, उपन्यास के इन कथा और कथानक नामक दो तत्त्वो मे यही मौलिक अन्तर है।[3]

श्री ई० एम० फार्स्टर ने कथा और कथानक के अन्तर को स्पष्ट करने मे बडी सूझ-बूझ से काम लिया है। उन्होने जो दो उदाहरण दिये है वे बडे ही विचारपूर्ण है। हम देखते है कि दूसरे उदाहरण—'राजा मर गया और तब उसके वियोग मे रानी भी मर गई'— मे भी पहले उदाहरण—'राजा मर गया और तब रानी भी मर गई'—के समान ही कालक्रम को जैसे का तैसा ही बना रहने दिया है, किन्तु कार्य-कारण के बुद्धि-सगत-भान को प्रकट करके दोनो मे भेद स्पष्ट कर दिया है, यानी दूसरे उदाहरण मे यह बात स्पष्ट कर दी गई है कि रानी के मरने का एकमात्र कारण राजा की मृत्यु से उत्पन्न होने वाला वियोग है।

यहाँ सहृदय पाठक को यह समझने मे देर नही लगेगी कि रानी राजा से, बेहद प्यार करती थी, इसीलिए वह उसकी मौत का सदमा न सह सकी और अपनी जान दे वैठी। तात्पर्य यह है कि बुद्धि और स्मृति को जागरूक और सन्तुष्ट करने की क्षमता कथानक मे तो पाई जाती है, किन्तु कथा मे नही। क्योकि कथा तो घटनाओ की परम्परा का आभास मात्र देकर चरितार्थ हो जाती है। हाँ उस (कथा) मे घटनाओ का एक ऐसा प्रवल प्रवाह अवश्य रहता है, जिसमे पडकर व्यक्ति को यह सोचने-समझने की फुरसत नही मिल पाती कि इस घटना का उस घटना से क्या सम्बन्ध है। उसके सिर पर तो वस—'आगे क्या हुआ ?' की जिज्ञासा का भूत सवार रहता है। यद्यपि कथा मे भी

घटनाओ की एक परम्परा (सिक्वेंसी) रहती है, किन्तु वहाँ उनकी तर्कसगत सयोजना के प्रति उतनी जागरूकता नही पाई जाती। वहाँ तो पाठको की केवल कुतूहलवृत्ति को उभारने मे ही खास दिलचस्पी रखी जाती है। उन घटनाओ को सयोजित एव गुम्फित करना तो कथानक की ही परिधि मे आता है। इस सयोजन और गुम्फन मे जो लेखक जितना ही प्रतिभाशाली होगा, उसका कथानक भी उतना ही प्रभावशाली बन सकेगा। कथानक मे घटनाएँ गतिशील हो उठती है और नदी की धारा के समान लक्ष्य की ओर बढ़ने लगती है। पाठक का मन और मस्तिष्क भी भाव-विभोर होकर उनके साथ-साथ चल पडता है, और अन्त तक पहुँचते-पहुँचते पाठक को सारी घटनाओ का एक ऐसा निष्कर्ष प्राप्त हो जाता है जो उसके दिल और दिमाग की गहराइयो मे मूक हलचल पैदा कर देता है।

यदि हम कथा और कथानक के भेद को अधिक सरल शब्दो मे प्रकट करना चाहे तो कह सकते हैं कि जब कोई उपन्यासकार किसी उपन्यास को लिखने बैठता है तो निश्चित ही उसके मन मे अपने उपन्यास का एक ब्योरेवार नक्शा रहता है; अर्थात् उसकी एक रूपरेखा रहती है, जिसमे वह समयानुसार घटित होने वाली कुछ खास-खास घटनाओं का सिलसिलेवार सकलन कर लेता है। बस, इसी रूप-रेखा को हम कथा या स्टोरी कह लेते है। किन्तु जब वही लेखक अपनी उस अमूर्त्त रूपरेखा को अपनी 'नव-नवोन्मेषशालिनी' प्रतिभा के सहारे मूर्त्त रूप दे देता है, यानी अपनी बुद्धि और सूक्ष्म सवेदना की कसौटी पर कसते हुए उन नीरस घटनाओ की शृखला को सरसता के साथ लिपिबद्ध कर लेता है,* तब उसे हम कथानक या प्लाट कहने लगते है।

कथा को कथानक के रूप मे बदलने के लिए लेखक को अथक परिश्रम करना पडता है। वह ध्यान रखता है कि वे कौन-सी परिस्थितियाँ हो सकती है, और उनके वे कौन से घात-प्रतिघात (उतार और चढाव) हो सकते है जिनसे उसके कथानक मे चार-चाँद लग सकें। उसे आवश्यक का सग्रह और अनावश्यक का परित्याग करने के लिए सतत जागरूक रहना पडता है। इस प्रक्रिया मे लेखक को अपनी पूर्वनिर्धारित रूपरेखा से, यानी उस ढाचे से जिसे उसने लिखना शुरू करने से पहले ही अपने दिल और दिमाग मे बना रखा है, काफी मौलिक और आधारभूत सहायता तो मिलती ही है, लेकिन अपने कथानक को सुव्यवस्थित, सुसगठित और हृदयस्पर्शी बनाने के लिए उसे अपनी बुद्धि और कल्पना की भी शरण अवश्य ही लेनी पडती है। इस समय लेखक की मनोदशा और उसके कार्य-कलापो की तुलना किसी भी शिल्पकार या किसी भी वैज्ञानिक की मनोदशा और उसके कार्य-कलापो से की जा सकती है। क्योकि हम देखते है कि जब किसी चित्र-कार को कोई चित्र बनाना होता है, तो वह पहले उस चित्र के रूप का रेखाओ द्वारा एक ढाँचा तैयार कर लेता है। पुन. उसी ढाँचे को अपनी कल्पना और बुद्धि के सहारे इधर-उधर से काट-छाँट कर यानी घटा-बढाकर एक सुव्यवस्थित और सुसंगठित चित्र का रूप देता है। अपनी रगीन तूलिका से शरीर के अवयवो का उतार-चढाव ही नही, बल्कि मनोगत भावो को भी व्यजित करके जब वह उसमे 'फिनिशिग् टच्' देता है तो वह आकर्षण का केन्द्र बन जाता है, और फिर उसे सभी लोग चित्र कहने लगते है। उस

समय उस ढाँचे मे और उस चित्र मे जमीन और आसमान जैसा अन्तर स्पष्ट होने लगता है। इसी प्रकार जब कोई वैज्ञानिक किसी पदार्थ का निर्माण करना चाहता है तो वह उसके लिए पहिले कच्चे माल (रॉ-मैटीरियल) को एकत्र करता है, फिर प्रयोगशाला मे जाकर उसी मे कुछ निर्धारित रासायनिक तत्त्व मिलाकर प्रयोग द्वारा जिस नवीन वस्तु का निर्माण करता है, वह अपने कच्चे माल से अधिक मूल्यवान् हुआ करती है। हमारा उपन्यासकार भी एक चित्रकार की तरह ही अपने कथारूपी ढाँचे को कथानकरूपी चित्र के रूप मे सजाता और संवारता है, या यो भी कह सकते हैं कि वह एक वैज्ञानिक की भाँति ही अपने कथा (स्टोरी) रूपी कच्चे माल (रॉ-मैटीरियल) को कथानक (प्लाट) रूपी नये पदार्थ के रूप मे परिणत कर देता है।

जो लोग आज की 'सिनेमा टेकनीक' से परिचित है, मेरा ख्याल है कि कथा और कथानक का अन्तर उनकी समझ मे आसानी से आ सकता है। अब आप पूछेगे कि —कैसे ? तो सुनिए—सिनेमा का कथा-लेखक, जो फिल्म-जगत् मे 'स्टोरी राइटर' कहलाता है, पहले एक कथा तैयार करता है। तत्पश्चात् उसी कथा को फिल्माने की दृष्टि से 'स्क्रीन-प्ले' के रूप मे बदल लेता है, क्योकि कथा को स्टेज पर हूबहू तो फिल्माया नही जा सकता। अतः अभिनय, रोचकता, प्रभाव, समय आदि की दृष्टि से उस कथा को एक सुव्यवस्थित 'स्क्रीन-प्ले' का ऐसा रूप दे दिया जाता है जो फिल्म दर्शक के दिल पर अपनी गहरी छाप छोड सके। फिल्म की 'स्टोरी' और 'स्क्रीन-प्ले' के इस अन्तर को सभी दर्शक नही समझ पाते, क्योकि वे तो स्टेज पर द्रुतगति से होने वाली रगीन या सगीत हलचलो मे ही डूबते-उतराते रहते है। उनकी स्मृति और मेधा दोनो ही निस्पन्द रहते है। अत ऐसे दर्शको से 'स्टोरी' और 'स्क्रीन-प्ले' के अन्तर को समझने की उम्मीद ही नही की जा सकती है। इसे तो वे ही दर्शक जान सकते है जो साहित्यिक रुचि रखते है और फिल्म के प्रस्तुतीकरण पर भी अपनी पारखी नजर डालने के आदी होते है।

पाश्चात्य समीक्षा का दामन थामने के फलस्वरूप आज प्रत्येक भारतीय मनीषी 'कथा' और 'कथानक' मे भेद-बुद्धि रखने लगा है। श्री ई० एम० फार्स्टर और श्री हडसन जैसे मूर्द्धन्य पाश्चात्य उपन्यास-समीक्षको को सन्देह की दृष्टि से देखना, एक बहुत बड़ा, रिस्क लेना है। किन्तु मैं यहाँ अपना एक विनीत सुझाव देने का लोभ नही दूर कर पा रहा हूँ, और वह सुझाव यह है कि कथा और कथानक मे कोई आधारभूत भेद नही है। क्योकि आज हम देखते है कि मनुष्य का परिवेश दिन प्रतिदिन जटिल होता जा रहा है, वह सामाजिक और आर्थिक जालो की लपेट मे बुरी तरह फँसता जा रहा है, अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिए उसे दिन-रात विचारसागर मे गोते लगाने पड़ रहे है। फलस्वरूप उसके पास बडे-बडे उपन्यासो को पढने के लिए फुरसत ही नही है। लेखको ने समाज की जब यह नस पकड ली, तो वे २०-२५ मिनटो मे समाप्त हो जाने वाली छोटी-छोटी कहानियो द्वारा समाज का स्वस्थ मनोरजन करने लगे। इन कहानियो मे घटनाओ एव कौतूहल की सृष्टि ही प्रमुख रूप से उभरने लगी। पश्चिम मे साहित्य की इस विधा को 'स्टोरी' या 'शार्ट स्टोरी' का नाम दिया गया, ओर हमारे देश मे यही 'कहानी' कहलाने लगी। साथ ही जो विशालकाय कथाएँ लिखी गई, यानी जिन कथाओ मे समाज

के विभिन्न मार्मिक पहलुओ का सागोपांग और हृदयावर्जक चित्रण किया गया, या यो कहे कि जिनमे जिन्दगी की टेढी-मेढी और ऊबड-खाबड पगडण्डियो पर भटकते हुए नायक-नायिकाओ के विरह और मिलन के मर्मस्पर्शी कार्य-कलापो का, पाठक के दिल और दिमाग मे तसल्ली या हलचल पैदा करने वाला वर्णन किया गया, उन्हे पश्चिम मे 'नॉवल' या 'फिक्शन' की सज्ञा मिली, और हमारे यहाँ उनका नाम 'उपन्यास' चल पडा।

अब मैं यहाँ कहना यह चाहूँगा कि आप पढने के लिए चाहे धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, सरिता या किसी कहानी-सग्रह की पुस्तक मे छपने वाली किसी छोटी कहानी को ले, यह किसी मोटे उपन्यास को ले, लेकिन इतना निश्चित है कि आप हर हालत मे एक कहानी पढने की इच्छा रखेंगे। वह कहानी चाहे छोटी हो चाहे बडी, मगर आपका मुख्य ध्येय उसे ही जानना रहेगा। अत निश्चित है कि कहानी और उपन्यास दोनो मे ही किसी न किसी प्रकार की कोई न कोई कहानी जरूर होती है। अब जहाँ तक कहानी या उपन्यास की घटनाओ के कार्यकारण के सम्बन्ध का प्रश्न है, वह करीब-करीब दोनो मे ही पाया जाता है। यह कहना कि कथा मे घटनाओ का बुद्धि-सगत सयोजन नही किया जाता, मै नही मान सकता। क्योकि कोई भी कुशल कथा-लेखक या कथा-पाठक घटनाओ की निरकुशता को पसन्द नही कर सकता है। क्योकि वह जानता है कि जिस प्रकार शब्द एक-दूसरे से सम्बन्धित न होने पर वाक्य-रचना नही कर सकते, तथा जिस प्रकार अनियन्त्रित जनसमूह गोष्ठी नही बन सकता, ठीक उसी प्रकार घटनाओ के निरकुश होते ही कहानी भी कहानी नही रह सकती। बल्कि उस समय वह एक कोरी गप्प प्रतीत होने लगेगी, और यहाँ तक कि उसकी समानता किसी पागल पुरुष की बेसिरपैर की बातों से की जाने लगेगी। हाँ, इतना अवश्य है कि समय एव कलेवर की कमी के कारण कहानी मे घटनाओ का कार्यकारण-भाव (सेन्स आफ केजुअलिटी) व्यजना-वृत्ति से प्रकट किया जाता है, जबकि उपन्यास मे इसको प्रकट करने के लिए काफी मौका मिलता है। अत जो समीक्षक घटनाओ के कार्य-कारण सम्बन्ध के अभाव मे कथातत्त्व और भाव मे कथानक-तत्त्व की जो पृथक्-पृथक् परिकल्पना करते है, वह सिर झुकाकर स्वीकार करने योग्य प्रतीत नही होती। क्योकि इस परिकल्पना की व्याख्या मे कुछ लोग तो इतने आगे बढ जाते है कि उन्हे ध्यान ही नही रहता कि उनकी इस व्याख्या से उपन्यास मे ही कथा और कथानक नामक अलग-अलग दो तत्त्वो की सत्ता झलकने लगती है।

अत कथा और कथानक के वास्तविक स्वरूप के सम्बन्ध मे मै बेहतर तो यह समझता हूँ कि कथा और कथानक मे गुणात्मक भेद न माना जाए। क्योकि कथा और उपन्यास दोनो मे ही कथांश अपने मौलिक रूप मे रहा करता है।[४] अन्तर केवल दोनो के कथाशो के प्रस्तुतीकरण की सक्षिप्तता और विशदता पर ही निर्भर रहता है। सरल शब्दो में हम् कह सकते है कि किसी भी इतिवृत्त (कहानी) को गद्य मे कहने के लिए आजकल दो ही रोचक विधाएँ अधिक प्रचलित हैं, एक है कहानी की विधा और दूसरी है उपन्यास की।[५] यदि लेखक का प्रतिपाद्य विपय (कहानी) कुछ घटनाओ तक ही सीमित है, यानी अधिक कहने की गुँजाइश नही है, तो वह जो कुछ लिखेगा वह कहानी होगी; लेकिन

यदि उसके मस्तिष्क मे घटनाओ का एक अच्छा-खासा जमघट भरा है तो वह उन्हे सुनियोजित एव तर्कसगत रीति से प्रकट करने के लिए जो कुछ लिखेगा वह उपन्यास बन जाएगा।

इस प्रकार कहानी और उपन्यास दोनो मे ही एक कहानी तो रहती ही है। इसीलिए कथासाहित्य का रस भी—'कहानी' और 'उपन्यास' नामक–जिन दो धाराओ मे वह निकला है वे इस तथ्य की ओर इगित करती हैं कि छोटी कहानी के कथांश को 'कथा' और उपन्यास के सुसगठित एव सुनियोजित 'कथाश' को 'कथानक' या 'कथावस्तु' की सज्ञा दी जाए। कारण कि एक सुगुम्फित एव सुनियोजित उपन्यास मे 'कथा' और 'कथानक' नामक दो भिन्न-भिन्न तत्त्वो की परिकल्पना तो जरा चिन्तनीय ही प्रतीत होती है।

कथानक की परिभाषा

कथा और कथानक के भेदक तत्त्व का सामान्य विश्लेषण करने के बाद कथानक की परिभाषा का स्वरूप जटिल नही रह जाता है। हम सबसे पहले पाश्चात्य जगत् के लब्ध-प्रतिष्ठ उपन्याससमीक्षक श्री ई० एम० फार्स्टर के विचार प्रस्तुत करते है। वह लिखते है—

"उपन्यास मे तर्क-सम्मत एव बौद्धिक तत्त्व को कथानक कहते है। इसमे रहस्य अपेक्षित तो है किन्तु अन्त तक पहुँचते-पहुँचते उसका समाधान भी जरूरी होता है। यह पाठक को काल्पनिक दुनियाँ की सैर कराता है, लेकिन उपन्यासकार भुलावे मे नही रहता।"[६] (अ)

इस विषय मे श्री एडविन म्योर के विचार भी उपेक्षणीय नही है—

प्लाट (कथानक) एक ऐसा पारिभाषिक शब्द है जो विवादरहित है। यह शब्द साहित्यिक है और इसका प्रयोग सार्वभौम है। इसका प्रयोग अत्यन्त व्यापक और सर्वसम्मत है। यह केवल आलोचक के ही काम नही आता, वरन् प्रत्येक के काम आता है। यह कहानी मे घटनाओ की परम्परा और उनके सिद्धान्त को परस्पर सयोजित करता है।[६] (ब)

अब मैं आपके सामने कतिपय भारतीय औपन्यासिक समालोचको द्वारा निर्धारित कथानक की परिभाषाएँ उपस्थित करता हूँ—

(क)—घटनाओ को क्रम से सजाना, अथवा उनकी विशिष्ट आयोजना ही उपन्यास साहित्य की 'कथावस्तु' है।[७]

(ख)—उपन्यास या नाटक मे घटनाओ के सगठन को प्लाट या कथानक कहा गया है। दूसरे शब्दो मे, प्लाट घटनाओ का वह साधारण या जटिल ढांचा है जिनके सहारे किसी उपन्यास या नाटक का निर्माण होता है।[८]

(ग)—कथानक का स्वरूप एक नदी की भाँति होता है, जिसमे पात्र, घटनाएँ आदि इस प्रकार सहज, पर कलात्मक ढग से बहती जाती है कि पाठक अन्त मे ही जाकर रुक पाता है, और तब उसे ऐसा प्रतीत होता है कि किसी बात की तीखी प्रतिक्रिया अत्यन्त ही प्रभावोत्पादक ढग से जैसे उसे उद्वेलित कर रही है, और वह अपने को

उसके प्रवाह मे अवश-सा पाता है।[६]

(घ)—कथानक कालक्रमानुसार श्रृङ्खलाबद्ध वह घटनाक्रम है जो कि उपन्यास के नायक अथवा अन्य पात्रो के जीवन मे योजनाबद्ध रूप मे घटित होता है।[१०](अ)

(ङ)—जिन घटनाओ या व्यापारो से उपन्यास के शरीर का निर्माण होता है उसे 'वस्तु' कहते है।[१०](ब)

अब मैं सोचता हूँ कि उपरिलिखित परिभाषाओ का समीक्षण कर लेना अप्रासगिक न होगा। सबसे पहले ई० एम० फार्स्टर को ही ले। इन्होने कथानक मे तर्क और बुद्धि का समर्थन जरूरी समझा है। साथ ही इनका यह भी मन्तव्य है कि कथानक को रहस्यात्मक तो होना ही चाहिए किन्तु उपन्यास की अन्तिम पक्तियो तक पहुँचते-पहुँचते उस रहस्य का समाधान भी हो जाना चाहिए। उनकी दृष्टि मे कथानक को कल्पना-जगत् से भी अपना सम्पर्क बनाए रखना चाहिए। वास्तव मे कथानक के सम्बन्ध मे उनकी ये धारणाएँ अभिनन्दनीय हैं। म्योर ने प्लाट (कथानक) शब्द को निर्विवाद मानते हुए उसे 'पैटर्न' और 'फार्म' शब्दो से, जो उस समय इस तत्त्व के लिए आलोचना-जगत् मे चल पड़े थे, अधिक सुसयत एवं उपयुक्त स्वीकार किया है। साथ ही औरो की भाँति उन्होने भी इसे घटनाओ के गुम्फन मे महत्त्वपूर्ण माना है। डॉ० कृष्णनाग, डॉ० प्रतापनारायण टण्डन और डॉ० शुभकार कपूर ने अपने-अपने शब्दो को थोड़ा-बहुत इधर-उधर घुमा-फिराकर एक ही बात कहनी चाही है; और वह यह कि घटनाओ की सुव्यवस्थित समयानुकूल सयोजना ही कथानक कहलाती है। किन्तु डॉ० सुरेश सिन्हा ने घटनाओ की धारावाहिकता पर अधिक बल दिया है। उनकी दृष्टि गतिशील है। अत उन्हे सुनियोजित घटनाओ की प्रवाहशीलता मे ही 'कथानक तत्त्व' की अनुभूति हुई है।

जहाँ तक मेरी निजी धारणा का सवाल है, तो मैं यही कहना चाहूँगा कि कथानक एक ऐसी रोचक विशालकाय कहानी का शास्त्रीय नाम है जिसमे परस्पर सुनियोजित, सुगुम्फित एव कार्यकारणभाव से सम्बन्धित जीवन्त घटनाओ के तीव्र भँवर मे फँसे हुए आदर्श नायक-नायिकाओ की घात-प्रतिघातो से परिपूर्ण विषम परिस्थितियो के सुखान्त समाधान की आशा-वल्लरी सहृदय पाठको की मनोभूमि मे अन्त-अन्त तक पनपती रहती है।

स्वनिर्मित परिभाषा का एक सक्षिप्त विश्लेषण

हो सकता है कि किसी विद्वान् को 'कथानक' (प्लाट) की मेरे द्वारा निर्धारित यह उपरिलिखित परिभाषा विशेषणो से बोझिल प्रतीत हो। किन्तु इसके लिए मेरा नम्र निवेदन यह है कि 'कथानक' की परिभाषा तभी स्पष्ट और सुसगठित बन सकती है जबकि उसकी आधारभूत सभी वास्तविकताओ को समेट लिया जाए, और अवास्तविकताओ को छोड दिया जाए। साथ ही एकवाक्यता भी सुरक्षित रखी जाए। लेकिन यह सब तभी सम्भव हो सकेगा जब वास्तविकताओ को प्रकट करने के लिए विशेष्य-विशेषण भाव का सहारा लिया जाएगा। यदि प्रत्येक वास्तविकता को स्वतन्त्र रूप से कहा जाएगा तब तो वहाँ से परिभाषा की आत्मा ही गायब हो जाएगी, और वह एक

अच्छी-खासी बन जाएगी, जो 'विनायक प्रकुर्वाणो रचयामास वानरम्'[११] की याद दिलाने लगेगी। अब मैं आपका ध्यान परिभाषा मे आए हुए विशेषणभूत शब्दो की उपयोगिता की ओर आकृष्ट करना चाहता हूँ। यह तो पहले ही निवेदन कर चुका हूँ कि मेरी दृष्टि मे उपन्यास मे जो कथाश (स्टोरी टेलिंग आस्पेक्ट) होता है उसे ही दूसरे शब्दो मे कथानक या प्लाट की सज्ञा दी जा सकती है। यहाँ भी मैंने रोचक और विशालकाय कहानी को कथानक मानने का साहस किया है। हाँ, इतना अवश्य है कि वह कहानी, जिसे हम कथानक का पद देना चाहते हैं, सर्वांगीण होती है; और इस सर्वांगीणता के लिए आवश्यक है कि कहानी का कलेवर बडा हो। क्योकि इने-गिने आठ या दस पृष्ठों मे कहा गया एक या दो घटनाओ का इतिवृत्त 'कहानी' की सज्ञा तो ले सकता है किन्तु उसे 'उपन्यास' नही कहा जा सकता। उपन्यास मे तो घटनाओ का एक ताँता सा लग जाता है, और वे एक-दूसरे मे गुथी भी रहती है। किन्तु यह सब तभी प्रस्तुत किया जा सकता है जबकि लेखक के समक्ष कथाश के कलेवर को बडा करने की खुली छूट हो। साथ ही उस विशालकाय कहानी को रोचक भी होना चाहिए ताकि पढते समय पाठक का मन उद्विग्न न हो। क्योकि रोचकता के बिना कोई भी कहानी पाठक के दिल की गहराइयो मे प्रवेश नही पा सकती है। न केवल इतना ही बल्कि मैं तो कहानी को तभी सच्चे अर्थ मे 'कथानक' मानूंगा जबकि उसकी घटनाओ का आपस मे अच्छी तरह तालमेल हो; उन्हे माला के बहुरगी फूलो की तरह सिलसिलेवार गुम्फित किया गया हो, वे निरकुश या अनियन्त्रित न हो, उन घटनाओ से अपनी-अपनी ढपली और अपना-अपना राग की गन्ध न आ रही हो; उनमे सत्यता के आभास की मधुर मादकता हो, स्पन्द हो, गति हो; जीवनपथ के उतार-चढाव हो, पाठको के मन और मस्तिष्क को अपने साथ-साथ बहाने के लिए अविरल एव प्रबल प्रवाह हो, आदर्श पात्रो के प्रति सवेदनशीलता उत्पन्न करने की क्षमता हो, और साथ ही साथ अपने उन आदर्श पात्रो की सफलता के लिए पाठको के चित्त मे छटपटाहट उत्पन्न करने का सामर्थ्य हो। बस, कथानक की इन्ही तमाम विशेषताओ को प्रकट करने के लिए मैंने उसकी परिभाषा मे कुछ विशेषणो को जोडने की धृष्टता की है। मुझे उम्मीद है कि जो मनीषी प्राचीनता की पूजा और नवीनता का तिरस्कार अपने ज्ञान-नेत्रो को खोलकर ही करते है, बन्द करके नही,[१२] वे मेरी इस उपर्युक्त धारणा को अवश्य ही जिन्दा रहने देगे।

काव्य [विशेषतया कथा (उपन्यास) काव्य] मे कथानक का महत्त्व

हरे-भरे वृक्षो मे शाखाओ का, स्वस्थ-शरीर मे अस्थि-पजर का, भव्य-भवन मे दीवालो का, वस्त्र मे तन्तुओ का और वसन्त मे बहार का जो महत्त्व होता है वही उपन्यास मे कथानक का होता है। यद्यपि कथानक के अतिरिक्त उपन्यास मे और भी—चरित्रचित्रण, कथोपकथन, देशकाल, शैली और उद्देश्य—पाँच तत्त्व होते है, किन्तु कथानक के बिना उनका मूल्य नही होता। वैसे तो काव्य की प्रत्येक विधा मे कथानक का हाथ रहता है, ऐसा कोई भी महाकाव्य या खण्डकाव्य नही है जिसमे कथानक की सत्ता ही न हो। हाँ, इतना अवश्य है कि उनमे कभी-कभी कथानक की काफी उपेक्षा हो

जाती है। क्योकि कवियो का दिल ही तो ठहरा; वह कभी-कभी वहक भी जाता है और किसी लुभावने हृदय का साङ्गोपाङ्ग वर्णन करने मे जुट जाता है। ऐसी दशा मे कुछ देर के लिए कथानक तालाव के पानी की तरह स्थिर होता है। लेकिन वर्णन समाप्त होते ही वह पुनः मन्थरगति से आगे को खिसकने लगता है। किरातार्जुनीय, शिशुपालवध, हर-विजय, कामायनी आदि ऐमे ही महाकाव्य है। दृश्य-काव्य मे स्थिति कुछ भिन्न है। वहाँ तो यह काफ़ी उभरकर सामने आता है। इसीलिए अरस्तू ने इसे त्रासदी का प्रमुख अग और आत्मा माना है।[13] किन्तु उपन्यास मे तो इसका और भी अधिक वोलवाला है। क्योकि कथानक के विना उपन्यास तो एक कदम भी आगे नही बढ सकता है। उसके तो प्राण ही इसमे वसते है। यदि हम न्याय-दर्शन की भापा मे उपन्यास मे कथानक की स्थिति पर विचार करे तो निस्सकोच कह सकते है कि कथानक और उपन्यास दोनो ही अयुतसिद्ध हैं और इनमें समवाय-सम्वन्ध है; क्योकि जीते जी ये एक-दूसरे से अलग नही हो सकते।[14]

वास्तव मे देखा जाए तो उपन्यास का मौलिक आधार कथानक ही होता है। क्योकि उपन्यासरूपी भव्य-भवन का निर्माण कथानकरूपी नीव के विना किया ही नही जा सकता; और यदि कोई लेखक करना भी चाहे या करे भी, तो मेरा दृढ विश्वास है कि वह अपने उद्देश्य मे सफल नही हो सकता। उसे या तो कथानक-तत्त्व को अपनाना पडेगा या फिर उपन्यास के मैदान से हटना पड़ेगा। क्योकि कथानकहीन रचना उपन्यास नही वन सकती है। हाँ, अलवत्ता उसे विशालकाय भाषण या विशालकाय निवन्ध कह सकते हैं। पर ऐसी रचना को उपन्यास के नाम पर न तो कोई छापने के लिए तैयार होगा और न कोई पढ़ने के लिए।

यह मैं मानता हूँ कि उपन्यास मे समाज की बुराईयो को प्रकट करने की क्षमता होनी चाहिए; उन बुराईयो को, जो नासूर की तरह समाज को तिल-तिल करके सड़ा-गला रही है, दूर करने का मूक या मुखर सकेत होना चाहिए, किन्तु इसके साथ ही साथ पाठक के मन को रजित करने का भी पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए। इसके लिए उपन्यासकार को हर हालत मे एक ऐसे कथानक की परिकल्पना करनी पड़ेगी जो समाज के स्वास्थ्य मे सुधार भी करे और उसे मनोरजन भी दे। चूँकि आज का हारा-थका मानव भाषण और लेख पसन्द नही करता। क्योकि सारे दिन रोटी-कपड़े के लिए सघर्ष करने के वाद शाम को इन्हे समझने के लिए उसके मस्तिष्क की धमनियो मे शक्ति नही रह जाती। उस समय उसे विस्तार से समझाने के लिए लेखक के पास उपन्यास के अलावा कोई दूसरा सरल तरीका नही रहता। क्योकि कथानक का जैसा सगठित और मनोरंजक रूप उपन्यास मे होता है वैसा साहित्य की अन्य किसी भी विधा मे नही हो पाता। कथानक की इस आकर्पणशीलता के बल पर ही उपन्यासकार यह भरोसा कर लेता है कि पाठक कितना ही थका-माँदा क्यो न हो, यदि उसने एकबार उसके उपन्यास के पहले पृष्ठ पर अपनी नजर डाल दी तो अवश्य ही वह उसे पूरा पढ़ने की कोशिश करेगा। क्योकि उसे उसमे उसके उखडे हुए मन को बहलाने वाला एक सुनियोजित कथानक मिलेगा। मेरी इस धारणा की पुष्टि आप बड़ी आसानी से किसी उपन्यास-

पाठक से बातचीत के दौरान कर सकते है। सौभाग्य से आज उपन्यासो का बोलबाला है। इसके लेखको और पाठको की सख्या एक-दूसरे को चुनौती देती हुई दिनो-दिन बढती ही जा रही है। इसलिए इस निर्णय के लिए, कि उपन्यास पढने वाले के दिल मे उपन्यास के किस तत्त्व के लिए सर्वाधिक लगाव रहता है, आपको अधिक भटकना भी नही पडेगा। थोडे ही प्रयत्न से कोई न कोई समझदार पाठक आपको अवश्य मिल जाएगा। उससे आप यह पूछे कि—'कहो भाई, अमुक उपन्यास तुम्हे कैसा लगा ?' यदि उसने वह उपन्यास पढा होगा तो मैं समझता हूँ कि आपको निम्नलिखित तीन तरह के उत्तरो मे से ही किसी भी एक तरह का उत्तर मिलेगा—

(१) 'बहुत ही अच्छा।' (इसके बाद वह अपनी पलको को थोडा-सा बन्द करते हुए और सिर को हौले से हिलाकर कहेगा कि) आहा ! क्या ही मार्वेलस प्लाट है, मुझे तो पढते समय खाने-पीने की भी याद नही रहती थी, भाई, कमाल दर्जे की स्टोरी है।

(२) 'कोई खास नही जँचा।' (इसके बाद हथेलियो को खोलता हुआ कहेगा कि) नया लेखक जो ठहरा, बिचारा स्टोरी को सम्हाल नही पाया है।

(३) 'बिल्कुल वाहियाद।' (फिर जरा नाक-भौ सिकोड कर कहेगा कि) बस, बकवास है, दो कौडी की स्टोरी है। मैं तो बहुत बोर हुआ; शुरू के दस पन्ने भी कायदे से नही पढ पाया।

अब आप यदि इन तीनो तरह के उत्तरो पर जरा ध्यान दे लेगे तो साफ जाहिर हो जाएगा कि उपन्यास का अच्छा होना या बुरा होना उसके कथानक के अच्छे होने या बुरे होने पर ही निर्भर करता है। यह तो मैंने अपने अनुभव की बात लिखी, अब मैं सोचता हूँ कि इस विषय मे आपको प्रसिद्ध विद्वान् फार्स्टर के विचारो की याद दिला दूँ।

उन्होने भी उपन्यास मे कथा-तत्त्व, सुसगठित होने पर जो कथानक कहालने लगता है, की सर्वाधिक लोकप्रियता एव महत्ता को स्वीकार किया है। उनका तात्पर्य है कि इस बात से किसी को ऐतराज नही हो सकता कि उपन्यास मे मूलभूत तत्त्व कथांश है। अपने इसी आशय की मीमासा करते हुए उन्होने समाज का प्रतिनिधित्व करने वाले तीन व्यक्तियो की कल्पना की है। उन सबके सामने श्री फार्स्टर ने एक सवाल रख दिया कि—'उपन्यास हमारे लिए क्या करता है ?' इसके उत्तर मे तीनो ने अपने-अपने मत प्रकट किए है। उनमे पहला तो मोटर ड्राइवर है, जो सीधा-सादा व्यक्ति है, और साहित्य मे ध्यान नही दे पाता है। वह बडी नम्रता के साथ उत्तर देता है—मैं नही जानता कि उपन्यास हमारे लिए क्या करता है। मुझे तो यह प्रश्न ही बडा अजीबोगरीब लगता है। श्रीमन् ! उपन्यास तो उपन्यास ही है, मै तो बस इतना ही समझता हूँ कि वह एक कहानी बताता है। दूसरा व्यक्ति गोल्फ यानी छोटी गेद के एक खेल विशेष का शौकीन है। वह झुंझला कर जवाब देता है—'उपन्यास क्या देता है ? मैं समझता हूँ कि उपन्यास एक कहानी कहता है, और यदि वह कहानी नही कहता तो वह मेरे किसी काम का नही। शायद आपको मेरी यह रुचि अच्छी न लगे, पर मुझे तो कहानी से ही मतलब है। आप उसमे से कला, साहित्य एव सगीत को बडे शौक से ले लीजिए, पर उसकी सुन्दर कहानी मेरे लिए छोड दीजिए। कहानी इसलिए पसन्द है कि वह एक कहानी है, मेरी

पत्नी को भी तो कहानी ही पसन्द है।' तीसरा व्यक्ति, और कोई नही, बल्कि स्वय ई० एम० फार्स्टर है। वह उच्च कोटि के समालोचक है। इसीलिए खूब सोच-समझकर दबी आवाज मे बडे अफसोस के साथ कह सकते है—'हाँ भाई, उपन्यास कहानी कहता है।'[१५]

फार्स्टर महोदय को प्रथम व्यक्ति से कोई शिकवा-शिकायत नही है। शायद इसलिए कि वह साहित्य की बारीकियो से परिचित नही है। लेकिन दूसरे व्यक्ति से उन्हे सख्त नफ़रत है, साथ ही डर भी। क्योकि वह व्यक्ति जानबूझकर कला, साहित्य, सौन्दर्य, सगीत आदि की अवहेलना करता है। उसे 'सत्य शिव सुन्दरम्' की परवाह नही है। उसे तो केवल अपनी मस्ती चाहिए; और उस मस्ती को वह केवल कहानी कहने वाले पहलू मे ही मानता है। उसका यह एकाङ्गी दृष्टिकोण साहित्य-जगत् के लिए श्रेयस्कर नही है। यही सोचकर फार्स्टर महोदय उससे घृणा करने लगते है। लेकिन इतना होने के बावजूद भी फार्स्टर की यह हिम्मत नही हो सकी कि वह उसकी केवल 'कथानकप्रियता' को साफ शब्दो मे रोकते। इसका एकमात्र कारण यही है कि कथानक की महत्ता को फार्स्टर भी स्वीकार करते हैं। उन्हे दूसरे व्यक्ति के उत्तर मे जो दु ख हुआ वह केवल इस बात का कि उसने कला, साहित्य, सगीत आदि की निन्दा कर दी।

कुछ विद्वानो का ऐसा भी विचार है कि उपन्यास मे किसी सुनियोजित कथानक की आवश्यकता नही होती है। उनका तर्क है कि किसी के भी व्यावहारिक जीवन मे घटनाएँ पूर्वयोजनानुसार नही घटती हैं। उनमे परस्पर कोई सम्बन्ध भी नही पाया जाता। ऐसी स्थिति मे उपन्यास मे उन्हे पहले से सोच-समझकर प्रस्तुत करना वास्तविकता से काफी दूर हट जाना है। प्रसिद्ध चिन्तक श्री निटरो का भी यही विचार था कि 'आल् देट इज प्री अरेञ्ज्ड इज फाल्स' अर्थात् जो पहले से निर्धारित होता है वह मिथ्या होता है। इसलिए पात्रो को लकीर का फकीर नही बना देना चाहिए, उन्हे अपने अच्छे या बुरे चरित्र को प्रकट करने के लिए खुली छूट देनी चाहिए; कथानक की सयोजना के लिए पात्रो की खीचा-तानी नही करनी चाहिए, तथा उपन्यासकार को अपना वास्तविक ध्यान चरित्रो के विश्लेषण की ओर ही रखना चाहिए आदि-आदि। पाश्चात्य समीक्षक श्री एडविन म्योर के सामने चिन्तको के ये दोनो ही प्रकार के सोदाहरण विचार थे। इसलिए उन्होने उपन्यासो का एक 'चरित उपन्यास' नामक भेद स्वीकार कर लिया है; और उदाहरण के रूप मे 'वेनिटी फेयर' का नाम लिया है।[१६] आन्द्रे ज्हीद लिखित 'ले फो मोनेयर्स' नामक उपन्यास को भी इसी कथानकहीन उपन्यास की श्रेणी मे गिना जाता है। क्योकि इसमे भी लेखक का ध्यान कला और जीवन के भिन्न-भिन्न सत्यो के विश्लेषण मे ही अधिक है; कथानक की सयोजना मे कम।[१७] यही हाल जेम्स जायस के प्रसिद्ध उपन्यास 'यूलिसिस' का भी है। शास्त्रीय दृष्टि से उसमे घटनाओ का कोई समन्वय नही है। किन्तु हम देखते हैं कि केवल १६ घण्टो की मानसिक हलचलो पर आधारित एक चरित्र को ही १००० पृष्ठो मे विकसित किया गया है। वास्तव मे अरस्तु ने घटनाओ की सयोजना एव कथानक के कसाव की जो बात कही थी, वह २०वी शताब्दी मे उपेक्षा का विषय बन गई। इसीलिए कुछ लेखको ने अपनी कृतियो मे कथानकहीनता का अभिनव प्रयोग शुरू कर दिया। ऐसे लेखको ने मनोविज्ञान एव स्वप्न-विज्ञान के सहारे असम्बद्ध

विचारधारा का वर्णन प्रचलित कर दिया, जिसमे कुछ घण्टो या कुछ दिनो के मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का विश्लेषण ही प्रमुख रूप से मिलने लगा।

किन्तु भली-भाँति विचार करने पर ऐसा लगता है कि इस प्रकार के उपन्यासो को महत्त्व देना उपन्यास की जड पर कुठाराघात करना है। यह ठीक है कि व्यावहारिक जीवन मे योजनाएँ सुनियोजित रूप से नही घटती है, और यह भी ठीक है कि जीवन का स्वछन्द प्रवाह किसी पूर्व निर्धारित मार्ग पर ही नही बहता, लेकिन इसका यह मतलब तो नही कि उपन्यासकार भी अपने उपन्यास मे कथानक की बागडोर को ढीला कर दे। उपन्यास मे जीवन होता है, लेकिन उपन्यास ही जीवन नही होता।[१८] उपन्यास तो बस उपन्यास ही होता है। उपन्यासकार यदि कथानक के चढाव-उतार को पहले से निश्चित नही करेगा या उसे चरिताकन के नाम पर उपेक्षित कर देगा तो उसकी दशा कीट-पतग के समान हो जाएगी। अत उसे घटनाओ के प्रस्तुतीकरण के लिए एक सुव्यवस्थित मार्ग अपनाना ही पडेगा, अन्यथा उसकी कृति नीरस हो जाएगी और उपन्यास के नाम पर उसे कोई भी नही पढना चाहेगा।

क्योकि उपन्यासकार की दोहरी जिम्मेदारी है, उसे मानवीय जीवन की जटिल समस्याओ का समाधान भी देना है और साथ ही साथ हारे-थके लोगो का मनोरजन भी करना है। इसलिए अपने प्रतिपाद्य विषय को पहले से सुनियोजित कर लेना ही श्रेयस्कर है; अन्यथा विमृश्यकारिता और सुचिन्त्यवादिता की उपयोगिता ही क्या रहेगी ? फार्स्टर ने भी कथानक की उपेक्षा पसन्द नही की है। डॉ० भगीरथ मिश्र ने कथानक के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए लिखा है—

"यद्यपि आधुनिक काल मे कथानक का महत्त्व कम समझा जाता है, पर यह उपन्यास का मूल है। उपन्यास मे व्याप्त कुतूहल का तत्त्व कथानक के ही सहारे विकास पाता है। उपन्यास का समग्र रूप कथानक के ढाँचे पर ही विकसित होता है। कथानक का चुनाव और निर्माण उपन्यास की प्रमुख विजय है और लेखक-कौशल का सकेत इसमे मिल जाता है। कथानक के समस्त अगो का सुन्दर सगठन, घटनाओ का समुचित विन्यास, उपन्यास को सुन्दर बनाने के लिए आवश्यक होता है। यह धारणा भ्रान्त है कि उपन्यास मे कथानक का कोई महत्त्व नही, या सामान्य कथानक को भी वर्णन-कौशल द्वारा उत्तम बनाया जा सकता है। क्योकि यदि वर्णन-कौशल के साथ कथानक की उत्कृष्टता भी मिल जाए तो मणिकाञ्चन सयोग होगा।"[१९]

आज के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी उपन्यास की सफलता मे कथानक का महत्त्व सर्वोपरि माना है।[२०] श्री पदुमलाल पन्नालाल बख्शी भी इस बात से सहमत है कि उपन्यास मे मानव चरित्र के विकास के लिए कथातत्त्व की सत्ता परमावश्यक है।[२१] इस सम्बन्ध मे डॉ० प्रतापनारायण टण्डन के विचार भी उद्धरणीय हैं—

"उपन्यास आधुनिक युग के साहित्यिक माध्यमो मे सर्वप्रमुख माना जाता है। विविध कथात्मक रूपो मे भी वह प्रतिनिधि रूप समझा जाता है। इस दृष्टिकोण से उपन्यास मे कथा-साहित्य के अन्य रूपो की भाँति जो अनिवार्य तत्त्व मिलता है, वह

कथानक-तत्त्व है। बहुत से विद्वानो ने उपन्यास तथा अन्य कथारूपो मे कथानक-तत्त्व को प्रमुखता दी है और उसका प्राथमिक महत्त्व स्वीकार किया है। कुछ लोगो ने अवश्य कथानक को प्राचीन उपन्यासो मे प्रधानतत्त्व मानते हुए आधुनिक उपन्यासो मे उसका गौण स्थान प्रतिपादित किया है, परन्तु ऐसे विचारको की सख्या बहुत कम है तथा उनके विचारो को विशेष मान्यता भी नही मिली है। यही नही, उपन्यास मे कथानक-तत्त्व का इतना अधिक महत्त्व बताया गया है कि अनेक विद्वानो ने कथानकतत्त्व को ही उपन्यास मान लिया है। इस दृष्टि से विचार करते हुए उन्होने कथानक के अतिरिक्त उपन्यास के अन्य तत्त्वो को अप्रधान ही नही माना है, वरन् उन्हे नगण्य भी सिद्ध किया है। इससे यह निश्चित हो जाता है कि उपन्यास का प्रधान तत्त्व सर्वमान्यरूप से कथानक ही है। इसीलिए कथानक को उपन्यास का प्राणतत्त्व भी कहा जाता है।"[22]

जहाँ तक मेरे अपने दृष्टिकोण का सम्बन्ध है, वह बिल्कुल दो टूक है। मै ऐसी किसी भी पुस्तक को उपन्यास के नाम से नही पुकार सकता जिसमे सुनियोजित कथावस्तु का अभाव हो। क्योकि मै उपन्यास मे मानव जीवन के विविध पहलुओ को रोचक रीति से प्रस्तुत करने वाली और उनका 'सर्वजनहिताय' तथा 'सर्वजनसुखाय' समाधान करने वाली सुगठित कथावस्तु का होना अनिवार्य समझता हूँ। इसके अभाव मे जो भी विषय प्रतिपादित किया जाएगा, वह उपन्यास नही बन सकता, और चाहे कुछ भी बन जाए। मुझे आश्चर्य है कि कथानकहीन रचनाओ को उपन्यासो की पक्ति मे स्थान कैसे मिल गया? यदि ऐसा ही है तो निबन्धो और भाषणो के सग्रहो ने क्या अपराध किया है जो बेचारे इस लोकप्रिय नाम को न पा सके?

तथ्य तो यह है कि घटना-शृखला की कड़ियो को तोडने वाले और कथानक की धज्जियाँ उडाने वाले स्वच्छन्द लेखको के बिखरे हुए विचारो को उपन्यास की सज्ञा देना, उपन्यास पढने वालो को सरासर धोखा देना है। यदि कोई समालोचक उन्हे महत्त्व देना ही चाहता है तो उसे चाहिए कि उपन्यास विधा से हटकर उनका मूल्याकन करे। मैं उन्हे निर्मूल्य नही कहना चाहता, उनका मूल्य मनोविज्ञान और स्वप्न-विज्ञान के क्षेत्र मे आँका जा सकता है, किन्तु उपन्यासो की बिरादरी मे उनकी प्रोन्नति मुझे पसन्द नही है।

कथानक की कतिपय विशेषताएँ

बहुसम्मत तथ्य है कि उपन्यास और कथानक मे कार्यकारण सम्बन्ध है, उपन्यास कार्य है और कथानक कारण। यह भी सभी मानते है कि कार्य मे कारण के गुण-दोष आ जाया करते है, अर्थात् जैसा कारण होता है वैसा ही कार्य होता है।[23] अत यह स्पष्ट है कि यदि कथानक (रूपी कारण) अच्छा हुआ तो उपन्यास (रूपी कार्य) भी अच्छा होगा, और यदि कथानक मे जरा-सी कही कोई कमी रह गई तो उपन्यास का भी मजा किरकिरा हो जाएगा। अब क्योकि उपन्यास की सफलता एव असफलता अथवा अच्छाई एवं बुराई कथानक पर ही निर्भर दीखती है तो उपन्यासकार के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह अपने कथानक को पूरी तरह से दुरुस्त रखे, उसमे कही भी कोई त्रुटि न रहने

दे। इसके लिए यह जरूरी है कि वह अपने कथानक मे, सयोजना करते समय, निम्न-लिखित विशेषताओ का समावेश अवश्य करे—

(अ) मौलिकता, (उ) सम्भवनीयता,
(आ) परस्पर सम्बद्धता, (ऊ) उत्सुकता तथा
(इ) प्रबन्ध-कुशलता, (ऋ) स्थानीयरग (लोकल कलर)।
(ई) रोचकता,

मैं समझता हूँ कि यहाँ कथानक की उपर्युक्त प्रत्येक विशेषता पर एक उडती नजर डाल लेना अप्रासगिक नही होगा।

मौलिकता

अपने दैनिक जीवन मे दूसरो की वस्तुओ को उपयोग मे लाने वाले व्यक्ति का व्यक्तित्व जब समाज की नजरो मे ऊँचा नही हो पाता, तो लेखन कला के क्षेत्र मे दूसरे उपन्यासकारो के कथानक को अपने उपन्यास मे प्रयुक्त करने वाले उपन्यासकार का सम्मान समालोचको या पाठको की नजरो मे हो ही कैसे सकता है? यदि कोई उपन्यास-कार अपने उपन्यास को लोकप्रिय बनाना चाहता है तो उसे चाहिए कि वह जन-जीवन मे गहराई तक प्रवेश करे, वहाँ की वस्तु-स्थिति पर गम्भीर चिन्तन करे, वहाँ की वेद-नाओ की अनुभूति करे, और फिर वही से किसी दर्दीली समस्या को लेकर अपनी निजी प्रतिभा से उसे कथानक के रूप मे प्रस्तुत करे। ऐसा करने से उसकी कृति मे मौलिकता की जो छाप लगेगी, वह निश्चित ही उसे अनूठा बना देगी। क्योकि अच्छे कथानक के लिए उसका मौलिक होना निहायत जरूरी है।

हम देखते है कि प्रत्येक पाठक नवीनता चाहता है, घिसे-पिटे कथानक से उसका न तो कोई मनोरजन ही किया जा सकता है और न उसे कोई शिक्षा ही दी जा सकती है। इसके लिए तो उपन्यासकार को अपनी अनुभूति जागरूक करनी ही पडेगी, और उसे सवेदनशील भी होना ही पडेगा। क्योकि बिना ऐसा किए उसकी कथावस्तु मौलिक नही हो सकेगी। इसके विपरीत यदि उसने अपने कथासूत्र (थीम) को प्रस्तुत करने मे अलमारी मे सजी हुई पुस्तको के पन्ने देखे, तो निश्चित ही उसकी कथावस्तु अमौलिक और लकीर की फकीर बनकर रह जाएगी, जिसे पाठक पसन्द नही करेगा। इसलिए कथानक की मौलिकता पर अवश्य ध्यान रखना चाहिए।

यहाँ मेरा तात्पर्य यह कदापि नही है कि जिस विषय पर किसी दूसरे लेखक ने अपने विचार प्रस्तुत कर दिए हो उस पर फिर कोई कलम उठाए ही नही। क्योकि मै जानता हूँ कि एक ही विषय को लेकर अनेक रोचक और मर्मस्पर्शिनी कल्पनाएँ की जा सकती है, उनमे अपनी मौलिकता की छाप लगाई जा सकती है, और उन्हे लोकप्रिय बनाया जा सकता है। सिद्धहस्त-कलाकार की सच्ची कला पुरानी चीज को नये रूप मे प्रस्तुत करने की अद्भुत क्षमता रखती है।[२४] इसलिए किसी उपन्यास मे किसी पूर्वकालीन या समकालीन उपन्यास के कथासूत्र (थीम) की समानता देखकर वहाँ उसके कथानक मे मौलिकता का अभाव नही मान लेना चाहिए। बाल-विवाह, विधवा-जीवन, वैश्यावृत्ति,

सहशिक्षा आदि कथासूत्रो मे से किसी भी एक कथासूत्र को लेकर अपनी-अपनी प्रतिभा के वल पर अनेक मौलिक कथानको की सर्जना की जा सकती है। इसलिए प्रस्तुत सन्दर्भ मे मौलिकता के नाम पर मेरा यही निवेदन है कि उपन्यास मे कथासूत्र की घटनाओ की सयोजना एव उनका गुम्फन सरसतापूर्वक कुछ इस तरह से किया जाए कि उनसे तैयार होने वाला कथानक अपने ढग का निराला ही हो। कथानक की वस यही मौलिकता है और यही चिरनवीनता है। हमारे धनपाल की 'तिलकमञ्जरी' में ऐसी ही मौलिकता की अनुभूति होती है।

परस्पर सम्बद्धता

फूल चाहे जितने खूबसूरत और रग-विरगे क्यो न हो, मगर जब तक उन्हें धागे मे कायदे से पिरोया नही जाता तब तक वे सुन्दर हार नही वन सकते; चौराहे पर रास्ते की प्रतीक्षा मे खड़े हुए लोगो की अनियन्त्रित भीड को कवि-गोष्ठी नही कहा जा सकता, बिखरे हुए पृष्ठों को जब तक जिल्दसाज सिलसिलेवार लगाकर जिल्द मे नही समेट लेता तब तक उन्हे किताब नहीं कहा जा सकता, अलग-अलग पडे हुए घड़ी के सभी कलपुरजो को जब तक घडीसाज कायदे से एडजस्ट नही कर देता तब तक उन्हे घडी नही कहा जा सकता, ठीक इसी प्रकार बिखरी हुई घटनाओ को जब तक सुनियोजित एव सुगुम्फित नही कर लिया जाता तब तक उन्हे कथानक की संज्ञा नही मिल सकती।

यह तो सभी मानते है कि कथानक मे घटनाओ का सकलन होता है। पर ध्यान तो यह देना है कि उन घटनाओ का आपस मे कार्यकारण सबन्ध कितना है? वे आपस मे एक-दूसरे की पूरिका वनने मे कहाँ तक समर्थ हैं? उनमे परस्पर समन्वय हो सका है या नही? वे आवश्यक हैं या अनावश्यक? आदि-आदि। क्योकि एक सफल कथा कथानक के लिए यह आवश्यक है कि उसकी घटनाओ का क्रम और उनका सयोजन पूर्ण रूप से व्यवस्थित हो। यदि घटनाओ मे विखराव है; वे परस्पर सापेक्ष नही है, या कुछ जबर-दस्ती भी ठूँसी गई है तो समझिए कि उस उपन्यास का कथानक निश्चय ही पाठको को 'वोर' करेगा; और यदि उपन्यासकार ने अपने कथानक मे घटनाओ की सयोजना कुछ सूझ-वूझ से की है, तो आप देखेगे कि सभी घटनाएँ चुनिन्दा होंगी[२५], आवश्यक होगी; अनावश्यक एक भी न होगी, कथानक मे उनका अपना स्थान होगा, और उनमे से आप किसी को भी हटाने की वात सोच नही सकेंगे। इतना ही नही, उनको आप सुनियोजित भी पायेंगे; उनमे परस्पर उपकार्य-उपकारक भाव भी नजर आएगा, तथा उनमे एक ऐसा कसाव भी होगा जो समस्त घटनाओ को एक घटना के रूप मे सिद्ध कर रहा होगा। इस प्रकार की परमावश्यक, सुनियोजित, परस्परसापेक्ष, सम्बद्ध एव सुगुम्फित घटनाओंवाला कथानक निश्चय ही उपन्यास पाठको की न केवल चाय ही ठण्डी करते है, वल्कि उनका खाना-पीना भी भुलाने का श्रेय ले लेते हैं। भला बताईए, इससे वढ़कर उपन्यासकार की सफलता का दूसरा ज्वलन्त प्रमाण हो ही क्या सकता है? प्रसिद्ध आलोचक हडसन भी तो कथानक मे घटनाओ और अवान्तरकथाओ की परस्पर-सम्बद्धता को स्वीकार करते हैं।[२६]

अत निर्विवाद सिद्ध है कि कथानक मे घटनाओ का सुनियोजन, सुगुम्फन और परस्पर सम्बन्ध परमावश्यक है। सस्कृत साहित्य मे धनपाल की 'तिलकमञ्जरी' के कथानक की घटनाओ मे यह सम्बन्ध भली-भांति निभाया गया है।

प्रबन्ध कुशलता

सिर के बालो को सँवारने का ढँग जितना ही अच्छा होगा बालो की शोभा भी उतनी ही अधिक बढेगी; बात करने का ढँग जितना ही अच्छा होगा उसका प्रभाव भी उतना ही अधिक होगा, और कपडे सिलने का ढँग जितना ही अच्छा होगा कपडे मे उतना ही आकर्षण बढेगा। इसी प्रकार कथानक मे घटनाओ को सुनियोजित एव प्रस्तुत करने का तरीका जितना ही अच्छा होगा कथानक भी उतना ही अधिक प्रभावशाली बनेगा। घटनाओ को सीधे-सादे ढँग मे तो कोई भी प्रस्तुत कर सकता है। क्योकि यह कोई बडी बात नही है। मगर इस प्रकार का कला एव कल्पनाहीन वर्णन कथानक में रोचकता नही ला सकता। इसके लिए तो उपन्यासकार को साधना करनी पडती है। जिसके पास प्रतिभा होती है वह नितान्त नीरस घटना को भी अपनी कल्पनाशील वर्णन-निपुणता से परम रमणीय बना देता है।[1] उपन्यासकार की इस प्रबन्धकुशलता को उस समय अवश्य ही जागरूक रहना चाहिए जब वह घटनाओ का चयन और उनके प्रस्तुतीकरण का प्रयत्न करता है। यदि उसके इस प्रयत्न मे स्वाभाविकता आ जाती है; पाठक की स्मृति एव बुद्धि को पूरा सन्तोष मिल जाता है, मुख्यकथा एव प्रासगिक कथाओ मे परस्पर उपकार्य-उपकारक भाव सिद्ध हो जाता है तो हमे समझना चाहिए कि उसने घटनाओ को कलात्मक रीति से प्रस्तुत करके अपनी उस प्रबन्ध-कुशलता अर्थात् रचना-चातुर्य का पूरा-पूरा परिचय दे दिया है, जो कथानक की श्रीवृद्धि के लिए आवश्यक है।

रोचकता

पुष्प मे जो महत्त्व सौरभ का है, कथानक मे वही रोचकता का है। सौरभहीन पुष्प आँखो को तो तसल्ली दे सकता है किन्तु मन को नही। इसी प्रकार जिस कथानक मे रोचकता नही है वह बुद्धि का व्यायाम तो करा सकता है किन्तु मन की प्यास नही बुझा सकता। जटिलताओ के जाल मे फँसा हुआ आज का मानव उपन्यास इसलिए नही पढता कि उसे उसमे से कुछ सीखना समझना है, वह तो अवकाश के क्षणो मे अपने मन के बहलाव के लिए उसे पढता है। आज देखा जाता है कि मनोरजन के लिए लोग या तो सिनेमाघरो की शरण लेते है, या शतरज ताश आदि खेलो मे मस्त हो जाते है, या पिकनिक का प्रोग्राम बना लेते है, या फिर किसी नावेल मे अपने को भुला लेते है। मनोरजन के उपर्युक्त सभी साधनो[२७] मे नावेल ही एक ऐसा साधन है जिसका आनन्द आप कही भी एकान्त मे बैठकर अकेले ही उठा सकते है, इसके लिए आपको किसी भी साथी की आवश्यकता का अनुभव नही होगा। पर इतना अवश्य है कि आप जिस नावेल को पढते है, उसमे आपका मन तभी रमेगा जबकि उसका कथानक पूरी तरह से रोचक हो, इन्ट्रेस्टिग् हो और आपकी दिल की गहराइयो को छूने वाला हो। अगर ऐसा नही हुआ

तो आप कैसे ही बुद्धिजीवी क्यो न हो, उसके शुरू के पच्चीस-तीस पृष्ठो के पढने के बाद ऊब जाएँगे और फिर निराश होकर बीच के तथा अन्त के पृष्ठो मे भी अपनी मनपसन्द चीज (रोचक कथानक) की तलाश करने लगेगे। वहाँ भी आपको यदि नीरस घटनाओ और वर्णनो की भरमार मिली तो निश्चित ही आपको उस उपन्यास से अरुचि हो जाएगी और आप उसे बन्द करके टेबिल पर फेंक देंगे। इससे साफ जाहिर है कि उपन्यास के कथानक को लोकप्रियता दिलाने मे रोचकता का बहुत बडा हाथ होता है।

पश्चिम के प्रसिद्ध समीक्षक श्री विलियम हैनरी हडसन ने भी रोचकता को काफी महत्त्व दिया है।[२८] प्रसिद्ध उपन्यासकार सामरसैट माम भी कथानक मे रोचकता को प्रमुख स्थान देते है।[२६] श्री वेसिल होगर्थ की भी यही धारणा है कि कथानक मे रोचकता ही वह मापदण्ड है जिसके आधार पर हम किसी भी उपन्यास को अच्छा या बुरा मान बैठते है।[३०]

कथानक मे रोचकता का महत्त्व प्रायः किसी उपन्यासकार से भी नही छिपा है। इसीलिए वह अपनी कृति को रोचक और हृदयस्पर्शी बनाने के लिए अपनी सम्पूर्ण प्रतिभा का उपयोग कर डालता है। इसके लिए वह अपनी कृति मे कौतूहल और नवीनता की सर्जना करता है। अपने कथानक मे वह ऐसे-ऐसे मोड़ लाता है कि पाठक हक्का-बक्का रह जाता है। किन्तु उन मोडो मे से रोचकता की जो अभूतपूर्व स्रोतस्विनी फूट निकलती है उसके साथ-साथ उसका मन सूखे पत्ते की तरह बहने लगता है। अत अन्त मे यहाँ यह कह देना अनुचित न होगा कि कथानक मे रोचकता की सर्जना ही उपन्यासकार की सफलता की पहली सीढ़ी है।

लेकिन यहाँ मेरा यह तात्पर्य नही है कि रोचकता की सृष्टि के लिए उपन्यासकार को खुली छूट दे दी जाए और वह जैसे चाहे वैसे अपने कथानक को रोचक बनाए। क्योकि वह पुराना जमाना गया, जब पाठको के मनोरंजन के लिए उपन्यासकार आकाश, पाताल और धरती, तीनो लोको तक अपनी कल्पना की उडान भरा करता था। उस समय दिव्य-लोक की परियाँ और नागलोक की नागकन्याएँ धरती के राजकुमारो की प्रेमिकाएँ बना करती थी; और पाठक उन्हे बिना कुछ सोचे-समझे पसन्द भी खूब करते थे। पर आज जमाना बदल गया है। आज का पाठक घटनाओ की सम्भवनीयता (पॉसीबिलिटी) के अभाव मे उपन्यास को कोरी गप्प समझ लेता है। इसलिए नितान्त असम्भव घटनाओ की सृष्टि करके पाठको के मनोरजन की आशा नही करनी चाहिए। कल्पना को वही तक खीचना चाहिए जहाँ तक वह वास्तविक-सी लगती रहे; उससे आगे नही। अतः आज आवश्यकता है कल्पना और यथार्थ के मिश्रण की, और इस मिश्रण को रोचक बनाने मे जो जितना ही अधिक सफल होगा वह उतना ही अच्छा उपन्यासकार समझा जाएगा।

सम्भवनीयता

यद्यपि अनैतिहासिक उपन्यास मे कथानक नितान्त काल्पनिक होता है किन्तु जब पढ़ने बैठते है, तो वही सत्य प्रतीत होने लगता है। आखिर ऐसा क्यो? मैं तो

समझता हूँ कि यह कथानक के 'सम्भवनीयता' नामक गुण का ही परिणाम है। एक समझदार उपन्यास लेखक अपने उपन्यास के कथानक मे ऐसी कोई भी बात नही कहता या ऐसी किसी भी घटना का निरूपण नही करता जो सर्वथा असम्भव हो। वह कल्पना-लोक मे विचरण तो करता है किन्तु उसका एक पैर यथार्थ की दुनियां मे ही रहता है। वह जानता है कि मेरी असम्भव कल्पना को पाठक पसन्द नही करेगा और मेरी हँसी उडाएगा। इसलिए वह वही तक सीमित रहता है जहाँ तक उसकी बात या घटना असम्भावना (इम्पॉसीबिलिटी) के पक से दूर रहती है। ठीक भी तो है, भला कौन ऐसा परिपक्व लेखक होगा जो अपनी कृति मे कल्पना के नाम पर असगति एवं अनौचित्य को स्थान देना पसन्द करेगा ? मैं तो समझता हूँ कि कोई नही। आचार्य आनन्दवर्धन ने परिकर श्लोको मे साफ ही तो कहा है—'अनौचित्य के अतिरिक्त रस-भग का और कोई कारण नही है, और प्रसिद्ध औचित्य का अनुसरण ही रस का परम रहस्य है।''[31] प्रसिद्ध अग्रेजी उपन्यास लेखिका ईलियट ने भी विषय वस्तु मे औचित्य एवं सम्भवनीयता के महत्त्व को ही दृष्टि मे रखकर महिला उपन्यास-लेखिकाओ से अपील की थी कि वे पुरुष-लेखको की भाँति न लिखे। उनकी धारणा थी कि महिलाओ की प्रकृति मे पुरुषों की प्रकृति से मौलिक भेद है। पुरुषो के मन की बात को वे ठीक से समझ ही नही सकती हैं। वे महिला है, और महिलाओ की हर आदत से परिचित हैं। इसलिए उन्हे महिला-जगत् की ही समस्याओ को लेकर उपन्यास लिखने चाहिएँ, तभी उन्हे अनुपम सफलता मिल सकती है, आदि-आदि।[32] इतने विश्लेषण के पश्चात् अब तो कहा ही जा सकता है कि कथानक मे सम्भवनीयता, जिसे दूसरे शब्दो मे औचित्य कह सकते हैं, का अपना एक विशिष्ट स्थान है।

उत्सुकता

यद्यपि ई० एम० फार्स्टर ने उत्सुकता को अधिक महत्त्व नही दिया है, वह इसे मानव-मस्तिष्क की सबसे छोटी विचारशक्ति मानते है। उन्होने इसे कहानी के लिए तो उपयुक्त माना है किन्तु उपन्यास के लिए इसके स्थान पर स्मरण-शक्ति एवं प्रतिभा को ही महत्त्व दिया है।[33] लेकिन मेरे विचार से उत्सुकता को इस तरह उपेक्षित नही किया जा सकता। क्योकि उत्सुकता मनुष्य की नैसर्गिक प्रवृत्ति है। अगर आप किसी को बात करने का जरा भी मौका दे दे तो देखेगे कि वह आपका सारा इतिहास जानना चाहेगा। सच्चे उपन्यास को मनुष्य की इस नस का पता रहता है। इसलिए वह अपने उपन्यास के कथानक मे उत्सुकता सृष्टि करता है। यही उत्सुकता कथानक मे रोचकता भी पैदा करती है। जो कथानक उत्सुकता किंवा कौतूहल से जितना ही भरा-पूरा होगा उसमे रोचकता भी उतनी ही अधिक होगी। यहाँ ध्यान देने की खास बात यह है कि उत्सुकता की पूर्ति अर्थात् कथानक के रहस्य का उद्घाटन क्रमश ही होना चाहिए। यह नही कि सारे उपन्यास का कथासूत्र पाठक को आरम्भ के पचास-साठ पृष्ठो के पढने मे ही झट से विदित हो जाएगा; ऐसा होने पर तो उपन्यास का सारा मजा ही किरकिरा हो जायेगा। और फिर बाकी बचे उपन्यास को पढने की इच्छा भी कुण्ठित हो जाएगी। इसके लिए

उपन्यासकार को चाहिए कि वह अपने कथानक के 'राज' (थीम) को स्पष्ट करने मे जल्दबाजी नही करे; वल्कि उसे धीरे-धीरे ही प्रकाश मे लाए। इस सम्वन्ध मे एलिजावेथ वोवेन के विचार अत्यन्त स्पष्ट एव प्रशसनीय है। उनका कहना है कि —"उपन्यासकार को यह ध्यान रखना चाहिए कि कथा धीरे-धीरे खुले। उसमे उसी तरह का आकर्पण हो जो कपडो से भरे हुए वन्द सन्दूक को खोलकर एक-एक करके उन कपडो को निकालने मे होता है; या जैसे उस समय होता है जबकि कोई जादूगर घडी मे से रेशमी रूमालो को एक-एक करके निकालता जाता है।[३४] अत यह सुतराँ स्पष्ट है कि कथानक मे उत्सुकता के साथ ही साथ उसको प्रकट करने का समुचित सन्तुलन भी होना चाहिए।

स्थानीय रग (लोकल-कलर)

"आजकल लोगो का मत है कि उपन्यास मे स्थानीय रग अधिक और सटीक होना चाहिए। जब किसी उपन्यास या कहानी मे किसी एक विशेप वर्णित स्थान के सम्वन्ध मे विस्तृत विवरण दिया जाता है और वहाँ के सामाजिक, भौगोलिक तथा सास्कारिक विपयो का सूक्ष्म निदर्शन किया जाता है तव वह 'स्थानीय रग' कहलाता है। ···अत. स्थानीय रग का अर्थ हुआ—किसी कथा के मूलतत्त्व मे नही, वरन् सजावट के उस कथा के लिए दृश्य, भाषा, वेश, आचार-विचार और व्यवहार का सटीक विस्तृत वर्णन देना।"[३५]

आचार्य सीताराम चतुर्वेदी के उपर्युक्त विचार निस्सन्देह स्वीकरणीय है। हम देखते हैं कि कथानक मे वास्तविकता की भावना को पल्लवित करने वाला यदि कोई तत्त्व है तो वह स्थानीय रग (लोकल-कलर) है। जागरूक उपन्यासकार जिस देश एव काल की कथावस्तु का गुम्फन करता है, अपने उपन्यास मे वहाँ के स्थानीय रीति-रिवाज, वेशभूषा, खान-पान, रहन-सहन, वोल-चाल आदि का भी स्वाभाविक वर्णन करता है। समय की सगति का भी पूरा-पूरा ध्यान रखता है। इसका सबसे वडा लाभ यह होता है कि इन स्थानीय विशेषताओ के समावेश से उसका काल्पनिक कथानक भी यथार्थ प्रतीत होने लगता है। सस्कृत मे दण्डी, वाण, धनपाल और अम्बिकादत्त व्यास और हिन्दी मे उपन्यास सम्राट् प्रेमचन्द तथा वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास स्थानीय रग से ओत-प्रोत है।

कथानक के सम्बन्ध में आनन्दवर्धन के विचार

कथानक का स्वरूप निर्धारण करते समय यद्यपि आनन्दवर्धन की दृष्टि रामायण, महाभारत आदि पद्यात्मक प्रबन्धकाव्यो पर अटकी हुई थी, लेकिन मेरा विश्वास है कि अपनी कृतियो मे जन-जीवन की बहुमुखी एव रोचक व्याख्या प्रस्तुत करने की इच्छा रखने वाले उपन्यासकार भी अपने कथानक की सर्जना हेतु उनसे शिक्षा ग्रहण कर सकते है। उन्होने प्रवन्धकाव्य मे रस की अभिव्यजना के लिए निम्नलिखित तथ्यो को महत्त्व-पूर्ण वताया है—

(अ) कथानक चाहे ऐतिहासिक हो या चाहे काल्पनिक, पर उसे विभाव, भाव,

अनुभाव और सचारिभावो के औचित्य पूर्ण वर्णन से सर्वांगसुन्दर होना ही चाहिए।

(ब) कथानक भले ही ऐतिहासिक हो, पर यदि उसका कोई अश रस के प्रतिकूल पडता है तो उसे छोडा भी जा सकता है। साथ ही साथ उस ऐतिहासिक कथानक मे ऐसा काल्पनिक अश भी जोडा जा सकता है, जो कथानक मे रसवृद्धि करता हो।

(स) सन्धियो और सन्धियो के अगो की सयोजना उतनी ही करनी चाहिए, जितनी रसाभिव्यक्ति के लिए आवश्यक हो। केवल अपने शास्त्रीय पाण्डित्य को प्रदर्शित करने के लिए इनका प्रयोग नही करना चाहिए।

(द) रस का विस्तार या सकोच मौका देखकर ही करना चाहिए; कथानक के प्रधान रस का ध्यान कभी नही भूलना चाहिए।

(य) अलकारो के बोझ से भाषा और भावो को दबाना नही चाहिए। इनका उतना ही प्रयोग करना चाहिए जितने मे रोचकता बनी रहे।[३६]

स्पष्ट है कि आनन्दवर्धनाचार्य ने कथानक का जो स्वरूप निर्धारित किया है, वह अतीव सुनियोजित, सुगुम्फित एव रोचक है।

कथानक के सम्बन्ध मे अम्बिकादत्तव्यास के विचार

सस्कृत भाषा मे 'शिवराजविजय' नामक अत्यन्त सजीव और हृदयावर्जक ऐतिहासिक उपन्यास की रचना करने वाले प० अम्बिकादत्तव्यास ने उपन्यास के स्वरूप को निर्धारित करते हुए लिखा है—

"उपन्यास बाँधने वाले को चाहिए कि पहिले तो कहानी उत्तम चुने, और फिर उसमे और भी नानापात्र और घटनाओ की कल्पना करके उसे अधिक मनोहर करे, देशकाल आदि के वर्णन मे स्वाभाविक वर्णन करे, अस्वाभाविक बहुत ऊँट-पटाँग न हाँके; और आपस की बातचीत मे स्वभावोक्ति का ध्यान रखे…प्रबन्ध ऐसा होना उत्तम है कि बराबर उत्कण्ठा बढती ही चली जाए, हृदय उसमे डूबता ही जाए।"[३७]

वास्तव मे भूदेव, बकिमचन्द्र आदि प्रसिद्ध बगाली उपन्यासकारो ने अग्रेजी उपन्यासकारो से जो प्रेरणा प्राप्त की थी, उसका प्रभाव हिन्दी लेखकों पर हुआ, और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने तो गद्य की इस उपन्यास नामक आकर्षक विधा का हार्दिक स्वागत भी किया। व्यास जी की प्रतिभा सस्कृत तक ही सीमित नही थी, हिन्दी-जगत् मे भी उनके लिए स्थान था। अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा के बल पर उन्हे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का निकटतम सम्पर्क प्राप्त था। इसीलिए उन्हे औपन्यासिक विधा की सफलता का सच्चा मर्म विदित हो गया था। फलस्वरूप उन्होने जो 'शिवराजविजय' नामक उपन्यास लिखा वह सस्कृत गद्यसाहित्य की सबसे अधिक प्राणवती रचना सिद्ध हुआ। उन्होने अपने समकालीन और परवर्त्ती (चाहे वे सस्कृत के हो, चाहे हिन्दी के) सभी उपन्यासकारो को उपन्यास की सच्ची दिशा का निर्देश करने के लिए 'गद्यकाव्यमीमासा' भी लिखी है, जिसमे उन्होने उपन्यास के स्वरूप का विवेचन किया है।

अभी तक कथानक की जिन विशेषताओ से आप परिचित हुए है, जब वे सब मिल-जुल जाती है, एक-दूसरे की पूरक बन जाती है, तभी अच्छे कथानक की सर्जना हो

पाती है। यदि इन विशेषताओ मे ही विखराव और टकराव रहेगा तो कथानक को छीछालेदर ही समझिए। जिस प्रकार मृत्तिका, दण्ड, चक्र और चीवर मिल-जुलकर ही एक अच्छे घडे का निर्माण करते है उसी प्रकार ये सभी विशेषताएँ मिल-जुलकर ही अच्छे कथानक की सृष्टि करती है, इनमे 'तृणारणिमणिन्याय' लागू करना ठीक न होगा।

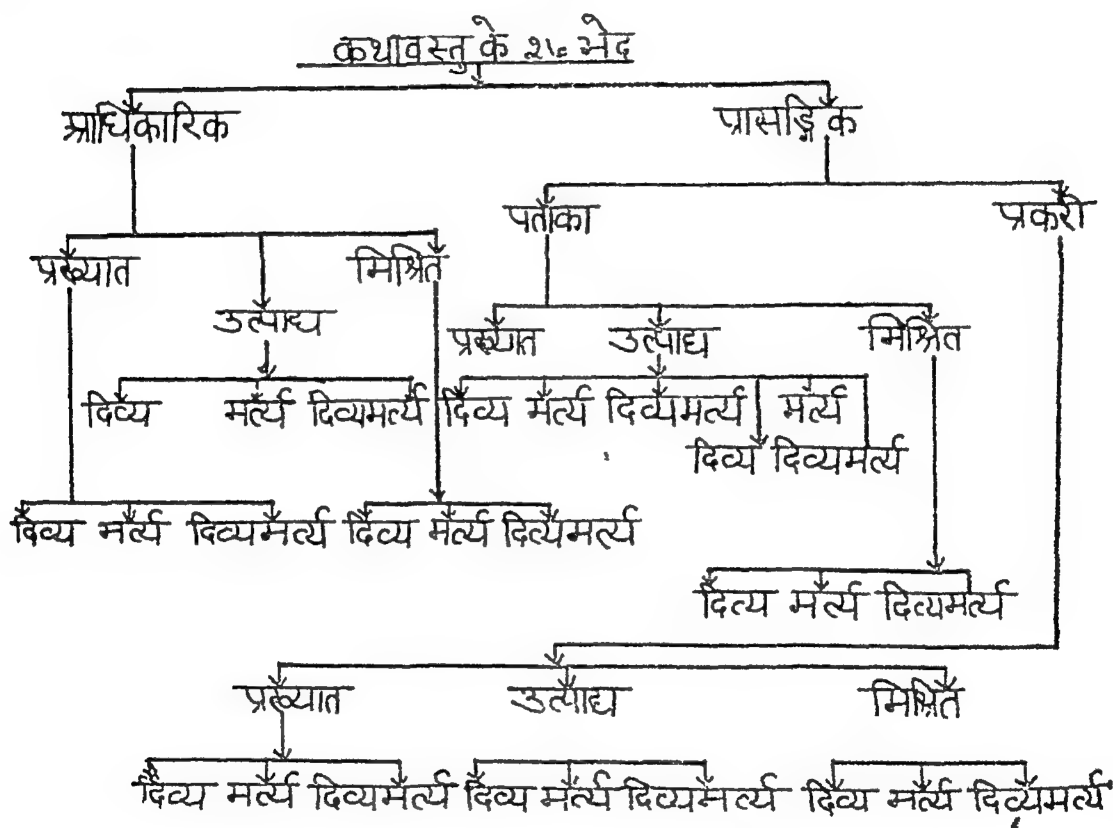
कथानक का वर्गीकरण

सस्कृत के लक्षणग्रन्थो का परिशीलन करने वाले मनीपियो को विदित होगा कि नाट्यशास्त्रप्रणेता भरतमुनि मे लेकर साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ तक सभी आचार्यो ने कथानक किवा कथावस्तु की स्थिति पर विचार किया है। पाश्चात्त्य जगत् के मूर्द्धन्य समीक्षक अरस्तू ने भी अपने 'पोयटिक्स' नामक ग्रन्थ मे नाटकीय दृष्टिकोण से प्लाट (कथानक) की मीमासा की है। आज उपन्यासो के विकसित स्वरूप को देखकर यह धारणा बनने लगी है कि औपन्यासिक कथानक नाटकीय कथानक के समकक्ष हो रहा है।[३८] कुशल साहित्यकार नाटक के कथानक को उपन्यास के कथानक के रूप मे, और उपन्याम के कथानक को नाटक के कथानक के रूप मे वडी आसानी से वदल लेता है। आज कई उपन्यासो पर फिल्मे तैयार हो चुकी हैं, जिन्हे जनता ने पूरी तरह से पसन्द भी कर लिया है।

ऐसी स्थिति मे औपन्यासिक कथानक का वर्गीकरण करने के लिए नाटकीय कथानक के वर्गीकरण से प्रेरणा प्राप्त कर लेना अपराध न समझा जाएगा। कथानक के भेदो पर प्रकाश डालते हुए भरतमुनि ने कहा है कि आधिकारिक और प्रासगिक भेद से इतिवृत्त (कथानक) दो प्रकार का होता है। प्रमुख फल की ओर उन्मुख होने वाला कथानक तो आधिकारिक होता है, और उसकी सहायक कथा को प्रासगिक कथानक माना जाता है।[३९] प्रासंगिक कथानक भी दो भागो मे बाँटा जा सकता है—एक पताका और दूसरी प्रकरी। पताका उस प्रासगिक कथानक को कहते हैं जो आधिकारिक कथानक की प्रगति मे अधिकाधिक सहयोग प्रदान करता है, और जो प्रासगिक कथानक आधिकारिक कथानक की आकस्मिक सहायता करके विलीन हो जाता है वह प्रकरी कहलाता है।[४०] भरतमुनि द्वारा किया गया यह द्विविध वर्गीकरण आलोचना के क्षेत्र मे अकाट्य हो गया। इसमे परिवर्धन तो हुए किन्तु उनका मूलाधार यही रहा। अग्निपुराण-कार ने अवश्य ही कथानक का वर्गीकरण फलप्राप्ति के आधार पर न करके काल एव कल्पना के आधार पर किया है। उन्होने उसके जो दो भेद किए है, उनमे पहले का नाम सिद्ध (शास्त्रानुमोदित) हे और दूसरे का उत्प्रेक्षित (काल्पनिक)।[४१]

आचार्य धनजय ने भी कथानक के फलाधिकार को दृष्टि मे रखकर ही कथानक के सर्वप्रथम मुख्य रूप से दो भेद किए है—पहला आधिकारिक और दूसरा प्रासगिक। मुख्य पात्र की कथा, जिसका अवसान ग्रन्थ के अन्त मे ही होता है, आधिकारिक कहलाती है। यह प्रमुख कथा होती है। किन्तु इसकी गतिशीलता के लिए जो अन्य सहायक कथाएँ होती है, वे प्रासगिक कहलाती है। धनजय ने इन प्रासगिक कथानको को भी पताका और प्रकरी के भेद से दो भागो मे विभक्त कर दिया है। जो प्रासगिक कथा काफी दूर

तक चलती रहती है और आधिकारिक कथा मे ज्यादा से ज्यादा सहायता पहुँचाती है वह पताका कहलाती है, और जो जरा देर के लिए आकर आधिकारिक कथा मे गति दे जाती है वह प्रकरी कहलाती है। इसके बाद धनजय ने आधिकारिक, पताका और प्रकरी इन तीनो मे से प्रत्येक के प्रख्यात, उत्पाद्य (कल्पित) और मिश्रित नाम से तीन-तीन भेद किए है, जो सब मिलाकर नौ हो जाते है। पुन इन नौ भेदो मे से भी प्रत्येक के दिव्य, मर्त्य और दिव्य-मर्त्य नाम से तीन-तीन भेद किए है। इस प्रकार कुल मिलाकर सत्ताईस भेद हो जाते है।[४२] धनजय ने कथावस्तु के जिन सत्ताईस भेदो की चर्चा की है, उन्हे निम्नलिखित रेखाचित्र मे समझा जा सकता है—



साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने धनजय की भाँति कथानक के प्रभेदो को निर्धारित नही किया है। उन्होने आधिकारिक और प्रासगिक नाम से केवल दो भेदो की ही चर्चा की है।[४३]

'साहित्यसार' के लेखक श्री सर्वेश्वराचार्य ने कथानक के बारह भेद किए है। सर्वप्रथम वह मुख्य और अमुख्य नाम से दो भेद करते है। तदनन्तर अमुख्य के पताका, प्रकरी और पताकास्थानक नाम से तीन भेद करते है। इस प्रकार चार भेद हुए। इन चारो मे से प्रत्येक के पुन सत् (ऐतिहासिक), असत् (काल्पनिक) और मिश्रित नाम से तीन-तीन भेद कर देते है। इस प्रकार बाहर भेद हो जाते है।[४४]

वास्तव मे सर्वेश्वराचार्य कृत भेदो पर धनजय का प्रभाव स्पष्ट है, सिर्फ नामो का भेद है। इन्होने आधिकारिक को मुख्य और प्रासगिक को अमुख्य नाम दिया है। साथ ही

प्रख्यात को सत् और उत्पाद्य को असत् कहा है। मैं समझता हूँ कि पूर्वानुमोदित नामो मे हेरफेर करके यह शायद अपने विचारो की मौलिकता सिद्ध करना चाहते है, जो असम्भव है। साथ ही यह भी कह देना चाहते हैं कि इन्होने पताकास्थानक को कथावस्तु का जो भेद माना है वह ठीक नही। क्योकि पताकास्थानक का कार्य कथावस्तु मे आकस्मिक गति प्रदान करना है। इसीलिए इसे कथावस्तु की कोटि मे नही रखना चाहिए। देखा जाए तो धनजय ने जो वर्गीकरण किया है वह अपने आप मे सर्वथा पूर्ण है। कैसा ही नया-पुराना उपन्यास क्यो न हो, उसका कथानक धनजय के वर्गीकरण मे अवश्य ही अन्तर्भूत हो जाएगा।

आधुनिक समीक्षको का दृष्टिकोण कुछ दूसरा हो चला है। वे कथानक के स्वरूपगत पुरातन मौलिक भेदो पर ध्यान न देकर उसके प्रस्तुतीकरण की परीक्षा करते हैं; और उसी के आधार पर कथानक को दो वर्गो मे विभक्त कर लेते है—एक सगठित कथानक (आर्गनाइज्ड-प्लाट) और दूसरा शिथिलकथानक (लूज प्लाट)।[४५(अ)] इतना ही नही, वल्कि इन्ही भेदो के आधार पर उपन्यासो को भी 'नावेल्स ऑफ लूज प्लाट' नामक दो भेदो मे विभाजित कर लेते हैं।[४५(ब)] इडविन म्योर की दृष्टि मे इन दोनो का मिला-जुला एक 'नावेल्स ऑफ कनफ्यूज्ड प्लाट' नामक तीसरा भेद भी है। किन्तु वे भूल जाते हैं कि उसका अन्तर्भाव 'नावेल्स ऑफ लूज प्लाट' मे ही किया जा सकता है। इसलिए यहाँ मैं दो भेदो की ही चर्चा कर रहा हूँ। सबसे पहले 'सगठित कथानक' को लेता हूँ। इसके विषय मे विद्वानो की धारणा है कि यदि उपन्यास का कथानक पूरी तरह से सुव्यवस्थित है, कही भी कोई किसी प्रकार की शिथिलता नही है, पाठक का मन धारा मे वहते हुए सूखे पत्ते के समान कथानक के प्रवाह मे वहता चला जाता है तो समझिए कि वह कथानक सगठित है। ऐसे कथानक मे घटनाओ की सयोजना करने मे उपन्यासकार को वहुत जागरूक रहना पडता है। उसे अपनी कृति का पूरा-पूरा नक्शा अपने मस्तिष्क मे सम्हाल कर रखना पडता है, तभी वह सर्वांगसुन्दर कथानक की सर्जना कर पाता है। पर यदि कथानक की घटनाओ मे वहुलता तथा विखराव हो, वे व्यक्ति विशेष को सामने लाने के लिए ही हो, उनका परस्पर कार्यकारणभाव नही वनता हो, वे सिर्फ अपनी वाँसुरी मे अपना ही राग अलापती हो तो ऐसी विशृखल घटनाओ से वना हुआ कथानक 'शिथिल कथानक' समझा जाता है। इस प्रकार के कथानक पाठको का मनोरजन करने मे पूरी तरह से सफल नही हो पाते है।

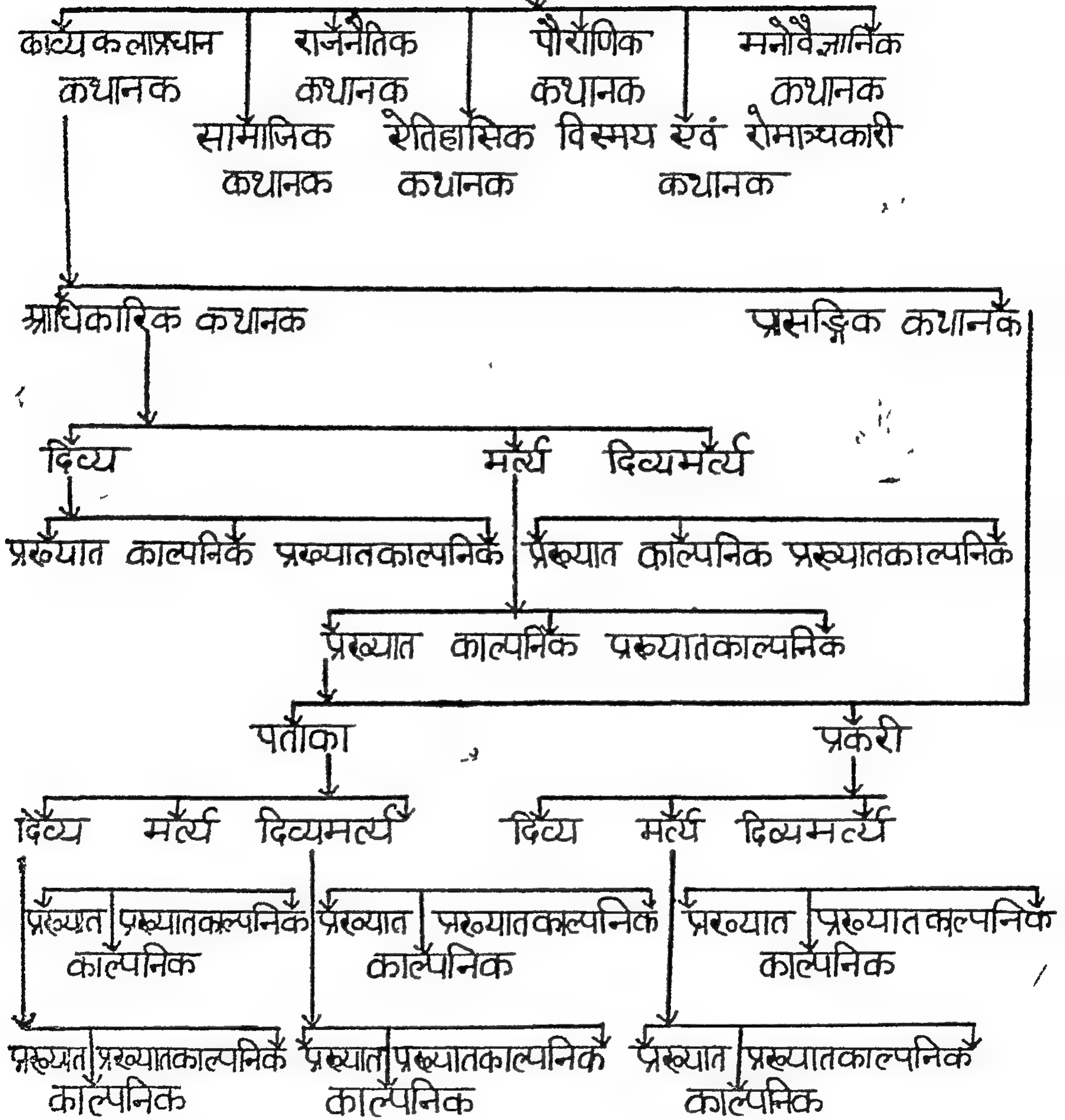
डब्लू० एच० हडसन[४६] के आधार पर हम कथानक को 'सरल' और 'पेचीदा' नामक दो वर्गो मे विभक्त कर सकते है। 'सरल कथानक' मे आदि से अन्त तक एक ही कथा चलती रहती है। इसके समझने के लिए पाठक को अधिक सतर्क नही रहना पडता है। किन्तु 'पेचीदा कथानक' मे दो या दो से अधिक कथाएँ आपस मे सश्लिष्ट रहती है। इनमे एक कथा मुख्य पात्र से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित होती है, शेष कथाएँ उस मुख्य कथा की धारा मे वैसे ही आ मिलती है जैसे महानदी मे अन्य छोटी-मोटी नदियाँ आकर मिल जाया करती है।

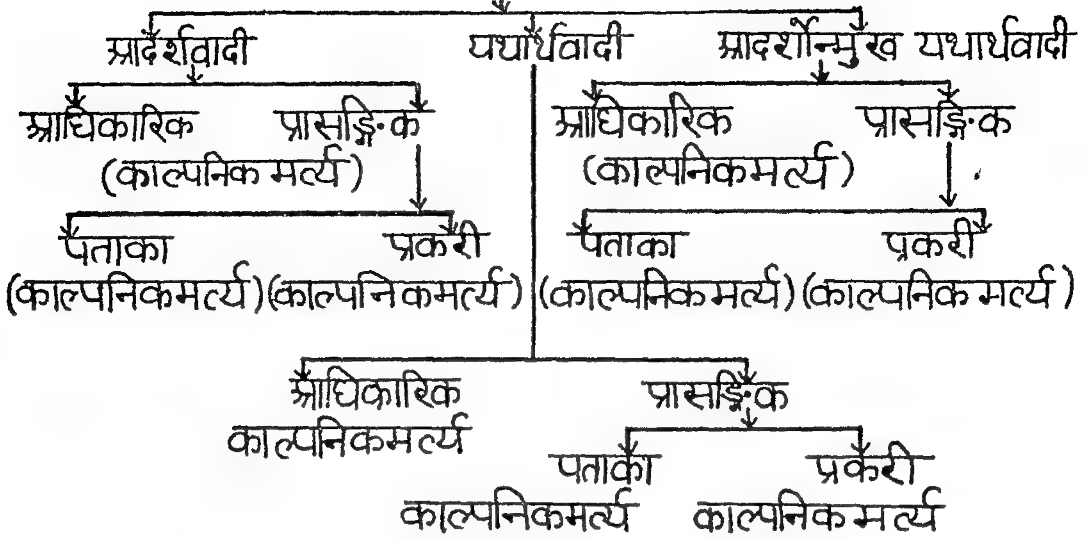
कथानक के उपर्युक्त वर्गीकरण की रूपरेखा आपके समक्ष प्रस्तुत करने के पश्चात्

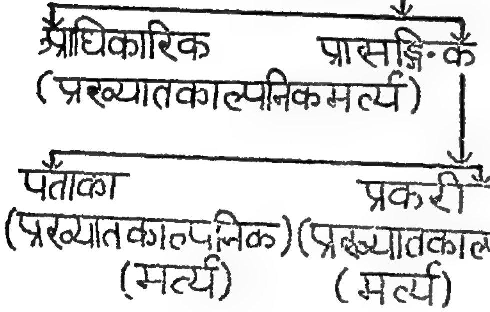
यहाँ मैं पुन. यह कहना चाहूँगा कि धनजय को छोडकर सभी लोगो ने कथानक का एकागी ही वर्गीकरण किया है। क्योकि कथानक की केवल सुव्यवस्थितता, इसी प्रकार उसकी केवल सरलता एव जटिलता को देखकर उसको दो-दो वर्गो मे विभाजित करना कोई खास बडी बात नही है। इतना भेद तो स्थूल-बुद्धि भी कर लेगा। तारीफ तो तब थी जब कथानक के सूक्ष्म भेदो तक भी पहुँच हो जाती, पर ऐसा नही हुआ। हाँ, धनजय ने अवश्य ही उसे काफी हद तक बहुमुखी बनाया है। उन्होने उसकी जो क्षेत्र-सीमा निर्धारित की है, वह चतुर्मुखी है। उसका एक बिन्दु इतिहास है तो दूसरा बिन्दु कल्पना, तीसरा बिन्दु धरातल है तो चौथा बिन्दु देवलोक। इन सभी बिन्दुओ से आधिकारिक और प्रासगिक कथाओ का सम्बन्ध जोडकर उन्होने कथानक के क्षेत्र की व्यापकता सिद्ध कर दी है, इसमे कोई सन्देह नही है। लेकिन उनसे भी एक भूल हुई है, और वह यह है कि उन्होने अपनी दृष्टि देश (दिव्य मर्त्य), काल (इतिहास) और कल्पना तक ही सीमित रखी है। इसीलिए आज के कतिपय उपन्यासो के कथानक उनके कथानको से कुछ दूरस्थ से प्रतीत होते है।

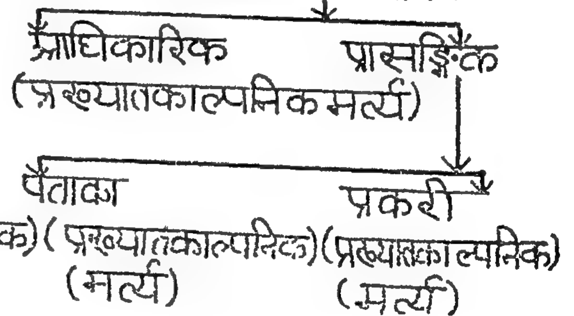
अब यदि हम कथानक का सर्वांगसुन्दर और सद्योग्राह्य वर्गीकरण करना चाहे, तो हमे देशकाल एव कल्पना के साथ-साथ उसके प्रतिपाद्य विषय को भी अपनाना होगा। यहाँ यह कहना असगत न होगा कि प्रतिपाद्य विषय की दृष्टि से कथानक और उपन्यास, ये दोनो ही आपस मे इतने घुले-मिले है कि इन्हे अलग-अलग नही किया जा सकता। इसलिए मै तो समझता हूँ कि जिस वर्ग का उपन्यास होगा, उसका कथानक भी उसी वर्ग का होगा। इसे यो भी कह सकते है कि जिस वर्ग का कथानक होगा उससे बनने वाला उपन्यास भी उसी वर्ग का होगा। इससे सिद्ध है कि कथानक के उतने ही वर्ग हो सकते है जितने कि उपन्यास के। यद्यपि आज का औपन्यासिक साहित्य दिन-प्रतिदिन अपने नये-नये रूपो मे सामने आ रहा है, तथापि थोडा विचार करने के पश्चात् उनमे मिलने वाले कथानको को अगले पृष्ठो पर रेखाचित्र मे प्रदर्शित फिलहाल ८४ भेदो मे तो विभाजित किया ही जा सकता है।

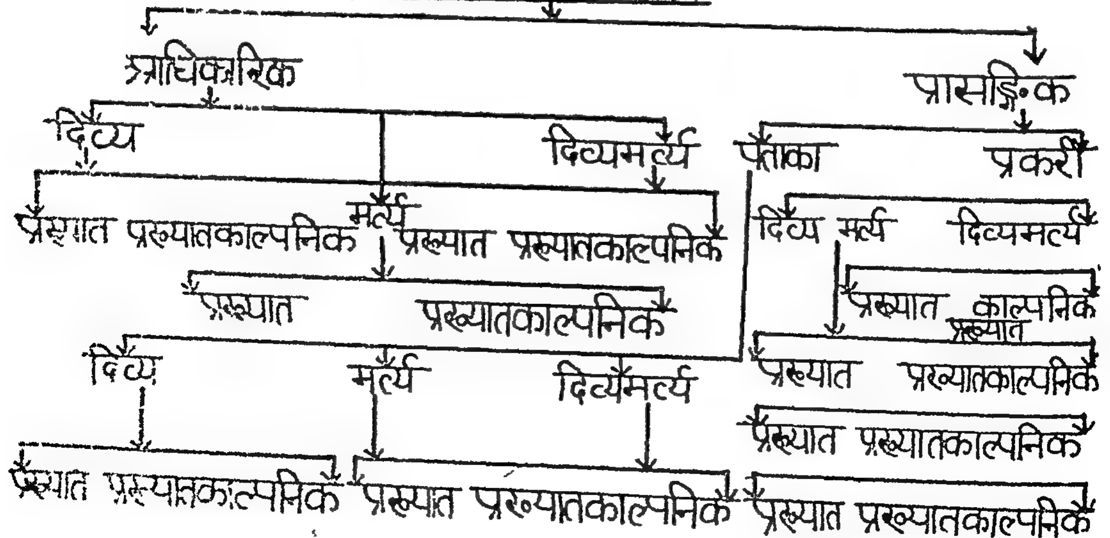
पुरातन और अधुनातन—दोनो प्रकार के उपन्यासो को दृष्टि मे रखते हुए उनके कथानको को मैंने संबसे पहले सात मुख्य वर्गों मे विभाजित किया है। तदनन्तर उनको देश, काल, कल्पना एव प्रतिपाद्य विषय के आधार पर चौरासी उपवर्गों मे निर्धारित करके धनजयकृत वर्गीकरण को परिष्कृत एव आधुनिक करने का प्रयत्न किया है। मेरा यह प्रयत्न कथानको की 'इयत्ता' कि वा 'इत्थन्ता' का दावा नही करता, यह तो उपलक्षण मात्र है। क्योकि लेखको की 'नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा' को घेरे मे वन्द नही किया जा सकता।


कथानक के चौरासी भेद
काव्य कलाप्रधान कथानक
राजनैतिक कथानक
पौराणिक कथानक
मनोवैज्ञानिक कथानक
सामाजिक कथानक
ऐतिहासिक कथानक
विस्मय एवं रोमांचकारी कथानक
आधिकारिक कथानक
प्रासङ्गिक कथानक
दिव्य
मर्त्य
दिव्यमर्त्य
प्रख्यात
काल्पनिक
प्रख्यातकाल्पनिक
पताका
प्रकरी


सामाजिक कथानक
आदर्शवादी
यथार्थवादी
आदर्शोन्मुख यथार्थवादी
आधिकारिक
(काल्पनिक मर्त्य)
प्रासङ्गिक
पताका
(काल्पनिकमर्त्य)
प्रकरी
(काल्पनिकमर्त्य)
आधिकारिक
(काल्पनिकमर्त्य)
प्रासङ्गिक
पताका
(काल्पनिकमर्त्य)
प्रकरी
(काल्पनिक मर्त्य)
आधिकारिक
काल्पनिकमर्त्य
प्रासङ्गिक
पताका
काल्पनिकमर्त्य
प्रकरी
काल्पनिक मर्त्य


राजनैतिक कथानक
आधिकारिक
(प्रख्यातकाल्पनिकमर्त्य)
प्रासङ्गिक
पताका
(प्रख्यातकाल्पनिक)
(मर्त्य)
प्रकरी
(प्रख्यातकाल्पनिक)
(मर्त्य)


ऐतिहासिक कथानक
आधिकारिक
(प्रख्यातकाल्पनिक मर्त्य)
प्रासङ्गिक
पताका
(प्रख्यातकाल्पनिक)
(मर्त्य)
प्रकरी
(प्रख्यातकाल्पनिक)
(मर्त्य)


पौराणिक कथानक
आधिकारिक
दिव्य
मर्त्य
दिव्यमर्त्य
प्रख्यात
प्रख्यातकाल्पनिक
प्रख्यात
प्रख्यातकाल्पनिक
प्रख्यात
प्रख्यातकाल्पनिक
दिव्य
मर्त्य
दिव्यमर्त्य
प्रख्यात
प्रख्यातकाल्पनिक
प्रख्यात
प्रख्यातकाल्पनिक
प्रख्यात
प्रख्यातकाल्पनिक
प्रासङ्गिक
पताका
प्रकरी
दिव्य
मर्त्य
दिव्यमर्त्य
प्रख्यात
काल्पनिक
प्रख्यात
प्रख्यात
प्रख्यातकाल्पनिक
प्रख्यात
प्रख्यातकाल्पनिक
प्रख्यात
प्रख्यातकाल्पनिक

विस्मय एवं रोमाञ्चकारी कथानक

तिलस्मी जासूसी अय्यारी

आधिकारिक प्रासङ्गिक आधिकारिक (काल्पनिकमर्त्य) प्रासङ्गिक

(काल्पनिकमर्त्य)

पताका प्रकरी

पताका प्रकरी काल्पनिकमर्त्य

काल्पनिकमर्त्य मर्त्यकाल्पनिक मर्त्येतर काल्पनिक पार्थिव

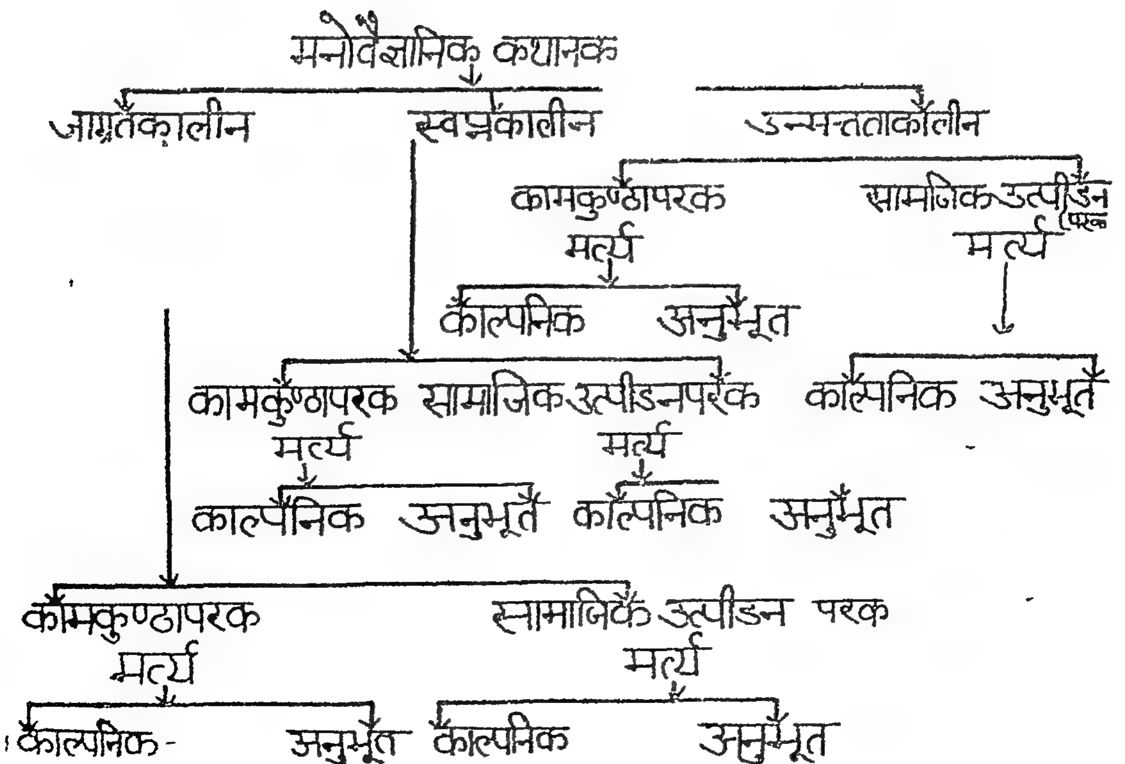
काल्पनिकमर्त्य मर्त्येतर काल्पनिक पार्थिव

आधिकारिक प्रासङ्गिक

(काल्पनिकमर्त्य)

पताका प्रकरी

काल्पनिकमर्त्य मर्त्यकाल्पनिक मर्त्येतर काल्पनिक पार्थिव



उपन्यास के कथानक मे नाटकीय तत्त्वों के औचित्य एवं अनौचित्य पर विचार

इसमे कोई सन्देह नही है कि नाटक और उपन्यास दोनो ही अपने-अपने ढग की निराली ही विधाएँ है। एक को स्टेज पर देखने की इच्छा होती है तो दूसरे को पढने की, एक दिखलाता है तो दूसरा बतलाता है, एक मे लेखक पर्दे के पीछे से ही सब कुछ कहता है तो दूसरे मे सामने आकर भी बहुत कुछ कह जाता है, एक दृश्य है तो दूसरा श्रव्य, एक को लिखने मे एडी का पसीना चोटी पर चढता है (क्योकि अभिनेयता एव रगमचीय सुविधाओ का पदे-पदे ध्यान रखना पडता है) तो दूसरे को बडे आराम से लिख सकते है, बशर्ते स्याही, कलम और कागज के साथ-साथ लेखक के पास जीवन के उतार-चढावो की जानकारी, फुरसत और कुछ धीरज हो। लेकिन इसका मतलब यह हरगिज नही समझ लेना चाहिए कि ये दोनो एक-दूसरे से मौलिक रूप मे भी भिन्न है। बल्कि सच्चाई तो यह है कि नाटक के रूप मे अपनी भावनाओ को पूर्ण रूप से प्रकट करने मे जब लेखक को तमाम रगमचीय बन्धन और कठिनाइयो का सामना करना पडा होगा तो उसकी आत्मा विद्रोह कर उठी होगी, और तभी उसने अपनी सहज एव पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए उपन्यास नामक गद्यविधा का आविष्कार कर लिया होगा, जिसे पढने वालो ने भी नाटक से कही अधिक सुविधापूर्वक मनोरजन प्रदान करने वाला मान लिया होगा। इस प्रकार हम मान सकते है कि नाटक और उपन्यास एक ही प्रतिपाद्य विषय को अभिव्यक्त करने के दो भिन्न-भिन्न मार्ग है। लेकिन इतना होने के बावजूद भी उपन्यास नाटक के मौलिक ढांचे को नही त्याग सका। बल्कि उसे तो उसने नाटक की विरासत के रूप मे पूरी तरह से अपना लिया। मनीषियो की दृष्टि मे यह मौलिक ढाँचा और कुछ नही, बल्कि कथानक, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, देशकाल, शैली और उद्देश्य का रोचक समन्वय ही है।[४७] इसे ही सस्कृत के पुरातन आलोचको ने अपने जमाने मे वस्तु, नेता और रस की त्रिवेणी मे स्वीकार किया था।

जिन्होने नाटको को देखा है और उपन्यासो को पढा है, वे जानते है कि ये तत्त्व केवल नाटक मे ही नही बल्कि उपन्यास मे भी पाए जाते है। श्री डब्लू० एच० हडसन ने बहुत ही स्पष्ट शब्दो मे कहा है—

साफ जाहिर है कि नाटक और उपन्यास एक ही कच्चे माल की दो रचनाएँ (उपज) है।[४८]

इस सम्बन्ध मे डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के विचार भी उद्धरणीय है। वह लिखते है—

"··नावेल मे नाटक की भाँति विविध प्रकार के चरित्र निर्माण की योजना रहती है और वह कार्य प्रधान होता है। नाटक की भाँति उपन्यास मे द्वन्द्व, चरमसीमा, कथानक का क्रमिक विकास, कार्यकारण सम्बन्ध, वातावरण आदि का अस्तित्व पाया जाता है, इसीलिए नावेल नाटक के रूप मे सरलतापूर्वक रूपान्तरित होता है। विषय, उद्देश्य, चरित्र-चित्रण और कथोपकथन की दृष्टि से नाटक और उपन्यास मे साम्य पाया जाता है।"[४९]

श्रीमती डॉ० कृष्णानाग के उद्धरण से भी उपन्यास और नाटक अलग-अलग होते हुए भी एक भावभूमि पर आधारित प्रतीत होते है। उन्होने लिखा है—

"...उपन्यास और नाटक कथावस्तु, पात्र तथा चरित्र-चित्रण की दृष्टि से ही एक ही धरातल पर अवतरित होते हैं, यद्यपि दोनो ही अपनी-अपनी सीमाओ से बधे रहकर ही विकसित होते है।"[५०]

पाश्चात्त्य जगत् की प्रसिद्ध समीक्षिका मेरियन क्रोफर्ड ने तो बडी प्रसन्नता के साथ यहाँ तक कह डाला है कि उपन्यास एक 'जेबी नाटक' (पोकिट थियेटर) है। इसमे केवल पात्रो और कथानक का ही समावेश नही होता, बल्कि वेशभूषा, दृश्य एव अन्य नाटकीय प्रदर्शनीपयोगी वस्तुएँ भी रहती है।

वास्तव मे अनुभव भी यही कहता है कि उपन्यास भले ही नाटक की सीमाओ मे न समाए, किन्तु तात्त्विक दृष्टि से वह नाटको का चिरऋणी रहेगा ही। ऐसी स्थिति मे यह कथन ही निर्मूल और अनुचित हो जाता है कि उपन्यास मे नाटकीय तत्त्वो की विवेचना अनुचित है। क्योकि जब उपन्यास मे नाटक के मौलिक तत्त्वो की अवहेलना नही की जा सकती, तो भला उनके विवेचन मे औचित्य क्यो नही? मैं तो समझता हूँ कि उनका विवेचन उचित ही नही, बल्कि सर्वथा आवश्यक भी है।

यहाँ मै यह भी निवेदन करना चाहता हूँ कि नाटक और उपन्यास दोनो मे कथानक नामक तत्त्व की ही प्रमुखता रहती है, शेष तत्त्व तो उसी के इर्द-गिर्द घूमा करते है। इसीलिए नाट्यविधा के सभी भारतीय[५१] एव पाश्चात्त्य[५२] समीक्षको ने कथानक को पूर्णतया 'आरोह एव अवरोह' के साथ सुविकसित, सुव्यवस्थित तथा प्रभावशाली बनाने की दृष्टि से उसे निम्नलिखित पाँच भागो मे विभाजित किया है—

भारतीय समीक्षको के अनुसार	पाश्चात्त्य समीक्षकों के अनुसार
१. आरम्भ,	१ इनीशियल इन्सीडेन्ट अथवा एक्सपोजीशन,
२. यत्न,	२. राइजिग् एक्शन अथवा काम्प्लीकेशन,
३. प्राप्त्याशा,	३. क्लाइमेक्स अथवा क्राइसिस,
४. नियताप्ति तथा	४. फालिग् एक्शन अथवा डैनूमाँ तथा
५. फलागम।	५. कन्क्लूजन अथवा केटास्ट्रोफे।

कथानक के उपर्युक्त पाँच भागो को भारतीय आचार्यों ने 'अवस्था' की सज्ञा दी है। पाश्चात्त्य मनीषियो ने इन्हे ही 'ड्रामेटिक लाइन्स' कहा है। इतना ही नही, हमारे सस्कृत-साहित्य-जगत् के पुरातन भारतीय समीक्षको ने तो कथानक को—बीज, विन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य नामक पाँच अर्थप्रकृतियो मे भी विभाजित करके इसे सर्वथा सुगठित करने का प्रयत्न किया है। हालाँकि उन्होने अवस्थाओ और अर्थप्रकृतियो के क्रमश सम्मिश्रण से बनने वाली—मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहण नामक—पाँच सन्धियो और उनके चौसठ भेदो का भी सागोपाग वर्णन किया है, किन्तु उपन्यास

की दृष्टि से सन्धियो का विश्लेषण अव्यावहारिक एव अनावश्यक है। अतः अब हम उपन्यास मे कथानक की पाँच अवस्थाओ और पाँच अर्थप्रकृतियो का विवेचन करते हुए अपने आलोच्य कथाकाव्य (उपन्यास) 'तिलकमञ्जरी' मे उनकी यथास्थान गवेषणा प्रस्तुत करेगे।

कथानक मे आरम्भ, यत्न, प्रप्त्याशा, नियताप्ति एव फलागम नामक पाँच अवस्थाओ पर विचार

आरम्भ

जहाँ मुख्य फल की प्राप्ति के लिए उत्सुकता पाई जाए, वहाँ अनेक भारतीय आचार्यो ने 'आरम्भ' नामक कार्यावस्था मानी है।[५३] आरम्भ नामक अवस्था के भरत एवं धनजय कृत लक्षणो मे 'मात्र' शब्द को देखकर डॉ० भोलाशंकर व्यास ने धारणा बना ली है कि "किसी भी फल की प्राप्ति के लिए नायकादि मे इच्छा होती है तथा उसके प्रति उत्सुकता होती है। इस उत्सुकता मात्र का पाया जाना ही आरम्भ है, क्योंकि प्राप्ति के लिए की गई चेष्टा का समावेश 'यत्न' नामक दूसरी अवस्था मे हो जाता है।"[५४]

इस सम्बन्ध मे मेरा निवेदन यह है कि 'आरम्भ' नामक अवस्था को इतना सीमित कर देना कि उसमे उत्सुकता के अलावा कुछ रहे ही नही, उचित नही है। क्योंकि फलप्राप्ति के लिए जो उत्सुकता जन्म लेती है वह निष्क्रिय नही होती है, उसमे क्रिया-शीलता की तरगे रहती है। इसीलिए उसका परिवेश अपने अभीष्ट फल की सिद्धि के अनुकूल क्रम से मानसिक, वाचिक और कायिक व्यापारो के श्रीगणेश तक स्वीकार करना चाहिए। डॉ० व्यास का यह कहना है कि 'प्राप्ति के लिए की गई चेष्टा का समावेश 'यत्न' नामक दूसरी अवस्था मे हो जाता है,' मुझे उचित प्रतीत नही होता। क्योंकि यत्न नामक दूसरी कार्यावस्था मे जो चेष्टा और व्यापार होते है, उनमे अत्यधिक वेग हुआ करता है। उस समय अभीष्ट फल को पाने के लिए व्यापारो मे दृढ़ता और तेजी आ जाती है। ऐसी स्थिति मे यह साफ जाहिर है कि फलप्राप्ति की उत्सुकता के साथ-साथ मन, वाणी और शरीर से की जाने वाली हल्की-फुल्की आरम्भिक चेष्टाओ को यत्न के अन्तर्गत नही गिना जा सकता, उन्हे तो 'आरम्भ' की ही परिधि मे मानना उचित होगा। अपनी इस विचारधारा के लिए मैं नाट्यदर्पणकार श्री रामचन्द्र-गुणचन्द्र का ऋणी हूँ।[५५]

यहाँ इतना मैं और कहना चाहता हूँ कि 'उत्सुकता' के पूर्व 'प्रथम' शब्द को उसके विशेषण के रूप मे अवश्य रखना चाहिए। क्योंकि फलप्राप्ति की उत्सुकता तो तब तक बनी रहती है जब तक कि फल प्राप्त नही हो जाता। ऐसी स्थिति मे यदि उत्सुकता को निर्विशेष अर्थात् विशेषण रहित रहने दिया जाएगा तो निश्चित ही उसमे अतिव्याप्ति का कलक दुर्निवार हो जाएगा। अत मै चाहता हूँ कि 'उत्सुकता' मे 'प्रथम' शब्द विशेषण के रूप मे जोड दिया जाए ताकि यह स्पष्ट हो सके कि फल प्राप्ति के लिए 'प्रथम उत्सुकता' के क्षणो मे 'आरम्भ' नामक कार्यावस्था हुआ करती है। इतनी छानबीन के पश्चात् अब मेरी समझ मे 'आरम्भ' की परिभाषा इस प्रकार होगी—

कथानक मे जहाँ मुख्य फल की प्राप्ति के लिए प्रथमवार उत्सुकता उत्पन्न हो और उसके अनुरूप ही मन, वाणी या शरीर से उपाय भी शुरू हो जाएँ तो वहाँ 'आरम्भ' नामक कार्यावस्था माननी चाहिए।

उदाहरण के लिए 'तिलकमञ्जरी' के उस स्थल को लिया जा सकता है जहाँ राजकुमार हरिवाहन ने प्रतीहारी द्वारा पस्तुत किए गए विद्याधर राजकुमारी तिलक-मञ्जरी के चित्र को देखा है, और देखते ही उनकी दृष्टि कभी उसके घुँघराले बालो पर, कभी उसके चाँद के समान गोरे मुखडे पर, कभी उसकी कमलकली के समान लम्बी और कजरारी आँखो पर, कभी उसके नई कोंपल के समान कोमल और रतनारे होठो पर, कभी उसकी शख के समान चढाव-उतारदार गर्दन पर कभी उसके पूर्ण उभार लिए हुए सुडौल स्तनो पर, कभी उसकी चक्राकार और गम्भीर नाभि पर, कभी उसकी पतली कमर पर, कभी उसकी चिकनी और मांसल जघाओ पर और कभी उसके कमल के समान सुकुमार पाँवो पर बारम्बार गई और अटकी है।[५६]

वह उस चित्रगत कन्या के विषय मे जानने के लिए अपनी प्रतीहारी से पूछते है। लेकिन वह सिर्फ इतना ही बता पाती है कि अभी थोडी ही देर पहले उद्यान मे उसे एक बालक मिला है, जिसने यह चित्र स्वय बनाया है और राजकुमार को दिखाने के लिए दिया है, तथा पीछे से वह भी कुमार से मिलने के लिए आने वाला है। इसी समय वह बालक आ भी जाता है। उसका नाम गन्धर्वक है। जब वह चित्रगत कन्या तिलकमजरी का और अपना परिचय देता है तो हरिवाहन के दिल मे तिलकमञ्जरी को पाने की उत्सुकता उमडने लगती है; और वह इस महान् उद्देश्य की पूर्ति मे गन्धर्वक को उत्कृष्टतम साधन समझकर उसे अपने उदार वार्तालाप से अनुकूल करने लगता है।[५७] गन्धर्वक भी उसे पूरा-पूरा आश्वासन देता है और फिर शीघ्र ही लौट कर आने का वादा करके अपने कार्य से चला जाता है। इधर तिलकमञ्जरी की रूपमाधुरी की मदिरा हरिवाहन के मन और बुद्धि पर छा जाती है। वह रातो की नीद खो बैठते है।[५८] साथ ही तिलकमञ्जरी की प्राप्ति कराने मे एकमात्र सहायक गन्धर्वक के इन्तजार मे दिन बिताने लगते हैं।

हम देखते है कि इस स्थल पर तिलकमञ्जरी के चित्र को देखकर हरिवाहन के दिल मे उत्सुकता जागती है, उसे पाने की आशा मे वह गन्धर्वक से सकाम बातचीत करते हैं और उसके चले जाने पर उसके लौटने का इन्तजार करते हैं। अत 'तिलक-मञ्जरी' के इस लम्बे स्थल को 'आरम्भ' नामक कार्यावस्था का ज्वलन्त उदाहरण माना जा सकता है। श्री डब्लू० एच० हडसन की दृष्टि से हम 'तिलकमञ्जरी' के इसी उपर्युक्त स्थल पर 'इनीशियल इन्सीडेन्ट' नामक प्रथम 'ड्रामेटिक लाइन' भी मान सकते हैं, क्योकि हरिवाहन के शान्त मन मे तिलकमञ्जरी को पाने के लिए हलचल की शुरूआत यही से होती है; और श्री हडसन के कथनानुसार मुख्य सघर्ष का उद्गम ही 'इनीशियल इन्सीडैन्ट' माना गया है।[५९]

यत्न

अब आइए, कथानक की 'यत्न' नामक दूसरी कार्यावस्था पर विचार करे।

भरत[60], धनञ्जय[61], सर्वेश्वराचार्य[62] आदि मनीषियो का कहना है कि मुख्य फल की प्राप्ति को न होती हुई देखकर जब उसके लिए शीघ्रता और दृढ़ता के साथ उपाय किए जाने लगते है तब वहाँ 'यत्न' नामक कार्यावस्था माननी चाहिए। किन्तु विश्वनाथ[63] केवल इतना ही कहते है कि फल की प्राप्ति के लिए अत्यधिक तीव्रता के साथ उपायों का श्रीगणेश 'यत्न' कहलाता है। वह उपायो की तीव्रता की पृष्ठभूमि मे फलप्राप्ति के अभाव को शब्दो द्वारा प्रकट नही करते है। रामचन्द्र-गुणचन्द्र[64] का कहना है कि जहां उपायों मे शीघ्रता शुरू हो जाए वहाँ 'प्रयत्न' नामक कार्यावस्था मान लेनी चाहिए।

विचार करने पर इन सभी आचार्यों का तात्पर्य फल प्राप्ति के लिए उपायों की तेजी और दृढता से ही प्रतीत होता है। उपायो मे यह तेजी भरतादि की दृष्टि मे मुख्य फल की प्राप्ति को न देखकर ही होती है, जबकि विश्वनाथ इसे मुख्य फल की प्राप्ति के लिए ही मानते है, और रामचन्द्र-गुणचन्द्र की दृष्टि केवल उपायो की तेजी की ओर ही है। देखा जाए तो, भरतादि की बात को ही विश्वनाथ ने संक्षिप्त और रामचन्द्र-गुणचन्द्र ने सक्षिप्ततर करके कह दिया है। विश्वनाथ ने उपायों की तीव्रता की पृष्ठभूमि मे फल-प्राप्ति के अभाव को, जिसे भरतादि ने अभिधा मे कह दिया है, शब्दो द्वारा भले ही प्रकट नही किया है किन्तु वह इस तथ्य को अवश्य मानेंगे कि फल प्राप्ति का अभाव उपायो की तीव्रता मे प्रमुख कारण होता है। इसी प्रकार रामचन्द्र-गुणचन्द्र भी फल प्राप्ति के अभाव को तथा फल प्राप्ति की उत्कृष्ट उत्सुकता को उपायो की तेजी मे हेतु मानने से इन्कार नही कर सकते है। इस प्रकार सभी आचार्यों का यही मन्तव्य सिद्ध होता है कि जहाँ मुख्य फल की प्राप्ति के लिए बडी तेजी और दृढता से उपाय शुरू हो जाते है वहाँ 'यत्न' या 'प्रयत्न' नामक दूसरी कार्यावस्था होती है।

अब इसके उदाहरण के लिए हम जब 'तिलकमञ्जरी' के पृष्ठ पलटते हैं और हरिवाहन की गतिविधियो पर दृष्टिपात करते है तो मुझे ऐसा अनुभव कही नहीं होता कि हरिवाहन ने अपनी सपनो की रानी विद्याधर राजकुमारी तिलकमञ्जरी को प्राप्त करने के लिए कभी तावड-तोड प्रयत्न किया हो। वह तो बस गन्धर्वक के लौटने के इन्तजार मे ही गर्मी और बरसात के दिन बिताते रहते है, और जब गन्धर्वक के लौटने की कोई उम्मीद नही रहती, तो तिलकमञ्जरी की याद से परेशान होकर दिल बहलाने के लिए अपने साम्राज्य का निरीक्षण करने के बहाने अपने समरकेतु आदि साथी राज कुमारो के साथ, सेना लेकर, महल से निकल पड़ते है।

स्पष्ट है कि हरिवाहन के मन मे तिलकमञ्जरी को पाने की उत्सुकता तो प्रबल रूप से है, किन्तु विद्याधरलोक तक पहुँचने मे अपने को सर्वथा असमर्थ समझकर वह कोई ठोस कदम नही उठा पाते। लक्ष्य की असाध्यता और उनकी स्वय की शालीनता के कारण वह अपनी इस वेदना को किसी पर प्रकट भी नहीं करते। ऐसी स्थिति मे 'तिलकमञ्जरीकथा' मे 'प्रयत्न' नामक कार्यावस्था के उद्गम को खोजना नितान्त असम्भव ही था। पर मुझे निराश नही होना पडा। नाट्यदर्पणकार श्री रामचन्द्रगुणचन्द्र ने रास्ता दिखा दिया। उनका तात्पर्य है कि यह आवश्यक नही है कि इन पांचो अवस्थाओ का प्रदर्शन किंवा उन्मीलन नायक द्वारा ही हो। कथानक मे नायक के जो सहायक पात्र होते

हैं या जो प्रतिकूल पात्र होते है, वे भी इन अवस्थाओ का उन्मीलन कर सकते है। इतना ही नही बल्कि वे तो यहाँ तक कहते है कि दैवयोग से भी इन अवस्थाओ की सर्जना की जा सकती है। अवस्थाओ के उन्मीलन मे न तो पात्र-विशेष का बधन है और न पात्रो की सख्या-विशेष का। किसी भी पात्र या कितने ही पात्रो द्वारा अवस्थाओ की अभिव्यजना की जा सकती है। हाँ, इतना अवश्य है कि 'फलागम' नाम की पाँचवी कार्यावस्था का भागीदार केवल नायक ही हो सकता है।[६५]

वस्तुत: नाट्यदर्पणकार का चिन्तन जहाँ मौलिक है, वहाँ नितान्त व्यावहारिक एव प्रगतिशील भी। इसके फलस्वरूप साहित्यकारो को कथानक की सर्जना मे नई दिशा मिली है। अब हम इसी आधार पर 'तिलकमञ्जरीकथा' मे 'प्रयत्न' नामक दूसरी कार्यावस्था को बड़ी आसानी से खोज सकते है। मेरी समझ से जहाँ चित्रमाय ने हाथी का रूप धारण करके राजकुमार हरिवाहन का जगल से अपहरण किया है और उडकर उसे अदृष्टपार सरोवर तक पहुँचाया है, वही से 'प्रयत्न' नामक दूसरी कार्यावस्था शुरू हो जाती है। पाठको को मालूम होगा कि इधर हरिवाहन गन्धर्वक का इन्तजार करते-करते निराश हो चुका है, उसके मन मे तिलकमञ्जरी की प्राप्ति की आशा धूमिल पडती जा रही है, और इधर गन्धर्वक यक्ष के शाप से तोता बनकर अदृष्टपार सरोवर के किनारे अपनी जिन्दगी के दिन बिता रहा है, उसका साथी और तिलकमञ्जरी का सेवक चित्रमाय भी मलयसुन्दरी की धात्री तरगलेखा को समझाने-बुझाने मे लगा है, वह स्वयं भी गन्धर्वक के लौट आने की प्रतीक्षा मे है किन्तु जब गन्धर्वक की ओर से वह भी निराश हो जाता है तो गन्धर्वक की ही योजना के अनुसार वह हरिवाहन को तिलकमञ्जरी तक पहुँचाने के लिए तीव्र प्रयत्न करता है और हाथी का रूप धारण करके हरिवाहन को अदृष्टपार सरोवर तक उडा ले जाता है।

यहाँ की परिस्थिति पर इतना विश्लेषण करने के बाद यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि हरिवाहन के अपहरण के साथ कथावस्तु की 'प्रयत्न' नामक दूसरी कार्यावस्था का श्रीगणेश हो गया है। पाश्चात्त्य मनीषियो ने ऐसे ही स्थल पर 'राइजिग् एक्शन' नामक दूसरी 'ड्रामेटिक लाइन' की सत्ता स्वीकार की है।[६६]

प्राप्त्याशा

मनुष्य के जीवन मे कभी-कभी ऐसी भी परिस्थितियाँ आ जाया करती हैं जब उसके लक्ष्य की प्राप्ति मे एक ओर तो कामयाबी के अच्छे-खासे आसार नजर आते है, पर साथ ही साथ दूसरी ओर उसमे कुछ जबरदस्त रुकावटे भी दिखाई देती हैं। ऐसी स्थिति मे वह दृढतापूर्वक यह निश्चय नही कर पाता है कि उसे उसके अभीष्ट फल की प्राप्ति होगी या नही। उस समय उसे किए जाने वाले अपने तीव्र प्रयत्नो के बल पर फलप्राप्ति की केवल आशा तो रहती है, पर विश्वास नही हो पाता। यही परिस्थिति जब किसी नाटक या उपन्यास की कथावस्तु मे पैदा हो जाती है, तब वहाँ 'प्राप्त्याशा' नामक तीसरी कार्यावस्था का क्षेत्र माना जाता है।[६७]

उदाहरण के लिए 'तिलकमञ्जरीकथा' के दो स्थल लिए जा सकते है—एक

नायिका की ओर से और दूसरा नायक की ओर से। क्रम के अनुसार पहले मैं नायिका की ओर से ही 'प्राप्त्याशा' के उदाहरण का विश्लेषण उचित समझता हूँ। जब विद्याधर मुनि के बताने से तिलकमञ्जरी को यह मालूम होता है कि वह पूर्वजन्म की प्रियगुसुन्दरी है और हरिवाहन ही पूर्वजन्म का उसका पति ज्वलनप्रभ है, तो उसे अपनी उग भूल का अहसास होता है जो हरिवाहन को ठुकराकर वह कर चुकी थी। थोड़ी देर बाद उसका सेवक चित्रमाय आकर खबर देता है कि कुमार हरिवाहन का कही पता नही चल रहा है। सुनकर तिलकमञ्जरी घबरा जाती है और सारे दिन स्वय विमान द्वारा जगत का कोना-कोना छानती है। पर निराश लौटती है। रात भर जागती रहती है। दूसरे दिन सरोवर मे डूबकर मरने के लिए चल देती है। किन्तु उसी समय उसके पिता चन्द्रसेन की खबर आती है कि कुछ ऐसे सगुन हुए है जिनसे आशा की जाती है कि हरिवाहन सकुशल है। अत छ' माह का समय देकर कुछ विद्याधरो को हरिवाहन की तलाश मे भेजा गया है। इसलिए तिलकमञ्जरी को इन्तजार करना चाहिए। यह सुनकर तिलकमञ्जरी हरिवाहन के मिलने की आशा मे जीने लगती है। उस समय शकुन की सत्यता और अपने हितैषी विद्याधरो द्वारा जारी की गई हरिवाहन की तलाश मे उसे जहाँ एक ओर हरिवाहन के मिलने की उम्मीद है वही दूसरी ओर उसे इस बात की भी आशका है कि कही हरिवाहन ने उसके वियोग मे आत्मघात न कर लिया हो। इसलिए वह हरिवाहन के मिल जाने का पूरा-पूरा विश्वास नही कर पाती।

अब इतनी समीक्षा के उपरान्त यहाँ यह निस्सन्देह स्वीकार किया जा सकता है कि हरिवाहन की प्राप्ति की आशा मे तिलकमञ्जरी ने जो छ. माह बिताए हैं, वे 'प्राप्त्याशा' नामक तीसरी कार्यावस्था के जीवन्त उदाहरण हैं।

अब लीजिए, नायक की ओर से 'प्राप्त्याशा' का उदाहरण देखिए। हरिवाहन का, देवी की तपस्या के फलस्वरूप, विद्याधरो के चक्रवर्ती सम्राट् के पद पर अभिषेक हो चुका है। वह गगनवल्लभ नामक अपनी राजधानी मे प्रवेश करने वाले है। इस समय उन्हे अपनी प्रियतमा तिलकमञ्जरी की बडी याद आ रही है। दैवयोग से उनका एक द्वारपाल अकस्मात् गन्धर्वक को सामने लाकर खडा कर देता है। उससे जब उन्हे मालूम होता है कि उनकी पूर्वजन्म की पत्नी और इस जन्म की प्रेमिका तिलकमञ्जरी उनके वियोग मे आत्महत्या करने वाली है तो वह फौरन ही उसे मरने से बचाने के लिए घोड़े पर सवार होकर चल देते है। उस समय उनकी मानसिक स्थिति डॉवाडोल हो जाती है। एक ओर उन्हे उम्मीद है कि वह शीघ्र ही पहुँचकर अपनी प्रेयसी की जीवनरक्षा करके उसे पा लेगे, पर दूसरी ओर उन्हे यह भी आशका है कि कही तिलकमञ्जरी अधीर होकर उनके पहुँचने के पहले ही चल बसे। निसन्देह ही उनकी इस मन स्थिति को 'प्राप्त्याशा' नामक तीसरी कार्यावस्था का सटीक उदाहरण माना जा सकता है। पश्चिमी विद्वान् ऐसे ही स्थल पर कथानक की 'क्लाइमेक्स' या 'क्राइसिस' नामक तीसरी 'ड्रामेटिक लाइन' मानते है।

नियताप्ति

भारतीय आचार्यों[६८] की धारणा है कि जब सभी विघ्न बाधाओ को पार कर

चुकने के बाद उपायो की सफलता से फलप्राप्ति का पूरा-पूरा विश्वास हो जाता है तो वहाँ 'नियताप्ति' नामक चौथी कार्यावस्था मानी जाती है।

'तिलकमञ्जरीकथा' मे इसका ज्वलन्त उदाहरण वह स्थल है जब हरिवाहन कदलीवन मे इन्तजार की अन्तिम घडियाँ गिनती हुई अपनी प्रेमिका तिलकमञ्जरी के सामने पहुँचता है। उस समय फिर ऐसी कोई सम्भावना शेष नही रहती जिससे उन दोनो के मिलन मे कोई बाधा पड़े। बल्कि इसके विपरीत सबको पूर्ण विश्वास हो जाता है कि अब हरिवाहन और तिलकमञ्जरी दाम्पत्य-सूत्र मे बध जाएँगे। अत यह स्थल निश्चय ही 'नियताप्ति' नामक चौथी कार्यावस्था का निदर्शन है।

यहाँ यह कह देना अप्रासंगिक न होगा कि विघ्नो का निश्चित रूप से हट जाना और अभीष्ट फल की प्राप्ति का पूरा-पूरा भरोसा कर लेना पुरातन भारतीय परम्परा मे ही उपलब्ध होता है। क्योकि भारतीय साहित्यकारो के कथानक (प्लाट) सुखान्त होते है। इसका प्रमुख कारण यह है कि असत्य पर सत्य की और बुराई पर अच्छाई की किसी न किसी प्रकार विजय दिखाकर सचाई और अच्छाई का महत्त्व बढाना भारतीयो का प्रमुख ध्येय रहा है। साथ ही उनके जीवन-दर्शन का आदर्श सदैव शाश्वत सुख रहा है। लेकिन पाश्चात्य साहित्य मे 'ट्रेजडी' का भी बोलबाला है। क्योकि वहाँ के साहित्यकार कोरे आदर्श की अपेक्षा यथार्थ एव व्यावहारिक आदर्श की अभिव्यंजना मे अधिक रुचि रखते हैं। अत सुखान्त और दु.खान्त दोनो ही प्रकार के कथानको को दृष्टि मे रखते हुए यह उचित होगा कि 'नियताप्ति' का तात्पर्य केवल इष्ट फल की ही प्राप्ति का निश्चय न मानकर इष्ट और अनिष्ट दोनो ही प्रकार के परिणामो मे से किसी एक प्रकार के परिणाम की प्राप्ति का निश्चय माना जाए, ताकि पाश्चात्य जगत् के कथानक भी इसकी परिधि मे आ सके।

पश्चिम के मनीषियो ने कथानक की इस स्थिति को स्पष्ट ही 'रिजोलूशन' कहा है, जिसका अर्थ निश्चय होता है, और जहाँ निस्सन्देह इष्ट या अनिष्ट, किसी एक प्रकार के परिणाम का निश्चय हो ही जाता है। वास्तव मे देखा जाय तो कथानक की यह वह अवस्था है जहाँ पात्रो को अपने प्रयत्न की सफलता या असफलता का पूरा-पूरा विश्वास हो जाता है।

फलागम

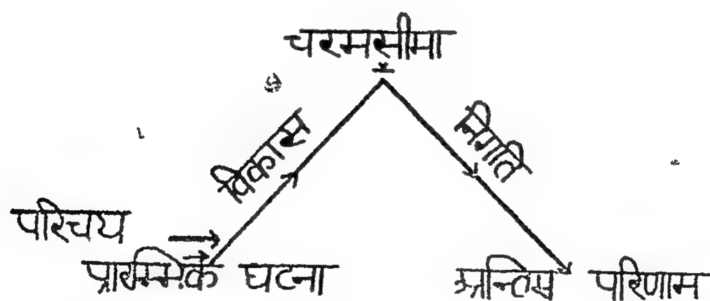
आचार्यो का कहना है कि जहाँ नायक को प्रत्यक्ष रूप से पूरी तौर से इष्ट फल की उपलब्धि हो जाती है, वहाँ 'फलागम' नामक पाँचवी कार्यावस्था मानी गई है।[६६] 'तिलकमञ्जरी' मे इसके उदाहरण के लिए उस स्थल पर ध्यान देना पडेगा जहाँ तिलकमञ्जरी के पिता चक्रसेन ने अपने विभवानुसार बडी धूमधाम से प्रसन्नता के साथ तिलकमञ्जरी का हाथ सदा के लिए हरिवाहन के हाथो मे सौपा है। उस समय कथानायक हरिवाहन को अपनी प्रेयसी तिलकमञ्जरी धर्मपत्नी के रूप मे प्राप्त होती है तो उसके सारे द्वन्द्व समाप्त हो जाते हैं, और वह पूर्णरूप से अभीष्ट फल को पाकर निहाल हो जाता है। यही कथानक की 'फलागम' नामक पाँचवी अवस्था आ जाती है।

पश्चिमी समालोचक इसे 'कनक्लूजन' या 'केटॉस्ट्रोफे' कहते है। उनके यहाँ यह आवश्यक नही है कि यह 'कनक्लूजन' नायक के अनुकूल ही निकले; प्रतिकूल भी निकल सकता है। क्योकि वे तो पात्रो मे सघर्ष (कानफ्लिक्ट) दिखाते है। इस सघर्ष मे नायक को सफलता भी मिल सकती है और असफलता भी। भारतीयो की भाँति अभीष्ट फल की प्राप्ति का उद्देश्य बनाकर केवल सुखान्त रचना करने के वे कायल नही होते हैं। अत. उनके साहित्य की दृष्टि से यदि हम चाहे तो 'फलागम' नामक इस अन्तिम कार्यावस्था का आशय 'अन्तिम परिणाम' भी ले सकते है।

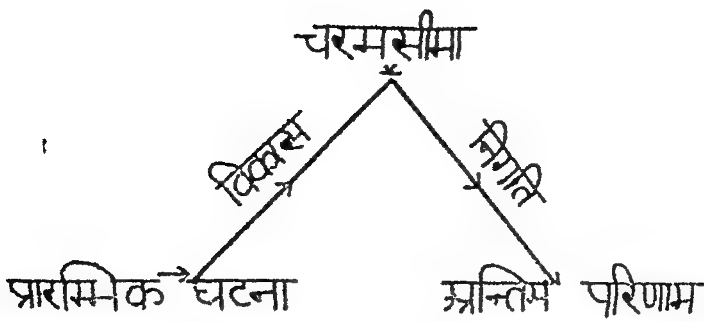
ख्यातिप्राप्त समीक्षक श्री डब्लू० एच० हडसन का विचार है कि कथावस्तु की आरम्भ नामक अवस्था के पहले उसे सुबोध बनाने के लिए जो महत्त्वपूर्ण एवं परिचयात्मक विवरण रहता है उसके लिए भी एक स्वतन्त्र अवस्था स्वीकार करनी चाहिए। उन्होने ऐसी अवस्था का नाम 'इण्ट्रोडक्शन' या 'एक्सपोजीन' रखा है। इस प्रकार उनकी दृष्टि से कथानक की अवस्थाएँ छ होनी चाहिएँ।[७०]

किन्तु हडसन की यह धारणा निर्भ्रान्त नही है। कथानक मे कथाकार को प्रत्येक अवस्था की सरल अभिव्यजना के लिए एक अनुकूल पृष्ठभूमि की सर्जना करनी ही पड़ती है। यह तो उसका सहज धर्म होता है, जो सारे कथानक मे उसे निभाना पडता है, अन्यथा घटनाओ मे तारतम्य ही नही रहे। इसलिए हडसन की 'इण्ट्रोडक्शन' या 'एक्सपोजीशन' नामक 'ड्रामेटिक लाइन' का 'इनीशियल इन्सीडेन्ट' की पृष्ठभूमि मे ही अन्तर्भाव किया जा सकता है, और उसे अलग से एक तत्त्व मानने की आवश्यकता समाप्त हो सकती है। भारत मे भी प्रस्तावना या आमुख नाम से वर्ण्यवस्तु का श्रीगणेश तो किया गया है किन्तु उसे अलग से अवस्था मानने की बात नही उठाई गई है।

अब यदि इन पाँचो अवस्थाओ को रेखाचित्र द्वारा भी समझ लिया जाए तो अच्छा ही रहेगा। पाश्चात्य समीक्षक श्री फ्रीटेग ने इन पाँच अवस्थाओ को स्तूपाकार के रूप मे प्रदर्शित किया है—

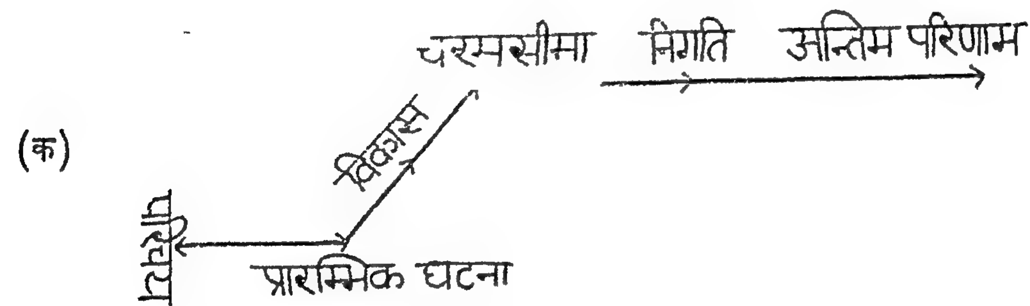


हडसन चूंकि 'इनीशियल इन्सीडेन्ट' (आरम्भिक घटना) के पहले इण्ट्रोडक्शन' या 'एक्सपोजीशन' नामक कार्यावस्था भी स्वीकार करना चाहते है, इसलिए उन्होने इसका रूप कुछ बदल दिया है।[७१] देखिये—

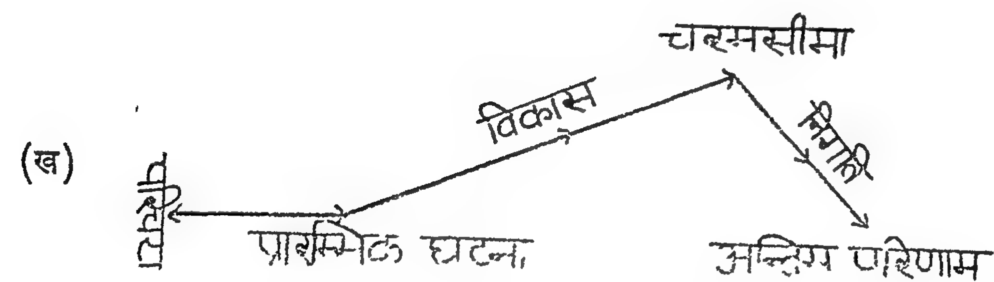


श्री हडसन का यह भी कहना है कि कुछ कथानकों में (जैसे कि किंग्लियर के कथानक में) संघर्ष की चरमसीमा बहुत ही शीघ्र आ जाती है, और कुछ में (जैसे कि 'ओथेलो' में) यह काफी देर से आती है, इसलिए रेखाचित्र को निम्नलिखित रूपों में भी बनाया जा सकता है[७२]—

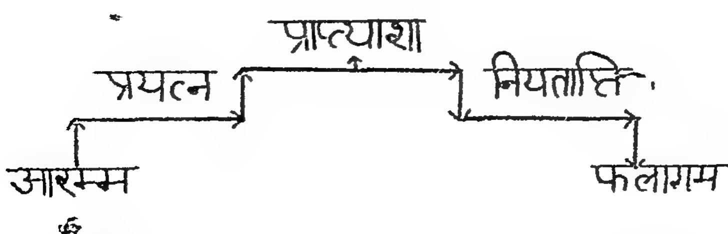
(क)



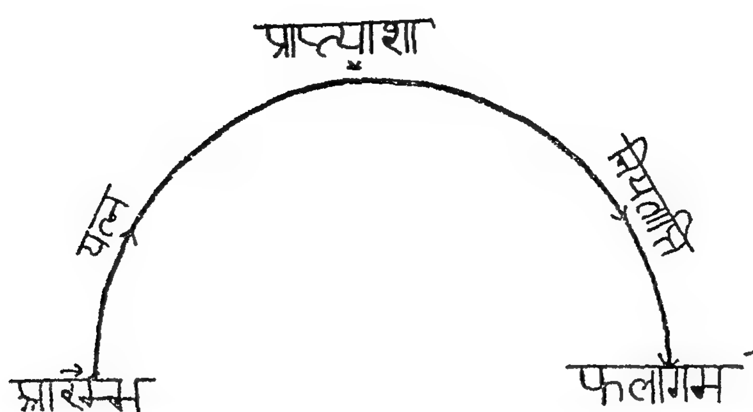
(ख)



डॉ० रामकुमार वर्मा की दृष्टि से यह रेखाचित्र इस प्रकार होगा—



और मैं समझता हूँ कि आदर्श कथानक के क्रमिक आरोह और अवरोह को ध्यान में रखते हुए रेखाचित्र कुछ इस प्रकार का बनाना चाहिए—



कथानक की कार्यावस्थाओ के उपर्युक्त विश्लेषण से आशा है कि जिज्ञासुओ को निष्पक्ष एव तुलनात्मक दिशा मिलेगी।

कथानक में पाँच अर्थप्रकृतियाँ

काव्यशास्त्र के प्राचीन भारतीय आचार्यों ने कथानक के सुसगठित एव आनुपातिक विकास के लिए पाँच कार्यावस्थाओ की भाँति उसमे—बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य नामक—पाँच अर्थप्रकृतियो को भी निर्धारित किया है।[73]

एक सफल एव सुबुद्ध कथाकार होने के नाते धनपाल ने भी अपनी 'तिलकमञ्जरी कथा' के कथानक मे इनका यथास्थान सन्निवेश किया है। नीचे प्रत्येक के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए 'तिलकमञ्जरी कथा' मे उनकी सगति दिखाने का प्रयास किया जा रहा है।

बीज

कथानक के उस अश को 'बीज' कहते है जो नितान्त आरम्भिक होता है और अत्यन्त सूक्ष्म रूप से प्रकट किया जाता है, किन्तु वही उत्तरोत्तर अकुरित, पल्लवित एव पुष्पित होता हुआ अन्त मे मुख्य फल का हेतु बनता है।[74]

वास्तव मे इस नाम पर रूपकातकार की छाया है। कथानक के आरम्भिक अश मे बीज का आरोप, निश्चय ही, उसके मुख्य फल की प्राप्ति मे सफल वृक्ष के आरोप का अभिव्यजक है। सच देखा जाय तो यह वह स्थल होता है जहाँ कथाकार अपने कथ्य का एक हल्का इशारा कर देता है और इसके बाद फिर अपने कथानकको आगे ले उडता है। इस दृष्टि से धनपाल की 'तिलकमञ्जरी कथा' मे आरम्भ का वह-स्थल जहाँ ज्वलनप्रभ की सम्राट् मेघवाहन से मुलाकात हुई है, और उसने अपनी और अपने दोस्त सुमाली की दिव्य आयु की समाप्ति की कथा सुनाई है, और खासकर जहाँ उसने सम्राट् को हार स्वीकार करने के लिए, तमाम हेतु दिये है[75]—निश्चय ही 'बीज' नामक अर्थप्रकृति का उदाहरण बनता है।

स्पष्ट है कि ज्वलनप्रभ ने मेघवाहन को हार सोपते समय जो सकेत दिये है वे पूर्णत: आगे की कथा के बीजरूप मे है। क्योकि उसकी ये साकेतिक अवधारणाएँ ही

आगे चलकर अंकुरित, पल्लवित और पुष्पित होकर हरिवाहन और तिलकमञ्जरी के प्रणयपरिणयरूपी मुख्य फल मे परिणत हुई हैं।

बिन्दु

भारतीय आचार्यो की मान्यता है कि जब मुख्य कथा का प्रवाह अन्य किसी अवान्तर कथा या व्यापार से रुकने लगता है तब कथाकार किसी न किसी उपाय से उसे पुन प्रवाहित करता है। बस उसका यह उपाय ही 'बिन्दु' नामक अर्थप्रकृति कहलाता है।[७६] यह स्वाभाविक ही है कि जिस प्रकार एक माली बीज बोने के बाद उसे सूखता हुआ देखकर पानी के छीटो से तर कर देता है, उसे सूखने नही देता, फलस्वरूप एक दिन उसका बोया हुआ वही बीज एक अच्छा खासा छायादार वृक्ष बन जाता है, ठीक उसी प्रकार कथाकार भी अपनी कथा के बीज को अन्य अवान्तर घटनाओ से दबता हुआ देखकर किसी भी पात्र के माध्यम से किसी युक्ति या उक्ति द्वारा उसे पुन उभारता है, ताकि पाठको का मन, जो थोड़ी देर के लिए अवान्तर घटनाओ के कौतूहल मे फस गया था, फिर से उस ओर आ जाए। हम देखते है कि जैसे तेल की बूंद पानी मे पडकर सब ओर फैलती है ठीक वैसे ही कथाकार का यह उपाय भी मुख्य कथानक के घटना जाल पर फैल जाता है। मैं समझता हूँ कि इसीलिए इसका नाम भी 'बिन्दु' रखा गया होगा, जो बहुत ही सारगर्भित है। सक्षेप मे यदि कहना चाहे तो कह सकते है कि मुख्य कथानक की अवान्तर कथा या घटना द्वारा टूटती हुई शृखला को जोड़ने वाले तत्त्व (दृश्य-सवाद) को 'बिन्दु' कहते है।

अब आईए, इसी दृष्टिकोण से धनपाल की 'तिलकमञ्जरी कथा' मे 'बिन्दु' की खोज करें। मैं सोचता हूँ कि यहाँ यह याद दिलाना तो जरूरी होगा नही कि 'तिलकमञ्जरी कथा' मे हरिवाहन और तिलकमञ्जरी की प्रणयकथा ही मुख्य कथा है। शुरू मे हम देखते हैं कि कथानायक हरिवाहन के जन्म, शैशव एव विद्याभ्यास के रोचक वर्णन पाठको के चित्त को अपनी ओर केन्द्रित करने मे सर्वथा सक्षम हैं। किन्तु जब से समरकेतु आ जाता है तब से पाठको का ध्यान उस ओर भी केन्द्रित होने लगता है, और जब वह अपनी दर्दीली प्रेम-कथा सुनाता है तब तो पाठको के दिल और दिमाग पर वही छा जाता है। उस समय मुख्य कथानक मे गति एव प्रकाश देने वाले सारे कार्यकलाप ठप्प हो जाते हैं। इस प्रकार यहाँ अवान्तर कथा के द्वारा मुख्यकथा का प्रवाह रुक जाता है। ऐसी स्थिति मे बडे सहज और नाटकीय ढग से प्रतीहारी द्वारा नायिका के चित्र को उपस्थित करके धनपाल ने सूखते हुए मुख्यकथा के प्रवाह को फिर से तरलित किया है और आगे बढाया है।[७७]

यहाँ यह निर्विवाद है कि समरकेतु की आत्मकथा के प्रबल वेग से टूटते हुए मुख्यकथा के सूत्र को नायिका के चित्र की अकस्मात् उपस्थिति से जोडा गया है। क्योकि पानी मे पडी हुई तेल की बूंद के समान नायिका का वह चित्र हरिवाहन के दिल पर छा जाता है और वह समरकेतु की आत्मकथा को भूलकर उसे पाने के लिए ताने-बाने डालने लगता है। इस सच्चाई को देखते हुए इस स्थल को 'बिन्दु' कहना सर्वथा उचित होगा।

पताका

मुख्यकथा मे श्रीवृद्धि के लिए दूर तक उसके साथ-साथ जो एक प्रासगिक कथा चला करती है, उसे 'पताका' कहते है।[७८] इस कथा का भी एक नायक होता है जो सदैव मुख्यकथा के नायक के अनुकूल रहता है और उसके अभीष्ट फल की सिद्धि मे सदैव हाथ बँटाता है और प्रसन्न रहता है। पर इसकी भी एक अभिलाषा होती है, जो नायक की फलसिद्धि के या तो पहले या साथ ही साथ पूरी हो जाती है। लेकिन यह नायक की सहायता इसके बावजूद भी करता रहता है। तिलकमञ्जरी मे समरकेतु और मलयसुन्दरी की प्रणयकथा एक ऐसी ही दूरव्यापिनी प्रासगिक कथा है, जिसे 'पताका' कहा जा सकता है।

लेकिन यहाँ यह स्पष्ट कर देना अनुचित न होगा कि समरकेतु को वह अवसर नही मिल पाया है जिसमे वह हरिवाहन की, तिलकमञ्जरी की प्राप्ति मे, प्रत्यक्ष कुछ सहायता कर पाता। वह तो बेचारा छ माह तक उनकी तलाश मे पहाड़ो पर भूखा-प्यासा भटकता रहा, और जब उसे हरिवाहन मिले तब उन्हे उसकी सहायता की आवश्यकता ही न थी। पर इस कमी से उसके 'पताकानायकत्व' मे कोई कमी नही आती। क्योकि वह न सही, उसकी प्रेमिका मलयसुन्दरी ने तो हरिवाहन की पूरी-पूरी मदद की ही है, और तभी की है जब उसे यह मालूम होता है कि हरिवाहन उसके प्रेमी समरकेतु का दोस्त है। यही जानकर तो वह उसके तिलकमञ्जरीविषयक प्रेमांकुर की देख-रेख करने मे जरा भी कोर-कसर नही रखती, जिसके फलस्वरूप ही हरिवाहन को तिलकमञ्जरी का अगाध स्नेह प्राप्त होता है।

अत मेरे विचार से तो मलयसुन्दरी द्वारा की गई हरिवाहन की सहायता को अप्रत्यक्ष रूप से समरकेतुकृत ही मानना चाहिए; और फिर यह आवश्यक भी तो नही है कि पताकानायक ही मुख्य-नायक की सहायता करे, पताकानायिका भी तो कर सकती है, इसमे हर्ज ही क्या है?

प्रकरी

आचार्यों का कहना है कि जो प्रासगिक कथा अचानक ही किसी एक स्थल पर थोडी देर के लिए प्रकट होकर मुख्य-कथा की वाछनीय सहायता कर जाती है, उसे प्रकरी कहते है।[७९] इसका भी एक नायक होता है, जो मुख्य नायक की मौके पर सहायता करना ही अपना धर्म समझता है। उसे अपने लिए कुछ भी नही चाहिए[८०], यहाँ तक कि वह सहायता करने के बाद दिखाई भी नही देता।

'तिलकमञ्जरीकथा' मे अनगरति नामक विद्याधर कुमार के सूक्ष्म वृत्तान्त को 'प्रकरी' कह सकते है। क्योकि तिलकमञ्जरी के विरह मे पहाड़ से गिरने को उद्यत हरिवाहन को वह बडी खूबी के साथ न केवल रोक लेता है, बल्कि विद्याधर राजकुमारी तिलकमञ्जरी के योग्य बनने लिए, अर्थात् चक्रवर्ती विद्याधर सम्राट् बनने के लिए, उसे तपस्या मे प्रवृत्त करके उसका महान् उपकार भी करता है।

कार्य

भरत एवं विश्वनाथ का कहना है कि जिस साध्य को लेकर नायक के तमाम कार्य-कलाप शुरू होते है और जिसकी उपलब्धि पर वह कृतकृत्य हो जाता है, उस मुख्य साध्य की प्राप्ति को 'कार्य' कहा जाता है।[८१]

वास्तव मे देखा जाए तो आरम्भ मे कथा का जो बीज बोया जाता है वही जब सब प्रकार के घात-प्रतिघातो से सुरक्षित होकर पूर्णरूप मे फलित होने लगता है तब कथा की 'कार्य' नामक अर्थप्रकृति कहलाती है, जिसे दूसरे शब्दो मे साध्य की सिद्धि भी कह सकते है। तिलकमञ्जरीकथा मे हरिवाहन और तिलकमञ्जरी का विवाह उस 'कार्य' नामक अर्थप्रकृति का उदाहरण है।

यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि नाट्यदर्पणकार ने इनका नाम 'उपाय' रखा है। उन्होने इनके प्रयोग मे कथाकार को इतनी छूट दे रखी है कि वह अपनी इच्छानुसार इनके क्रम को बदल भी सकता है। उसके लिए यह भी आवश्यक नही है कि वह अपने कथानक मे इन पाँचो का ही प्रयोग करे। अपनी रुचि के अनुसार वह कम का भी प्रयोग कर सकता है। उन्होने इन पाँचो उपायो को अचेतन और चेतन के भेद से पहले दो भागो मे विभक्त किया है। तदनन्तर अचेतन को, मुख्य और अमुख्य के भेद से, पुन दो भागो मे विभक्त किया है। उन्होने बीज को मुख्य और कार्य को अमुख्य माना है। चेतन को भी, मुख्य और सहायक के भेद से दो भागो मे विभक्त किया है। मुख्य 'बिन्दु' को माना है और सहायक को 'स्वार्थसिद्धि युत परार्थसिद्धि पर', तथा 'केवलपरार्थसिद्धियुत' भेद से पुन दो भागो मे विभक्त किया है। इनमे पहले को पताका और दूसरे को प्रकरी माना है।[८२]

इस प्रकार हम देखते है कि नाटचद णकार ने इन पाँचो अर्थप्रकृतियो की उपायो के नाम पर भलीभाँति व्याख्या तो की है किन्तु इनकी ऐच्छिकता को स्वीकार करके इनका महत्त्व अधिक भी नही रहने दिया है। सम्भव है कि पाश्चात्य समीक्षक भी अर्थ-प्रकृतियो की इस दुर्बलता से परिचित रहे हो, और इसीलिए उन्होने कथानक की पाँच अवस्थाएँ तो स्वीकार कर ली, किन्तु अर्थप्रकृतियो की ओर वे मौन ही रहे।

सन्दर्भ

१ (क) कथानक (न०) कथयत्यत्र, कथ् आनक। कहानी, गल्प।
ख्याते कथाविशेषे यथा वेतालपञ्चविंशादि।
तत्र उपाख्यानबाहुल्येन कथानकतया व्यवहारः॥
—वाचस्पत्यम्, भाग ३, पृ० १६८०

(ख) कथानकम् (कथ् आनक) छोटी कहानी—उदा० वेतालपञ्चविंशति।
—वामनशिवराम आप्टे सस्कृत हिन्दी कोश (हिन्दी सस्करण) पृ० २४३

२ (क) "प्रबन्ध—पु० प्र+बन्ध् भावे घञ्। १ सन्दर्भे ग्रन्थादे., २ रचने च। × × × प्रबन्धकल्पना—स्त्री० 'प्रबन्धकल्पना स्तोकसत्या प्राज्ञाः कथां विदु.' इत्युक्तलक्षणायामल्पसत्यायां बहुमिथ्याकथायाम् अमरः।

—वाचस्पत्यम् (चौखम्बा प्रकाशन १९६२), भाग ६, पृ० ४४७१-४४७२

(ख) "प्रबन्ध पु० (प्रबध्यते इति। प्र+बन्ध्+घञ्।) सन्दर्भः इति त्रिकाण्डशेष। (× × ×) काव्यादिग्रथनम्, यथा —'प्रबन्धोऽयं सन्धीरसिकजगतान्तरस्य सरसाम्।' इति हंसदूतः। 'प्रबन्धकल्पना—स्त्री० प्रबन्धस्य कल्पना रचना। बह्वनृता स्तोकसत्या कथा'। (× ×)"

—शब्दकल्पद्रुम. (कलकत्ता प्रकाशन) काण्ड ३, पृ० २७५

३ Let us define a plot. We have defined a story as a narrative of events arranged in their time sequence. A Plot is also a narrative of events. the emphasis falling on casuality. 'The King died and then the Queen died', is a story. 'The King died and then the Queen died of grief', is a plot. The time sequence is preserved, but the sense of casuality overshadows it Or again : 'The Queen died, no one knew why, until it was discovered that it was through a grief at the death of the King'. This is a plot with a mystery in it, a form capable of high development It suspends the time-sequence, it moves as far away from the story as its limitations will allow. Consider the death of the queen. If it is in a story, we say 'and then ?' If it is in a plot we ask 'why ?' That is the fundamental difference between these two aspects of the novel

—Aspects of the Novel . pp. 93-94

+ किसी भी उपन्यास के कथानक (प्लाट) का पूरा-पूरा आनन्द हम तभी प्राप्त कर सकते है जबकि वह लिपिबद्ध हो। क्योकि मौखिक रूप से कहने और सुनने पर कथानक की बहुत-सी महत्त्वपूर्ण और मार्मिक अनुभूतियो से वचित रह जाने की अधिक सम्भावना रहती है। इतना ही नही, बल्कि ऐसी स्थिति मे उपन्यास, ही नही रहता। क्योकि उस समय कथानक, कथानक न रह कर घटानाओ का एक सकलनमात्र, जिसे कथा कह सकते है, हो जाता है। यही बजह है कि मौखिक रूप से हम कहानी सुनना तो पसन्द कर लेते है किन्तु उपन्यास सुनना नही, उपन्यास को तो सुनने की अपेक्षा पढना ही ज्यादा पसन्द करते है। —लेखक

४. "We shall all agree that the fundamental aspects of the novel is its story-telling aspect"

—Aspects of the Novel : E M Forster, p. 33

५. "The most simple form of prose fiction is the story, which records a succession of events, generally marvellous"

—The structure of the Novel, By Edwin Muir, London Edition of 1962, p 17

६. (अ) "The plot, then, is the novel in it's logical intellectual aspect, It requires mystery, but the mysteries are solved later on, the reader may be moving about in worlds unrealised, but the novelist has no misgivings."

—Aspects of the Novel E. M, Forster, p. 103

(ब) "The term—'Plot'—stands outside—these dangers. It is a definite term, it is a literary-term, and it is universally applicable. It can be used in the widest popular sense It designates for every one, not merely for the critic, the chain of events in a story and the principale which knits it together"

—The structure of the Novel : By Edwin Muir, p. 16

७. डॉ० कृष्ण नाग किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यासो का वस्तुगत और रूपगत विवेचन, पृ० १५

८. डॉ० प्रतापनारायण टण्डन . हिन्दी उपन्यास कला, पृ० १२७

९. डॉ० सुरेश सिन्हा . उपन्यास शिल्प और प्रवृत्तियाँ, पृ० ४३

१०. (अ) डॉ० शुभकार कपूर आचार्य चतुरसेन का कथा साहित्य, पृ० १२९

(ब) डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय पश्चिमी आलोचना शास्त्र, पृ० ३८५

११ 'गणेशजी को बनाने बैठे और बना दिया बन्दर'। यह एक कहावत है। इसका प्रयोग तभी किया जाता है जब कर्त्ता अपनी इच्छा और प्रयत्नो के विपरीत कोई काम कर बैठता है और उसका पता उसे तब चलता है जब काम पूरा हो जाता है। वास्तव मे इस कहावत का प्रयोग सस्कृत पढे-लिखे लोग ही करते है। सामान्य जनता मे इसकी जगह पर एक दूसरी ही कहावत चलती है, और वह यह है—'आये थे हरिभजन को औटन लगे कपास'। —लेखक

१२. पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्य नवमित्यवद्यम्।
सन्त परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते मूढ परप्रत्ययनेयबुद्धि ॥

—महाकवि कालिदास के 'मालविकाग्निमित्रम्' की प्रस्तावना से।

१३. 'अरस्तू का काव्य शास्त्र' पृ० २१, अनुवादक डॉ० नगेन्द्र।

१४. "तावेवायुतसिद्धौ द्वौ विज्ञातव्यौ ययोर्द्वयो ।
अनश्यदेकमपराश्रितमेवावतिष्ठते" ॥ —तर्कभाषा, विश्वेश्वर टीका, पृ० ३०

१५. We shall all agree that the fundamental aspect of the novel is its story—telling aspect Let us listen to three voices. If you ask one type of man, 'What does a novel do ?' he will reply placidly, 'Well-I don't know, It seems a funny sort of question to ask—a novel is a novel,—Well I don't know—I suppose it kind of telling a story, so to speak'. He is quite good tempered and vague, and probably driving a motor-Bus at the same time and paying no more attention to literature than it meri s Another man whom I visualize as on a golf-course, will be aggressive and brisk He will reply 'what does

a novel do ? Why, tells a story of course, and I have no use for it, if it did not I like a story, very bad taste on my part, no doubt, but I like a story You can take your art. you can take your literature, you can take your music, give me a good story And I like a story to be a story, mind and my wife's the same.' And a third man, he says in a sort of drooping regretful voice, 'Yes—Oh dear yes—the novel tells a story I respect and admire the first speaker. I detest and fear the second And the third is myself. Yes—Oh dear yes—the novel tells a story That is the fundamental aspect without which it could not exist That is the highest factor common to all novels —'Aspect of the novel'—By E M Forster, p 32 & 34

१६ "The novel of character is one of the most important divisions in prose fiction Probably the purest example of it in English Literature is 'Vanity Fair', Vanity Fair has no hero, no figure,...no very salient plot, no definite action to which everything contributes, no end towards which all things move The characters are not conceived as parts of the plot, on the contrary they exist independently, and the action is a subservient to them "

—'The Structure of the Novel', By Sri Edwin Muir, p 23

१७. 'Aspect of the novel' . By E. M. Forster, p 108

१८. "Because fiction is fiction and not fact, it is sometimes carelessly assumed that it has nothing to do with fact "

—'An Introduction to the Study of Literature'. By W. H Hudson p 133

१९ काव्यशास्त्र, पृ० ८६, तृतीय सस्करण।

२० साहित्य का साथी, पृ० ८२

२१. साहित्य परिचय, पृ० ९२

२२ हिन्दी उपन्यास-कला, पृ० १२६

२३. "कारणगुणा हि कार्यगुणानारभन्ते।"

२४ ''देखिए आनन्दवर्धन के 'ध्वन्यालोक' का चतुर्थ उद्योत।

२५ '' समस्त उपन्यास एक सुगठित रचना होनी चाहिए। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसमे अनावश्यक का त्याग और आवश्यक को ग्रहण किया गया है। कोई आवश्यक बात छूटी नही है। —डॉ० भगीरथ मिश्र, काव्यशास्त्र, पृ० ९१

२६ "A special aspect of the principle of unity in plot structure has next to be considered The plot of a novel may be simple or compound, that is, it may be composed of one story only, or of two or more stories in combination, and the law of unity requires that in a compound plot the parts should be wrought together into a single " —W H Hudson, 'An introduction to the study of literature', p 142

२७. हालाँकि सिनेमा का आनन्द अकेले भी उठाया जा सकता है; और बहुत से उठाते भी है। पर कभी-कभी वहाँ भी—विशेष रूप से शृंगार प्रधान फिल्मो मे—दर्शक को अपने सहचर का अभाव खटकने लगता है। अत सिनेमा का भी अधिकाश आनन्द सहचर-सापेक्ष ही होता है। —लेखक

२८. "One function of fiction is to provide amusement for the leisure hour and a welcome relief from the strain of practical affairs, and any novel which serves its purpose in this way may, on the sole condition that the pleasure it affords is wholesome and tonic, be held to have fully justified itself"

—An Introduction to the study of literature' : By W. H. Hudson, p. 132

२९ "It (plot) is line to direct the reader's interest This is possibly a most important thing in fiction, for it is by direction of interest, that he induces the mood he desires"

—Sommerset Maugham The Summing up, p. 138

३०. "What is good plot ?.. In the proportion as the interest of the story is maintained, the plot is good one, insofar as it lacks the the plot is bad one"

—Technique of Novel Writing By Basil Hogarth, p 52

३१. "अनौचित्याद् ऋते नान्यद् रसभङ्गस्य कारणम्।
प्रसिद्धौचित्यबन्धस्तु रसस्योपनिषत्परा ॥" —ध्वन्यालोक, ३/१४ के आगे

३२ "..They tried to write like man and from men's point of view instead of taking their stand on the fundamental differences of sex, with all that this implies and endeavouring to portray life frankly and sincerely as woman knows it" —George Eliot

३३. "Curiosity is one of the lowest to the human faculties. curiosity by itself takes us a very little way, nor does it take us far into the novel only as far as the story. If we would grasp the plot we must add intelligence and memory"

—E M Forster : 'Aspect of the Novel', p 2S

३४. Elizabeth Bower 'Writers on Writing', p. 178, Selected by Walter Allen.

३५ आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, 'समीक्षाशास्त्र', पृ० ६६७

३६ "विभावभावानुभावसञ्चार्यौचित्यचारुण ।
विधि कथाशरीरस्य वृत्तस्योत्प्रेक्षितस्य वा ॥
इतिवृत्तवशायाता त्यक्त्वाऽननुगुणा स्थितिम् ।
उत्प्रेक्ष्यान्तराभीष्टरसोचितकथोन्नय ॥
सन्धिसन्ध्यङ्गघटन रसाभिव्यक्त्यपेक्षया ।
न तु केवलया शास्त्रस्थितिसम्पादनेच्छया ॥

उद्दीपनप्रशमने यथावसरमन्तरा ।
रसस्यारब्धविश्रान्तेरनुसन्धानमङ्गिन ॥
अलङ्कृतीना शक्तावप्यानुरूप्येण योजनम् ।
प्रबन्धस्य रसादीना व्यञ्जकत्वे निबन्धनम् ॥" —ध्वन्यालोक, ३/१०-१४

३७ गद्यकाव्यमीमासा, पृ० २३

३८ "It has to be remembered that Drama is the novelist's highest light, like the white paper or white paint of a draughtsman, to use it prodigally where it is not needed is to lessen its force where it is essential" —Percy Lubbock The craft of Fiction, p 120

३९ इतिवृत्तं द्विधा चैव बुधस्तु परिकल्पयेत् ।
आधिकारिकमेक तु प्रासङ्गिकमथापरम् ॥
यत्कार्यं हि फलप्राप्त्या समर्थ परिकल्प्यते ।
तदाधिकारिक ज्ञेयमन्यत्प्रासङ्गिक विदु ॥
कवे प्रयत्नान्नेतृणा युक्ताना विध्यपाश्रयात् ।
कल्प्यते हि फलप्राप्ति समुत्कर्षात् फलस्य च ॥
कारणात् फलयोगस्य वृत्त स्यादाधिकारिकम् ।
तस्योपकरणार्थं तु कीर्त्यते ह्यानुषङ्गिकम् ॥
—नाट्यशास्त्र, अध्याय १९, कारिका २-५

४० यद्वृत्त हि परार्थ स्यात्प्रधानस्योपकारम् ।
प्रधानवच्च कल्प्येत सा पताकेति कीर्तिता ॥
फल प्रकल्प्यते यस्या परार्थं केवल बुधैं ।
अनुबन्धविहीन स्यात् प्रकरीमिति निर्दिशेत् ॥ —वही कारिका २५ और २६

४१. सिद्धमुत्प्रेक्षित चेति तस्य भेदावुभौ स्मृतौ ।
सिद्धमागमदृष्ट च सृष्टमुत्प्रेक्षित कवे ॥—अग्निपुराण अध्याय ३३८, श्लोक १८

४२. ... ... वस्तु द्विधा ।
तत्राधिकारिक मुख्यमङ्ग प्रासङ्गिक विदु ॥
अधिकार फलस्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभु ।
तन्निवृत्तमभिव्यापि वृत्त स्यादाधिकारिकम् ॥
प्रासङ्गिक परार्थस्य स्वार्थो यस्य प्रसङ्गत ।
सानुवन्ध पताकाख्य प्रकरी च प्रदेशभाक् ॥
. .. . ।
.. .. ॥
प्रख्यातोत्पाद्यमिश्रत्वभेदात् त्रेधापि तत् त्रिधा ।
प्रख्यातमितिहासादेरुत्पाद्यं कविकल्पितम् ॥
मिश्र च सङ्कृरात्ताभ्या दिव्यमर्त्यादिभेदत ।
... . ॥

—दशरूपक, प्रथम प्रकाश, कारिका ११-१६

४३. इदं पुनर्वस्तु बुधैर्द्विविध परिकल्प्यते।
आधिकारिकमेक स्यात् प्रासङ्गिकमथापरम् ।। —साहित्यदर्पण, ६/४२

४४. नाटके नायकादीनां कथावस्त्वभिधीयते।
मुख्यामुख्यप्रभेदेन तदत्र द्विविधं स्मृतम् ।।
तत्र नेतृकथामुख्यममुख्यमितरद् भवेत्।
तदमुख्यमपि त्रेधा वस्तु सर्वत्र नाटके ।।
पताका प्रकरीयुक्तपताकास्थानयोगतः।
नायकस्य कथामध्ये तत्समानस्य या कथा ।।
आफलोदयमाबद्धा सा पताकेति कथ्यते।
येन केनाप्यनल्पेन हेतुना पूर्वमुद्गतम् ।।
पश्चान्न दृश्यते यत्तु तद्वस्तु प्रकरी भवेत्।
अतीतानागते कार्ये कथ्येते यत्र वस्तुन. ।।
अन्यापदेशव्याजेन पताकास्थानक तु तत्।
सदसन्मिश्रभेदेन सर्वमेतत्त्रिधा भवेत् ।।
इतिहासादिसम्भूत सदित्यभिमत सताम्।
असदित्युच्यते सर्वं स्वबुद्ध्या कविकल्पितम् ।।
अन्यदन्योन्यसम्भिन्नं मिश्रमित्यभिधीयते।
... ... ।।

—सर्वेश्वराचार्य साहित्यसार, प्रथम प्रकाश, कारिका ४५-५३

४५. (अ) "We have roughly distinguished two kinds of novel, one in which the plot must be strictly developed, and one in which it may best be loosely improvised. These two types are, of course, easier to separate in theory than in practice. and in certain novels we find them confused"

—Edwin Muir · 'The Structure of the Novel', p 29

(ब) "In dealing with plot structure we may distinguish roughly between two kinds of novel—I say roughly, because the types, though clearly defined, shade into one another by imperceptible gradations These are what we may call respectively the novel of loose plot and the novel of organic plot"

—W. H Hudson : 'An Introduction to the study of Literature, p. 132

४६. "The plot of a novel may be simple or compound; that is, it may be composed of one story only, or of two or more stories, in combination; and the law of unity reguires that in a compound plot the parts should be wrought together into a single whole

—W. H. Hudson · An Introduction to the study of Literature, p 142

४७. "Plot, characters, dialogue, time and place of action, style, and a stated or implied philosophy of life. are the chief elements entering into the composition of any work of prose fiction, small or great, good or bad" —Ibid, p 131

४८. "Manifestly, the drama and prose fiction are compounded of the same raw materials" —Ibid, p. 128

४९. पश्चिमी आलोचनाशास्त्र, पृ० ३७५-३७६

५०. किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यासो का वस्तुगत और रूपगत विवेचन, पृ० ५०

५१. (क) प्रारम्भश्च प्रयत्नश्च प्राप्ति. सद्भाव एव च।
नियता च फलप्राप्ति फलयोगश्च पञ्चम ॥
—अग्निपुराण, अध्याय ३३८, श्लोक २०

(ख) प्रारम्भश्च प्रयत्नश्च तथा प्राप्तेश्च सम्भव।
नियता च फलप्राप्ति फलभोगश्च पञ्चम ॥
— भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, अध्याय १९, कारिका ९

(ग) अवस्था पञ्च कार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभि।
आरम्भयत्नप्राप्त्याशानियताप्तिफलागमा ॥
—धनञ्जय, दशरूपक, प्रथम प्रकाश, कारिका ९

(घ) आरम्भयत्नप्राप्त्याशानियताप्तिफलागमाः।
नेतुर्वृत्ते प्रधाने स्यु पञ्चावस्था ध्रुव क्रमात् ॥
—रामचन्द्र-गुणचन्द्र, नाट्यदर्पण, प्रथम विवेक, कारिका ३४

(ङ) आरब्धस्येह कार्यस्य पञ्चावस्था प्रकीर्तिता.।
आरम्भयत्नप्राप्त्याशानियताप्तिफलोदया ॥
—सर्वेश्वराचार्य, साहित्यसार, प्रथम प्रकाश, कारिका ६१ का उतरार्ध और ६२ का पूर्वार्ध।

५२ 'Through every plot we may thus trace more or less clearly what is sometimes called 'the dramatic line',—We have, to begin with, some initial incident or incidents in which the conflict originates, secondly, the Rising action, growth, or complication, comprising that part of the play in which the conflict continues to increase in intensity while the outcome remains uncertain; thirdly, the climax, crisis, or turning point, at which one of the contending forces obtains such controlling power that henceforth its ultimate success is assured, fourthly, the Falling action, Resolution, or denouement, comprising that part of the play in which the stages in the movement of event towards this success are marked out,

and fifthly, the conclusion or catastrophe, in which the conflict is brought to a close." —W. H. Hudson An introduction to the study of Literature p. 200

५३. (क) 'औत्सुक्यमात्र बन्धस्य यद्बीजस्य निबध्यते।
महत' फलयोगस्य सोऽत्र प्रारम्भ इष्यते ॥'
—भरतमुनि', नाट्यशास्त्र, अध्याय १६, कारिका १०

(ख) 'औत्सुक्यमात्रमारम्भः फललाभाय भूयसे।'
—धनञ्जय, दशरूपक, प्रथम प्रकाश, कारिका २० का पूर्वार्ध।

(ग) 'भवेदारम्भ औत्सुक्य यन्मुख्यफलसिद्धये।'
—विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, परिच्छेद ६, कारिका ७१ का उत्तरार्ध।

(घ) 'आरम्भस्तद्गता वाञ्छा चाफलोदयनिर्भरा।'
—सर्वेश्वराचार्य, साहित्यसार, प्रथम प्रकाश, कारिका ६२ का उत्तरार्ध।

५४. डॉ० भोलाशकरव्यास, दशरूपक की व्याख्या मे, पृ० १४

५५ "अथारम्भ व्युत्पादयति—फलायौत्सुक्यमारम्भ। फल मुख्य साध्यम्। तदर्थमौत्सुक्यम्, उपायविषयम्, अनेनोपायेन एतत्सिद्ध्यति इति। स्मरणोत्कण्ठादिकर्म, तदनुगुणो व्यापारश्चोभयमारम्भ'। उपायविषयमौत्सुक्यम् औत्सुक्यानुगुणो व्यापारश्चारम्भावस्थेत्यर्थ।"
—श्री रामचन्द्र-गुणचन्द्र, नाट्यशास्त्र, प्रथम विवेक, कारिका ३५ प्रथम चरण

५६. "अनुपरतकौतुकश्च मुहु केशपाशे, मुहुर्मुखशशिनि, मुहुरधरपत्रे, मुहुरक्षिपात्रयो., मुहु कण्ठकन्दले, मुहुः स्तनमण्डले, मुहुर्मध्यभागे, मुहुर्नाभिचक्राभोगे, मुहुर्जघनभारे, मुहुरुरुस्तम्भयो,, मुहुश्चरणवारिरुहयो कृतारोहावरोहया दृष्ट्या ता व्यभावयत्।"
—'तिलकमञ्जरी', पृ० १६२

५७. "यच्च यदा स्वत एवाभ्युपगत भद्रेण तदा निरर्थकस्तद्विषयो मम प्रार्थनादर। ततो देशादस्मद्देशदुर्लभमिद त्वया समानेतव्यमित्यत्रापि न भवान् व्यापारणीय। यत किमेकेनास्मद्देशेन, त्रिभुवनेऽपि यद् दुर्लभ वस्तु तदुपनीत त्वयेदमपनीतरम्भोर्वशीपुर सरसुराङ्गनारूपगर्वम्। अस्या सर्वत एवानवद्यमुपनयता विद्याधरराजदुहितुर्बिम्बममुनेव कृतकृत्योऽहम्। विरतकौतुकश्च वस्त्वन्तरदर्शने सवृत्त।······एतत्तु साभ्यर्थन ब्रवीमि······त्वया नैष विस्मर्त्तव्य ·· ··वचनपरिचय.।"
—वही, पृ० १७२-१७३

५८ "क्वाह क्व सा? ··केन विधिना विनोदनीयेयमनुदिन प्रवर्धमाना तद्दर्शनोत्कण्ठा। कस्य क्रमिष्यते तद्देशगमनोपायेषु बुद्धिः।···अपि नाम दैवमनुगुण स्यात्। एष्यति स विद्याधरदारक·······नेष्यति तदीक्षणगोचरप्रापणेण मत्प्रतिकृति कृतार्थताम्। कथयिष्यति मा गुणवन्तम्। सापि······प्रतिपत्स्यते तद्वचनम्।··· ··प्रेषयिष्यति तमात्मानुरागप्रकटनाय मत्पार्श्वम्।"
—वही, पृ० १७६-१७७

५९. (अ) "We have, to begin with some initial incident or incident in which the conflict originates."

—W. H. Hudson An introduction to the study of Literature, p 200

(ब) "We shall come upon the genesis of the action in some incidents or incidents which, as giving birth to the conflict out of which the play is to be made, may be described, in Freytag's terminalogy, as 'the exciting force". —Ibid, p 206

६०. अपश्यत फलप्राप्ति यो व्यापार फल प्रति।
पर चौत्सुक्यगमन प्रयत्न परिकीर्तित ॥

—नाट्यशास्त्र, अध्याय १९, कारिका ११

६१ प्रयत्नस्तु तदप्राप्तौ व्यापारोऽतित्वरात्वित ।

—दशरूपक, प्रथम प्रकाश, कारिका २० का उत्तरार्ध।

६२ प्रयत्नस्तदलाभेन व्यापारातिशयो महान्।

— साहित्यसार, प्रथम प्रकाश, कारिका ६३ का पूर्वार्ध।

६३. प्रयत्नस्तु फलावाप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वित.।

—साहित्यदर्पण, परिच्छेद ६, कारिका ७२ का पूर्वार्ध।

६४. ····प्रयत्नो व्यापृतौ त्वरा।

—नाट्यदर्पण, प्रथम विवेक, कारिका ३५ का द्वि० चरण।

६५ "एतासु चावस्थासु नायकसहायप्रतिपक्षदेवव्यापाराणामन्यतमस्य द्वयोस्त्रयाणा चतुर्णां च एकस्याम्, द्वयोस्तिसृषु चतसृषु पञ्चस्वपि च यथायथमुन्मीलने वृत्ति.। फलयोगस्तु मुख्यनायकस्यैव।" —वही, कारिका ३५ के प्रथम चरण की व्याख्या

६६. "Secondly, the—Rising Action, growth, or complication, comprising that part of the play in which the conflict continues to in crease intensity while the outcome remains uncertain".

—W H. Hudson An introduction to the study of Literature, p 200

६७. (क) उपायापायशङ्काभ्या प्राप्त्याशा प्राप्तिसम्भव ।

—धनञ्जय, दशरूपक, प्रथम प्रकाश, कारिका २१ का पूर्वार्ध।

(ख) फलसम्भावना किञ्चित् प्राप्त्याशा हेतुमात्रतः।

—रामचन्द्र-गुणचन्द्र, नाट्यदर्पण, प्रथम विवेक, कारिका ३५ का उत्तरार्ध।

६८. (क) अपायाभावत प्राप्तिर्नियताप्ति सुनिश्चिता।

—धनञ्जय, दशरूपक, प्रथम प्रकाश, कारिका २१ का उत्तरार्ध।

(ख) नियताप्तिरुपायाना साफल्यात् कार्यनिर्णय ।

—रामचन्द्र-गुणचन्द्र, नाट्यदर्पण, प्रथम विवेक, कारिका ३६ का पूर्वार्ध।

(ग) आपायाभावत प्राप्तिर्नियताप्तिस्तु निश्चिता।

—विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, परिच्छेद ६, कारिका ७३ का पूर्वार्ध।

(घ) अपायाभावविभवान्नियताप्तिस्तदागम ।

—सर्वेश्वराचार्य, साहित्यसार, प्रकाश १, कारिका ६४ का पूर्वार्ध ।

६९. (क) अभिप्रेत समग्रं च प्रतिरूपं क्रियाफलम् ।
इतिवृत्ते भवेद् यस्मिन् फलयोग प्रकीर्तित ॥

—भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, अध्याय १९, कारिका १४

(ख) समग्रफलसम्पत्ति. फलयोगो यथोदित. ।

—धनञ्जय, दशरूपक, प्रथम प्रकाश, कारिका २२ का पूर्वार्ध ।

(ग) साक्षादिष्टार्थ-सम्भूतिर्नायिकस्य फलागम ।

—रामचन्द्र-गुणचन्द्र, नाट्यदर्पण, प्रथम विवेक, कारिका २९ का उत्तरार्ध ।

(घ) सावस्था फलयोग स्याद् य. समग्रफलोदय ।

—विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, परिच्छेद ६, कारिका ७३ का उत्तरार्ध ।

७० "Our analysis of dramatic structure, however, is not yet complete. Though the real plot of a play begins with the beginning of a conflict, such conflict arises out of and therefore pre-supposes a certain existing condition of things and certain relations among the characters who are to come into collision These conditions and relations have to be explained to us since otherwise the story will be unintelligible. We have therefore to distinguish another division of a drama—the introduction or exposition, comprising that part of it which leads upto and prepares for the initial incident"

—W. H. Hudson An introduction to the study of Literature, p. 201

७१. Ibid

७२. "Thus, in 'King Lear' the real crisis of the main plot is in the very first scene, in 'Othello' it does not occur till the first scene of the fourth act. In order to indicate approximately the plot movement in these two instances, we should have to use for the one some such form as...and for the other, some such form as ..".

—Ibid p 202

७३. (क) वीज विन्दु पताका च प्रकरी कार्यमेव च ।
अर्थप्रकृतय पञ्च··· ··· ··· ··· ··· ॥

—अग्निपुराण, अध्याय ३३८, श्लोक १९

(ख) इतिवृत्ते यथावस्था. पञ्चारम्भादिका स्मृता ।
अर्थप्रकृतय पञ्च तथा वीजादिका अपि ॥
वीज विन्दु. पताका च प्रकरी कार्यमेव च ।
अर्थप्रकृतय पञ्च ज्ञात्वा योज्या यथाविधि ॥

—भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, अध्याय १९, कारिका २१-२२

(ग) बीजबिन्दुपताकाख्यप्रकरीकार्यलक्षणा ।
अर्थप्रकृतय पञ्च ता एता परिकीर्तिताः ॥
—धनञ्जय, दशरूपक, प्रथम प्रकाश, कारिका १८

(घ) बीज बिन्दुः पताका च प्रकरी कार्यमेव च ।
अर्थप्रकृतय: पञ्च ज्ञात्वा योज्या यथाविधि ॥
—विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, परिच्छेद ६, कारिका ६४ का उ० एव ६५ का पूर्वार्ध ।

७४. (क) स्वल्पमात्र समुत्सृष्ट बहुधा यद् विसर्पति ।
फलावसान तच्चैव बीज तदिह कीर्तितम् ॥
—भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, अध्याय १६, कारिका २३

(ख) स्वल्पोद्दिष्टस्तु तद्धेतुर्बीज विस्तार्यनेकधा ।
—धनञ्जय, दशरूपक, प्रथम प्रकाश, कारिका १७ का पूर्वार्ध ।

(ग) स्तोकोद्दिष्ट: फलप्रान्तो हेतुर्बीज प्ररोहणात् ।
—रामचन्द्रगुणचन्द्र, नाट्यदर्पण, प्रथम विवेक, कारिका २६ का पूर्वार्ध ।

(घ) अल्पमात्र समुद्दिष्ट बहुधा यद् विसर्पति ।
फलस्य प्रथमो हेतुर्बीजं तदभिधीयते ॥
—विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, परिच्छेद ६, कारिका ६५ उ० एव ६६ का पूर्वार्ध ।

७५ ……गृहीतस्तु कदाचिन्मनुष्यलोके लब्धजन्मन पुनरानन्दयति दृष्टिम्; दृष्टतमदर्शन चैनममरलोकाच्च्युता कालक्रमेण देव्यपि मे प्रियगुसुन्दरी कदाचिदालोकयति । दर्शनाभ्यासजातपूर्वजातिस्मृतिश्च स्मरति रतिकराण्यसकृन्मया सहोपभुक्तानि स्वर्गवासक्रीडासुखानि, विरहदु:खदत्तोद्वेगाच्च प्रवर्तते यथाशक्ति कुशलावाप्तिसाधके कर्मणि, एवञ्च तस्या अपि उपकृत भवति । सम्भवन्ति च भवार्णवे विविधकर्मवशवर्तिना जन्तूनामनेकशो जन्मान्तरजातसम्बन्धैर्बन्धुभि ……सार्धमबाधिता पुनस्ते सम्बन्धा , इति…हारमुपनिन्ये । —तिलकमञ्जरी, पृ० ४४-४५

७६ (क) प्रयोजनाना विच्छेदे यदविच्छेदकारणम् ।
यावत्समाप्तिर्बन्धस्य स बिन्दु परिकीर्तित ॥
—भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, अध्याय १६, कारिका २४

(ख) अवान्तरार्थविच्छेदे बिन्दुरच्छेदकारणम् ।
— धनञ्जय, दशरूपक, प्रथम प्रकाश, कारिका १७ का उत्तरार्ध ।

(ग) हेतोश्छेदेऽनुसन्धान बहूना बिन्दुराफलात् ।
—रामचन्द्रगुणचन्द्र, नाट्यदर्पण, प्रथम विवेक, कारिका ३२ का उत्तरार्ध ।

(घ) अवान्तरार्थविच्छेदे बिन्दुरच्छेदकारणम् ।
—विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, परिच्छेद ६, कारिका ३२ का उत्तरार्ध ।

(ङ) अवान्तरार्थकार्यस्य प्रस्तुतार्थानुयायिन ।
सद्य सम्बन्धविच्छेदे बिन्दुरच्छेदकारणम् ॥
—सर्वेश्वराचार्य, साहित्यसार, प्रथम प्रकाश, कारिका ५६ का उ० एव ६० का पूर्वार्ध ।

७७. "......इतिकथारसाक्षिप्तचेतसि स्ववृत्तान्तमावेदयति समरकेतौ, निश्चलपक्ष्मलेखे लिखित इव पश्यति तदीयमुखमभिमुखप्रहितदृशि सभ्यलोके, श्लथीकृतान्तरकथेषु आकर्णयत्सु सकुतूहलमन्तरान्तरा विस्तारितहर्षकोलाहलेषु कमलगुप्तप्रभृतिषु प्रधानराजपुत्रेषु, प्रचलितशिरसि सप्रपञ्चम् आकर्णयति सरसता कथापञ्जरस्य मञ्जीरमुख्ये वन्दिवृन्दे, ...प्रविश्य प्रतीहारी हरिवाहन व्यजिज्ञपत्—कुमार! युवराजवार्ताद्भुतश्रवणेन पीतमतिचिर कर्णामृतम्। इदानीमीक्षणामृत क्षणमेकमास्वाद्यताम्। इत्युदीर्य.........दिव्य चित्रपटमुपनिन्ये। नरेन्द्रतनयस्तु .... अत्युत्कृष्टरूपा रूपिणीमिव भगवतो मन्मथस्य जयघोषणा कन्यकारूपधारिणीमेका चित्रपुत्रिका ददर्श, विममर्श च अस्या शरीरावयवसमुदायचारुतामतिचिरम्।"

—तिलकमञ्जरी, पृ० १६१-१६२

७८. (क) यद् वृत्त हि परार्थं स्यात् प्रधानस्योपकारकम्।
प्रधानवच्च कल्प्येत सा पताकेति कीर्तिता॥

—भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, अध्याय १९, कारिका २५

(ख) प्रासङ्गिकं परार्थस्य स्वार्थो यस्य प्रसङ्गत।
सानुबन्ध पताकाख्य .. ..॥

—धनजय, दशरूपक, प्रथम प्रकाश, कारिका १३

(ग) आविमर्श पताका चेच्चेतन स परार्थकृत्।

—रामचन्द्र गुणचन्द्र, नाट्यदर्पण, प्रथम विवेक, कारिका २९ उ०।

(घ) व्यापि प्रासङ्गिक वृत्त पताकेत्यभिधीयते।

—विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, परिच्छेद ६, कारिका ६७ का पू०।

(ङ) नायकस्य सभामध्ये तत्समानस्य या कथा।
आफलोदयमाबद्धा सा पताकेति कथ्यते॥

—सर्वेश्वराचार्य, साहित्यसार, प्रथम प्रकाश, कारिका ४७ उ० एव ४८ पू०।

७९. (क) फल प्रकल्प्यते यस्या· परार्थं केवल बुधै।
अनुबन्धविहीन स्यात् प्रकरीमिति निर्दिशेत्॥

—भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, अध्याय १९, कारिका २६

(ख) .... प्रकरी च प्रदेशभाक्।

—धनजय, दशरूपक, प्रथम प्रकाश, कारिका १३ का चतुर्थ चरण।

(ग) प्रकरी चेत्क्वचिद्भावी चेतनोऽन्यप्रयोजन।

—रामचन्द्रगुणचन्द्र, नाट्यदर्पण, प्रथम विवेक, कारिका ३२ का पूर्वार्ध।

(घ) प्रासङ्गिक प्रदेशस्थ चरित प्रकरी मता।

—विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, परिच्छेद ६, कारिका ६८ का उ०।

(ङ) येन केनाप्यनल्पेन हेतुना पूर्वमुद्गतम्।
पश्चान्न दृश्यते यत्तु तद्वस्तु प्रकरी भवेत्॥

—सर्वेश्वराचार्य, साहित्यसार, प्रथम प्रकाश, कारिका ४८ का उ० एव ४९ का पू०।

८०. प्रकरीनायकस्य स्यान्न स्वकीय फलान्तरम् ।

—साहित्यदर्पण, परिच्छेद ६, कारिका ६९ का पू० ।

८१. (क) यदाधिकारिक वृत्त सम्यक् प्राज्ञैः प्रयुज्यते ।
तदर्थो य समारम्भस्तत्कार्यं परिकीर्तितम् ॥

—भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, अध्याय १९, कारिका २७

(ख) अपेक्षित तु यत्साध्यमारम्भो यन्निबधन्न. ।
समापन तु यत्सिद्ध्यै तत्कार्यमिति सम्मतम् ॥

—विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, परिच्छेद ६, कारिका ६९ का उ० एव ७० का पू० ।

८२. अथाङ्कानन्तरोद्दिष्टमुपाय व्याचष्टे—बीज पताका प्रकरी बिन्दुः कार्यं यथारुचि ।
फलस्य हेतव पञ्च चेतनाचेतनात्मका ॥

उपायस्वरूपापरिज्ञाने तद्विषयाणामारम्भादीना स्वरूपपरिज्ञानासम्भव इति उपायस्वरूप व्युत्पाद्यते । 'यथारुचि' इति नैषामौद्देशिको निबन्धक्रमः, सर्वेषामवश्यम्भावित्वं वा ।······इह हेतुर्द्विधा, अचेतनश्चेतनश्च । अचेतनोऽपि मुख्यामुख्य-भेदाद् द्विधा । मुख्यो बीजम्······अमुख्यस्तु कार्यम् । चेतनोऽपि द्विधा, मुख्य. उपकरणभूतश्च । मुख्यो बिन्दु ······उपकरणभूतो द्विधा, स्वार्थसिद्धियुतपरार्थ-सिद्धिपर केवलपरार्थसिद्धिपरश्च । पूर्वः पताका, अन्य प्रकरीति ।

—रामचन्द्रगुणचन्द्र, नाट्यदर्पण, प्रथम विवेक, कारिका २८ की व्याख्या ।

द्वितीय सोपान

तिलकमञ्जरी : कथानक की दृष्टि से

तिलकमञ्जरी का कथानक

प्राचीनकाल मे अयोध्यानगरी मे मेघवाहन नामक सार्वभौम सम्राट् हो चुके है। उन्हे सभी सुख प्राप्त थे। उनमे शील, शक्ति एव सौन्दर्य का अनोखा सगम था। राजोचित एव मानवोचित सभी गुणो का उनमे अहमहमिकया सन्निवेश हुआ था। फलस्वरूप उन्होने अपने कमनीय एव दुर्धर्ष यौवनकाल के पूर्वार्द्ध मे ही अपने समस्त शत्रुओ को स्वाधीन करके सम्पूर्ण उत्तरी भारत पर एकातपत्र साम्राज्य की स्थापना कर ली थी। उनके राज्य मे सम्पूर्ण प्रजा सुखी थी। सभी मे जीवन के प्रति उल्लास था, उमग थी, शालीनता थी और अपने सम्राट् के प्रति भक्तिभावना की तो सीमा ही न थी।

शत्रुओ की ओर से निश्चिन्त होकर महाराज मेघवाहन अपनी प्रिय प्रजा के योगक्षेम का उत्तरदायित्व अपने सुयोग्य, अनुभवी, निष्पक्ष एव निर्लोभ मन्त्रियो को सौप कर भी प्रजा के वास्तविक सुख-दु ख का पता लगाने के लिए यदा-कदा स्वय भी अपनी वेशभूषा बदल कर राजमहल से निकल जाया करते थे किन्तु जब अपनी प्रजा को सब प्रकार से सुखी एव प्रसन्न पाते थे तो अपने मन मे अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव करते थे। इस प्रकार सम्राट् मेघवाहन अपनी प्रजा को सुख-सुविधाएँ देते हुए अपने अन्त पुर (रनिवास) मे मदिरावती आदि अपनी रानी-महारानियो के साथ उद्दामयौवनोचित सुखो का सानन्द उपभोग कर रहे थे।

यद्यपि सम्राट् मेघवाहन धर्म, अर्थ एव काम नामक जीवन के स्पृहणीय तीन पुरुषार्थों की प्राप्ति से उत्पन्न सभी सुखो का अनुभव कर रहे थे, किन्तु यौवन का अधिकाश भाग व्यतीत हो जाने के बावजूद भी उन्हे अपनी किसी भी धर्मपत्नी से सन्तान को देखने का सौभाग्य प्राप्त नही हुआ था। अत जब भी अपने जीवन के इस पहलू पर विचार करते थे तो उनका हृदयकमल झुलस जाता था, शरीर अवसन्न-सा हो जाता था, साथ ही बुद्धि भी कुण्ठित सी हो जाती थी। उनकी सारी उमगो पर, सारी सम्पत्ति पर और सारी आशाओ पर पानी फिर जाता था। कभी-कभी वह सन्तानाभाव की मर्मान्तिक व्यथा से इतने दु खी हो जाया करते थे कि उन्हे अपने राजसी ठाठबाट से ही वितृष्णा होने लगती थी। यहाँ तक कि वह अन्त पुर की धर्मपत्नियों को भी निष्फल समझने लगते थे। इस परिस्थिति मे वह सन्तान के सुख से सुखी, नगर निवासी स्त्री-

पुरुषो को ही नही, अपितु पशु-पक्षियो को भी अपने से कही अधिक भाग्यशाली समझने लगते थे।

ज्यो-ज्यो समय व्यतीत होता जा रहा था, त्यो-त्यो सम्राट् की पुत्राभावजनित चिन्ता भी द्रौपदी की साडी के समान बढती ही चली जा रही थी। एक रात तो वह, सारी रात, इसी विषय पर सोचते रहे और उन्हे नीद भी नही आई। रात के अन्तिम प्रहर मे नींद ने ज्योही उन्हे क्षणमात्र के लिए गोद मे लिया त्योही एक विरुदावली गायक ने देवताओ की उपासना के लिए प्रेरणा देने वाले एव उज्ज्वल भविष्य की सूचना देने वाले प्राभातिक गीत को हृदयस्पर्शी मधुर स्वर मे गाकर उन्हे जगा दिया।[१]

सम्राट् ने गीत की स्वरलहरी के साथ उसके अर्थ पर ध्यान दिया, और ज्योही वे मर्म पर पहुँचे त्योही उनके हृदयक्षितिज पर, देवता की आराधना से, पुत्रप्राप्ति की आशा-रूपिणी उषा की स्वर्णिम रश्मियो का प्रसार होने लगा। तुरन्त ही शय्या का परित्याग करके प्रात कालीन शौच-स्नान-सन्ध्योपासनादि आवश्यक कृत्यो को वडे उत्साह के साथ पूरा किया। तदनन्तर वह अपने अन्त पुर पहुँचे और वहाँ उन्होने अपनी परमप्रिय पत्नी महारानी मदिरावती से प्रेमपूर्ण वार्तालाप के प्रसग से अपने मन की बात कह डाली। उन्होने कहा कि देवि! मै चाहता हूँ कि आप मा बने और मुझे पिता बनने का सौभाग्य मिले। यह अभिलाषा देवाराधना के विना पूरी नही हो सकती। आज के प्रभातगीत को सुनकर मेरे मन मे विश्वास हो रहा है कि यदि मैं वन जाकर तपस्या द्वारा अभीष्ट देवता को प्रसन्न कर लूं तो अवश्य ही मैं पिता के और आप माता के स्पृहणीय गौरव को पा सकती हैं। इसलिए देवि! जब तक पुत्र-प्राप्ति का वरदान नही मिलता तब तक मै तपस्या करने के लिए वन मे रहने का निश्चय कर चुका हूँ। आप अधीर न हो, गुरुजनो की सेवा मे यही रहकर मेरे लौटने की धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करती रहे।

मदिरावती सम्राट् मेघवाहन से अगाध प्रेम करती थी। उसने जब यह सब कुछ सुना तो आसन्न वियोग की कल्पना से वह मूर्च्छित हो गई। उसकी मूर्च्छा से परिचारिकाएँ घबडा गई। उन्होने तुरन्त ही उसे सम्हाला। जब उसे कुछ होश आया तो लम्बी-लम्बी साँसे भरती हुई बडी मुश्किल से अपने को सम्भालती हुई रुँधे गले से लडखडाती आवाज मे बोली कि हे आर्यपुत्र! मै आपकी इच्छा के विपरीत नही हूँ। किन्तु यहाँ मुझे अकेली छोडकर आप वन मत जाईएगा। मैं आपके विना क्षण भर भी नही जी सकती। यदि आप मुझे ठुकराकर वन चले जाएँगे तो मेरी यह आखिरी ही भेंट समझना। वह बस इतना ही कह पाई थी कि उसके आँसुओ का बाँध टूट गया और कुछ ही देर बाद हिचकियो ने उसके टूटते हुए दिल को और भी अधिक झकझोरना शुरू कर दिया। सम्राट् मेघवाहन भी अपनी प्रियतमा के प्यार भरे दिल के बेहद दीवाने थे। उन्होने मदिरावती को समझाने की हरचन्द कोशिश की, सब तरह से धैर्य बंधाया, किन्तु मदिरावती वन मे साथ चलने या फिर वियोग मे मर मिटने की अपनी धारणा नही बदल सकी, क्योंकि वह सम्राट् को अपने प्राणो से भी ज्यादा प्यार करती थी।

जिस समय सम्राट् अपनी प्रियतमा को समझाने-बुझाने मे लगे हुए थे उसी समय

अचानक ही उनकी निगाह दक्षिण दिशा की ओर से आकाश मार्ग से उडकर आते हुए जटाजूटधारी परमतेजस्वी विद्याधरमुनि[२] पर पडी। उन्हे देखकर उनके अनुपम तेज से श्रद्धाभिभूत होकर सम्राट् मेघवाहन उनके प्रति आदर-सत्कार करने की मुद्रा मे उठ खडे हुए; साथ ही महारानी मदिरावती भी अपने पति के साथ ही उन मुनि के स्वागत मे उठ खड़ी हुई। मुनि भी इन लोगो की हार्दिक-प्रीति भरी श्रद्धा से प्रसन्न होकर आगे न बढ-कर इन्ही के पास प्रासाद पर उतर आए। सम्राट् ने बड़ी प्रसन्नता एव श्रद्धा के साथ सुन्दर उच्च आसन पर उन्हे बैठाया और उनका यथोचित आदर-सत्कार करके हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि हे भगवन्! आप महात्मा है। आज आपकी चरणरज से मै और मेरा यह सम्पूर्ण परिवार कृतार्थ हो गया। अब मैं जानना चाहता हूँ कि मेरे पास वह कौन-सी वस्तु है जिसे मैं आपके चरणो मे सौंपकर असीम आनन्द को प्राप्त कर सकूँ? सम्राट् के वचनो को सुनकर मुनि का मनोमयूर हर्ष से नाच उठा। वह बोले—हे सत्पुरुष! आप उदार है, अत आपकी वाणी मे उदारता होनी ही चाहिए। किन्तु मै तो साधु-सन्यासी हूँ। निर्जन कानन को ही घर और कन्दमूल फलो को ही भोजन मानकर असीम सन्तोष का अनुभव करने वाला हूँ। अत मुझे आपकी किसी भी वस्तु की आवश्यकता नही है। यह सब (प्रार्थना) रहने दीजिए। मैं तो आपके सहज स्नेह से ही आकृष्ट होकर उतर आया हूँ। अब मुझे यह बताईए कि यह कौन-सा नगर है? आप कौन है? आपका वश क्या है? और आपके पार्श्व भाग मे बैठी हुई यह देवी कौन है? आप परेशान से नजर क्यो आ रहे है? और इन देवीजी के चेहरे को देखकर मुझे तो ऐसा लग रहा है कि जैसे इन्होने अभी-अभी रोना वन्द किया हो। कही आप लोगो की कोई प्रिय वस्तु तो नही खो गई? या कही कोई प्रिय बन्धुजन परदेश तो नही चला गया? यहाँ कही आप लोगो की किसी इच्छा पर तो तुषाराघात नही हो गया? यदि मेरे सुनने योग्य हो तो बताईए, आखिर बात क्या है?

सम्राट् ने पहिले तो सिर झुका लिया, फिर नम्रतापूर्वक निवेदन किया कि हे भगवन्! आप लोग तो हमेशा दूसरो की भलाई ही सोचते हैं। अत. आपसे मै कुछ भी नही छिपाऊँगा। आप जैसे महात्माओ के समक्ष मेरे जीवन का कोई भी पहलू गोपनीय नही रह सकता, ऐसा कहकर सम्राट् ने मुनि के सभी प्रश्नो का नम्रता के साथ उत्तर देते हुए अयोध्या नगरी का अपना और अपनी प्रियतमा भार्या महारानी मदिरावती का परिचय दिया, और साथ ही अपनी चिन्ता का और मदिरावती के रोने का कारण भी बता दिया। उन्होने अन्त मे मुनि से यह भी प्रार्थना की कि वह मदिरावती को यथोचित आदेश देने की कृपा करे।

सम्राट् एव साम्राज्ञी की आन्तरिक वेदना को सुनकर मुनि का सवेदनशील हृदय द्रवीभूत हो उठा। सम्राट् की शालीनता एव सम्राज्ञी की पतिभक्ति से प्रभावित होकर मुनि के मन मे दयाभाव जागरित हो गया। वह सन्तान न होने के कारण को जानने के लिए तुरन्त ही समाधिस्थ हो गए। थोड़ी दर के बाद अपनी आँखे खोली और मन्द-मन्द मुस्कराते हुए उन्होने सम्राट् को कहा—राजन्! अब आप जरा भी चिन्ता न करे।

क्योकि जिस कारण से आपको अभी तक सन्तान का मुख नही प्राप्त हो सका है, वह अब करीब-करीब समाप्त हो चुका है। इसलिए अब आपको न तो वन जाने की आवश्यकता है और न ही अपनी इस प्रियतमा को अपने विरहानल मे झुलसाने की जरूरत है। अब आप घर मे ही रहिए और यही रहकर मुनिजनोचित आहार-विहार को अपनाते हुए अपनी कुलदेवता राजलक्ष्मी की निर्मल मन से उपासना कीजिए। निश्चय ही वह अति-शीघ्र आपको अभिमत वर प्रदान करेगी। मुनि की इस अमृतोपम वाणी को सुनकर सम्राट् का रोम-रोम आनन्द से पुलकित हो गया। मदिरावती का मुरझाया हुआ चेहरा उल्लास से चमक उठा। दोनो ने असीम श्रद्धा-भाव से मुनि के चरणो मे अपना सिर झुका दिया।

मुनि ने राजलक्ष्मी की उपासना मे चार-चाँद लगने के लिए सम्राट् को अपरा-जिता नामक चिन्तामणि विद्या (मन्त्र) को बता दिया। साथ ही उसके जप की विधि एव फल भी समझा दिया। मदिरावती को भी, जो उस समय आनन्द-सागर मे तैर रही थी, मुनि ने सयम-नियम एव ब्रह्मचर्य का पालन करने की आज्ञा दी; ताकि सम्राट् अपनी तपस्या मे अटल होकर राजलक्ष्मी का वर प्राप्त कर सके; और उसे माता बनने का गौरव शीघ्र मिल सके। सम्राट् ने मुनि के आदेश को अपनी ओर से और सम्राज्ञी की ओर से भी अक्षरश निभाने का कृतज्ञतापूर्वक वचन दिया।

तदनन्तर चलने की इच्छा प्रकट करते हुए मुनि ने कहा कि राजन्! मैं इस समय पुष्कर द्वीप[3] से आ रहा हूँ। मुझे अभी जम्बूद्वीप[4] के खास-खास तीर्थों मे जाना है। है। अतः अब आप मुझे चलने की आज्ञा दीजिए। आपका मनोरथ अवश्य पूर्ण होगा। इतना कहकर मुनि आसन से उठ खडे हुए। सम्राट् एव सम्राज्ञी ने उन्हे उठकर पुन प्रणाम किया तो वह उन्हे पुन आशीर्वाद देते हुए उनके देखते-देखते आकाशमार्ग से उड़ते हुए उनकी आँखो से ओझल हो गए।

× × ×

सम्राट् ने अपने गुरुजनो एव मन्त्रियो को मुनि के साथ हुए वार्तालाप से परिचित कराया और प्रमदवन[5] के बीचो-बीच कृत्रिम पर्वत के पास एक अति सुन्दर भव्य मन्दिर का निर्माण कराया। तुरन्त ही शुभ मुहूर्त्त मे लक्ष्मीदेवी की सर्वलक्षणसम्पन्न प्रतिमा की प्राण-प्रतिष्ठा सहित स्थापना करा कर मुनि द्वारा बताए हुए विधान से आराधना करने लगे। लक्ष्मी देवी की अर्चना के बाद प्रतिदिन अपराजिता नामक चिन्तामणि विद्या (मन्त्र) को भी भक्ति-भाव से जपने लगे।

इस प्रकार भगवती लक्ष्मी की भली-भाँति आराधना करते हुए सम्राट् के अभी कुछ ही दिन बीते थे कि एक (पर्व के) दिन सम्राट् ने शाम को लक्ष्मी जी की पूजा करने के बाद शक्रावतार नामक जैन-मन्दिर मे आदितीर्थंकर[6] के दर्शन करने का विचार किया। अपने सेवको की निगाह बचाकर सम्राट् वहाँ पहुँचे। अभी वह मन्दिर के दरवाजे पर ही पहुँचे थे कि उनकी दृष्टि एक अत्यन्त तेजस्वी देवपुरुष पर पडी। वह दिव्यपुरुष स्वर्गीय वस्त्राभूषणो से सुसज्जित था। उसके गले मे झूमता हुआ पारिजात के फूलो का सुन्दर हार अपनी अलौकिक सुगन्धि मे वातावरण को मधुर बना रहा था। उस समय वह दर्शन

करके लौट रहा था। सम्राट् उसके व्यक्तित्व से अत्यधिक प्रभावित हुए और उन्होने उसे देवता समझकर भक्तिभाव से हाथ जोडकर प्रणाम किया। वह दिव्यपुरुष भी सम्राट् के शीलसौन्दर्यसम्पन्न व्यक्तित्व से निहायत आकृष्ट हुआ और थोडी देर सम्राट् को नीचे से ऊपर तक निहारता रहा। तत्पश्चात् उसने पहिचान कर प्रसन्न होकर कहा—राजन् ! मैं आपको जानता हूँ। देवराज इन्द्र की सभा मे आपकी कई बार तारीफ सुन चुका हूँ। आप चक्रवर्ती सम्राट् मेघवाहन ही तो है ? सचमुच आज मैं धन्य हो गया, मेरा जीवन सफल हो गया। श्रीजिनदेव के दर्शन का फल तुरन्त मिल गया, जो आप जैसे सम्राट् का दर्शन हो गया। सम्राट् अपनी प्रशसा सुनकर कुछ झेप से गए और उन्होने परिचय पाने की इच्छा से दिव्यपुरुष को जिज्ञासापूर्ण दृष्टि से देखा।

दिव्यपुरुष ने कहा—राजन् ! मैं एक वैमानिक देवता हूँ। सौधर्म नामक देवलोक मे रहता हूँ और मेरा नाम ज्वलनप्रभ है। इस समय मुझे नन्दीश्वर नामक द्वीप मे पहुँचना है।[७] क्योकि वहाँ विशाला नामक नगरी मे मेरा प्यारा दोस्त सुमाली अपनी पत्नी स्वयम्प्रभा के साथ रह रहा है। वहाँ जैन-मन्दिरो की अनिर्वचनीय शोभा को देखने के लिए स्वयम्प्रभा ही मेरे उस दोस्त को वहाँ खीच ले गई है। आज मेरे कुछ सेवको ने आकर मुझे सूचना दी है कि वह विशाला नगरी बुरी तरह उजड रही है। मेरे दोस्त सुमाली का महल भी सूना लग रहा है। इस खबर से मै अपने दोस्त के बारे मे काफी चिन्तित हो गया हूँ। क्योकि इस प्रकार के उत्पात उसके विनाश की सूचना दे रहे है। मेरे दोस्त का दिल बहुत ही नाजुक है, वह मुझे वेहद प्यार करता है। अत इन दिनो अवश्य ही याद कर रहा होगा। इसलिए मैं उससे मिलने जा रहा हूँ। रास्ते मे परमपवित्र इस जैन-मन्दिर को देखकर दर्शन के लिए ठहर गया था। अच्छा ही हुआ, आपके भी दर्शन हो गए। इसलिए मैं इस समय काफी जल्दी मे हूँ। सोच रहा हूँ कि अपने दोस्त को समझाऊँगा-बुझाऊँगा और उसे धार्मिक कार्यों को करने की प्रेरणा दूंगा, ताकि उसका दूसरा जन्म अच्छी जगह हो सके। साथ ही कल ही लौट भी आऊँगा। अब मेरा भी पुण्य क्षीण हो चुका है और स्वर्गसुख लगभग समाप्त ही हो रहा है। चूंकि मेरी आयु भी अब करीब-करीब पूरी ही हो चुकी है, इसलिए मुझे भी अपने परलोक को सुधारने के लिए शीघ्र ही कुछ न कुछ अनुष्ठान करना है।

आपको देखकर मेरा मन अत्यधिक उदार हो रहा है। मैं चाहता हूँ कि आपको अपना चन्द्रातप नामक हार उपहार के रूप देकर अपने हृदय को सन्तुष्ट कर लूँ। मैंने आपकी दानवीरता और किसी के भी सामने लेने के लिए कभी भी अपना हाथ न फैलाने की तारीफ सुनी है। इसलिए मैं सोचता हूँ कि कही आप इन्कार न कर दे। परन्तु राजन् ! मेरी इस प्रार्थना को आप ठुकराएँ नही, मेरे इस हार को आप अवश्य ही स्वीकार करने की कृपा करें। सम्राट् ! इस हार की भी एक कहानी है। चमचमाते हुए अनमोल मोतियो के इस हार को स्वय क्षीरसागर ने पिरोया है। उसने यह हार अपनी पुत्री लक्ष्मी को बड़े प्यार के साथ दिया था। काफी समय तक यह लक्ष्मी के ही पास रहा। जव देवराज इन्द्र के पुत्र जयन्त का जन्म हुआ तो लक्ष्मी जी ने इसे इन्द्राणी को भेट कर दिया। इन्द्राणी ने कुछ समय के वाद इमे मेरी पत्नी प्रियगुसुन्दरी के गले मे

पहिना दिया। वह इसे बड़े प्यार से पहना करती है। आज चलते समय मैं अपनी पत्नी प्रियगुसुन्दरी के विरह की विकलता को कम करने के लिए उसके इस हार को अपने साथ लेता आया हूँ। यह बहुत ही प्रभावशाली है। इसे जो धारण करता है उसकी बिगड़ी हुई तकदीर खुल जाती है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि इसे आप स्वीकार कर ले। मेरा क्या है, मेरे और मेरी पत्नी के पुण्य तो समाप्त हो ही रहे है। अतिशीघ्र ही हम दोनो को मर्त्य-लोक मे जन्म लेना पड़ेगा। यदि आप इस हार को नही लेते तो भी स्वर्ग छोड़ते समय हम लोगो के हाथ से तो यह निकल ही जाएगा। यदि आप इसे ले लेते है तो हो सकता है कि कभी प्रियगुसुन्दरी को भी इसे देखने का सुअवसर मिल जाए। इसे देखकर वह अपने पूर्वजन्म को याद करके शुभ काम मे प्रवृत्त होकर अपना कल्याण भी कर सकेगी। इस प्रकार उसका भी भला हो जाएगा। इसलिए हे राजन्! आप सोचिए-विचारिए नही। मैं आपको यह हार हमेशा के लिए भेट कर रहा हूँ, आप अवश्य ले लीजिए, इस प्रकार विस्तार के साथ हार की कथा कहकर ज्वलनप्रभ ने उसे अपने गले से उतार कर सम्राट् को भेट कर दिया। सम्राट् भी दिव्यपुरुष के वृत्तान्त से इतने प्रभावित हो गए कि वह उसके इस कृपापूर्ण आग्रह को ठुकरा न सके और उन्होने उसे बड़ी उत्सुकता के साथ ले लिया।

ज्योही सम्राट् ने अपने हाथो मे हार लिया त्योही दिव्यपुरुष अचानक ही उनकी आँखो से ओझल हो गया। सम्राट् को बडा आश्चर्य हुआ। वह काफी देर तक हार को टकटकी लगाव देखते रहे। फिर उसे दुशाला के एक छोर मे बाँधकर अन्दर मन्दिर मे जाकर आदिनाथ जैन भगवान् के दर्शन किए और अपने भवन को वापिस लौट आए।

लक्ष्मी देवी की प्रतिमा के सामने बैठकर सम्राट् ने सारी घटना सुना डाली, साथ ही उस हार को भी उन्ही के चरणो मे रखकर विचार करने लगे कि देवता की वस्तु देवता के ही पास रहनी चाहिए, मनुष्य के पास नही। इसी समय सम्राट् को पास ही मे किसी का भयकर अट्टहास सुनाई दिया, पर वह डरे नही। उन्होने अपनी दृष्टि उधर घुमाई तो लक्ष्मी जी की प्रतिमा के बाई ओर पास मे ही खड़े हुए एक विकराल वेताल को देखा। सम्राट् ने उसे नीचे से ऊपर तक बड़े गौर से देखा और फिर मुस्कराते हुए कहा—महात्मन्! आपके अट्टहास को सुनकर मुझे आश्चर्य हो रहा है। कहिए, क्या बात है? आप इतनी जोर से क्यो हँस रहे है? तब वेताल बोला कि राजन्! मुझे तुम्हारे ही ऊपर हँसी आ रही है। तुम वरदान पाने की इच्छा से मेरी स्वामिनी लक्ष्मी देवी की आराधना बहुत दिनो से कर रहे हो। मगर तुम नही जानते हो कि स्वामी को प्रसन्न करने के पहिले उसके सेवको को प्रसन्न कर लेना चाहिए। क्योकि सेवक ही प्रसन्न होकर स्वामी को भी प्रसन्न कर लेते है; और वरदान दिला देते है। दुनियाँ मे भी यही रिवाज है। किन्तु तुम मुझे खुश किए बिना ही लक्ष्मी देवी को खुश करना चाहते हो, यह बिल्कुल असम्भव बात है। मैं देवी का सर्वाधिक प्रिय और सदा उनके पास रहने वाला हूँ। तुम यदि लक्ष्मी देवी की कृपा चाहते हो तो पहिले मुझे प्रसन्न करो। इतना सुनकर सम्राट् ने हँसकर कहा—ओह! यह बात है? मै क्या जानूँ? दरअसल मुझे सेवा करने का तौर-तरीका ही मालूम नही है, क्योकि मैंने कभी किसी की सेवा ही नही की है। आप

लक्ष्मी देवी के सेवक है, तो लीजिए ये फल, कन्दमूल और लड्डू। इन्हे खाकर तृप्ति का अनुभव करिए। सुनकर वेताल हँसा और बोला—राजन्! मैं न पक्षी हूँ न पशु, और न ही मैं मनुष्य हूँ। इसलिए मुझे तुम्हारे ये फल, कन्दमूल और लड्डू पसन्द नही। तुम नही जानते, मैं राक्षस हूँ। इसलिए मांस पसन्द करता हूँ। पर इस समय मुझे वह भी नही चाहिए। मुझे तो इस समय सिर्फ एक ऐसे आदमी की खोपडी की जरूरत है जिसने याचको को कभी निराश नही किया हो, और दुश्मन के आगे कभी सिर न झुकाया हो।

सम्राट् ने कहा—प्रेतनाथ! मेरे पास इस समय ऐसा कोई नरकपाल नही है। मैंने ऐसे शूरवीरो को सग्राम मे मारा तो अवश्य है, किन्तु उनके कपालो को इकट्ठा नही किया। अब ध्यान रक्खूँगा। हाँ, यदि आपको इसी समय आवश्यकता हो तो मेरा सिर आपकी सेवा मे हाजिर है। सम्राट् की बात सुनते ही वेताल ने कहा कि राजन्! मुझे तुम्हारा सिर पसन्द है। लीजिए मेरी यह पैनी छुरी, और काट दीजिए अपनी गर्दन। सम्राट् ने कहा कि आप अपने इस दिव्यास्त्र को अपने पास ही रखिए। मैं साधारण मनुष्य हूँ, इसको मैं सम्हाल नही सकता, मेरे पास मेरी तलवार है, ऐसा कहकर सम्राट् ने म्यान से अपनी तलवार निकाली और भगवती लक्ष्मी को भक्तिभाव से प्रणाम करके उनके सेवक वेताल को प्रसन्न करने के लिए दिए हुए अपने वचन को पूरा करने के लिए तलवार को अपनी गर्दन पर धर दबाया। अभी उनकी आधी ही गर्दन कट पाई थी, कि इसी बीच तलवार कुण्ठित हो गई। सम्राट् ने अपनी पूरी शक्ति से तलवार को फिर दबाया, किन्तु व्यर्थ···। उन्हे बेहोशी आने लगी, लेकिन तभी उन्हे स्त्रियों की हाहाकार ध्वनि सुनाई दी। सम्राट् की आँखे उस ओर बरबश उठ गई, तो देखा कि सामने उनकी आराध्य देवता लक्ष्मी देवी खडी हुई हैं और उनके चारो ओर अन्य देवियाँ भी है।

सम्राट् ने लक्ष्मी जी को कुछ-कुछ पहिचान तो लिया परन्तु अपने सन्देह—कही यह भी वेताल के समान ही न हो—को दूर करने के लिए उनका परिचय पूँछ लिया। लक्ष्मी जी ने कहा कि—राजन्! मैं वही लक्ष्मी हूँ जिसकी तुम आराधना कर रहे हो। मैं तुम्हारी भक्ति से निहायत प्रसन्न हूँ। बोलो क्या चाहते हो? इतना सुनते ही सम्राट् का हृदय प्रसन्नता से पुलकित हो गया और उन्होने लक्ष्मी जी से कहा—देवि! आपके दर्शन पाकर मैं निहाल हो गया, कृतार्थ हो गया, मेरे सभी मनोरथ पूरे हो गए। यह मेरा अन्तिम समय है। क्योकि मैं अपना शिर आपके सेवक इस वेताल को दान कर चुका हूँ। पता नही, मेरी तलवार क्यो कुण्ठित हो गई है। मैं अपना शिर नही काट पा रहा हूँ। आप मुझ पर प्रसन्न हैं ही, तो फिर कृपा करके मेरी तलवार मे तीक्ष्णता और मेरे हाथो मे इतना बल भर दीजिए कि मैं अपना शिर काटकर इस वेताल को देकर अनृण हो सकूँ।

उस सकटकाल मे भी सम्राट् के साहस एव त्याग को देखकर लक्ष्मी जी ही नही बल्कि उनके साथ आने वाली अन्य देवागनाएँ भी विस्मित हो उठी। लक्ष्मी जी ने तुरन्त ही गद्गद होकर सम्राट् से कहा—तात! अधीर न हो, तुम मेरे स्वरूप को नही पहिचान पा रहे हो, इसीलिए ऐसा कह रहे हो, मेरे परिवार मे कोई भी भूत-प्रेत-वेताल नही है। जिसे तुम वेताल समझ रहे हो, वह तो मेरा सेवक यक्ष है। इसका नाम महोदर है। मेरे

आने के पहिले इसने तुम्हारी भक्ति की परीक्षा ली थी। देखो तो, कही कुछ भी भयानक नही है। मैं तुमसे बहुत खुश हूँ। बोलो क्या वर चाहते हो ?

सम्राट् ने देखा— सचमुच वहाँ भयकर वेताल नही था। उसके स्थान पर एक भोली-भाली शक्ल का यक्ष खडा-खडा मुस्करा रहा था। लक्ष्मी जी के कृपा-कटाक्ष की धवलधारा उनके शरीर पर पड रही थी। उनका शिर भी पहिले की तरह सुकुशल था, न कही घाव था और न कही वेदना। सम्राट् की साधना पूरी हो रही थी, उन्हे तपस्या का पूरा-पूरा फल देने के लिए लक्ष्मी जी खडी-खडी मुस्करा रही थी।

सम्राट् ने हाथ जोड दिए, लक्ष्मी जी के चरणो मे अपना शिर झुका दिया, भक्ति-भाव से भरपूर होकर उनकी स्तुति की, और मदिरावती की गोद से पुत्रप्राप्ति का चिराभिलषित वर माँगा। लक्ष्मी जी ने 'एवमस्तु' कहकर सम्राट् के मनोरथ पूरे कर दिए, साथ ही बडे प्यार से यह भी कहा कि—राजन्! ज्वलनप्रभ नामक दिव्यपुरुष ने जो हार तुम्हे भेट किया है, इसे तुम अपने पास रक्खो। जब तुम्हारा पुत्र बडा हो जाए तो उसे पहिनाना। यह हार बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इसके साथ ही साथ मैं तुम्हे अपनी एक अँगूठी भी दे रही हूँ। इसका नाम बालारुण है। इसे धारण करने वाला व्यक्ति बड़े से बडे सकट से छुटकारा पा लेता है। अत. तुम इसे भी अपने पास रक्खो। तुम्हारा सर्वथा कल्याण होगा। अब मैं चलना चाहती हूँ। दक्षिण भारत के सागरतीरवर्ती स्थानो पर भ्रमण करके पुन मै हिमालय पर स्थित अपने स्थान को वापिस लौट जाऊँगी। अब तुम भी तपश्चर्या के नियमो से मुक्त होकर आनन्द से राजोचित भोगविलास को अपनाओ। ऐसा कहकर लक्ष्मी जी अपने दलबल के साथ अन्तर्हित हो गई। सम्राट् विस्मय और हर्ष की लहरो मे तैरने लगे। इन दिव्य घटनाओ का विश्लेषण करने मे ही उनकी रात बीत गई।

× × ×

सम्राट् के जीवन मे नया सवेरा हुआ, और नए सूरज की नई नवेली सुनहली किरण उनके हृदय कमल को विकसित कर गई। सम्राट् प्रात कालीन नैत्यिक कामो से निवृत्त हुए। दर्शनार्थ आए हुए गण्यमान्य नगरवासियो, मन्त्रियो और गुरुजनो से भेट की, रात की घटनाएँ सुनाईं, और जब हार और अँगूठी को भी दिखाया, तो लोगो की खुशी का ठिकाना न रहा, क्योंकि सम्राट् की साधना सफल हो गई थी।

सम्राट् ने अपने महोदधि नामक प्रधान रत्नाध्यक्ष को बुलाकर अन्य प्रमुख-प्रमुख रत्नो के मध्य मे आदर के साथ सुरक्षित रखने के लिए हार सौप दिया। इस समय उन्हे अपने प्रधान सेनापति वज्रायुध की याद आ गई। यह वज्रायुध सम्राट् की आज्ञा से ही विद्रोही अधीनस्थ राजाओ को नियन्त्रित करने के लिए सेनासहित दक्षिण भारत की ओर गए हुए थे। इसलिए सम्राट् ने अँगूठी को वज्रायुध के पास भेजने के लिए आदेश दे दिया और साथ मे यह सन्देश भी कि प्रबल शत्रु के जाल मे फँसने पर जब प्राणो का सकट आता दिखाई दे तो इस अँगूठी को अवश्य पहिन ले। तत्पश्चात् सभी के साथ वह वर प्राप्ति के उल्लास से उल्लसित होते हुए राजमहल मे पहुँचे।

वहाँ थोडी देर ठहर कर आए हुए लोगो से मिलकर शक्रावतार तीर्थ को, जहाँ

रात मे उन्हे दिव्यपुरुष ने हार भेट किया था, चल दिए। वहाँ भगवान् के दर्शन किए। तदनन्तर नगर के अन्य प्रमुख-प्रमुख मन्दिरो मे जा-जाकर भगवान् के दर्शन करते रहे। इसी बीच, महात्माओ का दर्शन और नगर के बडे-बूढों से बातचीत करते-कराते, दोपहर का समय हो गया। सम्राट् महल को लौट आए और अपने अधीनस्थ साथी अन्य राजाओ के साथ हँसते-हँसते हुए भोजन किया। तत्पश्चात् दन्तवलभिका मे आराम करते हुए सगीतगोष्ठी के रसास्वादन मे सारा दिन बिता दिया।

शाम होते-होते सम्राट् वहाँ से उतरे और पूजागृह मे सन्ध्योपासना करके उन्होने सुन्दर वेशभूषा धारण की और आस्थानमण्डप मे थोडी देर बैठे। तदनन्तर सुन्दर एव सुशील परिचारिकाओ के साथ मदिरावती के भवन मे पहुँचे। चूँकि मदिरावती वरप्राप्ति के विषय मे सम्राट् के साहसम्पन्न कार्य को सुन चुकी थी, इसलिए उनका दिल सम्राट् के दर्शन के लिए छटपटा रहा था। सम्राट् के पहुँचते ही मदिरावती ने भावविभोर होकर उनका स्वागत किया। सम्राट् महारानी के आभरणशून्य दुर्बल शरीर को देखकर क्षण-भर के लिए द्रवित हो गए। पुनः स्वय उन्होने महारानी के शरीर को अलकृत किया और वरप्राप्ति की घटना को विस्तार के साथ सुनाया। महारानी ने सब कुछ विस्मय और उल्लास के साथ सुना। तदनन्तर बहुत दिनो से बिछुडे हुए दो शरीर प्यार भरी बाते करते-करते एकाकार हो गए, क्योकि उनकी यम-नियम की डोर लक्ष्मी जी द्वारा काटी जा चुकी थी।

× × ×

उसी रात, जब सवेरा होने जा रहा था, सम्राट् ने एक सपना देखा। देखा कि उनकी पत्नी मदिरावती बर्फ की सफेदी से जगमगाते हुए कैलाश पर्वत के उत्तुग शिखर पर बैठी हुई है। सफेद साडी और चमेली के हार मे उनके शरीर की कान्ति अत्यधिक कमनीय हो उठी है। आभूषणो ने उनकी खूबसूरती मे चार चाँद लगा दिए है। इसी बीच आकाश से इन्द्र का वाहन ऐरावत हाथी उतरता है और मदिरावती के सामने बैठ जाता है। इतना ही नही बल्कि वह अपनी सूँड के अग्रभाग से मदिरावती के स्तन से दुग्ध पीने लगता है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि गणेश जी अपनी माता पार्वती के स्तन से दूध पिया करते थे। इसी बीच प्रात कालीन सगीत की मधुर झकार से उनकी नीद टूट गई। वह उठे तो देखा कि मदिरावती पहिले से ही जगी बैठी थी। उन्होने प्रसन्न होते हुए कहा कि देवि! गुरुजनो के आशीर्वाद सफल हो गए है। तपस्या से प्रसन्न हुई लक्ष्मी देवी का वर अतिशीघ्र प्रकट होने वाला है। आप अतिशीघ्र चक्रवर्ती पुत्र की माँ बनने वाली है, ऐसा कहकर उन्होने सपने का सारा हाल सुना दिया। मदिरावती शरमा गई।

कुछ ही दिनो मे मदिरावती अत्यधिक तेजस्विनी दिखने लगी। उनका तेज दिनो-दिन बढने लगा और समय आने पर शुभ मुहूर्त्त मे उन्होने एक अद्वितीय सुन्दर बालक को जन्म दिया। राजमहल और प्रजा मे आनन्द का सागर उमडने लगा। सम्राट् ने बडी धूम-धाम से उत्सव मनाया। यह उत्सव एक माह तक चला। सम्राट् ने बालक का नाम हरिवाहन रक्खा। उसके सभी सस्कार विधिवत् सम्पन्न कराए। उसके लालन-पालन के लिए विशेष व्यवस्था कराई गई। इस प्रकार सबकी आँखो का तारा बने हुए राजकुमार

के पाँच साल ज्योही पूरे हुए, त्योही उनके लिए एक विशिष्ट विद्याभवन का निर्माण कराया गया। देश के कोने-कोने से विशिष्ट-विशिष्ट विद्वानो को बुलाकर राजकुमार को पढाने के लिए नियुक्त किया गया और एक शुभ मुहूर्त्त मे राजकुमार की शिक्षा-दीक्षा का श्रीगणेश हो गया।

राजकुमार ने अपनी कुशाग्रबुद्धि एव असाधारण मेधा के सहारे दस वर्षों मे सभी विद्याओ को हृदयगत कर लिया। इधर सम्राट् ने राजकुमार के निवास के लिए एक अतिभव्य भवन का निर्माण करा दिया और विद्या समाप्ति के उपरान्त राजकुमार को राजमहल मे बुला लिया। कुछ दिनो वाद सम्राट् ने राजकुमार को युवराज-पद सौपने का विचार किया और इसके लिए उन्होने राजकुमार के सच्चे साथी की खोज शुरू कर दी।

× × ×

एक समय सम्राट् अपने कृपापात्र राजाओ के साथ सभागृह मे बैठे हुए थे। राजकुमार हरिवाहन भी पास मे ही बैठे थे। इसी समय प्रतीहारी ने आकर हाथ जोडकर सिर झुकाकर नम्रतापूर्वक सूचना दी कि—महाराज! दक्षिणपथ से सेनापति वज्रायुध ने अपने स्नेहपात्र विजयवेग को आपकी सेवा मे भेजा है। वह आपके दर्शन करना चाहता है। सम्राट् ने अन्दर भेजने की आज्ञा दे दी। विजयवेग ने आकर श्रद्धा से सम्राट् के चरणो मे सिर झुका दिया। सम्राट् ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए सम्पूर्ण सेना और सेनापति वज्रायुध का कुशल समाचार पूँछा। विजयवेग ने कहा कि—महाराज! आपके प्रताप एव कृपा से सेनापति सहित सभी सकुशल है। सबने आपके चरणो मे सादर प्रणाम भेजा है। आपने जो अँगूठी भेजी थी, सेनापति उसे हमेशा पहिने रहे हैं, और अब दक्षिण भारत मे सर्वत्र आपकी विजय वैजयन्ती फहरा रही है। इसलिए सेनापति ने वह अगूँठी मेरे हाथो आपके पास भेजी है। मैं उसे प्रधानरत्नाध्यक्ष महोदधि के पास जमा कर आया हूँ।

अँगूठी का नाम सुनते ही सम्राट् पूँछ बैठे कि कहो विजयवेग! अँगूठी से सेनापति को कुछ लाभ हुआ या नही? सुनकर विजयवेग बोला कि सरकार! अँगूठी ने सेनापति की वह सहायता की है, जो आज तक कोई नही कर सका। सम्राट् ने हर्ष और विस्मय भरे स्वर मे कहा—अच्छा! जरा मै भी तो सुनूँ। तब विजयवेग ने कहना शुरू किया—

महाराज! एक साल पहिले की बात है, शरत्काल मे सेनापति ने काचीनरेश को आपके अधीन करने की इच्छा से सेना सहित कूँच कर दिया। वहाँ के राजा कुसुमशेखर ने भी युद्ध की पूरी तैयारी कर ली। उसने अपने सभी मित्र राजाओ को सहायता के लिए दूत भेज दिए। अपने सेनापति ने सामरिक नीति से शहर को चारो ओर से घेर लिया। दोनो ओर से घमासान युद्ध छिड गया और सप्ताह बीतने लगे, यहाँ तक कि वसन्त ऋतु आ गई। उन्ही दिनो की घटना है, रात का पहिला पहर बीत चुका था, सेनापति अपने खेमे मे थे, अचानक ही छावनी मे मारो-पकडो का भयकर हो-हल्ला सुनाई देने लगा। सेनापति ने समझा कि दुश्मन ने रात मे हमला किया है, और बात भी सही थी। काचरक काण्डरत नामक दो घुडसवारो ने आकर सेनापति को सूचना दी कि दुश्मन ने धावा बोल

दिया है। सेनापति तुरन्त ही रथ पर सवार होकर चल दिए। रात के उस निविड अन्धकार मे वड़ा ही भयकर युद्ध हुआ। रक्त की धारा वह निकली। जब रात एक तिहाई शेष थी, तभी रथ पर बैठा हुआ अनुपम तेजस्वी एक राजकुमार शत्रुसेना से निकला और हमारी सेना का सहार करता हुआ सेनापति को नाम ले-लेकर युद्ध के लिए चुनौती देने लगा। सेनापति तुरन्त ही अपना परिचय देकर उससे भिड गए। उन दोनो का वाण-युद्ध होने लगा। थोडी ही देर बाद उस राजकुमार ने सेनापति को सावधान होकर प्राणो की रक्षा करने की चेतावनी देकर बाणो की भयकर झडी लगा दी। सेनापति के प्राण सकट मे हो गए। वह अपनी रक्षा मे असमर्थ होने लगे। मैंने उनसे अँगूठी पहिन-युद्ध करने के लिए कहा, किन्तु वह उस समय इतने असन्तुलित और क्रुद्ध हो रहे थे कि उन्होने मेरी वात को ठुकरा दिया। उनका धनुष कट चुका था, इसलिए वह तलवार लेकर ही उस राजकुमार की ओर दौडे। तब मैंने भी दौडकर उनके दाहिने हाथ की अँगुलि मे आपकी भेजी हुई अँगूठी जवर्दस्ती पहिना दी। उसे पहिनते ही सेनापति अजय्य हो गए। उस अँगूठी से प्रखर रश्मियो का निरन्तर प्रवाह झरने लगा, जिससे वह राजकुमार ऐसा अभिभूत हुआ कि उसने सेनापति को मारने के लिए जो बाण धनुष पर चढाया था, उसे तुरन्त ही उतार लिया; और सेनापति को हाथ मे तलवार उठाए हुए देखकर रणनीति के अनुसार उसने भी ज्योही तलवार उठाकर रथ से कूदना चाहा त्योही अकस्मात् वह मूर्च्छित होकर रथ पर गिर गया। इतना ही नही, अँगूठी से निकलती हुई किरणो के प्रताप से उसकी सारी सेना भी वेहोश हो गई।

सेनापति यह सब देखकर अचम्भे मे डूब गए। इधर हमारी सेना, उस अवस्था मे, उस राजकुमार पर टूट पडी। किन्तु सेनापति ने उच्च स्वर मे आपकी सौगन्ध दिलाकर सबको रोक दिया। स्वयं उसके पास पहुँचे और उस अद्वितीय वीर राजकुमार की अपने साथी राजाओ से प्रशसा करते रहे। उस राजकुमार की चँवर डुलाने वाली जो परिचारिका थी, केवल वही सचेत थी, शेष तो उसके सभी साथी वेहोश ही थे। अत सेनापति ने उस परिचारिका से ही उस राजकुमार का परिचय पूँछा। वह उस समय वहुत दुःखी थी। उसकी आँखो से आँसू गिर रहे थे। किन्तु सेनापति के बारम्वार पूँछने पर उसने लम्बी साँस लेकर धीमी आवाज मे सक्षेप मे कहना शुरू किया—

महोदय! आपने सिहलद्वीप का तो नाम सुना ही होगा और आप यह भी जानते होगे कि वहाँ के सम्राट् का नाम चन्द्रकेतु है। उन्होने अपनी भुजाओ के वल से समुद्र-मध्यवर्ती सभी द्वीपो के राजाओ को क्रीतदास बना लिया है। यह राजकुमार उन्ही के पुत्र हैं। इनका नाम समरकेतु है। इनके शील, शक्ति एव सौन्दर्य की त्रिवेणी सभी को वशीभूत कर लेती है। अपने इन्ही गुणो मे वाल्यकाल मे ही इन्हे युवराज पद प्राप्त हो गया है। अपने साम्राज्य के कतिपय उद्दण्ड राजाओ को नम्र बनाने के उद्देश्य से पिता की इच्छा से यह राजधानी मे निकले हुए थे। वीच मे ही पिताजी की आज्ञा मिली कि काची-नरेश की सहायता करनी हैं। इमलिए अपने कुछ साथी राजाओ को लेकर अभी पाँच-छ दिन पहले ही काची मे आए है। मानमिक रूप से नितान्त अस्वस्थ होने के कारण युद्धभूमि मे नही आए। किन्तु आज सुवह ही यह अपने इने-गिने साथियो को

लेकर काची-नरेश के महल से बिलकुल लगे हुए उपवन मे बने हुए स्मरायतन (कामदेव के मन्दिर) चले गए थे। आज उत्सव का दिन था। इसलिए नगर के सभी तरुण एवं तरुणियाँ कामदेव के दर्शनार्थ वहाँ पहुँच रहे थे। हमारे यह राजकुमार तो वहाँ मन्दिर के दरवाजे पर सारे दिन बैठे रहे। शाम होने पर अपने सभी साथियो को वापिस भेज दिया। यह आधी-रात को लौटे। लौटते ही सबको युद्ध के लिए चलने का आदेश दिया, सबने रोका, पर माने नही और यहाँ आकर युद्ध छेड दिया। हाय ! पता नही, विधाता अचानक ही क्यो विपरीत हो गया। इतना कहते-कहते उस परिचारिका का गला भर आया और उसकी आँखे गगा-यमुना बन गईं।

अब रात बीत रही थी। चाँद के साथ तारे भी डूब रहे थे। पूर्व दिशा मे अरुणोदय की लालिमा फैल रही थी। ज्योही सूर्य की किरणो ने दिग्-दिगन्तो मे अपना अधिकार जमाया, त्योही उस राजकुमार की सेना मे चेतना का सचार होने लगा और साथ ही राजकुमार ने भी आँखे खोली, किन्तु अपने को उस अवस्था मे देखकर वह पुन मूर्च्छित हो गया।

सेनापति ने जब देखा कि वह राजकुमार जीवित है, तो उन्हे अपार हर्ष हुआ। खुशी से उनकी आँखे गीली हो गईं। तुरन्त ही उन्होने अभयसूचक भेरी बजवादी और सभी घायल सैनिको की सेवा का आदेश देकर राजकुमार को अपने ही हाथी पर आगे बैठाकर अपने आवास को लौट आए और समीप ही एक भव्य पटभवन मे उन्हे ठहराया, तथा स्वय अपने हाथो से उनके घावो की मरहम-पट्टी करके अपने प्रधान चिकित्सको को उनकी सेवा मे नियुक्त कर दिया।

जब राजकुमार शरीर से सर्वथा स्वस्थ हो गए तो सेनापति ने अपने साथ भोजन के लिए साथियो सहित उन्हे निमन्त्रित किया। सब प्रकार से स्वागत-सत्कार करने के बाद सेनापति ने राजकुमार से कहा—कि कुमार ! यह सयोग की बात है कि आप मेरे मेहमान है। आपके पिताजी का प्रताप वन्दनीय है। आपके पराक्रम से मै पराजित हो चुका हूँ। युद्ध मे आपको मूर्च्छित करने की शक्ति किसी मे भी नही है। आप अपनी पराजय से दुखी न हो, क्योकि वह तो एक दिव्य अँगूठी थी, जिसके प्रभाव से आपको युद्ध मे मूर्च्छित होना पडा था, ऐसा कहकर सेनापति ने न केवल उस अँगूठी को ही दिखाया, बल्कि शक्रावतार मन्दिर मे आपकी और ज्वलनप्रभ नामक दिव्यपुरुष की भेट के विषय मे भी बताया। साथ ही लक्ष्मी जी किस प्रकार आप पर प्रसन्न हुईं, उन्होने कैसे क्या वर आपको दिया, क्या कहकर अपनी अँगूठी आपको दी, आपने क्यो उसे उनके पास भेजा, आदि-आदि सभी कुछ सक्षेप मे कह सुनाया।

तदनन्तर सेनापति ने पुन हाथ जोडकर कहा कि कुमार ! अब यदि आप मुझ पर प्रसन्न है, तो आप कोशलनरेश की चतुरगिणी सेना के अध्यक्ष पद को स्वीकार करे। मैं आपका आज्ञापालक सेवक रहूँगा। यदि इसे तुच्छ मानकर आप अपने पिताजी द्वारा दिए हुए युवराज पद पर ही रहना चाहते हो तो आप अपनी इच्छा के स्वामी है, जब जी चाहे, जा सकते है।

सेनापति के वचनो का राजकुमार पर ऐसा प्रभाव पडा कि वह अपने पैतृक

साम्राज्य की चिन्ता छोडकर आपके दर्शन के लिए उत्कण्ठित हो गए। सेनापति ने प्रसन्न होकर तमाम सेवको को साथ में करके उन राजकुमार को मेरे साथ आपके पास भेजा है। कल ही रात हम सब अयोध्या मे पहुँचे हैं और आज मुझे आपके दर्शन करने का सौभाग्य मिल गया है।

विजयवेग की बातें सुनकर सम्राट् मेघवाहन का हृदयकमल समरकेतु नामक उस राजकुमार को स्थान देने के लिए खिल गया। विजयवेग से पूँछने पर जब उन्हे पता चला कि वह राजकुमार शक्रावतार मन्दिर के उद्यान मे ठहरा हुआ है तो उन्होने तुरन्त ही अपने हरदास नामक प्रधान प्रतीहार को आज्ञा दी कि वह राजकुमार को राजमहल मे आदर के साथ लिवा लाए। वह गया और सेवा-सत्कार करके लिवा भी लाया। समरकेतु को देखते ही सम्राट् ने बड़े आदर से अपने पास बुलाया। समरकेतु ने ज्योही सम्राट् के चरणो मे अपना मस्तक झुकाया, त्योही सम्राट् ने वडे प्यार से उन्हे अपनी गोद मे वैठा लिया और और गले लगा लिया। तदनन्तर परिचारक से एक सुन्दर आसन मँगाकर अपने समीप ही वैठा लिया; और कहा —

प्रिय वत्स! तुम्हारा हार्दिक स्वागत है। यहाँ आकर तुमने बहुत ही अच्छा किया। तुम्हारे शील और शक्ति को सुनकर मैं अत्यधिक प्रभावित हुआ हूँ। ससार मे वह व्यक्ति धन्य होता है, जिसकी प्रशसा शत्रु भी मुक्त कण्ठ से करते हो। सिंहलेश्वर चन्द्रकेतु भाग्यशाली है, जिन्हे तुम्हारे जैसा पुत्ररत्न प्राप्त हुआ है। आज तुम्हे अपने पास पाकर मैं भी कृतार्थ हो गया। यहाँ जो कुछ भी है उसे अपना ही समझना। तात! मैं तुम्हारे लिए किसी भी प्रकार का खेद और अभाव नही होने दूँगा। इतना कहकर सम्राट् ने अपने पुत्र राजकुमार हरिवाहन से कहा कि वेटा! तुम समरकेतु के विषय मे सब कुछ सुन ही चुके हो। मैं इन्हे तुम्हारा सहचर बना रहा हूँ। इन्हे तुम अपना सहोदर भाई ही समझना, और कभी भी इनकी उपेक्षा नही करना, ऐसा कहकर सम्राट् ने समरकेतु को हरिवाहन से परिचित करा दिया। राजकुमार हरिवाहन समरकेतु को पाकर बहुत खुश हुए और अपने पिता को वचन दिया कि समरकेतु को वह अपने सगे भाई की ही तरह समझेगे। सुनकर सम्राट् बहुत खुश हुए और सभा विसर्जित कर दी।

हरिवाहन ने समरकेतु को अपने साथ लिया और अपनी माता मदिरावती के महल मे पहुँचे। वहाँ अपनी माता से समरकेतु का परिचय कराया और सारा हाल सुनाया। मदिरावती भी समरकेतु को पाकर बहुत प्रसन्न हुईं। उन्होने समरकेतु को भी वही प्यार दिया जो हरिवाहन को देती थी। तदनन्तर समरकेतु के हाथ को अपने हाथ मे लिए हुए हरिवाहन अपने भवन मे पहुँचे और वहाँ स्नानादि से निवृत्त होकर उन्होने समरकेतु और अन्य राजकुमारो के साथ भोजन किया।

अपराह्न मे हरिवाहन समरकेतु आदि राजकुमारो के साथ वैठे वातचीत कर रहे थे कि उसी समय सुदृष्टि नामक वितरणाधिकारी ने निवेदन किया कि सम्राट् ने राजकुमार हरिवाहन को काश्मीर आदि सम्पूर्ण उत्तराखण्ड का उत्तराधिकारी बना दिया है, और राजकुमार समरकेतु को सम्पूर्ण अग-देश का उत्तराधिकारी बनाया है। सुनकर हरिवाहन अत्यधिक प्रसन्न हुए। समरकेतु के मन मे भी सम्राट् मे पितृवुद्धि, मदिरावती

मे मातृवुद्धि और हरिवाहन मे भ्रातृवुद्धि जागृत हो गई। इस प्रकार हरिवाहन और समरकेतु मे प्रतिदिन प्रीति बढती गई और आनन्द से दिन, पक्ष और माह बीतने लगे।

× × ×

गर्मी के दिन आ चुके थे। हरिवाहन नहा-धोकर, खा-पीकर, समरकेतु को साथ लेकर, हाथी पर वैठकर घूमने निकल पड़े। घूमते-घामते सरयूतीर पर पहुँच गए। वहाँ मत्तकोकिल नामक एक वहुत ही सुन्दर वगीचा था। उसी मे दोनो घुस गए। उनके साथ उनके कुछ अन्य चुने हुए साथी राजकुमार भी थे। काफी देर तक वह उद्यान की शीतल सुरभित वापियो और लतामण्डपो मे विचरण करते रहे। तत्पश्चात् वह कामदेव के मन्दिर के पास ही वने हुए जलमण्डप मे पहुँचे। राजकुमार हरिवाहन वहाँ वैठ गए। उनके सभी साथी राजकुमार भी वैठ गए। धीरे-धीरे और कई राजकुमार वहाँ आ वैठे और मनोरजन के नाम पर कविगोष्ठी का श्रीगणेश हो गया। काव्यरस की धारा में सभी सानन्द वह रहे थे कि इसी वीच मजीर नामक वन्दिपुत्र ने आकर निवेदन किया कि कुमार! जरा इधर भी ध्यान देने की कृपा कीजिए। मैं इसी पिछले चैत्र महीने के शुक्ल-पक्ष की त्रयोदशी को कामदेव के पूजामहोत्सव को देखने के लिए यहाँ आया था। मुझे मन्दिर के प्रागण मे लहलहाते हुए आम के वृक्ष की जड के पास पडा हुआ एक पत्र मिला। जव मैं लौटकर घर पहुँचा तो एकात मे मैंने उसे खोलकर देखा, उसमे एक आर्या लिखी थी।[८] उसे मैंने पढ तो लिया, किन्तु उसका आशय नही समझ सका। इतना कह-कर उसने वह आर्या भी सुना दी, साथ ही सप्रसंग व्याख्या करने की प्रार्थना भी कर दी।

उस आर्या (गीति) को सुनकर सभी विस्मित हो गए। कोई भी उसके तात्पर्य को न समझ सका; किन्तु राजकुमार हरिवाहन ने उसे विरहिणी नायिका की ओर से नायक को भेजे हुए प्रेमपत्र की सज्ञा देकर उसका भावार्थ भली-भाँति समझा दिया। सुनकर सभी खुश हो गए और राजकुमार की काव्यप्रतिभा की प्रशसा करने लगे। किन्तु राजकुमार समरकेतु की दशा विचित्र ही हो गई, उनका चेहरा फीका पड़ गया, गरम-गरम और लम्वी-लम्वी साँसे चलने लगी, आँखो से आँसू भर आए, उनका सिर झुक गया, और हाथ का अँगूठा धरती कुरेदने लगा।

समरकेतु की अकस्मात् हुई उस दशा को देखकर सभी परेशान हो गए और एक दूसरे का मुँह देखने लगे। इसी वीच कलिगदेश के राजकुमार कमलगुप्त ने समरकेतु के खेद को मजाक ही मजाक मे दूर करना चाहा पर सफल नही हुआ। तव राजकुमार हरिवाहन ने वडे प्रेम से समरकेतु से पूँछा कि दोस्त! क्या वात है? आप क्यो अचानक इतने दु खी हो गए? इस गीत को सुनकर कही आपको अपने से सम्वन्धित किसी प्रणय-कथा की याद तो नही आ गई? कही आप भी इसी प्रकार किसी के प्रेम को पाने मे असफल तो नहीं हुए? सच-सच वताओ, आखिर वात क्या है? क्या मुझसे भी कुछ छिपाओगे?

राजकुमार हरिवाहन के प्रश्नो को सुनकर समरकेतु सम्हल गए। धीरे से आँसू पोछे, शिर उठाया, निराश नयनो से सभी साथियो को देखा और हरिवाहन की ओर मुँह

करके मन्द स्वर मे कहा—कुमार ! आपकी बुद्धि वास्तव मे नवनवोन्मेषशालिनी है। आपने न केवल इस आर्या की तथ्यपूर्ण व्याख्या ही की है, बल्कि मेरे दिल के कोने मे छिपी प्रणय वेदना को भी पहिचान लिया है। फिर भी यदि आप मेरी इस करुणामय कहानी को सुनना ही चाहते है तो सुनिए —

" आपको यह तो मालूम ही है कि मैं सिंहलद्वीप के सम्राट् चन्द्रकेतु का पुत्र हूँ। मेरे पिता की राजधानी रगशाला नगरी है। उन्होने मुझे जब युवराज बनाया तो उन दिनो उन्हे अपने अधीनस्थ सुवेलपर्वत[६] के आसपास रहने वाले कुछ सामन्तो के व्यवहार से उद्दण्डता की झलक मिली। इसलिए उन्होने उन सबको नम्रता एव अनुशासनप्रियता का पाठ पढाने के लिए मुझे नियुक्त किया। मैं अपनी सशक्त सेना लेकर दक्षिणापथ की ओर चल पड़ा। मेरी सहायता के लिए पिताजी ने अनुभवी मन्त्रियो और शौर्यसम्पन्न राजाओ को भी मेरे साथ भेज दिया। नेता सबका मैं ही था। मैं अपने समरवल्लभ नामक हाथी पर वैठा हुआ धूमधाम के साथ राजधानी से निकला और अपनी विशाल सेना लिए हुए नगरसीमा पार करता हुआ, ग्रामवासियो को भय-विस्मय और अभयदान देता हुआ समुद्र के किनारे पहुँचा। वहाँ सर्वथा सुरक्षित स्थान पर सेना को ठहरा दिया गया, तम्बू तान दिए गए; कनाते लगा दी गईं, अर्थात् पूरी तरह से छावनी पड़ गई।

आगे सेना को नौकाओ पर चलकर दुश्मनो से टक्कर लेनी थी। इसलिए प्रवन्ध मे दो-तीन दिन वीत गए। जब सभी तैयारियाँ हो गईं तो अपराह्ण मे समुद्र की विधान-पूर्वक पूजा की। दूसरे दिन सुवह ही समुद्रीय यात्रा पर चल देना था। इसलिए ज्योही रात बीतने को आई, मैं उठा। उस समय यात्रासूचक भेरी भी वज उठी थी और सैनिक समुद्र के घाट की ओर सोत्साह वढ रहे थे। मैं भी इने-गिने सैनिको के साथ वाहरी सभा-मण्डप मे पहुँचा। वहाँ मैंने अपने वेत्रधारी परिचारक के साथ आते हुए एक नवयुवक को देखा, जिसकी आयु लगभग २५ वर्ष की होगी और जो देखने मे नाविक (मल्लाह) प्रतीत हो रहा था। उसे देखकर मैंने अपनी नौ-सेना के अध्यक्ष यक्षपालित नामक सचिव से पूछा कि यह कौन है। उन्होने कहा कि कुमार ! यह यहाँ के सम्पूर्ण नाविको का सरदार है। लेकिन जब मुझे उनके इस उत्तर से सन्तोष नही हुआ तो उन्होने कहना शुरू किया—

युवराज ! लीजिए, मैं सक्षेप मे इस नाविक युवा की कहानी ही सुनाए देता हूँ। स्वर्णद्वीप मे मणिपुर नामक एक नगर है। उसमे वैश्रवण नामक एक सेठ रहते है। उनकी पत्नी का नाम वसुदत्ता है। नौकाओ पर माल लादकर व्यापारकरने मे वह सेठ सिद्धहस्त है। यह नाविक युवा उन्ही का पुत्र है। इसका नाम तारक है। जब यह सभी शास्त्रो को पढ़-लिखकर तैयार हुआ तो पैतृक व्यवसाय मे आकृष्ट हो गया और माल से लदा हुआ जलपोत लिए हुए अपने कुछ साथियो समेत अपनी रगशाला नगरी मे आ पहुँचा। शहर की भीडभाड से बचने के लिए यह समुद्र के किनारे, घाट पर ही, ठहर गया। वहाँ इसकी थोडी-वहुत जान-पहिचान जलकेतु नामक मल्लाहो के सरदार से हो गई। उस सरदार की एक लडकी थी प्रियदर्शना। एक दिन वह अपने पिता के कहने से मोतियो का हार दिखाने के लिए इसके पास आई। भगवान् ने इसे खूबसूरती तो गजब की दी ही है, बस वह लड़की इसे देखकर रीझ गई। फिर तो वह किसी न किसी वहाने रोज ही इसके पास

आने लगी। एक दिन वह अपनी सहेली के साथ इसके मकान की छत पर खेल रही थी। इत्तिफाक से यह भी उसके पास पहुँच गया। इसे देखते ही वह शरमा गई। उसके दौडते हुए पैर लडखडा गए और वह सीढ़ियो पर आते-आते फिसलकर नीचे गिरने ही वाली थी कि इसने बढकर उसका हाथ पकड लिया और गिरने से बचा लिया। जब इसने उसे समझा-बुझाकर घर लौट जाने को कहा तो वह कह उठी कि तुमने मेरा हाथ तो थाम ही लिया है, अब क्या अपने दिल मे और घर मे रहने की जगह नही दोगे? वह सुन्दरी तो थी ही, साथ ही साथ अदाएँ भी उसकी गजब की थी। यह मुग्ध हो गया और हमेशा के लिए उसें अपना बना लिया। इसके साथियो ने लडकी के खानदान पर आक्षेप करते हुए काफी विरोध किया, इसे बहुतेरा समझाया, माता-पिता की भी याद दिलायी; किन्तु यह उसके प्रेम मे ऐसा फँसा कि सबको तिलांजलि दे दी, और यही अपनी प्रियतमा के साथ रहने लगा। अपने सम्राट् ने जब यह सब कुछ सुना तो इसके मानवीय गुणो की प्रशसा करते हुए इसे सभी मल्लाहो का सरदार बना दिया। सरदार बनते ही इसने अपने पद के अनुरूप ही नौ-सचालन कला मे भी अद्वितीय सफलता प्राप्त कर ली है। इतना ही नहीं, वलिक यह साहस का भी धनी है, और स्वामी की रक्षा के लिए तो यह अपने प्राणो की भी परवाह नही करता है। इसलिए मैंने इसे अपनी नौका का कर्णधार बनाने का विचार किया है। विश्वास है कि आप इसे पसन्द करेंगे, इतना कहकर यक्षपालित मेरी ओर देखने लगे।

उस नाविक युवा ने आगे बढकर नम्रता से मुझे प्रणाम किया और तैयारी की सूचना देते हुए मुझसे प्रस्थान की प्रार्थना की। मै उसकी जीवनकथा को सुनकर एव उसके व्यवहार से सन्तुष्ट हो गया और उसे अपना नाविक स्वीकार करके उसके साथ चलकर नाव पर जा बैठा। मेरे बैठते ही सारी नौसेना चल पडी।

हमारी सेना ने शीघ्र ही तेज रफ्तार पकड ली और हम समुद्र के बीचो-बीच पहुँच गए। मेरे पिता के अधीन रहकर भिन्न-भिन्न द्वीपो मे राज्य करने वाले बहुत-से राजाओ ने जब मेरे विषय मे सुना तो वे भी आदर-भाव प्रकट करते हुए मेरे साथ हो गए। मैं उद्दण्ड और निरकुश सामन्तो को साम-दान-दण्ड-भेद से अपने अधीन करता हुआ सुवेल-पर्वत की ओर बढने लगा। कुछ ही दिनो मे वहाँ पहुँच कर उसकी तराई मे छावनी डाल दी। क्योकि निरन्तर अभियानो से सेना भी थक गई थी, उसे विश्राम चाहिए था। मुझे भी वह पर्वत देखने मे अत्यन्त रमणीय लगा। अत मै कुछ दिनो तक वही पर्वत की शोभा देखने मे लगा रहा।

एक दिन पर्वतक नामक किरातराज को काबू मे करने के लिए नौ-सेना की एक सशक्त छोटी टुकडी लेकर मैंने धावा बोल दिया। वह एक बहुत ही बडा खूँख्वार डाकुओ का सरदार था। अचानक ही उस पर आक्रमण करके उसे सपरिवार कैद कर लिया और अपनी छावनी की ओर लौट पडा।

हम लोग चले आ रहे थे। रात दो-तिहाई बीत चुकी थी। इसी समय मेरी नौ-सेना के अध्यक्ष ने मेरे पास प्रस्ताव भेजा कि सैनिको को ठण्ड और मल्लाहो को नीद लग रही है। इसलिए यदि आपकी आज्ञा हो तो इस समीपवर्ती रत्नकूट नामक पहाड़ पर

विश्राम कर लिया जाए। मुझे यह प्रस्ताव पसन्द आ गया और मैने उस रत्नकूट पर्वत पर डेरा डालने की अनुमति दे दी। नौकाएँ पहाड़ के किनारे लगने लगी, लोग उतरने लगे और निवास योग्य स्थान खोजने लगे।

अचानक ही मुझे उस रत्नकूट पर्वत के पश्चिमोत्तर कोने से एक अति दिव्य मागलिक गीत की ध्वनि सुनाई दी, जिसे सुनकर मै मुग्ध हो गया। मैंने अपने प्रिय नाविक तारक से उस ध्वनि को समीप से सुनने की इच्छा प्रकट की। वह कुछ सोचकर बोला—युवराज ! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, किन्तु यहाँ का समुद्र दुर्गम है। रात का समय है। अत मेरा मन कुछ शकित हो रहा है। मै एक बार पहले भी यहाँ आ चुका हूँ और इस मधुर ध्वनि को सुन चुका हूँ। इतना ही नही, बल्कि और भी वहुत-से मल्लाहो ने यहाँ आकर इसे सुना है, किन्तु प्रयत्न करने पर भी पता नही लग सका है कि इस मधुर सगीत का स्रोत कहाँ है।

तारक की बातो से मेरी जिज्ञासा और भी बढी, और उसे साथ लेकर मै ध्वनि के उद्गमस्थान की ओर चल पड़ा। उसने मेरी सुरक्षा की दृष्टि से पाँच-छ नावो को अपने साथ ले लिया था। अभी मैं कुछ ही दूर चला था कि ध्वनि का सुनाई देना बन्द हो गया। फिर भी आशा लिए मै वढता ही गया। तारक ने लौट चलने की आज्ञा माँगी किन्तु मै अपनी जिद पर अटल रहा। साथ ही उस निरर्थक यात्रा के लिए मन ही मन वहुत पछताया। इसी भाग-दौड़ और उधेड़-बुन मे रात वीत गई। पूर्व दिशा मे उषा की लालिमा भी छिटकने लगी। ज्योही मैंने अपने सामने की ओर दृष्टि डाली त्योही मुझे अति देदीप्यमान लाल-लाल प्रकाश-पुंज दिखाई दिया। मैं अभी यह सोच ही रहा था कि यह कैसा प्रकाश है, तभी मुझे उसी प्रकाशमण्डल से निकलते हुए और आकाश से उतरते हुए विद्याधरो का समूह दिखाई दिया। यह सब देखकर मेरा मन उल्लसित हो गया और उसी ओर चलने के लिए तारक को आदेश दे दिया। थोडा ही आगे बढने पर मुझे एक अति विशाल मन्दिर दिखाई देने लगा। मैं कौतुक से भर गया, सोचा चलो ठीक ही हुआ, इस यात्रा मे कुछ नही तो भगवान् के दर्शन तो हुए ही। इसी बीच मेरी नाव मन्दिर की दीवाल से जा लगी और तारक के साथ मै उस पवित्र भूमि पर उतर गया।

अब मेरे मन मे मन्दिर मे जाकर पूजा करने की इच्छा हुई। इसलिए तारक से कुछ फूल तोड लेने के लिए कहा। पर उसने कहा कि फूल तो मैं अभी तोडे लाता हूँ, लेकिन इस मन्दिर के द्वार का तो पता ही नही है, आप कैसे प्रवेश कर सकेंगे ? इसलिए क्षणभर प्रतीक्षा कर लेना उचित है। इस मन्दिर से कोई न कोई निकलेगा ही। उसी से प्रवेश मार्ग पूछकर आप अन्दर जाने मे समर्थ हो सकेंगे। तारक ने अभी अपनी बात पूरी भी नही कर पाई थी कि स्त्रियो के नूपुरो और पायलो की मधुर झकार सुनाई पडने लगी, जो क्रमश समीप से समीपतर होती जा रही थी। जब मैंने उधर मन्दिर की दीवाल की ओर अपनी दृष्टि डाली तो मुझे कई सुन्दर कन्याएँ दिखाई पडी। उन सबके बीच मे एक अत्यन्त सुन्दरी कन्या थी, जिसकी आयु १६ वर्ष के लगभग थी।

राजकुमार समरकेतु की कहानी अभी चल ही रही थी, सभी ध्यान से सुन ही रहे थे कि इसी बीच प्रतीहारी ने आकर निवेदन कर दिया कि कुमार ! जरा इस चित्र को

भी देख लीजिए, और इतना कहकर उसने एक अति सुन्दर लड़की का चित्र राजकुमार हरिवाहन के सामने प्रस्तुत कर दिया। समरकेतु की आत्मकथा अधूरी ही रह गई।

वह चित्र क्या था, एक जादू ही था। हरिवाहन की दृष्टि उस चित्र के अग-प्रत्यग पर बारबार अटकने लगी। चित्र की रूपमाधुरी का भली-भाँति पान करने के पश्चात् हरिवाहन ने उसे समरकेतु, कमलगुप्त आदि साथी राजकुमारो को भी दिखाया और प्रतीहारी से पूछा कि तुझे यह कहाँ से मिला है? उसने हाथ जोडकर निवेदन किया कि युवराज! मैं अभी उपवन की शोभा को देखने के लिए जरा देर को निकल गई थी, तो मुझे मालतीलतामण्डप मे कमलिनी के शीतल पत्तो पर लेटा हुआ एक अतिसुन्दर बालक दिखाई दिया। मै उसके पास पहुँची तो उसने मुझसे आपका परिचय पूछ लिया। मैने जब उसे आपके विषय मे सब कुछ बता दिया तो वह बहुत ही प्रसन्न हुआ। तदनन्तर कुछ सोचकर उसने मुझसे कहा कि मुझे भी इन्ही राजकुमार की तलाश है। मैने एक दिव्य कन्या का चित्र बनाया है, जिसे मै उन्हे दिखाना चाहता हूँ। आप इसे लेकर राजकुमार तक पहुँचाईए, मै भी पीछे-पीछे आता ही हूँ। ऐसा कहकर उसी बटोही बालक ने यह चित्र मुझे दिया है। प्रतीहारी की बात पूरी होते-होते वह बालक भी राजकुमार के पास आ गया। उसके साथ एक आदमी और था। वह बालक सुन्दर भी कम नही था। आते ही उसने हरिवाहन को प्रणाम किया। राजकुमार ने बडे प्रेम से उसे अपने पास ही बैठा लिया।

जब उसने देखा कि हरिवाहन की आँखे बारबार चित्र पर ही खिच रही है तो उसने नम्रतापूर्वक पूछ लिया कि कुमार! क्या यह चित्र आपको पसन्द आया? कही कोई त्रुटि हो तो सूचित करने की कृपा करे। मैं तो अभी इस कला मे अपरिपक्व ही हूँ। हरिवाहन ने कहा कि बालक! तुम आयु मे भले ही कम हो, किन्तु चित्रकला मे अनुपम हो। यह चित्र भावो की अभिव्यक्ति करने मे पूरी तरह समर्थ है। मुझे बहुत पसन्द है। किन्तु इस चित्र मे किसी पुरुष का चित्रण नही किया गया है। इसलिए कुछ खटकता-सा है। कहो, तुम्हारा क्या विचार है? यह सुनकर चित्रकार बालक ने कहा कि कुमार! आपका कहना बिल्कुल ठीक है। किन्तु क्या करूँ? मैने जिस कन्या का चित्र बनाया है वह, पता नँही क्यो, पुरुषो से विद्वेष रखती है। इसलिए मैने इस तथ्य को प्रकट करने के लिए ही किसी भी पुरुष का चित्र इसके साथ नही बनाया है। यदि आप मेरे पुरुष-चित्र निर्माण-कौशल को देखना ही चाहते है, तो वह भी दिखाऊँगा। मै आपके ही चित्र को इस चित्र के साथ बना दूँगा, पर अभी नही, क्योकि इस समय मैं जरा जल्दी मे हूँ। हरिवाहन ने जल्दी का कारण जानना चाहा तो उसने कहना शुरू किया—

कुमार! उत्तर दिशा मे वैताढ्य नामक पर्वत पर विद्याधरो का एक नगर है, जिसका नाम है रथनूपुरचक्रवाल। वहाँ के चक्रवर्ती सम्राट् का नाम है चक्रसेन। उनकी महारानी का नाम पत्रलेखा है, और उनके एक अद्वितीय कन्यारत्न है, जिसका नाम है तिलकमञ्जरी। यह चित्र भी उसी विद्याधर राजकुमारी का है। उसमे सभी गुण है। शील एव सौन्दर्य का तो वह अद्भुत मिश्रण है। पर एक ही कमी है और वह यह कि वह

पुरुषसम्पर्क से सर्वथा दूर रहती है। सभी उसे समझाते है किन्तु वह विवाह नही करना चाहती ।

उसके इस हठ से देवी पत्रलेखा वहुत चिन्तित रहती है। एक रात वह सपनो की देवी से तिलकमञ्जरी के पति का पता वताने के लिए प्रार्थना करके सो गईं। निद्रावस्था मे सपनो की अधिष्ठात्री देवी ने आश्वासन दिया कि चिन्ता की कोई बात नही है। तिलकमञ्जरी का पति भूतलवासी कोई चक्रवर्त्ती राजकुमार होगा। तिलकमञ्जरी कोई साधारण कन्या नही है। लक्ष्मी देवी की सखी ही तुम्हारे घर कन्यारूप में उत्पन्न हुई है। इसलिए इसे वडे आदर के साथ रखना। देवी पत्रलेखा इस स्वप्न को देखकर जाग गईं। अपनी सहेली चित्रलेखा, जो मेरी माता हे, को बुलाकर आदेश दिया कि वहिन ! तुम चित्रकला मे प्रवीण हो, तिलकमञ्जरी को चित्र देखने का शौक है, अत. तुम किसी न किसी वहाने से भूतलवर्त्ती सुन्दर-सुन्दर राजकुमारो के ही चित्रो को बनाकर उसे दिखाया करो। उनके शील-शक्ति एव सौन्दर्य को बढा-चढा कर सुनाया करो। शायद इसी प्रकार कही किसी राजकुमार पर उसकी दृष्टि ठहर सके। चित्रलेखा ने भी 'जो आज्ञा' कहकर अपनी चित्रकला-कुशल सभी दूतियो को राजकुमारो के चित्र बनाने के लिए पृथ्वी पर भेज दिया है। मुझे भी वुलाकर उन्होने वताया कि वेटा गन्धर्वक ! तुम्हे भी यही करना है। किन्तु आज तो देवी पत्रलेखा तुम्हे सुवेलगिरि निवासी अपने पिता विचित्रवीर्य के पास किसी काम से भेज रही है। वहाँ पहुँचकर श्री विचित्रवीर्य से मेरी ओर से भी इतना अवश्य कह देना कि काचीनरेश कुसुमशेखर की जो गन्धर्वदत्ता नामक पटरानी है, वह उनकी पुत्री ही है। मैं स्वय जाकर उससे मिल चुकी हूँ। उसने वैजयन्ती नगर की दुर्घटना के विषय में सब कुछ सही-सही वताया है। मैंने भी उसे वन्धुजनो की कुशलता का समाचार देकर धीरज बँधा दिया है। इसलिए अब उसके प्रति सन्देह नही करे। वह निश्चित ही उनकी पुत्री है। विद्याधरेन्द्र विचित्रवीर्य के लिए इतना सन्देश देकर उन्होंने मुझे भी आज्ञा दी है कि मैं भी शीघ्र ही सुवेलगिरि लौटकर काची पहुँचूँ और देवी गन्धर्वदत्ता की सेवा मे कुछ दिन विताऊँ तथा उन्हे धैर्य बँधाकर पुन रथनूपुर-चक्रवाल पहुँचूँ। मेरे साथ यह चित्रमाय नामक विद्याधर है, जो मेरी समय-समय पर सहायता करेगा। इसलिए हे राजकुमार ! आप क्षमा करे और मुझे चलने की अनुमति दे। यदि कोई विशेष वाधा न हुई तो लौटते समय आपके दर्शन फिर करूँगा, यहाँ एक दिन रुककर आपके चित्र को बनाऊँगा; और उसे ले जाकर विद्याधर राजकुमारी को दिखाऊँगा। मेरी धारणा वन चुकी है कि आपके चित्र को देखकर उसका पुरुष-विद्वेष अवश्य ही समाप्त हो जाएगा। इतना कहकर उठने की इच्छा करते हुए उसने कुमार से फिर कहा कि कुमार ! मेरे लायक उस दिशा मे कोई करने योग्य काम हो तो आज्ञा देकर अनुगृहीत करिए।

राजकुमार हरिवाहन गन्धर्वक की वातचीत सुनकर वहुत प्रभावित हुए। लौटते समय अयोध्या मे एक दिन अवश्य ही रुकने का उसे निमन्त्रण दे दिया। इसी वीच समरकेतु ने एक पत्र लिखकर हरिवाहन को देकर कहा कि आप इस पत्र को गन्धर्वक के द्वारा काचीनरेश की पुत्री मलयसुन्दरी (जो गन्धर्वदत्ता की पुत्री है) के पास पहुँचवा

दीजिए। हरिवाहन ने वह पत्र गन्धर्वक को दे दिया और उसे यह भी समझा दिया कि वह इस पत्र को काचीनरेश की पुत्री मलयसुन्दरी को सादर सौंप दे। साथ ही अच्छे-अच्छे वस्त्र एव आभूषणो को भेट मे देकर उसे विदा कर दिया। गन्धर्वक हरिवाहन को प्रणाम करके थोडी दूर तक तो भूमि पर ही चला, फिर तुरन्त ही अपने साथी चित्रमाय के सहित आकाशमार्ग से दक्षिण दिशा की ओर उड गया।

× × ×

हरिवाहन के हृदय पर उस विद्याधर राजकुमारी के चित्र का ऐसा प्रभाव पडा कि वह एकान्त मिलते ही उसे देखा करते और उसी के विषय मे सोचा करते। यहाँ तक कि वह रातो की नीद से भी हाथ धो बैठे। वह उसकी सौन्दर्यसरिता के प्रबल प्रवाह मे बहने लगे। उन्हे केवल गन्धर्वक का ही सहारा था। वह जानते थे कि उसी के प्रयत्नो से वह तिलकमञ्जरी के दिल की गहराई मे प्रवेश पा सकते है। अत उसके लौटने का बेतहाशा इन्तजार करने लगे। काश ! वह लौट आता। पर होनहार तो कुछ और ही थी, वह नही लौटा। ग्रीष्म ऋतु बीत गई, वर्षा ऋतु आई और चली गई, शरद् भी आ गई, पर गन्धर्वक का कही पता तक न चला। हरिवाहन की आशाओ का महल ढह गया। राजमहल मे रहना उनके लिए मुश्किल हो गया। अपने टूटे दिल को बहलाने के लिए देशाटन के अलावा अब उनके पास कोई दूसरा चारा न रहा।

× × ×

एक दिन साम्राज्य-निरीक्षण के बहाने पिता की आज्ञा लेकर वह महल से निकल ही पडे। साथ मे समरकेतु, कमलगुप्त आदि राजकुमार भी थे। उनकी निजी सेना भी उनके साथ थी। जहाँ कही भी वह पहुँचते थे, उनका बडी धूमधाम से स्वागत होता था। अधीनस्थ राजा लोग उनका मनोरंजन करने मे कोई कोर-कसर नही रखते थे। इस तरह घूमते-घामते वह कामरूप देश[१०] पहुँच गये। वहाँ के राजा ने उनका भव्य स्वागत किया और कुछ दिन ठहरने का अनुरोध किया। अत हरिवाहन ने वहाँ अपना पडाव डाल दिया।

जब उत्तराखण्ड के अन्य राजाओ को यह पता चला कि उनके सम्राट् मेघवाहन के पुत्र युवराज हरिवाहन उधर पधारे है तो वे आदर और प्रेम के साथ आकर हरिवाहन से मिले और उन सभी ने अपने-अपने देश की विशिष्ट-विशिष्ट वस्तुओ को उपहार मे प्रदान किया। हरिवाहन का भी मन यहाँ रम गया। प्रकृति की अनुपम छटा ने और कामरूप देश के निश्छल राजाओ के कोमल व्यवहार ने उनके घायल दिल पर मरहम जैसा काम किया।

एक दिन हरिवाहन सुबह ही अपने समरकेतु आदि कुछ साथियो को लेकर जगल की ओर निकल गए और एक मनोरम स्थान पर बैठकर अपनी वीणा की स्वरलहरी मे मस्त हो गए। थोडी ही देर बाद पुष्कर नामक राजसेनाधिकारी ने आकर सूचना दी कि युवराज ! आपका वैरियमदण्ड नामक प्रधानगज रात के अन्तिम पहर मे किसी जगली हाथी का पीछा करता हुआ शिविर से निकल गया है। सुबह महावतो ने उसे खोज तो लिया किन्तु लाख कोशिशो के बावजूद भी वे उसे वापिस नही ला पा रहे है। इसलिए

उसे वश मे करने के लिए कोई ठोस कदम शीघ्र ही उठाया जाना चाहिए, अन्यथा वह हाथ से निकल जाएगा। हरिवाहन ने कुछ सोचकर कहा कि अच्छा चलो, मैं ही उसे पकडता हूँ, और इतना कहकर शीघ्र ही उठ खडे हुए।

छावनी मे कमलगुप्त को छोड दिया और समरकेतु को साथ लेकर घोडे पर सवार होकर तेजी से चल दिए। साथ मे कुछ पैदल सैनिको को भी ले लिया। उबड़-खावड जगली रास्तो और घाटियो को पार करते हुए वह उस भयानक वीहड मे पहुँच गए, जहाँ उनका वह बिगड़ा हुआ हाथी साक्षात् यमराज की तरह बैठा हुआ था। अच्छे-अच्छे महावतो के छक्के छूट रहे थे। उसके पास जाने की तो बात ही दूर रही, कोई उसकी निगाह के सामने भी नही पडना चाहता था। कुमार हरिवाहन ने सैनिको को शान्त रहने का सकेत दिया, कुछ सोचते रहे, फिर घोडे से उतरे और वीणावाहक के हाथ से वीणा लेकर उस मदोन्मत्त हाथी को स्वरलहरी से वश मे करने की इच्छा से उसे बजाते हुए हाथी की ओर बढ़े। कुमार के इस साहस को देखकर सभी घबरा गये। समरकेतु ने उन्हे बहुत रोका, हाथी को वश मे करने के तमाम दूसरे तरीके भी समझाए, पर वह नही रुके। वीणा के तारो की मधुर झकार को सुनकर हाथी झूम उठा, उसका सारा क्रोध समाप्त हो गया, उसकी आखो से आनन्दाश्रु झरने लगे, उसने अपनी सूँड कुमार के सामने धरती पर फैला दी, और वह पूरी तरह से कुमार के वश मे हो गया। कुमार ने जब उसकी इस स्नेहिल दशा का अनुभव किया तो वह बडे प्यार से सूँड के सहारे उसकी पीठ पर जा बैठे। पर ज्योही कुमार उसकी पीठ पर बैठे त्योही उसकी आनन्दनिद्रा टूट गई। वह कुमार को लेकर चल पड़ा। कुमार कुछ घबडाए, महावतो से अकुश माँगा, किन्तु वह हाथी इतनी द्रुतगति से भाग खड़ा हुआ कि लोग उसका पीछा नही कर सके। थोडी ही देर में वह उन सबकी आँखो मे धूल झोकता हुआ ओझल हो गया। इस घटना से छावनी मे खलबली मच गई। जगल मे सभी ओर न केवल सैनिक ही, बल्कि सेनापति भी कुमार को खोजने के लिए दौड पड़े। समरकेतु ने तो अपनी पूरी शक्ति ही लगा दी, जगल का एक-एक कोना स्वय छान डाला, पर हरिवाहन का कही पता न चला।

दो दिन बीत गए। तीसरे दिन का भी सूर्य ढलने ही वाला था कि कुछ महावतो ने सामने आकर रो दिया। भरी आवाज मे कहा कि युवराज! वह दुष्ट हाथी तो मिल गया, किन्तु कुमार नही मिले। इतना सुनना था कि समरकेतु पर दुख का पहाड टूट पडा और वह बिलख-बिलख कर रोने लगे। सारी सेना शोक-सागर मे डूब गई, चारो ओर हाहाकार मच गया। समरकेतु सारी रात रोते रहे, उन्होने आत्महत्या कर लेने का विचार कर लिया। सुबह उन्होने सभी साथी राजकुमारो को बुलाया और हाथ जोडकर उनसे कहा कि आप लोगो ने अपना कर्त्तव्य पूरा किया। अब आप सभी राजकुमार कमलगुप्त के साथ अयोध्या वापिस चले जाईये और सम्राट् की सेवा करिये। राजकुमार हरिवाहन का पता नही चल सका है कि वह कहाँ और किस दशा मे हैं, मैं उनके बिना जीवित नही रह सकता। इसलिए अब आप लोग मुझे भी भूल जाईए, इतना कहकर वह पहाड़ी नदी की ओर तेजी से चल दिए।

इसी बीच द्वारपाल ने दौडकर समरकेतु को सूचना दी कि कमलगुप्त का सेवक हरिवाहन के कुशल-समाचार को लेकर आया है। अमृत के समान अभीष्ट वचन सुनकर समरकेतु तुरन्त ही लौट पडे और कमलगुप्त के परिचारक के हाथ से पत्र लेकर स्पष्ट स्वर मे पढा, पत्र का साराश था कि आप लोग निश्चिन्त रहे। यह पत्र मैं जगल से लिख रहा हूँ, मैं सकुशल हूँ। छावनी मे समरकेतु, कमलगुप्त आदि राजकुमारो से आशा है कि वह मेरे इस अपहरण के वृत्तान्त को माता-पिता तक नही पहुँचाएँगे और वही रहते हुए मेरी प्रतीक्षा करेगे।[11]

पत्र सुनकर सबके चेहरे खिल गए। समरकेतु ने परिचारक से पूछा कि यह पत्र कमलगुप्त को कब मिला? और कहाँ से मिला? तब परिचारक ने बताया कि कल शाम जब कुमार हरिवाहन के अनिष्ट की खबर से सारी छावनी शोक-सिन्धु मे गोते खा रही थी, राजकुमार कमलगुप्त की आँखो से आँसुओ की अविरल धारा बह रही थी, तभी अचानक उनकी निगाह आगे पडे हुए इसी पत्र पर पडी। ज्योही उठाकर पढा त्योही उनका सारा दु ख जाता रहा। फिर उन्होने हम सबसे पूछा कि यह पत्र कौन कहाँ से लाया है? पर जब सबने अनभिज्ञता प्रकट की तो उन्हे इस पत्र के विषय मे बड़ा आश्चर्य हुआ। समीपवर्ती मन्त्रियो से परामर्श किया और इस पत्र का उत्तर तत्काल ही स्वय लिखा और उसे एक पवित्र काष्ठ-पीठ (चौकी) पर रख दिया तथा खडे होकर हाथ जोड-कर इधर-उधर वृक्षो की ओर देखते हुए उन्होने नम्रतापूर्वक ऊँचे स्वर मे कहा कि हे वनदेवताओ! हे भूलोकविहारी दिव्यपुरुषो! कृपा करके मेरी प्रार्थना सुनो। जिस किसी देव, दानव, यक्ष, गन्धर्व, विद्याधर आदि शुभचिन्तक ने कुमार हरिवाहन का कुशल-पत्र मेरे पास तक पहुँचाया है उसी से मेरी प्रार्थना है कि वह किसी भी प्रकार से मुझे यह सूचित करने की कृपा करे कि वह कौन-सा कानन है जहाँ कुमार पहुँच गए है? वहाँ पहुँचने का कौन-सा मार्ग है? और इस पत्रोत्तर को उनके पास पहुँचाने की भी कृपा करे। कुछ ही पल बाद उन्होने फिर दुहराया, पर ज्योही वह तिबारा कहना ही चाहते थे त्योही एक तोता तीर की तरह उड़ता हुआ आया और पत्र को चोच मे दबाकर शीघ्र ही आकाश मे उड गया और गायब हो गया। कुमार कमलगुप्त विस्मय और हर्ष मे डूबते हुए मुझसे बोले कि पत्र सहित यह शुभ समाचार युवराज समरकेतु को शीघ्र ही रातो-रात चलकर दे आओ, ताकि वह धैर्य धारण कर सकें। इसके बाद मैं तुरन्त ही भागता हुआ आपकी सेवा मे आया हूँ, इतना कहकर वह चुप हो गया।

समरकेतु ने असीम सुख का अनुभव किया। अपने सारे आभूषण उतार कर उसे पुरस्कार मे दिए और उसे स्नान, भोजन एव विश्राम करने की आज्ञा देकर विदा किया। उस पत्र से सबकी जान मे जान आ गई। सभी मे कुमार-दर्शन की आशा का सचार हो गया। समरकेतु ने भी इत्मीनान से नहा धोकर पूजा की। साथियो के साथ बैठकर भोजन भी किया, थोडा आराम करने के बाद समरकेतु ने हरिवाहन के पत्र को फिर गौर से पढा, काफी देर तक सोचते रहे कि कुमार ने अपने स्थान का नाम साफ-साफ क्यो नही लिखा? शायद सोचा होगा कि समरकेतु ढूँढने लग जाएगा और परेशान होगा। किन्तु मै उन्हे बिना ढूँढे कैसे चैन ले सकता हूँ? बिना कुमार के मैं सम्राट् मेघवाहन को भी मुँह

कैसे दिखा सकूँगा ? मेरा यहाँ रहना बेकार है। मुझे उनकी खोज करनी ही चाहिए। आगे वैताढ्य पर्वत पर उनका कुछ न कुछ पता अवश्य चल सकता है। इसलिए विना किसी को बताए मुझे अकेले ही उधर जाना चाहिए। क्योकि बताने पर तो सभी चलने को तैयार हो जाएँगे। फिर मेरे लिए यह कठिनाई हो जाएगी कि किसे साथ ले चलूँ और किसे छोड़ जाऊँ। इसलिए आज ही रात मुझे अकेले ही यहाँ से चल देना चाहिए…आदि आदि। समरकेतु का निश्चय दृढ़ हो गया।

× × ×

आधी रात का सन्नाटा सब ओर छाया हुआ था। सभी गहरी नीद मे खोए हुए थे, पर समरकेतु की पलको में नीद का निशाना भी न था। वह उठे और हाथ मे अपनी तलवार लेकर अपने दोस्त की खोज मे उत्तर दिशा की ओर निकल पडे। सारी रात कँकरीली-पथरीली और कँटीली जगली राह पर भटकते हुए निरन्तर आगे बढते ही गए। सवेरा होते-होते वह एक पहाडी नदी के किनारे पहुँचे। जरा देर बैठकर आराम किया, फिर नित्यकर्म से निवृत्त होकर कुछ जगली फल तोडकर खा लिए और पहाड की एक कन्दरा मे सो गए। उन्होने वह सारा दिन वही बिताया। दूसरे दिन सवेरे ही फिर आगे बढ गए, रास्ते मे भीलो की बस्तियाँ मिली, लेकिन सबको पार करते हुए वह अपने दोस्त की धुन मे आगे बढते ही गए। प्राग्ज्योतिप देश[१२] के राजा के अनुज से भेंट हो गई। सारा हाल सुनाया। वह रुके नही, दूसरे दिन ही चल दिए और कुमार की खोज मे इधर-उधर भटकते रहे। छ महीने बीत गए; पर हरिवाहन का कही निशान तक नही मिला।

एकश्रृंग नामक पर्वत वैताढ्य पर्वत से विलकुल मिला हुआ है। एक दिन समर-केतु इसी पर्वत की चोटी पर बैठे हुए थे कि उनकी दृष्टि अदृष्टपारसरोवर नामक एक दिव्य सरोवर पर पडी। पर्वत पर उस विशाल सरोवर को देखकर समरकेतु को बडा आश्चर्य हुआ, साथ ही प्रसन्नता भी बहुत हुई। वह उठकर उसके तीर पर पहुँचे, उसमे स्नान किया और तटवर्ती पापाण-शिला पर जरा देर के लिए लेट गए, नीद आ गई, सो गए। सपने मे उन्हे पाताल से निकला हुआ पारिजात वृक्ष दिखाई दिया, जिसे कल्पलता आलिंगित करना चाहती है। आँख खुल गई, सपना टूट गया। किन्तु इस सपने से उन्हे भरोसा हो गया कि उनका दोस्त जल्दी ही मिलने वाला है। इसी बीच उन्हे घोडो की हिनहिनाहट सुनाई दी, जिसे सुनकर मन मे तमाम सकल्प-विकल्प उठे। जिधर से आवाज आ रही थी उधर गौर से देखा पर कुछ भी नही दिखाई दिया, क्योकि जगल बहुत घना था। तब वह फिर हरिवाहन की खोज मे उत्तर की ही ओर बढ गए। अब उनकी दाई आँख और दाई भुजा फडकने लगी। इस शुभ शकुन से उनका उत्साह बढ गया। आगे चलकर उन्हे एक अतिसुन्दर बगीचा मिला। वह उसमे घुस गए, उसकी शोभा देखकर उनका मनोमयूर नाच उठा, उसमे जरा और भीतर घुसने पर उन्हे कल्प-वृक्षो का झुरमुट दिखाई दिया, वह उसी ओर बढ गये, शीघ्र ही उनकी निगाह एक देवमन्दिर पर पड़ी; कौतूहल बढा, तो और आगे बढ गए। उनके अन्त करण मे अभूतपूर्व आनन्द की अनुभूति होने लगी। मरकत मणियो से जड़ी हुई सीढियाँ पार करके वह

मन्दिर मे पहुँचे तो सामने ही भगवान् ऋषभदेव[13] की प्रतिमा के दर्शन हो गए। भक्ति-भाव से भरपूर होकर समरकेतु ने उन्हे प्रणाम किया और मन्दिर की शोभा देखते हुए, एक स्थान पर बैठ गए। फिर अपने बीते दिनो की यादो मे खो गए। कुछ ही क्षणो बाद उनके कानो मे दिव्य-गीत की मधुर ध्वनि गूँजने लगी, जिसमे हरिवाहन का भी नाम तरगित हो रहा था।

समरकेतु को एक झटका-सा लगा, तुरन्त ही वह उठे और जिधर से वह ध्वनि आ रही थी उधर ही चल पडे। अभी कुछ ही कदम चले थे कि उन्हे एक छोटा-सा भवन दिखाई दिया। वह उसमे घुस गए, घुसते ही उन्होने देखा कि गन्धर्वक बैठा हुआ है और बडी मस्ती के साथ गीत भी वही गा रहा है। उसे देखकर समरकेतु का मुखकमल खिल गया, उन्हे बेहद खुशी हुई, ऐसा लगा मानो उनका दोस्त ही मिल गया हो। वह शीघ्र ही गन्धर्वक की ओर लम्बे लम्बे कदम रखते हुए बढे। गन्धर्वक भी उन्हे वहाँ देखकर विस्मित हो गया। उसने उठकर प्रणाम किया, समरकेतु ने उसे गले लगा लिया। फिर दोनो मे बैठकर बाते हुई। समरकेतु ने विचित्रवीर्य, गन्धर्वदत्ता, मलयसुन्दरी, तिलक-मञ्जरी आदि के विषय मे प्रश्नो की झड़ी लगा दी।

गन्धर्वक ने कहा कुमार! क्या कहूँ? विधाता ने मुझे झूठा बना दिया। मेरी बातो मे आपको विश्वास भी नही होगा। मेरी कहानी अभी रहने दीजिए, चलिए—उठिए, पहिले आपको कुमार हरिवाहन से मिलाऊँ। वह अब विद्याधरो के चक्रवर्त्ती सम्राट् हो गए है। बाद मे यह भी मालूम हो जाएगा कि अयोध्या से निकलकर मेरी क्या हालत हुई।

कुमार हरिवाहन की कुशलता एवं समृद्धि को सुनकर समरकेतु का सारा दुःख जाता रहा, रास्ते की सारी थकावट दूर हो गई, उनका हृदय गद्गद हो गया। वह शीघ्र ही हरिवाहन को देखने के लिए उठ खडे हुए। गन्धर्वक उनके आगे-आगे चल रहा था, रास्ते मे उन्हे बगीचे की उत्तरदिशा की ओर तमाम घोडे बँधे मिले, सोचा वह हिन-हिनाहट इन्ही की होगी। आगे तो मधुर गीत सुनाई दिया; जरा और बढे तो कदलीगृह दिखाई दिया। उसी कदलीगृह के बीचो-बीच पद्मरागमणिशिला पर बैठे हुए, अतिसुन्दर दिव्यकन्याओ से घिरे हुए हरिवाहन दिखाई दिए। उनकी बाईं ओर एक अनिन्द्य सुन्दरी दिव्यकन्या बैठी हुई थी।

गन्धर्वक ने दौडकर हरिवाहन को समरकेतु के आने की सुखद सूचना दी। सुनते ही हरिवाहन खुशी से सब कुछ भूल कर एकदम खडे हो गए और 'कहो भाई! जल्दी बताओ, मेरा दोस्त कहाँ है?' इतना कहकर उन्होने दरवाजे की ओर ज्योही अपनी दृष्टि घुमाई त्योही समरकेतु को अपनी ही ओर आते देखा। हरिवाहन तेजी से आगे बढ़े; समरकेतु ने प्रेम से हरिवाहन को सिर झुकाकर प्रणाम किया, हरिवाहन ने उन्हे, एकपल की भी देर किए बिना, गले लगा लिया। दो बिछुडे हुए दोस्तो के उस मिलन ने देखने वालो को राम और भरत के मिलन की याद दिला दी।

हरिवाहन ने समरकेतु को अपने ही आसन पर बैठाया, कुशल-क्षेम पूछा और विद्याधर राजकुमारी तिलकमञ्जरी से परिचय कराया। तिलकमञ्जरी को जब यह

मालूम हुआ कि उसकी वहिन मलयसुन्दरी के चितचोर यही है, तो वह बड़े प्यार से समरकेतु को निहारने लगी। समरकेतु ने भी तिलकमञ्जरी को आदर के साथ उठकर प्रणाम किया; वातावरण खुशी से भर गया।

कुछ देर बाद सूचना मिली कि राजधानी मे प्रवेश करने का मुहूर्त्त आ गया है। इसलिए हरिवाहन ने अपनी हृदयेश्वरी तिलकमञ्जरी से विदा ली और समरकेतु के साथ गजविमान पर सवार होकर गगनवल्लभ नामक नगर को चल दिए। वहाँ इनका बडा भव्य स्वागत हुआ। समरकेतु अपने वन्धुतुल्य दोस्त का वैभव देखकर वहुत खुश हुए।

रात मे जब हरिवाहन और समरकेतु शयनशाला मे पहुँचे तो हरिवाहन ने समरकेतु से सारा समाचार विस्तार से सुनाने को कहा। समरकेतु ने सब कुछ सुनाया पर अपने कष्टो को छिपा गए, वह वहुत ही शालीन थे। दूसरे दिन दोपहर के समय दोनो ही वैताढ्य पर्वत पर घूमने निकल गए। अगरक्षक उनके साथ थे। एक रमणीय स्थान पर जब हरिवाहन वैठ गए तो समरकेतु ने कहा—कुमार! आपने अपना तो हाल बताया ही नही, मैं सुनने को अधीर हो रहा हूँ। उस दुष्ट हाथी पर वैठने के बाद आप पर क्या वीती ? कृपया विस्तार से सुनाइए। समरकेतु के प्रश्न को सुनकर हरिवाहन हँसे और बोले—युवराज! वड़ी लम्वी कहानी है, पर जब तुम सुनने को उत्सुक ही हो तो सुनो—

उस समय वह हाथी कुछ दूर तक तो पहाड़ के किनारे-किनारे ही तेजी से भागता रहा, पर ज्योही आप लोगो की दृष्टि से दूर हुआ त्योही वह अकस्मात् आकाश मे उडने लगा। उसकी उडान और गजव की तेजी देखकर मैं आश्चर्यचकित हो गया। थोडी देर मे यह वैताढ्य पर्वत दिखाई देने लगा। मैंने सोचा कि यह हाथी निश्चय ही मेरे पूर्व-जन्म का शत्रु कोई राक्षस है। पता नही, मुझे कहाँ ले जाए और क्या हालत करे, इसलिए मैंने उसे लौटाने के लिए अपनी जाँघ मे वँधी हुई छुरी निकाली। उसे देखते ही वह बुरी तरह चिघाडता हुआ इसी अदृष्टपार सरोवर मे गिर पडा और साथ मे मै भी। इस अथाह सरोवर मे गिरते ही उसका तो पता ही नही चला, पर मैं डूबता-उतरता किसी तरह किनारे लग गया। कपडे सुखाये, थोडा जल पिया और बैठकर काफी देर तक अपनी असहायता पर सोचता रहा, फिर उठकर वस्ती की तलाश मे एक ओर धीरे-धीरे चल दिया। थोडी ही दूर पहुँचा था कि बालू पर पैरो के निशान मिले, गौर से देखा तो लगा कि वे निशान स्त्रियो के पैरो के है। मुझे कुछ तसल्ली हुई, फिर मैने एक के चरण-चिह्नो का अनुसरण किया; आगे इलायची की लताओ का कुञ्ज मिला, ज्योही मैं उसके द्वार पर पहुँचा त्योही भीतर प्रकाश दिखाई दिया। मैने सोचा कि यह प्रकाश किसी जडी-वूटी का होगा, और फिर इधर-उधर देखने लगा, मुझे अशोकवृक्ष के नीचे फूलो से अठखेलियाँ करती हुई एक अतिसुन्दरी लडकी दिखाई दी। उसकी सुन्दरता को देखकर मैं अपना होश-हवाश खो बैठा। काफी देर तक उसे अपलक निहारता रहा, फिर उसकी ओर धीरे-धीरे वढा। वह मुझे देखकर घवडा गई, केले के नवीन पत्ते की तरह काँप उठी। मैने जब देखा कि वह घबडा रही है तो अपनी जगह पर ही रुककर उससे कहा कि सुन्दरी! आप कौन है ? कहाँ रहती है ? यहाँ अकेली क्यो आई है ? और अकस्मात् ही

क्यो घबडाने लगी है ? पर उसने कोई जवाव नही दिया। मैंने अपना सक्षिप्त परिचय भी दिया, किस तरह मै वहाँ तक पहुँचा, यह भी बताया। किन्तु उसने अपने मुँह मे एक शब्द भी नही कहा, हाँ, खुश अवश्य हो गई। थोडी देर सिर झुकाए, लेकिन कनखियो से मुझे देखती हुई, वह वही खडी रही। फिर धीरे-धीरे कदम रखती हुई मेरे करीब मे ही वहाँ से निकल गई। उसके रूखे व्यवहार से मुझे कुछ ठेस पहुँची; मैं आगे बढ गया; चलते-चलते मुझे उस चित्र की याद आ गई जिसे गन्धर्वक ने अयोध्या मे दिखाया था। मुझे लगा कि यही तिलकमञ्जरी है, अत मैं पुन: उसके दर्शन की लालसा से लौट पडा। लेकिन निराशा ही हाथ लगी। मैंने वह रात उसी अशोकवृक्ष के नीचे ही विताई।

प्रभात होते ही मै उसी की खोज मे उसके पैरो के निशानो के सहारे इधर-उधर घूमने लगा, थक गया तो एक पेड के नीचे बैठ गया। थोडी ही देर वाद सरोवर के उत्तर तट पर अचानक ही उडते हुए पक्षी दिखाई दिए। मै वहाँ पहुँचा तो मुझे ऐसा लगा कि अभी-अभी कोई नहा-धोकर वहाँ से गया है। मैं थोडा और उत्तर की ही ओर वढा तो मुझे एक अतिसुन्दर मन्दिर मिला। मैं उसमे घुस गया और प्रणाम करके मन्दिर के दरवाजे के पास ही बैठ गया। बैठते ही मुझे एक तापस-कन्या दिखाई दी। वह भगवान् की प्रतिमा के सामने पद्मासन बाँधे बैठी थी। ध्यान मे वह इतनी लीन थी कि स्वय एक प्रतिभा जैसी प्रतीत हो रही थी। मैं बैठा-बैठा उसे देखता रहा। काफी देर बाद उसका ध्यान टूटा, वह उठी और देवता को प्रणाम करके ज्योही चलने को हुई त्योही मुझे देख कर हाथ जोडते हुए नमस्कार करके मुझसे बोली—महाभाग ! आपका स्वागत है। आईए, आश्रम को पवित्र करिए। मैने भी उठकर उसे प्रणाम किया और उसके साथ ही उसके तिमजले आश्रम पर गया। वहाँ उसने मुझे आसन पर बैठाया, आदर के साथ अतिथि-सत्कार किया, तदनन्तर मेरा हाल-चाल पूछा। मैंने अपनी सारी कहानी सुना दी। सुनकर उसके मन मे मेरे लिए दुगुना आदर-भाव जागरित हो गया।

दोपहर का समय देखकर वह उठी और मध्याह्न-पूजा करके उसने मुझे खाने के लिए अच्छे-अच्छे मधुर फल दिए, शीतल जल पिलाया, तदनन्तर स्वय भी थोडा खा-पीकर मेरे पास आ बैठी और मेरी दशा पर सहानुभूति प्रकट करने लगी। उसकी सज्जनता से मै वहुत प्रभावित हुआ। अत मैं बडी नम्रता से पूछ बैठा कि देवि ! मैं वहुत कृतज्ञ हूँ। आपने मुझे इस निर्जन प्रदेश मे आश्रय देकर मेरे ऊपर बहुत बड़ी कृपा की है। किन्तु मैं आपकी दिनचर्या देखकर अचम्भे मे पड गया हूँ। यदि कृपा करके आप अपना परिचय दे तो मै अपने को और भी अधिक धन्य समझूँगा। मेरी बात सुनकर वह अनमनी हो गई, उसकी आँखो मे मोती झिलमिलाने लगे। उसने धैर्य और उच्छ्वास के साथ कहा कि कुमार ! आप सम्भ्रान्त अतिथि है। आपकी बात भला मै कैसे टाल सकती हूँ ? मेरी करुण कहानी छोटी नही है। आपकी इच्छा है, तो लीजिए—सुनिए—

दक्षिण भारत मे काची नामक एक नगरी है। उसमे कुसुमशेखर नामक राजा राज्य करते है। वह अपने सेनाबल से सर्वत्र विख्यात है। मैं उन्ही की पुत्री हूँ। मेरा नाम मलयसुन्दरी है। मेरी माता का नाम गन्धर्वदत्ता है, जो कुसुमशेखर की पटरानी है। जब मेरा जन्म हुआ था, तव वसुरात नामक राजपण्डित ने मेरे विषय मे भविष्यवाणी की थी

कि जिसके साथ इस कन्या का विवाह होगा वह पृथ्वी पर सकलखेचरचक्रवर्त्ती सम्राट् का प्रधानामात्य बनेगा। सुनकर मेरे पिता ने बड़ी धूमधाम से मेरा जन्मोत्सव मनाया था। मैं वड़े लाड-प्यार से अपने माता-पिता की छाया में पलती रही, बढती रही और मेरे शरीर में धीरे-धीरे यौवन प्रवेश करता रहा; पर मुझे पता न चला।

एक रात मैं अपने महल की अटारी पर सो रही थी, अचानक ही बाजो की मधुर ध्वनि से नींद खुल गई, मैंने देखा कि मै एक मन्दिर मे हूँ और मुझे चारो ओर से तमाम सुन्दर लड़कियाँ घेरे खड़ी है। मै घबड़ा गई, उठ बैठी और इधर-उधर देखने लगी, किन्तु मुझे सब कुछ अपरिचित नजर आया। सोचा, यह सपना तो नही है ? उठकर दरवाजे की ओर बढी, उधर एक वृद्ध स्त्री मिली। मेरे पूछने पर उसने बताया कि यह पचशैल नामक समुद्रीय द्वीप है। ये सभी गगनविहारी विद्याधर है और इनके अधिपति विचित्र-वीर्य है। इसी बीच एक व्यक्ति ने आकर उस विचित्रवीर्य को उन सभी लडकियो का परिचय दिया, वे सभी राजकुमारियाँ थी।

तदनन्तर उस विद्याधरराज विचित्रवीर्य ने चित्रलेखा नाम की एक अधेड़ स्त्री से कहा कि आज भगवान् 'जिन' का अभिपेक महोत्सव है। ये जितनी भी राजकुमारियाँ यहाँ बुलाई गई है सबको दिव्यवस्त्राभूपणो से ऐसा सुसज्जित कर दो कि ये लज्जा और ग्लानि को भूल जाएँ तथा अभिषेक-पूजा के वाद जो सगीत हो उसमे इनके पैर अपने आप थिरकने लगें। उस महिला ने भी ठीक वैसा ही किया जैसा कि उसे आज्ञा मिली थी।

मन्दिर के भगवान् की पूजा शुरू हुई। दिव्य वाद्यो की मधुर ध्वनि से आकाश गूँज गया। पूजा के वाद नृत्य शुरू हुआ। सभी राजकुमारियाँ नाची, मैं भी भाव-विभोर होकर नाचने लगी। नृत्य की समाप्ति पर मै चित्रलेखा के पास ही बैठने लगी, किन्तु उस विद्याराज ने मुझे अपने आसन पर ही एक ओर बैठाकर वडे दुलार से कहा—बेटी ! तुम्हारी नृत्यकला से मैं बहुत प्रसन्न हूँ। इस छोटी उम्र मे इतना कौशल कहाँ से प्राप्त किया ? मैंने नम्रतापूर्वक कहा—तात ! कोई एक शिक्षक हो तो उसका नाम लूँ, मेरे तो अनेक गुरु है। पर सबसे वडी गुरु तो मेरी माँ है। उन्होने पूछा कि तुम्हारी माँ ने कहाँ से सीखा, तो मैंने कहा कि विद्याधरलोक से। उन्होने फिर पूछा कि तुम्हारी माँ का नाम क्या है ? मैंने कहा कि 'गन्धर्वदत्ता'। मेरी वात सुनकर समीपवर्ती उनके मन्त्री वीर्यमित्र ने उनसे धीरे से कहा कि देव ! इस राजकुमारी की माँ कही आपकी वही पुत्री तो नही है जो नगर विप्लव मे खो गई थी। सुनकर उन्होने फिर प्यार से पूछा—वेटी ! तुम्हारी माँ जीवित है ? मैंने कहा—हाँ। फिर उन्होने मेरी माँ की आयु, रग, रूप, कद आदि सब कुछ पूछा। मैं ज्यो-ज्यो बताती गई, त्यो-त्यो वह चिन्तित होते गए। फिर उन्होने पूछा—वेटी ! क्या तुम्हारी माँ ने अपने माता-पिता के विपय मे तुम्हे कभी कुछ बताया है ? मैंने कहा—नही, बल्कि जब भी मै उनसे पूछती हूँ तो वह चुपचाप रोने लगती है। यह सुनकर उन्होने पूँछ दिया कि वेटी ! जब तुम्हारी माँ ने अपने माता-पिता के विषय मे तुम्हे कुछ नही वताया, तो तुमने यह कैसे जाना कि उन्होने वचपन मे विद्याधर-लोक मे नृत्यकला सीखी है ? इस प्रश्न पर मैंने कहा—तात ! सुनिए। पिछले वर्ष मेरे शहर मे एक त्रिकालदर्शी महात्मा पधारे थे। मेरी माँ मुझे साथ लेकर उनके दर्शन करने

गई। वहाँ उन्होने उन महात्मा को अपनी गुजरी हुई दर्दभरी वचपन की कहानी सुनाई थी। उन्होने कहा था कि भगवन् ! मै विद्याधर राजकुमारी हूँ, नगर-विप्लव के कारण वचपन मे ही अपने माँ-बाप से विछुड गई हूँ। अभी तक न मुझे उनका पता लग सका और न वे ही मुझे खोज सके। आप कृपा करके बताइए कि क्या कभी मै अपने माता-पिता से मिल पाऊँगी ? या यो ही जीवन बीत जाएगा। तव उन महात्मा ने कहा था कि वेटी ! घवडाओ नही। तुम्हे तुम्हारे माता-पिता अवश्य ही मिलेगे। माँ ने हर्ष-विभोर होकर पूछा—कब ? तो उन्होने मुस्कराते हुए कहा कि जब तुम्हारी यह वेटी दुलहिन बनेगी। माँ ने पूछा—'भगवन् ! यह कैसे सम्भव होगा ? तो उन्होने कहा कि वत्से ! धीरज धरो, सब होगा।

इसके बाद विचित्रवीर्य और उनके मन्त्री मे वाते होने लगी। मन्त्री का कहना था कि इसी समय गन्धर्वदत्ता को महल से आकाशमार्ग द्वारा बुलवा लिया जाए और सन्देह दूर कर लिया जाय। पर विचित्रवीर्य ने मना कर दिया और वास्तविकता की जानकारी करने का दायित्व चित्रलेखा पर डाल दिया। इसी बीच प्रभातसूचक शख वज उठा।

विचित्रवीर्य ने सभी विद्याधरो को विदा किया। फिर प्यार से मेरी ओर देखते हुए तपनवेग नामक परिचारक को बुलाकर कहा कि पहिले इस राजकुमारी को यहाँ के अद्भुत दृश्य दिखाकर इसका सत्कार करो फिर शीघ्र ही सभी राजकुमारियो को छिपे तौर से उनके महलो मे पहुँचा दो। इतना कहकर वह आकाश मे त्रिकूटपर्वत की ओर उड गए, मैं देखती ही रह गई।

उनके जाने के बाद उसने मुझे वहाँ के दर्शनीय स्थान दिखाए, मै निश्चिन्त हो चुकी थी। अत मैंने सभी राजकुमारियो के साथ वहाँ की एक-एक चीज देखी, सब जानी-पहचानी सी लगी। मै उस समय वहुत खुश थी। मन्दिर मे भगवान् महावीर जिन के दर्शन किए। फिर मै आगे वढकर सीढियो से चढती हुई मन्दिर की चार-दीवार पर पहुँच गई। वहाँ से समुद्र की छठा दिखने लगी, पर मुझे तुरन्त ही और समीप ही नाव पर बैठा हुआ एक अतिसुन्दर राजकुमार दिखाई दे गया। उसे देखते ही मेरे मन मे हलचल मच गई, सारा शरीर रोमाचित हो गया, कपोलो मे सिहरन होने लगी, अधर स्पन्दित होने लगा, उरोजो का उभार बढने-सा लगा और मेरी आँखे उसे अपलक देखने लगी। मुझे देखकर उसकी भी दशा मेरी ही जैसी हो गई। कामदेव ने दोनो को ही अपनी निशाना वना लिया था।

थोड़ी देर बाद उस राजकुमार का नाविक मेरे पास आया और बताने लगा कि देवि ! यह राजकुमार सिंहलद्वीप के सम्राट् चन्द्रकेतु के पुत्र है। इनका नाम समरकेतु है। प्रसंगवशात् यह यहाँ तक आ गये है। अव मन्दिर मे दर्शन करना चाहते है, आप किसी मार्गदर्शक को साथ मे देने की कृपा करे। मेरा इशारा पाकर एक राजकुमारी ने उत्तर मे कह दिया कि—भद्र ! हम सभी परदेशी है, स्वय यहाँ से अपरिचित है, इसलिए आपके राजकुमार की सहायता करने मे असमर्थ है। सुनकर नाविक लौट पडा और अपने स्वामी को भी वापिस चलने की सलाह देने लगा। पर उस राजकुमार की दशा विचित्र

थी। वह निर्निमेष दृष्टि से मुझे ही देख रहा था। बडी कठिनता से वह इतना कह पाया कि सखे तारक ! मैं अस्वस्थ हो रहा हूँ, मेरी बुद्धि काम नही कर रही है, मेरा मन न जाने कैसा हो रहा है, मै यहाँ जरा ठहरना चाहता हूँ। पर वह नाविक न माना और उस राजकुमार को लौटाकर ले जाने लगा। तब मैंने पास खडी हुई वसन्तसेना नामक राजकुमारी से कहा कि सखि ! किसी प्रकार इस नाविक को रोको, नही तो यह राजकुमार को भी लेकर चला जाएगा। तब वसन्तसेना ने किसी प्रकार उसे रोका, तो वह रुक गया। किन्तु अपने स्वामी की विह्वलता को देखकर वह मेरे पास आया, और अपनी मनोहारिणी वचन-चातुरी से मुझसे उसकी प्रियतमा पत्नी बनने का आग्रह करने लगा। इतना ही नही बल्कि उसने अपने स्वामी को भी लाकर मेरे चरणो मे झुका दिया।

मैं अभी अपने कर्त्तव्य का निश्चय नही कर पाई थी, अपने माता-पिता, उन सखी-सहेलियो और उस राजकुमार को लेकर मेरे मन मे तमाम सकल्प-विकल्प उठ रहे थे। मेरा मन उस राजकुमार को स्वीकार करने के पक्ष मे ही हो चला था, कि इसी बीच तपनवेग आ गया और बोला—मलयसुन्दरी ! मै यह हरिचन्दन लाया हूँ, इसे अपने माथे पर लगा लीजिए, यह भगवान् का प्रसाद है, इसके लगाने से किसी की नजर नही पडती। मैंने उसकी पूजा की थाली से एक अतिसुन्दर फूलो का हार उठाया और समुद्र-पूजा के बहाने झुककर दीवाल के पास ही खडे हुए उस राजकुमार के गले मे डाल दिया। फिर मैंने वह चन्दन भी अपने माथे मे लगा लिया। इसके बाद उस तपनवेग ने सभी राजकुमारियो के माथे पर तिलक लगा दिया। मैंने एक राजकुमारी के हाथ से अपना मुँह देखने के बहाने दर्पण माँग लिया, और उसी मे उस राजकुमार के प्रतिबिम्ब को लेकर सस्नेह निहारने लगी।

उधर उस राजकुमार ने मेरी माला को बहुत ही सम्मान दिया और अपने कर्णधार से कहा कि तारक ! तुम इस माला को बहुत ही ललचाई नजरो मे देख रहे हो। लगता है तुम्हे भी यह बहुत ही अच्छी लग रही है। किन्तु मैं इस माला से एक भी फूल अलग नही करूँगा। तुम यदि चाहो तो उसी से दूसरी माँग लो। सुनकर वह नाविक दु खित होकर बोला—कुमार किससे माँगूँ ? वहाँ तो कोई भी नही है, मेरा प्रयास व्यर्थ हो गया। पहिले तो मैंने उसकी बात को मजाक समझा, पर मुझे जब वहाँ कोई भी राजकुमारी नही दिखाई दी तो मैं भय से मूर्छित हो गई। जब होश आया तो मैं राजकुमार के वियोग की कल्पना से काँप उठी। उधर वह राजकुमार भी मुझे न देखकर व्याकुल हो गया। फिर उसने तारक से तो वापिस लौट जाने का आग्रह किया और स्वय मेरे वियोग मे आकुल होकर आत्महत्या करने के लिए समुद्र' मे छलाँग लगा दी, और तारक की एक न सुनी। तारक भी उसे बचाने के लिए कूद गया। मैं भी उसकी दशा को न देख सकी और उसके साथ ही मरने के लिए समुद्र मे कूद पडी। इसके बाद मेरी आँख खुली तो मैं अपने पिता के महल मे अपनी शय्या पर थी। पर मैं बहुत घबडाई हुई थी। यह सब सपना था या सत्यता ? यह जानने के लिए माथे पर हाथ फेरा तो लगा हुआ चन्दन अँगुलियो मे पुछ आया। निश्चय कर लिया कि यह सपना नही, बल्कि सचाई है। मैं शय्या से उठ बैठी, पर मस्तिष्क मे वही दृश्य घूमता रहा। इसी समय मेरी प्रियसखी

वन्धुसुन्दरी आ गई। मैंने सारा हाल उसे सुना दिया। वह तो चली गई पर मेरे मन की हलचल कम नही हुई। जैसे-तैसे वह दिन बिताया, रात में भी सो न सकी। सवेरा होते ही वन्धुसुन्दरी आ गई, उसके समझाने से मुझे कुछ आशा और धैर्य बँध गया, दिन बीतने लगे और धीरे-धीरे वसन्त ऋतु आ गई।

एक दिन की बात है, सवेरे का समय था, मैं जाग तो गई थी किन्तु शय्या नहीं छोड पाई थी। प्रियतम का वियोग और वासन्ती बहार—दोनों मिलकर मुझे अधीर बनाए हुए थे। मेरी सर्वाधिकप्रिय सहेली वन्धुसुन्दरी, जो मेरी विरहवेदना की साक्षी थी, मेरे पास बैठी हुई थी। वह बिछुडे हुए अनेक प्रेमियुगलो की पुनः अकस्मात् मिलने की सरस कथाएँ सुना-सुनाकर मेरा मन बहला रही थी। इसी बीच एक परिचारिका ने आकर सहसा मुझे सूचना दी कि राजकुमारी जी! महारानी जी का कहना है कि आपको कामदेव के मन्दिर मे पूजा करने के लिए जाना है; क्योंकि कल सेनापति वज्रायुध के साथ आपका विवाह होगा, अन्यथा उसने शहर लूटने की धमकी दी है। उसकी यह बात सुनकर मुझे ऐसा लगा कि मेरे शरीर को लकवा मार गया हो। मै निढाल होकर शय्या पर ही गिर गई। मुझे पहिले तो अपने माता-पिता और मन्त्रियो पर क्रोध आया कि उन्होने मेरा सौदा क्यो किया? पर फिर मेरे मन मे आत्महत्या का विचार बँध गया। मैंने उस नौकरानी से कहा कि माँ से कह देना कि मैं शाम को जाऊँगी। वह चली गई। वन्धुसुन्दरी भी मन्दिर चलने के लिए मुझे समझा-बुझाकर चली गई।

मैं नहा-धोकर तैयार हुई। वन्धुसुन्दरी को साथ लेकर कामदेव के मन्दिर में जाकर भक्तिभाव से उनकी पूजा की और अभीष्ट वर मांगा। ब्राह्मणो को जी भरकर दान दिया, माता और पिता के दर्शन किये, मन ही मन उन्हे अन्तिम प्रणाम किया; फिर अपनी निजी वाटिका मे गई; वहाँ अपने सभी पालतू पशु-पक्षियो से विदा ली, नृत्यगीत मे माँ के कहने से थोडी देर के लिए बैठ गई और फिर अँधेरा होते-होते अपने निवास पर पहुँच गई। वन्धुसुन्दरी को भी शीघ्र ही विदा कर दिया। वह मेरी गतिविधि को कुछ-कुछ समझती हुई चली गई। उसके जाते ही मै सबकी नजरो से छिपती हुई उसी वगीचे में पहुँची जहाँ कामदेव का मन्दिर था। जीवन की अभिलाषा से निराश होकर मैंने कामदेव को दूर से ही प्रणाम किया और जिस वस्त्र को ओढकर मैं आई थी, उसे ही अशोक वृक्ष की शाखा मे अपने गले की फाँसी का फंदा बनाकर अपने सपनो के राजकुमार की याद मे लटक गई।

धीरे-धीरे मेरा गला घुटने लगा, वेहोशी आने लगी, तभी मुझे खोजती हुई और घवड़ाई हुई वन्धुसुन्दरी वहाँ आ गई। मेरी दशा देखकर वह वहुत रोई, फन्दा खोलने की तमाम कोशिशे की, पर वह सफल नही हुई। मुझे कुछ-कुछ होश था, पर वोलने की शक्ति समाप्त हो रही थी। अत मैने धीरे-से हाथ हिलाकर उसे रोने से मना किया। देखकर वह और भी ज्यादा फूट-फूटकर रोने लगी; तेजी से मन्दिर की ओर भागी; फिर मै विलकुल ही बेहोश हो गई, मुझे कुछ भी पता नही चला कि क्या हुआ। जव मुझे होश आया तो मैंने सुना कि वन्धुसुन्दरी किसी को मेरी कहानी, और कहानी का भी वह अंश जो स्वप्न-प्रणय से सम्वन्धित था, सुना रही है। जव धीरे-धीरे मेरी आँखें खुली तो मैंने

देखा कि मैं उसी राजकुमार की गोद मे पडी हूँ जिसे मैने सपने मे अपना पति बना लिया था। मै विस्मय और हर्ष के सागर में तैरने लगी।

मैं उठकर बैठ गई तो बन्धुसुन्दरी ने कहा—भर्तृदारिके! इन महाशय को धन्यवाद दो। यदि आज यह मन्दिर मे न होते और मेरी पुकार पर तुरन्त ही यहाँ आकर छुरी से तुम्हारा फाँसी का फन्दा न काटते और गिरती हुई तुम्हे बीच मे ही न सम्हाल लेते तो तुम्हे पुनर्जीवन न मिलता। इन्होने हम सब पर महान् उपकार किया है, इसलिए इन्हे प्रणाम करो। ऐसा कहकर उसने मुझसे उन राजकुमार को प्रणाम कराया।

राजकुमार ने कहा—बन्धुसुन्दरी! उपकार तो तुमने ही किया है। यदि इनकी गतिविधि पर तुम ध्यान न देती, इनका पीछा करती हुई यहाँ तक न आती तो मुझे बुलाने ही कौन जाता? मैंने तो आपकी राजकुमारी को कष्ट ही कष्ट दिया है। मैं धन्यवाद का पात्र नही हूँ। यह सुनकर बन्धुसुन्दरी ने आश्चर्य प्रकट किया, तो मैंने उसे राजकुमार का परिचय दे दिया। सुनकर वह बहुत खुश हुई और उसने मेरा हाथ उन्हे सौप दिया।

बन्धुसुन्दरी के पूछने पर जब राजकुमार ने अपनी समुद्रीय-यात्रा पर प्रकाश डाला तो मैंने अपने कौतूहल को दूर करने के लिए उनसे पूछा—आर्यपुत्र! समुद्र मे गिर पड़ने के बाद आप पर क्या बीती? मेरे प्रश्न को सुनकर उन्होने कहा कि मुझे कुछ पता नही है, पर मैं समझता हूँ कि समुद्र के अथाह जल से मेरा उद्धार किसी दैवी-शक्ति ने ही किया है। क्योकि जब मेरी आँख खुली तो मैं अपनी छावनी के पास ही अपनी नाव पर था। उस समय मुझे लगा कि कोई मुझसे नाराज हो रहा है। मैं और तारक दोनो ही अचम्भे मे थे कि हम लोगो को समुद्र से किसने निकाला। फिर दिन बीतते गये, पर तुम्हारी सौम्य आकृति मेरे मानसपटल पर अटल बनी रही। उस समय की आपकी एक बात से कुछ अन्दाज लग गया था कि आप काची नगरी की रहने वाली है। इसी बीच मेरे पिता की आज्ञा मिली कि मैं काची नरेश की युद्ध मे मदद करूँ। बस मैं, एक पन्थ दो काज करने, फौरन चल दिया। यहाँ आया तो आपके पिता ने मुझे बडे आदर से लिया। मुझे यहाँ आये पाँच-छ दिन हो गए हैं। इन दिनो मैंने आपको तलाश मे सारा शहर छान डाला, पर निराशा ही हाथ लगी। आज साथियो को लेकर मैं आपके दर्शन की आशा से सुबह से ही इस मन्दिर मे आ गया था। शाम को सभी साथियो को तो वापिस भेज दिया पर मैं आपकी वियोगाग्नि से छुटकारा पाने के लिए आत्महत्या के विचार से यही मन्दिर मे रुक गया। कुछ ही देर बाद मैं आपकी सहेली की करुण पुकार सुनकर दौडता हुआ आपके पास आ गया। इतना कहकर वह चुप हो गए।

रात के तीन पहर बीत चुके थे, बन्धुसुन्दरी ने राजकुमार को सलाह दी कि वह रातो-रात मुझे लेकर अपने देश चले जाएँ। क्योकि सुबह वज्रायुध का भय था। पर राजकुमार ने यह अनुचित समझा और हम दोनो को समझा-बुझा कर महल तक पहुँचा कर वह अपने शिविर को लौट गये। बन्धुसुन्दरी ने सारा हाल माँ को सुनाया, तुरन्त ही माँ ने पिता को सुनाया। पिताजी को मेरी दशा पर दया आ गई और उन्होने मुझे रात मे ही कुछ अगरक्षकों के साथ एक महात्मा के आश्रम मे भेजकर छिपा दिया, और मेरी देखभाल के लिए एक वृद्धा दासी तरगलेखा को भी साथ भेज दिया। मैं वहाँ रहकर दिन

काटने लगी। एक दिन शाम के समय काची से आए हुए एक ब्राह्मण ने महात्मा जी से बताया कि राजकुमार समरकेतु वज्रायुध से भयकर सग्राम करते हुए युद्धभूमि मे, पता नही कैसे, गिर गए। सुनकर मेरे ऊपर वज्रपात हो गया। मैं समुद्र मे डूब मरने को भाग खडी हुई। मगर मेरी वृद्धा दासी आ गई तो न कूद सकी, पर मैंने एक जहरीले पेड के फल को खा लिया, खाते ही मेरी इन्द्रियाँ शिथिल होने लगी, मैं गिर पड़ी। मेरी हालत देखकर दासी घबडा गई और जोर-जोर से रोने लगी, इसी बीच मै बेहोश हो गई; पता नही फिर क्या हुआ, जब मुझे होश आया तो मैने देखा कि मै लकड़ी के बने हुए एक भवन मे पडी हूँ। मुझे आश्चर्य हुआ, मैंने उठकर खिडकी पर पहुँचकर देखा तो वह काष्ठभवन भी इसी अदृष्टपार सरोवर के बीच मे मन्दिर के समान तैरता हुआ दिखाई दिया। मुझे बहुत चिन्ता हुई कि मै कहाँ आ फँसी। एक बार फिर इसी सरोवर मे डूब मरने को तैयार हो गई, किन्तु त्योही मुझे एक पत्र पडा मिला। उठाकर पढा तो पता चला कि वह पत्र मेरे प्रियतम राजकुमार समरकेतु का भेजा हुआ है। मै फिर न मर सकी, क्योकि उस पत्र से उनके जीवित होने के सन्देह ने मुझे भी जिन्दा रहने की प्रेरणा दे दी थी। इतने मे वह काष्ठभवन भी लहरो की थपेडो से तीर पर लग गया। मैं उतर पड़ी, नहाई-धोई और एक पेड के नीचे बैठ गई।

इसी बीच वहाँ चित्रलेखा आई। मैं प्रयत्न करने पर उसे पहिचान पाई। उसने मुझे बहुत धैर्य बँधाया। कुछ देर बाद वहाँ चक्रवर्त्ती विद्याधरसम्राट् चक्रसेन की पत्नी पत्रलेखा अपनी सहेलियो के साथ आई और उस काष्ठभवन के विषय मे जानकारी करने लगी कि वह किसका है? पर उसमे पडे हुए वस्त्रो को पहिचान कर निर्णय कर लिया गया कि यह वही विमान है जिसे लेने के लिए गन्धर्वक को विचित्रवीर्य के पास भेजा गया था। पर गन्धर्वक कहाँ गया? इस प्रश्न का समाधान किसी के पास नही था। चित्रलेखा ने उनसे मेरा परिचय कराया, कहा—देवि! इतना तो आपको विदित ही है कि आपकी गन्धर्वदत्ता नाम की छोटी बहिन जब वैजयन्ती नगरी मे अपने मातामह (नाना) के घर रहती हुई नृत्यकला सीख रही थी तभी जितशत्रु नामक दुश्मन ने अचानक ही रात मे धावा बोलकर नगरी को लूटा था। उस समय समरकेलि नामक परिचारक गन्धर्वदत्ता को उसके पिता के पास सुरक्षित पहुँचाने के उद्देश्य से आकाश-मार्ग से उसे लेकर उडा था, पर घायल होने के कारण वहाँ तक नही पहुँच सका था और बीच मे ही प्रशान्तवैर नामक आश्रम के कुलपति के हाथो मे उस अबोध बालिका को सौपकर सदा के लिए सो गया था। कुलपति ने उसका पालन-पोषण किया था और ज्योही उसने यौवन की देहली पर पैर रक्खा त्योही उसे काचीनरेश की पत्नी बना दिया था। यह उसी गन्धर्वदत्ता की पुत्री मलयसुन्दरी है। एक दिन इसे भी विद्याधरराज विचित्रवीर्य ने भगवान् के अभिषेकनृत्य के अवसर पर बुला लिया था, तभी मेरी भी इससे भेट हुई थी। चित्रलेखा की बातो से देवी पत्रलेखा ने मुझे प्यार दिया और घर चलने का आग्रह किया, पर मैं गई नही। तब उन्होने इस तिमजले मठ की बीच की मजिल मे मुझे रहने को जगह बता दी और चतुरिका नामक दासी को मेरी सेवा के लिए नियुक्त करके वह उसी विमान पर बैठकर वापिस चली गईं। मै तभी से अपने प्रियतम के मिलन की आशा मे तपस्या

करती हुई यही दिन बिता रही हूँ। इतना कहकर वह चुप हो गई।

हरिवाहन ने कहा—युवराज ! उस तापस कन्या की कहानी सुनकर मुझे मालूम हो गया कि उसके चितचोर तुम हो। इसलिए मैंने उसे इत्मीनान से समझाया; और वज्रायुध से युद्ध करने के पश्चात् तुम्हारा क्या हाल हुआ, यह भी विस्तार से सुनाया, जिसे सुनकर उसके सारे दु खो का अन्त हो गया और वह आनन्दविभोर हो गई। फिर उसने कहा—कुमार ! आपने तो मेरी विपद्-नदी पर पुल बना दिया, पर मुझे तो यहाँ कोई आकाशगामी परिचित पक्षी भी नही नजर आता जिसके द्वारा आपका पत्र ही छावनी तक भिजाया जा सकता। आपके वियोग मे पता नही उन सबकी क्या हालत हो रही होगी ? उसके ऐसा कहते ही एक तोता आकर मनुष्यवाणी मे बोल उठा—देवि ! आप दु खी न हो, जो काम हो मुझे बताएँ। तोते को इस प्रकार बोलते देखकर उस तापसकन्या मलयसुन्दरी ने हर्ष एवं विस्मय से मुझे देखा। मैंने तुरन्त ही पत्र लिखकर तोते के आगे रख दिया और छावनी मे कमलगुप्त के पास पहुँचाने की प्रार्थना कर दी। बस, वह तोता फौरन ही उसे लेकर वहाँ से उड़ गया। हम दोनो इस घटना से बहुत विस्मित हुए।

इस बीच शाम हो चुकी थी। सन्ध्योपासना करके मैं कुछ देर टहलता रहा; फिर मलयसुन्दरी के पास आ बैठा। उसी समय चतुरिका ने उन्हे सूचना दी कि तिलकमञ्जरी अस्वस्थ हैं, उन्होने अपने कचुकी को भेजा है, और आपको बुलाया है। जब मलयसुन्दरी ने तिलकमञ्जरी की अस्वस्थता का कारण पूछा तो चतुरिका ने बताया कि कल प्रात-काल तिलकमञ्जरी अपनी सहेलियो के साथ अदृष्टपार सरोवर के समीपवर्ती इसी वन मे घूम रही थी। उसी समय एक हाथी चीखता-चिल्लाता आसमान से इसी सरोवर मे आ गिरा। सभी डर गईं। थोडी ही देर बाद तिलकमञ्जरी को लताकुज मे एक तरुण दिखाई दिया। बस, उसे देखकर उनकी हालत कुछ नाजुक हो रही है। तब मलयसुन्दरी ने मुस्करा कर कहा कि मैं समझ गई; चिन्ता की कोई बात नही है। तुम भी जाकर तिलकमञ्जरी को बताना कि आज मेरे आश्रम मे भारतवर्ष के चक्रवर्त्ती सम्राट् मेघवाहन के पुत्र युवराज हरिवाहन पधारे है। इसीलिए अभी आने मे असमर्थ हूँ। परिचारिका चली गई। मलयसुन्दरी ने अपने बचपन के अनुभव सुनाए और मेरे लिये सोने की व्यवस्था करके अपने शयन-कक्ष मे चली गई। मैं तिलकमञ्जरी के विरह मे सारी रात तडपता रहा।

सवेरा हुआ, मैं उठा और शौच-स्नान-पूजा आदि से निवृत्त होकर मलयसुन्दरी के पास बैठा ही था कि परिचारिका ने मुझे सूचना दी कि तिलकमञ्जरी मुझसे मिलने आ रही है, और सचमुच ही जरा ही देर मे वह आ भी गई। दूर से ही मुझे निहारती हुई वह मलयसुन्दरी से बडे प्यार से मिली और उसी के पास बैठ गई। मलयसुन्दरी ने बडे स्नेह से अस्वस्थता का कारण पूछा, पर उसने सिर नीचा कर लिया। मलयसुन्दरी मुस्काई और मेरा परिचय करा दिया। इसी बीच तिलकमञ्जरी की नयनकटारी चमचमाई और मेरा नाजुक दिल छटपटाने लगा। उसने मुझे प्यार से पान खिलाया तो मैं धन्य हो गया।

वह कुछ देर इधर-उधर घूमघामकर अपने घर लौटने लगी तो मलयसुन्दरी को और मुझे भी अपने साथ ले गई। वह रथनूपुरचक्रवाल नामक नगर मे रहती है। वह नगर क्या है, साक्षात् इन्द्रपुरी है। वहाँ उसने अपनी प्रिय सहेली मृगाङ्कलेखा को मेरी खातिरदारी मे तैनात कर दिया। मैने उससे छिपे तौर पर नगर देखने की इच्छा प्रकट की। उसने वादा किया कि वह जरूर दिखायेगी।

तिलकमञ्जरी के आलीशान महल मे ही भोजन हुआ, भोजन क्या था, मुझे तो वह अमृत लग रहा था। इसी बीच मन्दुरा नामक परिचारिका ने सूचना दी कि कोई सुन्दर तोता मुझसे मिलना चाहता है। मुझे पिछले दिन की याद आ गई। तुरन्त ही उसे बुलाया। उसने आते ही एक पत्र दिया और मेरी जय बोली। मैंने उसे बडे प्यार और आदर से अपनी गोद मे ले लिया। इसी समय एक परिचारिका एक दिव्य वस्त्र लेकर आई और मुझसे बोली कि—राजकुमारी तिलकमञ्जरी को मृगाङ्कलेखा से मालूम हुआ है कि आप छिपे तौर पर शहर घूमना चाहते है। इसीलिए उन्होने यह चादर भेजी है। उन्हे यह लक्ष्मी जी से मिली थी। इसके स्पर्शमात्र से बड़े से वडा सकट, यहाँ तक कि शाप भी, दूर हो जाता है। आप इसे ओढते ही किसी को भी दिखाई नही देंगे—ऐसा कहकर उसने वह चादर मुझे ओढा दी।

उसके ओढते ही मेरी गोद मे बैठा हुआ तोता गायव हो गया और उसकी जगह गन्धर्वक निकल पडा। उसने झट से मुझे प्रणाम किया, मैं आश्चर्य मे डूब गया। परिचारिका ने भागकर यह सूचना तिलकमञ्जरी को दी। वह मलयसुन्दरी को साथ लिये वही आ गई। गन्धर्वक ने उसे भी प्रणाम किया। तिलकमञ्जरी बहुत प्रसन्न हुई। उसने उसे अपने पास बैठा लिया। फिर उसका मलयसुन्दरी से भी परिचय कराया। मैंने भी तिलकमञ्जरी को बताया कि मैं गन्धर्वक को बहुत दिनो से जानता हूँ और इसी ने मुझे सर्वप्रथम आपका चित्र भी दिखाया था। इसके बाद मैने गन्धर्वक से पूछा—सखे! तुम तब से आज तक कहाँ, कैसे रहे? मैं तुम्हारे लिए बहुत उत्सुक रहा, जरा अपना सारा हाल तो सुनाओ।

मेरी बात सुनकर गन्धर्वक की आँखे डबडबा आईं। लेकिन फिर भी वह मन्द-स्वर मे बोला—कुमार! उस रोज अयोध्या मे आपसे विदा लेकर मैं त्रिकूटगिरि पर विचित्रवीर्य से मिला। उन्हे यहाँ का सारा समाचार सुनाया और देवी पत्रलेखा ने जिस विमान को वहाँ से मँगाया था उसे लेकर गन्धर्वदत्ता से मिलने मै काची की ओर बढा। मेरे साथ चित्रमाय भी था। आपने मलयसुन्दरी के पास पहुँचाने के लिए राजकुमार समरकेतु का जो पत्र मुझे सौपा था उसे भी मै अपने दुपट्टे के छोर मे बाँधे हुए था। रास्ते मे एक स्त्री दिखाई दी। वह बुरी तरह फूट-फूटकर आँसू बहा रही थी। उसके एकदम पास ही एक युवती बेहोश पडी थी। मुझसे उसकी दीन-दशा देखी न गई। मैने विमान धरती पर उतारा और उससे रोने का कारण पूछा, तो उसने बताया कि यह काचीनरेश कुसुमशेखर की प्यारी वेटी मलयसुन्दरी है। उन्होने इसे महल से निकाल कर मेरे साथ यहाँ आश्रम मे गुप्तरूप से रहने को भेज दिया है। आज यह अनमानी होकर इधर निकल आई थी। मैं भी इसको खोजती-खोजती इधर आ गई। यहाँ आकर यह

पता नही क्यो, वेहोश हो गई है—इतना कहकर वह फिर रोने लगी।

यह सुनकर मुझे गहरा धक्का लगा। मैने मलयसुन्दरी की शारीरिक चेष्टाओ से अनुमान किया कि इनके शरीर मे जहर पहुँच गया है, किन्तु ठीकहो सकती हैं। तदनन्तर मैंने उस स्त्री को सान्त्वना दी और अपने साथी चित्रमाय से कहा कि मैं इन राजकुमारी को लेकर विष को दूर करने वाली औषधि की खोज मे उत्तरदिशा की ओर जा रहा हूँ। तुम भद्रमहिला को धीरज बधाते हुए एक दिन यहाँ रुक जाओ। यदि मैं न लौट सकूँ तो तुम शीघ्र ही अयोध्या चले जाना और मनुष्य का रूप त्याग कर किसी पशु-पक्षी का रूप धारण करके किसी भी उपाय से कुमार हरिवाहन को रथनूपुरचक्रवाल अवश्य ले आना, इतना कहकर मैं मलयसुन्दरी को लेकर विमान द्वारा आकाशमार्ग से चल पडा। रास्ते मे एक यक्ष ने मेरे विमान की गति रोक दी। मेरी उससे झड़प हो गई। मेरे मुँह से उसके लिए कुछ अपशब्द निकल गए, वह नाराज हो गया और बोला कि तू मुझे नही जानता है; मै महोदर नामक यक्षसेनापति हूँ। मैंने इस लडकी को समुद्र मे डूबने से बचाया, इसे इसके घर पहुँचाया, इतना ही नही, मैंने इसके प्रेमी उस राजकुमार को भी डूबने से बचाया, उसके सभी मल्लाहो को भी बचाया, यथास्थान पहुँचाया, फिर भी तू मुझे पापी कह रहा है ? और तू, इतना लम्बा-चौडा रास्ता होने के बावजूद भी मन्दिर के ऊपर से विमान पर बैठकर जा रहा है, फिर भी अपने को धर्मात्मा समझता है। अच्छा ले, तो अब देख मेरी शक्ति, मैं तुझे शाप देता हूँ कि तेरा यह गर्वीला शरीर ही अब तेरे पास न रहेगा और तब तक न रहेगा जब तक कि तू मेरी स्वामिनी की कृपा नही प्राप्त कर लेगा, —इतना कहकर क्रोध मे भरे हुए उस यक्ष ने विमान सहित मुझे अदृष्टपारसरोवर मे फेंक दिया। उससे निकला तो मैं तोता बन गया। मैं अपनी दुर्दशा पर रो पड़ा, पर लाचार था, क्या कर सकता था, हाँ स्मरण शक्ति मेरी पहले जैसी ही रही। इसलिए मैं भूला किसी को भी नही। अब भी मुझे पूरी याद है कि मलयसुन्दरी ने मेरे दुपट्टे से पत्र निकाल कर बाँचा था, मेरी माँ से इनकी भेट हुई थी, उसी समय देवी पत्रलेखा भी आई थी, वह इन्हे अपने साथ ले जाना चाहती थी, पर इन्होने वही मन्दिर मे रहना पसन्द किया था, और रहने लगी थी। मै भी वही पेड़ो पर अपने दिन पूरे करने लगा था। इसके बाद आपसे इनकी भेट हुई और इनकी इच्छा पर ही मैं ही आपका पत्र लेकर कमलगुप्त तक गया और वहाँ से उनका आपके लिए जवाब लाया, आपने मुझे प्यार से गोद मे बैठा लिया, इतना सब कुछ मुझे इस समय भी प्रत्यक्ष-सा लग रहा है—ऐसा कहकर वह चुप हो गया।

गन्धर्वक की कहानी से सभी विस्मित हो गये। मैने कमलगुप्त का भेजा हुआ पत्र पढ़ा, उसमे लिखा था कि युवराज समरकेतु आपके वियोग मे पता नही क्या कर बैठे। मैं तुम्हारे लिए छटपटाने लगा। मलयसुन्दरी की तो हालत ही खराब हो गई। मै तुम्हारे पास आने को उत्सुक हो गया। मलयसुन्दरी ने तिलकमञ्जरी को समझा-बुझा दिया, तो उसने वायुविमानसहित चित्रमाय को मेरे साथ कर दिया। मैं उसे साथ लिए आकाशमार्ग से थोडी ही देर मे अपनी छावनी मे पहुँच गया। वहाँ मेरे पहुँचने से प्रसन्नता की लहर दौड गई। किन्तु तुम्हारे विषय मे पूछने पर जब मुझे यह पता चला कि तुम बिना किसी

को कुछ बताये मेरे विरह से पीड़ित होकर रात मे छावनी छोडकर मुझे खोजने के लिए निकल पडे हो, तो मैं बेहद घबडा गया और अश्वसैनिको की एक छोटी-सी टुकडी अपने साथ लेकर तुम्हे ढूँढने फौरन ही चल पडा। कई दिन बीत गये, चित्रमाय भी परेशान हो गया। उसने तिलकमञ्जरी और मलयसुन्दरी की याद दिलाई और वहाँ लौट चलने को कहा। किन्तु मैं तुम्हारे प्रेम मे बधा था, मैंने उससे कहा कि चित्रमाय ! तुम जाओ और यहाँ का सारा हाल उन्हे सुनाना, उनसे कहना कि धीरज रखे, मैं अपने दोस्त को ढूँढकर सबसे पहिले उन्ही से मिलूँगा। चित्रमाय चला गया। मै तुम्हारी खोज में बराबर लगा रहा।

एक दिन शाम को गन्धर्वक मेरे पास आया और बातचीत के सिलसिले मे उसने कहा कि कुमार ! आपको तिलकमञ्जरी ने बुलाया है। आप चलिए और मलयसुन्दरी के आश्रम मे रहिए। आपके दोस्त को खोजने के लिए तिलकमञ्जरी ने हजारो विद्याधर नियुक्त कर दिए है, वे आपके काम मे पूरी-पूरी सहायता करेगे और मुझे भी आपके साथ रहने का आदेश मिला है। मैने उसकी बात को पसन्द कर लिया और मलयसुन्दरी के आश्रम मे सेना सहित आकर ठहर गया, तुम्हारी तलाश जारी रक्खी और चित्रमाय द्वारा छावनी का भी हालचाल लेता रहा। दिन, पखवारे और महीने गुजरने लगे।

एक दिन शखपाणि नामक रत्नकोपाध्यक्ष ने पिताजी की भेजी हुई एक अँगूठी और एक हार दोनो ही लाकर मुझे दिये। उन दिव्य उपहारो की चमक ने मुझे अत्यधिक प्रभावित किया। मुझे वे जाने-पहिचाने से प्रतीत हुए। मैंने गन्धर्वक के द्वारा तिलक-मञ्जरी के पास हार और मलयसुन्दरी के पास अँगूठी भेज दी।

दूसरे दिन सुबह चतुरिका ने मुझे तिलकमञ्जरी का एक पत्र दिया। उसमे लिखा था कि तुम्हारे इस हार ने, जिसे मैंने बडे प्यार से गले लगाया, हम दोनो का मिलन असम्भव कर दिया है, अब तो बस यादे ही शेष रहेगी।[१४] उसे पढकर मेरी हालत खराब हो गई, मैं किंकर्त्तव्यविमूढ हो गया। मैंने जैसे-तैसे चतुरिका को विदा किया। सबसे आँख बचाकर तिलकमञ्जरी के विरह मे पहाड़ की चोटी से गिरकर आत्महत्या करने के विचार से विजयार्ध पर्वत की चोटी पर चढ गया।

वहाँ मैंने देखा कि एक तरुण युवक उठकर कही जाना चाहता है, किन्तु पन्द्रह या सोलह साल की एक तरुणबाला उसे पीछे से पकडकर रोकने का प्रयत्न कर रही है। मुझे उन दोनो पर तरस आ गया और जब मैंने उस युवक से पूछा कि—तुम इस बाला को जगल मे अकेली छोड़ कर कहाँ और क्यो जाना चाहते हो ? तो वह बोला कि महाशय ! मैं अनगरति नामक विद्याधर कुमार हूँ। मेरा सारा वैभव मेरे कुटुम्बियो ने मुझसे छीन लिया है। इसलिए दुःखी होकर मैं चण्डगह्वर नामक पर्वतशिखर से गिरकर आत्महत्या करना चाहता हूँ। यह मेरी मृत्यु की कल्पना से घबडाकर मुझे रोक रही है और स्वय मरना चाहती है। मैंने उस तरुण को समझाया, उसे सुखी करने के लिए अपना राज्य भी देना चाहा, पर उसने कहा कि भद्र ! मेरे पास एक मन्त्र है, उसका प्रभाव है कि जो उसे सिद्ध कर लेगा उमे साम्राज्य प्राप्त हो जाएगा। अत आप मेरे लिए उस

मन्त्र को सिद्ध कर लीजिए और उससे जो साम्राज्य प्राप्त हो, वह मुझे देकर कृतार्थ कर दीजिए।

मैं अपनी योजना भूलकर उसके काम मे लग गया। उसके लिए उस मन्त्र का जप करते-करते छः महीने गुजर गये। एक दिन तपस्या पूरी हो गई, देवी ने दर्शन दिया और वर माँगने को कहा। मुझे तुम्हारे मिलने की उम्मीद नही रही थी, उधर तिलकमञ्जरी ने मुझे ठुकरा ही दिया था, मैं पूरी तरह निराश हो चुका था; इसलिए मैंने केवल उस अनगरति नामक विद्याधर कुमार की ही खुशियाँ माँगी और कुछ भी नही। देवी ने कहा कि तुम्हारे परोपकार से मैं निहायत प्रसन्न हूँ। किन्तु यह विद्याधर कुमार भी अपने लिए नही, वल्कि तुम्हारे लिए ही तुम्हारे द्वारा तपस्या करा रहा था। तुम्हे मालूम नही है, यहाँ इसी पर्वत पर 'गगनवल्लभ' नामक एक दिव्यनगर है। वहाँ का चक्रवर्त्ती सम्राट् विक्रमवाहु अकस्मात् वैरागी हो गया है। उसके वश मे भी कोई ऐसा योग्य व्यक्ति नही है, जिसे उत्तराधिकार सौपा जा सके। उसका सचिव शाक्यवुद्धि आपके गुणो से परिचित है। इसलिए उसने आपको उस पद के योग्य वनाने की इच्छा से अपने भतीजे (अनगरति) की सहायता से आपको मन्त्रविद्या सिद्ध करने मे प्रवृत्त कराया था। तुम्हारी तपस्या पूर्ण हो गई है और अव तुम उस पद के सर्वथा योग्य हो गए हो, इसलिए अव जाओ और विद्याधरो के चक्रवर्त्ती सम्राट् का पद स्वीकार करो, शाक्यवुद्धि तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। मुझसे इतना कहकर वह देवी अन्तर्ध्यान हो गई।

इसी समय वह शाक्यवुद्धि सचिव अपने साथियो सहित वहाँ आया और मुझे वडे आदर के साथ विजयार्धगिरि के शिखर पर लिवा ले गया। वहाँ मुझे विक्रमवाहु द्वारा त्यागा हुआ चक्रवर्त्ती सम्राट् का पद सौप दिया गया।

अव मुझे ज्योही तिलकमञ्जरी की याद आई, त्योही कुछ लोगो ने मेरे सामने गन्धर्वक को लाकर खडा कर दिया। वह वहुत दु खी लग रहा था। मेरे पूछने पर उसने कहा कि—कुमार ! आपकी भेजी हुई अँगूठी को पहिनते ही मलयसुन्दरी को अपने पहिले जन्म की याद सी आ गई, जिससे उसका चेहरा एकदम उदास हो गया, और तिलकमञ्जरी भी हार पहिनते ही कुछ विचित्र-सी हो गई। उसे मैंने जब हार के विषय मे वताया तो उसे अपने पूर्वजन्म के किसी स्वजन की याद आ गई और वह वेहोश होकर गिर गई। होश आने पर भी वह कुछ वोली नही, चुपचाप रोते-रोते रात विताई। सुवह होते ही तीर्थयात्रा के लिए जाने के वहाने मलयसुन्दरी को साथ लेकर घरद्वार छोड़कर सहेलियो सहित चल पड़ी। अनेक देवस्थानो मे घूमती-घामती वह एक महर्षि के आश्रम मे जा पहुँची। वहाँ उसे कुछ शान्ति मिली। उसकी विकलता से द्रवीभूत होकर उन महर्षि ने कहना शुरू किया—

कुछ वर्षो पहले की वात है कि स्वर्ग मे ज्वलनप्रभ नामक एक देवपुरुष (देवता) अपनी प्रियतमा प्रियगुसुन्दरी के साथ रहते थे। जव उन्होने देखा कि उनकी दिव्य आयु क्षीण होने वाली है तो अपने भावी जन्म को सुधारने की इच्छा से तप करने हेतु, विना अपनी प्रियतमा को वताए, स्वर्ग से निकल पड़े। प्रियगुसुन्दरी अपने पति के इस आकस्मिक वियोग से विकल होकर ढूंढने निकल पड़ी और जम्वूद्वीप जा पहुँची। वहाँ पहुँचकर उसे

मालूम हुआ कि उसके पति का दोस्त सुमाली भी अपनी प्रियवदा नामक प्रियतमा पत्नी को छोडकर कही चला गया है तो उसे भी साथ ले लिया और वे दोनो अपने-अपने पतियो को खोजती हुई पुष्करावती तीर्थ जा पहुँची । वहाँ जयन्तस्वामी नामक महात्मा से प्रियंगुसुन्दरी ने सविनय पूछा कि भगवन् ! मुझे और मेरी सखी को अपने-अपने पति कब और कहाँ प्राप्त होगे ? यह सुनकर उस महात्मा ने कहा कि देवि ! तुम्हारा पति ज्वलनप्रभ तुम्हे एकशृङ्ग पर्वत पर मिलेगा और इस प्रियवदा देवी को सुमाली के दर्शन रत्नकूट पर्वत पर होगे। किन्ही दिव्य उपहारो के माध्यम से आप लोगो को वे लोग सदा-सदा के लिए मिल जाएँगे। सुनकर दोनो को सान्त्वना मिली और वे अपने-अपने अभीष्ट स्थान को चली गईं। प्रियगुसुन्दरी ने एकशृङ्ग पर्वत पर और प्रियवदा ने रत्नकूट पर्वत पर जैन-देवता के मन्दिरो को बनवाया और पूजा तथा प्रतीक्षा करने लगी।

एक दिन प्रियगुसुन्दरी अदृष्टपारसरोवर के तीर पर बैठी हुई थी कि उसी समय लक्ष्मी जी दक्षिण भारत की यात्रा करके उसी रास्ते से वहाँ से निकली। उन्होने थोटी देर रुककर प्रियगुसुन्दरी से सहानुभूतिपूर्वक बातचीत करते हुए कहा कि बहन प्रियगुसुन्दरी ! मैं अभी तुम्हारी प्रिय सहेली प्रियवदा से मिलकर ही आ रही हूँ। वह अपने पति के मिलने की आशा छोड चुकी हैं। उसने तुम्हारे लिए सन्देश भेजा है कि—'मेरी आयु समाप्त हो चुकी है, मेरे बाद इस मन्दिर की देखभाल करती रहना।' यह सुनकर प्रियगुसुन्दरी बहुत दु खी हुई, वह सोचती रही कि प्रियवदा के बनवाये हुए मन्दिर की रक्षा का भार किसे सौपा जाए, अब कोई मेरी बात भी क्यो मानेगा ? लक्ष्मी जी ने समझ लिया और वह अपने महोदर नामक प्रधान सेवक को मन्दिर की रक्षा का भार सौपकर प्रियगुसुन्दरी से विदा लेकर चली गईं।

प्रियगुसुन्दरी ने महात्मा की बात पर भरोसा रक्खा और तपस्या करते-करते अपना शरीर त्याग दिया। वही प्रियगुसुन्दरी यह तिलकमञ्जरी बनी बैठी है। पूर्वजन्म के सस्कारो के कारण ही यह ज्वलनप्रभ के अतिरिक्त सभी पुरुषो से द्वेष करती रही है। महर्षि की बात सुनकर सभी विस्मित होकर तिलकमञ्जरी को देखने लगे, पुनः सबने जब ज्वलनप्रभ के विषय मे जिज्ञासा प्रकट की तो वह फिर बोले कि वह स्वर्ग से निकल कर अयोध्या नरेश सम्राट् मेघवाहन को अपनी पत्नी के गले का हार सौपकर कुछ दिनो नन्दीद्वीप मे रहा। वहाँ उसने अपने दोस्त सुमाली को, जो भोगविलास मे ही डूबा था, धर्मोपदेश दिया। तदनन्तर स्वय अपने भविष्य को उज्ज्वल बनाने की कामना से हिमालय की गोद मे तपस्या करता रहा। फिर अपनी दिव्य आयु पूरी होने पर वह सम्राट् मेघवाहन, जिनको मैंने ही तप करने के लिए प्रेरित किया था, के यहाँ पुत्र रूप मे उत्पन्न हुआ है और इस जन्म मे उसका नाम हरिवाहन है, इतना कहकर महर्षि चुप हो गए।

तिलकमञ्जरी को वही खुशी हुई जो अन्धे को आँखे मिल जाने पर होती है। अब मलयसुन्दरी की बारी थी। महर्षि ने उसकी ओर देखकर कहा—बेटी ! वह सुमाली भी भोगविलास से उद्विग्न होकर तप मे लग गया था और अपनी दिव्य आयु समाप्त करके सिंहलनरेश चन्द्रकेतु के यहाँ पुत्र के रूप मे पैदा हुआ है। इस सयय उसका नाम समरकेतु है, इतना कहकर महर्षि उठ गए।

अभी मलयसुन्दरी और तिलकमञ्जरी आगे की योजना बनाने मे ही व्यस्त थी कि चित्रमाय आ पहुँचा। प्रणाम करके उसने निवेदन किया कि देवि! आपकी आज्ञा से मैं कुमार हरिवाहन को उनकी छावनी तक वापिस भेजने के लिए उनके पास पहुँचा, पर वह वहाँ है ही नही, मैंने बहुत तलाश की, किन्तु सब व्यर्थ। अब मैं कुछ विद्याधरो को उनकी तलाश के लिए नियुक्त कर आया हूँ। इतना सुनते ही तिलकमञ्जरी घबरा गई, पर मलयसुन्दरी ने धीरज बँधाया। फिर तो वह विमान पर बैठकर सारे दिन आपको खोजती रही, पर निराश होकर लौटी और मलयसुन्दरी के आश्रम मे ही ठहर गई। सुबह एक विद्याधर ने सूचना दी कि इतना तो पता चलता है कि कुमार विजयार्ध पर्वत की चोटी पर चढ़े थे, पर इसके आगे कुछ भी नही ज्ञात होता है। सुनकर तिलकमञ्जरी छटपटा गई और अदृष्टपारसरोवर मे डूब मरने के लिए चल पड़ी।

इसी बीच तिलकमञ्जरी के माता-पिता की सूचना प्राप्त हुई कि ज्योतिषियो के कथनानुसार कुमार हरिवाहन सकुशल हैं, और उनकी तलाश मे कुछ कुशल विद्याधर भी भेज दिए गए है, उन्हे छ महीने का समय दिया गया है। अत तिलकमञ्जरी को छ महीने तक इन्तजार कर लेना चाहिए। तिलकमञ्जरी अपने पिता के आदेश को न टाल सकी और आपके मिलन की आशा मे मलयसुन्दरी के साथ जीने लगी। कुमार! आपका इन्तजार करते-करते आज छठे महीने का अन्तिम दिन भी शिर पर आ पहुँचा है, तिलकमञ्जरी का धीरज छूट चुका है! उसने कल आत्महत्या करने का दृढ सकल्प कर लिया है, इस कारण सारा वातावरण करुणापूर्ण हो गया है। मैं कल की करुण कल्पना से काँप उठा और उस दृश्य को देखने की नौबत आने के पहिले ही मर जाने की इच्छा से इसी पहाड की चोटी पर चढा था; पर सौभाग्य से आपके इन विद्याधरो ने पकडकर मुझे आपके सामने लाकर खडा कर दिया है—इतना कहकर गन्धर्वक चुप हो गया।

गन्धर्वक के मुँह से यह सब हाल सुनकर मुझे तुरन्त ही अपने पूर्वजन्म की याद आ गई और प्रियतमा तिलकमञ्जरी के जीवन की रक्षा हेतु फौरन ही घोड़े पर सवार होकर मैं द्रुतगति से चल दिया। मेरे साथ ही गन्धर्वक और अन्य समीपवर्त्ती विद्याधर भी चल दिये। वहाँ जाकर मन्दिर मे दर्शन किये और मलयसुन्दरी से मिला। मुझे देखकर वह बहुत खुश हुई, पर मैं जल्दी से जल्दी तिलकमञ्जरी से मिलने के लिए छटपटा रहा था। इसलिए मैंने गन्धर्वक को तो मलयसुन्दरी के पास छोडा और अन्य सेवको के साथ शीघ्र ही तिलकमञ्जरी के पास पहुँचा। वह शीतल कदलीवन मे मेरे विरहानल से झुलस रही थी। मेरे पहुँचते ही वहाँ का शोकसिन्धु तुरन्त ही हर्षसिन्धु मे परिणत हो गया। बस फिर मैं बैठ ही पाया था कि गन्धर्वक के साथ तुम आ गये। समरकेतु से इतना कहकर हरिवाहन मुस्कराते हुए चुप हो गए।

× × ×

कुमार हरिवाहन के मुँह से यह सब सुनकर सभी तो आनन्दित हुए किन्तु समरकेतु की हालत चिन्ताजनक हो गई। उसे अपने पूर्वजन्म की याद आ गई और अपनी पत्नी प्रियवदा के विरह से विकल हो गया। हरिवाहन ने धीरज बँधाया और समझाया कि दोस्त! मलयसुन्दरी ही तुम्हारी पूर्वजन्म की पत्नी प्रियवदा है, उसके प्यार को पाकर

तुम निहाल हो जाओगे। वह बिचारी तुम्हारे विरह मे जोगिन बन गई है, उठो और शीघ्र ही उसकी तपस्या का वरदान बनकर उसके पास पहुँचो। सुनकर समरकेतु का रोम-रोम पुलकित हो उठा, और मलयसुन्दरी के पास अपने आ पहुँचने की खबर भिजवाने के लिए उसने हरिवाहन को प्रेरित किया।

इसी समय विचित्रवीर्य के एक प्रमुख सेवक ने आकाशमार्ग से आकर हरिवाहन को एक पत्र दिया। उसमे विचित्रवीर्य ने हरिवाहन के लिए लिखा था कि मैं अपनी दौहित्री मलयसुन्दरी का विवाह आपके दोस्त समरकेतु के साथ आज ही करना चाहता हूँ। मलयसुन्दरी को मैने अपने निवास (चित्रकूटगिरि) पर कल ही बुला लिया है, रिश्तेदारो को भी निमन्त्रण भेजा जा चुका है, यानी सभी तैयारियाँ हो चुकी है। अतः अब आपसे सस्नेह निवेदन है कि समरकेतु को पत्रवाहक के साथ अविलम्ब मेरे पास भेज दीजिए ताकि मेरे आयोजन का उपहास न हो सके। हरिवाहन ने पत्रवाहन से पूछा कि इतनी दूर भारत के दक्षिणी तट पर रहने वाले श्री विचित्रवीर्य को यह कैसे विदित हुआ कि समरकेतु यहाँ है? सुनकर पत्रबाहक ने कहा—देव! जब कल आपसे विदा होकर तिलकमञ्जरी अपने घर पहुँची तो उसकी सहेली मृगाङ्कलेखा ने चित्रलेखा को आपके तथा कुमार समरकेतु के वापिस लौट आने की शुभ सूचना दी। वहाँ लक्ष्मी जी भी बैठी थी। उन्होने यह समाचार चित्रलेखा के द्वारा श्री विचित्रवीर्य के पास पहुँचा दिया। मलयसुन्दरी को भी आकाशमार्ग से कल ही त्रिकूटगिरि पर पहुँचा दिया गया है, कांची से कुसुमशेखर एव गन्धर्वदत्ता को भी बुला लिया गया है। आज मैं कुमार समरकेतु को लेने आया हूँ। अत कृपया जल्दी ही आप इन्हे मेरे साथ भेज दीजिए, ताकि मुहूर्त्त न बीतने पाए।

हरिवाहन ने समरकेतु को हार्दिक बधाई देकर अनेक विद्याधरो के साथ विदा किया। इसी बीच शाम हो गई और वह अपने राजभवन मे लौट आए। रात बीती, सवेरा हुआ तो तिलकमञ्जरी के पिता चक्रसेन ने अपनी प्रसन्नता प्रकट करने के लिए विद्याधरो द्वारा कुमार हरिवाहन के पास अनेक दिव्य उपहार भेजे। तदनन्तर हरिवाहन भी चक्रसेन से मिलने गए। लौटने की आज्ञा माँगी तो चक्रसेन ने कुछ दिन और रुकने के लिए प्रार्थना की। तिलकमञ्जरी के स्नेह मे तो वह बँधे ही थे, अत सहर्ष रुक गए।

तदनन्तर चक्रसेन ने एक शुभ मुहूर्त्त मे बडी धूम-धाम के साथ तिलकमञ्जरी और हरिवाहन को दाम्पत्यसूत्र मे बाँध दिया। फिर क्या था, दोनो की चिरन्तन अभिलाषाएँ पूरी हो गईं, सुनहले सपने साकार हो गए। कुमार हरिवाहन अपने सास-ससुर (पत्रलेखा-चक्रसेन) के मन को आनन्दित करते हुए कुछ दिनो तक वही रहे, तत्पश्चात् तिलकमजरी को लेकर अपनी राजधानी (गगनवल्लभ नगरी) को लौट आए। राजधानी मे और राजमहल मे तिलकमञ्जरी का भव्य स्वागत हुआ, दोनो ने ही एक-दूसरे को सदा के लिए पाकर अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव किया, और फिर उनकी हर रात सुनहली होने लगी।

उधर युवराज समरकेतु का भी मलयसुन्दरी के साथ बडे उल्लास के साथ पाणिग्रहण सस्कार हो गया। उन दोनो की भी चिरकाल से बिछुडी हुई दो आत्माएँ फिर से

एक हो गईं। कुछ ही दिनो बाद हरिवाहन ने समरकेतु को बुलवाया और अपना आधा राज्याधिकार उन्हे सौप दिया।

सम्राट् मेघवाहन को जब यह सब समाचार मिला तो उनकी खुशी का ठिकाना न रहा। उन्होने तुरन्त ही सारा दायित्व हरिवाहन को सौपकर भगवद्-भजन मे अपना मन लगा लिया। हरिवाहन भी अपनी प्रजा को सब प्रकार से सुखी और सम्पन्न बनाते हुए, कभी सिंहलद्वीप मे समरकेतु के पिता चन्द्रकेतु के पास, कभी काची मे मलयसुन्दरी के माता-पिता (गन्धर्वदत्ता और कुसुमशेखर) के पास, कभी रथनुपूरचक्रवाल मे तिलकमञ्जरी के माता-पिता (पत्रलेखा और चक्रसेन) के पास, कभी विजयार्धगिरि पर मलयसुन्दरी और समरकेतु के पास अपनी प्रियतमा पत्नी तिलकमञ्जरी के साथ रहते हुए जीवन का रस लेने लगे, और उनके जीवन मे प्रतिपल आनन्द की वृद्धि होती गई।

× × ×

तिलकमञ्जरी के कथानक मे कौतूहल के निर्वाह पर विचार

साहित्य की कथाप्रधान विधा के कथानक मे कौतूहल ही एक ऐसा तत्त्व है जो पाठक के मन को बराबर उल्लासित किए रहता है, कभी भी 'बोर' नही होने देता। यह एक ऐसा आकर्षक इन्द्रजाल है जिसके सम्पर्क मे आते ही पाठक दैनिक आहार-विहार की भी उपेक्षा कर बैठता है, नीद भी खो बैठता है और रात चाहे जितनी ही क्यो न बीत जाए, पर वह उपन्यास के पन्नो को चुपचाप पढता और पलटता ही रहता है जब तक कि वह आखिरी पन्ने की आखिरी लाईन को नही पा लेता। यदि उपन्यास बडा है, और बोलचाल की भाषा मे नही है, साथ ही वर्णनात्मकता भी लिए हुए है तो उसे पूरा पढने मे कई दिन भी लग सकते हैं। ऐसी स्थिति मे भी पाठक उसे पढने के लिए प्रतिदिन कुछ न कुछ अवसर निकाल ही लेता है और बडे धैर्य के साथ उसे पूरा पढकर ही मानता है। बाण की कादम्बरी, धनपाल की तिलकमञ्जरी, अम्बिकादत्त व्यास का शिवराज-विजय आदि सस्कृत भाषा मे लिखे गए कतिपय कथाकाव्य (उपन्यास) इसी वर्ग मे आते है। थोड़ा ध्यान देने से मुझे तो यही आभास हुआ है कि इनमे विशेष रूप से कथानक का कौतूहल ही पाठको को इतने लम्बे अरसे तक आकृष्ट किए रहता है, वर्ना इनका आखिरी पन्ना अछूता ही रह जाता।

उपन्यासकार की कला का महत्त्व कौतूहल की सर्जना मे उतना नही है जितना कि उसके निर्वाह मे है। निर्वाह से मेरा तात्पर्य है कि कथानक का रहस्य धीरे-धीरे खुले, ताकि उसकी आगामी घटनाओ का अनुमान न किया जा सके। पाठक के मन मे जिज्ञासा, उत्सुकता किवा कौतूहल प्रतिक्षण एक के बाद एक बढता ही जाए, कथानक के मध्य मे ऐसा कोई क्षण और भी स्थल न आने पाए जिससे कथानक (प्लाट) की कलई खुले। जिन उपन्यासो मे कौतूहल की सुरक्षा की जाती है उनके पढने वालो को ठीक वैसा ही आनन्द मिलता है जैसा कि अनजानी और उत्तरोत्तर आरामदायक राहो पर चलने वाले राहगीरो को मिला करता है। इसीलिए जो उपन्यासकार समझदार होते हैं, वे अपनी

कृति मे कौतूहल को वडे कायदे से अन्त-अन्त तक जिन्दा रखते है। किसी की क्या मजाल, जो उनके कथानक को पहिले से जरा भी भाँप सके।

जब हम अपने इसी दृष्टिकोण से धनपाल की तिलकमञ्जरी के कथानक का निष्पक्ष सिंहावलोकन करते है तो पाते है कि धनपाल ने कौतूहल की अविरलता एव नूतनता का पूरा-पूरा ध्यान रक्खा है। वास्तव मे तिलकमञ्जरी के कथानक मे एक अद्‌भुत आकर्षण है, जादू है, औत्सुक्य का अजस्र स्रोत है, कौतूहल के नये-नये उतार-चढाव है, अप्रत्याशित घटना-चक्रो का रगीन ताना-बाना है, और यदि कहा जाए कि पूरा ही कथानक मेगनेटिक और टेक्नीकलर्ड है तो भी कोई अत्युक्ति न होगी।

धनपाल ने अपने कथानक मे कौतूहल की सृष्टि, स्फीति, चरमपरिणति, नियति और शान्ति को अतीव आनुपातिक रूप मे प्रस्तुत किया है। उनके इस प्रस्तुतीकरण मे ठीक वैसा ही क्रमिक चढाव और उतार है जैसा कि भारत के उष्णभूभागो मे गर्मी के दिनो मे सुबह आठ बजे से शुरू होकर शाम छ बजे तक चलने वाली गर्म हवा मे हुआ करता है। तिलकमञ्जरी को कई बार पढने के पश्चात् मैं तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि धनपाल ने कथानक की सर्जना मे अपनी असाधारण प्रतिभा का ज्वलन्त परिचय दिया है। उनके कथानक की सबसे वडी विशेषता यह है कि उसमे अनेकरूपता की रगीनियाँ होने के बावजूद भी एकरूपता की मनोहर झाँकी सजाई गई है। इसीलिए कथानक के प्रत्येक मोड पर पाठक के मन मे एक ऐसा नया कौतूहल जागरित हो जाता है, जिसे शान्त करने के लिए वह पुन अपनी कमर कस लेता है और बडी एकाग्रता के साथ आगे के पृष्ठो की पक्तियो मे अपनी आँखे गडा देता है।

तिलकमञ्जरी मे पाठक का सबसे पहिला परिचय चक्रवर्ती सम्राट् मेघवाहन से होता है, जो समस्त गुणो का भाण्डार है। ज्योही यह पता चलता है कि उसके कोई सन्तान नही है और इसीलिए वह मन ही मन निहायत दु खी रहता है, त्योही पाठक के मन मे उसके प्रति सहजसहानुभूति उत्पन्न हो जाती है, और वह उसके दु:ख मे भागीदार बन जाता है। वह इस उम्मीद मे कि देखे इसे पुत्र की प्राप्ति हुई या नही, और हुई तो कैसे हुई ?—जैसे ही आगे बढता है तो उसके मन को आकाशमार्ग से उडकर आए हुए विद्याधर मुनि अपनी ओर आकृष्ट कर लेते है। कथानक के कौतूहल मे उस समय भी एक नया मोड आ जाता है, जब मेघवाहन को शक्रावतार नामक जैनमन्दिर मे ज्वलनप्रभ नामक वैमानिक मिलता है और वह अपनी गतिविधि से मेघवाहन को परिचित कराता है। यहाँ तक पहुँचते-पहुँचते पाठक का मन मेघवाहन का सच्चा साथी बन जाता है, और जिस समय बनावटी वेताल की माँग पर मेघवाहन अपना सिर अपने हाथ से काटने लगते है, तो कौतूहल का वेग अत्यधिक बढ जाता है। लगता है कि मेघवाहन अपने जीवन से हाथ ही धो बैठेगा। किन्तु तुरन्त ही लक्ष्मी जी के प्रादुर्भाव से कौतूहल की दिशा बदल जाती है और सफलता के पूरे-पूरे आसार नजर आने लगते है। इसके बाद कुछ दूर तक कुमार हरिवाहन के जन्म और विद्याभ्यास आदि के कथानक मे किसी भी नए कौतूहल की सर्जना नही है। किन्तु जब एक दिन विजयवेग नामक प्रधान सवादवाहक आकर सेनापति वज्रायुध की दक्षिण भारत की विजययात्रा का प्रसग सुनाता है और उसी

प्रसग मे सिंहलद्वीप के राजकुमार समरकेतु की शौर्यकथा भी आ जाती है तो पाठक का औत्सुक्य पुन अँगड़ाई लेने लगता है। इसके बाद मेघवाहन के वात्सल्य से अभिभूत होकर युवराज समरकेतु हरिवाहन का प्रमुख सखा बन कर वही रहने लगता है और कथानक थोडी दूर तक सीधे-साधे मार्ग पर ही आगे बढता है। किन्तु एक दिन एक विप्रलम्भ-शृगारप्रधान पद्य के कारण कथानक फिर से एक नई दिशा मे चल पडता है जिसमे समरकेतु—हरिवाहन, कमलगुप्त आदि—सभी साथियो को अपने दिल की आप-बीती सुनाता है। पर उसकी वह रोमानी दास्तान पूरी नही हो पाती, क्योकि उसी बीच उपन्यास की नायिका का चित्र बड़े नाटकीय ढग से सामने आ जाता है और गन्धर्वक अपना परिचय एव उद्देश्य बताकर सबके मन मे एक नया कौतुक भर देता है।

समरकेतु की रोमानी कहानी सुनकर और नायिका (तिलकमञ्जरी) के चित्र को देखने के बाद हरिवाहन की मन·स्थिति को पढकर पाठक का मन नये सिरे से इस तथ्य को जानने के लिए लालायित हो उठता है कि उन दोनो की आशाएँ पूरी हुई या नही ? और इसी धुन में वह जब कुछ और पृष्ठ पलटता है तो उसे एक नितान्त अप्रत्याशित समस्या का सामना करना पडता है, और वह समस्या है—कुमार हरिवाहन का सभी साथियो के देखते-देखते उन्ही के हाथी द्वारा जगल मे अपहरण। इतना ही नही, बल्कि तीन दिन की निरन्तर तलाश के बाद जब यह अनुमान और विश्वास कर लिया जाता है कि कुमार हरिवाहन अब जीवित नही है और उनके विरह मे सारी सेना मे कुहराम मच जाता है तो पाठक के मन मे कौतूहल का झरना सूखने सा लगता है। लेकिन तारीफ तो यह है कि सूखने नही पाता। क्योकि तब तक उसी दिन शाम को छावनी मे कमलगुप्त के पास अज्ञात रूप से हरिवाहन का लिखित कुशल समाचार आ जाता है, जिसे पाकर सबकी जान मे जान आ जाती है, और समरकेतु भी आत्महत्या का विचार त्याग देता है। यहाँ धनपाल ने अपनी पूरी प्रतिभा को दाँव पर लगा दिया है। उन्होने यहाँ अपने कथानक को पहिले निराशा के गहरे गर्त्त मे धकेलकर पुन आशा के शिखर पर चढने का जो प्रयत्न किया है वह पाठक के मन मे चरितनायक के प्रति अगाढ सहानुभूति और उत्कण्टा जागरित करने की दृष्टि से ही किया है, और इसमे कोई शक नही है कि उन्हे यहाँ पूरी-पूरी सफलता मिली है।

उसी रात जब समरकेतु बिना किसी को बताए, रात मे अकेला ही अपने दोस्त हरिवाहन की खोज मे उत्तरदिशा की ओर चल पडता है तो पाठक के मन मे यह कौतूहल जागता है कि देखें समरकेतु हरिवाहन को ढूढ पाता है या नही ? छ महीने की तलाश के बाद जब समरकेतु की भेंट अचानक गन्धर्वक से होती है और वह जब उन्हे हरिवाहन से मिला देता है तो अपहरण विषयक कौतूहल को राहत मिल जाती है। किन्तु जब समर केतु के पूछने पर हरिवाहन अपना हाल सुनाना शुरू करते हैं तो पुन एक नवीन कौतूहल की विस्मयजनक और चमकीली किरण पाठक के मन को आलोकित कर जाती है। उसी प्रसग मे नायिका के हाव-भावो का भी परिचय मिल जाता है।

कथानक उस समय भी लक्ष्य की ओर बढ़ने के लिए एक नई करवट लेता है जब हरिवाहन का एक तापसकन्या से परिचय होता है। वह तापसकन्या हरिवाहन के

अनुरोध पर जिस समय आपबीती सुनाती है, उस समय भी पाठक के मन मे औत्सुक्य की उत्ताल तरंगे उठने लगती है। उसकी कहानी पाठको के दिल में अबाधगति से प्रवेश करने लगती है, और जब यह पता चलता है कि वही समरकेतु की प्रेमिका मलयसुन्दरी है तो घटनाओ के समन्वय की कुशल कला के लिए धनपाल की प्रतिभा का समादर करने के लिए विवश होना ही पडता है। इसके वाद हरिवाहन जब उस तापसवाला मलयसुन्दरी को समरकेतु के विषय में बता देते है तो फिर मलयसुन्दरी के ही माध्यम से हरिवाहन और तिलकमञ्जरी की मुलाकात की कहानी वहुत ही सीधे ढंग से आगे वढ जाती है। लेकिन जव तिलकमञ्जरी के महल मे हरिवाहन की गोद से अचानक ही गन्धर्वक निकल पडता है और तोता गायब हो जाता है तो पुन: कौतूहल वढ जाता है, और गन्धर्वक की हालत को जानने के लिए उत्सुकता लहराने लगती है।

कथानक के कौतूहल मे एक खतरनाक और अन्तिम मोड उस समय आता है जब तिलकमञ्जरी अपनी परिचारिका द्वारा पत्र भेजकर हरिवाहन को अपना निर्णायक सन्देश दे देती है कि तुन्हारे भेजे इस हार को देखकर ऐसा लगता है कि अब हम दोनो का मिलन कभी न हो सकेगा, और इस हृदयभेदक सन्देश को सुनकर हरिवाहन भी जव अपनी प्रेमिका के वियोग मे पहाड मे गिरकर मरने के लिए चल देता है। धनपाल ने वहुत ही सूझ-बूझ के साथ कथानक मे यह मोड दिया है। पाठक के मन मे यह जिज्ञासा बलवती हो जाती है कि हार ने तिलकमञ्जरी पर ऐसा क्या छूमन्तर कर दिया जो उसने अपने अनन्यप्रेमी हरिवाहन से भी अपना मुँह मोड लिया, आखिर बात क्या हुई ? क्या हरिवाहन सचमुच ही पहाड से गिरकर मरेगा ? अपनी इसी उत्कण्ठा को लिए हुए पाठक का मन आगे के पन्नो मे खो जाता है। जब हरिवाहन अनङ्गरति नामक विद्याधर कुमार के दु ख से द्रवीभूत होकर आत्महत्या के कार्यक्रम को भूलकर उसके अभ्युदय के लिए तपस्या मे लग जाते है और उसके फलस्वरूप उन्हे चक्रवर्ती पद की प्राप्ति हो जाती है, एव इसी समय जब अचानक ही हरिवाहन के सामने दीन-दु खी हालत मे गन्धर्वक आ पहुँचता है और जब वह तिलकमञ्जरी की हालत का वर्णन करने लगता है, तब इस नये रहस्य पर पडा हुआ पर्दा उठता नजर आता है। इसी सिलसिले मे जब एक आश्रम मे विद्याधर मुनि और तिलकमञ्जरी के वार्तालाप की चर्चा का प्रसग आता है तो इस अप्रत्याशित रहस्य का पूर्णतया उद्घाटन हो जाता है कि हरिवाहन ही पूर्वजन्म मे ज्वलनप्रभ नामक वैमानिक था और तिलकमञ्जरी ही उस जन्म मे उसकी पत्नी प्रियगुसुन्दरी थी, और जो इस समय समरकेतु है वही पूर्वजन्म मे ज्वलनप्रभ का प्रिय सखा सुमाली था और मलयसुन्दरी ही उस जन्म मे उसकी पत्नी प्रियवदा थी, और इस सुकुमार रहस्य को खोलने वाले विद्याधर मुनि भी वही मुनि है, जिन्होने मेघवाहन को पुत्रप्राप्ति का साधन बताया था। धनपाल ने इस अलौकिक रहस्य को अलौकिक व्यक्ति के द्वारा ही उद्घाटित कराकर इसकी प्रामाणिकता पर अमिट छाप लगाई है। इसीलिए उन्होने अपने नायक और नायिका को कथानक के मधुरतम एव चरमबिन्दु को प्राप्त करने के पहिले वियुक्त करा दिया है, क्योकि उन्हे प्रेम की अमरता पर विश्वास है। छ माह की अवधि मे हरिवाहन को भी तपस्या द्वारा तिलकमञ्जरी के समकक्ष बनाकर

उन्होने मानवों और विद्याधरो के बीच दिखाई देने वाले अन्तराल को भी मिटा दिया है। यहाँ पाठक को उम्मीद हो जाती है कि अब सभी सदा के लिए मिल जाएँगे। किन्तु गन्धर्वक जब यह सुनाता है कि हरिवाहन के मिलन की आशा मे छ माह की अवधि बिताकर कल तिलकमञ्जरी प्राण त्याग देगी तो कौतूहल मे एक लहर पुन उठती है। इसके बाद जब हरिवाहन तुरन्त ही द्रुतगति से तिलकमञ्जरी के पास आ जाता है और उसी समय दैवयोग से समरकेतु भी वहाँ पहुँच जाता है तो सभी घटनाओ के और सभी कौतूहलो के एक मधुर अवसान की आशा बँध जाती है।

इसी बीच विचित्रवीर्य का सेवक आकर जो समाचार देता है उससे पाठको के हृदय मे उठी हुई समरकेतु और मलयसुन्दरी के विवाह की उत्कण्ठा पूरी हो जाती है और इधर तिलकमञ्जरी के पिता चक्रसेन भी हरिवाहन को अपना जामाता स्वीकार कर लेते है। इस प्रकार हम देखते है कि जब सभी को अभीष्ट लाभ हो जाता है तभी पाठक का मन सन्तोष की साँस ले पाता है।

तिलकमञ्जरी के कथानक मे कौतूहल विषयक जो उपर्युक्त विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है वह इस तथ्य का पोषक है कि धनपाल ने अपने कथानक के निर्माण मे जिन घटनाओ का सयोजन किया है वे पूर्णतया मनोवैज्ञानिक हैं और पाठको की उत्कण्ठा को उचित अनुपात से सुरक्षित रखने मे सक्षम है। हम देखते है कि पाठको के मन मे ग्रन्थ के आरम्भ मे जो कौतूहल उत्पन्न होता है वह बडे कायदे से धीरे-धीरे पुष्ट होता जाता है; उसमे उत्तरोत्तर नई-नई स्वाभाविक उत्कण्ठाएँ पनपती रहती है और वे सब जिज्ञासाएँ एक चरमसीमा तक विकसित होकर पुन शनैः शनैः समाधान की ओर बढती हुई अवसान बिन्दु को पा लेती है। इसमे कोई सन्देह नही है कि धनपाल ने अपने कथानक मे जिस कौतूहल की सृष्टि की है उसे उन्होने बडे अच्छे ढंग से विकसित किया है और उसका मधुर अवसान करके उसे अन्त तक बखूबी निभाया है।

तिलकमञ्जरी मे कथा कहने वालो की विविध-रूपता पर विचार

तिलकमञ्जरी के स्वाध्याय से यह निष्कर्ष निकलता है कि इसमे धनपाल ने कथानक को गति देने के लिए जितना स्वय कहा है, उससे कही अधिक उन्होने अपने पात्रो से कहलवाया है। हम देखते है कि धनपाल ने केवल दो स्थलो पर ही कथानक की बागडोर स्वय सम्हाली है और उसे आगे बढाया है। उनमे एक स्थल है—आरम्भ मे सम्राट् मेघवाहन के कार्यकलापो का वर्णन, और दूसरा स्थल है—समरकेतु द्वारा हरिवाहन की खोज का वर्णन। लेकिन इन स्थलो के अतिरिक्त कथानक को जो अधिकांश गति मिली है, वह पात्रो की या तो 'आप-बीती' सुनाने मे, या फिर 'पर-बीती' और 'सुनी-सुनाई' दास्तान को सुनाने से। हमने अनुभव किया है कि जहाँ कोई पात्र किसी पात्र को 'आपबीती' कहानी सुनाने लगता है, वहाँ धनपाल एकदम तटस्थ हो जाते है। उस समय वह अपने पाठको को स्वय कुछ न सुनाकर उस सुनाने वाले पात्र की आत्मकथा को सुनने के लिए स्वतन्त्र कर देते है। साथ ही साथ, लगता है, स्वय भी वह सुनते रहते हैं। क्योंकि ज्योंही उसकी बात समाप्त होती है त्योंही वह शीघ्र ही कथासूत्र को अपने

हाथ मे ले लेते है और उसे आगे बढाकर फिर किसी उचित पात्र को सौंप देते है। वह इस तथ्य से सहमत है कि जिसकी बात हो, वही स्वय बताये। क्योंकि इसमे स्वाभाविकता और सत्यता के आभास की अधिक गुजाइश रहती है। इसीलिए उन्होने अपने सघर्ष-ग्रस्त पात्रो की कहानी स्वय न कहकर उन्ही की जुबानी कहलवाई है।

तिलकमञ्जरी मे कथा कहने वालो के दो वर्ग है। पहला वर्ग उन लोगो का है जो 'आपबीती' दास्तान सुनाते है। ये सभी स्वय किसी न किसी मुसीबत के मारे होते है। इनकी आत्मकथाओ मे अनुभूति की गहराई और वेदना की पूरी-पूरी कसक है। ज्वलनप्रभ, समरकेतु, हरिवाहन, मलयसुन्दरी और गन्धर्वक इसी वर्ग मे आते हैं। सर्व-प्रथम ज्वलनप्रभ मेघवाहन को अपनी दु खभरी कथा सुनाता है। वह इस बात से काफी परेशान है कि उसकी और उसकी पत्नी प्रियगुसुन्दरी की स्वर्ग मे दिव्यसुख भोगने की अवधि लगभग समाप्त हो चुकी है। इतना ही नही, बल्कि वह अपने प्यारे दोस्त सुमाली के भविष्य के लिए भी चिन्तित है क्योकि उसका भी देवत्व समाप्ति पर है। चूँकि उसके पास समय कम रहता है इसीलिए वह अपनी कहानी जल्दी-जल्दी कहकर और सम्राट् को हार सौपकर गायब हो जाता है।

समरकेतु ने कमलगुप्त आदि सभी साथी राजकुमारों के सामने अपने भ्रातृतुल्य सखा हरिवाहन को अपनी साहसिक और रोमानी कहानी सुनाई है। लेकिन वह पूरी नही सुना सके, क्योकि बीच मे ही उपन्यास की नायिका का चित्र आ जाता है; जिसे देखने मे हरिवाहन आदि सभी व्यस्त हो जाते है और इस तरह समरकेतु की वह रोमानी दास्तान अधूरी रह जाती है।

हरिवाहन ने समरकेतु को अपनी दु ख-सुखभरी कहानी बडे विस्तार के साथ सुनाई है। यद्यपि हरिवाहन अपनी इस आत्मकथा को सुनाते समय मलयसुन्दरी और गन्धर्वक की भी आत्मकथाएँ सुना डालता है, लेकिन यदि प्रत्यक्ष रूप से देखा जाय तो हरिवाहन उनका श्रोता ही सिद्ध होता है न कि वक्ता। क्योकि हरिवाहन को मलयसुन्दरी ने ही तो अपनी दर्दभरी प्यार की दास्तान सुनाई थी। इसी प्रकार गन्धर्वक ने भी अपने उन दिनो की कहानी जिनमे वह तोता बन गया था, स्वय ही हरिवाहन को सुनाई थी। इस प्रकार हम देखते है कि ये सभी पात्र 'आपबीती' सुनाने वाले है।

अब दूसरा वर्ग उन लोगो का आता है जो 'परबीती' बात बताते हैं। ये स्वय परिस्थितियो के शिकार नही हुए है। ये तो दूसरो के ही अतीत को स्पष्ट करते है। विजयवेग, समरकेतु की चामरग्राहिणी, नौसेनाध्यक्ष यक्षपालित, विद्याधर मुनि आदि ऐसे ही पात्र है। विजयवेग सेनापति वज्रायुध का परम कृपा पात्र सन्देशवाहक है। वह एक दिन आकर सम्राट् मेघवाहन को सेनापति के दिग्विजय के प्रसग मे काची नरेश की पराजय और दिव्य अँगूठी के प्रभाव से समरकेतु के शौर्य के अभिभव की कथा सुनाता है। समरकेतु की चामरग्राहिणी परिचारिका ने वज्रायुध को कुमार समरकेतु का परिचय दिया है। पाठक को सबसे पहले उसीके बतलाने से पता चलता है कि समरकेतु सिहलद्वीप के सम्राट् चन्द्रकेतु का पुत्र है। यक्षपालित ने समरकेतु को नाविक युवा तारक की प्रेम-कथा सुनाई है। विद्याधर मुनि ने अपने आश्रम मे तिलकमञ्जरी और मलयसुन्दरी को

उनके पूर्वजन्म की कथा सुनाई है, जिसे सुनकर ही उन्हे अपनी आकस्मिक व्यथा का कारण मालूम हो सका और तदनुसार ही अपने-अपने प्रेमियो को पहचान सकी।

इस प्रकार थोडा-सा परिशीलन करने के पश्चात् यह धारणा दृढ हो जाती है कि तिलकमञ्जरी मे धनपाल ने कथानक को स्पष्ट करने के लिए पात्रो को 'आपबीती' और 'परबीती' सुनाने का पूरा-पूरा मौका देकर दण्डी, सुबन्धु और बाण से मिली कथाशैली की विरासत को उन लोगो की अपेक्षा कही अधिक अच्छे और रोचक ढग से निभाया है।

अब चूंकि मुझे धनपाल की शैली का स्वतन्त्र रूप से विश्लेषण आगे चतुर्थ अध्याय के द्वितीय सोपान मे करना ही है, इसलिए यहाँ उसे पल्लवित करना उचित न मानकर तिलकमञ्जरी मे कथा कहने वालो की विविधरूपता की चर्चा समाप्त करता हूँ।

तिलकमञ्जरी की मुख्य कथा एव सहायक कथाओ के उपकार्य-उपकारक भाव पर विचार

इसमे कोई शक नही है कि तिलकमञ्जरी मे अवान्तर कथाओ की भरमार है। लेकिन यह भी निर्विवाद है कि उन्हे अनावश्यक नही कहा जा सकता, क्योकि उनका मुख्यकथा से वही सम्बन्ध है जो अवयवो का अवयवी से या सरल शब्दो मे कहे तो शाखा-प्रशाखाओ का वृक्ष से, हुआ करता है। इसमे राजकुमार हरिवाहन और विद्याधर राजकुमारी तिलकमञ्जरी के अमर-प्रेम की कथा का ही मुख्य कथा के रूप मे वर्णन किया गया है। उसके साथ मे जो समरकेतु और मलयसुन्दरी की भावभीनी प्रणयकहानी चलती है, वह यद्यपि उस मुख्य कथा मे चार चाँद लगाने के लिए उसकी पार्श्वकथा (साइड-स्टोरी) के रूप मे चित्रित की गई है, लेकिन अन्ततोगत्वा वह सच्चे सख्यभाव की अमरता की भी गहरी छाप छोड जाती है। धनपाल ने इन दोनो कथाओ को क्रम-क्रम से पल्लवित किया है, और इन दोनो मे परस्पर सापेक्षता लाने के लिए उन्होने अन्य छोटी-मोटी अवान्तर कथाओ की भी बडी कुशलता के साथ सर्जना की है। उनकी पार्श्वकथा और सभी अवान्तर कथाएँ उस मुख्य कथा की निस्सन्देह सहायक किंवा उपकारक कथाएँ हैं।

जिस प्रकार छोटी-छोटी नदियाँ कभी मिल-जुल कर, तो कभी स्वतन्त्र रूप से किसी महानदी मे मिलकर उसे सागर तक वहने की शक्ति प्रदान करती है, ठीक उसी प्रकार 'तिलकमञ्जरी' की छोटी-छोटी सहायक कथाएँ भी कभी मिल-जुलकर, तो कभी स्वतन्त्र रूप से मुख्य कथा को चरम विन्दु तक पहुँचाने का रोचक प्रयास करती हैं। मुख्य कथा की प्रगति के अनुकूल सहायक कथाओ का यह प्रयास एक महान् उपकार ही है। इससे मुख्य कथा की परते खुलती जाती है, और वह प्रकाश मे आती जाती है। इसीलिए सहायक कथाओ को 'उपकारक कथा' और मुख्य कथा को 'उपकार्य कथा' कहना सर्वथा उचित है।

इस प्रसग मे मुझे यह भी कहना है कि तिलकमञ्जरी की सहायक कथाओ मे भी आपस मे उपकार्य-उपकारक भाव पाया जाता है। इसका मुख्य कारण यह है कि कोई भी कथा अपने आप मे पूरी नही कही जा सकी है। कहने वाले ने उसके किसी न किसी रहस्य

को अनकहा ही छोड दिया है। उसके इस 'अनकहे' और जिज्ञासाजनक अंश को किसी दूसरी सहायक कथा के द्वारा ही खोला गया है। धनपाल ने यह सब बडी सूझबूझ के साथ जानबूझकर किया है। क्योकि इसमे पाठक के मन मे कथानक को जानने के लिए उत्तरोत्तर उत्कण्ठा बढती ही रहती है। अब मैं तिलकमञ्जरी की कतिपय उपकार्य एवं उपकारक कथाओ का एक सारगर्भित विश्लेषण प्रस्तुत कर रहा हूँ।

आप देखेगे कि आरम्भ मे ज्वलनप्रभ की मेघवाहन मे एक मन्दिर मे अकस्मात् मुलाकात होती है, वह उनके श्रुतिगोचर एव दृष्टिगोचर व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उन्हे अपने दोस्त सुमाली के आने वाले बुरे दिनो की खबर सुनाता है; तथा एक हार सौंपकर हमेशा के लिए गायब हो जाता है। इसमे कोई सन्देह नही है कि ज्वलनप्रभ का यह सक्षिप्त वृत्तान्त ही सम्पूर्ण उपन्यासरूपी भव्य भवन की आधारशिला है। धनपाल ने इसे हरिवाहन और तिलकमञ्जरी की प्रणयकथा की पृष्ठभूमि के रूप मे चित्रित किया है। हालाँकि शुरू-शुरू मे पाठको को यह नितात महत्त्वहीन नही, बल्कि अनावश्यक भी प्रतीत होता है। क्योकि इस वृत्तान्त को मेघवाहन की तपस्या तथा वरप्राप्ति से कोई सीधा सम्बन्ध नजर नही आता। लेकिन इस वृत्तान्त से सम्बन्धित रहस्य, महत्त्व एव उपयोगिता का पता तब चलता है जब विद्याधर मुनि अपने आश्रम में आई हुई तिलकमञ्जरी और मलयसुन्दरी को उनके प्रेमी पतियो के पूर्वजन्म और वर्तमान जन्म की कथा सुनाते हैं। उस समय पाठक को जब यह मालूम होता है कि हरिवाहन ही ज्वलनप्रभ है और तिलकमञ्जरी ही उसकी पत्नी प्रियगुसुन्दरी है तो उसकी अँगुली दाँतो तले पहुँच जाती है। फिर उसे ज्वलनप्रभ के उस सक्षिप्त वृत्तान्त की पूर्ण उपादेयता विदित हो जाती है। इस प्रकार यहाँ हम देखते हैं कि आरम्भ मे हम ज्वलनप्रभ के जिस सक्षिप्त वृत्तान्त की उपयोगिता को नही समझ सके थे, उसे विद्याधर मुनि द्वारा कही गई कथा ने पूरी तरह स्पष्ट कर दिया है।

अब आईए विजयवेग की कथा पर। उसने भी मेघवाहन को वज्रायुध की विजय यात्रा का जो समाचार दिया है उसकी पूर्ण एव वास्तविक अभिव्यक्ति के लिए पाठक को मलयसुन्दरी की आत्मकथा का उपकार मानना ही पडता है। क्योकि विजयवेग स्वामिभक्त होने के कारण अपने समीपस्थ (इमीडिएट बॉस) वज्रायुध की उस दर्पपूर्ण, अनधिकार और निर्मम मनोवृत्ति को बडे कौशल के साथ छिपा गया था जिसके कारण राजकुमारी मलयसुन्दरी की जिन्दगी तबाह हुई थी और उसे महल छोडकर जंगल की खाक छाननी पडी थी। मलयसुन्दरी ने हरिवाहन को जो आत्मकथा सुनाई है उसी के आधार पर वज्रायुध के चरित्र की पोल भी खुल सकी है, नही तो वह पाठको की दृष्टि मे एक स्वामिभक्त और अजय्य सेनापति ही बना रहता। मलयसुन्दरी की यह आत्मकथा केवल वज्रायुध की ही असलियत नही खोलती, बल्कि समरकेतु की उस आत्मकथा को भी पूरा करती हे जो बीच मे तिलकमञ्जरी के चित्र के उपस्थित हो जाने के कारण अधूरी ही रह गई थी। आपको याद होगा कि जिस समय समरकेतु हरिवाहन को अपनी प्रेमकथा सुना रहा था और सभी मन्त्रमुग्ध की भाँति कान लगाए सुन रहे थे, उसी समय अचानक ही गन्धर्वक वहाँ आ पहुँचा था, और उसने अपने आने के पहिले बडे

नाटकीय ढँग से तिलकमञ्जरी का चित्र हरिवाहन के सामने प्रस्तुत कर दिया था, जिसे देखते ही हरिवाहन उसकी रूपमाधुरी पर ऐसा मुग्ध हो गया था कि फिर उसे समरकेतु की असफल प्रेमकथा को सुनने की याद ही नही रही थी, और इस प्रकार समरकेतु की वह दर्दीली कहानी अधूरी ही रह गई थी। यह ठीक है कि पाठक का मन तिलकमञ्जरी के आकर्षण से अभिभूत हरिवाहन की चित्तवृत्ति के साथ-साथ चल पडता है। किन्तु समरकेतु की दास्तान को पूरी तौर से जानने की उत्कण्ठा उसे बनी ही रहती है। जब वह मलयसुन्दरी की आत्मकथा को पढता है और उसकी शृखला को समरकेतु की आत्मकथा से जुडता हुआ पाता है, तो उसे बडी राहत मिलती है। यहाँ यह कहना असगत नही होगा कि यदि मलयसुन्दरी हरिवाहन को आप-बीती नही सुनाती तो समरकेतु की न केवल प्रणयकथा की ही, अपितु उसकी उदात्तवृत्ति की भी वास्तविकता अप्रकट ही रहती। इस प्रकार मलयसुन्दरी की आत्मकथा ने समरकेतु की आत्मकथा को पूर्णाभिव्यक्ति देकर उसका पर्याप्त उपकार किया है। लेकिन इसका मतलब यह नही समझ लेना चाहिए कि मलयसुन्दरी की आत्मकथा अपने आप मे पूर्ण रूप से निराकाक्ष है। जरा ध्यान दीजिए, जब मलयसुन्दरी वज्रायुध के भय से प्रशान्तवैर नामक आश्रम मे अपनी धात्री तरगलेखा के साथ अपने दिन बिता रही थी, तभी किसी पथिक के मुँह से उसने सुना था कि वज्रायुध ने समरकेतु को युद्धभूमि मे सुला दिया है। सुनते ही वह अपने प्रियतम की मृत्यु की कल्पना से बेहोश होकर गिर गई थी और जब होश आया तो समुद्र मे डूब मरने को भाग खडी हुई थी। किन्तु पीछे से तरगलेखा को आते देखकर समुद्र मे तो नही कूद सकी थी, पर मरने के ही उद्देश्य से विषवृक्ष के जहरीले फल को खाकर बेहोश हो गई थी। यहाँ तक की कहानी बिलकुल स्पष्ट है, किन्तु उसने हरिवाहन को बताया कि—जब मुझे होश आया तो मैं लकडी के बने हुए भवन मे कमल के पत्तो पर लेटी थी, चादर ओढे थी; मेरे ऊपर पानी का हल्का-हल्का फव्वारा छूट रहा था, और मैंने उठकर जो देखा तो वह काष्ठभवन इसी अदृष्टपार सरोवर मे उतर रहा था, आश्रम और तरगलेखा का दूर-दूर तक नामोनिशाँ भी न था। मलयसुन्दरी की आत्मकथा के इस अश को सुनकर पाठक के मन मे यह उत्कण्ठा बलवती हो जाती है कि आश्रम से यहाँ तक वह कैसे पहुँची ? वह तो वहाँ बेहोश पड़ी थी; उसे यहाँ कौन लाय ? कैसे लाया ? और तरगलेखा कहाँ गई ? आदि-आदि। पर इन उत्कण्ठाओ की शान्ति के लिए धनपाल ने गन्धर्वक की आत्मकथा की सर्जना की है।

लक्ष्मी जी के दिव्य वस्त्र के स्पर्श से तोते की योनि से मुक्त होकर गन्धर्वक जब हरिवाहन को आपबीती सुनाता है तो मलयसुन्दरी की आत्मकथा के उस छूटे हुए अश की पूर्ति भलीभाँति हो जाती है। इस प्रकार गन्धर्वक के वृत्तान्त को मलयसुन्दरी की आत्मकथा का उपकारक मान सकते है। इतना ही नही, बल्कि गन्धर्वक के ही वृत्तान्त मे इस तथ्य का भी उद्घाटन होता है कि हरिवाहन को अपनी पीठ पर बैठाकर और उडाकर अदृष्टपार सरोवर मे गिराने वाला हाथी, गन्धर्वक का साथी चित्रमाय ही था, जिसने कुमार के हाथी का रूप धारण करके उनका हरण कर लिया था। तभी तो तीन दिन की तलाश के बाद कुमार का हाथी, जो वास्तव मे बन्धन तोडकर छावनी से निकल

पडा था, मिल गया था किन्तु कुमार हरिवाहन नही मिल सके थे। पाठको को याद होगा कि मलयसुन्दरी और तिलकमञ्जरी से मिलने के बाद शुक रूप मे गन्धर्वक के द्वारा लाए गए छावनी के समाचार को पाकर हरिवाहन समरकेतु से मिलने के लिए उत्सुक हुए थे तो तिलकमञ्जरी ने उन्हे विमान द्वारा चित्रमाय के साथ भेजा था। किन्तु जब अपनी छावनी के निकट पहुँचे थे तो उन्हे अपना वही हाथी दिखाई दे गया था, जो उनकी दृष्टि मे उन्हे उडा ले गया था और अदृष्टपार सरोवर मे गिरकर अपनी जान गँवा बैठा था। उसे वहाँ सकुशल देखकर जब वह विस्मित हुए थे और उसके विषय मे चित्रमाय को बताने लगे थे तो चित्रमाय ने भी इस तथ्य की ओर एक हल्का-सा सकेत किया था कि उन्हे उनका वह हाथी नही, बल्कि कोई (जो वह स्वय था) और ही गगन-विहारी उडा ले गया होगा। इसी प्रकार मलयसुन्दरी के वियोग मे समरकेतु मरने के लिए छलाँग तो समुद्र मे लगाता है पर जब उसकी आँख खुलती है तो अपने आपको अपनी छावनी के पास नाव पर सकुशल देखता है। यह सब कैसे हुआ ? इस प्रश्न का समाधान गन्धर्वक और महोदर के सवाद से होता है। उसकी बात से ही पता लगता है कि न केवल समरकेतु के प्राणो की ही, बल्कि समरकेतु को आत्महत्या हेतु गिरा देखकर पीछे से मन्दिर प्रासाद से समुद्र मे कूद पडने वाली मलयसुन्दरी के भी प्राणो की रक्षा करने वाला वही महोदर नामक यक्ष था। इधर सुवेलगिरि पर निवास करने वाले विचित्रवीर्य की जिन गतिविधियो पर थोडा गन्धर्वक ने और थोडा मलयसुन्दरी ने प्रकाश डाला था, उनकी पूर्णता हेतु अन्त मे विचित्रवीर्य के कल्याण नामक प्रियसेवक और हरिवाहन के सवाद को प्रस्तुत करके धनपाल ने अपनी घटनाओ की सयोजना करने की जिस-जिस निपुणता का परिचय दिया है, वह प्रशसनीय है।

इसी प्रकार अनङ्गरति नामक विद्याधर कुमार की कथा भी दो महान् उद्देश्यो को पूरा करती है—एक तो तिलकमञ्जरी के वियोग मे पहाड से गिरकर मरने के लिए कटिबद्ध होकर निकले हुए हरिवाहन के प्राणो की रक्षा, और दूसरे उन्हे तिलकमञ्जरी के पति बनने की जातिगत योग्यता दिलाने वाली 'विद्याधर चक्रवर्त्ती' की पदवी की प्राप्ति। यदि इस मौके पर, जब हरिवाहन आत्महत्या करने के लिए निकल पडे थे, अनङ्गरति नही मिलता तो निश्चय ही तिलकमञ्जरी और हरिवाहन की प्रेम कहानी का अन्त बडा ही दु खद होता। पर अनङ्गरति की कथा ने इस स्थल पर मुख्य कथा को बडी खूबी के साथ दु खान्त होने से बाल-बाल बचा लिया है। इस प्रकार समीक्षा करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि धनपाल ने 'तिलकमञ्जरी' मे सहायक कथाओ का कुछ ऐसा समानुपातिक ताना-बाना डाला है कि उनकी सबकी सयोजना से सघटित हुई एक अतीव सुन्दर और सामान्यलोकोत्तर प्रणयकथा सुबुद्ध पाठको के मानस को तरगित कर ही जाती है।

लेकिन जहाँ मैं यह देखता हूँ कि 'तिलकमञ्जरी' की मुख्य कथा और सहायक कथाओ मे आपस मे उच्च कोटि का उपकार्य-उपकारक भाव है, वही मुझे एक कथा ऐसी भी मिलती है, जिसका कथानक से कोई सम्बन्ध नही है। वह कथा है नाविक युवा तारक की प्रणय कथा। धनपाल ने समरकेतु के नौसेनाध्यक्ष यक्षपालित के मुँह से यह कथा

कहलवाई है। मै समझता हूँ कि इस कथा से मुख्य कथा मे जरा भी गति नहीं मिलती है। यदि इसे हटाकर तारक का परिचय सक्षेप में ही दे दिया जाता तो भी कथानक की सघटना मे कोई कमी नहीं आती। शुभ और निश्चित ब्राह्ममुहूर्त्त मे यात्रा के लिए सन्नद्ध समरकेतु को तारक की लम्वी प्रणय कथा सुनाना, मुझे तो समयोचित भी प्रतीत नही होता। हाँ, यदि राह चलते-चलते सुनाई जाती तो शायद मनोरजन की दृष्टि से क्षम्य भी हो जाती। लेकिन सम्भव है कि धनपाल तारक की प्रणय कथा के माध्यम से तात्कालिक जातिवाद की स्थिति पर प्रकाश डालना चाहते हो, और उस प्रेम की विजय दिखाना चाहते हो, और इसीलिए उन्होने कथानक के अनुपकारक होने के बावजूद भी तारक की कथा की सर्जना कर डाली हो। यदि ऐसा है तो आज इस महान् सन्देश के लिए उनकी भूल को वडी खुशी के साथ नज़र-अन्दाज भी किया जा सकता है।

तिलकमञ्जरी के कथानक की विशेषताएँ

विशेषताओ की दृष्टि से 'तिलकमञ्जरी' का कथानक अपने ढग का निराला ही है। धनपाल ने सस्कृत के कथासाहित्य की जिस सुनहली विरासत को प्राप्त किया था उसे उन्होने अपने ढग से विकसित किया है। वह दण्डी, सुबन्धु और बाण की उपेक्षा न करते हुए भी कथाकारो मे अपनी मौलिक मनीषा की अमिट छाप छोड गये है। तिलकमञ्जरी के कथानक की सर्जना करने मे उनकी प्रतिभा विशेष रूप से दर्शनीय है। निस्सन्देह उनकी कल्पना शक्ति वेजोड है। उन्होने साहित्यिक प्रतिमानो के साथ-साथ सामाजिक प्रतिमानो का भी ध्यान रक्खा है। फलस्वरूप उनकी कृति पाठको के हृदय-पटल पर सुचारु रूप से प्रतिबिम्बित हो उठती है। पाठको की मनोवृत्ति से धनपाल भलीभाँति परिचित थे। अत उन्होने अपनी 'तिलकमञ्जरी' के कथानक मे उन सभी विशेपताओ का समावेश किया है जो एक 'साहित्यिक-उपन्याम' के कथानक मे अपेक्षित होती है। उनकी इस रचना का अनुशीलन करने के पश्चात् मैं इस निष्कर्प पर पहुँचा हूँ कि वह पुरानी बात को नये और रोचक ढग से कहने मे काफी कुशल है। अपनी मौलिकता की आग से उन्होने पुरातन पद्धति पर ही आधारित तिलकमञ्जरी के कथानक मे मार्मिकता एव सवेदना का रस-परिपाक करके पाठको के हाथो मे पुरानी बोतल मे नई शराब थमा दी है।

हम देखते है कि 'तिलकमञ्जरी' के कथानक मे विपय की रोचकता, कल्पना की उडान, घटनाओ की अप्रत्याशित सङ्घटना और उनका चढाव-उतार, अवान्तर कथाओ की अनुकूल सयोजना, वर्णनो की सजीवता, पात्रो की सवेदनशीलता, जिज्ञासा की अविरलता, मनोभावो की गतिशीलता आदि आधारभूत औपन्यासिक विशेषताएँ भरी पडी है। इसी अध्याय के पथम सोपान मे 'कथानक' की जिन सामान्य विशेषताओ का मैंने विश्लेषण किया है, वे सभी 'तिलकमञ्जरी' के कथानक मे पाई जाती है। फलस्वरूप वह निहायत ही आकर्षक और रोचक हो गया है। सस्कृत भाषा के प्रबुद्ध एव सहृदय पाठक को 'तिलकमञ्जरी' पढ़ते समय मानस मे मधुर स्पन्दन की एक निरन्तर अनुभूति होती रहती है। अपने कथ्य को धनपाल ने ऐसी खूबी के साथ प्रस्तुत किया है कि पाठक

अपनी सुध-बुध भूल जाता है, और उसका मन, वायु के मन्द-मन्द झोको के साथ सौरभ की भाँति, कथावस्तु के साथ-साथ घूमने लगता है। उन्होने अपनी कल्पना को किसी प्रदेश विशेष तक ही सीमित नही रखा है, बल्कि उसे उत्तर भारत की पर्वतमालाओ से लेकर दक्षिण मे समुद्र की उत्ताल तरगमालाओ तक निर्द्वन्द्व विहार करने दिया है। वह कभी धरती पर रहती है तो कभी आकाश मे मुक्त उडाने भरती है। उनकी उदात्त कल्पना के तानो और बानो से बुनी हुई 'तिलकमञ्जरी' की यह कथा पाठको के हृदय-पटल पर ऐसा कोमल और झीना आवरण डाल देती है कि वह क्षणभर के लिए भूलोक से उठकर विद्याधर लोक मे काल्पनिक रूप से विचरण करने लगता है; और उसकी मानसिक सवेदनाओ मे कोमलता का सचार हो जाता है, जो साहित्यकार की सर्जना की प्रमुख विशेषता एव सफलता का ज्वलन्त प्रतीक है।

तिलकमञ्जरी के कथानक का आधार

इस सन्दर्भ मे सस्कृतवाड्मय के प्राय सभी इतिहास लेखको की केवल यही धारणा पढने को मिलती है कि धनपाल ने अपनी 'तिलकमञ्जरी' कथा की सर्जना बाणभट्ट की 'कादम्बरी कथा' की इन्द्रधनुपी चमक-दमक के परिवेश मे रहकर की है।[१५] कुछ महानुभाव तो 'कादम्बरी' के नशे मे आकर 'तिलकमञ्जरी' की खुशबू को बिल्कुल नजर-अन्दाज ही कर गए है।[१६] पर गहरी सचाई का रुख जिधर है, उधर किसी ने ध्यान ही नही दिया है।

धनपाल का कहना है कि उन्होने अपने आश्रयदाता परमविद्वान् राजा भोज की, जैनागम मे कही गई कथाओ को सुनने की, इच्छा को पूरा करने के लिए इस आश्चर्य-जनक एव सरस कथा की सर्जना की है।[१७] उनकी इस उक्ति पर ध्यान देते ही यह स्पष्ट होने लगता है कि इस 'तिलकमञ्जरी' के कथानक का आधार जैनधर्म के आगमग्रन्थो मे होना चाहिए।

आचार्य दामनन्दिविरचित 'पुराणसार-सग्रह' के स्वाध्याय से मेरी यह उक्ति और भी अधिक पुष्ट होगी। दामनन्दी ने आदिनाथ के चरित्र-वर्णन के प्रसग मे ललिताग नामक देव और स्वयम्प्रभा नामक देवी के दाम्पत्य-जीवन की जो कथा लिखी है वह धनपाल की 'तिलकमञ्जरी कथा' मे वर्णित ज्वलनप्रभ नामक वैमानिक और प्रियगु-सुन्दरी नामक देवी के दाम्पत्य-जीवन से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। जरा ध्यान दीजिए, दामनन्दी का आशय है कि ललिताग स्वर्ग-सुख के क्षीण होने पर स्वर्ग से च्युत होता है। च्युत होने के पूर्व वह जिनेन्द्रो की पूजा करता है। उधर उसकी पत्नी स्वयम्प्रभा भी छ माह तक जिनेन्द्रो की पूजा करके स्वर्ग से च्युत होकर चक्रवर्ती सम्राट् वज्रदन्त की पुत्री बनकर जन्म लेती है। उसका नाम श्रीमती है। ललिताग भी दूसरे जन्म मे राजा वज्रबाहु का पुत्र बनकर पैदा होता है और उसका नाम वज्रजङ्घ है। इन दोनो की प्रेमवल्लरी एक-दूसरे को देख-सुनकर पुन हरी-भरी हो जाती है और ये दाम्पत्य-सूत्र मे फिर से बँध जाते है।[१८]

इस उपाख्यान से यह स्पष्ट है कि धनपाल की 'तिलकमञ्जरी कथा' का कथानक

जैनागम पर आधारित है, न कि बाणभट्ट की 'कादम्बरी कथा' पर, अथवा बृहत्कथा के 'मकरन्दिकोपाख्यान' पर। हाँ, इतना अवश्य है कि इसमे एक राजकुमारी और एक राजकुमार के स्थान पर दो राजकुमारियो और दो राजकुमारो की प्रणयकथा को प्रस्तुत करने की धनपाल की जो परिकल्पना है उसका आधार 'कादम्बरी कथा' तथा बृहत्कथा के 'मकरन्दिकोपाख्यान' को ही मानना पड़ेगा। साथ ही साथ उनकी इस द्विमुखी प्रणय-कथा को प्रस्तुत करने की जो साहित्यिक कला है उसका आधार, प्रमुख रूप से, 'कादम्बरी कथा' ही मानी जाएगी, इसमे दो मत नही हो सकते। क्योकि उन्हे बाणभट्ट के यश ने काफी प्रभावित भी किया था,[19] और वह गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' के मौलिक महत्त्व को भी भलीभाँति समझते थे।[20]

तिलकमञ्जरी के कथानक मे मौलिकता

यहाँ मुझे बडे खेद के साथ लिखना पड रहा है कि जिन महानुभावो को धनपाल की 'तिलकमञ्जरी कथा' के विषय मे यह भी ठीक से मालूम नही है कि इस कथाकाव्य (उपन्यास) का नायक कौन है? और नायिका कौन है? एव इसमे किसका किसके साथ प्रेम वर्णित किया गया है? ऐसे लोग भी बडे अधिकार के साथ इस प्रकार का आशय प्रकट करने मे जरा भी नही सकुचाये हैं कि धनपाल की 'तिलकमञ्जरी' तो बाणभट्ट की 'कादम्बरी' की एक नकल मात्र है।[21]

मुझे तो लगता है कि इन लोगो ने 'तिलकमञ्जरी कथा' के पन्ने पलटना तो दूर रहा, शायद दर्शन भी नही किये होगे। क्योकि तभी तो इन सभी ने तिलकमञ्जरी के साथ समरकेतु के प्रणय प्रसग बताने की भयकर भूल की है। यह भूल ठीक उतनी ही भयकर एव अक्षम्य है जितनी कि तुलसी के 'रामचरितमानस' मे सीता के साथ लक्ष्मण के प्रणय प्रसग की बात लिखने मे मानी जा सकती है। वास्तव मे 'तिलकमञ्जरी कथा' मे तिलकमञ्जरी नायिका है, जिसका प्रेम हरिवाहन से है, जो इस कथा का नायक है, न कि समरकेतु से। क्योकि समरकेतु, जो इस कथा का पताका-नायक (साइड हीरो) है, का प्रेम तो मलयसुन्दरी से है, जो इस उपन्यास की पताका-नायिका (साइड होरोइन) है।

अब विचारणीय यह है कि 'तिलकमञ्जरी कथा' को बिना देखे और बिना पढे उसकी आलोचना करने वाले इन विद्वानो को उसके गुण-दोषो के विषय मे जो भ्रामक धारणाएँ है, वे क्या आँख बन्द करके ('बाबा-वाक्य प्रमाणम्' के अनुसार) मान ली जाएँ, या फिर उन पर निष्पक्ष होकर विचार कर लिया जाये। मैं तो समझता हूँ कि धनपाल को अन्याय से बचाने के लिए विचार कर लेना ही नितान्त आवश्यक है।

हाँ तो, धनपाल शैली के लिए बाणभट्ट के ऋणी माने जा सकते है, लेकिन कथानक के लिए नही। क्योकि उनका कथानक जैनधर्म की आगम कथाओ का ही सुव्यवस्थित, सरस एव साहित्यिक प्रारूप है, जिसे उनकी मौलिक प्रतिभा ने बडे ही रोचक ढग से सँजोया और सँवारा है। फलस्वरूप यह तो उनकी नितान्त निजी काव्य-सम्पदा बन चुका है। इस पर बाण आदि किसी का भी हक नही पहुँचता है। भला किसी

दूसरे व्यक्ति के प्याले को साफ-सुथरा देखकर उसमे पी लेने भर से क्या मदिरा ही उसकी मान ली जाती है ? नही, ऐसा हर्गिज नही माना जाता । बस, धनपाल ने भी तो कुछ ऐसा ही किया है । उन्होने अपनी मौलिक एव काल्पनिक 'कथावस्तु' रूपी मदिरा को यदि बाणभट्ट की शैली रूपी स्वच्छ और रगीन बोतल मे भर दिया है, तो क्या इतनी-सी बात पर ही उनकी कथासर्जनशीलता की मौलिकता का गला घोट दिया जाए ? मै तो कहूँगा कि हर्गिज नही, और यदि ऐसा किया जाता है, तो फिर केवल धनपाल की ही नही, और भी बडे-बडे साहित्यकारो की मौलिकता खतरे मे पड़ जाएगी; स्वय बाणभट्ट की भी, जिसे कोई भी विकासवादी समालोचक स्वीकार नही कर सकता । इसलिए मेरी समझ से तो बाणभट्ट की शैली का 'आदान' करने मात्र से धनपाल की मौलिकता पर कुठाराघात नही करना चाहिए । क्योकि साहित्यकारो मे परस्पर थोडा-बहुत 'साहित्यिक आदान-प्रदान' हुआ ही करता है । इस 'आदान-प्रदान' के विषय पर हम अपने इस 'शोध-प्रबन्ध' के सातवें अध्याय मे विस्तार से विचार करेंगे ।

यदि गौर से देखा जाए तो 'तिलकमञ्जरी कथा' मे आकाशमार्ग से उड़कर आते हुए विद्याधर मुनि का राजप्रासाद पर अपनी पत्नी मदिरावती के साथ बैठे हुए सम्राट् मेघवाहन के पास अकस्मात् आ पहुँचना और सन्तान प्राप्ति के लिए सम्राट् को मन्त्रोपदेश करना, ज्वलनप्रभ की मेघवाहन से भेट होना और उन्हे हार सौपना, लक्ष्मी द्वारा मेघवाहन को अँगूठी देना, घुणाक्षरन्याय से सिहलद्वीप के राजकुमार समरकेतु का सम्राट् मेघवाहन की छत्रच्छाया मे पुत्रवत् पहुँचना और हरिवाहन का जिगरी दोस्त बनना; एक मार्मिक प्रसग की चर्चा मे हरिवाहन के आग्रह करने पर समरकेतु द्वारा अपनी अधूरी प्रेमकहानी कहना, गन्धर्वक द्वारा तिलकमञ्जरी का चित्र दिखाकर हरिवाहन को उसके प्रति आकर्षित करना, गजरूपधारी चित्रमाय नामक विद्याधर द्वारा हरिवाहन को अपहृत करके वैताढ्य पर्वत पर पहुँचना, हरिवाहन का एक तोते द्वारा अपनी छावनी के लिए कुशल समाचार भेजना, उसकी खोज मे समरकेतु का छ' महीने तक जगल मे भटकते रहना, विचित्रवीर्य के सेवक द्वारा मलयसुन्दरी का रात मे सोते समय अपहरण होना और पुन उसी रात सुबह होते-होते सोने की अवस्था मे वापिस चारपाई पर पहुँच जाना, अपने स्वप्न-प्रेमी समरकेतु की याद मे वज्रायुध को ठुकराकर मलयसुन्दरी का आत्महत्या का प्रयास करना, वहाँ अचानक ही पहुँचे हुए समरकेतु द्वारा रक्षा पाना, पुन. वज्रायुध के भय से पिता (काची नरेश) द्वारा मलयसुन्दरी को रातो-रात एक आश्रम मे पहुँचवाना, वहाँ से गन्धर्वक द्वारा उसे बेहोशी की हालत मे वैताढ्य पर्वत की ओर लाना, हरिवाहन द्वारा उपहार मे भेजे हुए हार और अँगूठी को देखकर क्रमश तिलकमञ्जरी और मलयसुन्दरी को अपने-अपने पूर्वजन्म की याद आ जाना और वर्तमान जन्म के अपने-अपने प्रेमियो (हरिवाहन और समरकेतु) की उपेक्षा करके पूर्वजन्म के अपने-अपने प्रेमियो (ज्वलनप्रभ और सुमाली) की खोज मे निकल पडना, अपनी प्रेयसी से उपेक्षा पाकर हरिवाहन का आत्महत्या करने का प्रयास करना, लेकिन इसी बीच परोपकार की भावना से अनगरति नामक एक विद्याधर कुमार के लिए मन्त्रसिद्धि करना और उसमे सफल होकर विद्याधरो के चक्रवर्ती पद को पा लेना, पुन अकस्मात् आए हुए गन्धर्वक के साथ

हुई वातचीत के सिलसिले मे अपने और तिलकमञ्जरी के, तथा समरकेतु और मलयसुन्दरी के पूर्वजन्म के सम्वन्धो को सुनकर तुरन्त ही तिलकमञ्जरी के पास पहुँचना; इसी वीच खोजते-खोजते समरकेतु का भी वहाँ पहुँच जाना आदि कुछ ऐसी घटनाएँ उपलब्ध होती है, जिनका 'कादम्बरी कथा' मे वर्णन तो दूर रहा, कही संकेत मात्र भी नही पाया जाता। वास्तव मे धनपाल की 'तिलकमञ्जरी कथा' के कथानक रूपी राजपथ के ये कुछ ऐसे सुहावने मोड है, जो उस समय तक के दूसरे किसी भी काव्यग्रन्थ मे नही पाये जा सकते। इसमे घटनाओ का जाल जिस तरह से फैलाया और समेटा गया है, वह अपने आप मे विल्कुल अनूठा ही है।

मुझे वडा ताज्जुब है कि इतनी मौलिकता के होने के बावजूद भी प्रो० एस० के० डे ने धनपाल को वाणभट्ट का अनुकरणकर्त्तामात्र कह डाला।[२२] स्मरण रहे कि यह डे महोदय भी उन्ही महानुभावो मे से एक है, जिन्हे 'तिलकमञ्जरी कथा' के नायक और नायिका के नामो की भी सही जानकरी नही है।

सचाई को निर्भीकता के साथ सामने रखकर अव मुझे विश्वास है कि कोई भी प्रवुद्ध पाठक तिलकमञ्जरीकार धनपाल की प्रतिभा की मौलिकता का बिना सोचे-समझे गला घोटने का दुस्साहस करने वाले सस्कृत-साहित्य के कतिपय इतिहासकारो की भ्रामक धारणाओ पर अन्धा-धुन्ध विश्वास करने की भूल नही करेगा, और ना-ही अब 'तिलकमञ्जरी कथा' के कथानक की मौलिकता को स्वीकार करने मे हिचकिचायेगा।

तिलकमञ्जरी के कथानक मे आध्यात्मिक रहस्य

धनपाल की 'तिलकमञ्जरी कथा' के कथानक मे रसिक पाठक के हृदय को रमाने के लिए रोमास की रमणीयता के साथ ही साथ दार्शनिक के तर्कशील मस्तिष्क को तरल वनाने के लिए अध्यात्मवाद का मन्द-मन्द बहता हुआ एक मौन स्रोत भी उपलब्ध होता है। देखा जाता है कि यह कथा नायक और नायिका के वर्तमान जन्म तक ही सीमित नही रही है, यह तो उनके अतीत जीवन की घटनाओ को भी अपने मे समेटे हुए है।

वास्तव मे आध्यात्मिक दृष्टि से देखा जाए तो कह सकते हैं कि अतीत के जीवन मे इनका जो वियोग हुआ है, वह सही मायने मे सृष्टिकाल मे होने वाले जीवात्मा और परमात्मा के वियोग का प्रतीक ही प्रतीत होता है। यहाँ हम तिलकमञ्जरी को परमात्मा का और हरिवाहन को जीवात्मा का प्रतीक मान सकते है। साधारणतया परमात्मा से विछुडे हुए जीवात्मा को उससे मिलाने का कार्य तत्त्वद्रष्टा गुरु ही करता है, और निर्मल तथा शुद्धसत्त्वसम्पन्न वुद्धि ही इस भवाटवी मे भटकते हुए उस जीवात्मा को परमात्मा के दर्शन करने मे सहायता पहुँचाती हैं। इस दृष्टि से गन्धर्वक को गुरु और मलयसुन्दरी को वुद्धि का प्रतीक मानने मे कोई हर्ज नजर नही आता है। चित्रमाय, जो हाथी का रूप धारण करके हरिवाहन को वैताढ्य पर्वत पर ले गया था, को मन का प्रतीक कह सकते है। क्योकि मन ही जीवात्मा को वन्धन (ससार) या मोक्ष (ईश्वर) की ओर ले जाता है।[२३] इसी प्रकार अदृष्टपारसरोवर भी ज्ञान के समुद्र का प्रतीक है। क्योकि उसमे गोता

लगाने के बाद ही तो हरिवाहनरूपी जीवात्मा को ससार की वास्तविकता का अनुभव हुआ था[२४] तथा वह तिलकमञ्जरीरूपी परमात्मा की एक झलक पा सका था।

कथा के इन्ही प्रमुख बिन्दुओ पर ध्यान देते हुए सक्षेप मे हम कह सकते है कि 'तिलकमञ्जरी कथा' का यह रहस्यात्मक रूप मानव मात्र के आध्यात्मिक जीवन के किसी न किसी कोने मे छिपा हुआ अवश्य ही मिल जाता है।

सन्दर्भ

१ विपदिव विरता विभावरी निरपायमुपास्स्व देवता·।
उदयति भुवनोदयाय ते कुलमिव मण्डलमुष्णदीधिते ॥ —तिलकमञ्जरी, पृ० २८

२. विद्याधर देवजाति के होते है। ये मन्त्रो को सिद्ध करके विशेषशक्तिसम्पन्न हो जाते है। इन्ही मे कुछ वीतराग भी होते है जो उस जाति के मुनि कहलाते है। विद्याधरो की उत्पत्ति का विवरण वह्निपुराण मे बताया गया है।
—शब्दकल्पद्रुम, भाग ४, पृ० ३९२

३. यह पृथ्वी के सात द्वीपो मे से एक है। विष्णुपुराण मे इसकी भौगोलिक सत्ता पर प्रकाश डाला गया है। —वाचस्पत्यम्, भाग ५, पृ० ४३८२

४ यह भी एक द्वीप है। इसकी भी भौगोलिक सत्ता पर विष्णुपुराण मे प्रकाश डाला गया है। —वही, भाग ४, पृ० ३८४३

५ रानियो के घूमने-फिरने का स्थान। —शब्दकल्पद्रुम, भाग ३, पृ० २८४

६. जैन-धर्म मे तीर्थङ्करो की सख्या २४ बताई गई है। ये तीर्थङ्कर ही जैन-धर्म के आराध्यदेवता माने गए है। इनमे प्रथम तीर्थङ्कर का नाम श्रीऋषभनाभ है और अन्तिम का श्रीमहावीर। जैनधर्मावलम्बी भक्तजन इन तीर्थङ्करो को भगवान् की तरह पूजते है।

७ जैन शास्त्रो मे इसकी भी भौगोलिक सत्ता स्वीकार की गई है।
—दे० डॉ॰ प्रेमसागर जैन लिखित 'जैनभक्ति काव्य की पृष्ठभूमि', पृ० १३२-१३५

८. गुरुभिरदत्ता वोढु वाञ्छन् मामक्रमात् त्वमचिरेण।
स्थातासि पत्रपादपगहने तत्रान्तिकस्थाग्नि ॥ —तिलकमञ्जरी, पृ० १०९

९ यह दक्षिणी समुद्र के तट पर माना गया है। इसका प्रचलित नाम त्रिकूटगिरि है।
—शब्दकल्पद्रुम, भाग ५, पृ० ३८७

१०. यह वङ्ग देश के ईशान भाग मे और आसाम प्रदेश के पश्चिम भाग मे बसा हुआ माना गया है। यहाँ 'कामाख्या' देवी की पूजा होती है। —वही, भाग २, पृ० ८९

११ "स्वस्ति, अटव्या महाराजपुत्रहरिवाहन कुशली लौहित्यकूलावासिते विजयिनि निजस्कन्धावारे युवराजसमरकेतु कमलगुप्तपुर सराश्च राजपुत्रान् सप्रसादमादिशति, अत्रैव कतिचिद् दिनानि स्थातव्यम्। ताताम्बयोश्च यथा मदपहारवार्ता श्रुतिपथ नायाति तथा प्रयतितव्यम्।" —तिलकमञ्जरी, पृ० १९३-१९४

१२. यह कामरूप देश का पर्यायवाची है। —शब्दकल्पद्रुम, भाग २, पृ० ८९

१३. यह जैन-धर्म के प्रथम तीर्थङ्कर माने गए है। —लेखक

१४. आश्लिष्य कण्ठममुना मुक्ताहारेण हृदि निविष्टेन।
सरुपेव वारितो मे त्वदुरपरिम्भणारम्भः ॥ —तिलकमञ्जरी, पृ० ३६६

१५. (a) "His romance is styled Tilakamañjarī after the heroine, and it has clearly been his aim to seek to draw as many parallel pictures to those of the Kādambarī in describing this lady's love of Samaraketu. He recognizes his debt, and perhaps that is the best that can be said of him."

—'A History of Sanskrit Literature' by A. B. Keith, p. 331

(b) "The Tilakamañjarī is an elaborate tale of the love & union of Tilakamañjarī & Samaraketu, the heroine being a regular image of Kādambarī, and most of the occasions of note in the story finding a parallel to those in Bāna's romance."

—'History of Sanskrit Literature', by S K. De, p. 431

(c) "It is in close imitation of Bāna's Kādambarī."

—'A History of Sanskrit Literature', by V. Vardachari, p 112

(d) "Tilakamañjarī...is a regular image of Kādambarī and every occasion of note in Kādambarī finds a parallel here. Easy in expression and full of imagination, Dhanapāla was a successful follower of Bāna.

—'The History of Classical Sanskrit Literature', by M. Krishnamachariar, p. 475

(e) "धनपाल की तिलकमञ्जरी पर कादम्बरी का प्रभाव है।"

—'सस्कृत साहित्य की रूपरेखा', लेखक पाण्डे एव व्यास, चतुर्थ सस्करण, पृ० २६१

(f) "......बाणस्य पदव्या पत्तु प्रयतमानेपु पुरस्सर धनपालो मन्तव्य ।......
अन्तरात्मस्वरूपेण शैलीस्वरूपेण च ग्रन्थोऽय कादम्बरीमनुहरति।

—'सस्कृतसाहित्येतिहास', लेखक हसराज अग्रवाल, द्वितीय भाग, पृ० २३-२४

१६. "... ..In spite of considerable literary skill, the work is not impressive even as an imitation, and does not repay the exertion of wading through the tedious length of its brilliant but hardly illuminating magnificence"

—'History of Sanskrit Literature', by S K De. p. 431

१७. "नि शेषवाङ्मयविदोऽपि जिनागमोक्ता श्रोतु कथा: समुपजातकुतूहलस्य।
तस्यावदातचरितस्य विनोदहेतो राज्ञ स्फुटाद्भुतरसा रचिता कथेयम् ॥"

— तिलकमञ्जरी, प्रस्तावना भाग, श्लोक ५०

१८ दे० आचार्यदामनन्दिकृत 'पुराणसार-सङ्ग्रह' (ज्ञानपीठ, काशी प्रकाशन) में 'आदिनाथचरित' का पहला और दूसरा सर्ग।

१९ केवलोऽपि स्फुरन् बाण करोति विमदान् कवीन्।
किं पुन क्लृप्तसन्धानपुलिन्दकृतसन्निधि॰ ॥
कादम्बरीसहोदर्या सुधया वैबुधे हृदि।
हर्षाख्यायिकया ख्यातिं बाणोऽब्धिरिव लब्धवान् ॥

—तिलकमञ्जरी, प्रस्तावना भाग, श्लोक २६-२७

२०. सत्य वृहत्कथाम्भोधेर्बिन्दुमादाय सस्कृताः।
तेनेतरकथाकन्था प्रतिभान्ति तदग्रत ॥ —वही, श्लोक २१

२१ (a) "His romance is styled Tilakamañjarī after the heroine, and it has clearly been his aim to seek to draw as many parallel pictures to those of the Kādambarī in describing this lady's love of Samaraketu He recognizes his debt and perhaps that is the best that can be said of him."

—'A History of Sanskrit Literature', by A. B. Keith, p. 331

(b) "Bāna, however, found an imitator, who could copy most of his hyperbolic mannerisms, but could not reproduce much of his poetic excellences, in the Śvetāmbara Jain Dhanaprl, son of Sarvadeva. who wrote his Tilakamañjarī......the Tilakamañjarī is an eloborate tale of the love and union of Tilakamañjarī & Samaraketu, the heroine being a regular image of Kādambarī and most of the occasions of note in the story finding a parallel to those in Bāna's romance In spite of considerable literary skill, the work is not impressive even as an imitation, and dose not repay the exertion of wading through the tedious length of its brilliant, but hardly illuminating, magnificence"

—'History of Sanskrit Literature', by S K. De, p 430-431

(c) "Tilakamañjarī is an elaborate tale. It describes the love & union of Tilakamañjarī and Samaraketu and is a regular image of Kādambarī and every occasion of note in Kādambarī finds a parallel here. Easy in expresion and full of imagination, Dhanapala was a successful follower of Bāna."

—'History of Classical Sanskrit Literature', by M. Krishnamachariar, p. 475

(d) "The Tilakamañjarī describing the love of a princess, Tilaka-

mañjarī and a prince Samaraketu was written about 973 A. D by Dhanapāla. It is close imitation of Bāṇa's Kādambarī.'' —'A History of Sanskrit Literature', by V. Varadachari, p. 112

(e) "बाणस्य पदव्यां पत्तु प्रयतमानेपु पुरस्सर. धनपालो मन्तव्य, यः (ख्रीष्टस्य दशमशताब्द्याम्) धाराधराधरस्य आश्रये विश्राम्यन् तिलकमञ्जरीम् उद्-ग्रथितवान्। तिलकमञ्जर्यां समरकेतु-तिलकमञ्जर्यो· नायकनायिकयो प्रेम-कथा वर्णिता। अन्तरात्मस्वरूपेण शैलीस्वरूपेण च ग्रन्थोऽय कादम्बरीमनुहरति इति यत् तत्तु ग्रन्थकारेण स्वयं निस्सङ्कोचमङ्गीकृतम्।"

—'संस्कृतसाहित्येतिहास', हसराज अग्रवाल, भाग २, पृ० २३-२४

(f) "धनपाल· धाराधिपतेराश्रये स्थित्वा तिलकमञ्जरी नाम कथाग्रन्थ प्रणीतवान् यत्र समरकेतुतिलकमञ्जर्यो प्रणयकथा वर्णिता।······धनपाल स्वयमेव बाणकृति स्वकृतेरुत्तमर्णतया स्तुतवान्।"

— रामचन्द्रमिश्र, सस्कृतसाहित्येतिहास, पृ० १६६

२२. 'हिस्ट्री ऑफ सस्कृत लिटरेचर', पृ० ४३०-४३१

२३. 'मन एव मनुष्याणा कारण बन्ध-मोक्षयो·।' —आप्तवचन

२४. 'तिलकमञ्जरी', पृ० २४३-२४४

३

पात्रों का वर्गीकरण

प्रथम सोपान

कथाकाव्य (उपन्यास) मे पात्रो का महत्त्व

कथाकाव्य मे कथानक के पश्चात् 'पात्र' ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व माना गया है। क्योकि कथावस्तु की गतिशीलता पात्रो पर ही निर्भर रहती है। इसलिए यदि हम उपन्यास के कथानक को ढाँचा और पात्रो को उसका प्राणतत्त्व भी कहे तो भी कोई अत्युक्ति नही समझी जाएगी। ब्रह्मा की सृष्टि मे जो महत्त्व प्राणियो का है कथाकार के कथाकाव्य मे वही महत्त्व पात्रो का है। क्योकि यदि प्राणियो के विना यह संसार नही बन सकता तो पात्रो के अभाव मे उपन्यास भी नही बन सकता। इसलिए साहित्यकार को ब्रह्मा और उसकी कृति को उसकी सृष्टि माना गया है।[1] इतना ही नही, बल्कि सेना मे सैनिको का, उपवन मे वृक्षो का, पुस्तक मे पृष्ठो का, वाक्य मे शब्दो का, फूलो मे पखुडियो का, मशीन मे पुर्जो का और विद्यालय मे छात्रो का जो महत्त्व होता है वही हमे उपन्यास मे पात्रो का भी मानना पडेगा। कभी-कभी तो उपन्यास मे पात्रो का प्रभाव इतना बढ जाता है कि पाठक के मन मे कथानक की अपेक्षा किसी पात्र-विशेष के ही सुख-दु ख की चिन्ता छा जाती है। उस समय उसे यह उत्सुकता नही होती कि आगे क्या होने को है? वह तो बस इसी फिक्र मे रह जाता है कि अमुक पात्र का क्या होगा? उस समय उपन्यासकार भी पाठको की उत्सुकता के साथ ही साथ बुद्धि और कल्पना-शक्ति को भी स्फूर्ति प्रदान करने लगता है।[2]

वास्तव मे देखा जाए तो, उपन्यासकार करता क्या है? वह मानवीय प्रवृत्तियो के विभिन्न पहलुओ की पर्ते ही तो खोलता है। मानव मे भिन्न-भिन्न चरित्रो का जीता-जागता और बोलता हुआ चित्र उपस्थित करते हुए जीवन पर प्रकाश डालना और रहस्यो का उद्घाटन करना ही तो उसका मुख्य लक्ष्य होता है। इसी लक्ष्य के लिए जहाँ वह एक ओर कथानक की सर्जना करता है वहाँ दूसरी ओर वह पात्रो को भी सँजोता और सँवारता है। क्योकि वह जानता है कि मानव की मनोभूमि के चढाव-उतारो को और परिस्थितियो के घात-प्रतिघातो को स्वाभाविक रूप से अभिव्यजित करने के लिए पात्रो की सर्जना न केवल महत्त्वपूर्ण ही है, अपितु आवश्यक भी है।

यहाँ यह भी कह देना प्रासगिक ही है कि उपन्यास मे मानवीय भाषा मे बोलते

हुए मानवीय पात्रो के ही समावेश से वास्तविकता आती है। इसीलिए प्राय. कुशल उपन्यासकार अपने उपन्यास मे पशुओ और पक्षियो को स्थान देने मे हिचकिचाते है। ठीक भी तो है, उपन्यासकार एक मनुष्य होने के नाते मनुष्य की आचार-विचार-पद्धति से जितना निकटतम परिचय पा लेता है उतना पशुओ और पक्षियो के आचार-विचार से नही पा सकता। फिर उनकी कोई परिस्थितियाँ भी तो नजर नही आती। क्योकि उनमे धर्म और मोक्ष की इच्छा तो नाममात्र की भी नही होती। हां, अर्थ के नाम पर भूख मेटने की प्रवृत्ति उनमें अवश्य होती है; और रही 'काम' की बात, सो इस विषय मे उनके यहाँ कोई नियम, रोक-टोक और बदनामी का डर आदि कुछ भी नही है। इनमे न तो परिवार है और न जाति, संवेदना के नाम पर अपनी केवल सद्योजात सन्तान के प्रति ममत्व के अतिरिक्त कुछ भी नही पाया जाता है। इसके बावजूद भी यदि कुछ परिस्थितियाँ इनकी हो, तो वे समझी नही जा सकती। क्योकि मनुष्य के लिए ये गूंगे ही हैं। इसीलिए श्री ई० एम० फार्स्टर[3] भी उपन्यास मे मानवीय पात्रो को ही महत्त्व देते प्रतीत होते है।

यद्यपि तिलकमञ्जरी के भी कुछ पात्र अतिमानवीय हैं, उनमे कुछ तो देवलोक से सम्बन्ध रखते हैं और कुछ विद्याधर लोक से, किन्तु उन्हे मानवजाति की ही अधिक ऐश्वर्य एव अधिकार-सम्पन्न श्रेणी मे मानकर उनके और मानवलोक के पात्रो के जीवन के सम्मिश्रण से सघठित विलक्षण और आनन्ददायिनी इस कथा मे अस्वाभाविकता की आशंका नही करनी चाहिए। क्योकि उनके आकार-प्रकार, आहार-विहार, नाते-रिश्ते, सुख-दु ख तथा प्रेम और काम-विषयक सवेदनाएँ एव मान्यताएँ सभी कुछ मानवलोक से बिल्कुल मिलते-जुलते हैं।

मैं समझता हूँ कि इसी दृढ आधार पर हिन्दी-जगत् के प्रसिद्ध उपन्यासकार आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने भी अपने 'वय रक्षाम' नामक उपन्यास मे यक्षलोक एव देवलोक के भी पात्रो की सर्जना की है, जो स्वाभाविकता के विपरीत नही है।

पात्रों का वर्गीकरण

ब्रह्मा के ससार मे भी आकार-प्रकार मे समान होने के बावजूद भी सभी मनुष्य आचार-विचार की दृष्टि मे समान नही है। उनमे कुछ रूढिग्रस्त हैं, तो कुछ प्रगतिशील, कुछ परोपकारपरायण है, तो कुछ स्वार्थलिप्त, कुछ अच्छाई के लिए सभी तरह की कुर्बानी करने को तैयार रहते है, तो कुछ बुराई का दामन मरते दम तक नहीं छोडते, कुछ जाति और सम्प्रदाय की दुहाई देने मे ही अच्छाई समझते है, तो कुछ मनुष्यता की रक्षा मे इन्हे तिलाञ्जलि दे दिया करते है, कुछ सदैव निन्यानवे के फेर मे रहते है, तो कुछ त्याग को ही अमूल्य निधि समझते है, कुछ धन के बल पर प्यार खरीदना चाहते है, तो कुछ प्यार के लिए धन को ठुकराने मे जरा भी देर नही लगाते है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सांसारिक मनुष्य अपनी भिन्न-भिन्न रुचि रखता है।

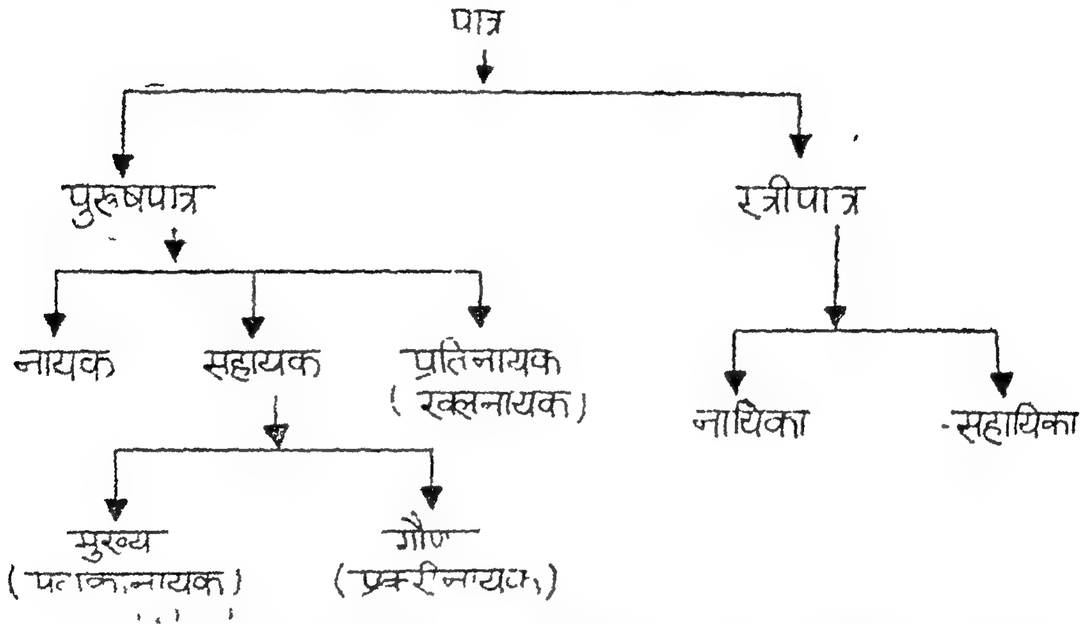
साहित्यकार भी इसी समाज मे रहता है। वह समाज की उपर्युक्त वैचारिक रस्सा-कसी को रोजाना अपनी आँखो मे देखता है और कानो से सुनता है। समाज के ये

रूप जब उसके अन्तर्मन को व्यथित करने लगते हैं और उसके दिल और दिमाग को कचोटने लगते है तो वह समाज की व्यथा से उत्पन्न अपनी व्यथा को समाज के सामने प्रकट करने के लिए अपनी सवेदनशील कलम पकड लेता है। वह चाहता है कि समाज के जिन चन्द ठेकेदारो को मिथ्याभिमानी के कारण समाज पर आहो के वादल छाये रहते हैं और आँसुओ की दरिया उडती रहती है, वे इस दु:ख-दर्द को समझें; और अपने-आप को सवेदनशील बनाने की कोशिश करे। ताकि इस सिसकती हुई मानवता को कुछ जीने की आशा बध सके। यही उसका जीवन-दर्शन होता है और यही सन्देश भी। ऐसे मानवतावादी सच्चे साहित्य का समाज मे आदर भी होता है और प्रचार भी। फलस्वरूप किसी भी सच्चे साहित्यकार की सर्जना मे समाज का असली रूप छिपा नही रह सकता। आपको उसके साहित्य मे वह सब कुछ मिलेगा जो आप समाज मे देखते हैं। समाज और साहित्य के इसी विम्व और प्रतिबिम्व भाव को देखकर ही तो साहित्य को समाज का उज्ज्वल दर्पण कहा गया है, जो निर्विवाद सत्य है।

अव यदि हम साहित्य की इसी पृष्ठभूमि को दृष्टि मे रखते हुए अपने उपन्यास जगत् के पात्रो की मनोभूमि एव कर्मभूमि पर विचार करे तो स्पष्ट हो जाएगा कि उनकी भी वे ही भिन्न-भिन्न द्वन्द्वात्मक विचारधाराएँ और भिन्न-भिन्न कार्यकलाप होते है, जो सासारिक मनुष्यो मे पाए जाते हैं। उनमे भी कुछ तो रूढियो के दास होते है और कुछ उनके इन्कलाबी, कुछ अपने स्टेटस के नशे मे हमेशा धुत्त रहते है, तो कुछ 'वहुजन-हिताय' और 'वहुजनसुखाय' के प्रयोग मे ही सुख समझते है, कुछ इन्सानियत का गला घोटने मे ही लुत्फ लेते है, तो कुछ इन्सानियत के लिए अपना ही गला दे बैठते है। इस प्रकार हम देखते है कि उपन्यास के पात्रो की गतिविधियो मे विभिन्नता होती है। पर उनकी इस विभिन्नता मे भी समष्टि के दर्शन दुर्लभ नही है। क्योकि जिस प्रकार आम, जामुन, सेव, सन्तरे आदि के वृक्ष आस्वाद और गुण की दृष्टि से व्यष्टि रूप मे परस्पर भिन्न-भिन्न होकर भी अपने-अपने सजातीय के समुदाय मे आकर समष्टि के रूप मे आम का बाग, जामुन का वाग, सेब का बाग, सन्तरे का बाग आदि नाम धारण कर लेते है ठीक उसी प्रकार औपन्यासिक जगत् के पात्र भी स्वभावभेद से व्यष्टि रूप मे भिन्न-भिन्न होकर भी अपने-अपने सजातीय के समुदाय मे आकर समष्टि रूप मे एक वर्ग विशेप के नाम से पुकारे जा सकते हे। फलस्वरूप इन्हे भी हम आसानी से कुछ वर्गो मे विभक्त कर ही सकते है।

स्वाध्यायशील मनीपियो से यह छिपा नही है कि दशरूपक, नाट्यदर्पण, साहित्य आदि समीक्षाग्रन्थो मे पात्रो का जो विभाजन प्रस्तुत किया गया है उस पर नाट्यशास्त्र[४] और अग्निपुराण[५] की स्पष्ट छाया है। चूँकि पात्र-भेद के विपय मे सस्कृत-जगत् के इन समीक्षको की व्याख्या-पद्धति मे थोडा-बहुत हेर-फेर होने के बावजूद भी उसकी आधार-भूत परिकल्पना मे पर्याप्त समानता है, इसलिए यहाँ मै समझता हूँ कि इन आचार्यो के विचारो का मिला-जुला साराश ही प्रस्तुत करना उचित होगा। इन लोगो की पात्र-भेद-परिकल्पना को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि इन्होने पात्रो के कार्यकलापो की सभ्य समाज के प्रति अनुकूलता और प्रतिकूलता को दृष्टि मे रखकर ही

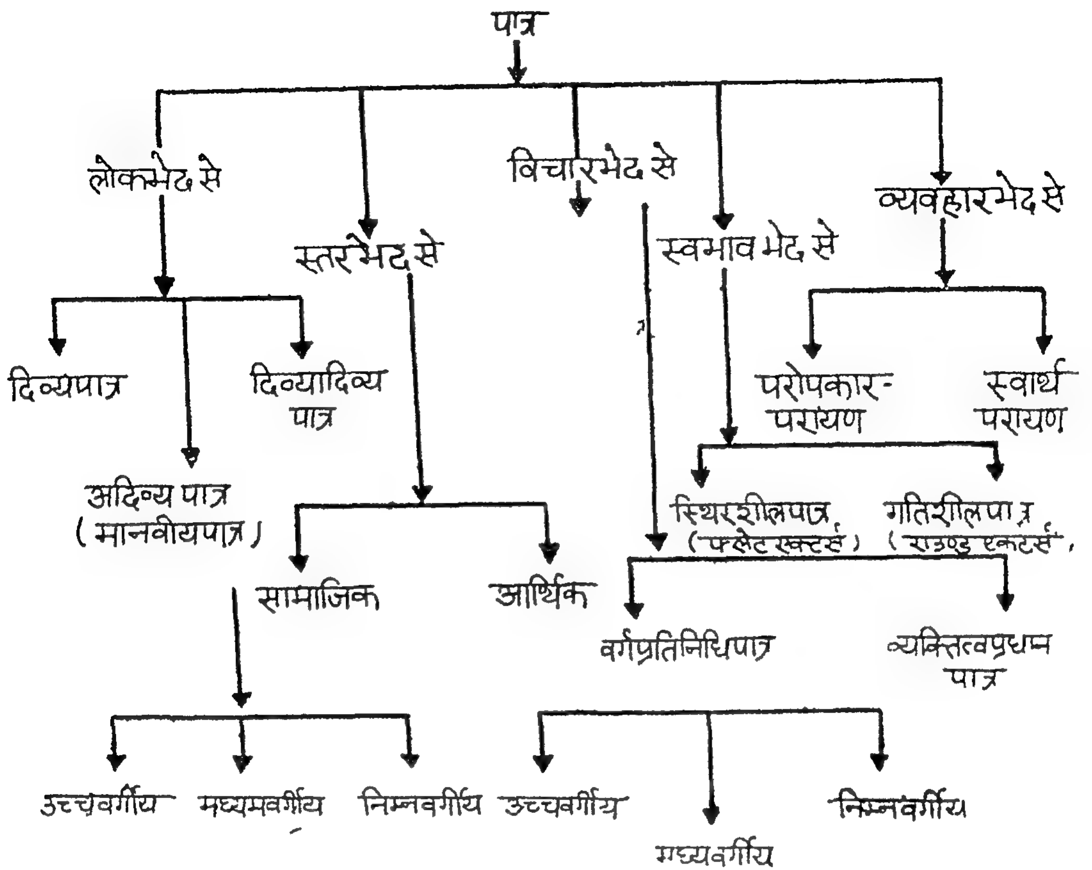
पात्रो की श्रेणियाँ निर्धारित की है।[६] उनकी दृष्टि मे मुख्य रूप से—नायक, नायक का मुख्यसहायक, नायक के गौण सहायक, प्रतिनायक (खलनायक), नायिका और नायिका की सहायिकाएँ—बस ये छ प्रकार के ही पात्र हुआ करते है। यदि सरलता को अपनाते हुए उनके इन भेदो का रेखाचित्र खीचा जाय तो वह कुछ इस प्रकार से होगा—



यद्यपि इन आचार्यो ने नायक और नायिका के अन्य अनेक अवान्तर भेद किए है, किन्तु प्रस्तुत प्रसग मे उनका निरूपण अनुपयोगी समझकर नही किया जा रहा है। जिज्ञासुजन मेरे द्वारा फुटनोट मे सूचित उनके ग्रन्थाशो का अवलोकन कर सकते है। यहाँ मैं यह भी इशारा करना चाहता हूँ कि इन आचार्यो ने खलनायिका और पताका-नायिका की स्पष्ट परिकल्पना की ओर अपना ध्यान नही दिया है। सम्भव है कि उस समय स्त्रियो की सहनशीलता का प्रभाव और क्रियाशीलता का अभाव ही इसका प्रमुख कारण रहा हो।

अब हम कुछ आधुनिकता का पुट देते हुए लोक, स्तर, विचार, स्वभाव और व्यवहार के आधार पर पात्रो का पाँच प्रकार का वर्गीकरण प्रस्तुत कर रहे है। इसके पूर्व कि उन भेदो का विशद विश्लेषण शुरू किया जाए, यहाँ सबसे पहले हम उनके सम्मिलित रेखाचित्र को प्रस्तुत करना उचित समझते है, जो इस प्रकार होगा—

(तालिका अगले पृष्ठ पर देखे)



प्रथम वर्गीकरण : लोकभेद से

दिव्यपात्र

स्पष्ट है कि यह वर्गीकरण लोकभेद पर आधारित है। हमारा प्राचीन भारतीय साहित्य देवलोक की कथाओ से ओत-प्रोत है। इसमे जहाँ एक ओर राजा और रानियो के वैभव की गौरवपूर्ण गाथाएँ है, वहाँ दूसरी ओर देवताओ और अप्सराओ के हृदयावर्जक एव मधुर-जीव की चमकदार झाँकी भी है। साहित्यकारो की कल्पना-परी मानवलोक तक ही सीमित नही रही, उसके पख उसे देवलोक भी ले गए है। वहाँ देव-देवियो, यक्ष-यक्षियो, गन्धर्व-गन्धर्वाओ, किन्नर-किन्नरियो, विद्याधर-विद्याधरियो आदि से उसका भलीभाँति परिचय हुआ है। इस प्रकार हम देखते है कि पुरातन भारतीय वाङ्मय का भव्य-भवन मानव-लोक से ऊँचा उठकर देवलोक तक फैला हुआ है। इसी तथ्य को दृष्टिकोण मे रखते हुए अब हम यह आसानी से कह सकते है कि जो पात्र देवलोक मे रहते है उन्हे 'दिव्य' पात्र कहा जा सकता है। वे अलौकिक ऐश्वर्य से सम्पन्न होते हैं और उनकी वाणी भी अमोघ होती है। उनमे इन्द्र, चन्द्र, कुवेर, रम्भा, मेनका, उर्वशी आदि प्रमुख है। धनपाल की तिलकमञ्जरी मे न केवल ज्वलनप्रभ ही अपितु विद्याधरराजकुमारी तिलकमञ्जरी, पत्रलेखा, चित्रलेखा, मृगाङ्कलेखा, गन्धर्वक, चित्रमाय, अनङ्गरति आदि भी विद्याधर होने के नाते 'दिव्यपात्र' ही है।

अदिव्यपात्र

दिव्यपात्रो के स्वरूप को जान लेने के बाद अदिव्यपात्रो की पहिचान सरल हो जाती है। साफ जाहिर है कि जिन पात्रो का निवास देवलोक मे नही है; जो धरती माँ की ही गोद मे जन्म लेते है और खेलकूद कर बड़े होते है उन्हे 'अदिव्यपात्र' कहा जा सकता है। मनुष्य लोक के दिलीप, रघु, अज, दशरथ, दुष्यन्त, नल, युधिष्ठिर, दुर्योधन, उदयन, अशोक, विक्रम, हर्ष, तारापीड, भोज, गाँधी, नेहरू आदि इनके उदाहरण है।

तिलकमञ्जरी मे मेघवाहन-मदिरावती, हरिवाहन, समरकेतु, कमलगुप्त, तारक आदि पात्रो को 'अदिव्यपात्र' की सज्ञा दी जा सकती है। इन्हे दूसरे शब्दो मे 'मानवीय-पात्र' भी कहा जाता है।

दिव्यादिव्यपात्र

जिस पात्र मे कुछ गुण दिव्यपात्र के हो और कुछ गुण अदिव्यपात्र के हो तो उसे 'दिव्यादिव्यपात्र' कहा जा सकता है। वास्तव मे ऐसे पात्र मे देवलोक और मानवलोक—दोनो ही लोको—की मौलिक विशेषताएँ विद्यमान रहती है। हम देखते है कि कभी-कभी देवलोक का कोई उत्कृष्ट देवता किसी उद्देश्य विशेष को लेकर, या किसी शापवश, यहाँ मानवलोक मे आकर जन्म लेता है। उसमे पूर्वजन्म का देवता होने के नाते दिव्यत्व और वर्तमान जन्म का मानव होने के नाते अदिव्यत्व (मानवत्व)—दोनो का ही सम्मिश्रण होता है। फलस्वरूप ऐसे पात्र मे अन्य मानवीय पात्रो की अपेक्षा शील, शक्ति एव सौन्दर्य का सगम कुछ अधिक अच्छा होता है।

तात्पर्य यह है कि यह देवताओ से कम और मनुष्यो से अधिक सामर्थ्यवान् होता हैं। भारतीय साहित्य मे राम, परशुराम, लक्ष्मण, हनुमान्, कृष्ण, बलराम आदि इसी 'दिव्यादिव्यपात्र' की कोटि के पात्र हैं। धनपाल की तिलकमञ्जरी मे हम हरिवाहन, समरकेतु और मलयसुन्दरी को 'दिव्यादिव्यपात्र' की श्रेणी मे रख सकते है, क्योकि ये तीनो ही पूर्वजन्म मे देवलोक के निवासी थे और वर्तमान जन्म मे मानवलोक के निवासी है।

समीक्षा

वास्तव मे पात्रो का यह वर्गीकरण भारतीय साहित्यकारो के देववाद और अवतारवाद की भावभूमि पर आधारित है। यद्यपि आचार्य धनजय[७] ने कथावस्तु के स्पष्ट ही दिव्य, मर्त्य और दिव्यमर्त्य नाम से भेद करके अप्रत्यक्ष रूप से सभी प्रकार के पात्रो की भी दिव्यता, मर्त्यता और दिव्यमर्त्यता को स्वीकार कर ही लिया है, किन्तु रामचन्द्रगुणचन्द्र[८] ने नायक की दिव्यता का प्रबल विरोध किया है। मैं समझता हूँ कि ठीक भी है। क्योकि साहित्य का प्रमुख उद्देश्य कान्तासम्मित उपदेश भी हुआ करता है, जो मानवीय नायक की ही देन हो सकता है, किसी दिव्यनायक की नही। क्योकि हम आप मे से कोई भी मनुष्य अपने मे मानवोचित हीनभावना के कारण किसी दिव्य-नायक के अलौकिक ऐश्वर्य प्रदान करने वाले असाधारण आचरणो की अनुकृति करने का साहस

नही कर सकता है। चूँकि दिव्यनायक का कार्यकलाप मनुष्यो की पहुँच के बाहर होने के कारण उन्हे प्रेरणा देने मे समर्थ नही होता है, इसीलिए नायक को दिव्य नही होना चाहिए, उसे तो मानव ही होना चाहिए, ताकि वह अपने अन्य सजातीय मानवो को अपने समान आचरण करने की प्रेरणा दे सके। यहाँ मैं यह भी कह देना आवश्यक समझता हूँ कि रामचन्द्रगुणचन्द्र ने केवल मुख्य नायक की ही दिव्यता का विरोध किया है, अन्य—नायिका, पताकानायक, प्रकरीनायक आदि—पात्रो की दिव्यता को उन्होने भी स्वीकार कर लिया है।[९] नायिका की दिव्यता को स्वीकार करने का उन्होने जो हेतु दिया है वह यह है कि नायिका का चरित्र तो मानवीय नायक के प्रधान चरित्र मे ही अन्तर्भूत हो जाता है। इसलिए वह मनुष्यो की प्रेरणा का स्रोत ही नही रह जाती है। इसी प्रकार नायक के सहायक पात्रो की दिव्यता स्वीकार करने मे उन्होने जो कारण दिया है वह यह है कि देवताओ द्वारा भक्त मनुष्यो की सहायता पर अविश्वास नही किया जा सकता है।

यहाँ मुझे आश्चर्य यह है कि रामचन्द्रगुणचन्द्र ने प्रतिनायक (खलनायक) की दिव्यता की ओर स्पष्ट सकेत क्यो नही किया? शायद उनकी धर्मभीरुता और देवभीरुता ही इसका कारण रही हो। पर मैं तो समझता हूँ कि इस कटु सत्य से कोई इन्कार नही कर सकता कि कभी-कभी देवराज इन्द्र भी अपने स्वार्थ के वशीभूत होकर यशस्वी एव प्रतापी सत्पुरुष को सताने और नीचा दिखाने मे खलनायक का 'रोल' अदा किया ही करते है। अत खलनायक की भी दिव्यता स्वीकार की जा सकती है।

आधुनिक दृष्टिकोण

आज सब ओर यथार्थवाद एव प्रत्यक्षवाद का बोलबाला है। मानवीय समाज की जटिलताओ का जाल आज इतना फैल गया है कि मनुष्य को उससे छुटकारा नही मिलता है। भौतिकवाद की चकाचौध मे वह आज अपनी इस विशाल दुनिया से दूर न तो किसी दूसरे देवलोक को देख पाता है, और न ही उसकी परिकल्पना पर भरोसा ही कर पाता है। इसलिए वह साहित्यजगत् मे भी मानवीय पात्रो की ही सर्जना पर विश्वास करता है। वहाँ उसे देवलोक के पात्रो की सत्ता पर अस्वाभाविकता एव अतिरजित की नापसन्द गन्ध आने लगती है। पाठको और साहित्यकारो की इसी मन प्रवृत्ति के कारण आज साहित्य मे दिव्यपात्रो के दर्शन दुर्लभ हो रहे है। श्री डब्लू० एच० हडसन ने भी कथावस्तु मे स्वाभाविकता एव विश्वसनीयता की सृष्टि के लिए उपन्यास मे पार्थिव पात्रो की ही सयोजना पर बल दिया है।[१०]

श्री हडसन महोदय की धारणा है कि उपन्यास के पात्र ऐसे होने चाहिएँ जो पाठको की परिकल्पना मे स्वाभाविक हो, और साथ ही साथ धरती की भी देन हो। तभी तो हम उनसे सहानुभूति, प्रेम या घृणा कर सकते है। उपन्यास के पात्रो मे एक जीवन्त आकर्षण होना चाहिए ताकि उपन्यास के खत्म होने के बावजूद भी वे पाठक के दिल और दिमाग पर छाये रह सके। हडसन ही नही, बल्कि और भी अन्य आधुनिक समीक्षको का यही मत है कि उपन्यास के पात्र हमारी ही दुनिया के होने चाहिएँ तभी

हमे उनसे सहानुभूति हो सकती है, अन्यथा नही, और अब तो यह प्रत्यक्ष भी है कि आज औपन्यासिक जगत् मे सब ओर मानवीय पात्रो की ही धूम मची हुई है।

द्वितीय वर्गीकरण : स्तर भेद से

पात्रों का यह वर्गीकरण उनके सामाजिक एव आर्थिक स्तर के आधार पर किया जा सकता है। समाज मे किसकी क्या कैसी प्रतिष्ठा है? लोग-बाग उसका आदर करते है या अनादर? या उपेक्षा? उसकी आर्थिक स्थिति क्या है? वह धनी है या निर्धन? या केवल खाना-पीना ही है? इत्यादि दृष्टिकोण आज का ही नही है, यह तो सदा से चला आया है, और इसी के आधार पर व्यक्ति को उच्च या मध्यम या निम्न स्तर का घोषित किया जाता रहा है। आज इस दृष्टि से पात्रो के तीन वर्ग सम्भव है—प्रथम उच्च, द्वितीय मध्यम और तृतीय निम्न।

उच्चवर्गीयपात्र

समाज मे जिनकी प्रतिष्ठा हो और आर्थिक स्थिति स्पृहणीय हो, उन्हे उच्च-वर्गीयपात्र माना जा सकता है। 'तिलकमञ्जरी' मे मेघवाहन, विद्याधरमुनि, ज्वलनप्रभ, हरिवाहन, समरकेतु, कमलगुप्त, मदिरावती, पत्रलेखा, गन्धर्वदत्ता, तिलकमञ्जरी, मलयसुन्दरी आदि पात्रो को हम उच्चवर्गीय पात्र मान सकते है।

मध्यमवर्गीयपात्र

समाज जिनकी अपेक्षा नही कर सकता और आर्थिक रूप से जो आत्मनिर्भर है, उन्हे मध्यमवर्गीयपात्र कहा जा सकता है। 'तिलकमञ्जरी' मे मेघवाहन का सेनाध्यक्ष वज्रायुध और रत्नाध्यक्ष महोदधि, समरकेतु का नौसेनाध्यक्ष यक्षपालित, विद्याधर-चक्रवर्ती विक्रमबाहु का सचिव शाक्यबुद्धि, गन्धर्वक, मृगाङ्कलेखा, बन्धुसुन्दरी आदि पात्रो को मध्यमवर्गीयपात्र कह सकते है।

निम्नवर्गीयपात्र

समाज मे जिनका कोई खास महत्त्व नही होता और जिनकी आर्थिक स्थिति भी दुर्बल होती है, उन्हे निम्नवर्गीयपात्र कहते है। तिलकमञ्जरी के तारक, चित्रमाय, चित्रलेखा, तरङ्गलेखा आदि पात्र इसी कोटि मे आते है।

समन्वय दृष्टि

सामाजिक एव आर्थिक स्थितियो की समानता मे तो वर्गनिरूपण बहुत ही आसान है। किन्तु जब किसी व्यक्ति की इन परिस्थितियो के स्तर मे विषमता आ जाती है तब यह थोडा चिन्तनीय हो जाता है कि उसे किस वर्ग मे माना जाए। मै इस चिन्ता को दूर करने के लिए दोनो स्तरो के सम एव विषम स्वरूपो के मिश्रण से व्यक्ति के लिए निर्धारित किए जाने वाले वर्गो की तालिका प्रस्तुत कर रहा हूँ—

स्तरों की समता मे

सामाजिक स्तर	+	आर्थिक स्तर	=	निर्धारित वर्ग
(क) उच्चस्तर	+	उच्चस्तर	=	उच्चवर्गीय।
(ख) मध्यमस्तर	+	मध्यमस्तर	=	मध्यमवर्गीय।
(ग) निम्नस्तर	+	निम्नस्तर	=	निम्नवर्गीय।

स्तरों की विषमता मे

सामाजिक स्तर	+	आर्थिक स्तर	=	निर्धारित वर्ग
(घ) उच्चस्तर	+	मध्यमस्तर	=	उच्चवर्गीय।
(ङ) उच्चस्तर	+	निम्नस्तर	=	मध्यमवर्गीय।
(च) मध्यमस्तर	+	उच्चस्तर	=	उच्चवर्गीय।
(छ) मध्यमस्तर	+	निम्नस्तर	=	मध्यमवर्गीय।
(ज) निम्नस्तर	+	उच्चस्तर	=	मध्यमवर्गीय।
(झ) निम्नस्तर	+	मध्यमस्तर	=	निम्नवर्गीय।

तालिका से स्पष्ट है कि सामाजिक और आर्थिक स्थितियो के समन्वय से व्यक्तियो का निर्धारण नौ प्रकार से किया जा सकता है।

तीय वर्गीकरण : विचार भेद से

वास्तव मे यह वर्गीकरण औपन्यासिक पात्रो के विचारो से सम्बन्ध रखता है। इस वर्गीकरण मे यह देखा जाता है कि पात्रो के विचार किसी वर्गविशेष का प्रतिनिधित्व करते है या किसी स्वतन्त्र व्यक्तित्व के द्योतक है। क्योकि समाज मे प्राय दो ही विचारधाराएँ है—एक समष्टिवादिनी और दूसरी व्यष्टिवादिनी। सरल शब्दो मे इन्ही को क्रमश वर्गवादिनी और व्यक्तिवादिनी भी कह सकते है। चूंकि सभी प्रकार के उपन्यासो के प्राय सभी पात्र इन्ही दो विचारधाराओ मे अन्तर्भूत हो जाते है, इसलिए उन्हे वर्गप्रतिनिधिपात्र और व्यक्तित्वप्रधानपात्र नामक दो भागो मे विभक्त कर सकते है।

वर्ग प्रतिनिधिपात्र

जब कोई पात्र अपने विचारो या सिद्धान्तो से सदैव किसी वर्गविशेष का प्रतिनिधित्व करता हुआ नजर आता है, अपने उसी वर्ग की हिमायत भी करता दीखता है, और हमेशा अपने उस वर्ग की लकीर का फकीर बना हुआ उसके गुण-दोषो को लिए-लिए घूमता है, अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व की ओर ध्यान नही देता तो ऐसे पात्र को 'वर्ग-प्रतिनिधिपात्र' कहा जा सकता है। हिन्दी जगत् के उपन्यास सम्राट् बाबू प्रेमचन्द के गोदान का होरी इस वर्ग का ज्वलन्त उदाहरण है। डिकेन्स, टालस्टाय, गोर्की आदि पाश्चात्य उपन्यासकारो ने भी ऐसे पात्रो की सोद्देश्य एव सफल सर्जना की है। यद्यपि

धनपाल की तिलकमञ्जरी मे वर्गप्रतिनिधिपात्रो की स्पष्ट सृष्टि का अभाव है, तथापि गन्धर्वक, तारक, चित्रमाय, चित्रलेखा आदि मे सेवक वर्ग के प्रतिनिधित्व का कुछ-कुछ रूप झलकता ही है।

व्यक्तित्वप्रधानपात्र

जब कोई पात्र किसी वर्गविशेष की सकीर्ण सीमा से निकलकर अपने व्यक्तित्व का स्वतन्त्र रूप से निर्माण एव विकास करता हुआ नजर आता है तब उसे 'व्यक्ति-प्रधानपात्र' की सज्ञा दे दी जाती है। ऐसे पात्रो मे उनकी वैचारिक विचित्रता एव विशिष्टता खुलकर उभरती है। उस पर किसी वर्गविशेष के बोझिल विचारो को ढोने की जिम्मेदारी नही रहती है। इसीलिए उसके कार्यकलापो मे वर्गप्रतिनिधिपात्रो के कार्यकलापो की अपेक्षा अधिक आकर्षण होता है। फलस्वरूप रोचकता और उत्सुकता की दृष्टि से ऐसे पात्र बहुत ही महत्त्वपूर्ण होते है। तिलकमञ्जरी मे मेघवाहन, विद्या-धरमुनि, ज्वलनप्रभ, हरिवाहन, तिलकमञ्जरी, समरकेतु, मलयसुन्दरी, वज्रायुध, विचित्रवीर्य आदि ऐसे ही पात्र है।

समीक्षा

यदि थोडा ध्यान से सोचा जाए तो लगेगा कि सफलपात्र की सर्जना के लिए इस वर्ग-वाद एव व्यक्तिवाद को मिलाना ही पड़ेगा। वास्तविकता भी तभी उभरेगी, अन्यथा या तो पात्रो की भावना को दबाये रखना पडेगा, या फिर उन्हे बेलगाम करना पडेगा। कुछ भी हो, है ये दोनो ही स्थितियाँ नाजुक। अनुभव तो यही कहता है कि यदि कोई पात्र किसी वर्गविशेष की चेतना से ओत-प्रोत भी है तो इसका मतलब यह नही है कि उसका निजी व्यक्तित्व बिल्कुल ही समाप्त हो गया है। यदि ऐसा ही होने लगे तब तो वर्गगत विशेषताओ को द्योतित करने वाला पात्र बिल्कुल कठपुतली ही हो जाएगा, और फिर उसमे विचारो की सम्प्रेषणीयता भी नही रह सकेगी। इसी प्रकार व्यक्तिगत चेतना मे रमने वाला पात्र भी अपनी स्वतन्त्रता के कारण पाठको के लिए कभी अविश्वास का भी भाजन बन सकता है। इसलिए अच्छे उपन्यासकार के पात्रो मे समष्टि एव व्यष्टि (वर्ग एव व्यक्ति) का मजुल तथा आनुपातिक सम्मिश्रण पाया जाता है। प्रेमचन्द के गोदान का होरी एक ओर यदि भारतीय किसानवर्ग का प्रतिनिधित्व करता है तो दूसरी ओर उसमे कुछ मानव-सुलभ विशेषताएँ (गुण-दोष) भी है। इसी प्रकार हमारे धनपाल की तिलकमञ्जरी के हरिवाहन और समरकेतु मे जहाँ एक ओर अपनी-अपनी प्रेमिकाओ के लिए स्वतन्त्र रूप से छटपटाहट है तो वहाँ दूसरी ओर वे राजकुल के युवराजवर्ग का भी प्रतिनिधित्व करते दिखते है। इससे यह स्पष्ट है कि वर्गप्रतिनिधिपात्रो मे भी चेतना पाई जाती है, और इसी प्रकार व्यक्तित्वप्रधानपात्र कुछ अशो मे किसी वर्गविशेष का प्रतिनिधित्व भी कर जाते है। इस सम्बन्ध मे डॉ० शुभकार कपूर के भी विचार उद्धरणीय है—

" ··जहाँ तक वर्गगत एव व्यक्तित्व प्रधान पात्रो का प्रश्न है, किसी भी उपन्यास

के पात्रो का निर्माण इस कसौटी पर कस कर नही किया जाता। एक साधारणपात्र मे सामान्य एव व्यक्तित्व दोनो ही प्रकार की विशेषताएँ देखी जा सकती है। जब उसमे सामान्य गुणो का आधिक्य हो जाता है तो उसे हम वर्गगत पात्र और जब उसमे व्यक्तित्व प्रधान गुणो का बाहुल्य हो जाता है तो उसे व्यक्तित्वप्रधानपात्र कहते है। वर्गगत पात्रों मे भी केवल उस समाज मे प्राप्त होने वाले सामान्यगुण ही नही, वरन् कुछ गुण उनके निज के व्यक्तित्व को प्रकट करने वाले भी रहते है। यह गुण पात्रविशेष स्वय अपने साथ लाता है, उस वर्गविशेष मे उन गुणो का होना अनिवार्य नही है। वास्तव मे उसी पात्र का चरित्र-चित्रण अधिक सफल कहा जाता है जिसमे सामान्य एव विशेष दोनो ही गुणों का सानुपातिक समन्वय हो। सामान्यता एव विलक्षणता, दोनो के ही अतिरेक से पात्र निर्जीव एव अस्वाभाविक हो जाते है।[11]

इस समीक्षा का तात्पर्य यह कदापि नही है कि यह वर्गीकरण ही शिथिल है। क्योकि मेरे विचार से ऐसी समन्वयात्मक स्थिति मे भी उन्हे, उनकी वर्गगत-चेतना और व्यक्तिगत चेतना की प्रधानता और अप्रधानता के आधार पर, वर्गप्रतिनिधिपात्रो या व्यक्तिप्रधानपात्रो की कोटि मे रखा ही जा सकता है।

च र्थ वर्गीकरण : स्वभाव की दृष्टि से

यह वर्गीकरण पात्रो के स्वभाव पर आधारित है। समाज मे हम देखते हैं कि कुछ लोगो का स्वभाव जीवन भर नही बदलता है। उनकी प्रवृत्ति मे सदैव एकरूपता रहती है। वे जीवन के किसी भी मोड पर क्यो न पहुँच जाएँ, किन्तु उनका व्यवहार नही बदलता। वे जैसे पहले थे वैसे ही तब भी रहेगे। उनके स्वभाव की यह एकरूपता उनके हृदय की दृढता का प्रतीक बनकर सदैव उनके साथ रहती है। इसके ठीक विपरीत कुछ ऐसे भी लोग-बाग देखने मे आते है जिनका स्वभाव बदलता रहता है। उनके विषय मे आप यह दावा नही कर सकते कि वे कब क्या करेगे। उनकी मन प्रवृत्ति नितान्त परिवर्तनशील होती है। वे कब दाएँ या बाएँ हो जाएँगे, इसका अन्दाज कोई नही लगा सकता। उनके मनोरथ का अश्व जब जी चाहा तभी पैतरा बदल लेता है। ठीक यही हाल उपन्यास के पात्रो का भी होता है। उनमे भी कुछ तो स्थिर स्वभाव वाले होते है और कुछ परिवर्तनशील स्वभाव वाले। अत आधुनिक समीक्षको ने उन्हे दो श्रेणियो मे विभक्त किया है—प्रथम स्थिरताशीलपात्र और द्वितीय गतिशीलपात्र। श्रीजालादि विश्वमित्र ने ऐसे पात्रो को क्रमश 'सरलपात्र' और 'गूढपात्र' नाम दिया है।[12] पाश्चात्य समीक्षक श्री ई० एम० फार्स्टर ने इन्हे ही क्रमश 'फ्लेट करेक्टर' और 'राउण्ड करेक्टर' की सज्ञा दी है। वह लिखते है—

"हम चरित्र (पात्रो) को दो वर्गों—फ्लेट और राउण्ड—मे विभक्त कर सकते है। स्थिरचरित्रो (पात्रो) को सत्रहवी शताब्दी मे 'ह्यू मर्स' कहा जाता था, कभी उन्हे 'टाइप' की भी सज्ञा दी जाती रही है, और कभी 'केरीकेचर' की भी। अपने शुद्धतम रूप मे एसे चरित्रो (पात्रो) का गठन किसी विचार-विशेष या गुण-विशेष के आधार पर ही किया जाता है। जब उनमे एक से अधिक प्रवृत्तियाँ पाई जाने लगती है तब उनमे गति-

शीलता की ओर झुकाव शुरू हो जाता है। वास्तविकस्थिरचरित्र (पात्र) को तो एक वाक्य मे ही इस प्रकार अभिव्यक्त किया जा सकता है—'आइ नेवर विल डिजर्ट मिस्टर मिकावर'।"[१३]

यहाँ हम देखते है कि फार्स्टर महोदय ने पश्चिम जगत् के उपन्यासकार श्री डिकेन्स के 'डेविड कापर फील्ड' नामक उपन्यास की मिसेस मिकावर नामक स्त्री पात्र के वाक्य को उद्धृत करके उसकी स्थिरशीलता (फ्लेटनेस) को व्यक्त किया है।

स्थिरताशील (फ्लेट) पात्र

ऊपर के अनुच्छेद से स्पष्ट है कि जो पात्र सारे उपन्यास मे अपनी एक ही प्रवृत्ति को लिए रहते हैं, जैसे शुरू मे होते है वैसे ही अन्त मे रहते है, जीवन के चढाव-उतार मे भी जिनका स्वभाव नही बदलता है, जो अपनी एकरूपता के कारण कभी भुलाए नही जा सकते, ऐसे पात्रो को मेरे विचार से 'स्थिरताशीलपात्र' कहा जाता है। श्री भगवती-चरण वर्मा के चित्रलेखा नामक उपन्यास के दो पात्र—यशोधरा और विशालदेव—ऐसे ही स्थिरताशील पात्र है। आरम्भ से लेकर अन्त तक इनकी मन प्रवृत्ति मे सदैव एक-रूपता ही रहती है। इसी प्रकार श्री प्रेमचन्द के रङ्गभूमि नामक उपन्यास की नायिका का दादा ईश्वर सेवक, जो ईमामसीह का पक्का भक्त है और जो बात-बात मे 'ईशु! मुझे अपने दामन मे छुपा' का तकियाकलाम बोलना रहता है, भी स्थिर पात्र माना जा सकता है। श्री थैंकरे के 'वेनिटीफियर' की नायिका वेकीशार्प भी स्थिरपात्र ही है। सस्कृत-साहित्य के नारद और विदूषक पात्रो की एकरूपता प्रसिद्ध ही है। बाणभट्ट की कादम्बरी के जावालि और तारापीड को भी कुछ हद तक स्थिर पात्र ही कह सकते है। जहाँ तक धनपाल की तिलकमञ्जरी का प्रश्न है वहाँ मैं यही कह देना श्रेयस्कर समझता हूँ कि धनपाल के पात्रो मे मुझे तो शुद्ध स्थिरता का अभाव ही मिला है। एक उस महर्षि को, जिसके आश्रम मे मलयसुन्दरी ने छिपकर अपने दिन गुजारे थे, और दूसरे विद्याधर-मुनि को छोडकर मुझे ऐसा कोई भी पात्र दिखाई नही देता जिसकी मन प्रवृत्ति मे परि-वर्तन न हुआ हो। यहाँ तक कि कमलगुप्त को भी मैं शुद्ध रूप से 'स्थिरपात्र' कहने मे सकोच करूँगा।

पात्रो के इस वर्ग के विषय मे श्री ई० एम० फार्स्टर की धारणा है कि ऐसे पात्रो को पहचानने मे पाठको को कोई भी परेशानी नही होती। वे उपन्यास मे जब भी और जहाँ भी नजर आते है, तुरन्त ही पहचान लिए जाते है। ऐसे उपन्यासकार के लिए तो ये बहुत ही सुविधाजनक होते है जो अपनी सारी प्रतिभा का प्रयोग एक ही साथ करना चाहता है। उसे न तो इनका परिचय ही बारबार देना पडता है और न ही इनके चरित्र को विकसित करने के लिए उसे जागरूक रहना पडता है। वे तो अपने आप ही अपने स्वभाव की एकरूपता के कारण अपने अनुकूल वातावरण पैदा करते रहते है। ऐसे पात्र पाठकों के स्मृतिपटल पर भी आसानी से अपनी जगह बना लेते है, और अपने असली रूप मे ही वहाँ छाए रहते है। क्योकि उन्हे तो परिस्थितियाँ भी नही बदल पाती। इन सब विशेषताओ के बावजूद भी फार्स्टर महोदय इन स्थिरताशील पात्रो को उतना महत्त्व

नही देना चाहते जितना कि वह गतिशील पात्रो को देते है। उनका कहना है कि ऐसे पात्रो का उत्तम रूप केवल तभी देखने मे आता है जब वे हास्य या व्यग्य की प्रवृत्ति वाले होते है। क्योकि गम्भीर और कारुणिक प्रवृत्ति वाले स्थिरपात्र तो अपने स्वभाव की एकरूपता के कारण पाठको को प्राय 'बोर' ही करते है। इन पात्रो द्वारा हरबार बदला लेने की डीग हाँकने से, या मनुष्यता के लिए खून बहाने की बाते करते रहने से पाठको का मन उचटता रहता है। यह खासियत तो गतिशील पात्रो मे ही होती है कि वे अपनी विविधरूपता की रोचकता के कारण काफी लम्बे अर्से तक किसी प्रकार का भी वातावरण बनाए रखने मे समर्थ होते है।[१४]

फारर्टर के विश्लेषण से प्रतीत होता है कि उनकी दृष्टि मे स्थिरताशील पात्रो मे पाठको के दिल की गहराईयो मे प्रवेश करने की क्षमता नही होती है। इसीलिए वे अधिक महत्त्वपूर्ण भी नही होते। किन्तु इसके विपरीत श्री एडविन म्योर की धारणा है कि यह कोई शाश्वत सत्य नही है कि स्थिरताशील (फ्लैट) पात्र गतिशील (राउण्ड) पात्रों की तुलना मे कम महत्त्व रखते हैं। उनकी दृष्टि मे यह भी सम्भव है कि भविष्य में गतिशील-पात्रो की अपेक्षा स्थिरताशीलपात्र ही अधिक पसन्द किए जाए। साथ ही साथ वह ऐसे पात्रो की अपरिवर्तनशीलता को दोष न मानकर गुण मानने की भी सलाह देते है और कहते है कि स्थिरपात्र ही उपन्यासकार के उद्देश्य की पूर्त्ति करते हैं। ऐसे पात्र अपनी एकरूपता तो कायम रखते ही हैं, पर साथ ही साथ जीवन के विभिन्न पहलुओं पर भी प्रकाश डालकर पाठको का बहुत कुछ उपकार कर जाते हैं। इसलिए स्थिर (फ्लैट) पात्रो मे केवल 'एकरूपता' या 'अपरिवर्तनशीलता' का ही गुण नही मानना चाहिए। यह गुण उनकी पहचान करने मे तो सहायक हो सकता है किन्तु उनका 'सब कुछ' नही बन सकता है। उसने स्थिरपात्रो की एक छोटी सी सूची बनाकर भी कहना चाहा है कि यदि इन पात्रो को महत्त्वहीन घोपित किया जाता है तो अग्रेजी उपन्यास साहित्य के तीन चौथाई पात्रो के प्रति उपेक्षाभाव पनपेगा। अत. यह सब ध्यान मे रखते हुए हम उन्हे यो ही उपेक्षित नही कर सकते है। इस प्रकार हम देखते है कि श्री एडविन म्योर ने स्थिर पात्रो के महत्त्व को सिद्ध करने के लिए अच्छी-खासी वकालत की है, और उन्हे गतिशील पात्रो की ही भाँति महत्त्वपूर्ण सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।[१५]

गतिशील (राउण्ड) पात्र

जिन पात्रो के जीवनपथ पर कही फूल तो कही शूल, कही उतार तो कही चढाव, कही छाँव तो कही धूप, कही सुख तो कही दु ख, कही सयोग तो कही वियोग आते-जाते रहते है और जिनके स्वभाव एव कार्यकलापो मे आकर्पक विविधरूपता रहती है उन्हे गतिशील पात्र कहते है। इनका जीवन सघर्पपूर्ण होता है। इन पर भली-बुरी परिस्थितियो का पूरा-पूरा प्रभाव पडता है। कभी परिस्थितियाँ इन पर हावी हो जाती है, तो कभी ये परिस्थितियो को अपनी मुट्ठी मे समेट लेते है। इनके बदलते हुए जीवन के पहलुओ के विषय मे पाठक की जिज्ञासा एव सवेदना प्रतिपल बढती ही रहती है। सक्षेप मे हम कह सकते है कि ऐसे पात्रो का व्यक्तित्व बहुमुखी एव कौतूहलवर्धक हुआ करता

है। पाश्चात्त्य जगत् के ख्याति प्राप्त उपन्यासकार श्री टालस्टाय के 'युद्ध एव शान्ति' (वार एण्ड पीस) नामक उपन्यास के नायक पीरी और हिन्दी उपन्यासकार श्री यशपाल की 'दिव्या' नामक उपन्यास की नायिका दिव्या को गतिशील पात्रो की कोटि मे बडी आसानी से रख सकते है।

हमारे धनपाल के 'तिलकमञ्जरी कथा' नामक कथाकाव्य (उपन्यास) मे भी गतिशील पात्रो की कमी नही है। उनके उपन्यास के नायक हरिवाहन, नायिका तिलकमञ्जरी, पार्श्वनायक समरकेतु, पार्श्वनायिका मलयसुन्दरी, गन्धर्वक, चित्रमाय आदि पात्रो को गतिशील (राउण्ड) पात्र कहने मे किसी को कोई सकोच नही होगा। हरिवाहन और समरकेतु के तरुण जीवन मे आने वाले अनेक उतार-चढावो को पढकर भला कौन ऐसा सहृदय पाठक होगा जिसके दिल की धडकन बढने न लगेगी? मलयसुन्दरी की प्रणयसरिता मे ऐसा प्रवल वेग है कि उसमे पाठक का दिल (चाहे वह पत्थर की ही तरह कठोर क्यो न हो) एक सूखे पत्ते की भाँति वहने लगता है। तिलकमञ्जरी को भी आँसू और मुस्कान, हर्ष और विषाद, उल्लास और निर्वेद, आशा और निराशा के प्रवल घात-प्रतिघातो का सामना करना पडा है। इन्ही लोगो के जीवन-प्रवाह मे पडकर गन्धर्वक और चित्रमाय को भी चैन नही मिला है। इस प्रकार हम देखते है कि धनपाल के इन पात्रो मे जीवन की गतिशीलता का सच्चा स्वरूप प्रतिविम्वित हुआ है।

पाँचवाँ वर्गीकरण : व्यवहार की दृष्टि से

जिस प्रकार समाज मे—अच्छे और बुरे—दोनो ही तरह के लोग रहते है उसी प्रकार उपन्यास जगत् मे भी कुछ पात्र तो ऐसे होते है जो दूसरो के हित के लिए अपने हित की परवाह नही करते, और ठीक इसके विपरीत कुछ पात्र ऐसे भी होते है जो अपने हित के लिए दूसरो के हित की परवाह नही करते है। इनमे पहले वालो को 'परोपकार-परायण' और दूसरे वालो को 'स्वार्थपरायण' कहा जाता है।

यहाँ कुछ सज्जन ऐसा तर्क कर सकते है कि समाज और उपन्यास—दोनो ही—मे ऐसे व्यक्ति की उपलब्धि या परिकल्पना—जो या तो जीवनभर परोपकारपरायण रहा हो और जिसने कभी भी जरा भी किसी भी प्रकार की किसी की उपेक्षा या अपकार नही किया हो; और या फिर जो जीवन भर स्वार्थ के ही कीचड मे फँसा रहा हो और जिसने कभी भी जरा भी किसी भी प्रकार की किसी के प्रति कोई सवेदना या भलाई न की हो—असम्भव नही तो अस्वाभाविक अवश्य है। इसलिए किसी को अच्छा या बुरा कह देना उचित नही है, आदि-आदि। पर यह तर्क विचारपूर्ण नही है। यह तो मैं भी मानता हूँ कि कोई भी व्यक्ति ऐकान्तिक और आत्यन्तिक रूप से न तो अच्छा हो सकता है और न बुरा ही। मानव के स्वाभाविक गुण-दोष, जिन्हे क्रमश परोपकार और स्वार्थ की सज्ञा दी जाती है, उसमे रहते ही है। लेकिन हमारा यह वर्गीकरण उनकी सत्तामात्र पर ही अवलम्बित नही है, वल्कि उन गुण-दोषो की मात्रा की अधिकता और न्यूनता पर निर्भर है। यदि कोई पात्र अपने जीवन के अधिकाश क्षणो मे अधिकाश कार्यकलाप मानवता के अनुकूल करता है तो, भले ही उसके एकाध काम मे मानवता की उपेक्षा हो गई हो, उसे

हम परोपकारपरायण पात्र की कोटि मे ही रखेगे। इसी प्रकार यदि कोई पात्र अपने जीवन के अधिकाश क्षणो मे अधिकाश कार्य मानवता के खिलाफ करता है तो, भले ही उसका एकाध काम मानवता के अनुकूल ही क्यो न हो, उसे हम स्वार्थपरायण पात्रो की कोटि मे ही रखेगे। इन्ही को सरल शब्दो मे क्रमश 'साधुपात्र' और 'खलपात्र' भी कह सकते है। श्री जालादि विश्वमित्र ने ऐसे ही पात्रो को क्रमश धनात्मक (पोजिटिव) और नकारात्मक (निगेटिव) पात्र की सज्ञा दी है।[१६]

धनपाल की तिलकमञ्जरी मे सेनापति वज्रायुध को खलपात्र की सज्ञा देने का मन तब होने लगता है जब मलयसुन्दरी के मुँह से यह सुनने को मिलता है कि वह जबरदस्ती उससे शादी करना चाहता था और उसके कारण ही मलयसुन्दरी को अपने माता-पिता का राजमहल छोडकर अपने प्रणय की रक्षा के लिए जगल की खाक छाननी पडी थी। इसके अतिरिक्त मेघवाहन, हरिवाहन, समरकेतु, तारक, गन्धर्वक, चित्रमाय, तिलकमञ्जरी, मलयसुन्दरी, चित्रलेखा, बन्धुसुन्दरी आदि पात्रो को साधु पात्रो की श्रेणी मे गिना जा सकता है।

डॉ० प्रतापनारायण टण्डन ने प्रमुख और सहायक, पुरुष और स्त्री, खलत्व, यथार्थवाद, व्यक्तिवाद, मनोविज्ञान, मानसिक असन्तुलन, प्रतीकवाद, इतिहास, राजनीति, समाज, धर्म, पुराण और बुद्धिवाद के भेद से पात्रो के जो भेद किए है,[१७] उनमे से कुछ तो इन्ही उपर्युक्त पाँच वर्गो मे अन्तर्भूत हो जाते है, और जो कुछ शेष बचते है वे उपन्यास के प्रतिपाद्य विषय की ओर जितना इशारा करते है उतना पात्रो के वर्गीकरण की ओर नही। और यदि औपन्यासिक प्रतिपाद्य विषय पर ही पात्रो का वर्गीकरण आधारित कर दिया जाय तो इसे ससीम नही रख सकते है। इसलिए मेरे विचार से पात्रो के वर्गीकरण को अनावश्यक विस्तार से बचाने के लिए इन्ही उपर्युक्त प्रमुख पाँच प्रकारो से समीक्षक को सन्तोष कर ही लेना चाहिए।

वास्तव मे देखा जाए तो पात्रो का यह वर्गीकरण उनको समझने की केवल सुविधा तो प्रदान कर सकता है, किन्तु उन्हे पूरे तौर से अलग-अलग नही कर सकता है। क्योकि मनुष्य का जीवन समय समय पर भिन्न-भिन्न प्रकार की विचारधाराओ से प्रभावित होता रहता है। वह स्वय भी अपने-आप मे एकता मे अनेकता को समेटे रहता है। इसलिए उसे पूर्ण रूप से किसी एक ही वर्ग-विशेष मे मानने का आग्रह नही करना चाहिए। इस सन्दर्भ मे पाश्चात्त्य जगत् के विख्यात मनीषी टालस्टाय के गम्भीर और सारगर्भित विचारो को उद्धृत करने का लोभ मै नही रोक पा रहा हूँ। उन्होने मानव-जीवन की सूक्ष्मता एव निष्पक्ष मीमासा करते हुए कहा है—

"बहुप्रचलित मूढ विश्वासो मे से एक यह भी है कि प्रत्येक मनुष्य के कुछ अपने विशिष्ट गुण होते है, जैसे अमुक दयालु है, अमुक दुष्ट है, अमुक मूर्ख है, अमुक प्रभावशाली है, और अमुक उदासीन है। लेकिन मनुष्य इस तरह (किसी विशेष प्रवृत्ति मात्र के ही) नही होते। हम इतना कह सकते है कि वह दुष्ट से अधिक दयालु है, मूर्ख से अधिक बुद्धिमान् है और उदासीन से अधिक प्रभावशाली है। लेकिन यह कहना सत्य न होगा कि अमुक दयालु और बुद्धिमान् है, और अमुक दुष्ट और मूर्ख है। तब भी हम लोगो को

इसी प्रकार से वर्गीकृत करते है जो मूलत गलत है। मनुष्य नदियो के समान है, सभी मे एक ही पानी (गुण) है। लेकिन हर नदी कुछ स्थलो पर पतली और तीव्रगति वाली, और कुछ स्थानो मे विस्तृत और मन्दगति वाली होती है। कभी उसका पानी स्वच्छ और सुखदायक रहता है और कभी गदला और कष्टदायक, कभी ठण्डा और कभी गरम। मनुष्य भी इसी तरह के होते है। प्रत्येक मनुष्य मे मानवीय गुणो का हर एक जीवाणु रहता है, लेकिन कभी कोई एक प्रकाश मे आता है तो कभी कोई दूसरा। कभी-कभी मनुष्य अपने स्वभाव से बिल्कुल विपरीत भी पड सकता है जबकि वास्तव में वह वही रहता है।"[१८]

श्री टालस्टाय के उपर्युक्त उद्धरण से यह बात साफ जाहिर हो जाती है कि हम उपन्यास के पात्रो को केवल स्थूल रूप से तो विभक्त कर सकते है पर उनके सूक्ष्म और आधारभूत व्यक्तित्व मे वर्गभेद नही कर सकते। अत विद्वान् पाठको से मेरा अनुरोध है कि वे पात्रो के इस वर्गीकरण को पढते समय 'प्राधान्येन व्यपदेशाः भवन्ति' (अर्थात् प्रधानता के आधार पर ही नाम दे दिया जाता है) के न्याय को कृपया नजर-अन्दाज नही करे।

सन्दर्भ

१ अपारे काव्यससारे कविरेक प्रजापति। यथाऽस्मै रोचते विश्व तथेद परिवर्तते ॥

—ध्वन्यालोक, तृतीयोद्योत, कारिका ४३ की व्याख्या मे।

२ "We need not ask what happened next, but to whom did it happen, the novelist will be appealing to our intelligence & imagination not merely to our curiosity."

—E. M. Forster · Aspect of the novel, p 51

३ "Since the actors in a story are usually human, it seemed convenient to entitle this aspect of the people. Other animals have been introduced but with limited success, for we know too little so far about their psychology."

—E. M. Forster Aspect of the novel p 51

४. —भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, सामान्याभिनय नामक अध्याय २४, नि० सा० प्र०, १६४३

५ —अग्निपुराण, शृङ्गारादिरसनिरूपणनामक अध्याय ३३६, कलकत्ता प्रकाशन, १६५७

६. देखिये— (क) धनञ्जय, दशरूपक, द्वितीयप्रकाश, कारिका १-४६

(ख) रामचन्द्रगुणचन्द्र, नाट्यदर्पण, चतुर्थविवेक, कारिका १६१-१६१

(ग) विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, परिच्छेद-३, कारिका ३०-१३१ के पूर्वार्ध तक।

(घ) सर्वेश्वराचार्य, साहित्यसार, चतुर्थप्रकाश, कारिका ४-७०

७. 'मिश्र च सङ्करात्ताभ्या विव्यमर्त्यादिभेदत ।'

—दशरूपक, प्रथमप्रकाश, कारिका १६ का पूर्वार्ध ।

८. 'क्षत्रियो मर्त्य एव, तेन न देवनेतृकं नाटकमित्युक्त भवति। नाटक हि रामवद् वर्तितव्य न रावणवद् इत्युपदेशपरम्। देवताना तु दुरुपपादस्यापि अर्थस्य इच्छा-मात्रत एव सिद्धिरिति, तच्चरितमशक्यानुष्ठानत्वान्न मर्त्यानामुपदेशयोग्यम्। तेन ये दिव्यमपि नेतार मन्यन्ते, न ते सम्यगमसतेति।'

—नाट्यदर्पण, प्रथमविवेक, कारिका ५ की व्याख्या ।

९. 'नायिका तु दिव्यापि भवति, यथोर्वशी। प्रधाने मर्त्यचरिते तच्चरितान्तर्भावात्। ···दिव्यो हि नेतैव विरुध्यते न पुन सहाय। अत्यन्तभक्तानामेव नाम देवता प्रसीदन्तीति देवताराधनपुरस्सरम् उपायानुष्ठानमाधेयमिति व्युत्पादनार्थं दिव्यो-ऽप्यङ्गत्वेन कार्य.।'

—वही

१० "Does the novelist succeed in making his men and women real to our imaginations? Do they in Trollop's phrase,...stand upright on the ground?...We know and believe in them as thoroughly, we sympathise with them as deeply, we love and hate them as cordially, as though they belonged to the world of flesh and blood And...his men & women shall move through his pages like living beings and like living beings remain in our memory after his book is laid aside and its details perhaps forgotten."

—W H Hudson An Introduction to the study of Literature, p 145

११. आचार्यचतुरसेन का कथासाहित्य, पृ० २४१

१२. उपन्यासकला . एक विवेचन, पृ० ४५

१३. We may divide characters into flat and round That characters were called 'Humours' in the Seventeenth Century. and are sometimes called types, and sometimes caricatures In their purest form, they are constructed round a single idea or quality When there is more than one factor in them, we get the beginning of the curve towards the round The really Flat Character can be expressed in one sentence such as—'I never will desert Mr. Micawber.'

—Aspect of the Novel p 75

१४. "One great advantage of Flat characters is that they are easily recognized whenever they come in—recognized by the reader's emotional eye, not by the visual eye which merely notes the recurrence of a proper name. .It is a convenience for an author

when he can strike with his full force at once, and flat characters are very useful to him, since they never need reintroducing,... have not to be watched for development, and provide their own atmosphere.... A second advantage is that they are easily remembered by the reader afterwards. They remain in his mind as unalterable for the reason that they were not changed by the circumstances;...we must admit that flat people are not in themselves as big achievements as round ones, and also that they are best when they are comic. A serious or tragic flat character is apt to be a bore. Each time he enters crying 'Revenge', or 'My heart bleeds for humanity', or whatever his formula is,...It is only round people who are fit to perform tragically for any length of time and can move us to any feelings except humour and appropriateness." —Aspects of the Novel, p. 76, 77, 80 & 81

१५. "Mr. Forster calls those characters flat, and regrets that they should be flat...why, indeed, should not a character be flat? The only real answer to this is that the present taste in criticism prefers round characters. The taste of the next generation may prefer flat, for all we know...later in this essay I shall try to show that the flat character is the only one which could serve the purpose of the novelist of character, that it is his necessary vehicle for converging one kind of vision of life. Meanwhile let us accept the unchangeability of flat characters as a quality rather than a fault....To see the flat character in proportion,...perhaps the best thing...is to make a short list of some of the chief flat characters...Take them all away, and we take away atleast three quarters of the figures in English fiction...The flat character cannot be dismissed so easily, then." —Edwin Muir The Structure of the Novel, London Edition of 1963. p. 25 to 26 and 139 to 140

१६. उपन्यासकला : एक विवेचन, पृ० ४६

१७. हिन्दी उपन्यासकला, पृ० १८०-१६६

१८. जार्ज लूकस द्वारा लिखित 'स्टडीज इन यूरोपियन रियलिज्म' के १८५ पृष्ठ पर उद्धृत ।

द्वितीय सोपान

तिलकमञ्जरी के पात्रों का परिचय एवं उनकी चारित्रिक विशेषताएँ

हरिवाहन

यह सम्राट् मेघवाहन का इकलौता पुत्र है। एक तो यह श्रीलक्ष्मी जी के वरदान से उत्पन्न हुआ है, दूसरे यह स्वय अपने पूर्वजन्म का ज्वलनप्रभ नामक देवविशेष है,[1] इसलिए यह सभी स्पृहणीय गुणो का पुज है। धनपाल ने पाठको को इसके आरम्भिक सत्रह सालो की ही जीवन-झाँकी दिखाई है। किन्तु इसकी उस जीवन-झाँकी मे ऐसा अद्भुत आकर्षण और ऐसी विलक्षण चमक-दमक है कि पाठक अपने आपको भूलकर उसी मे खो जाता है। पाँच साल की अवस्था तक तो यह अन्त पुर मे ही सबके मनोमयूरो को नचाता रहता है, इसके बाद इसे विद्याध्ययन मे लगाया जाता है। कुशाग्रबुद्धि इतना है कि दस साल मे ही समस्त विद्याओ और उपविद्याओ मे पारगत हो जाता है। चित्र-निर्माण और वीणावादन जैसी ललितकलाओ की सूक्ष्म बारीकियो से भी यह भलीभाँति परिचित हो जाता है। साथ ही साथ शारीरिक बल एव सौन्दर्य मे भी यह सभी नर और नारियो की प्रशसा का पात्र बन जाता है।[2] अत मुझे यह कहने मे जरा भी सकोच नही है कि राजकुमार हरिवाहन मे शील, शक्ति एव सौन्दर्य का मजुल सगम है।

यह इस कथाकाव्य (उपन्यास) का नायक (हीरो) भी है। शास्त्रीय दृष्टि से इसे 'धीरोदात्त नायक' की कोटि मे मान सकते है।[3] क्योकि हम देखते है कि नायक के सामान्य गुणो के साथ ही साथ इसमे धीरता, गम्भीरता, क्षमा, आत्मश्लाघा का अभाव, निरभिमानिता, सकल्प की दृढता आदि असामान्य गुणो का भी निवास है। वास्तव मे पाठको के समक्ष इसके व्यक्तित्व की प्रत्यक्ष क्रियाशीलता तो तब से प्रकट होती है जब से इसे युवराज समरकेतु का साथ मिलता है।

भ्रमणशीलता

इसे उपवनो और वनो मे घूमने का काफी शौक है। अपने सगी-साथी समरकेतु आदि राजकुमारो को साथ लेकर सरयू नदी के किनारे निकल जाने मे और वही मत्त-कोकिल नामक उद्यान मे घूमने मे इसे बडा मजा आता है। चिन्ता के दिनो मे भी इसे उपवन और वनो मे ही समय बिताना अच्छा लगता है। तिलकमञ्जरी, जो इस कथा

(उपन्यास) की नायिका है, के चित्र को देखकर जब इसे कामोत्कण्ठा पीडित करती है तो यह अपना अधिकाँश समय मत्तकोकिल नामक उद्यान मे ही बिताता है, और वही गन्धर्वक का इन्तजार भी करता है। निराश होकर यह जब अपने मन को बहलाने के लिए अयोध्या से निकलता भी है तो उत्तराखण्ड के वनो मे ही अपना डेरा लगाता है।

काव्यरसिकता

यह काव्यरसिक भी प्रथम श्रेणी का है। कविता की गहराई तक जाने मे इसे कमाल हासिल है। इसीलिए इसी की अध्यक्षता मे ऐसी काव्यगोष्ठियाँ होती है, जहाँ चित्रकाव्य, प्रहेलिकाएँ और अक्षर, मात्रा तथा बिन्दु से रहित कविताओ का मर्म बताना पडता है।[४] इसकी काव्यकला-कुशलता का असली पता हमे तब लगता है, जब यह—

गुरुभिरदत्ता वोढु वाञ्छन्मामक्रमात्त्वमचिरेण।
स्थातासि पत्रपादपगहने तत्रान्तिकस्थाग्नि ॥

—आर्या का अपनी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के बल से शीघ्र ही सन्दर्भ सहित मर्मोद्घाटन कर देता है,[५] जबकि दूसरे राजकुमार सोचते ही रह जाते है। इसी प्रकार इसकी काव्यरसिकता का दूसरा उदाहरण उस समय मिल जाता है, जब यह शाक्यबुद्धि नामक सचिव की प्रेरणा पाकर विराध नामक नर्मसचिव द्वारा हस के लिए कही गई 'अन्योक्ति' का अर्थ अपने लिए समझने मे जरा भी भूल नही करता।[६]

ये तो दो हुए इसकी काव्य-बोध की प्रतिभा के उदाहरण, अब दो नमूने इसकी काव्यरचना के भी देखिए। पहला नमूना तो उस समय देखने को मिलता है जब वैताढ्य पर्वत पर एला-लतामण्डप मे पहली बार तिलकमञ्जरी को देखकर इसका कवि-हृदय मुखरित हो उठता है। उस समय इसने उसकी रूपच्छवि का क्रमश 'हरिणी' और 'शार्दूलविक्रीडित' छन्दो मे दो पद्यो[७] द्वारा जो वर्णन किया है, वह इसकी कवित्वशक्ति का प्रबल परिचायक है। तिलकमञ्जरी को कभी तो राहु के भय से भागी हुई चन्द्रमा की शोभा समझना, कभी मन्थन से घबडाकर समुद्र से निकली हुई अमृत की देवी समझना, कभी भगवान् शकर की नेत्राग्नि से जले हुए कामदेवरूपी वृक्ष से उत्पन्न हुई नई कामलता समझना, मेरी दृष्टि से तो काफी रोचक कल्पना है। दूसरे पद्य मे यह कल्पना की गई है कि तिलकमञ्जरी की लम्बी-लम्बी आँखे उसके कानो तक इसीलिए गई है, मानों वे उन कानो को अपने से ज्यादा जानकार समझकर उनसे यह पूछना चाहती है कि क्या कही किसी अन्य युवती का भी शरीर इतना ही सुन्दर है जितना कि इसका? क्योकि आँखे तो स्वभाव से ही सरल है, उन्हे तो वैसा रूप कही दिखाई नही दिया। पर कही ऐसा तो नही है कि कानो ने किसी युवती के रूप की प्रशसा सुनी हो। बस अपने इसी सशय को मेटने के लिए आँखो का कानो के पास तक जाना नितान्त स्वाभाविक रूप मे उत्प्रेक्षित किया गया है। लोक मे भी सशयग्रस्त और सीधा-सादा पुरुष अपने सशय को मेटने के लिए अपने किसी समीपवर्ती जानकार आदमी के पास जाता ही है। बस ठीक ऐसा ही व्यापार यहाँ कल्पित किया गया है। वाह, क्या ही सुन्दर और दिल

को छू लेने वाली उद्भावना है। कमाल है, इन पद्यो मे सन्देहालकार और उत्प्रेक्षालकार की छटा दर्शनीय है। दूसरा नमूना भी इससे मिलता-जुलता ही है। अदृष्टपारसरोवर के तीरवर्त्ती जैनमन्दिर मे पूर्वाह्लसन्ध्योपासना करती हुई मलयसुन्दरी को जब यह देखता है तो उस समय भी इसका कविहृदय नितान्त उल्लसित होने लगता है; और उसके रूप की प्रशसा मे बडे ही स्वाभाविक ढँग से 'मन्दाक्रान्ता' और 'शार्दूलविक्रीडित' छन्दो मे जिन दो पद्यो को गुनगुनाने लगता है, वे निश्चय ही इसकी काव्यरचनाचातुरी के ज्वलन्त प्रतीक है।[८]

पहले पद्य मे इसका विश्वास है कि मलयसुन्दरी की आँखें नीलकमल की कली को मात दे रही है, उभरे हुए दोनो उरोज हाथी के ललाटकलशो को नीचा दिखा रहे है, गालो की स्वच्छता हाथी के कटे हुए दांत की शोभा को धारण कर रही है और मुँह की कान्ति अपनी आभा से चन्द्रमा के मण्डल को तुच्छ साबित कर रही है।

दूसरे पद्य मे इसका आशय है कि मलयसुन्दरी की आँखो से, जो कमलकली की लम्बाई को तिरस्कृत करने वाली है, अपनी लम्बी-लम्बी आँखो को पराजित समझकर तो मृगो ने, और पूनम के चाँद के समान चमचमाते हुए मुखारविन्द की शोभा से अपनी छवि को परास्त समझकर कमलो ने लोगो के आवागमन से रहित वनो (मृगो के पक्ष मे कानन, और कमलो के पक्ष मे जल) मे अपना-अपना बसेरा कर लिया है। ठीक भी है, जब कोई किसी से किसी बात मे पराजित हो जाता है तो वह हीनभावना के कारण एकान्त मे जाकर अपने आपको छिपा लेता है। यही हाल मृगो और कमलो का भी हुआ। कहना न होगा कि यहाँ प्रतीप और श्लेष अलकारो की मिली-जुली किरणे पाठको के हृदय क्षितिज पर अपना रगीन आलोक बिखेर रही है। वाह, क्या ही कोमल उद्भावना है।

वीणा-प्रवीणता

हरिवाहन को वीणा बजाने का बेहद शौक है। उसने इस कला मे कमाल हासिल किया है। उसकी वीणा के तारो की झकार मे सचमुच एक जादू है। मनुष्यो की तो बात रही दूर, जगली जानवरो को भी वह अपनी वीणा की मधुर झकार से वश मे कर लेता है। पाठको को याद होगा कि जगल मे उसकी वीणा की मधुर ध्वनि को सुनकर पशुओ के छोटे-छोटे बच्चे उसके पास आ जाया करते थे।[९] इतना ही नही उसने अपने उस मदोन्मत्त हाथी को भी, जिसके पास जाने की बडे-बडे पेशेवर महावत भी हिम्मत नही कर पा रहे थे, अपनी वीणा की ही स्वरलहरी से वशीभूत कर लिया था।[१०] आश्चर्य है कि जब तक राजकुमार की वीणा से स्वर-प्रवाह निकलता रहा, तब तक वह पागल हाथी भी आत्मविभोर बना रहा। धन्य हो तुम कुमार! और धन्य है तुम्हारी वीणा की वह मधुर तान।

चित्रकला कौशल

वीणावादन के समान ही चित्रकला मे भी यह निपुण है। इसे इस कला की भी

बारीकियो की बहुत अच्छी परख है। गन्धर्वक ने जब इसे अपना बनाया हुआ तिलकमञ्जरी का चित्र दिखाया, तो सब तरह से खूबसूरत होने के बाबजूद भी उस चित्र मे इसकी पैनी निगाह से यह कमी छिपी न रही कि इस तरुणी के चित्र के साथ ही साथ किसी तरुण का भी चित्र होना चाहिए था, जिससे इसकी शोभा मे अवश्य ही चार-चाँद लग जाते। इस कमी को गन्धर्वक ने भी महसूस किया है।[११]

अक्षक्रीडा

हरिवाहन को अक्षक्रीडा (चौसर के खेल) मे भी रुचि है। उसे इसका व्यसन नही है, पर कभी-कभी समय बिताने के लिए वह इस खेल को बुरा नही मानता है। तिलकमञ्जरी के भवन मे उसकी सखी मृगाङ्कलेखा के निवास स्थान पर वह भोजन की प्रतीक्षा मे मृगाङ्कलेखा के साथ 'अक्षक्रीडा' करता है।[१२]

जलसन्तरण-कौशल

हरिवाहन जहाँ अन्य अनेक कलाओ मे पारगत है वहाँ वह पानी मे भी तैरना जानता है। अदृष्टपार सरोवर अथाह है। वह हाथी, जो उसे आकाशमार्ग से उडाकर ला रहा था, जब उसे ऊँचे आसमान से सरोवर मे ला गिराता है और स्वय लापता हो जाता है, तब भी वह घबड़ाता नही है। वह पहले तो, वेग से गिरने के कारण, पानी मे नीचे धँसता जाता है, पर बाद मे ऊपर की ओर उठता हुआ जब पानी की सतह पर आ जाता है तो बडी धीरता के साथ हाथो से पानी चीरता हुआ और तैरता हुआ किनारे लग जाता है। इतने बडे अगाध सरोवर मे इतनी ऊँचाई से गिरने के बावजूद भी उसने धैर्य नही छोड़ा और सकुशल किनारे आ गया, यह उसकी जल-सन्तरण कुशलता का उत्कृष्ट प्रमाण है।[१३]

दयाशील और परोपकारशील

यह स्वभाव से बहुत ही दयालु और परोपकारी है। किसी भी जीव को निरपराध मारना या सताना इसे बिलकुल पसन्द नही है। सच पूछिए तो यह जगल मे भी अहिसावादी है। जब यह घूमने जाता है तो वहाँ के भिन्न-भिन्न पशुओ को बडे प्यार से देखता है। दूसरे साथी मृगयाशील राजकुमार इसे चाहे जितना ही उकसावे, पर यह दयालु होने के कारण ही उन पशुओ पर शस्त्र प्रहार नही करता है।[१४] दूसरो की भलाई करने मे भी यह अनुपमेय है। यह किसी को दु खो नही देख सकता है। उसके दु ख को दूर करने मे यह अपना सब कुछ भी देने को तैयार हो जाता है, और यहाँ तक कि अपने प्राणो को भी सकट मे डाल लेता है। अनगरति के दु ख से इतना द्रवीभूत हो जाता है कि उसके लिए छ माह तक घोर तपस्या करता है। सच्चा और निर्लोभ भी इतना है कि जब देवी प्रसन्न होकर इसे वर माँगने को कहती है, तो यह सच्चे मन से उसी अनंगरति के सुख के लिए वर माँगता है। उस समय इसके मन मे जरा देर के लिए भी यह विचार नही आता है कि मैने तप किया है तो क्यो न अपने लिए भी कुछ माँग लूँ? वास्तव मे यह उसकी

परोपकारपरायणता और सत्यता का ज्वलन्त उदाहरण है, जो आज के समाज मे दुर्लभ है।[१५]

सुहृत्-प्रेम

अपने दोस्तो के लिए इसके दिल मे बेहद प्यार है। यह अपने संगी-साथी सभी राजकुमारो से समानता और शालीनता का व्यवहार करता है। यह इस बात को भी अच्छा नही समझता कि इसका कोई साथी किसी दूसरे साथी की मजाक उड़ाय। जब स्वय हरिवाहन द्वारा 'गुरुभिरदत्ताम्···' पद्य के अर्थ को सुनकर कमलगुप्त आदि सभी राजकुमार वाह-वाह करने लगते है, तब केवल समरकेतु को चुप देखकर कमलगुप्त उसकी कुछ मजाक उडाता है। किन्तु हरिवाहन को यह अच्छा नही लगता और वह कमलगुप्त को रोककर समरकेतु से बडे स्नेह से उदासीनता का कारण पूछता है।[१६] इसके सुहृत्-प्रेम का सच्चा और सर्वांगीण निदर्शन तो हमे तब मिलता है जब यह शुकरूप गन्धर्वक के द्वारा लाए गए पत्र मे समरकेतु की मानसिक व्यथा को पढकर तिलकमञ्जरी जैसी अद्वितीय सुन्दरी और नवप्रेयसी को भी छोडकर अपने दोस्त समरकेतु को देखने के लिए चलने को आतुर हो उठता है और चल भी देता है। समरकेतु से तो इसका असीम स्नेह है, उसे यह अपना सहोदर ही समझता है। जब इसे छावनी मे लौटने पर यह पता चलता है कि समरकेतु उसी की खोज मे रात मे बिना किसी को कुछ बताए जगल मे निकल गया है तो इसका दिल उसके प्यार और वियोग मे तडप उठता है। यह समरकेतु की खोज मे तिलकमञ्जरी के भी सान्निध्य सुख को छोड देता है। आज समाज मे ऐसे व्यक्तियो का अभाव है जो दोस्त के लिए प्रेमिका की परवाह न करते हो। छ माह बाद जब अचानक ही समरकेतु मिलता है तो इसे अपार हर्ष का अनुभव होता है। विचित्रवीर्य की ओर से जब समरकेतु के साथ मलयसुन्दरी के विवाह का प्रस्ताव आता है तो इसका हृदय आनन्द से उल्लसित होने लगता है, शीघ्र ही उसे भेजता है और बाद मे उसे अपने उत्तराखण्ड के राज्य का सारा अधिकार सौंप देता है।

व्यवहार-शिष्टता

यह व्यवहार मे और बातचीत मे बहुत ही शिष्ट और शालीन है। अद्वितीय सुन्दर लडकियो की एकान्तता और निर्बलता से इसके चित्त मे कोई तूफान नही उठता है, बल्कि उनके साथ वार्तालाप करने मे इसकी जो स्वाभाविक शिष्टता एव शालीनता रहती है, वह प्रशसनीय ही होती है। उदाहरणार्थ हम उस स्थान को ले सकते है जहाँ इसकी तिलकमञ्जरी से या मलयसुन्दरी से पहली मुलाकात होती है।

माता-पिता पर श्रद्धा

यह मातृदेव और पितृदेव भी है। अपने माता-पिता के लिए अपने मन मे सदैव अपार आदर और श्रद्धाभाव रखता है, यहाँ तक कि यह उनके सामने जमीन पर ही बैठता है।[१७] राज्य-भ्रमण के लिए अपने पिता से प्रधानमन्त्री के माध्यम से ही आज्ञा

लेता है। समरकेतु के विषय मे अपने पिता के वचन को अक्षरश निभाता है। अपने अपहरण के समाचार को माता-पिता तक शायद इसीलिए नही पहुँचाना चाहता है कि वे सुनकर बुरी तरह घबडा जाएँगे और दु.खी होगे।[१८]

आदर्श-प्रेमी

आदर्श-प्रेम भी इसकी एक विशेषता है। भ्रमरवृत्ति से यह कोसो दूर है। तिलकमञ्जरी के चित्र को देखकर इसके चित्र मे प्रणय का जो प्रथम अकुर फूटता है, उसे ही पल्लवित, पुष्पित एव फलित करने मे यह अपना सौभाग्य समझता है। अपनी प्रियतमा तिलकमञ्जरी के रूप और गुणो की तुलना मे अपने रूप और गुणो को सदैव तुच्छ मानता है। चूँकि तिलकमञ्जरी इसके पूर्वजन्म की प्रियतमा है, अत उसको देखते ही इसके मानस में स्नेह की लहरे उठने लगती हैं। उसे अपनी ओर आकृष्ट जानकर प्रसन्नता से इसका मनोमयूर नाच उठता है। समरकेतु की तलाश के दिनो मे भी यह अपनी प्रेमिका की याद बराबर बनाए रखता है। यह सच्चा प्रेमी है। अपनी प्रेमिका के अनुग्रह के बिना इसे अपना जीवन भी व्यर्थ प्रतीत होने लगता है। इसका पता हमे तब लगता है जब यह उपहार के रूप अपनी प्रणयिनी तिलकमञ्जरी के पास हार भेजता है, जिसे देखकर तिलकमञ्जरी को अपने तथा अपने प्रेमी ज्वलनप्रभ के पूर्वजन्म की याद आ जाती है और इसीलिए वह जीवनसगिनी न बन पाने की सूचना भरे दिल से भेज देती है,[१९] जिसे पाकर हरिवाहन बुरी तरह बैचेन हो जाता है और उसके सारे होश-हवाश गुम हो जाते है। अपनी प्रेमिका के प्रति यह इतना भावुक है कि उसके वियोग मे जीना ही नही चाहता, तुरन्त ही पहाड़ की चोटी से गिरकर आतमघात करने के लिए चल पडता है। यह है इसका सच्चा प्रेम। छ माह बाद जब यह विद्याधरो का चक्रवर्ती सम्राट् बनता है तो इसे प्रेमिका की फिर याद आती है। उसी समय अचानक आए हुए गन्धर्वक से तिलकमञ्जरी की हालत सुनकर यह सब कुछ छोडकर शीघ्र ही पहुँचकर मरणोद्यत तिलकमञ्जरी के प्राणो की रक्षा करता है। अन्त मे इस अपने सच्चे प्रेम के प्रतिदान के रूप से तिलकमञ्जरी का हाथ हमेशा के लिए मिल भी जाता है।

धार्मिक और चिन्तनशील

यह धार्मिक भी है। चिन्ता और दु.ख के दिनो मे भी यह त्रिकालसन्ध्योपासना करता है। देवाराधना मे इसे पूरा-पूरा विश्वास है, तभी तो अनङ्गरति के कहने पर लक्ष्मी की आराधना मे छ माह तक लगा रहता है। सभी शास्त्रो मे पारगत होने के कारण इसकी प्रकृति भी चिन्तनशील है। किसी भी परिस्थिति पर यह गम्भीरता से विचार करता है। तिलकमञ्जरी के विषय मे सोचने का इसका ढँग निराला ही है, जो काफी हदतक सचाई लिए हुए है। ससार की द्वन्द्वात्मकता और परिवर्तनशीलता से यह भली-भाँति परिचित है। अदृष्टपारसरोवर के अथाह जल मे बाहर निकलने पर इसने ससार की स्थिति पर जो प्रकाश डाला है वह सामान्य पाठक के हृदयक्षितिज पर छाए हुए अज्ञानान्धकार को दूर करने मे पूरी तौर से समर्थ है।[२०] मलयसुन्दरी की दर्दीली

प्रेमकहानी को सुनने के बाद इसने ससार की जो मीमासा की है, वह अनुपम और प्रगाढ-चिन्तनशील की परिचायक है—

आश्चर्य है,···विधाता की गति को रोका नही जा सकता; होनहार सभी जगह होकर ही रहती है, तभी तो राजा-महाराजाओ के महलो मे जन्म लेने वाले, असाधारण गुणो से भरपूर, सदाचार का पालन करने वाले लोगो पर भी ऐसी विपत्तियाँ आ टूटती है। मलयसुन्दरी! अपने आपको दु खी मत करो, शोक मत करो; उदास मत हो, न भाग्य को कोसो और न अपने को दोष दो। इस दुनियाँ मे अच्छे से अच्छे व्यक्ति को भी चिराग की लौ के समान तरह-तरह की परिस्थितियो का सामना करना पडता है। ऐश्वर्यसम्पन्न कुल मे उत्पन्न होकर भी निर्विघ्न सुख नही मिल पाते, भरेपूरे परिवार वाला भी क्षणभर मे अकेला रह जाता है। कभी-कभी सब ओर से निराश व्यक्ति को अचानक ही अलौकिक लाभ हो जाता है और कभी-कभी हाथ आई चीज से भी हाथ धोना पडता है। ··देवताओ मे या मनुष्यो मे ऐसा कौन है जिसका सारा जीवन एक ही अवस्था मे गुजरा हो? बड़े से बडा भाग्यवान् भी दु.खी हो जाता है। इसलिए तुम धीरज रखो, सन्तोष रखो, तुम्हारे दुःख के दिन अब पूरे हो गए है।[२१]

अब कहना शेष न रहा होगा कि उपर्युक्त विचारो मे जीवन का सच्चा स्वरूप चित्रित करके हरिवाहन ने अपनी विद्वत्तापूर्ण चिन्तनशीलता का परिचय दिया है, जो इसकी शिक्षा के सर्वथा अनुरूप है।

वास्तव मे कथानायक राजकुमार हरिवाहन मे शील, शक्ति, सौन्दर्य, वैदुष्य, कलाप्रेम, सौहार्द, साहस, मातृभक्ति, पितृभक्ति, प्रेयसीस्नेह, शिष्टता, शालीनता, दया, परोपकार आदि स्पृहणीय गुणो का अहमहमिकया स्थायी निवास है।

तिलकमञ्जरी

रथनूपुरचक्रसाल नामक विद्याधरनगरी मे निवास करने वाले चक्रवर्ती विद्याधर सम्राट् चक्रसेन की यह इकलौती पुत्री है। यह अपने माता-पिता की दुलारी बेटी है। यह साधारण कन्या नही है, बल्कि अपने पूर्वजन्म मे ज्वलनप्रभ नामक वैमानिक की प्रियतमा पत्नी और साक्षात् लक्ष्मी की प्रिय सहेली भी थी।[२२] यही कारण है कि इस जन्म मे इसका व्यक्तित्व बहुत ही आकर्षक और ओजस्वी है।

यह प्रस्तुत कथाकाव्य की नायिका भी है। शास्त्रीय दृष्टि से इसे परकीया अनूढा नायिका की कोटि मे रख सकते है।[२३]

अद्वितीय सुन्दरी

षोडशी और विद्याधरराजबाला होने के कारण इसका शरीर सुन्दरता का सागर है। अपने अद्वितीय सौन्दर्य से ही यह हरिवाहन जैसे सयमी राजकुमार की मनोभूमि मे काम का बीज बो देती है।[२४] इसके घुंघराले केश, चमचमाता हुआ चाँद-सा मुखडा, रस-भरे होठ, लम्बी और कजरारी आँखे, उभरे हुए उरोज, पतली कमर, गहरी नाभि, चिकनी-माँसल और कदली के खम्भे के समान चढाव-उतार वाली जाँघे और कमल के

पाँव;—कुल मिलाकर इसे हम सुन्दरता की साक्षात् चलती-फिरती तस्वीर कह सकते हैं। इसके शरीर की शोभा मे चाँदनी जैसी आह्लादकता, अमृत की देवी जैसी मधुरता और कोमलता जैसी मादकता है। प्रतीत होता है कि विधाता ने इसे अनुपम और अलौकिक लावण्य देकर अपने सौन्दर्यकोश को रिक्त कर लिया है।

ललितकलाकुशला

ललित कलाओ मे यह पूरी तरह से पारगत है, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण इसका शारीरिक एवं मानसिक लालित्य है। जव मलयसुन्दरी राजकुमार हरिवाहन को इसका परिचय देती है तो वडे विश्वास के साथ कहती है—

कुमार ! कृत्स्नेऽपि विद्याधरलोके इह लब्धपताका कलासु सकलास्वपि कौशलेन वत्सा तिलकमञ्जरी। यदि च कौतुक तत चित्रकर्मणि, वीणादिवाद्ये, लास्यताण्डवगीतेपु नाट्यप्रयोगेपु, पड्जादिस्वरविभागनिर्णयेपु, पुस्तकर्मणि, द्रविडादिपु पत्रच्छेदभेदेपु, अन्येपु च विदग्धजनविनोदयोग्येपु वस्तुविज्ञानेपु पृच्छैनाम्। येन युवयो श्रृण्वती चतुर परस्परालापमहमपि मुहूर्त्तमवगच्छामि निवृत्ते स्वरूपम्।[२५]

इसी प्रकार जव हरिवाहन अपने भ्रातृतुल्य दोस्त समरकेतु से मिलने के लिए अपनी छावनी को लौट जाता है तो उसके वियोग मे यह अपना अधिकाश समय कभी तो वीणा वजाने मे विताती है; कभी हरिवाहन का चित्र बनाने मे विताती है, और कभी विविध भावभगिमाओ से युक्त नृत्यादि के अभ्यास मे व्यतीत करती है।[२६]

पुरुषद्वेषिणी

जव तक इसने हरिवाहन को नही देखा तव तक किशोरी होने के बावजूद भी इसने पुरुष (तरुण) सम्पर्क मे जरा भी रुचि नही रखी। सभी ने इसे बहुतेरा समझाया, किन्तु किसी भी तरुण के साथ विवाह करने को यह राजी ही नही हुई। मेरे विचार से तो यौवन के रंगीन दिनो मे भी यदि कोई युवती युवक सम्पर्क से अरुचि रखे तो यह उसकी विलक्षण विशेपता ही समझनी चाहिए। तिलकमञ्जरी ऐसी ही युवती है।[२७] यही कारण हैं कि गन्धर्वक जैसा चित्रकार इसके रोमाण्टिक चित्र को भी पुरुषसाहचर्य से रहित ही वनाता है, ताकि यह खुश भी रहे और इसका पुरुषविद्वेप भी प्रकट हो सके।[२८]

लज्जावती

यह शर्मीली तो गजव की है।[२९] हरिवाहन को एकान्त एलालतामण्डप मे देखकर यह अपने पुरुपविद्वेष को तिलाजलि तो दे देती है, और उस पर मोहित भी हो जाती है, पर लज्जा के कारण उसके स्वाभाविक और शिष्ट प्रश्नो का उत्तर नही दे पाती। घर पहुँचकर हरिवाहन की रूपमदिरा को पीने के लिए यह वैचेन तो हो उठती है, किन्तु लाज के मारे अपनी प्यारी सहेलियो को भी अपना 'राज' नही वता पाती। मलयसुन्दरी के माध्यम और सहयोग से यह हरिवाहन के सम्पर्क मे तो आती है, उसे घर पर निमन्त्रित भी करती है, पर उससे स्वय एक बात भी नही कर पाती। यह उसके प्रेमा-

लाप का उत्तर भी नही दे पाती, या तो चुप हो जाती है या फिर उठ जाती है। मुझे यह सबसे बडा आश्चर्य है कि पूरे उपन्यास मे तिलकमञ्जरी ने एक बार भी हरिवाहन से आमने-सामने बात नही की है, सदैव मलयसुन्दरी और मृगाङ्कलेखा आदि अपनी सहेलियो के द्वारा ही यह हरिवाहन पर अपनी प्रेमभावना प्रकट करती रही है। यह इसकी लज्जा-शीलता की पराकाष्ठा का प्रबल उदाहरण है। पर इसका मतलब यह नही समझना चाहिए कि तिलकमञ्जरी शुष्क स्वभाव वाली है। क्योकि यह तो सरसता की प्रतिमूर्त्ति है। हरिवाहन इसके मनोमन्दिर का भगवान् बन चुका है। और यह उसकी पुजारिन हो चुकी है। हरिवाहन के सामने लाज के मारे इसका सारा शरीर सिहर उठता है, गालो पर सुर्खी छा जाती है, पलके झुक जाती है। हाँ, यह बात और है कि यह चाह कर भी बोल नही पाती, लेकिन उसके इस मौन-प्रणय मे भी एक जादू और एक ऐसा चुम्बक है कि हरिवाहन खिचता ही चला जाता है।

सौहार्दशीला

हृदय की सरलता और मैत्रीभाव के लिए यह आदर्शस्वरूप है। अपनी सहेलियो के प्रति यह स्नेह और विश्वास रखती है। इसे राजकुमारी होने का जरा भी घमण्ड नही है। इसीलिए इसके व्यवहार मे निरभिमानिता और मृदुता का पुट रहता है। तभी तो सारी सहेलियाँ इसकी खुशी के लिए सदैव चिन्तित रहती है। जब से इसे मलयसुन्दरी का साथ मिला है, तब से तो इसने अपना योग-क्षेम भी उसे ही सौप रखा है। उसके लिए तो इसके दिल मे अगाध श्रद्धा भी है। यहाँ तक कि अपने कोमल प्रणयाकुर की भी देख-भाल उसी के हाथो मे सौप दी है।[३०] विरह के दिनो मे यह मलयसुन्दरी का ही सहारा लेती है, उसे अपनी सच्ची, बुद्धिमती और दूरदर्शिनी सहेली मानकर उससे ही अपने कर्त्तव्य का निर्णय कराती है, जो इसकी दोस्ती की सच्चाई का सच्चा नमूना है।

क्रीडाप्रिया तथा भ्रमणशीला

इसे लडकियो के स्वाभाविक खेलो का भी शौक रहा है। बचपन मे गेद खेलना और गुडियो के ब्याह रचाना इसे बहुत पसन्द था। बडी हो जाने पर इसे घूमने का भी काफी शौक हो गया था। पिता की अनुमति से विमान पर बैठकर यह कभी दक्षिणी समुद्र के तटवर्त्ती मलयचन्दन के वनो मे घूमती है तो कभी मानसरोवर मे स्वच्छन्द जल-विहार करती है, कभी पर्वत शिखरो पर विचरण करती है तो कभी सागर के रमणीय कूल पर अपनी सहेलियो के साथ 'पिकनिक' का आनन्द उठाती है।[३१] अदृष्टपारसरोवर के आस-पास के रम्य स्थलो मे तो यह प्राय ही घूमा करती है। हरिवाहन से जब इसकी पहली मुलाकात होती है तब भी यह घूमने के लिए ही निकली थी।

आदर्श प्रेमिका और आदर्श पतिव्रता

हरिवाहन के लिए, मिलन के प्रथम क्षण से ही, इसके दिल मे उत्तरोत्तर प्यार का सागर उमडता रहता है। मलयसुन्दरी को ले चलने के बहाने यह उसे बडे प्यार से

अपने घर ले जाती है। यद्यपि लज्जा के कारण यह स्वय हरिवाहन के साथ उठ-बैठ नही पाती, किन्तु उसके प्यार के लिए इसका रोम-रोम उत्कण्ठित रहता है। जब हरिवाहन समरकेतु के लिए छावनी को लौटने का विचार करता है तो यह उसे एक सुन्दर विमान पर चित्रमाय के साथ भेजती है और अपने प्रेमी के दोस्त की खोज मे यह सक्रिय सहयोग देकर हरिवाहन के प्रति अपनी सच्ची निष्ठा का परिचय देती है। हरिवाहन द्वारा प्रेमोपहार के रूप मे भेजे हुए हार को पहिनते ही जब इसे अपने पूर्वजन्म के अनन्य प्रेमी पति ज्वलनप्रभ की याद आ जाती है तो बडे धर्मसकट मे पड जाती है।[32] एक ओर तो अपने पूर्वजन्म के पति के प्रति उमडती हुई श्रद्धा की पावन गगा, और दूसरी ओर वर्तमान जन्म के भावी पति और अनन्य प्रेमी हरिवाहन के प्रति उमडती हुई प्रेम की पवित्र कलिन्दजा, - अब वह क्या करे ? किस घाट नहाए ? विचारो के सघर्ष मे दबी हुई यह अन्त मे पत्र भेजकर हरिवाहन से माफी माँगती है कि हार को पहिनने के बाद अब उसके लिए आपका प्यार पाना नामुमकिन हो गया है, फिर भी जब तक वह साँसे लेती है तब तक उसे वह याद जरूर करे।[33] ओह ! कितनी दर्दीली है यह क्षमायाचना ? यह अपने वर्तमान जन्म के प्रेमी से दूर तो हो रही है, किन्तु प्यार के घरोंदे की भी उपेक्षा नही कर पा रही है। इसके आदर्श प्रेम का यह परिपक्व रूप है।

इसे प्रेम का मूल्य भी विदित है। इसीलिए अपने प्रेमी को पहाडो पर भटकने के लिए नही छोड देती, उसको छावनी तक पहुँचाने का दायित्व चित्रमाय पर सौप जाती है और फिर अपने पूर्वजन्म के पति की याद मे महलो के सुख छोडकर तीर्थो मे भटकने लगती है। उसकी याद मे वर्तमान सुखो को तिलांजलि दे देना उसके आदर्श पतिव्रत धर्म का परिपक्व एव अद्वितीय स्वरूप है। जब इसे एक महर्षि से यह सुनने को मिलता है कि हरिवाहन ही इसके पूर्वजन्म का पति ज्वलनप्रभ है तो इसके हर्ष का ठिकाना ही नही रहता। पर तब तक हरिवाहन लापता हो चुकता है। यह उसकी तलाश मे स्वय जगल मे भटकती है। जब सब प्रकार मे हरिवाहन के मिलने की आशा समाप्त हो जाती है तो यह आत्मघात का निश्चय कर लेती है। इस प्रकार हम देखते है कि तिलकमञ्जरी मे आदर्श प्रेमिका और आदर्श पतिव्रता—दोनो ही—के रूप पूरी तरह प्रतिफलित हुए हैं।

धर्मशीला

सब प्रकार की सुख-सुविधाओ से सम्पन्न होने के बावजूद भी धर्म मे इसकी हार्दिक निष्ठा है। धार्मिक स्थानो के सम्मान के लिए यह जागरूक रहती है। जब यह मलयसुन्दरी के आश्रम मे आती है तो अपनी सेविकाओ को मन्दिर के बाहर ही छोड देती है और विनीत पर्यावरण मे ही प्रवेश करती है। हरिवाहन की कुशलता और प्राप्ति के लिए यह बड़े श्रद्धा भाव से भगवान् की पूजा करती है और अपने दिल की गहराइयो से प्रार्थना करती है।[34]

पितृभक्ता

यह अपने पिता की भी परम भक्त है। उनकी अपने प्रति उदारता को देखकर यह सदैव उनके सम्मान का ध्यान रखती है। उनकी आज्ञा का पालन करने के लिए ही

यह प्रियतम के वियोग की आग मे छः माह तक सुलगती रहती है; अन्यथा हरिवाहन के अनिष्ट की बात को सुनने के पहले ही डूब मरना चाहती है।[३५]

आतिथेयी

अपने अतिथियो का सत्कार यह तहेदिल से करती है। उनकी सेवा मे किसी भी प्रकार की त्रुटि नही आने देती। जब मलयसुन्दरी और हरिवाहन को यह अपने घर लिवा ले जाती है तो उनकी सुख-सुविधा का यह पूरा-पूरा ध्यान रखती है। उनके स्नान-पूजन भोजन, मनोरजन, विश्राम आदि का उत्तम प्रबन्ध करती है।[३६]

इस प्रकार हम देखते है कि तिलकमञ्जरी सर्वगुणसम्पन्न, परमसुन्दरी एव रमणीय युवती है। इसमे आदर्श नायिका के वे सभी गुण पाये जाते है जिनका समाज मे समादर है।

समरकेतु

यह सिहलद्वीप के सम्राट् चन्द्रकेतु का एकमात्र पुत्र है। अपने सौन्दर्य मे यह चन्द्रमा और कामदेव से कम आकर्षक नही है, तभी तो मलयसुन्दरी जैसी सर्वगुणसम्पन्ना रूपसी युवती भी इसे पाने के लिए उत्कण्ठित हो जाती है।[३७] हरिवाहन की भांति यह भी पूर्वजन्म मे एक तेजस्वी वैमानिक था।[३८] उस जन्म मे इसका नाम सुमाली था और ज्वलनप्रभ का, जो इस जन्म मे हरिवाहन है, यह जिगरी दोस्त था। इस जन्म मे भी घुणाक्षर-न्याय से यह हरिवाहन के पास आ जाता है और पूर्वजन्म के सस्कारवशात् बड़े प्रेम से उसके साथ रहने लगता है। कथानायक हरिवाहन के प्रति इसके साहाय्यपूर्ण व्यवहार को देखकर इसे निस्सन्देह प्रस्तुत कथाकाव्य का 'पताका नायक' अर्थात् 'साइड-हीरो' मान सकते है।[३९] आचार्यों ने ऐसे पात्र का नाम 'पीठमर्द' भी रखा है।

वीर

यह वीर युवक है। अपनी शूर-वीरता के कारण यह बाल्यकाल मे ही युवराज बना दिया जाता है।[४०] पिता की आज्ञा से दुष्ट सामन्तो का दमन यह बडी सफलता के साथ करता है। अपने अतुल शौर्य और पराक्रम से वज्रायुध जैसे प्रबल सेनापति के भी छक्के छुडा देता है।[४१] साहस का धनी होने के कारण यह छापामार लडाई मे भी सिद्ध-हस्त है। पर्वतक नामक किरातराज पर और वज्रायुध पर ऐसा जबर्दस्त छापा मारता है कि ये लोग उसके आक्रमण को सम्हाल नही पाते है। धनुर्वेद मे यह पारङ्गत है। इसीलिए इसकी उपमा अर्जुन से दी गई है। इसके बाण-सचालन के हस्तलाघव को देखकर वज्रायुध बुरी तरह से घबडा जाता है और अपना रणकौशल भूल जाता है। अन्त मे इसकी शूरता की प्रशसा वह भी मुक्तकण्ठ से करता है।[४२]

कीर्त्तिप्रेमी

यह शरीर से अधिक कीर्त्ति को महत्त्व देता है। यह पराजय की अपकीर्त्ति को मृत्यु से भी बढकर दु खदायक मानता है। इसे मौत तो पसन्द है, पर हार नही। इसीलिए

युद्ध मे जब यह वेहोसी दूर होने पर अपने आपको वज्रायुध के घेरे मे देखता है तो लज्जा और विषाद के मारे पुनः मूर्च्छित हो जाता है।[४३]

कृतज्ञ

अपने उपर किये गए एहसान को यह जीवन-भर नही भूलता है। उसके प्रति यह सदैव कृतज्ञ रहता है। यद्यपि वज्रायुध इसका प्रणयशत्रु भी है, तथापि जब यह देखता है कि उसने इसके साथ वीरोचित व्यवहार किया है और इसके जीवन की भी रक्षा की है तो यह उसके प्रति कृतज्ञ हो जाता है; और उसकी इच्छा से मेघवाहन के पास अयोध्या चला जाता है।[४४]

मेरे विचार से इसकी यह कृतज्ञता जहाँ एक दृष्टि से प्रशसनीय है वहाँ दूसरी दृष्टि से चिन्तनीय भी है। क्योकि उस समय यह मलयसुन्दरी की अपने लिए प्रणयवेदना से भलीभाँति परिचित हो चुका था। इसे यह भी मालूम हो चुका था कि वज्रायुध ही इसकी प्रेयसी के दु ख का कारण है, इसीलिए रात मे युद्ध करने भी निकला था, किन्तु दु.ख तो इस बात का है कि हार जाने पर यह वज्रायुध के हाथो विक गया, और अपनी सच्ची प्रेमिका, जो उसके लिए फाँसी लगाकर मर रही थी, को छोडकर अयोध्या चला गया। ऐसा करके इसने अपने प्यार के साथ अन्याय किया, वेवफाई की, धोखा किया और व्यर्थ के आदर्श के लिए यथार्थ को वेसहारा कर दिया। यह अपनी प्रेमिका के प्रति इसकी सबसे बडी अकृतज्ञता का प्रबल प्रमाण है।

प्रेमी

यह समुद्रीय-यात्रा मे एकरात उष.काल मे एक मन्दिर की प्राचीर पर खडी मलयसुन्दरी को देखकर कामासक्त हो जाता है।[४५] उसके लिए यह वेचैन हो उठता है। उसके अकस्मात् गायव हो जाने से यह समुद्र मे डूब मरने के लिए छलाँग लगा देता है। दैवी शक्ति से बच जाता है तो उसकी याद मे तडपने लगता है। काची मे जब अकस्मात् इसकी पुन उससे भेंट होती है, तो उसमे भी अपने लिए प्यार की दरिया उमडती देखकर भावविभोर हो जाता है।

यह नैतिक भी है, और इसीलिए वन्धुसुन्दरी के, मलयसुन्दरी को लेकर रातो-रात भाग निकलने के प्रस्ताव को स्वीकार नही करता है।[४६] यह उसे विधिवत् प्राप्त करना चाहता है। उसके लिए अपनी जान की भी वाजी लगा देता है। वज्रायुध पर रात मे ही आक्रमण कर देता है। काश ! वह जीत सकता ? पर ऐसा नही हुआ। दैवी शक्ति ने उसे पराजित करा दिया। इसके वाद लज्जा और ग्लानि से इतना भर गया कि अपनी प्रेमिका को सकटो की काँटेदार झाडियो मे फँसी छोडकर अयोध्या चला आया, और अपने प्रेम के दमन मे एक बहुत बड़ा और गहरा दाग लगा बैठा।

स्पष्ट है कि यह युद्धक्षेत्र मे जितना ही साहसी है, प्रणयक्षेत्र मे उतना ही कायर भी है। गन्धर्वक के हाथो यह जिस पत्र को मलयसुन्दरी के पास भेजता है उससे भी यही स्पष्ट होता है कि इसे अपने प्रेमाकुर मे मुरझाने का कष्ट तो हार्दिक है किन्तु उस पर

उपाय के जलबिन्दु छिडकने का साहस नही कर पा रहा है।[४७] जब हरिवाहन के मुंह से इसे अपने और अपनी प्रेमिका मलयसुन्दरी के पूर्वजन्म के प्रणयबन्धन का पता चलता है तब तो यह उभयजन्म की प्रेयसी मलयसुन्दरी की याद मे भावविभोर हो जाता है; और अपने को उसका अपराधी मानकर लज्जित भी होता है।[४८]

सुशील

शक्ति और सौन्दर्य के साथ ही साथ शील का भी यह धनी है। मेघवाहन के चरणो मे बडी श्रद्धा के साथ प्रणाम करता है। मदिरावती को भी माता जैसा ही आदर देता है। अपने शील से ही यह हरिवाहन के भी दिल को जीत लेता है। अभिमान तो इसे छूकर भी नही गया है। अपने साथियो के व्यग्य-वाणो मे झुंझलाता भी नही है। कमल-गुप्त से भी जो इसे चिढाने का प्रयत्न करता है, इसे कोई शिकवा-शिकायत नही है।

आदर्श-सुहृत्

यह प्रथम श्रेणी का सुहृद् है। दोस्त के लिए यह दुनिया को भी ठुकरा देने वाला है। हरिवाहन के साथ इसकी दिली मुहब्बत है। यह उसकी इज्जत भी खूब करता है। उसे हमेशा अपना बडा भाई ही मानता है। उसके वियोग मे यह स्वय जगत का एक-एक कोना छान डालता है। तीन दिन की तलाश के बाद, अन्त मे, निराश होकर यह आत्मघात करने चल देता है, पर जब उसी समय इसे पता चलता है कि हरिवाहन यही कही जगल मे फँसा है तो उसे ढूंढने के लिए यह अपनी जान जोखिम मे डाल देता है। उसके लिए पहाडो पर भयकर जगलो मे दिन-रात भूखा-प्यासा छ माह तक मारा-मारा फिरता है, और अन्त मे ढूंढ ही निकालता है।[४९]

इसका यह सुहृत्-प्रेम अनुपम ही नही, बल्कि एक महान् आदर्श भी है। प्रेमिका के लिए प्रेमी को, और प्रेमी के किए प्रेमिका को तो इस प्रकार भटकते देखा-सुना है, किन्तु एक समलिङ्गी दोस्त के लिए इस प्रकार का त्याग दोनो ही (साहित्यिक और लौकिक) जगत् मे अपूर्व है। ऐसा प्रेम तो चन्द्रापीड का भी वैशम्पायन के प्रति नही था। समरकेतु की यह चारित्रिक विशेषता अनूठी ही है, और इसीलिए यह पाठको के मन-पटल पर पूरी तरह छा जाता है। इसने हरिवाहन के लिए अपना सर्वस्व दाव पर लगा कर अपने पताकानायक (साइड-हीरो) के धर्म को पूरी तरह से निभाया है।

धार्मिक

यह पूरा धार्मिक भी है। अपने अभीष्ट देवता का पूजन करके ही विजय-यात्रा पर निकलता है। समुद्र पर पहुँचकर पहिले उसकी पूजा करता है, तब कही समुद्रीय-यात्रा का श्रीगणेश करता है। सगीतध्वनि का अनुसरण करता हुआ जब यह एक देव-मन्दिर के पास पहुँच जाता है तो वहाँ भी पूजा करने की इच्छा प्रकट करता है। हरिवाहन को ढूंढने के लिए जब रात को निकलता है तो चन्द्रमा को प्रणाम करता है। रास्ते मे समय-समय पर सन्ध्योपासना करना नही भूलता है। अदृष्टपारसरोवर के तीर-

वर्त्ती जैनमन्दिर मे पहुँचता है तो बडी श्रद्धा एव भक्ति के साथ जिनदेव की स्तुति करता है।[५०]

विद्वान्

मलयसुन्दरी के स्वरूप-वर्णन मे इसने उसके शास्त्रीय उपमानो की जो झडी लगाई है, उसे देखकर यह निश्चय हो जाता है कि यह काव्य-शास्त्र का भी विद्वान् है। उसमे साहित्यिक उपमान दर्शनीय है।[५१] इसी प्रकार स्वप्न मे पारिजात वृक्ष को देखकर सुहृत्-प्राप्ति का निश्चय करके यह अपनी स्वप्न-विज्ञता का भी परिचय देता है।[५२] अपनी दाहिनी भुजा के फडकने से कार्यसिद्धि पर भरोसा करके शकुनशास्त्र के प्रति अपनी निष्ठा जाहिर करता है।[५३]

संगीत प्रेमी

इसे सगीत से भी प्यार है। समुद्रीय-यात्रा के प्रसग मे जब एक रात इसे सगीत की मीठी तान सुनाई देती है तो यह उसकी ओर खिचने लगता है, और तारक को साथ लेकर रात मे ही नाव मे उधर चल भी देता है।

परिजन-वत्सल

अपने परिजनो पर सदैव दयालु रहता है। तारक यद्यपि उसका मल्लाह है तथापि उसके साथ इसका व्यवहार बहुत ही सौहार्दपूर्ण है। प्रसन्नता के क्षणो मे यह परिजनो को अपने सारे आभूषण इनाम मे दे डालता है।[५४]

पितृ-भक्त

अपने पिता का यह आज्ञाकारी पुत्र है। उनकी आज्ञा से दुष्ट सामन्तो से युद्ध करने के लिये सागर की छाती पर उतर जाता है, और उन्ही की आज्ञा से काची मे वज्रायुध से भिडने चला आता है।

इस प्रकार हम देखते है कि समरकेतु एक आदर्श, वीर, सुहृद्, सवेदनशील और भावुक युवक है। इसका सौहार्द गुण तो विशेष रूप से उल्लेखनीय एव अनुकरणीय है।

मलयसुन्दरी

यह काची नरेश कुसुमशेखर की इकलौती बेटी है। इसकी माता का नाम गन्धर्वदत्ता है। यह पूर्वजन्म मे सुमाली नामक वैमानिक (देवविशेष) की प्रिय पत्नी थी। उस समय इसका नाम प्रियवदा था। पूर्वजन्म की देवी और वर्तमान जन्म की राजकुमारी होने के कारण इसका व्यक्तित्व कुछ अलौकिक ही है। यद्यपि प्राचीन भारतीय समीक्षको ने 'साइड हीरोइन' (पताका नायिका) की परिकल्पना नही की है, किन्तु आज का समीक्षक इसे 'साइड हीरोइन' माने बिना नही रह सकता।

अनिन्द्यसुन्दरी

इस षोडशी बाला मलयसुन्दरी की शरीर-सम्पदा मे एक निराला ही आकर्षण

है।[५५] इसके अशोकवृक्ष के नवीन किसलय के समान कोमल तलवों वाले चरणकमल, कुकुम-राग के समान सुनहरी और सुडौल टांगे, गोल-गोल जांघें, उदर पर उभरी हुई तीन सलवटे, गहरी नाभि, उन्नत उरोज, शङ्ख के समान गर्दन, चांद के समान चमचमाता हुआ और कमल के समान महकता हुआ मुखड़ा, नई कोंपल के समान गुलाबी होंठ, नुकीले-चमकीले और घने दांत, नुकीली नाक, शोख आंखें, चञ्चल भौंहें, कोमल-कान्त कपोल, मुक्तानिर्मित कुन्दपुष्पों से अलकृत कान, तिलक से विभूषित ललाट तथा लहराते हुए काले केशो को देखकर युवराज समरकेतु जैसा वीर और संयमी युवक भी अपने होश-हवाश खो बैठता है। जब राजकुमार हरिवाहन से इसकी मुलाकात होती है, तब यह तापसी वेश-भूषा मे थी, लेकिन फिर भी इसके नयनानन्ददायी अद्भुत शरीर-सौन्दर्य को देखकर वही भी थोडी देर के लिए ठगा-सा रह गया था।[५६]

कला-कुशल

राजकुमार हरिवाहन को अपनी प्रणयकथा सुनाते समय यह स्वय बताती है कि यह उन सभी ललितकलाओ मे प्रवीण है, जो राजकुमारी के लिए उचित हैं।[५७] नाट्य-नृत्य, गायन, वादन आदि सभी ललितकलाओ मे यह पारङ्गत है। नृत्यकला मे तो यह अपनी सानी नही रखती है, तभी तो इसके नृत्य की आकर्षक भाव-भङ्गिमाओ को देखकर विद्याधरराज विचित्रवीर्य भी प्रभावित हो जाते है।[५८] भला यह क्यो न ऐसी हो, इसने नृत्यकला की शिक्षा अपनी मां से जो ली थी, और वह मां स्वय विद्याधर-राजकुमारी जो थी।

आदर्श-प्रेमिका

यह युवराज समरकेतु की प्रेमपुजारिन है। इसका प्रेम उच्चकोटि का है। इसके लिए वह एक तरह से सपना ही था, जब इसने समरकेतु को पहिली बार देखा था और उसकी भोली-भाली प्यारी सूरत को देखकर यह उस पर कुर्बान हुई थी। फिर भी यह अपने उसी स्वप्न-प्रणय के धागे की रक्षा मे मरना तो पसन्द करती है, किन्तु वज्रायुध के साथ विवाह करना इसे कतई पसन्द नही आया। जब अकस्मात् घुणाक्षर-न्याय से पहुँचा हुआ इसका वही स्वप्न-प्रणयी प्रत्यक्ष मे इसके फांसी के फन्दे को काटकर इसके जीवन की रक्षा करता है, तब तो यह अपने स्वप्नप्रेम की सचाई को पाकर गद्गद् हो जाती है, और अपने प्रेमी को पूर्ण रूप से पाने के लिए तथा वज्रायुध से पिण्ड छुड़ाने के लिए राजमहल को छोडकर छिपे तौर से जगल की मुसीबतो का भी सामना करती है। अपने प्रेमी की कुशलता का समाचार जानने के लिए यह सदैव बेचैन रहती है। जब एक दिन इसे यह सुनने को मिलता है कि युवराज समरकेतु समरभूमि मे मूर्च्छित हो गया, तो यह उसके निधन की कल्पना से तडप उठती है। समुद्र मे डूब मरने को भागती है। किन्तु वृद्ध दासी तरङ्गलेखा को पीछे से पास आती हुई देखकर यह समुद्र मे तो नही कूद पाती, पर अवश्य ही मरने के विचार से जहरीले पेड के फल को खा लेती है और बेहोश हो जाती है। जब होश आता है तो अपने आपको अदृष्टपार सरोवर मे तैरते हुए विमान पर देखती

है। वहाँ भी इसे अपने प्रेमी की मृत्यु का सदमा बना रहता है और फिर डूबने को तैयार होती है। इस प्रकार हम देखते है कि इसे अपने प्रेमी के विना शरीर से जरा भी मोह नही है। जब इसे समरकेतु का लिखा पत्र उसी विमान मे मिल जाता है तो उसकी मृत्यु-कल्पना छोडकर उसके मिलन की आशा-निराशा मे जोगिन बनकर मन्दिर मे दिन विताने लगती है। अपने अल्प-परिचित प्रेमी के लिए इसकी यह इतनी वडी कुर्बानी, सचमुच साहित्यजगत् मे चिरस्मरणीय रहेगी।[५९]

वत्सल-हृदया

इसका हृदय वत्सलता का भी भाण्डार है। अपने उपवन के अशोक, सहकार, बकुल आदि वृक्षो से और हस, मयूर, चकोर, शुकशावकादि पक्षियो से इसे बेहद प्यार है। अपने प्रेमी के वियोग से और वज्रायुध के वलात्कार की सम्भावना से यह जिस रात आत्मघात करने का विचार करती है, तो दिन मे यह इन वृक्षो और पक्षियो से अन्तिम भेट करने जाती है।[६०]

अतिथि-देवी

घर आए अपने अतिथि को यह देवता के समान सत्कृत करती है। स्वच्छ हृदय से और मुक्तकण्ठ से उसका स्वागत-सत्कार करती है, उसके साथ खुली बातचीत करती है, कोई दुराव-छिपाव नही रखती। फलस्वरूप हम इसके हृदय की निर्मलता की सराहना किए विना नही रह सकते। जब राह भूलता और भटकता हुआ अपरिचित और तरुण राजकुमार हरिवाहन इसके आश्रम पर पहुँचता हे तो यह उसका निर्विकार एव हार्दिक स्वागत करती है। उसके नहाने-धोने, खाने-पीने, सोने आदि की समुचित व्यवस्था करके अपने हृदय की उदारता का पूर्ण परिचय देती है।[६१]

सखी-प्रेम

अपनी सहेलियो से इसे बहुत मुहब्बत है। उन्हे अपनी सगी बहिन के समान मानती है। बन्धुसुन्दरी के लिए इसके दिल मे अथाह आत्मीयता है। उससे यह अपना प्रणय-रहस्य भी नही छिपाती है। तिलकमञ्जरी तो रिश्ते मे इसकी मौसेरी बहिन ही होती है, फिर उसके लिए इसके दिल मे प्रेम के सागर का उमडना स्वाभाविक ही है। यह उसके प्रणय-व्यापार मे भी पूरी-पूरी सहायता करती है, सब प्रकार से उसके कल्याण की ही कामना करती है। यह चतुरिका से भी कोमल व्यवहार करती है, जबकि वह इसकी सेविका है।

धार्मिक एव चिन्तनशील

यह स्वभाव से ही धार्मिक है। इसीलिए पञ्चशैल नामक द्वीप मे अपने को अपहृत जानकर भी मन्दिर मे भगवान् जिनेन्द्र के मङ्गलाभिषेक मे सम्मिलित होती है। तीर्थङ्कर भगवान् महावीर जिनेन्द्र के दर्शन बडे भक्तिभाव से करती है, और वैताढ्य

पर्वत पर अदृष्टपार सरोवर के तटवर्ती जैन-मन्दिर मे तो यह अपना शेष जीवन ही बिताने लगती है। इसका तप पूत शरीर सबके लिए आदरणीय हो जाता है। इसकी चिन्तनशीलता मे वैदुष्य का पुट रहता है। प्रथम दर्शन मे समरकेतु को पति के रूप मे स्वीकार करने के लिए इसके मन ने काफी गम्भीरता के साथ विचार किया है।[६२] उस समय के इसके प्रौढ विचारो से कोई भी प्रणय-कामा तरुणी शिक्षा ग्रहण कर सकती है। जब इसके पिता को मजबूर होकर वज्रायुध के साथ इसके विवाह को मंजूर करना पड़ता है, तो पहिले तो यह खीझती है, पर बाद मे तुरन्त ही परिस्थिति को समझ जाती है।[६३] अदृष्टपार सरोवर के किनारे जैन-मन्दिर मे अकेली रहते-रहते तो यह इतनी चिन्तनशील हो गई है कि इसे ससार की निस्सारता, सुखो को नीरसता, भाग्य की परिवर्तनशीलता, विधि के विधान की प्रबलता, समय की विचित्रता और प्राणियो की विवशता आदि का गहरा अनुभव हो गया है।[६४]

इतना ही नही, बल्कि शिष्टता, शालीनता, धीरता, परोपकारपरायणता आदि स्पृहणीय गुणो का भी इसमे भरपूर निवास है। अपने इन्ही सब गुणो के कारण यह पाठको के मन पटल पर अपनी अमिट और दर्दीले छाप छोड जाती है।

मेघवाहन

यह भारत के सार्वभौम सम्राट् हैं। इनकी राजधानी अयोध्या नगरी है। यह समस्त गुणो के आगार है, चारो वर्णो और आश्रमो के रक्षक हैं, राग-द्वेष-लोभ-मोह आदि आन्तरिक तथा बाह्य शत्रुओ के निवारक हे, राजनीति मे निष्णात है, चारो विद्याओ मे पारङ्गत है, यशस्वी और प्रतापी है, गुरुजनो के भक्त है, आचरण से धार्मिक है, स्वभाव से धीर और गम्भीर हैं, कीर्तिमान् है, प्रभावशाली है, पराक्रमी है, सुन्दर हे, निरभिमानी है, सदाचारी है, प्रजावत्सल है, लक्ष्मी के प्रेमपात्र है; दानवीर है, न्यायप्रिय है, विद्वानो के प्रशसक है, पर इस प्रकार अलग-अलग उनके गुणो को कहाँ तक गिनाऊँ; इसलिए मै तो यह लिख देना उचित समझता हूँ कि यह सर्वगुणसम्पन्न है।[६५] धनपाल ने एक स्थान पर एक वाक्य मे इनके व्यक्तित्व पर सक्षेप मे जो प्रकाश डाला है, वह उन्ही के वाक्यो मे इस प्रकार है—

यदुचित यौवनस्य, रुचित चित्तवृत्ते, आराधक विदग्धानाम्, अबाधक लोकद्वयस्य, तदपरमप्यविकलतया विवेकस्य, स्थिरतया कुलाभिमानस्य, स्वभ्यस्ततया विनयस्य, भूयिष्ठतया च सत्त्ववृत्ते, यथा न धर्म सीदति, यथा नार्थः क्षय व्रजति, यथा न राजलक्ष्मीरुन्मनायते, यथा न कीर्तिर्मन्दायते, यथा न प्रतापो निर्वाति, यथा न गुणा. श्यामायन्ते, यथा न श्रुतमुपहस्यते, यथा न परिजनो विरज्यते, यथा न मित्रवर्गो ग्लायति, यथा न शत्रवस्तरलायन्ते तथा सर्वमन्वतिष्ठत्।[६६]

बाल्यकाल मे ही राजपद प्राप्त करके इन्होने समुद्रपर्यन्त पृथ्वी पर अपना एकच्छत्र साम्राज्य स्थापित करके सार्वभौम सम्राट् की पदवी प्राप्त कर ली है और शत्रुओ की ओर से निश्चिन्त होकर अपने सुयोग्य मन्त्रियो को साम्राज्य-भार सौपकर जीवन के कोमल पक्ष मे अपने मन को रमा लिया है।[६७] बीच-बीच मे खास-खास मौको

पर राजकार्य भी देखा करते है। वैसे छिपे तौर से वेष बदलकर प्रजा मे जाकर उसके सुख-दु:खो की जानकारी सदैव रखते है।[६८]

जब युवावस्था के ढलने तक भी इनके कोई सन्तान नही होती, तो यह दु:खी रहने लगते है। रातो मे नीद नही आती। यह आस्तिक भी प्रथम श्रेणी के है। अतएव तपस्या द्वारा सन्तान पाने की इच्छा से वन जाने को तैयार हो जाते है। अपनी पटरानी मदिरावती से बेहद प्यार करते है। उसे एकदम ठुकरा कर वन जाने को इनका जी नही चाहता है। ऋषि-मुनियो के परम भक्त है। उनकी बात पर भरोसा भी करते है। विद्याधर मुनि के आने पर आसन छोड देते है, उठकर उनका हार्दिक स्वागत करते है। उनके ही कहने से वन जाने का इरादा छोडकर घर ही मे तप करने लगते है। उनके बताये हुए मन्त्र का जप बडी श्रद्धा से करते है।[६९]

यह प्रत्युत्पन्नमति भी गजब के है। इनकी व्यावहारिक शिष्टता और शालीनता को देखकर इनकी निरभिमानिता का भी सहज ही अनुमान लग जाता है। शक्रावतार नामक जैनमन्दिर मे ज्वलनप्रभ को देखकर यह तुरन्त ही उसके देवत्व को पहचान लेते है। उसका स्वागत भी बडे अदब और कायदे से करते है। उसीके कहने से यह भी पता चलता है कि इनकी कीर्त्ति का वर्णन स्वर्ग मे इन्द्र की सभा मे भी बडे आदर के साथ होता है। यह अयाचितव्रत है। इन्होने जीवन मे किसी भी वस्तु के लिए कभी भी किसी के सामने अपना हाथ नही फैलाया है। इसीलिए ज्वलनप्रभ को भी इन्हे अपना हार देने के लिए इनकी काफी मिन्नत करनी पडी है।[७०]

यह नितान्त निर्भीक और वीर है। वेताल के अट्टहास और उसकी भयकर आकृति से यह जरा भी विचलित नही होते है। अपने वचन को पूरा करने के लिए यह प्राणो की भी बाजी लगा देते है। पाठको को याद होगा कि उसी वेताल की याचना पर यह अपना सिर काटने लगते है।[७१] यह सपनो पर भी भरोसा करते है। मदिरावती जब इन्हे अपना सपना सुनाती है तो यह उसे उस सपने का फल 'पुत्र-प्राप्ति' बताते है, जो शत प्रतिशत सही निकलता है।[७२]

यह एक सफल एव भावुक पिता भी है। बडी धूमधाम से महीने भर तक पुत्र-जन्मोत्सव मनाते है। ज्योतिषशास्त्रानुसार पुत्र के सस्कार कराते है। इस अवसर पर इनकी उदारता पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है। पुत्र की उत्तम शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध करते हैं और उसके लिए सुयोग्य सहचर की भी खोज कराते है।[७३]

यह गुणो के प्रशसक है और मनुष्यरत्न के सच्चे पारखी है। युवराज समरकेतु के वीरतापूर्ण कार्यकलाप को सुनकर बहुत प्रसन्न होते है। उसे अपने पुत्र हरिवाहन का मुख्य सहचर बना लेते है और स्वय भी उसे पुत्र के समान ही मानकर प्यार करते है। यहाँ तक कि उसे अपने साम्राज्य का भी भाग दे देते है।[७४] इस प्रकार सक्षेप मे हम कह सकते है कि सम्राट् मेघवाहन का व्यक्तित्व सब प्रकार से परिपूर्ण एव ऐश्वर्य सम्पन्न है तथा प्राचीन भारत के गौरवपूर्ण सम्राटो की याद दिलाता है।

मदिरावती

यह सम्राट् मेघवाहन की प्रियतमा पटरानी है। इसका हृदय सरल और विशाल

है, और साथ ही साथ इसीके कपोलो जैसा कोमल एव स्वच्छ भी है। इसके स्वभाव एव आचरण मे जरा भी छल-प्रपच नही है। इसकी शारीरिक सुन्दरता का वर्णन करते हुए धनपाल ने लिखा है—

उसके नितम्ब भरे हुए थे, कमर पतली थी, कन्धे कुछ-कुछ झुके हुए थे; उरोज उभरे हुए थे, केश घने थे, गाल स्वच्छ (गुलाबी) थे, भौहे सुन्दर थी, आँखें भोलीभाली थी, मुस्कान शर्मीली थी, चाल मतवाली थी, बाते मीठी थी, और शोभा निराली थी।[७५] अपने इसी शील-सौन्दर्य के आधार पर यह मेघवाहन की हृदयेश्वरी बन जाती है।

इसे अपने पति मेघवाहन से असीम स्नेह है। यह हमेशा उनके साथ ही रहकर पसन्द करती है। जब वह पुत्रप्राप्ति के लिए तपस्या करने वन जाने की बात कहते हैं तो इसका दिल बैठने लगता है। यह उनके साथ वन जाने का आग्रह करती है। उनके वियोग की कल्पना मे फफक-फफक कर रोने लगती है। अपने पति के समान यह भी आस्तिक और धार्मिक है। ऋषि-मुनियो के वचनो मे इसे भी पूरा-पूरा विश्वास है। विद्याधर मुनि के स्वागत मे यह सम्राट् का साथ देती है, उनके लिए आसन स्वय लाती है, और उनके आदेश से सम्राट् के तपस्या काल मे पूरी तौर से ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करती है।[७६]

यह बडी दयालु है, साथ ही वत्सला भी। अपने पुत्र हरिवाहन को ही नही, बल्कि युवराज समरकेतु को भी यह माँ का प्यार देती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मदिरावती का व्यक्तित्व पूरी तरह से भारतीय सम्राज्ञी की गरिमा के अनुरूप है।

वज्रायुध

यह सम्राट् मेघवाहन की चतुरगिणी सेना का प्रधान सेनापति है। यह अपने पद के अनुरूप ही प्रचण्डशक्तिसम्पन्न है, और अपने नाम के अनुरूप ही अमोघ अस्त्र वाला भी है। दक्षिणापथ के सामन्तो पर पुनर्विजय पाने के लिए सम्राट् मेघवाहन इसे बड़े आत्मविश्वास के साथ भेजते है। काचीनरेश कुसुमशेखर भी इसके साथ लगातार कई दिनो के भीषण युद्ध के पश्चात् इसकी अजय्य एव दुर्धर्ष शूरता को देखकर आतकित हो उठते है। युद्ध का इसे शौक सा हो गया है, तभी तो काचरत और काण्डरत नामक अपने अश्वारोहियो से अचानक हमले की खबर सुनकर इसे बेहद खुशी होती है और बडे इत्मीनान तथा उत्साह से मुकाबिले के लिए चल देता है।

यह उत्तमकोटि का धनुर्धर योद्धा है। युवराज समरकेतु के साथ बाणयुद्ध मे इसका कौशल प्रकट होता है। समरकेतु जैसा अद्वितीय धनुर्धर भी इसकी तारीफ करता है। यह ईमानदार वीर है। वीरो का प्रशसक भी है। युद्धभूमि मे मरे हुए सैनिको को अश्रुपूर्ण तिलाजलि देकर उनके प्रति आदर प्रकट करता है। घायलो की औषधि के लिए समुचित व्यवस्था करके अपनी सहृदयता प्रकट करता है। समरकेतु की जिसके साथ इस का युद्ध हुआ था, वीरता से प्रभावित होकर यह उसका खुले दिल से सम्मान करता है। दैवी-प्रभाव से उत्पन्न हुई बेहोशी मे उसकी रक्षा भी करता है। यह सब इसकी शूरता के आदर्श का परिचायक है।[७७]

यह मनोरजनप्रिय भी है। काचीनगरी मे वसन्तोत्सव के अवसर पर यह अपनी छावनी मे दोस्तो के साथ प्रमदाओ से वासन्ती गीत सुनता है। मलयसुन्दरी की आत्मकथा से यह भी पता लगता है कि यह पदलोलुप भी अव्वल दर्जे का है। किसी ज्योतिषी द्वारा यह जानकर कि 'मलयसुन्दरी से विवाह करने वाले व्यक्ति को सम्पूर्ण विद्याधरो के चक्रवर्ती सम्राट् की सरक्षकता मे सम्पूर्ण पृथ्वी का आधिपत्य प्राप्त होगा,' यह काची-नरेश को इस बात के लिए मजबूर करता है कि वह इसके साथ अपनी कन्या मलयसुन्दरी का विवाह करे, अन्यथा वह उनके राज्य को बरबाद कर देगा। ओह! कितने दु ख की बात है कि यह अपनी सैन्य-शक्ति के सहारे मलयसुन्दरी को अपनी पत्नी बनाना चाहता है, जबकि वह किसी और से ही मुहब्बत करती है, और इसे फूटी आँख से भी नही देखना चाहती। इसी के भय से मलयसुन्दरी को दर-दर की ठोकरे खानी पडती है।[७८] उस समय इसका आचरण एक पदलोलुप खलनायक[७६] जैसा प्रतीत होता है। अपनी इस महत्त्वाकाक्षा को यह सम्राट् मेघवाहन से छिपाता भी है, जो इसके चरित्र की सबसे बड़ी दुर्बलता है। इस प्रकार मैं देखता हूँ कि धनपाल ने वज्रायुध मे मानवसुलभ गुण-दोषो का सम्मिश्रण करके उसके चरित्र को पर्याप्त स्वाभाविकता प्रदान की है।

चन्द्रकेतु

यह सिहलद्वीप के राजा है। युवराज समरकेतु जो पताकानायक है, के पिता है। यह बडे ही शूरवीर और प्रतापी है। अपने शौर्य से इन्होने समुद्र के अन्यद्वीपो के सामन्तो को भी अपने अधीन कर लिया है। इनकी नौ-सेना बहुत ही विशाल है, और साथ-साथ शक्तिशालिनी भी खूब है। इन्हे अपने पुत्र के बाहुबल पर पूरा-पूरा भरोसा है, जो ठीक भी है। उसे दुष्ट सामन्तो के दमन के लिए नौसेना सहित भेज देते हैं।

यह विपत्तिग्रस्तो की सहायता भी करते है। काचीनरेश की याचना पर यह अपने पुत्र समरकेतु को उनकी सहायता के लिए भेज देते है।[८०] इनका व्यक्तित्व सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र है। समाज के उपेक्षित और होनहार युवको को यह सहारा देते हैं, उन्हे प्रेम से अपनाते है। तारक के अन्तर्जातीय प्रेमविवाह को यह मान्यता दे देते है, साथ ही उसे जीविका भी देते है।[८१] मलयसुन्दरी के साथ अपने पुत्र समरकेतु के विवाह से इन्हे हार्दिक प्रसन्नता होती है। अपने पुत्र के मित्र हरिवाहन का बडे प्रेम और आदर के साथ स्वागत करते है।[८२] उपन्यास के गौण एव अप्रत्यक्ष पात्र होने के बावजूद भी इनके चरित्र मे आकर्षण है।

तारक

यह मल्लाहो का सरदार है। वैसे यह स्वर्णद्वीप के मणिपुर नामक नगर का निवासी है, वणिक् जाति मे उत्पन्न हुआ है, इसके पिता का नाम वैश्रवण और माता का नाम वसुदत्ता है। आरम्भ मे पढ-लिखकर यह अपना पैतृक व्यवसाय 'व्यापार' करता है। सयोगवश एक मल्लाह की खूबसूरत लड़की इसके सौन्दर्य पर फिदा हो जाती है। यह उसके प्यार को अपना लेता है। इसकी जाति के लोग जब इस अन्तर्जातीय प्रेमविवाह

को स्वीकार नही करते, तो यह मल्लाह बन जाता है।[८३] यह बहुत ही सच्चा, सुन्दर, साहसी, ईमानदार और वफादार युवक है। प्यार के लिए यह झूठे जातिबन्धन को तोड देता है। मल्लाह की लडकी की मुहब्बत मे सच्चाई देखकर यह उसे निष्कपट भाव से अपनी प्रिय पत्नी बना लेता है और उसे कभी भी धोखा नही देता है। इसके इन्ही दृढ गुणो के कारण राजा चन्द्रकेतु भी प्रभावित होते है और इसे सभी मल्लाहो का सरदार बना देते है। यह परिश्रमी और बुद्धिमान् भी खूब है। अपने पद के अनुरूप यह थोडे ही दिनो मे नौ-सचालन की अद्भुत योग्यता प्राप्त कर लेता है।[८४]

इसे इसकी स्वामिभक्ति और योग्यता के आधार पर ही युवराज समरकेतु की नौका का कर्णधार बनाया जाता है। अपने कर्त्तव्य का निवाह करने मे यह जरा भी पीछे नही हटता है। अथाह समुद्र की छाती पर यह उसकी सदैव देखभाल करता है।[८५] उसकी रक्षा के लिए समुद्र मे भी कूद पडता है।[८६] अपनी बुद्धिमत्तापूर्ण बात को नम्रतापूर्वक कहकर समरकेतु की आज्ञा की प्रतीक्षा करना, इसकी प्रमुख विशेषता है। युवराज समरकेतु का नर्म सचिव बनकर यह मलयसुन्दरी की प्राप्ति मे भी उसकी सहायता करता है।[८७] यह शब्द के श्लिष्ट अर्थ को भी पकडने मे माहिर है। मलयसुन्दरी के मुँह से निकले हुए 'काची' शब्द के—करधनी और काची नगरी दोनो अर्थो की ओर यही युवराज समरकेतु का ध्यान आकृष्ट करता है।[८८]

इसमे जरा भी सन्देह नही है कि तारक इस उपन्यास का एक जीवन्ती पात्र है, जो अपने समाजवादी विचारो का धनी है और जाति-पाति का कायल न होकर सच्चे प्यार का पोषक है।

कमलगुप्त

यह कलिग देश का राजकुमार है। हरिवाहन के साथ दोस्त के रूप मे अयोध्या मे रहता है। यह भी अच्छा-खासा पढा-लिखा समझदार युवक है। बोलने मे बहुत तेज है। दुनियादारी खूब समझता है। इसकी इच्छा रहती है कि हरिवाहन इसे ही सर्वाधिक महत्त्व दे, किन्तु ऐसा होता नही है। समरकेतु पर हरिवाहन के अनन्य प्रेम को देखकर यह थोडा खिचा-खिचा-सा रहता है। इसीलिए मत्तकोकिल नामक उद्यान मे रोमाटिक कविता को सुनकर जब समरकेतु काफी अनमना हो जाता है और इसी कारण से हरिवाहन की काव्यबोधप्रतिभा की प्रशसा नही कर पाता है तो कमलगुप्त मौका पाकर समरकेतु की खिल्ली उडाने से नही चूकता। यह 'खाओ, पियो और मस्त रहो' के सिद्धान्त को मानने वाला है। समरकेतु का उपहास करते समय इसने अपनी इस जीवन-मीमासा की ओर इशारा भी किया है। इसे विधि के दु खद एव निरकुश विधान पर भी बहुत आक्रोश रहता है। मजाक ही मजाक मे मञ्जीर नामक सेवक को राजसेवा से दु खी बताकर यह अप्रत्यक्ष रूप से राजसेवा पर भी छीटा-कसी कर देता है।[८९]

राजकुमार हरिवाहन से इसे भी दिली मुहब्बत है। उसके वियोग मे यह भी प्राण त्यागने का विचार करने लगता है। कुछ दिनो बाद इसे युवराज समरकेतु के दिल मे हरिवाहन के लिए उमडते हुए प्यार के अथाह सागर का भी पता चल जाता है। अत.

उसके प्रति भी यह सच्ची सहानुभूति रखने लगता है। इसीलिए हरिवाहन के पत्र को शीघ्र ही उसके पास पहुँचाता है ताकि वह राजकुमार के वियोग मे अपने लिए कुछ अनिष्ट न कर बैठे,[६०] और प्रत्युत्तर मे हरिवाहन को भी समरकेतु की व्याकुलता की सूचना भेज देता है।[६१] राजकुमार हरिवाहन की नजरो मे समरकेतु के बाद यही महत्त्व-पूर्ण है। इसीलिए वह जब हाथी को पकडने जाते है तो समरकेतु को अपने साथ ले लेते है और कमलगुप्त को छावनी का भार सौप जाते है। वैताढ्य पर्वत से जो पत्र भेजते है उसमे पहले समरकेतु को और बाद मे इसी को सम्बोधित करके सन्देश भेजते है।[६२] यह सदैव कुमार हरिवाहन का कृपापात्र बना रहता है। इसके विपय मे यह कह देना मैं बहुत आवश्यक समझता हूँ कि कुमार हरिवाहन का साथी होने के बावजूद भी यह पाठको के दिल को जीतने मे असमर्थ ही रहता है, क्योकि इसके चरित्र मे कही-कही विवशता की गन्ध मिल जाती है।

सुमशे र

यह काची देश के राजा है। सारे दक्षिण भारत मे इनकी कीर्त्तिकौमुदी फैली रहती है। इनकी राजधानी काची नगरी मे है। यह बडे ही प्रतापी और नीतिनिपुण है। मलयसुन्दरी, जो पताका नायिका है, के पिता है।[६३]

विपत्ति मे धीरज से काम लेते है और आवश्यकता पडने पर अपने मित्र राजाओ की सहायता भी लेते है। युद्धकाल मे अपनी बचत और शत्रु की असुविधा के लिए यह अच्छी-खासी योजना जानते है। इसी आधार पर वज्रायुध से भी यह बडी धीरता के साथ सैन्य-बल के कम होने के बावजूद भी लगातार कई दिनो तक टक्कर लेते है और इसी बीच सिहलनरेश आदि अपने मित्र राजाओ से सहायता पाने की व्यवस्था कर लेते हैं।[६४]

यह अतीव प्रजावत्सल हैं। युद्ध मे जब यह वज्रायुध से हारने लगते है तो राज्य की खुशहाली के लिए अपनी दुलारी बेटी मलयसुन्दरी का विवाह उसके साथ करने को राजी हो जाते है, ताकि वह उनकी प्रजा को तबाह न करे। किन्तु जब इन्हे मलयसुन्दरी की प्रणयकथा और मार्मिक व्यथा का पता लगता है तो इनका सन्तान-प्रेम भी उमड़ आता है, और यह मलयसुन्दरी से क्षमा माँगते है। साथ ही बडी चतुरता के साथ मलयसुन्दरी को सुदूर प्रशान्तवैर नामक आश्रम मे छिपे तौर से रातो-रात भेज देते है तथा वज्रायुध को अन्य प्रलोभन द्वारा प्रसन्न करने की योजना बना लेते है। यहाँ इनके प्रजा-प्रेम और सन्तान-प्रेम का सच्चा और स्वाभाविक रूप देखने को मिलता है।[६५]

महात्माओ मे भी यह श्रद्धा रखते हैं। उनके आदेश को अक्षरश पालते है। प्रशान्तवैर आश्रम के कुलपति के यह परमभक्त हैं। उनके दर्शनार्थ जाया करते है। उनके कहने से ही गन्धर्वदत्ता, जो उनके आश्रम मे पल रही थी, के साथ शादी कर लेते है और उसे पटरानी बना लेते है।[६६]

इनकी जो सबसे बडी और आधुनिकतम विशेपता है वह यह है कि यह अपनी सन्तान पर अपने विचारो को जबरदस्ती थोपते नही है। प्रेम की बेल को चन्द स्वार्थो के

कारण उखाड फेकना इन्हे कतई पसन्द नही है। इसीलिए इन्होने मलयसुन्दरी को वज्रायुध के साथ विवाह करने लिए विवश नही किया। मै तो कहता हूँ कि व्यर्थ मे अपनी मिथ्या प्रतिष्ठा की बात कह कर सन्तान को अप्रिय व्यक्ति के साथ विवश करने के लिए मजबूर करने वाले आज के पितृजनो को कुसुमशेखर से अवश्य ही शिक्षा लेनी चाहिए।

गन्धर्वदत्ता

यह काचीनरेश कुसुमशेखर की पटरानी है और मलयसुन्दरी की माँ है। इसकी जीवनरेखा की वक्रताएँ पाठको के हृदयसरोवर मे उत्सुकता की उत्ताल लहरियाँ उत्पन्न करने मे अतीव सशक्त है। विचित्रवीर्य और मलयसुन्दरी के सवाद से तथा चित्रलेखा और पत्रलेखा की बातचीत से इसके आरम्भिक जीवन पर प्रकाश पडता है वह कुछ इस प्रकार है—

यह सुवेलगिरि निवासी विद्याधर चक्रवर्ती विचित्रवीर्य की छोटी कन्या है, पर है विचारी दुर्भाग्य की मारी। बचपन मे जब यह दस वर्ष की थी, तो इसे इनके नाना (मातामह) अपने घर लिवा ले गए थे। वहाँ उनके शत्रु ने उन पर रात मे अचानक हमला कर दिया था, जिसे वह सम्हाल नही सके थे, और सब कुछ नष्ट हो गया था। उस समय यह भय से काँप रही थी। समरकेलि नामक एक हितैषी विद्याधर ने इसे इसके पिता के पास पहुँचाना चाहा, पर बेचारा वह भी काफी घायल हो चुका था, इसलिए वह प्रशान्त-वैर आश्रम तक ही आ सका और इसे वहाँ के कुलपति की देखरेख मे सौपकर सदा के लिए सो गया। वहाँ के कुलपति ने इसे पुत्री की तरह पाला और जब विवाह योग्य हुई, तो उन्होने इसे काचीनरेश कुसुमशेखर की पत्नी बनाकर उन्हे सौप दिया। काचीनरेश ने इसे अपनी पटरानी बना लिया।[९७] विचित्रवीर्य को अपनी पुत्री का पता तब लगा जब उसकी भेट मलयसुन्दरी से हुई।[९८]

विचित्रवीर्य और मलयसुन्दरी के सवाद से ही गन्धर्वदत्ता के गुणो का पता लगता है। सौन्दर्य मे यह अनुपम है।[९९] मलयसुन्दरी के शब्दो मे यह न अधिक छोटी और न अधिक बडी, खिले हुए चमेली के फूलो के समान गोरी और आयु मे लगभग ३२ वर्ष की है। यह नृत्यकला मे अद्वितीय है। मलयसुन्दरी की सर्वोत्तम नृत्यनैपुणी का श्रेय इसी को है।

अपने माता-पिता के लिए इसके दिल मे अगाध ममता है। उनको देखने के लिए यह हमेशा छटपटाती रहती है। साधु-सन्तो से भी यह उन्ही के पुनर्मिलन के विषय मे पूछती है।[१००] यह अपने पति की हृदय से भक्त है। उनकी इच्छा के विपरीत यह कुछ भी कहना और करना अच्छा नही समझती। इसीलिए मलयसुन्दरी के, वज्रायुध के साथ, विवाह के प्रसग मे यह अपने पति की इच्छा के विरुद्ध निर्णय नही दे पाती है।[१०१] अपनी पुत्री के लिए इसकी ममता का पता तब लगता है तब यह समरकेतु की प्रतीक्षा मे महल की छत पर खडी रहती है।[१०२] इस प्रकार सक्षेप मे अप्रत्यक्ष होने के बावजूद भी गन्धर्वदत्ता का चरित्र पाठको के मन को रजित करने मे काफी सफल हुआ है।

च सेन

यह वैताढ्य पर्वत के दक्षिणी भाग पर निवास करने वाले समस्त विद्याधरो के चक्रवर्ती सम्राट् है। इनकी राजधानी रथनूपुरचक्रवाल नामक नगर मे है। यह वडे ही प्रतापी, नीतिज्ञ, धार्मिक और शरणागतवत्सल है। यह तिलकमञ्जरी, जो कथानायिका है, के पिता है। इन्हे अपनी पुत्री से बहुत प्यार है। उसे सुयोग्य बनाने मे यह कोई कसर नही रखते। अपने समस्त ऐश्वर्य की उसे ही उत्तराधिकारिणी बना देते है। यह उस जमाने मे भी रूढिवादी नही है।[१०३] अपनी पुत्री को घूमने की खुली छूट दे देते है और उसके द्वारा वरण किए गए हरिवाहन को अपना जामाता सहर्ष स्वीकार कर लेते है। जब उनकी पुत्री हरिवाहन को ढूँढने मे असमर्थ होकर अदृष्टपारसरोवर मे डूब मरना चाहती है तो यह उसे धीरज बँधाते है और मरने से रोकते है। साथ ही हरिवाहन की खोज मे छ माह की अवधि देकर ऐसे विद्याधरो को भेजते है जो पहाडो के चप्पे-चप्पे से परिचित होते है।[१०४]

यह बहुत ही बुद्धिमान् है। छ माह की अवधि देने मे उनके दो विचार हो सकते है। पहला तो यह है कि इतने दिनो मे हरिवाहन को ढूँढ ही लिया जाएगा, और दूसरा यह कि इतने दिनो के बाद, हरिवाहन के न मिलने पर उसके लिए, तिलकमञ्जरी के दिल मे आत्महत्या करने का विचार धूमिल पड जाएगा। हरिवाहन के मिलने पर इन्हे अपार हर्ष होता है। इस खुशी मे यह शानदार जलसा मनाते है। अपने सेवको द्वारा हरिवाहन के पास उपहार भेजते है और एक दिन शुभ मुहूर्त्त मे बडी धूमधाम से तिलकमञ्जरी का विवाह हरिवाहन के साथ कर देते है, दहेज मे अपना सर्वस्व दे देते है।[१०५] इस प्रकार हम देखते है कि चक्रसेन का चरित्र इकलौती और दुलारी पुत्री के सहृदय और उदार पिता का आदर्श चरित्र है।

पत्रले ।

यह विचित्रवीर्य की वडी पुत्री है, चक्रसेन की पटरानी है और तिलकमञ्जरी की माँ है। पुरुषो के प्रति अपनी बेटी की घृणा और विवाह न करने की जिद्द को देखकर यह बहुत चिन्तित रहती है। अपनी बेटी भावीपति की जानकारी के लिए मन्त्र द्वारा सपनो की देवी को खुश करती है और जब इसे सपने मे यह बताया जाता है कि तुम्हारी बेटी का पति धरती पर रहने वाला कोई राजकुमार होगा तो यह अपनी सहेली चित्रलेखा द्वारा सभी सुन्दर राजकुमारो के चित्र इस आशा से बनवाती है कि शायद कभी किसी राजकुमार पर तिलकमञ्जरी की निगाह जम जाए।[१०६]

इसे पितृकुल से भी काफी लगाव है। चित्रलेखा के मुँह से मलयसुन्दरी का परिचय पाकर और अपनी छोटी वहिन गन्धर्वदत्ता की कुशलता जानकर इसे वेहद खुशी होती है। मलयसुन्दरी को घर ले जाने का आग्रह करती है, जब वह नही जाती तो उसके लिए वही सारी व्यवस्था करती रहती है।[१०७]

जरा गहराई से देखा जाए तो पत्रलेखा के चरित्र मे एक ऐसी माता के चरित्र

की झलक मिलेगी जो सन्तानवत्सला है और साथ-साथ स्नेहिला भी।

विचित्रवीर्य

यह पत्रलेखा और गन्धर्वदत्ता का पिता है। यह भी विद्याधरों का चक्रवर्ती राजा है, और प्रतापी, पराक्रमी, धार्मिक और दयालु भी है।[१०८] दक्षिण मे सुवेल पर्वत, जिसे त्रिकूटाचल भी कहते हैं, पर इसकी राजधानी है।[१०९] यह भगवान् महावीर जिनका परम भक्त है पचशैल नामक समुद्रीय द्वीप पर बने हुए जैन-मन्दिर मे बडे उत्साह के साथ पन्द्रह दिन तक उनका यात्राभिषेक-महोत्सव मनाता है।[११०] यह सन्तानवत्सल भी बहुत है। अपनी छोटी पुत्री गन्धर्वदत्ता के खो जाने का, लगभग २२ साल के बाद भी, इसे गहरा गम है। उसके इस गम का पता पाठक को तब पता लगता है जब पचशैल द्वीप पर अभिषेक-महोत्सव मे इसकी भेट मलयसुन्दरी से होती है।[१११]

अपनी बडी पुत्री पत्रलेखा से भी इसे बहुत प्यार है। उसकी माँग पर यह हरिचन्दन नामक गगनगामी विमान भेज देता है। विद्याधरराज होने के नाते यह नृत्य-कला का भी कुशल पारखी है, तभी तो मलयसुन्दरी की नृत्यमुद्राओ की यह मुक्तकण्ठ से प्रशसा करता है।[११२] बुद्धिमान् और समीक्ष्यकारी भी खूब है। मलयसुन्दरी का माता गन्धर्वदत्ता के विषय मे चित्रलेखा द्वारा पूरी-पूरी तहकीकात कर लेने के बाद ही यह उसे निश्चित रूप से अपनी बेटी मानता है। वाद मे तो मलयसुन्दरी का समरकेतु के साथ विवाह भी स्वय बडी धूमधाम से सम्पन्न करता है।[११३] भगवान् महावीर के अभिषेक-महोत्सव मे गुप्तरूप से अपहृत होकर आई हुई राजकुमारियो के साथ भी पितृ-तुल्य ही व्यवहार करता है। वास्तव मे देखा जाए तो धनपाल ने विचित्रवीर्य को एक भावुक और सन्ततिवत्सल पिता के रूप मे ही चित्रित करना चाहा है, और कहना होगा कि उन्हे इस चित्रण मे पूर्ण सफलता मिली है।

गन्धर्वक

यही वह व्यक्ति है जिसने विद्याधर राजकुमारी तिलकमञ्जरी का स्वहस्तनिर्मित चित्र दिखाकर हरिवाहन को दीवाना बना दिया है।[११४] यह पत्रलेखा की प्रियसखी और दासी चित्रलेखा का होनहार पुत्र है।[११५] यह उत्तमकोटि का चित्रकार है। तिलकमञ्जरी का चित्र बनाकर इसने अपने चित्रकलाकौशल का प्रमाण भी प्रस्तुत किया है।[११६] हरिवाहन का भी एक सुन्दरतम चित्र बनाने के लिए अपना उत्साह प्रकट करता है। चित्र मे व्यक्ति के विचारो की भी किस प्रकार सही-सही अभिव्यक्ति हो सकती है, इस वात का भी यह पूरा-पूरा ध्यान रखता है। तभी तो तिलकमञ्जरी के पुरुषविद्वेष की अभिव्यजना करने वे लिए यह उचित होने के बावजूद भी उसके चित्र के साथ किसी तरुण पुरुष के चित्र का अङ्कन नही करता है।[११७]

आयु तो इसकी लगभग १५ साल की है, किन्तु अपनी शारीरिक सुन्दरता के अनुरूप ही अपने शिष्ट और शालीन व्यवहार से सम्पर्क मे आने वाले को प्रभावित किए विना नही रहता। हरिवाहन और समरकेतु, दोनो ही, इस पर विशेष कृपालु है। यह

वफ़ादार भी अव्वल दर्जे का है। मलयसुन्दरी के विष-विकार को दूर करने के लिए पूरा-पूरा प्रयत्न करता है। शापवश तोता बन जाने के बावजूद भी यह उसके आश्रम मे ही रहता है; हरिवाहन का पत्र छावनी तक पहुँचाता है, तथा वहाँ से कमलगुप्त का भेजा हुआ जबाब भी लाकर इन्हे देता है।[११८]

तिलकमञ्जरी का यह सच्चा सेवक है। उसकी आज्ञा मानना और उसके लिए छिपे तौर से वर की तलाश करना, यह अपना कर्त्तव्य और धर्म समझता है। चित्रमाय को यही आज्ञा दे आता है कि इसकी अनुपस्थिति मे वह हरिवाहन को रथनूपुरचक्रवाल तक अवश्य ही ले आए।[११९] तिलकमञ्जरी के आत्मघात की निश्चित योजना से यह इतना दु खी हो जाता है कि उसके मरने के पूर्व स्वय भी पहाड से गिरकर मरने के लिए चल देता है।[१२०] यही खोये हुए हरिवाहन को पुन. समय पर तिलकमञ्जरी से मिलता है।[१२१] इसके व्यवहार से मुझे तो यही प्रतीत होता है कि इसने तिलकमञ्जरी के छोटे भाई जैसा ही रोल अदा किया है। फलस्वरूप यह पाठको के दिल पर अपनी छाप छोड कर ही जाता है।

चित्रमाय

यह गन्धर्वक का साथी है और तिलकमञ्जरी का सेवक है। इसने हाल ही मे 'बहुरूपिणी विद्या' को सिद्ध किया है, जिससे यह रूप बदलने मे माहिर हो गया है।[१२२] हाथी का रूप धारण करके हरिवाहन को यही तो उडा ले जाता है और पाठको को भुलावे मे डाले रहता है।[१२३] पुन. तिलकमञ्जरी की आज्ञा से यही उन्हे वापिस भी लाता है।[१२४] हरिवाहन के अचानक गुम हो जाने पर यह उनकी खोज करने मे भी भरसक कोशिश करता है।[१२५] कुल मिलाकर यह एक आज्ञाकारी और विश्वासपात्र सेवक सिद्ध होता है।

मृगाङ्कले ।

हालाँकि यह कुछ ही घण्टो के लिए सामने आती है, पर उस थोडे-से ही समय मे यह अपने आकर्षक व्यक्तित्व से पाठको के दिल मे अपनी जगह बना लेती है। यह नायिका की प्रमुख सखी है। इसीलिए अन्त पुर मे इसका सम्मान भी खूब है। इसके साथ अन्य तमाम परिचारिकाएँ भी रहा करती हैं, और साथ मे वेत्रधारिणी, छत्रधारिणी तथा चामरधारिणी भी चला करती है।[१२६]

तिलकमञ्जरी की खुशी के लिए यह सदैव प्रयत्नशील रहती है। उसकी कोमल और रोमाण्टिक भावनाओ को जानकर यह हरिवाहन की सेवा का पूरा-पूरा ख्याल रखती है। रास्ते की थकावट दूर करने के लिए उसके पैर धोती है। उसे खाना भी स्वय बडे प्यार और आदर से परोस कर खिलाती है। यह अपने लालित्यपूर्ण, मुक्त और शिष्ट व्यवहार से हरिवाहन को सदैव यह अहसास कराती रहती है कि तिलकमञ्जरी उसके प्रेमरस की प्यासी है।

यह बहुत ही फ्रैंक है। मलयसुन्दरी के आश्रम से चलते समय यह हरिवाहन को

हाथ पकड कर चलने के लिए मुस्कराती हुई खींचती है। रास्ते-भर अपनी मीठी-मीठी बातो से उसका मनोरजन करती रहती है।[१२७] महल मे उसके साथ चौसर भी खेलती है।[१२८]

इस प्रकार मृगाङ्कलेखा अपनी सारी शक्ति लगाकर कुमार हरिवाहन को अपनी प्राणाधिक प्रिय सहेली तिलकमञ्जरी के प्रति आकृष्ट करती रहती है। यह एक प्रकार से अपनी भोली-भाली और शर्मीली सहेली का प्रतिनिधित्व-सा करती दीखती है।

बन्धुसुन्दरी

यह साइड हीरोइन (मलयसुन्दरी) की खास सहेली है। बचपन से ही यह उसके साथ रही है, और ये दोनो एक-दूसरे को दिल से प्यार करती है। यह मनोविज्ञान की भी पण्डिता है। मलयसुन्दरी को देखते ही यह अन्दाज लगा लेती है कि रात मे अवश्य ही कुछ असाधारण बात हुई है।[१२९] यह उसके आत्मघात के विचार को भी ताड जाती है।[१३०] यह एक ओर जहाँ आशावादिनी बनकर मलयसुन्दरी को धीरज बँधाती है और स्वप्न-प्रेमी के मिलन की आशा बँधाती है,[१३१] वही दूसरी ओर बदली हुई परिस्थिति के अनुरूप वज्रायुध से विवाह करने की माता-पिता की आज्ञा को मानने के लिए उसे समझाती भी है।[१३२] यह आदर्श से अधिक यथार्थ को महत्त्व देती है। जब देखती है कि मलयसुन्दरी का स्वप्न-प्रणय इतना प्रगाढ है कि वह उसकी रक्षा मे मरने पर भी उतारू हो गई है और सुसयोग से उसका प्रेमी भी उसके सामने है तो यह उन दोनो का गन्धर्व-विवाह अपने हाथो ही सम्पन्न कर देती है। यहाँ उसके विश्वस्त सखी-स्नेह की पराकाष्ठा नजर आती है।[१३३] यह नीति-निपुण और दूरदर्शिनी भी है। वज्रायुध के भय मे यह समरकेतु को मलयसुन्दरी को लेकर रातो-रात सिहलद्वीप चले जाने की सलाह देती है।[१३४] यहाँ इसने सच्चे प्रेम की रक्षा के लिए समाज के नियमो की जजीर को तोडने की बात कहकर युवको को एक अच्छी-खासी नसीहत दी है।

मलयसुन्दरी के लिए इसके दिल मे अथाह प्यार है। उसके अनिष्ट की आशका मात्र से ही यह परेशान हो जाती है। जब यह उसे फाँसी के फन्दे पर झूलता हुआ देखती है तब तो इसके प्राण ही छटपटाने लगते है। उसे बचाने के लिए यह भरसक कोशिश करती है, रोती है, बिलखती है और देवी-देवताओ की भी मनौती करती है। उस समय की इसकी व्याकुलता को देखकर पाठको का हृदय पसीज उठता है।[१३५]

यह व्यवहार-कुशल भी खूब है। जब समरकेतु से असली परिचय होता है तो यह बडी शिष्टता के साथ अपना भाव प्रकट करती है। उसके मिल जाने से इसे इतनी खुशी होती है कि यह उसे आनन्द-विभोर होकर अपने गले ही लगा लेती है। इसका यह व्यवहार भी इसकी मलयसुन्दरी के प्रति आत्मीयता एव स्नेह का परिचायक है।[१३६] अन्त मे मलयसुन्दरी की माँ को सारा समाचार सुनाकर अपने हृदय की दृढता का भी प्रमाण प्रस्तुत करती है।[१३७] कुसुमशेखर भी इसके सखी-स्नेह की प्रशसा किये बिना नही रह सके।[१३८] समरकेतु के साथ मलयसुन्दरी के धूमधाम से विवाह की आशा मे अन्त तक रहती है, जो सफल भी होती है।[१३९] इस प्रकार यह सब कुछ देखने, सुनने और जानने के

पश्चात् मुझे यह कहने मे जरा भी सकोच नही है कि बन्धुसुन्दरी का चरित्र एक आदर्श, प्रगतिशील और स्नेहिल सहेली का चरित्र है।

चित्रलेखा

यह गन्धर्वक की माँ है। तिलकमञ्जरी की धाय है। पत्रलेखा की अत्यधिक कृपापात्र है। उसीके महल मे रहती भी है। बहुत ही स्वामिभक्ता है। चित्रकला मे बेहद निपुण है। अपने पुत्र गन्धर्वक को चित्र बनाना यही सिखाती है। मेक-अप (भूषा-सज्जा) करने मे अद्वितीय है। पचशैल द्वीप पर जैनमन्दिर मे माङ्गलिक अभिषेक के अवसर पर मलयसुन्दरी आदि राजकुमारियो का मेक-अप यही करती है। तिलकमञ्जरी की शादी मे यह उसका भी मेक-अप करती है। विचित्रवीर्य की भी यह कृपा एव विश्वास की पात्र है। वह इसे ही गन्धर्वदत्ता की खोज का भार सौपते है जिसे यह निभाती भी खूब है।[१४०]

इसकी स्मरण शक्ति भी तेज है। मलयसुन्दरी को देखकर पहचान लेती है। उसके प्रति इसकी सहानुभूति भी प्रगाढ हो जाती है।[१४१] मलयसुन्दरी का पत्रलेखा से यही परिचय कराती है।[१४२] विचित्रवीर्य को समरकेतु के मिल जाने की सूचना, बडे उत्साह के साथ, यही देने जाती है।[१४३] इस प्रकार चित्रलेखा एक जीवन्त पात्र के रूप मे आकर अपनी स्वामिभक्ति का आदर्श प्रस्तुत कर जाती है।

ज्वलनप्रभ

यह एक अतीव तेजस्वी वैमानिक है। अपने दोस्त सुमाली से बहुत प्यार करता है। उसे सकट मे सुनकर वहाँ जाता है, और दूसरा जन्म सुधारने के लिए उसे उपदेश देता है। अपनी पत्नी प्रियगुसुन्दरी का तो यह क्रीतदास ही है। पुण्य क्षीण हो जाने पर चिन्तित हो जाता है। दूसरे जन्म मे अच्छे पद को पाने के लिए तपस्या करता है। जिन-भगवान् का भक्त है। गुणो का प्रशसक है। अयोध्या मे शक्रावतार पर जैन-मन्दिर मे दर्शन करने जाता है। मेघवाहन के व्यक्तित्व से प्रभावित होता है। यह आशावादी भी खूब है। दूसरे जन्म मे भी अपनी पत्नी प्रियगुसुन्दरी का प्यार और कल्याण चाहता है। इसी उम्मीद मे उसका हार मेघवाहन को सौप देता है। यही हरिवाहन के रूप मे जन्म लेता है। यह जन्म-जन्मान्तरो के प्रेम की एकरूपता का ज्वलन्त प्रतीक बनकर पाठको को सच्चे प्यार की प्रेरणा दे जाता है।[१४४]

'अन्य पात्र

यह कहना गलत न होगा कि 'तिलकमञ्जरी' मे पात्रो की सख्या ३० से भी ऊपर चली गई है। ऊपर जिन पात्रो की चारित्रिक विशेषताओ का निरूपण किया जा चुका है, उनके अतिरिक्त विद्याधरमुनि, महोदर, तरङ्गलेखा, यक्षपालित, विजयवेग, अनङ्गरति, विक्रमबाहु, शाक्यबुद्धि, पवनगति, तपनवेग, विराध, मित्रधर, प्रतीहार, प्रतीहारियाँ आदि अन्य पात्र भी कथावस्तु की सङ्घटना मे अपना-अपना स्थान रखते है। लेकिन व्यक्ति रूप से इन पात्रो मे ऐसी कोई खास विशेषताएँ नही हैं जो विशेष रूप से

उल्लेखनीय हो। विद्याधरमुनि एक पहुँचे हुए सिद्ध महात्मा के रूप मे हमारे सामने आते है। आकाश मे उडना, भूत-भविष्य को जान लेना और सच्चा आशीर्वाद देना इनका सहज व्यापार है। महोदर एक यक्षसेनापति है। यह लक्ष्मी जी का परम कृपापात्र सेवक है। भयङ्कर वेताल बनकर मेघवाहन की परीक्षा यही लेता है। इसे देवस्थान की मर्यादा का बहुत ध्यान है। गन्धर्वक को जरा-सी भूल पर नाराज होकर शाप दे बैठता है। तरङ्गलेखा एक वफादार अधेड महिला है। प्रशान्तवैर आश्रम मे मलयसुन्दरी की देख-भाल यही करती है। उसकी बेहोशी मे यह बुरी तरह घबरा जाती है। यक्षपालित युवराज समरकेतु का नौसेनाध्यक्ष है। यह अतीव राजभक्त है। यह गुणो का प्रशसक है और साथ ही साथ प्रगतिशील भी है। समरकेतु को इस पर पूरा-पूरा भरोसा है, तभी तो इसकी सिफारिश पर वह तारक को अपनी नौका का सचालक बना लेता है। विजयवेग सेनापति वज्रायुध का परम कृपापात्र सेवक है। सम्राट् मेघवाहन द्वारा भेजी हुई दिव्य अँगूठी को उनकी अँगुली मे जबरदस्ती पहनाकर यह उनकी प्राण-रक्षा करता है। समरकेतु और वज्रायुध के युद्ध का समाचार यही लाता है। यह एक सच्चा सेवक है। अनङ्गरति एक विद्याधर कुमार है। अपने चाचा शाक्यबुद्धि की योजना के अनुसार हरिवाहन को तपस्या मे प्रवृत्त करता है। फलस्वरूप हरिवाहन को विक्रमबाहु का चक्रवर्त्ती साम्राज्य प्राप्त होता है। विक्रमबाहु विद्याधरो का चक्रवर्त्ती सम्राट् है। इसकी राजधानी गगनवल्लभ नगर मे है। यह वैरागी हो जाता है और साम्राज्य छोड देता है। शाक्यबुद्धि विक्रमबाहु का प्रधान सचिव है। यह राजा और राज्य दोनो का ही भक्त है। विक्रमबाहु के विरक्त हो जाने पर उनके खानदान मे किसी को सुयोग्य न देखकर हरि-वाहन को उस योग्य बनाने के लिए योजना बनाता है। अनङ्गरति को भेजकर बडी चतुरता से हरिवाहन को तपस्या मे प्रवृत्त करता है, ताकि वह देवी का वरदान पाकर विद्याधरो का चक्रवर्त्ती सम्राट् बनने की योग्यता प्राप्त कर सके, और होता भी ठीक ऐसा ही है। पवनगति आकाशचारी विद्याधर है। विचित्रवीर्य का सेवक है। पचशैल द्वीप पर जैन-मन्दिर मे माङ्गलिक अभिषेक के अवसर पर छिपे तौर से वहाँ उठाकर लाई गई देश की तमाम राजकुमारियो का परिचय यही देती है। तपनवेग भी एक वैसा ही विद्या-धर है। विचित्रवीर्य का यह भी सेवक है। मलयसुन्दरी की तथा अन्य राजकुमारियो को मन्दिर की शोभा दिखाकर उन्हे छिपे तौर से यथास्थान पहुँचाने का भार इसे ही सौपा जाता है। विराध, विक्रमबाहु का नर्मसचिव है। बाद मे हरिवाहन का भी हो गया है। यह अन्योक्ति के माध्यम से अपनी बात कहने मे खूब माहिर है।[१४५] हरिवाहन को हस के माध्यम से चलने की याद दिलाता है। मित्रधर एक राजकुमार है। प्राग्ज्योतिपेश्वर, जो कामरूप देश के राजा है, का छोटा भाई है। हरिवाहन को खोजते समय समरकेतु को यह मिलता है। उसको अपने यहाँ लिवा ले जाता है। उसकी खातिरदारी भी करता है। इसे हरिवाहन से मुहब्बत है, तभी तो उनके आकस्मिक अपहरण की बात सुनकर दु खी हो जाता है। इन सबके अलावा तमाम दास-दासियाँ और प्रतीहार-प्रतीहारियाँ भी कथा-तन्तु को आगे बढाते है। किन्तु यह सब अपने आप मे इतने महत्त्वपूर्ण नही है कि एक-एक करके इन सबकी विशेषताओ पर प्रकाश डाला जाए। ये तो बस अपने घिसे-पिटे

निर्धारित काम करते हुए ही नजर आते है।

सन्दर्भ

१. तिलकमञ्जरी, नि० सा० प्र०, पृ० ४१२

२. "कुमारोऽपि सतताभियुक्ततया गुरूणाम्, नियन्त्रणपरतया पितु, अविद्यमानतया दुर्विनीतसन्निधे, स्वाधीनतया सर्वागमोपनिबन्धानाम्, कुशाग्रीयतया च निजबुद्धे अल्पेनैव कालेन तेषामभ्यन्तरोऽभवत्। अमुक्ताभियोगश्च दशभिरब्दैश्चतुर्दशापि विद्यास्थानानि सह सर्वाभिरुपविद्याभि विदाञ्चकार, कलाशास्त्र च निरवशेप विवेद। विशेषतश्चित्रकर्मणि वीणावाद्ये च प्रवीणता प्राप। भुजबल चास्य विस्मापितसुरासुर केसरिकिशोरस्य इव सहज शारीरमभवत्।" — वही, पृ० ७९

३ नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्ष प्रियवद ।
रक्तलोक शुचिर्वाग्मी रुढवश स्थिरो युवा ॥
बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वित ।
शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिक ॥
महासत्त्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थन ।
स्थिरो निगूढाहङ्कारो धीरोदात्तो दृढव्रत ।

—दशरूपक, द्वितीय प्रकाश, कारिका १ से २ तक तथा ४ का उत्तरार्ध और ५ का पूर्वार्ध।

४ ··· "यथास्थानमुपविष्टैश्च तै सह प्रस्तुतविचित्रकथालापस्य चित्रपदभङ्गसूचितानेकसुन्दरोदारार्था प्रवृत्ता कथञ्चित् तस्य चित्रालङ्कारभूयिष्ठा काव्यगोष्ठी। तत्र च पठ्यमानासु विद्वत्सभालब्धख्यातिषु प्रहेलिकाजातिपु, चिन्त्यमानेपु मन्दमतिजनितनिर्वेदेपु प्रश्नोत्तरप्रभेदेपु·· ··, विमृश्यमानेपु बाधानुपदसम्पादितोत्सेकेपु बिन्दुमात्राक्षरच्युतकश्लोकेपु बन्दिपुत्र· ···· हरिवाहनमवोचत्।

—तिलकमञ्जरी, नि० सा० प्र०, पृ० १०८

५ अस्या च पठ्यमानायामवहिता सर्वे सभासदो बभूवु। परिभावयतामेव च तेपा पाठसमकालमेव प्रज्ञाबलेन बुद्ध्वा कोशलाधिपतिसूनुरवदत्—सखे! यत् तदासादित त्वया तथाविध ताडीपत्रकम्, असावनङ्गलेखस्तावत् ···। —वही, पृ० १०९

६. तव राजहस! हसीदर्शनमुदितस्य विस्मृतो नूनम्।
सरसिजवनप्रवेश· समयेऽपि विलम्बसे तेन ॥

श्रुत्वा च सुचिरमेतामवगतार्थो विहस्य हरिवाहनस्ता महाराजकन्यामवादीत्—देवि! देवज्ञवेदितस्य विद्याधर-राजधानी-पुरप्रवेशलग्नस्य समयाभिलङ्घनशङ्किभि शाक्यबुद्धिपुरस्सरै प्रवर्तितो बुद्धिसचिवै विराधनामा नरेन्द्रनर्मसचिव एप हसमिपेण मामितो गमनाय त्वरयति। —वही, पृ० २३२

७ ग्रहकवलनाद् भ्रष्टा लक्ष्मी किमृक्षपतेरिय
मथनचकितापक्रान्ताऽब्धेरुतामृतदेवता।

गिरिशनयनोर्दाचिर्दग्धान्मनोभवपादपाद्,
विदितमथवा जाता सुभ्रूरिय नवकन्दली ।। क ।।
जानीथ श्रुतशालिनौ खलु युवामावा प्रकृत्यर्जुनी,
त्रैलोक्ये वपुरीदृगन्ययुवते सम्भाव्यते किं क्वचित् ।
एतत्प्रष्टुमपास्तनीलनलिनश्रेणीविकासश्रिणी,
शङ्केऽस्या समुपागते मृगदृश कर्णान्तिक लोचने ।। ख ।।

—वही, पृ० २४८

८. दत्ते पत्र कुवलयततेरायत चक्षुरस्या,
कुम्भावेभौ कुचपरिकर पूर्वपक्षीकरोति ।
दन्तच्छेदच्छविमनुवदत्यच्छता गण्डभित्तेश्
चान्द्र बिम्ब द्युतिविलसितैर्दूपयत्यास्यलक्ष्मी ।। क ।।
अस्या नेत्रयुगेन नीरजदलस्रग्दामदैर्घ्यद्रुहा
चञ्चत्पार्वणचन्द्रमण्डलरुचा वक्त्रारविन्देन च ।
स्वामालोक्य दृश रुच च विजिता तुल्य त्रपाबाधितैर्
बद्धा निर्जनसञ्चरेषु कमलैर्मन्ये वनेषु स्थिति ।। ख ।।

—वही, पृ० २५५-२५६

९ ' केवल कुतूहलोत्पादनाय प्रधाननृपतीनामनवरततन्त्रीताडनाभ्यासलघुतरागुलिव्यापारेण सव्येतरपाणिना स्फुटतरास्फालितरत्नवीणस्तद्ध्वनिश्रवणनिश्चलनिमीलितेक्षणानर्भकानपि विधेयाञ्चकार । —वही, पृ० १८३

१० दृष्ट्वा च तमदृष्टपूर्वचेष्टम्, उत्सृष्टविनयपक्षम्, अकालक्षेपविस्मृतसमस्तचिरकालाभ्यस्तशिक्षम्, अतिशयप्रवृद्धमदम् उद्दामकोपम्, ' उत्पन्नविस्मय' अतिचिर तस्थौ, अवततार च कुतूहलेन त ग्रहीतुमश्वात् । पुन पुनरादिष्टपरिचारकचिरोपनीतवीण दन्तिन प्रति शनै शनैरुदचलत् । गत्वा च वञ्चितदृष्टिपातस्तरुलतागुल्मगहनान्तरेण तत्समीपमास्फालयामास वीणाम् । उच्चचार'' तत्क्षणक्षोभितसकलवनदेवतावृन्दम्, आनन्दमुकुलितदृष्टिभि ' '''सविस्मयमाकर्ण्यमान' ''' किन्नरकुलै रणितम् । आगत च तच्छ्रवणगोचरमाकर्णयन्नेकाग्रेण चेतसा स्वल्पमपि अकृतवारण कर्णतालै कपोलमदपरिमलाकृष्टानामलिगणाना स वारण श्रान्त इव सुप्त इव कीलित इव गलितचैतन्य इव क्षणमात्रमभवत् । नि स्पन्दसकलावयव च त क्षितितलन्यस्तसरलश्लथकरम्, अपास्तकवलम्'' स्रवद्भिरनवरतमानन्दवाष्पै कुम्भमौक्तिकप्रकरमिव सृजन्तम्'''अवलोक्य ' पदक्षेपैरुपासर्पत् ।

—वही, पृ० १८५-१८६

११ ' ' किं बहुना । यद् यदवलोक्यते तत्तत्सर्वमपि रूपमस्य चित्रपटस्य चारुताप्रकर्षहेतु । एक एव दोषो यदत्र पुरुषरूपमेकमपि न प्रकाशितम् । अनेन मनागसमग्रशोभोऽयम् । तदधुनाऽप्यस्य शोभातिशयमाधातु प्रेक्षकजनस्य च कौतुकातिरेकमुत्पादयितुमात्मनश्च सर्ववस्तुविषय चित्रकर्मकौशलमाविष्कर्त्तु युज्यन्ते कतिचिदस्या नरेन्द्रदुहितु प्रकृतिसुन्दराणि पुरुषरूपाणि परिवारता नेतुम् ।

—वही, पृ० १६६-१६७

१२. वही, पृ० ३७०

१३. ······पतनसमनन्तरमेव च तिरोभावमुपगते तत्र निरवलम्बनोऽह पतनवेगान्नि-मज्जद्दूरमतिचिरादुन्मग्नोऽप्यजातसक्षोभ पर्यायेण विहितायतोत्क्षेपविक्षेपाभ्या भुजाभ्यामनवरतमभिमुखाकृष्टसलिलस्तूर्णमेव तीर्त्वा सर उरोदध्ननीर तीरदेश-मस्यासादयम्। —वही, पृ० २४३

१४. ···विहरमाणश्च यदृच्छया तेपु तेपु स्थानेपु कृतावस्थानान् एणकानरण्यमहिषान् मृगपतीन् वराहान् द्वीपिनश्चमरान् द्विपानन्याश्च नानारूपधारिण श्वापदविशेषान् ददर्श। जातकौतुकैश्च मृगयाव्यसनिभि क्षितिपतिकुमारै क्षपणाय तेपामनुक्षण व्यापार्यत, न च प्रकृतिसानुक्रोशतया शस्त्रगोचरगतानपि तान् जघान।
—वही, पृ० १८२-१८३

१५ वही, पृ० ३९८ से ४०० तक।

१६ कुमारोऽपि···अपसार्य सद्य स्मितप्रकाश साभ्यसूय इव 'कमलगुप्त! किमयमस्थाने विप्लवप्रपञ्च' इत्युदीर्य······सिंहलेन्द्रसुतमवादीत्—सखे! किनिमित्त प्रहर्प-स्थानेऽप्येवमस्वस्थेन भवता स्थीयते?······। —वही, पृ० ११३

१७ एकदा च त प्रातरेव आस्थानमण्डपोपविष्टम्······उष कालसेवागतेन······प्रणम्य सविनयमवनीतलोपविष्टेन पितृचरणविन्यस्तनिश्चलदृष्टिना हरिवाहनेनोपास्य-मानम्···प्रतिहारी प्रविश्य···व्यजिज्ञपत्। —वही, पृ० ८०

१८. स्वस्ति, अटव्या महाराजपुत्रो हरिवाहन· कुशली ··निजस्कन्धावारे युवराजसमर-केतु कमलगुप्तपुर मरांश्च राजपुत्रान् सप्रसादमादिशति—अत्रैव कतिचिद् दिनानि स्थातव्यम्। ताताम्वयोश्च यथा मदपहारवार्ता श्रुतिपथ नायाति तथा प्रयतितव्यम्।
—वही, पृ० १९३-१९४

१९ "आश्लिष्य कण्ठममुना मुक्ताहारेण हृदि निविष्टेन।
सरुपेव वारितो मे त्वदुर परिरम्भणारम्भ ॥

तथापि त्वदधीनजीविताहमिह स्थिता तीर्थान्तरगता वा यावत्प्राणिमि न तावत्कु-मारेण विस्मर्त्तव्या।" —वही, पृ० ३९६-३९७

२०. अहो विरसता ससारस्थिते, अहो विचित्रता कर्मपरिणतीनाम्, अहो यदृच्छाकारि-तायामभिनिवेशो विधे, अहो भगुरस्वभावता विभवानाम्,···सर्व एवायमेवप्रकार ससार·। इद तु चित्र यदीदृशमप्येनमवगच्छतामीदृशीमपि भावानामनित्यता विभावयतामीदृशानपि दशाविशेषाननुभवता न जातुचिज्जन्तूना विरज्यते चित्तम्, न विशीर्यते विपयाभिलाष, न भगुरीभवति भोगवाञ्छा, नाभिधावति नि सङ्गता वुद्धि, नाङ्गीकरोति निर्व्याबाधनित्यसुखमपवर्गस्थानमात्मा। सर्वथा अतिगहनो वलीयानेष ससारमोह। —वही, पृ० २४४

२१. वही, पृ० ३४६

२२. वही, पृ० १६९-१७०

२३. (क) अन्यस्त्री कन्यकोढा च· ·········· ··।
—दशरूपक, द्वितीय प्रकाश, कारिका २० का तृतीय चरण।

(ख) परकीया द्विधा प्रोक्ता परोढा कन्यका तथा।
... ... ॥
कन्या त्वजातोपयमा सलज्जा नवयौवना।
—साहित्यदर्पण, तृतीय परिच्छेद, कारिका ६६ और ६७ (दोनों) के पू०।

२४ तिलकमञ्जरी, पृ० १६२, २४६-२४८

२५ वही, पृ० ३६३

२६. कदाचिद्·· ···रत्नवीणा वादयन्ती, कदाचिद् देवस्यैव रूपम्······अभिलिखन्ती, कदाचिदभिनयाङ्गहारकरणविशेषविषय प्रयोगजातमारोपयन्ती······कतिपयान्यपि दिनान्यनयय्। —वही, पृ० ३६१

२७. वही, पृ० १६६

२८ वही, पृ० १६७

२९ वही, पृ०, २५०, ३६२-३६३

३०. तिलकमञ्जरी स्वैरमवदत्—सखि ! किमर्थमभिदधासि माम् ! त्वमेव जानासि··· उचितम्। —वही, पृ० ३८५-३८६

३१. वही, पृ० १६८-१६९

३२. वही, पृ० ४०५

३३. वही, पृ० ३९६-३९७

३४ वही, पृ० ४१६

३५ वही, पृ० ४१७

३६. वही, पृ० ३६७-३७४

३७ वही, पृ० २७६-२७८

३८ वही, पृ० ४१२-४१३

३९. (क) पताकानायकस्त्वन्य पीठमर्दो विचक्षण।
तस्यैवानुचरो भक्त किञ्चिदूनश्च तद्गुणै॥
—धनञ्जयः, दशरूपक, द्वितीय प्रकाश, कारिका ८

(ख) दूरानुवर्तिनि स्यात्तस्य प्रासङ्गिकेतिवृत्ते तु।
किञ्चित्तद्गुणहीन सहाय एवास्य पीठमर्दाख्य॥
— विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, तृतीय परिच्छेद, कारिका ३९

(ग) अमुख्यो नायक किञ्चिदूनवृत्तोऽग्र्यनायकात्॥
—रामचन्द्रगुणचन्द्र, नाट्यदर्पण, चतुर्थ विवेक, कारिका १२ का पूर्वार्ध।

४० तिलकमञ्जरी, पृ० ९५

४१ वही, पृ० ९१

४२. वही, पृ० ९७-९८

४३ वही, पृ० ९६

४४. वही, पृ० ९८-९९

४५ वही, पृ० २७८-२९२
४६. वही, पृ० ३२५-३२६
४७. वही, पृ० ३३८-३३९
४८ वही, पृ० ४२०-४२१
४९. वही, पृ० १८७-२३०
५०. शुष्कशिखरिणी कल्पशाखीव, निधिरधनग्राम इव, कमलखण्ड इव मारवेऽध्वनि।
भवभीमारण्य इह वीक्षितोऽसि मुनिनाथ ! कथमपि ॥ क ॥
दृष्टे भवति नयनसृष्ट्या सममद्य जन्म जिन ! सफलमभून्मम।
अकृतपुण्यमपि सुकृतिजन प्रति, लघुमात्मानमवैमि न सम्प्रति ॥ ख ॥
—वही, पृ० २१८
५१. तासा च मध्ये शब्दविद्यामिव विद्यानाम्, कैशिकीमिव रसवृत्तीनाम्, उपजातिमिव छन्दोजातीनाम्, जातिमिव अलङ्कृतीनाम्, वैदर्भीमिव रीतीनाम्, प्रसत्तिमिव काव्यगुणसम्पदाम्, पञ्चमश्रुतिमिव गीतीनाम्, रसोक्तिमिव भणितीनाम्,······ कन्यकामद्राक्षम्। —वही, पृ० १५९
५२. वही, पृ० २०८
५३. वही, पृ० २१०
५४. वही, पृ० १९५
५५. वही, पृ० १५९-१६१
५६. वही, पृ० २५५-२५६
५७ वही, पृ० २६४
५८ वही, पृ० २६०-२६१
५९. वही, पृ० २७६-३४५
६० वही, पृ० ३०१-३०२
६१. वही, पृ० २५६
६२ वही, पृ० २८७-२८८
६३. वही, पृ० २९९
६४. वही, पृ० ३४५
६५ वही, पृ० १२-१६
६६ वही, पृ० १८-१९
६७. वही, पृ० १६-१८
६८. वही, पृ० १९
६९. वही, पृ० २१-३५
७० वही, पृ० ३८-४५
७१ वही, पृ० ४६-५२
७२. वही, पृ० ७३-७४
७३. वही, पृ० ७६-८०

७४. वही, पृ० ६६-१०३

७५ आढ्यश्रोणि दरिद्रमध्यसरणि स्रस्तासमुच्चस्तन,
नीरन्ध्रालकमच्छगण्डफलक छेकभ्रु मुग्धेक्षणम् ।
शालीनस्मितमस्मिताञ्जितपदन्यासं विभर्ति स्म या,
स्वादिष्ठोक्तिनिषेकमेकविलसल्लावण्यपुण्यं वपु ॥ —वही, पृ० २३

७६. वही, पृ० २५-३२

७७ वही, पृ० ८२-६८

७८ वही, पृ० २६८-३४५

७६. (क) लोभी धीरोद्धत· पापी व्यसनी प्रतिनायक· ।
—नाट्यदर्पण, विवेक ४, कारिका १३ का उत्तरार्ध ।

(ख) धीरोद्धत पापकारी व्यसनी प्रतिनायक ।
—साहित्यदर्पण, परिच्छेद ३, कारिका १३१ का पूर्वार्द्ध ।

८०. वही, पृ० ६४-६५

८१. वही, पृ० १२६

८२. वही, पृ० ४२७

८३. वही, पृ० १२७-१२६

८४. वही, पृ० १२६-१३०

८५. वही, पृ० १४४-१४७

८६. वही, पृ० २६५

८७. वही, पृ० २८३-२८६

८८. वही, पृ० ३२०

८६. वही, पृ० १११-११३

६० वही, पृ० १६३-१६५

६१. वही, पृ० ३८५

६२ वही, पृ० १६३-१६४

६३ वही, पृ० २५६-२६३

६४ वही, पृ० ८२-८३

६५. वही, पृ० ३२७-३३०

६६ वही, पृ० ३४३

६७. वही, पृ० ३४२-३४३

६८. वही, पृ० २७०-२७४

६६. वही, पृ० २७१

१०० वही, पृ० २७२-२७३

१०१. वही, पृ० ३२७-३२८

१०२ वही, पृ० ४२४

१०३. वही, पृ० १६७-१६६

१०४. वही, पृ० ४१७
१०५. वही, पृ० ४२४-४२५
१०६. वही, पृ० १६७-१७०
१०७. वही, पृ० ३४२-३४४
१०८. वही, पृ० २६६
१०९. वही, पृ० १७०-१७१ तथा ३७८
११०. वही, पृ० २६९ तथा ३४४
१११. वही, पृ० २७०-२७४
११२. वही, पृ० २७०
११३. वही, पृ० ४२६
११४. वही, पृ० १७२
११५. वही, पृ० १७०
११६. वही, पृ० १६६
११७. वही, पृ० १६७
११८. वही, पृ० ३७९-३८४
११९. वही पृ० ३८०
१२०. वही, पृ० ४१८
१२१. वही, पृ० ४१९
१२२. वही, पृ० १७१
१२३. वही, पृ० ३८० तथा ३८७
१२४. वही, पृ० ३८६
१२५. वही, पृ० ४१५
१२६ वही, पृ० ३६५
१२७. वही, पृ० ३६६
१२८. वही, पृ० ३७०
१२९. वही, पृ० २९३
१३०. वही, पृ० ३०२-३१५
१३१. वही, पृ० २९५
१३२. वही, पृ० ३००
१३३. वही, पृ० ३१७
१३४ वही, पृ० ३२५-३२६
१३५. वही, पृ० ३०७-३०९
१३६ वही, पृ० ३१६
१३७. वही, पृ० ३२७
१३८. वही, पृ० ३२८
१३९ वही, पृ० ४२४

१४०. वही, पृ० १७०-१७१
१४१. वही, पृ० ३४०
१४२. वही, पृ० ३४२-३४४
१४३. वही, पृ० ४२३
१४४. वही, पृ० ३६-४५
१४५. तव राजहस ! हसीदर्शनमुदितस्य विस्मृतो नूनम् ।
सरसिजवनप्रवेश. समयेऽपि विलम्बसे तेन ।। —वही, पृ० २३२

४

भाव-पक्ष

प्रथम सोपान

काव्य मे भावपक्ष का स्वरूप

साहित्यकार की सर्जना मे मुख्यरूप से उसके दो तत्त्व उभरकर पाठको के सामने आते है; उनमे एक है हृदय-तत्त्व और दूसरा बुद्धि-तत्त्व। इन्ही को आलोचना के क्षेत्र मे क्रमश· भावपक्ष और कलापक्ष की संज्ञा दी जाती है; प्रस्तुत सोपान मे हम 'तिलक-मञ्जरीकथा' के केवल भावपक्ष पर विचार करेगे, और इसके कलापक्ष पर विचार इसी अध्याय के दूसरे सोपान मे किया जाएगा।

काव्य के भावपक्ष का सीधा सम्वन्ध साहित्यकार के हृदय से होता है। क्योकि भावो की सवेदना या अनुभूति का आधार एकमात्र हृदय ही है। इसीलिए जो साहित्यकार जितना ही अधिक सहृदय होता है, जितना ही अधिक भावुक होता है एव जितना ही अधिक सवेदनशील होता है, उसके साहित्य मे उतनी ही अधिक भावुकता, सवेदनीयता और सम्प्रेषणीयता आ जाती है, और ऐसे ही साहित्यकार का साहित्य पाठको की हृदयतन्त्री के तारो को भी झकृत कर दिया करता है। इस दृष्टि से हम काव्य के उन अशो को भावपक्ष कह सकते है जो कवि के मार्मिक आशय को पाठको के दिल की गहराइयो तक पहुँचाने की क्षमता रखते हो। तात्पर्य यह है कि काव्य के जिन स्थलो को पढकर पाठक के हृदयसागर मे ऐसी भावनाओ और सवेदनाओ की लहरे उठने लगे जो कवि की किंवा कविवर्णित पात्रो की भावनाओ और सवेदनाओ से बिलकुल मिलती-जुलती ही हो तो समझ लीजिएगा कि कवि अपने भावपक्ष को प्रस्तुत करने मे पूरी तरह से कामयाब हो गया है।

भावपक्ष का महत्त्व

प्राय यह देखा जाता है कि जो साहित्यकार कुशल और सवेदनशील होते है वे अपनी कृति के कथानक मे उन सभी मार्मिक प्रसगो की क्रमिक सुनियोजना करते है जो मानव हृदय की (या तो अनुभून या सम्भव) भाव-दशा के अभिव्यजक होते है। क्योकि काव्य मे भावपक्ष की लोकप्रियता सदेव रहा करती है। यह हल्के-फुल्के जादू जैसा ही काम करता है, इसका प्रभाव भी गहरा पडता है, और वह स्थायी भी रहता है।

मनीषियो की अनुभूत मान्यता है कि पाठकों के चित्त में अभीष्ट रसाभिव्यक्ति करने में काव्य का भावपक्ष ही महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। इसीलिए सुकविजन पाठकों तक अपनी बात सहज ही मे पहुँचाने के लिए भावपक्ष का ही सहारा लिया करते है। क्योकि काव्य का यह एक ऐसा तत्त्व है जिससे पाठक का हृदय उल्लसित किया जा सकता है, उसे सोचने के लिए नई दिशा दी जा सकती है, और उसके जीवन-दर्शन को भी परिवर्तित किया जा सकता है। इसीलिए जिस काव्य मे भावपक्ष को भुला दिया जाता है वह काव्य तो सचमुच ही अलोनी (बिना नमक की) सब्जी और बगैर चीनी की चाय के समान अरुचिकर हो जाता है। कौन नही जानता कि संस्कृत साहित्य के अश्वघोष, कालिदास, बाणभट्ट आदि साहित्यकारो की कृतियो की आज जो इतनी अधिक प्रशंसा हो रही है उसका कारण उनमे प्राप्त होने वाली भावपक्ष की सहजसम्प्रेषणीयता ही है। हम देखते है कि भारवि और माघ के काव्यो मे इस भावपक्ष की ही कमी के कारण पाठकों का मन कम लगता है। हिन्दी के आचार्य कवि केशवदास भी अपने भावपक्ष की ही दुर्बलता के कारण काव्य-कला के क्षेत्र मे गोस्वामी तुलसीदास की बराबरी नही कर सके है। यही कारण है कि आलोचना के क्षेत्र मे भी अब 'कला कला के लिए' का नारा ठण्डा पड चुका है और इसकी जगह पर 'कला जीवन के लिए' का नारा बुलन्द हो चला है। अत अनुभूति के इन सभी पहलुओ को मद्देनजर रखते हुए यह कहना ही पडता है कि काव्य मे भावपक्ष का वही महत्त्व है जो फूल मे खुशबू का, दही में मक्खन का और रेशमी रजाई मे रुई का हुआ करता है।

भावपक्ष के भेद

पाठक के 'भाव-जगत्' मे सुपुप्त संवेदनाओ को स्पन्दित करने के लिए साहित्यकार को जिन रस, भाव, भावोदय, भावसन्धि, भावशवलता आदि की अभिव्यंजना के प्रति सदैव जागरूक रहना पडता है, उन्हे ही 'भावपक्ष' के भेद के रूप मे स्वीकार किया जा सकता है। चूंकि वह अपनी और समाज की उन सभी मार्मिक अनुभूतियो और सम्भवनीय परिस्थितियो को, जिन्हे उसने कभी किन्ही क्षणो मे अपने दिल के कमरे मे सम्भाल रखा था, पाठको के सामने उजागर करने के लिए अपनी प्रबुद्ध कल्पना का भी सहारा लिया करता है, इसलिए हम कल्पना को भी भावपक्ष की वाहिका मानकर इसे भी भावपक्ष के भेदो मे स्वीकार कर सकते हैं। किन्तु भावपक्ष के सभी अंगो मे रस-व्यंजना सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योकि काव्य मे अंगी तो वही होती है, शेष तो अंग बनकर उसके इर्द-गिर्द घूमा करते है।

रस की प्रक्रिया और भेद : एक संक्षिप्त एवं मनोवैज्ञानिक परिचय

मानव के मन की मौलिक एव सार्वभौम वृत्तियो के स्वरूप एव भेदो पर विचार करने से जो तथ्य उभरकर सामने आते है वे साहित्यिक संसार की प्राणभूता इस रस-प्रक्रिया के मौलिक तत्त्वो की सामान्य सी रूपरेखा हमारे सामने प्रस्तुत कर देते है। लगता है कि हमारे प्राचीन आचार्यों ने रस के रूप एव भेदो की विवेचना पूरी तौर से

मन.सवेगो के ही आधार पर की है; तभी तो उसमे आज हमे पूर्ण मनोवैज्ञानिकता के चिह्न नजर आते हे।

हालाँकि इसमे कोई शक नही है कि ससार के मनुष्यो की मनोवृत्तियो की 'इयत्ता' का पता लगा पाना वहुत ही कठिन काम है; लेकिन इतना फिर भी निश्चित है कि मानवमन की कुछ ऐसी भी प्रवृत्तियाँ है जो मौलिक है एव सार्वभौम हैं, और इसीलिए वे विश्व के प्रत्येक मानव मे पाई भी जाती है। उदाहरणार्थ (क) डरना, और डरकर भाग खडे होना, (ख) किसी से लड़-झगड बैठना, और हाथापाई करने लगना, (ग) किसी से घृणा करना, (घ) किसी के साथ रोमांस करना, अर्थात् रतिसुख का अनुभव करना, (ङ) किसी के प्रति कौतूहल या जिज्ञासा प्रकट करना, (च) अपने वचाव के लिए किसी की शरण मे जाना, (छ) हँसी-मजाक करना, (ज) स्वाभिमान या आत्मगौरव की वात करना, (झ) निरभिमानिता की वात करना यानी अपने को कुछ न समझना, (ञ) सन्तान से प्यार करना आदि-आदि।

मनोवैज्ञानिको की अवधारणा है कि ऐसा कोई भी पुरुप या स्त्री नही है जिसमे ये प्रवृत्तियाँ स्वाभाविक रूप से न हो। सभी तो इन प्रवृत्तियो के शिकार हुआ करते है। क्योकि ये सहज है, और इसीलिए किसी की प्रेरणा के विना भी इनका स्रोत मन मे अपने आप ही वहने लगता है। मानव की इन नैसर्गिक मन.प्रवृत्तियो को देखने से यह भी अवधारणा वनती है कि प्रत्येक वयस्क मानव के अन्तर्मन मे भय, क्रोध, घृणा, प्रेमवासना, उत्सुकता, विवशता, हास-परिहास, स्वाभिमान, विरक्ति और वात्सल्य भावना—ये दश भाव अपने सहज एव मौलिक रूप मे रहा ही करते हैं, और समय-समय पर अपने-अपने अनुकूल परिस्थितियो को पाते ही अपनी सुषुप्तावस्था को त्यागकर ये प्रकट भी हो जाया करते है।

लगे हाथ यहाँ मैं यह भी कह देना चाहता हूँ कि मनोविज्ञान की इसी पृष्ठभूमि मे साहित्य के मनीपियो ने अपनी रसवल्लरी का आलवाल बनाया है, और उन्होने मनोवैज्ञानिको के इन दश मन.सवेगों को ही अपने साहित्यशास्त्र के भय, क्रोध, जुगुप्सा, रति, विस्मय, शोक, हास, उत्साह, निर्वेद और वात्सल्य नामक दश स्थायिभावो के रूप मे स्वीकार कर लिया है। साथ ही साथ इन्ही स्थायिभावो के चर्वणातिशय मे क्रमश· भयानक, रौद्र, वीभत्स, शृगार, अद्भुत, करुण, हास्य, वीर, शान्त और वत्सल नामक दश रसो की अभिव्यजना को भी मान्यता प्रदान की है। फलस्वरूप साहित्यशास्त्र की इस रसप्रक्रिया को कोई भी व्यक्ति निरी कल्पना और गप्प नही कह सकता है। क्योकि यह तो मनोविज्ञान की कसौटी पर पूरी तौर से खरी उतर जाती है।

रसप्रक्रिया की इस अनुभूतिपरक वास्तविकता का सारांश यह है कि मानव के अन्तर्मन मे सोये हुए इन्ही मौलिक एव स्थायी भावो मे से जव कोई भाव किसी परिस्थितिविशेष की क्रमश तीव्र होती हुई झकझोर से अँगडाई लेकर जाग पडता है, और धीरे-धीरे एकमात्र अपनी ही निरन्तर अनुभूति के रूप मे मानव के दिल और दिमाग पर छा जाता है तो फिर वही स्थायी भाव, जिसे मनोवैज्ञानिको ने मन सवेग की सज्ञा दी है, रस की पदवी को प्राप्त कर लेता है।

अब देखना यह है कि यह सब कुछ होता किस प्रकार है। एतदर्थ हम एक उदाहरण ले सकते है। थोडी देर के लिए मान लीजिए कि एक निहायत ही खूबसूरत युवक किसी सुन्दर उद्यान मे घूमने के उद्देश्य से जाता है और इधर-उधर चहलकदमी करता हुआ अपना मन बहलाने लगता है। इस समय उसके सभी मौलिक और स्थायी मनोभाव अपनी-अपनी मूल अवस्था मे सोये हुए होते है। पर इसी बीच उसे लता के पुष्पगुच्छों पर अपनी हथेली सहलाती हुई कोई नवेली परिचित और अभीष्ट सुन्दरी युवती दिखाई दे जाती है जिससे उसके सोये हुए रति नामक स्थायी भाव को एक हल्का सा धक्का लगता है। उसका ध्यान उस सुन्दरी की ओर केन्द्रित हो जाता है, और वह उस ओर बढता भी है। इसी बीच सुन्दरी भी अकस्मात् ही इसी की ओर मुडती है। दोनो की आँखे तपाक से चार होती है। पर शालीनतावश दोनो ही झट से दूसरी-दूसरी ओर देखने लगते है। लेकिन ज्यादा देर तक दूसरी ओर देख नही पाते हैं, पर कनखियो से दोनो ही एक दूसरे को देखते रहने की कोशिश करने लगते है। इसी बीच उनका ध्यान एक बार वातावरण की ओर भी चला जाता है। पर जब वे देखते है कि उद्यान मे उस ओर कोई भी तीसरा व्यक्ति उन्हे नही देख रहा है, समय भी शाम का है, आसमान मे चाँद भी मुस्कराने की कोशिश मे है; फूलो की भीनी-भीनी खुशबू से वायुमण्डल मे मादकता और और मधुरिमा का सचार हो रहा है, साथ ही साथ एक ओर से शहनाई की गूंज, और दूसरी ओर से कुछ दूरी पर स्वरसम्राज्ञी लतामगेशकर के स्वर मे लाउडस्पीकर से आती हुई 'पाकीजा' फिल्म के "मौसम है आशिकाना, ऐ दिल कही से उनको ऐसे मे ढूंढ लाना" गीत की मर्मस्पर्शिनी ध्वनि-तरग वातावरण को मदिर बना रही है तो उनका रतिभाव अँगडाई लेकर जाग पडता है, और फिर उन दोनो के शरीरो मे एक ऐसी सिहरन पैदा होने लगती है जिससे उनकी शारीरिक चेष्टाएँ भी कुछ विलक्षण हो जाती है। शरीर रोमाचित तो हो ही जाता है साथ ही साथ होठो पर मुस्कान खेलने लगती है; आँखे नाच उठती है, भ्रुकुटि काँपने लगती है, कपोलो पर पुलक और लाज की लाली छा जाती है, और दिल मे न जाने कैसी-कैसी गुदगुदी पैदा होने लगती है। तदुपरान्त दोनो ही एक-दूसरे की इन चेष्टाओ को देखकर और काफी कुछ समझकर एक-दूसरे के करीब खिचने लगते है, और फिर मीठी-मीठी बातो के माध्यम से दोनो ही एक-दूसरे के दिल मे समा जाते है। उस समय उनके दिल और दिमाग पर एकमात्र रतिभाव का साम्राज्य रहता है। उन्हे उस समय फिर किसी भी दीन-दुनिया की याद नही रहती है। क्योकि उस समय तो वे केवल अविरल और उद्दामगति से प्रवाहित होने वाली रतिधारा मे ही सराबोर रहते है। बस, हमारी समझ से तो इस स्थिति तक पहुँचकर उन दोनो का वह रतिनामक स्थायी भाव चर्वण की ऐसी कोटि तक पहुँच चुका होता है कि उसे 'रस' यानी 'शृगाररस' की सज्ञा बेझिझक दी जा सकती है। इस विषय मे हमारे प्राचीन साहित्याचार्यो की भी ऐसी ही मान्यता रही है।[१]

अब जहाँ तक श्रव्यकाव्य के पाठक और दृश्यकाव्य के दर्शक को रसानुभूति करने का प्रश्न है तो इस विषय मे मुझे अति सक्षेप मे केवल सारभूत इतना ही निवेदन करना है कि श्रव्य-काव्यगत विभावो, अनुभावो और व्यभिचारिभावो के कविकृत सागोपाग

वर्णनों से तो पाठक के अन्तर्मन में मूल रूप से सोता हुआ स्थायिभाव प्रबुद्ध होता है, और दृश्यकाव्यगत विभावों, अनुभावो और व्यभिचारिभावो के अभिनेताओ और अभिनेत्रियो द्वारा किए गए कुशल अभिनय से दर्शको के अन्तर्मन का मौलिक एव स्थायिभाव जागता है। श्रव्यकाव्य के वर्णनो या दृश्यकाव्य के अभिनय-कौशल मे ज्यो-ज्यो तीव्रता किवा स्वाभाविकता आती जाती है त्यों-त्यो पाठक या दर्शक के मन का वह स्थायी भाव विकसित एव अभिव्यजित होता जाता है। साथ ही साथ अपनी रुचि के अनुकूल काव्य या नाटक के किसी पात्रविशेष के साथ अपनी अभिन्नता का भी अनुभव करता जाता है। धीरे-धीरे जब उसका यह तादात्म्य पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है तो वह अपने देहाभिमान को भूलकर ठीक वैसी ही अनुभूति करने लगता है जैसी कि उसका अभीष्ट पात्र करता है। बस उसका इस भावभूमि तक पहुँचना और इसमे लीन रहना ही उसका रसानुभूति करना है। भारतीय काव्यशास्त्र के आचार्यो ने रसनिष्पत्ति के प्रसग मे उसकी इसी भावभूमि को 'साधारणीकरण की दशा' के रूप मे स्वीकार किया है।

तिलकमञ्जरी कथा में अगीरस की मीमासा

पृष्ठभूमि के रूप मे रस-प्रक्रिया का एक सामान्य एव सक्षिप्त-सा परिचय प्रस्तुत कर लेने के पश्चात् अब मुझे यहाँ यह नितान्त सगत प्रतीत होता है कि अपने शोधग्रन्थ 'तिलकमञ्जरीकथा' मे निष्पन्न हुए सभी रसो की निष्पक्ष मीमासा कर ली जाए। इस सन्दर्भ मे यह भी न्यायोचित ही है कि सर्वप्रथम अगी (प्रधान) रस की विवेचना की जाए और तदुपरान्त उसके अन्य अग (गौण) रसो की।

मेरी धारणा है कि 'कथानक' साहित्यजगत् की किसी भी विधा का क्यो न हो, वह चाहे किसी पद्यात्मक महाकाव्य का हो चाहे किसी गद्यात्मक कथाकाव्य का, चाहे किसी नाटक का हो चाहे किसी चम्पू का, लेकिन इतना निश्चित है कि उसमे अनेक रस-निर्झरो के होने के बावजूद भी प्रधानता किसी एक ही रसधारा की होगी। शेष रसो की तो जो यत्र-तत्र अभिव्यजना की जाती है वह या तो उस प्रधान (अगी) रस की चर्वणा मे अतिशयता लाने के लिए, या फिर पाठको या दर्शको के मन को प्रकारान्तर से भी रजित करने के लिए। इसीलिए ये शेषरस प्रधानता को प्राप्त होने वाले उस अगीरस के सहायक कहलाते है। इन सहायक (अग या गौण) रसो की अभिव्यजना करते समय साहित्यकारो को सदैव यह भी ध्यान रखना पडता है कि इनके द्वारा अगीरस का कोई अपकर्ष न होने पाये। कहना अनुचित न होगा कि बारात मे जो स्थिति दूल्हा और बरातियो की होती है, काव्य मे ठीक वैसी ही स्थिति अगीरस और अगरसो की होती है।

धनपाल की तिलकमञ्जरीकथा का अगीरस शृगार है। कथा का नायक राजकुमार हरिवाहन और नायिका विद्याधरराजकुमारी तिलकमञ्जरी इस शृगार रस के आलम्बन विभाव है। दोनो का रूपसौन्दर्य, गुण, पद, प्रतिष्ठा और अदृष्टपारसरोवर के तीर पर एलालतामण्डप मे काकतालीय न्याय से हुई दोनो की मुलाकात उसके उद्दीपन विभाव है। गन्धर्वक द्वारा दिखाए गए तिलकमञ्जरी के चित्र को देखने के क्षण से ही

हरिवाहन के मन और शरीर की अस्वस्थता एव दुर्बलता ही इसके अनुभाव है; तथा दोनो के मन मे एक-दूसरे को पाने की अभिलाषा से उत्पन्न हुई चिन्ता, व्रीडा, स्मृति, उत्सुकता आदि के अस्थिरभाव इस रस के व्यभिचारिभाव है। इस प्रकार हम देखते है कि तिलकमञ्जरीकथा मे इन विभावो, अनुभावो, और व्यभिचारिभावो से अभिव्यजित होता हुआ नायक-नायिकागत मौलिक रतिनामक स्थायिभाव चर्वणा की अतिशयता का सस्पर्श करता हुआ शृगार रस की वाचामगोचर अवस्था को प्राप्त कर लेता है।

शृगार रस का स्वरूप

भारतीय आचार्यो ने रसो की मूर्त्तिमती एव प्राणवती परिकल्पना की है। उनकी अवधारणा है कि शृगाररस का वर्ण साँवला तो होता है, पर होता सुघड और सलौना है। इसके अधिष्ठातृ देवता भगवान् विष्णु है, जो स्वय साँवले और सलौने है। वेशभूषा निहायत स्वच्छ और चमकीली है, जो देखने वालो की आँखो को बरबश अपनी ओर खीच लेती है। ऋतुपुष्पो की माला पहनना, सुगन्धित तेल, इत्र (सेण्ट), चन्दन (क्रीम) आदि का प्रयोग करना, रोचक आभूषणो को धारण करना, प्रियजनो के ही साथ समय बिताना, भव्यभवन मे निवास करना, मनोरम उद्यानो मे सैर करना, वातचीत के दौरान मे मुस्कान और शालीनता को बरकरार रखना, साहित्य और सगीत मे रुचि लेना आदि कुछ ऐसे कार्यकलाप है जो शृङ्गार रस के द्योतक है।[3] इसका स्थायिभाव रति, यानी मन के किसी कोने मे सोई हुई 'रिरसा' है। अनुरागयुक्त नायक और नायिका आलम्बन विभाव है, और एकान्त वातावरण तथा प्राकृतिक सौन्दर्य इसके उद्दीपन विभाव है। परस्पर आलिङ्गन, चुम्बन, तिरछी चितवन आदि अनुभाव है, तथा लज्जा, उत्कण्ठा, रोमाच, सिरहन आदि व्यभिचारी भाव है। अब जहाँ तक इसकी चरम एव स्वस्थ परिणति का प्रश्न है, मेरी समझ से तो वह 'दाम्पत्य जीवन' के मनोरम निर्वाह की भूमिका अदा करने मे ही है।

शृङ्गार रस के भेद

शृगार रस के दो भेद मुख्य होते है—एक सयोगात्मक और एक वियोगात्मक। सयोगात्मक शृगार मे नायक और नायिका को पारस्परिक और शारीरिक सामीप्य का सुख मिलता है।[4] पर वियोगात्मक शृगार मे ठीक इसके विपरीत अनुभूति हुआ करती है।[5] फलस्वरूप दोनो ही तडफते और दु खी होते रहते है। इन दिनो वे नहाने-धोने और खाने-पीने तक की उपेक्षा करने लगते है। दिन-रात अपने प्रेमी या प्रेमिका के विषय मे तरह-तरह की चिन्ताएँ और आशङ्काएँ करते रहते है। कभी-कभी तो वे ग्लानि, असूया, निर्वेद, निराशा, रोग, उन्माद और यहाँ तक कि मौत तक के भी शिकार हो जाया करते हैं।

आचार्यो ने सयोगात्मक के तो नही[6], पर वियोगात्मक शृगार रस के अवश्य ही कुछ उपभेद किए है, जो सख्या मे पाँच है। उनमे पहला है अभिलाषहेतुक विप्रलम्भ, दूसरा है विरहहेतुक विप्रलम्भ, तीसरा है ईर्ष्याहेतुक विप्रलम्भ, चौथा है प्रवासहेतुक

विप्रलम्भ और पाँचवाँ है शापहेतुक विप्रलम्भ।[७]

अब हम इन उपभेदो के स्वरूपवर्णन को अपनी शोध-सीमा से बहिर्भूत समझकर प्रकृत का ही अनुसन्धान करने की इच्छा से तिलकमञ्जरीकथा मे धनपाल द्वारा अभिव्यजित किए गए श्रृगार रस के इन दोनो प्रमुख भेदो के स्वरूपो को अपने सुधी पाठको के समक्ष उदाहरण सहित प्रस्तुत करते है।

तिलकमञ्जरी में सयोगात्मक श्रृङ्गार

कुल मिलाकर देखा जाए तो तिलकमञ्जरीकथा मे सयोगात्मक श्रृगार रस की अभिव्यक्ति कुछ इने-गिने स्थलो पर ही अनुभूति का विषय बनती हुई नजर आएगी। उदाहरणार्थ, हमे सयोग श्रृगार का झरना सर्वप्रथम वहाँ फूटता हुआ नजर आता है जहाँ मलयसुन्दरी के आश्रम मे राजकुमार हरिवाहन की विद्याधरराजकुमारी तिलकमञ्जरी से दूसरी मुलाकात होती है। क्योकि एक दिन पहले एलालतामण्डप के एकान्त मे अकस्मात् ही जो उन लोगो की भेट हुई थी उसमे तो वे एक-दूसरे को समझने मे ही लगे रहे थे। हालाँकि परस्पर आकर्षण की चिनगारियाँ तभी से चमक उठी थी। पर इस समय दूसरी मुलाकात मे तो हरिवाहन को देखकर तिलकमञ्जरी की भी आँखों मे प्यार की चमक दौड जाती है, तथा उसकी उस भोली-भाली एव प्यार भरी चचल चितवन से परिवाहन तो ठगा-सा ही रह जाता है, और आत्मविभोर भी हो जाता है। इस स्थल पर धनपाल की रससयोजना सचमुच ही अन्तस्तलस्पर्शिनी है। वह लिखते है—

·····तत्क्षणमेव सा तीक्ष्णतरलायता बाणावलीमिव कुसुमबाणस्य, विवृत्तबालशफरस्फारसंचारा तरङ्गमालामिव श्रृङ्गारजलधे, धवलीकृतदिगन्ता ज्योत्स्नामिव लावण्यचन्द्रोदयस्य, धैर्यध्वसकारिणीमुल्कामिव रागहुतभुज, ससभ्रमोल्लासितैकभ्रूलतामाज्ञामिव यौवनयुवराजस्य, मुकुलिता मदेन, विस्तारिता विस्मयेन, प्रेरितामभिलाषेण, विषमिता व्रीडया, वृष्टिमिवामृतस्य, सृष्टिमिव सौख्यस्य, प्रकृष्टान्त प्रीतिशसिनी वपुषि मे दृष्टिमसृजत्।[८]

मैं समझता हूँ कि धनपाल ने यहाँ यह व्यक्त करना चाहा है कि राजकुमार हरिवाहन को उस समय तिलकमञ्जरी की आँखो मे कामदेव का आकर्षण, प्यार का सागर, सुन्दरता की चाँदनी, अनुराग की ज्योति, यौवन की पुकार, आनन्द की मस्ती, औत्सुक्य का विकास, चाहत (अभिलाषा) का रग, लाज की लहरे, अमृत की वर्षा, सुखो की सरिता और प्रणय की माँग दिखाई देने लगी थी।

हरिवाहन को देखकर तिलकमञ्जरी भी न केवल अपने होश-हवाश ही खो बैठती है, बल्कि उसका युवा-पुरुषविद्वेष भी पानी के बुलबुले के समान नष्ट हो जाता है। जब वह शालीनतावश हरिवाहन को ताम्बूल समर्पित करती है तो उस समय उसके लाजभरे मनोभाव बस देखते ही बनते हैं। धनपाल ने उन्हे जिस शब्दावली मे व्यक्त किया है, वह इस प्रकार है—

तिलकमञ्जरी तु किञ्चिदुपजातवैलक्ष्या क्षणमधोमुखीभूय विहिताकारसवृत्तिः, अथ कृत्वा साध्वसम्, अवलम्ब्य धैर्यम्, अपसार्य विभ्रमम्, निरस्य मनसिजोल्लासम्,

अवधार्य दूरारूढमात्मन प्रभुत्वम्, आलोच्य च सतामौचित्यकारिताम् अतिप्रागल्भ्येव तिर्यक्प्रसारितभुजलता सरलसुकुमारारुणागुलीपरिगृहीतमुदधिवेलेव विद्रुमकन्दलीवलयितमुदग्रमभिनव शङ्खमादाय ताम्बूलदायिकाकरतलाद् अन्तःस्फुरद्भि स्फटिकधवलै. नखमयूखनिर्गमैर्द्विगुणीकृतान्तर्गतस्थूलकर्पूरशकल स्वहस्तेन ताम्बूलमदात्।[९]

साफ जाहिर है कि तिलकमञ्जरी हरिवाहन को पान खिलाने मे शरमा रही है। तभी तो उसने अपना मुँह नीचे की ओर झुका लिया है। पर शालीनता और आतिथेयता का भी उसे निर्वाह करना है। अत वह जैसे-तैसे अपनी घबराहट पर काबू पाती है, और धैर्य का सहारा लेकर अपने दिल मे उठते हुए प्रेम के तूफान को किसी प्रकार दबाती है। राजकुमार के सम्मानहेतु वह अपनी ताम्बूलवापिका के हाथ से ताम्बूल लेकर स्वय अपने ही हाथ से उसे समर्पित करती है। उसके नाखूनो मे इतनी चमक है कि उसके सम्पर्क से पान मे पडे हुए कर्पूर के छोटे-छोटे दाने कुछ बडे से नजर आने लगते है।

तिलकमञ्जरी ने हरिवाहन को ताम्बूल क्या दिया अपना दिल ही दे बैठी। फलस्वरूप उसकी सभी क्रियाएँ कामचेष्टाओ (अदाओ) का रूप ले लेती हैं। वह हरिवाहन की अधिक से अधिक समीपता और आत्मीयता पाने के लिए आतुर हो जाती है, और यही वजह है कि वह हरिवाहन को अपने साथ रथनूपुरचक्रवाल नामक अपने नगर को भी लिवा ले जाती है। वहाँ वह उसके स्वागत मे कोई कोर-कसर नही रखती। दोनो ही परस्पर अनुरक्त हो जाते है और किसी न किसी बहाने से एक-दूसरे को देखने के लिए दोनो के ही प्रयत्न जारी हो जाते है—

·· ··स्वय च मद्दर्शनाशया दीर्घाध्वलङ्घनेन खिन्नास्मि इति अलीकमेवादिष्टशिशिरोपचारा · · ·सौधशिखराग्रसङ्गिनी शयनचित्रशालामगच्छत्। तस्या च······ मन्मथोपदिष्टमभिनव रसविशेपमनुभवन्ती सुचिरमस्थात्। दृष्ट्वा च मामलक्षितैरक्षिविक्षेपै ·· समग्रकलाधि गमलब्धवैदग्ध्याभि शुद्धान्तयुवतिभिरनेकधा प्रवर्तितविनोदोपजातपरमप्रमोदा तत प्रासादवातायनादुदतिष्ठत्। अहमपि तया शून्यीकृतमवेक्ष्य त गवाक्षमुद्गतोद्वेगवेगस्तदुच्छेदवाञ्छया ····सर्वदा समासन्नचन्दनार्जुनतिलकमञ्जरीकमन्त पुरोपवनमव्रजम्।[१०]

हरिवाहन के हृदय मे अपनी प्रियतमा तिलकमञ्जरी के सान्निध्य एव आतिथ्य से प्यार का सागर लहराने लगता है। पर जब उसे शुकरूपधारी गन्धर्वक द्वारा, अपने बिछुडे हुए साथी समरकेतु की चिन्ताजनक मनोदशा का पता लगता है तो वह वहाँ से जाना भी चाहता है, और मलयसुन्दरी तथा तिलकमञ्जरी से विदा लेकर चला भी जाता है। तिलकमञ्जरी अपने चित्रमाय नामक सेवक को उसके साथ भेज देती है, जो उसे पुनः अपने साथ ही वापिस भी लाने का काम करेगा।

इसके बाद धनपाल ने अपने पाठको को सयोगात्मक शृगार रस की अनुभूति का अवसर तब दिया है जब तिलकमञ्जरी गन्धर्वक को भेजकर हरिवाहन को पुन बुला लेती है और अदृष्टपार सरोवर के तीर पर ही बने हुए दिव्याश्रम मे ठहरा देती है तथा समरकेतु की खोज मे अपने गगनविहारी सेवको द्वारा उसे सहायता भी पहुँचाती है। हालाँकि उस समय हरिवाहन के मन मे अपने दोस्त को खोज निकाल लेने की चिन्ता है।

लेकिन फिर भी अपनी प्रेमिका तिलकमञ्जरी की पूरी-पूरी सवेदना और अनुरक्ति को पाकर उसके हृदय के रतिभाव मे भी तरलता का सचार बढने लगता है; और दु ख सुख की उस अनिर्वचनीय धूप-छाँव मे उसके दिन बीतने लगते है। इस प्रसग मे धनपाल ने लिखा है कि—

······तत्र चादृष्टपारपरिसरनिरूपितावास ··यथोत्तर प्रथितपृथुतरानुरागया नभश्चरेन्द्रसुतया विसर्जितै स्वादुफलरसैरासवविशेषै स्रग्दामभिर्विलेपनैस्ताम्बूलैर्दुकूलै रत्नभूषणैश्च कल्पद्रुमसमुत्थै प्रतिदिन प्रवर्तितोपचार.····· कदाचित् प्रश्नोत्तर-प्रवह्लिकायमकचक्रबिन्दुमत्यादिभिश्चित्रालङ्कारकाव्यै प्रपचितविनोद, कदाचित् स्वसन्देहनिर्णयाय प्रेषितै प्रकर्षवद्भि सह कलाचार्यै कृतोच्चावचविचार, कदाचित् सहचरीमुखेन रसमुच· स्वकाननोपजाता वृक्षफलजातीरास्वाद्यमान, कदाचित् च शृङ्गार-सङ्गतकथाप्रपञ्चसम्बद्धा सूक्ती सानुबन्धमाकर्णयमान, कदाचिददृष्टपारसर स्नाना-वतीर्णया प्रस्तुतपरिहासमेव वारवारमीरिताभिर्दूरस्थितोऽपि स्वच्छशिरोभिरम्भश्छटा-भिरिव कटाक्षवीचिभिराच्छाद्यमान ······दिनान्ययापयम्।[11]

यहाँ यह कहने की आवश्यकता नही है कि अपनी प्रेमिका तिलकमञ्जरी के द्वारा प्रतिदिन प्यार से भेजे हुए मीठे, ताजे और रसीले फलो को, सुगन्धित एव मनोरथ पुष्प-हारो को, सुन्दर-सुन्दर दिव्य स्त्री और आभूपणो को, तथा अन्य सभी राजकुमारोचित उपयोगी पदार्थों को पाकर हरिवाहन के दिल मे उसके लिए प्यार का सागर उमडने लगा था। इन दिनो अब वे दोनो पूरी तरह से एक-दूसरे के हो चुके थे।

हरिवाहन और तिलकमञ्जरी विषयक सयोगात्मक शृगार रस की अगाधधारा तो हमे उस समय बहती हुई दिखाई देती है जब छ महीनो के विरह के पश्चात् तिलक-मञ्जरी हरिवाहन के मिलन से निराश हो जाती है और प्राण त्यागने के लिए तैयार हो जाती है, पर इसी बीच घुणाक्षरन्याय से मिले हुए गन्धर्वक के मुँह से उसकी यह दशा सुनकर हरिवाहन तुरन्त वहाँ आ पहुँचता है और अपनी प्यार भरी बातो से तिलक-मञ्जरी का हृदय खुशियो से भर देता है। धनपाल ने इस प्रसग को वियोग की पृष्ठभूमि मे संयोग को प्रदर्शित करते हुए बडी ही खूबी के साथ इस प्रकार से प्रस्तुत किया है—

······इतस्ततः प्रहिततरलतारकाभि ······चतसृभिर्वारवनिताभिरुद्धूयमान-चामरम्, उदारनेपथ्यसहचरीवृन्दपरिवृतया, विधूयमानेन कान्त्या विलासिनीसहत्या च विरलविरलमुज्ज्वलहेमदण्डेन वालव्यजनव्रजेन वीज्यमानया, सखीजनोत्सङ्गनिहित-नि सहदेहया, उद्धृतैकैकमणिवलयमात्रालङ्कारया, ताम्बूलविरहोत्कलितमधुरबिम्बाधर-रागया, शरद्-दिवेव चन्दनाङ्गरागपाण्डुरपयोधरया, राजहसिकयेव सरसमृणालिकाहार-भूपितशरीरया, तत्कालमेव सलिलादुद्धृतै कमलकुमुदकुवलयमृणालै कल्पितोपधान-मब्जिनीपत्रसस्तरमधिशयानया, जगत्त्रयातिशायिरूपलावण्यया नवीनवयसा नरेन्द्रकन्यया सनाथीकृतपार्श्वं····· हरिवाहनमद्राक्षीत्।[12]

ग्रन्थ के अन्त मे भी फलागम नामक कार्यावस्था और निर्वहण नामक सन्धि की क्षेत्रभूमि मे हमे नायक-नायिकागत सम्भोगपरक शृगार रस की बहती हुई नितान्त प्रशान्त एव गम्भीर सरिता के दर्शन होते हैं। इस स्थल पर तो धनपाल ने सचमुच ही

हरिवाहन और तिलकमञ्जरी के प्रणयवृक्ष मे दाम्पत्य सुख के बडे ही मधुर और रसीले फलों को उपजाया है। फलस्वरूप पाठको के हृदय-पटल पर एक वाचामगोचर सन्तोष की सर्जना अपने आप ही हो जाती है। वहाँ की सक्षिप्त वाक्यावली इस प्रकार है —

(क) ···· 'अन्यदा च निरवद्येऽहनि ····नभश्चरेन्द्रेण दत्तामुपयम्य सम्यगनुभूतसकलोद्वाहमङ्गला तिलकमञ्जरीम्, स्थित्वा च तन्मातृपक्षस्य चक्षु.प्रीतये यथोत्तरमनुत्तरप्राप्तनवनवोपचारूणि, अनन्तरभवानुभूतपुरुहूतलोकावाससौख्यस्मृतिहराण्यहानि कतिचिद्······क्रमेण विक्रमबाहुप्राकाररक्षितचर प्राप नगरम्।······प्रविश्य निजनिवासेऽभिनवप्रियामुखनिखातनिर्निमेषनयनारविन्द प्रतिदिवसमभिनवान्यनुभवन् नववधूनिधुवनोत्सवसुखानि सुखमतिष्ठत्।[१३]

(ख) ······ ··एकहेमासनार्धोपविष्टया मुहूर्त्तमप्यरहितान्तिकस्तिलकमञ्जर्या दिनान्ययापयत्। असम्प्राप्तवियोगस्य चास्य प्रणयिनीसमेतेन साक समरकेतुना सपत्नीपरिवारस्य तेषु तेष्वतिरेकरम्येषु सागरकूलवलयेपु कुलपर्वताग्रेपु······वपान्तरगिरिगुहागह्वरेषु महाह्लदसरित्तीरपालीपुलिनपरिसरेपु द्वीपान्तरत्रिदशनगरनिवेशेष्वन्येषु च मनोरमोद्देशेषु दिशि दिशि व्योमचारिणा मणिविमाननिवहेन विचरत पृथिव्यामनुदिनमुपचीयमानपौरुषप्रतापकीर्त्तेरभिचस्कन्द परमा वृद्धिमानन्द'।[१४]

कहना गलत न होगा कि उपरिलिखित इन दो अनुच्छेदो मे धनपाल ने नायक और नायिका के अभिनव दाम्पत्य-जीवन की जो झांकी प्रस्तुत की है वह अतीव सुखद हैं। इसमे उन्होने आज के धनी एव प्रभुतासम्पन्न नवविवाहित दम्पति के चिन्ताहीन भोगविलास एव मिथुनविहार की परिकल्पना की भी एक अच्छी-खासी झलक दिखा दी है।

तिलकमञ्जरी मे वियोगात्मक शृङ्गार

जिस प्रकार दु ख के बाद सुख, धूप के बाद छाँव, अँधेरे के बाद उजाला, भूख के बाद भोजन और गरीबी के बाद अमीरी का आनन्द अपने आप मे स्वय एक विलक्षण आह्लाद और महत्त्व को सँजोये रहता है ठीक उसी प्रकार प्रेमियो और प्रेमिकाओ के लिए भी विरह के बाद मिलन का आनन्द कुछ अनिर्वचनीय ही होता है। सचाई तो यही है कि जिन्होने विरह की लम्बी-लम्बी रातो मे अपने प्रिय को पाने की चिन्ता मे आहे और उसाँसे नही भरी है उन्हे मिलन मे वह मजा नही मिल सकता जो कि एक विरही और विरहिणी को अपनी प्रियतमा या प्रियतम के विरह की वेदना को भुगतने के बाद उससे मिलने मे मिला करता है। क्योकि सयोग का महत्त्व वियोग की ही सत्ता पर निर्भर है।[१५] वियोग की आग मे जो जितना ही ज्यादा झुलसता है, सयोग की शीतल चाँदनी मे उसे उतना ही अधिक सुख मिलता है। इसीलिए जो साहित्यकार मानवहृदय के सच्चे पारखी हुआ करते हैं वे पाठको के हृदय मे सम्भोग शृगार की मर्मस्पर्शिनी अभिव्यजना कराने के लिए अपने काव्य मे विप्रलम्भ शृगार की भी सयोजना किया करते है। हमारे आलोच्य कवि धनपाल भी ऐसे ही साहित्यकारो मे स्थान पाने योग्य है। क्योकि इन्होने भी तो अपनी तिलकमञ्जरीकथा मे नायक-नायिकागत सम्भोग शृगार रस के चरम-

परिपाक के लिए विप्रलम्भात्मक श्रृंगार की काफी सफल परिकल्पना की है। उदाहरण के तौर पर यहाँ हम उनकी तिलकमञ्जरीकथा से कुछ उद्धरण प्रस्तुत करते है—

(क) गन्धर्वक द्वारा वनाए गए तिलकमञ्जरी के चित्र की रूपमदिरा को आँखो से पीने के पश्चात् हरिवाहन के प्रशान्त मनोमन्दिर मे कामदेव की मधुर घण्टियो की आवाज गूँजने लगती है। फिर जब वह गन्धर्वक के ही मुँह से तिलकमञ्जरी के वश आदि का परिचय पाता है तो उसका दिल उसे पाने के लिए मचलने लगता है। उसके लिए वह गन्धर्वक की सहायता को आवश्यक समझता है। गन्धर्वक भी पुन. आने और सहायता करने का वादा करके चला जाता है, पर लौट नही पाता। बस फिर देर ही क्या ? तुरन्त ही यही से हरिवाहन (नायक) निष्ठ विप्रलम्भ श्रृंगार की सरिता का उद्गम हो जाता है, जो धीरे-धीरे आगे चलकर काफी चौड़ी हो जाती है। विप्रलम्भ श्रृंगार की इसी स्थिति को आचार्यों ने या तो 'अभिलापहेतुकविप्रलम्भ' कहा है या फिर 'पूर्वरागहेतुकविप्रलम्भ'। इन दोनो संज्ञाओ का आशय एक ही है।

तिलकमञ्जरी को पाने के मनसूबो मे डूबते और उतराते हुए हरिवाहन की मनोदशा का चित्रण करते हुए धनपाल लिखते है—

······संस्मृत्य गन्धर्वकालापमुपजातविस्मयश्चिन्तितवान्— अहो काप्यद्भुता तस्याश्चक्रसेनदुहितु. शरीरावयवशोभामम्पत्ति ? यस्मात् त्रिभुवनातिशायिरूपापि तत्प्रतिकृतिरिय चित्रपटगता रूपलव इति निवेदिता तेन विद्याधरदारकेण। ····न जाने कस्य सुकृतकर्मण सत्वरपलायमानतिमिरमार्गप्रधावितशशिप्रभाप्रवाहधवला पतिष्यति वपुपि तरलायता तस्या. कटाक्षदृष्टि ? कस्य सञ्चिताकुण्ठतपस कण्ठकाण्डे करिष्यति पतिष्यन्त्यास्तद्भुजलताया प्रथमसूत्रपातमम्लानमालतीकुसुमकोमला स्वयवरस्रक् ? कः सुजन्मा जन्मफलभूतानि प्रस्थित सह तया राजपथवर्तिन सराग पुरजनस्य श्रोष्यति श्रुतिसुखानि प्रशसावचनानि ? कस्त्रिभुवनश्लाघ्यचरितस्तदध्यासितमधिष्ठितो गजस्कन्धपीठमाकण्ठमुत्तानिततरलतारै पीयमानवदनलावण्यो नगरनारीलोचनैरवतरिष्यति विवाहमण्डपे वेदिवन्धम् ? कस्य कन्दर्पवान्धवस्य तत्क्षणावद्धकम्पस्विन्नसरलागुलौ तदीयकरपल्लवे लगिष्यति श्लाघ्यशतपत्रशङ्खातपत्रलक्षणो दक्षिणपाणि ?····· अहो मे मूढता ? यदसावायतेक्षणा भूमिगोचरनृपाधिपात्मजप्रणयिनी भविष्यतीति वार्तयापि श्रुतया हर्पमुद्वहामि। ·····क्वाहम्, क्व सा ? क्व भूमिगोचरस्य निकेतन साकेतनगरम्, क्व दिव्यसङ्गसमुचिताचलप्रस्थसस्थं रथनूपुरचक्रवालम् ?······अन्या अपि प्रकृष्टरूपलावण्यवत्य. प्राप्तयौवना दृष्टा क्षितिपकन्या, अन्यासामपि श्रुतस्तत्त्ववेदिभिरनेकधा निवेद्यमानो विलासक्रम। न तु कयापि क्वाप्यपहृत चेतो यथानया। कथमिदानीमासितव्यम् ? किं प्रतिपत्तव्यम् ? केन विधिना विनोदनीयेयमनुदिन प्रवर्धमाना तद्दर्शनोत्कण्ठा ? कस्यावेदनीयमिदमात्मीय दु खम् ? केन सार्धमालोचनीय कर्त्तव्यम् ?······कस्य साहायकेन सेत्स्यति तया सह समागमप्राप्ति ? अपि नाम दैवमनुगुण स्यात्, एष्यति स विद्याधरदारक; न विस्मरिष्यति परिचयम्, करिष्यति पक्षपातम्, ·····निर्वक्ष्यति वचनवृत्त्या स्वय प्रतिपन्नमर्थम्, नेष्यति तदीक्षणगोचरप्रापणेन मत्प्रतिकृर्ति कृतार्थताम्, कथयिष्यत्यतिशयेन मां गुणवन्तम्, सापि शशिमुखी तथेति प्रतिपत्स्यते तद् वचनम्, भविष्यति

मदीयदर्शनाभिलाषिणी, प्रेषयिष्यति तमात्मानुरागप्रकटनाय मत्पार्श्वम् इत्यनेकसंकल्पपर्याकुलचेतस ··· 'अनवरतमुक्तायतोष्णनि.श्वासस्य मुहुर्मुहु पर्यङ्कपरिवर्तनैस्तरङ्गितोत्तरच्छदपटस्य ···· शतयामेव कथमपि क्षपा विराममभजत।[१६]

इस उपर्युक्त उद्धरण मे 'अभिलाषहेतुकविप्रलम्भश्रृङ्गार' की अभिव्यंजना है। हरिवाहन ने अभी तिलकमञ्जरी का केवल चित्र देखा है; और उसकी विलासमयी क्रीडाओ के विषय मे भी कुछ सुन रखा है, लेकिन उसके दिल मे प्यार की ज्योति जगाने के लिए इतना काफी हो गया है। तभी तो वह उस दुर्लभ चित्रसुन्दरी को पाने की चिन्ता मे सारी रात खोया रहता है, और लम्बी-लम्बी गरम उसाँसे भी भरता रहता है। यहाँ इस 'अभिलाषहेतुक विप्रलम्भ' का आश्रय हरिवाहन है, आलम्बन तिलकमञ्जरी है, सारी रात जागते रहना, करवटे बदलते रहना और लम्बी-लम्बी आहे भरते रहना आदि अनुभाव है, तथा अभिलाष, उत्कण्ठा, स्पृहा पाने के उपायो की चिन्ता, आशा, निराशा, स्मृति, वितर्क आदि व्यभिचारिभाव है। इन सबके सयोग से हरिवाहन निष्ठ 'विप्रलम्भश्रृङ्गार' की निष्पत्ति होती है।

(ख) ज्यो-ज्यो दिन बीतते जाते है त्यो-त्यो तिलकमञ्जरी को पाने की हरिवाहन की यह अभिलाषा क्षण-प्रतिक्षण बढती ही जाती है। गन्धर्वक के न लौटने से उसके दिल पर निराशा का दबाव पडने लगता है। यहाँ तक कि तिलकमञ्जरी की याद मे उसकी आँखे भी गीली होने लगती है। उसकी उत्कण्ठा और तल्लीनता इतनी बढ जाती है कि उसे शून्य दिशाओ मे भी अपनी आँखो के सामने तिलकमञ्जरी के चित्र के प्रतिविम्ब नजर आने लगते है, और वह रातदिन अपनी प्रेयसी की चमकती हुई रूपच्छटा, उभरती हुई युवावस्था और थिरकती हुई विलासचेष्टाओ की ही अगाधकल्पनासरसी मे डूबता और उतरता रहता है—

····· अकृतागतौ च तत्र क्रमादतिक्रामत्सु दिवसेषु शिथिलीभूततिलकमञ्जरीसमागमाशाबन्धस्य प्रबन्धविस्तारितोदग्रसतापसम्पद् यथोत्तरप्रथितदिवसायामदुस्तरो निरन्तरप्रवर्तितोष्णवाष्पसन्ततिरपर इव निदाघसमयो जजृम्भे जनितनिर्भरव्यथस्तस्य दवथुः। अविरत सस्मार सस्मरेण चेतसा चित्रपटपुत्रिकानुसारपरिकल्पितस्य चक्रसेनतनयातनुलतालावण्यस्य। सततमन्वचिन्तयच्चारुतामनुदिनोपचीयमानस्य तस्या प्रथमयौवनस्य। यौवनोपचयपरिमण्डलस्तनमनङ्गवेदनोच्छेदनायेव सर्वदा हृदयगतमधत्त तद्रूपम्। आविष्कृतानेकभावविभ्रमाणि लिखितानीव केनापि निपुणचित्रकारेण दिग्भित्तिपु दिवानिश ददर्श तस्या प्रतिविम्बानि······।[१७]

इसी सन्दर्भ मे धनपाल ने तिलकमञ्जरीविषयक हरिवाहननिष्ठ विप्रलम्भश्रृङ्गार के उद्दीपन विभाव के रूप मे वर्षा ऋतु का भी वर्णन किया है। सावन मास के कारे-कजरारे बादल, मरकत मणियो से जडी हुई सी शस्यश्यामला वसुन्धरा, कदम्बवृक्ष के पुष्पो के पराग से सुगन्धित ठण्डी-ठण्डी हवाएँ, उत्तर की ओर उडते हुए हँसो की पाँते, केवडे के खिले हुए खुशबूदार फूल, कोयल की रसभरी तान और मोरो का मादक नाच हरिवाहन के दिल मे फफोले पैदा करने लगा था। वह दिन-प्रतिदिन दुर्बल होते जा रहे थे।[१८]

वर्षा बीती, शरद् आ गई, पर गन्धर्वक नही आया। हरिवाहन का दिल अब घर मे न लगता था। विचारा राज्यभ्रमण के बहाने अपने समरकेतु आदि यार-दोस्तो के साथ कुछ राजकुमारोचित सेना लेकर निकल पडा और घूमता-घामता अपने मन को बहलाता हुआ कामरूप देश मे पहुँच जाता है। इसके बाद 'विप्रलम्भशृङ्गार' का स्रोत काफी दूर तक सूखा हुआ-सा है।

(ग) जब वैताढ्य पर्वत पर अदृष्टपारसरोवर के तीरवर्त्ती एलालतामण्डप मे हरिवाहन की क्षणभर के लिए तिलकमञ्जरी से अकस्मात् ही भेट होती है और पल मारते ही तिलकमञ्जरी वहाँ से गायब हो जाती है तो हरिवाहन की स्मरणशक्ति को एक झटका-सा लगता है। थोडे ही ऊहा-पोह के पश्चात् वह निर्णय कर लेता है कि वह युवती तिलकमञ्जरी ही होगी। बस फिर क्या था, निराशा की रेत मे समाई हुई विप्रलम्भशृङ्गार रस की धारा फिर से छलकने लगती है। वह उसकी खोज मे लग जाता है, पर वह फिर मिलती नही है। अब उसका यह विप्रलम्भ 'विरहहेतुक' है। क्योकि वह उसकी एक झलक अपनी आँखो से ले जा चुका है। रात मे उसे नीद नही आती है, लतामण्डप मे देखते ही अपनी सपनो की रानी को न पहिचान पाने का उसे महान् दु.ख है।[१६]

(घ) हरिवाहननिष्ठ विप्रलम्भशृङ्गार रस की ही एक तेज धारा हमे एक स्थान पर और भी बहती हुई नजर आती है। उपहार के रूप मे हरिवाहन तिलकमञ्जरी के पास चन्द्रातप नामक दिव्य हार भेजता है। सयोग की बात यह कि तिलकमञ्जरी को उसे देखते ही अपने पूर्वजन्म के पति ज्वलनप्रभ की याद आ जाती है, और इसीलिए वह फिर हरिवाहन की ओर से अपना प्यार भरा दामन खीच लेती है। फलस्वरूप हरिवाहन उसके विरह से तिलमिला जाता है। वह अपने सारे ही होश-हवाश खो बैठता है और यहाँ तक कि तिलकमञ्जरी के प्यार से वचित होने के दु ख को सहन न कर सकने के कारण पहाड़ से गिरकर मरने के लिए भी चल देता है—

······इति पठितमात्र एव सहसोत्थितप्रबलसर्वाङ्गकम्पस्य प्रणुन्न इव पृथुना श्वासपवनेन, गुरूकृत इव गरीयसा बाष्पपूरेण, अवलम्बित इव निरालम्बेन पतता हृदयेन विगलितप्रयत्नांगुलीपरिगृहीत पपात करतलादलक्षितो मे लेख । तत कोऽहम् ? क्वायात ? किमर्थमायात ? किं मया प्रस्तुतम् ? किमेतद् दिनम् ? किं निशा ? कोऽय काल ? किं मरणम् ? किमेप मोह ? किं चेतना ? किं सत्यमेतदाहोस्विदिन्द्रजालम् ? किं स्वदेशोऽयमुत विदेश ? इत्याद्यविद्वान् वलवता समास्कन्दितो मनोदु खेन·· अभिलषित-भूधरभृगुप्रपातश्च ··केनाप्यनुपलक्षित····विजयार्धगिरिशिखरमध्यारोहम् ।[२०]

अब आईए, जरा नायिकानिष्ठ विप्रलम्भशृङ्गार रस पर भी एक विहङ्गम दृष्टि डाल ले। यह सच है कि तिलकमञ्जरी षोडशी बाला है, वह निहायत ही खूबसूरत है, तथा विलासितापूर्ण और स्वतन्त्र वातावरण मे भी पली है। लेकिन उसका दिल युवा-प्रेम की पीर से अभी बिलकुल ही अपरिचित था कि अदृष्टपारसरोवर के तीर पर एक एलालतामण्डप मे उसकी भेट हरिवाहन से हो जाती है। हालाँकि वह इस मुलाकात मे हरिवाहन के पास रुकती नही है; उसके समयोचित प्रश्नो का उसे उत्तर भी नही देती है,

किन्तु अपना पूरी तरह से कुँवारा दिल उसे जरूर दे बैठती है। उसके शान्त और स्वच्छ मनोमानसरोवर मे रतिकामना की लहरे लहराने लगती है। वह बेचैन हो उठती है। उसकी सहेलियाँ और परिचारिकाएँ उसकी यह हालत देखकर चिन्तित हो जाती है। जैसे-तैसे वे उसे घर ले जाती है। वहाँ पहुँचते-पहुँचते तो वह पूरी तौर से वियोगिनी ही बन जाती है।[21]

कथानायिका तिलकमञ्जरीनिष्ठ विप्रलम्भ शृगार का दूसरा प्रसग धनपाल ने तब प्रस्तुत किया है जब हरिवाहन तिलकमञ्जरी के यहाँ से कुछ दिनो के लिए अपनी छावनी को वापिस चला जाता है। इसे 'प्रवासहेतुक विप्रलम्भ' कह सकते हैं। वह उन सभी स्थानो को बडे प्यार और उत्कण्ठा से देखती है, जहाँ हरिवाहन ठहरा था। अपने हाथो से उसका चित्र बनाती है। ललितकलाओ का अभ्यास करती रहती है ताकि जब हरिवाहन लौटे तो उसे वह खुश कर सके। गन्धर्वक से भी वह आए दिन हरिवाहन के ही विषय मे पूछती रहती है।[22] उन दिनों वह पूरी तौर से प्रोषितपतिका बनी हुई है और अपने प्रेमी के लौटने के इन्तजार मे दिन बिता रही है। अपने प्रियतम के विरह मे बेचैन उससे नाजुक दिल की धडकनो को गिनते हुए से धनपाल लिखते है—

तन्वङ्ग्यास्त्वमिति प्रसादविशदं नासीति ` ालसम्,
चक्षुर्द्वारपथावतारिणि जने व्यापारयन्त्या मुहुः।
हर्षार्तिप्रभवाः प्रतिक्षणभवत्स्वेदाम्बुदाहज्वरे,
वाष्पाम्भःकणिकाः पयोधरतटे पुष्यन्ति शुष्यन्ति च॥

वाह, इसे कहते है प्रिय का वेतहाशा इन्तजार। कमाल है, प्रेमी के आने का अन्दाज लगाते ही आँखो मे खुशी की लहर दौड जाया करती है, पर थोडी ही देर बाद न आने की बात सुनकर वे ही आँखे उदासी मे डूब जाती है, इसी बीच प्रियतम के आने और न आने की खुशी और गम मे दिल भी तरलता और दाहकता का शिकार बनता रहता है। फलस्वरूप उसपर हरक्षण टपकते हुए आँसुओ की बूँदे झलकती और सूखती रहती है।[23]

इस नायिकानिष्ठ विप्रलम्भशृङ्गार का तीसरा प्रसग तब देखने को मिलता है जब तिलमञ्जरी को यह पता चलता है कि हरिवाहन ही उसका पूर्वजन्म का ज्वलनप्रभ है। अब उसे बडी ग्लानि होती है कि वह हरिवाहन से व्यर्थ ही दूर हुई। इसी बीच जब उसे यह मालूम होता है कि हरिवाहन लापता है तो वह घबरा जाती है। विमान पर बैठ-कर स्वय सारे दिन उसे ढूँढती रहती है। विरह और पश्चात्ताप की दोहरी आग मे उसका सुकुमार हृदय झुलसने लगता है, और जब उसे यह मालूम होता है कि हरिवाहन विजयार्धपर्वत की उच्चतम चोटी पर अकेला चढकर गायब हो गया है तब तो उसका दिल उसके अनिष्ट की आशङ्का से बुरी तरह काँपने लगता है। यहाँ तक कि वह बेहोश भी हो जाती है। होश आते ही जिनेन्द्र भगवान् की पुजा और प्रार्थना करने के बाद प्रियतम के मिलन से निराश होने के कारण अदृष्टपार सरोवर मे डूब मरने के लिए चल देती है। किन्तु इसी बीच पिता से प्राप्त आश्वासन के सहारे हरिवाहन के मिलन की

आशा मे छ. माह बिताने लगती है। फलस्वरूप विप्रलम्भ की वह स्थिति 'करुणविप्रलम्भ' मे बदलती-सी नजर आने लगती है।[२४]

मलयसुन्दरी, जो इस कथाकाव्य (उपन्यास) की पताकानायिका है, की तो सारी ही कहानी धनपाल ने विरह की कलम और वेदना की स्याही से लिखी है। बीच मे क्षण-मात्र के लिए, सो भी फाँसी के फन्दे मे झूलने के बाद, अवश्य ही उसे अपना सपना साकार दिख जाता है, पर फिर वही अनन्त विरह उसके गले बध जाता है। लेकिन गनीमत है कि धनपाल ने आखिरी पन्नो मे उसकी सुन ली है, और उसे उसके प्रियतम से मिलाकर विरह की वेडियो से मुक्त कर दिया है।

तिलकमञ्जरी के अङ्गरसों का विवेचन

धनपाल ने मानव-मनोभावों एव परिस्थितियो की विचित्रता को प्रस्तुत करने के लिए अपनी तिलकमञ्जरी कथा मे अङ्गरसो की भी सफल सयोजना की है। ठीक भी तो है, अवयवी की पुष्टि अवयवो की आनुपातिक पुष्टि पर ही तो निर्भर रहती है। साथ ही साथ पाठको को रुचि-परिवर्तन का भी अवसर मिल जाया करता है। इस दृष्टि से हमे तिलकमञ्जरीकथा मे यत्र-तत्र अद्भुत, भयानक, करुण वीर, रौद्र और शान्त रस के भी झरने झरते हुए नजर आते हैं। पर वे झरने (रसस्रोत) है काफी छोटे-छोटे। अच्छा तो लीजिए, अब हम सक्षेप मे उनकी चर्चा प्रस्तुत करते है।

अद्भुत रस

जब आश्रय के हृदयसरोवर मे विस्मय की लहरें उमडने लगती है तो समझा जाता है कि अद्भुत रस की निष्पत्ति हो रही है। धनपाल की तिलकमञ्जरीकथा मे ऐसे कई स्थल हैं जहाँ इस रस की अनुभूति साकार होती है। उदाहरणार्थ हम आकाशमार्ग से आते हुए विद्याधरमुनि वाले स्थल को ही ले सकते है। उन्हे वायुगति से उड़ते हुए देखकर सम्राट् मेघवाहन एव सम्राज्ञी मदिरावती का हृदय कौतूहल और विस्मय के अतिरेक से भर जाता है। तभी तो वे उनके प्रति आदर प्रकट करने की भावना से उठ खडे होते है। धनपाल के सक्षिप्तीकृत शब्दो मे यह वर्णन इस प्रकार है—

एकदा च राजा······महाप्रासादस्य पृष्ठे समुपविष्ट ···सह तया (मदिरावत्या) प्रस्तुतालाप सहसैवान्तरिक्षेण दक्षिणापथादापतन्तम्, उद्योतितसमस्तान्तरिक्षमार्गम्··· ··विद्याधरमुनिमपश्यत्। दृष्ट्वा च तमदृष्टपूर्वमुपजातकुतूहलो विस्मयस्तमितदृष्टि-रूपरतनिमेषतया दर्शनप्रीत्युपार्जितेन पुण्यराशिना तस्यामेव मूर्त्तावाविर्भूतदिव्यभाव इव मुहूर्त्तमराजत। अभिमुखीभूत च त प्रासादस्य ·····सुदूरविकासितमुख सम मदिरावत्या प्रत्युज्जगाम।[२५]

सम्राट् से विदा लेकर जाते समय भी वह आकाश मे उडान भरकर हम सबके मनोमानस मे आश्चर्य की लहरे छोड जाते हैं।[२६]

अद्भुत रस की अनुभूति हमे वहाँ भी होती है जहाँ एक सामान्य-सा तोता कमलगुप्त के उत्तरपत्र को उनकी पुकार पर उठाकर ले उडता है। हम सबके लिए तोते

का वह आकस्मिक एव मानवोचित व्यवहार विस्मय का उद्बोधक ही सिद्ध होता है।[२७] इसी प्रकार जब हम हाथी को उडता हुआ पाते है तब तो हमारा विस्मय और भी अधिक बढ जाता है।[२८] तिलकमञ्जरी के भवन मे दिव्य वस्त्र के सस्पर्श से तोते का गन्धर्वक के रूप मे सहसा बदल जाना देखकर भी कम विस्मय नही होता।[२९]

इस तरह हम पाते है कि धनपाल ने कथावस्तु मे कौतूहल की सर्जना के लिए स्थान-स्थान पर अद्भुत रस की निष्पत्ति करने का अच्छा प्रयास किया है।

भयानक रस

यह रस हृदय मे भय का सचार करता है। यही कारण है कि इसे सहृदय कम पसन्द करते है। पर आखिर है तो एक रस ही। क्योकि भयनामक स्थायी मनोभाव को नजर-अन्दाज तो किया नही जा सकता है इसीलिए साहित्य-जगत् मे इसकी अभिव्यजना को स्थान भी मिला है। धनपाल ने अपनी तिलकमञ्जरी कथा मे एक-दो स्थानो पर भयानक रस के आलम्बन-विभावो की तो सर्जना की है किन्तु इसकी निष्पत्ति उन्होने नही की। वह करना भी नही चाहते होगे, क्योकि उन स्थलो पर उसके आलम्बन-विभावो का सामना करने वाले पात्र कोई साधारण पात्र नही है। उनमे एक तो सम्राट् मेघवाहन ही है जो सौ कोसो दूर है, और दूसरे युवराज समरकेतु है, जो भय को भय समझना अपनी वीरता का कलङ्क समझते है।

अत भयानक रस के दोनो ही आलम्बन-विभाव रस को निष्पन्न करने मे असमर्थ रहे है, और मै समझता हूँ कि धनपाल ने ऐसा जानबूझकर ही किया है, जो ठीक भी है।[३०]

करुण रस

धनपाल ने अपनी तिलकमञ्जरीकथा मे जहाँ एक ओर अपने पाठको को रति-भावना की तरगो मे तैराने का सफल प्रयास किया है, वहाँ दूसरी ओर उन्होने अनेक स्थलो पर उनके हृदयकुसुम को करुणा की भी नदी मे वहने के लिए बाध्य कर दिया है। हम देखते है कि तिलकमञ्जरीकथा मे शृगार रस के बाद दूसरे नम्बर पर यह करुण रस ही आता है, जो पाठको के मनोमस्तिष्क पर अपनी पूरी छाप जमाने मे कामयाब होता है। ऐसे कई स्थल है जहाँ पाठको की आँखे गीली हुए बिना नही रह सकती। उदाहरणार्थ—सर्वप्रथम सम्राट् मेघवाहन के शिरोदान वाले दृश्य को ही लीजिए। भला ऐसा कौन होगा जो एक अच्छे सम्राट् के सिर को कटता हुआ देखता रहे? पर वह हृदय कुछ ऐसा ही है। उनकी आधी कटी हुई गर्दन को देखकर दिल फडफडाने लगता है और शोक से भारी हो जाता है।[३१]

इसी प्रकार जब हमे महावतो की हालत और बातो से ऐसा आभास होने लगता है कि राजकुमार हरिवाहन की उस पागल हाथी ने हत्या कर दी है तो हमारे दिल मे एक गहरा सदमा बैठ जाता है और मन के मानसरोवर मे शोकलहरियाँ थपेडे मारने लगती है।[३२] धनपाल लिखते है—

युवराज ! न केवल गगनमार्ग:, सोऽपि दुष्टात्मा पापकर्मभिर्दृष्टोऽस्माभि.। केवल यद्व्यावर्तनाशया तस्य पृष्ठे प्रधाविता., य चान्वेषयद्भिरनुभूतो दिनत्रयमसावसह्य क्षुत्पिपासाकृत परिक्लेश., य चानीय युवराजेन योजयितार: इति पुरा चिन्तितमस्माभि , स नास्ति सकलमेदिनीचक्रचन्द्रमा कुमार इत्यभिधाय वाष्पजललवानधोमुखा. सस्रजु·।[33]

इस समाचार को पाकर छावनी की जो हालत हुई उसका भी वर्णन पढकर पाठको की पलकें गीली होने लगती है।[34]

करुणा की नदी मे पाठको को वहाँ भी तैरना पड़ता है जहाँ धनपाल ने मलयसुन्दरी को प्रणय की असफलता के कारण फाँसी के फन्दे पर लटक कर जान गँवाते हुए दिखाया है। उस समय का बन्धुसुन्दरी का विलाप शोक को उद्दीपित करने मे आग को भड़काने मे आँधी के काम जैसा काम करता है। उस प्रकरण को, लम्बा होने की वजह से ही, मै यहाँ उद्धृत करने का साहस नही कर पा रहा हूँ।[35]

आगे चलकर एक स्थल ऐसा भी मिलता है जहाँ शोक का समुन्दर ही लहराता हुआ नजर आता है। हम देखते हैं कि कथा की नायिका तिलकमञ्जरी अपने प्रियतम हरिवाहन के मिलने की उम्मीद खो चुकी है। उसे अपने सेवक चित्रमाय की बात सुनकर ऐसा विश्वास हो गया है कि उसी के द्वारा उपेक्षित होने के कारण उसका प्रेमी पहाड से गिरकर आत्मघात कर चुका है। अत. वह भी अपने जीवन को व्यर्थ समझने लगती है, और फिर सब ओर से निराश होकर अपनी सहेलियो से विदा लेकर अदृष्टपारसरोवर मे डूब मरने के इरादे से चल पडती है। उसकी सभी सहेलियाँ भी उसके इस निर्णय से रोने लगती हैं। उस समय उन सबकी सिसकियो और आँसुओ का पाठको के दिल पर कुछ ऐसा असर पडता है कि वे उस शोकसमुन्दर मे बुरी तरह गोता खाने लगते हैं।[36]

वीर रस

इस रस की अभिव्यजना से शरीर मे उमग पैदा हो जाती है, उत्साह और साहस अँगड़ाई लेकर जाग पडते है। तिलकमञ्जरीकथा मे इस प्रकार की उत्साहसम्पन्न मनोदशा की अनुभूति दो स्थलो पर तो निश्चित रूप से होती ही है। इनमे एक स्थल तो वह है जहाँ अयोध्या के सेनाध्यक्ष वज्रायुध के साथ सिहलद्वीप के युवराज समरकेतु का अन्धाधुन्ध निशायुद्ध वर्णित किया गया है। इस सन्दर्भ मे धनपाल ने दोनो सेनाओ की भिडन्त का वडा ही फडकता हुआ वर्णन किया है। लीजिए उसका सक्षिप्तीकृत उदाहरण इस प्रकार है—

······परस्परवधनिवद्धकक्षयोश्च तयो ·· सोल्कापात इव निशितप्रासवृष्टिभि , सनिर्घातपात इव गदाप्रहारै., ससवर्तकाम्बुदर्दुदिन इव करिशीकरासारै·, सोत्पातरविमण्डल इव कीलालितकरालचक्रमुक्तिभि·, सवैद्युत सूर्य इव जवापतज्ज्वलितशक्तिभि , ····· अजायत महाप्रलयसन्निभ समरसङ्घट्ट.। सर्वतश्च गात्रसङ्घट्टरणितघण्टानामरिद्विपावलोकनक्रोधधावितानामिभपतीना वृंहितेन, प्रतिगलाश्वदर्शनक्षुभिताना च वाजिना ह्रेषितेन, ·· ··स्यन्दनाना चीत्कृतेन, ·· · वाणयष्टीना टकृतेन, पर्यस्यता रथकेतनाना कट्टत्कारेण, ·····नाराचाना सुत्कारेण,····· रुधिरापगाना घूत्कारेण, ··

समरभेरीणा भाङ्कारेण निर्भराध्मातसकलदिक्चक्रवाल······साक्रन्दमिव, साट्टहासमिव, सास्फोटनरवमिव ब्रह्माण्डमभवत् ।[३७]

समरकेतु और वज्रायुध का बाणयुद्ध तो महाभारत के अर्जुन और कर्ण के बाण-की याद दिला देता है उस प्रसग का एक सक्षिप्तीकृत अनुच्छेद इस प्रकार है—

····बारबारमन्योन्यकृततर्जनयोश्च तयो. आकर्णान्ताकृष्टमुक्तास्तुल्यकालमास्वादितगलामिपाविसारिण., लङ्घितदशदिशो दूराध्वगा , राजकार्योपयोगिनस्तीक्ष्णा , परितोषितसुराङ्गना सुपर्वाण , महाजवा वाजिन., चापलतोषिता: क्षितिपालदारका:, विषमाश्वमण्डलभेदिन प्राप्तमोक्षा, दत्तदीर्घनिद्रा महासन्निपाता , स्वेच्छाविहारिण: खेचरा ,···सायका प्रसस्रु । ××× नरपतिकुमार ××× वेगाकृष्टचापयष्टिरुत्पातजलधर इव जलधारासारम्, अन्धकारिताष्टदिगन्तरालसूत्रिताकालप्रदोपम्, अनवरतमुत्पतद्भि नभसि भीपणैर्ज्यानिनादैररिशिरोभिश्च व्याहृतविसर्गम्, स्तूयमानमिव सुभटशस्त्रपातरणितेन, प्रणम्यमानमिव भूमिनिक्षिप्तमूर्धभि कवन्धै·, अर्च्यमानमीव निपतदातपत्रकुसुमै स्यन्दनै, क्षिप्यमाणलाजमिव उच्छलत्कुम्भमुक्ताफलाभि करिघटाभि , अभिषिच्यमानमिव मुक्तासृग्वृष्टिभि प्रहारव्रणै·,······मूक मांसभेदे, मन्द मेदसि, मुखरमस्थिषु, मन्थर स्नायुग्रन्थिष्वसख्यमसृजन्मार्गणव्रातम् ।[३८]

वीररस की अभिव्यजना का दूसरा स्थल वह है जहाँ समरकेतु की सफलसमुद्रीय विजययात्रा का वर्णन किया गया है। इस प्रसग मे सिंहलद्वीप की राजधानी रगशाला नामक नगरी से चली हुई समरकेतु की सेना का काफी ओजपूर्ण वर्णन मिलता है।[३९] समुद्रीय सामन्तो पर समरकेतु की विजय का भी वर्णन कम उत्साहवर्धक नही है।[४०] धर्मवीरता और दानवीरता की दृष्टि से सम्राट् मेघवाहन को कभी भी नही भुलाया जा सकता है। क्योकि हम देखते है कि वह वेताल की मॉग पर अपना सिर भी स्वय काटकर देने लगते है।[४१] दयावीरता मे हरिवाहन अग्रणी है। वह एक अपरिचित युवा विद्याधर दम्पती की खुशी के लिए अपना सारा दु:ख भूलकर कठिन तपस्या मे लग जाता है।[४२] युद्धवीरता मे तो समरकेतु मूर्द्धन्य ही है।

इस प्रकार हम देखते है कि धनपाल ने शृगार की सेवा के लिए वीर का अच्छा और सागोपाग उपयोग किया है।[४३]

रौद्र रस

यह तमोगुणप्रधान रस है। शरीर मे क्रोध का 'करेण्ट' दौडना ही इसकी अभिव्यजना है। तिलकमञ्जरीकथा मे देखा जाए तो, ऐसा एक ही प्रसग है जहाँ रौद्र रस की अभिव्यजना की गई है, और सच बात तो यह है कि पाठको का मन उस प्रसग मे भी क्रोधाभिभूत नही होता है। प्रसग यह है कि गन्धर्वक मलयसुन्दरी के मृतप्राय मूर्च्छित शरीर को स्वस्थ करने के लिए विमान मे रखकर आकाशमार्ग से उत्तरदिशा की ओर बडी तेजी से जा रहा है। वह चूंकि एक जैनमन्दिर के ऊपर से गुजरता है, इसलिए उस मन्दिर का रक्षक एक यक्ष उस पर नाराज हो जाता है और उसके विमान की गति को रोक देता है। गन्धर्वक जल्दी मे है, क्योकि उसे मलयसुन्दरी के शरीर मे समाया हुआ

विप जल्दी से जल्दी दूर करने के लिए औपधियों के देश मे पहुँचना है। अत. वह यक्ष से तकरार कर बैठता है, जिससे यक्ष की क्रोधाग्नि भडक पडती है। बस उस समय उसके शरीर मे रौद्ररस की धारा बहने लगती है। इस सन्दर्भ मे धनपाल ने लिखा है—

स एवमुक्तमात्र एव मया रोपरक्तेक्षणो ललाटतटविघटितभगुरभ्रूकुटिराविष्कृत-वेतालरूप:—रे रे दुरात्मम्! अनात्मज्ञ! विज्ञानरहित! परिहृतविशिष्टजनसमाचार! विगतपारसंसारपल्वलपङ्कशूकर! महापापकारिन्!····· मामपि महोदराख्य यक्षसेना-धिपमधिक्षिपसि? रे विद्याधराधम! न जानासि मे स्वरूपम्?···तदरे दुराचर!······ मां तर्जयसि? गतोऽस्यधस्तादनेन दुश्चेष्टितेन। क्व यासि?······हृता हताश! ते विद्याधरकृत····· यदृच्छाचारिता,······इत्युदीर्य दत्तहुङ्कार ······तद्विमान······ सरसि न्यक्षिपत्।[४४]

स्पष्ट है कि धनपाल ने यक्षनिष्ठ रौद्ररस की निष्पत्ति करनी चाही है, जिसका आलम्बन भोलाभाला गन्धर्वक बनाया गया है, जो बिचारा हवन करने मे अपना हाथ जला बैठा है। पाठको को यहाँ, धनुर्भङ्ग के अवसर पर आए हुए रामलक्ष्मण पर नाराज होते हुए, परशुराम की याद आ सकती है।

शान्त रस

ससार की निस्सारता का भाव जब रह-रह कर उभरने लगता है तब शान्त रस की शान्तधारा धीरे-धीरे बह निकलती है, और मन कुछ भारी सा रहने लगता है। तिलकमञ्जरीकथा मे भी अदृष्टपारसरोवर मे गिरकर निकलने के बाद हरिवाहन जब कुछ आश्वस्त होते है तो उनके मन मे कुछ इसी प्रकार की निर्विण्णता भर जाती है। फलस्वरूप उसे हम शान्त रस की कोटि मे बडी आसानी से रख सकते है। धनपाल ने उनकी उस निर्वेदमयी मनोदशा का चित्रण इस प्रकार किया है—

······अहो विरसता ससारस्थिते, अहो विचित्रता कर्मपरिणतीनाम्, अहो यदृच्छाकारितायामभिनिवेशो विधे अहो भगुरस्वभावता विभवानाम्······सर्वमेव स्वप्नविज्ञानोपम सम्पन्नम्।······सर्व एवायमेवकार. ससार। इद तु चित्र यदीदृशमप्ये-नमवगच्छामीदृशीमपि भावानामनित्यता विभावयताम्, ईदृशानपि दशाविशेपाननुभवतां न जातुचिज्जन्तूनां विरज्यते चित्तम्, न विशीर्यते विषयाभिलाष, न भगुरीभवति भोगवाञ्छा, नाभिधावति नि.सङ्गतां बुद्धि:······। सर्वथा अतिगहनो बलीयानेष ससारमोह:।[४५]

निस्सन्देह ही थोडी देर के लिए यहाँ धनपाल ने हरिवाहन निष्ठ शान्त रस की अभिव्यजना करके पाठको के मन को ससार से विमुक्त करने का अच्छा प्रयास किया है। शान्त रस की हलकी सी लहर उस समय भी उठती दीखती है जब सम्राट् मेघवाहन सन्यास लेकर परलोकसाधनोन्मुख होते है।[४६]

वत्सल रस

जब अपनी सन्तान या छोटे भाई-बहिनो के लिए दिल मे प्यार का सागर हिलोरे

मारने लगे तो समझना चाहिए कि वत्सल रस की निष्पत्ति हो रही है। इस रस की सत्ता एव स्वरूप के विपय मे आचार्य विश्वनाथ ने काफी सहानुभूति के साथ विचार किया है।[४७] तिलकमञ्जरी कथा मे धनपाल ने सम्राट् मेघवाहन,[४८] विद्याधरराज विचित्र-वीर्य[४९] और काचीनरेश कुसुमशेखर[५०] की मनोभूमियो मे वत्सल की त्रिपथगा बहाने का उल्लेखनीय प्रयत्न किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तिलकमञ्जरीकथा मे अगीरस (शृगार) की पुष्टि मे अन्य सभी अपेक्षित अगरसो की भी सफल अभिव्यजना की गई है। हाँ, इतना अवश्य है कि इसमे हास्यरस और वीभत्स रस के लिए अलबत्ता कोई भी स्थान नजर नही आता है। मेरी समझ से शृगाररस प्रधान इस कथा मे वीभत्स रस का न पाया जाना तो एक प्रकार से ठीक ही है, किन्तु हास्य रस का अभाव कुछ अवश्य खटकता है।

रसो की अभिव्यजना पर विचार

वास्तव मे देखा जाए तो काव्य का सारा आनन्द उसकी रसात्मकता पर ही निर्भर रहता है। नीरस काव्य को या नाटक को कोई भी तो पसन्द नही करता है। क्योकि रस का अभाव होते ही काव्य की सारी कमनीयता पर कालिख पुत जाती है, और यही कारण है कि भारतीय मनीपा काफी विचार-विमर्श करने के पश्चात् इसे ही काव्य का जीवन मानने लगी है।[५१]

यह सच है कि जो साहित्यकार अभीष्ट रसो की जितनी ही अच्छी अभिव्यजना कर लेता है उसकी कृति का साहित्यजगत् मे उतना ही अधिक स्वागत होता है। अत. प्रत्येक जागरूक एव सवेदनशील साहित्यकार अपनी कृति मे उपयोगी एव हृदयग्राही रसो की निष्पत्ति करने का पूरा-पूरा प्रयत्न करता है। हमारे आलोच्य महाकवि धनपाल भी ऐसे ही जागरूक एव सवेदनशील साहित्यकारो मे से एक है। उनकी रोमांटिक कथाकृति 'तिलकमञ्जरीकथा' मे हमे सभी उपयोगी एव अपेक्षित रसो की अभिव्यजना का अतीव मजुल समन्वय दृष्टिगोचर होता है। रसापकर्ष या रसविरोध नाम जैसी कोई भी अरुचिकर स्थिति हमे उसमे नही मिलती है। बल्कि जिस प्रकार छोटी-छोटी नदियाँ किसी महानदी की धारा को परिवर्धित किया करती है उसी प्रकार अद्भुत, भयानक, करुण, वीर, वत्सल, शान्त आदि प्रासगिक रस भी तिलकमञ्जरीकथा के प्रधान रस (शृगार) की अभिव्यजना एव चर्वणा मे पूरी तौर से सहायक बनते हुए नजर आते है।

रस सयोजना को देखते हुए लगता है कि धनपाल ने किसी रसविशेष की अभि-व्यक्ति के लिए कोई प्रयत्न विशेष नही किया है। इसीलिए उसमे स्वाभाविकता और सम्प्रेषणीयता भी पाई जाती है। उन्होने रसाभिव्यजना के विस्तार एव सकोच की सीमा और औचिती का भी काफी ध्यान रखा है और इसीलिए हम सक्षेप मे यह कह सकते है कि धनपाल सस्कृत-वाड्मय की गद्यात्मिका विधा के एक अच्छे-खासे रससिद्ध साहित्यकार है।

तिलकमञ्जरीकथा मे विभाव

जो रसनिष्पत्ति का मूलाधार होता है, अर्थात् जिसे देख-सुनकर हृदय मे बसने

वाला कोई भावविशेष तरंगित होने लगता है उसे हम विभाव कह सकते हैं। भरतमुनि ने वाचिक, आगिक और सात्त्विक अभिनयो पर आश्रित रहने वाले रसादि रूप अर्थ की जानकारी (विभावना) कराने वाले प्रमुख कारण को विभाव कहा है।[५२] नाट्यदर्पणकार श्रीरामचन्द्रगुणचन्द्र ने रस के स्वरूप को प्राप्त होने वाले और वासना के रूप मे पाठको या दर्शकों के हृदयसागर मे वसने वाले स्थायी भाव को जो विभावित करते है, अर्थात् जो उसे प्रकट करते है, उन्हे विभाव कहा है।[५३] साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ का भी कुछ ऐसा ही आशय है।[५४]

इस विभाव के दो भेद है—पहला आलम्बन-विभाव और दूसरा उद्दीपन-विभाव।[५५] धनपाल की कथाकृति मे हमे दोनो ही प्रकार के विभावो का सफल एव समानुपातिक वर्णन मिलता है। सर्वप्रथम हम यहाँ उनकी कथावस्तु के अगीरस (शृगार) के विभावो की चर्चा चलाते हैं। प्रस्तुत कथाकाव्य मे हमे हरिवाहन और तिलकमञ्जरी की मुख्य रोमानी कहानी के अतिरिक्त दो और भी प्रणय कथाएँ देखने को मिलती है। उनमे एक तो है समरकेतु और मलयसुन्दरी की प्रेम-कथा, जो मुख्य-कथा के साथ अपनी सत्ता बडी रोचक रीति से कायम बनाए रखती है, और दूसरी है तारक तथा प्रियदर्शना की प्रेमविवाहविषयक लघुकथा, जो परिचयात्मक मात्र है। है ये तीनो ही शृगाररस-मयी। इन्हे पढने के बाद हमे तो त्रिवेणी (गगा, यमुना और सरस्वती) की याद आ गई थी; और वह याद इस प्रकरण को लिखते समय फिर से ताजी हो गई है। भला आए भी क्यो नही ? क्योकि मेरे मस्तिष्क मे तो हरिवाहन और तिलकमञ्जरी की कथा जो मुख्य-कथा है, गगा के रूप मे, समरकेतु और मलयसुन्दरी की कथा जो सहायक कथा है, यमुना के रूप मे और तारक तथा प्रियदर्शना की छोटी-सी प्रेम-कथा सरस्वती के रूप मे घर कर चुकी है। हमे इन तीनो ही कथा-सरिताओ मे शृगार का स्वादिष्ट सलिल (रस) भी वहता हुआ नजर आता है। जिस प्रकार नदी का जल अपने दोनो ही किनारो को आप्लावित करता हुआ आगे बढता जाता है ठीक उसी प्रकार इन कथा-सरिताओ का शृगार सलिल (रस) भी नायक-नायिका रूपी अपने दोनो तटो को सराबोर करता हुआ दृष्टिगोचर होता है। धनपाल ने अपनी इस कथाकृति मे मुख्यकथारूपिणी सरिता का एक किनारा तो हरिवाहन को माना है और दूसरा तिलकमञ्जरी को। इसी प्रकार दूसरी सहायक कथारूपिणी नदी का एक किनारा समरकेतु है और दूसरा मलयसुन्दरी। अब जो तीसरी छोटी-सी प्रेमकथारूपिणी सरिता है उसका एक किनारा तारक है और दूसरा प्रियदर्शना।

हम चाहते हैं कि उपरिलिखित अनुच्छेद मे आया हुआ 'किनारा' शब्द 'आलम्बनविभाव' शब्द का उपलक्षण बनकर तीनो ही प्रणयियुगलो—हरिवाहन और तिलकमञ्जरी, समरकेतु और मलयसुन्दरी तथा तारक और प्रियदर्शना—को परस्पर आत्मनिष्ठ शृगार का 'आलम्बनविभाव' भी ध्वनित कर दे। धनपाल ने कथा के अनुपात को ध्यान मे रखते हुए शृगार रस के इन सभी आलम्बनविभावो का रोचक चित्रण प्रस्तुत करके कथा की रोमाण्टिकता को पूरी तरह से सुरक्षित रखा है।

रसानुभूति को उभाडने के लिए उद्दीपन-विभाव की भी सयोजना अपने आप मे

काफी महत्त्व रखती है। इस दृष्टि से धनपाल ने शृगार को उद्दीपित करने के लिए कही रतिपात्र के रूपसौन्दर्य का नखशिख वर्णन,[५६] तो कही देश और काल की एकान्तता तथा मादकता का चित्रण[५७] करने मे हमेशा ही बडी सूझबूझ से काम लिया है। उनके ये वर्णन कही भी मन को उबाने वाले नही है। वे काफी सीमित हैं, सापेक्ष हैं, और रसोद्दीपन मे पूरी तरह से सशक्त है।

तिलकमञ्जरीकथा में अद्भुत रस के विभाव

धनपाल ने अपनी कथाकृति मे विद्याधरमुनि, शुकरूप मे परिवर्तित गन्धर्वक और हाथी का रूप बना लेने वाला चित्रमाय, इन तीनो को ही एक-एक स्थान पर अद्भुत रस के आलम्बनविभाव के रूप मे प्रस्तुत किया है। आकाशमार्ग से उडते हुए विद्याधरमुनि के तप पूत शरीर की शोभा और उनके उद्भावित गुणो को उद्दीपन विभाव के रूप मे वर्णित किया है।[५८] वह दृश्य भी विस्मय का कम उद्दीपक नही है जब वह मेघवाहन से विदा लेकर आकाश मे उडने का उपक्रम करते है तभी तो उस समय सम्राट् भी अपनी ललकभरी आंखो से उन्हे तब तक देखते रहते है जब तक कि वह ओझल नही हो जाते।[५९] उधर जब चित्रमाय हाथी का रू। धारण करके हरिवाहन का छल से हरण करके उसे अपनी पीठ पर आकाशमार्ग से उडाने लगता है तो उस समय उसकी अतितीव्रगति, साथ ही साथ सूंड को भी इधर-उधर करते रहना आदि का वर्णन उद्दीपन विभाव के रूप मे माना जा सकता है।[६०] इसी प्रकार जब गन्धर्वक शापलब्ध शुकरूप को दिव्यपट के सस्पर्श से त्यागकर पुन अपने असली रूप मे प्रकट होता है तो उस समय उसके द्वारा बडे झटके के साथ वस्त्र को हटाना, साथ ही उसे देखकर महल की महिलाओ का "अरे यह तो गन्धर्वक है, अरे यह तो गन्धर्वक है" ऐसा कहते हुए एकदम चिल्लाने लगना अद्भुत रस का उद्दीपन विभाव बन जाता है, जो काफी स्वाभाविक है।

तिलकमञ्जरीकथा मे भयानक रस के विभाव

धनपाल ने लक्ष्मी की तपस्या मे लगे हुए मेघवाहन के सामने अकस्मात् प्रकट हुए वेताल को भयानक रस के आलम्बनविभाव के रूप मे प्रस्तुत किया है। उसके भयकर स्वरूप एव रोमांचकारी अट्टहास को उद्दीपन विभाव की कोटि मे रख सकते है। इसी प्रकार हरिवाहन की खोज मे निकले हुए समरकेतु को मार्ग मे मिले जगल की गहनता और भयकरता का वर्णन भी भयानक रस का उद्दीपन विभाव बनने की क्षमता रखता है। किन्तु ये दोनो ही स्थल आश्रय के अभाव मे भयानक रस की अभिव्यक्ति एव उद्दीप्ति करने मे असमर्थ ही रहे है। भला किसी ने ठीक ही तो कहा है—मूल नास्ति कुत शाखा ?

तिलकमञ्जरीकथा मे करुण रस के विभाव

जब मेघवाहन वेताल को अपना सिर दान मे देने के लिए काटने लगते है, और बात की बात मे आधा काट भी देते है तो उस समय पाठको के मन मे सम्राट् के प्रति

उमड़ती हुई करुणा को उद्दीप्त करने के लिए धनपाल ने सम्राट् के उस अधकटे सिर, खून से लथपथ तलवार और जल्दी से जल्दी अपना पूरा सिर काट देने के लिए सम्राट् की छटपटाहट और फिर उनकी अर्धमूर्च्छा का उद्दीपन विभाव के रूप मे काफी अच्छा चित्रण किया है।[६१] इसी प्रकार जब हरिवाहन का एक मदोन्मत्त हाथी द्वारा अपहरण हो जाता है तो छावनी मे करुणा का सागर उमडने लगता है। पर इस करुणा का उद्दीपन तब हो जाता है जब ढूंढने पर हाथी तो मिल जाता है लेकिन हरिवाहन नही मिलते। धनपाल ने इस स्थल को करुण रस के उद्दीपन विभाव के रूप मे बडी सफलता के साथ वर्णित किया है।[६२] उधर मलयसुन्दरी के आत्महत्या के प्रयास पर धनपाल ने गले मे चादर का फन्दा डालकर अशोक वृक्ष की शाखा मे लटकती हुई मलयसुन्दरी के छटपटाते हुए शरीर का, तथा उसकी इस हालत को देखकर क्रन्दन तथा बचाने का उपाय करती हुई बधुसुन्दरी का जो वर्णन किया है वह भी पाठकों के मन मे उस स्थिति मे मलयसुन्दरी के प्रति उमडती हुई करुणा एवं सहानुभूति को उद्दीप्त करने मे काफी मदद देता है।[६३] लेकिन हरिवाहन के मिलन से निराश होकर जब तिलकमञ्जरी अदृष्टपारसरोवर मे डूब मरने के लिए चल देती हैं तो उस समय धनपाल करुण रस के उद्दीपन करने वाले तत्त्वो पर आवश्यक ध्यान नही दे पाए है। केवल उसकी सहेलियों को अनुमरण के लिए कृतसङ्कल्प बताकर ही आगे बढ गए है। यहाँ उन्होने हृदय की पुकार की ओर से लगता है कि अपने कान ही बन्द कर लिए है।[६४]

तिलकमञ्जरीकथा में वीर रस के विभाव

वज्रायुध और समरकेतु के निशायुद्ध मे दोनो ओर के सैनिको मे वीर रस की उद्दाम धारा फूट पडती है। वज्रायुध और समरकेतु तो वीर रस मे सरोवर ही दीखते है। धनपाल ने इन सबको वीर रस के आलम्बनविभाव के रूप मे चित्रित किया है। इस अवसर पर मागध-वन्दीजनो द्वारा कही गई विरुदावलियाँ, समरारम्भसूचक भेरी और नगाडो की आवाजें, सैनिको की 'पकडो-मारो' की पारस्परिक चुनौतियाँ, भाला-बर्छियो की चमचमाहट, बाणो की सनसनाहट, गदाओं की टक्कर, धनुषो की टङ्कार, घोडो की हिनहिनाहट और हाथियो की चिघाड आदि का वर्णन वीर रस से उद्दीपनविभाव के रूप से बड़ी सफलता के साथ किया गया है।[६५]

इसी प्रकार समरकेतु की समुद्रीय युद्ध यात्रा के अवसर पर उसकी सेना का वर्णन भी वीर रस के ही उद्दीपनविभाव के रूप मे मिलता है।

तिलकमञ्जरीकथा मे रौद्र रस के विभाव

यक्षाधिपति महोदर जब गन्धर्वक पर नाराज होता है तो उसके क्रोध का ठिकाना नही रहता है। उस समय यक्ष के लिए गन्धर्वक रौद्र रस का आलम्बनविभाव बना दिया जाता है। साथ ही गन्धर्वक की व्यग्यपूर्ण उक्तियाँ खौलते हुए तेल मे पानी की तरह यक्ष की क्रोधाग्नि को भडकाने का काम करती है।[६६] अत उन उक्तियो को हम निर्विवाद रूप से रौद्र रस का उद्दीपनविभाव मानेगे।

तिलकमञ्जरीकथा में शान्त रस के विभाव

अदृष्टपारसरोवर मे गिरकर निकलने के बाद हरिवाहन को निर्वेद घेर लेता है। उनका हृदय शान्त रस से गीला होने लगता है। अत इसके वह आलम्बनविभाव हैं, साथ ही साथ आश्रय भी, और बात की बात मे अपने सभी साथियो से उस अकल्पित रीति से बिछुड जाने की बात सोचने से तथा अपना अपहरण करने वाले अपने हाथी की दुर्दशा पर रह-रहकर ध्यान जाने से उनका निर्वेद बढने लगता है। अत उनकी इस विचारधारा को, साथ ही साथ वन की एकान्तता को, हम शान्त रस का उद्दीपन विभाव मानना उचित समझते है।[६७]

तिलकमञ्जरीकथा में वत्सल रस के विभाव

तिलकमञ्जरीकथा मे एक स्थान पर तो इस रस का 'आलम्बनविभाव' सद्योजात शिशु हरिवाहन है और उद्दीपन विभाव उसका जन्मोत्सव है।[६८] यहाँ इस रस का आश्रय सम्राट् मेघवाहन है। दूसरे स्थान पर आलम्बनविभाव गन्धर्वदत्ता है और उसका उद्दीपनविभाव मलयसुन्दरी की गन्धर्वदत्ता से मिलती-जुलती आकृति और नृत्यकला है। यहाँ इस रस का आश्रय विचित्रवीर्य है।[६९] तीसरे स्थान पर मलयसुन्दरी आलम्बनविभाव है और उसके प्रणयवृक्ष पर कुठाराघात तथा उसका आत्महत्या का प्रयास, इस रस का उद्दीपनविभाव है। इस स्थल पर वत्सल का आश्रय काचीनरेश कुसुमशेखर है।[७०]

तिलकमञ्जरी मे अनुभावो की समीक्षा

आलम्बन विभाव एव उद्दीपन विभाव से जब आश्रय मे कोई रसविशेष आन्दोलित होने लगता है तो उसके फलस्वरूप उस आश्रय मे कुछ वाचिक एव शारीरिक चेष्टाओ को साहित्यशास्त्र मे अनुभाव कहने की पुरातन परम्परा आज भी सुरक्षित है। एक सफल साहित्यकार इस बात का सदैव ध्यान रखता है कि उसकी कृति मे रस के अभिव्यजक अनुभावो का स्वाभाविक वर्णन हो। हमारे धनपाल भी इस विषय मे काफी सतर्क है। वह अनुभावो का निहायत ही स्वाभाविक चित्रण करने मे सिद्धहस्त है। वह भलीभाँति समझते है कि शृगार रस की लहरे उमडते ही व्यक्ति अपने प्रिय (आलम्बन विभाव) को काफी ललचाई हुई और प्यारभरी निगाहो से देखने लगता है। उसकी नख-शिख शोभा मे उसकी आँखे डूबने और उतराने लगती है। तिलकमञ्जरी के चित्र को हरिवाहन भी कुछ इसी प्रकार से देखता है।[७१] वह तिलकमञ्जरी के प्रिय सेवक गन्धर्वक से मिलने की आशा से उस उद्यान मे रोज पहुँचता और इन्तजार करता है जहाँ उसकी उससे पहली भेट हुई थी।[७२] हरिवाहन को देखने से तिलकमञ्जरी की भी आँखो मे प्यार की चमक दौड जाती है।[७३] यह अनुभाव नही तो और क्या है? इसके अतिरिक्त धनपाल ने लाज एव प्यार की चादर मे लिपटी हुई तिलकमञ्जरी की मुँह से सीत्कार करना, मणिमय स्तम्भो से आलिगन करना, रोमाटिक गीत गाना और चित्र बनाना, ताली दे-देकर मयूरो को नचाना, पाषाणमयी स्त्रीप्रतिमाओ (शालभञ्जिकाओ) के उभरे हुए उरोजो पर मोतियो के हार पहनाना आदि—शृगाररसाभिव्यजक चेष्टाओ को भी

अपनी कृति मे बड़े ही अच्छे ढंग से अनुभावो के रूप मे प्रस्तुत किया है; जिन्हे स्थानाभाववशात् चाहते हुए भी हम यहाँ उद्धृत करने मे असमर्थ है।[७४] प्रिय से निराश होकर प्रेमी द्वारा जो आत्मघात की चेष्टाएँ विप्रलम्भ की चरम चेष्टाएँ किंवा अनुभाव मानी गई हैं, उनका भी तिलकमञ्जरीकथा मे अभाव नही है।[७५]

समरकेतु को देखकर शृगार रस की तरगो मे तैरती हुई मलयसुन्दरी की भी शारीरिक चेष्टाएँ निहायत ही स्वाभाविक अनुभाव मानी जाने योग्य है—

(क) ······प्रससार सर्वाङ्गेषु राग,···अक्षारीत्स्वेदविसर.,···बद्धप्रबलकम्पा किमपि रोमाञ्चजालकममुञ्चत् कुचस्थली।

(ख) किं विकासोत्तानया, किं स्तिमितया, किं तरलतारकया, किं मुग्धया, किमङ्गीकृतप्रागल्भ्यया, किमालम्बितकुटिलभावया, किं प्राजलया, तत्कालमहमपि न जानामि कीदृश्या दृशा तमद्राक्षम्।[७६]

आकाशमार्ग मे उडते हुए विद्याधरमुनि को देखकर मेघवाहननिष्ठ अद्भुत रस की अभिव्यजना करते समय धनपाल ने 'टकटकी लगाकर देखते रहना, आश्चर्य मे डूबने लगना, रोमांचित हो उठना आदि' अनुभावो की सर्जना के प्रति जागरूकता बरती है।[७७] भयानक रस के अनुभावो का तिलकमञ्जरी मे सर्वथा अभाव है। इसका कारण है (जो ठीक भी है) कि इस रस का आलम्बन तो है किन्तु आश्रय कोई नही है। करुण रस के— आँसुओ का बहना, चेहरे का फीका पड़ जाना, गले का रुँध जाना, क्रन्दन करना, विलाप करना, लम्बी-लम्बी साँसें भरना, मूर्च्छित हो जाना, प्राण छोडने तक की नौबत का आ जाना आदि—अनुभावो की सयोजना तो मिलती है, पर उसमे काव्यात्मकता एव प्रौढता का अभाव अवश्य ही खटकता है।[७८]

वीररस के 'अविषाद, शक्ति, धैर्य, शौर्य, रणकौशल, रणनीतिनिष्ठा आदि' अनुभावो का खुला परिचय समरकेतु-वज्रायुध के निशायुद्ध मे मिल जाता है, जो अगरसाग होने के कारण सक्षिप्त होकर भी अपने आप मे काफी पूर्णता लिए हुए है।[७९] रौद्ररस की अभिव्यजना का एक ही प्रसग आता है, और वह भी काफी सक्षिप्त।[८०] किन्तु अनुभावो की दृष्टि से उपेक्षणीय नही है। क्योकि आँखो मे क्रोध-जनित लालिमा का दौड जाना, भौंहो का चढ जाना और आवाज मे तीखेपन का आ जाना, ये तीन अनुभाव हमे वहाँ देखने को मिलते ही हैं। मैं समझता हूँ कि शान्तरस की पृष्ठभूमि मे मनुष्य की वृत्तियाँ एव प्रवृत्तियाँ अन्तर्मुखी होने लगती हैं। अत ससार की नि सारता पर रह-रहकर सोचने लगना या सब कुछ छोड़कर निरीह जीवन बिताने लगना ही इसके परिपक्व अनुभाव समझने चाहिएँ। शायद इसी दृष्टि से धनपाल ने भी अदृष्टपारसरोवर से निकलने के बाद हरिवाहन की विचारधारा को तथा अन्त मे सम्राट् मेघवाहन के साम्राज्य-त्याग को शान्तरस के अनुभावो के रूप मे प्रस्तुत किया होगा।[८१]

वत्सल रस मे गले से लगाना, गोद मे बैठाना, सिर सूँघना, माथा चूमना, पुलकित होना, खुशी के आँसुओ का बह निकलना आदि सभी अनुभावो को धनपाल पूरी तौर से अभिव्यजित नही कर पाए है। मेघवाहन और मदिरावती, जो कि वत्सल रस के आश्रय के रूप मे चित्रित किए गए है, मे पुत्रप्राप्ति की प्रबल उत्कण्ठा तो दिखाई गई है

और प्राप्ति के पश्चात् उन्हे सन्तुष्ट सी चित्रित किया गया है, किन्तु दु ख है कि उनके वात्सल्य की अभिव्यजक स्वाभाविक चेष्टाओ का वर्णन खटाई मे पड गया है।[८२]

तिलकमञ्जरीकथा में व्यभिचारिभावो की अभिव्यक्ति

जिस प्रकार समुद्र मे लहरे उठती और डूबती रहती है उसी प्रकार सहृदय के हृदय मे स्थायिभाव की अभिव्यजना के क्षणो मे जो तरह-तरह के विचार आते और जाते रहते है उन्हे साहित्यशास्त्र मे व्यभिचारिभाव कहा जाता है।[८३] अधिकांश आचार्यों ने इनकी सख्या तैंतीस ही बताई है। हमारे आलोच्य महाकवि धनपाल ने इन व्यभिचारिभावो का भी आवश्यकतानुसार बडा ही मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। अभिलाष-विप्रलम्भ के दिनो मे हरिवाहन के हृदयसरोवर मे उठती-बैठती अनेक भाव-तरगे व्यभिचारिभाव की सज्ञा प्राप्त करने मे सर्वथा समर्थ हैं। तिलकमञ्जरी के चित्र को देखकर रतिभाव से ओतप्रोत हो जाने के कारण हरिवाहन के मन मे औत्सुक्य, चिन्ता शका, असूया, दैन्य, मोह, स्मृति, विषाद, वितर्क आदि रति के व्यभिचारिभावों का बडा ही सरस परिस्फुरण हुआ है।[८४]

इसी प्रकार हरिवाहन की रूपच्छटा एव गुणसम्पदा पर आसक्त होने के पश्चात् तिलकमञ्जरीनिष्ठ शृगार के लज्जा, उत्सुकता, अवहित्था, चपलता, मद, हर्ष आदि सचारिभावो की अभिव्यजना भी धनपाल ने काफी सधे हुए शब्दो मे की है।[८५]

अद्भुत रस के अभिव्यजक औत्सुक्य, जडता, मति और वितर्क नामक व्यभिचारिभावो की सर्जना मे उन्होने अनुपात का जो ध्यान रखा है वह काफी औचित्यपूर्ण है। क्योकि किसी अप्रधान रसविशेष की उद्दामधारा बहाकर उसमे अपनी मूल्यवान् कथावस्तु को डुबो देना कोई अच्छी बात नही समझी जाती है।

भयानक रस के व्यभिचारिभावो की सर्जना का तो कोई प्रश्न ही नही उठता; क्योकि इस रस का तो उनकी कृति मे कोई आश्रय ही नही है। वीर रस की अभिव्यक्ति करते समय, विशेषरूप से समरकेतु और वज्रायुध के निशायुद्धवर्णन मे, हर्ष, आवेग, गर्व, क्रोध, उग्रता आदि व्यभिचारिभावो की सत्ता की पाठको को सजीव अनुभूति कराने मे धनपाल को जो सफलता मिली है वह निस्सन्देह प्रशसनीय है।[८६] गन्धर्वक से अपनी अवहेलना का अनुभव करके यक्ष के हृदय मे क्रोध का जो शोला भडक पडता है उसकी आवेग और उग्रता के रूप मे अविलम्ब चिनगारियाँ छिटकाने मे भी धनपाल को कामयाबी मिली है।[८७]

अदृष्टपारसरोवर से निकले हुए हरिवाहन को निर्वेद, ग्लानि, चिन्ता, वितर्क आदि शान्त रस के सचारिभावो के चगुल मे फँसा हुआ बताया ही गया है, जो नितरा स्वाभाविक है। अब शेष बचता है वत्सल रस, इसके अनिष्टाशंका रूप व्यभिचारिभाव की अभिव्यजना हमे तब देखने को मिलती है जबकि अपनी पुत्री मलयसुन्दरी के प्रणय एव आत्महत्या के प्रयास का रहस्य जानने के बाद कुसुमशेखर उसे बुलाकर उससे बाते करता है।[८८] इस सन्दर्भ मे विचित्रवीर्य और मलयसुन्दरी के बीच हुई बातचीत भी उद्धरणीय है।[८९]

इस प्रकार समीक्षा करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि धनपाल ने अपनी कथाकृति मे अगीरस एव अगरसो की अभिव्यजना मे सहजता, सम्प्रेषणीयता, सवेदनीयता, विश्वसनीयता तथा प्रसादात्मकता लाने के लिए एकाध रस को छोडकर अन्य सभी रसो के आलम्बन-विभावो के अनुभावो और व्यभिचारिभावो का उचित एव सजीव वर्णन किया है।

भाव की अभिव्यजना

आचार्य मम्मट का कहना है कि देवता, मुनि, गुरु, नृप, पुत्रादिविषयक रति (प्रेम) को तथा व्यजित हुए व्यभिचारिभाव को भी, भाव ही मानना चाहिए, न कि रस। क्योकि जो रति नामक स्थायी भाव है वह शृगार रस की सज्ञा तभी पा सकता है जबकि वह रमणी-विषयक हो,[६०] अन्यथा नही।

पर यहाँ हमें यह भी तो याद रखना है कि आचार्य विश्वनाथ ने पुत्रविषयक रति को कोरा 'भाव' न मानकर पूरी तरह से 'वत्सल रस' मानने के लिए अपना सटीक आग्रह प्रकट किया है,[६१] जिसे स्वीकार करने के लिए आज का प्रत्येक सवेदनशील मनीषी तैयार हो गया है। मैं भी यही उचित समझता हूँ कि पुत्र-विषयक रति को मम्मट के 'भाव' नामक कठघरे से निकालकर विश्वनाथ सम्मत 'वत्सल रस' के सिंहासन पर बैठा दिया जाए। इतना ही नही, बल्कि मैं यह भी चाहता हूँ कि पुत्रविषयक रति के अतिरिक्त जो देवता, मुनि, गुरु और नृप विषयक रति है उसे केवल भाव नही बल्कि 'भक्तिभाव' कहना चाहिए। इससे एक लाभ तो यह होगा कि स्थायिभाव से इसकी पृथक्ता स्पष्ट हो जाएगी, और दूसरा लाभ यह होगा कि फिर 'भक्ति रस' जैसे किसी अन्य रस को मानने की कोई इच्छा किंवा आवश्यकता ही शेष नही रहेगी।

हमें धनपाल की तिलकमञ्जरीकथा मे भी उपर्युक्त भाव की अभिव्यजना के कई स्थल देखने को मिलते है। पर यहाँ हम उन्ही को उद्धृत करेगे जो विशिष्ट एव उत्कृष्ट हैं।

देवता विषयक रतिभाव

शुष्कशिखरिणि कल्पशाखीव, निधिरधनग्राम इव, कमलखण्ड इव मारवेऽध्वनि।
भवभीमारण्ये वीक्षितोऽसि मुनिनाथ! कथमपि॥ (क)

दृष्टे भवति नयनसृष्ट्या सम-
मद्य जन्म जिन! सफलमभून्मम।
अकृतपुण्यमपि सुकृतिजन प्रति
लघुमात्मानमवैमि न सम्प्रति॥ (ख)[६२]

चूँकि जैन सम्प्रदाय के देवता उनके तीर्थंकर ही माने गए है, अत प्रकृत स्थल मे समरकेतु-निष्ठ ऋषभदेव नामक प्रथम तीर्थंकर-विषयक रति को देवता विषयक रति-भाव के रूप मे अभिव्यक्त माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त सम्राट् मेघवाहन द्वारा

लक्ष्मीजी की आराधना को तो देवताविषयक रतिभाव मानने में जरा भी आपत्ति नहीं होनी चाहिए।[६३]

मुनि विषयक रतिभाव

उपरितनकुट्टिमन्यस्तचरण च तमुपसृत्य सविनयमवनीपतिः······सानन्द······ प्रणम्य स्वय समुपनीते···हेमविष्टरे न्यवेशयत्। कृतगृहागत-महर्षिसमुचितोपचारश्च··· सप्रश्रयमुवाच—भगवन्! एष······मुनिगणमाननीयेन गुरुता परामारोपित. प्रासाद-स्त्वया।···प्रणामसमये च मूर्धानमधिरोपितेन प्रकृतिपूतेन निजपादपांसुना सम्पादितम-विरलतीर्थस्नानफलम्। एव च सामान्येन सर्वतः समुपजातमप्यसंजाततृप्तिरधिकतर-कल्याणसम्पत्लाभाय भगवता क्रियमाणमिच्छाम्यात्मनो विशेषेणानुग्रहम्।[६४]

यहाँ मेघवाहननिष्ठ विद्याधरमुनिविषयक रतिभाव की अभिव्यजना की गई है।

नृपविषयक रतिभाव

नरेन्द्र! सर्वदा शरीरसन्निहितै. प्रधानपुरुषैरिव प्रस्तावावेदिभिरपृष्टैरपि निवेदितोऽसि चक्रवर्त्तिलक्षणै· स खलु भवान् मध्यमलोकपालो राजा मेघवाहन., योऽस्माभि पुरा देवासुरसमूहसम्बाधे दिव्यसदसि विष्टपत्रयपते पुरो देवस्य पाकशासनस्य मर्त्यलोकवार्त्तानिवेदनाधिकारनियुक्तै प्रधाननाकिभि. एव विजिगीषुः, एवं प्रजापाल, एव त्यागशील·, एव धार्मिक इति बहुप्रकारमकुरितपुलकपक्ष्मलकपोलैरवनिपालकथा-प्रक्रमे सुचिरमुपवर्ण्यमान श्रुतोऽसि। सर्वथा न कृतार्थं चक्षुरुपजातम्। फलित च सद्यो देवतादर्शनसमुत्थ पुण्यजातमतर्कितोपनतेनामुना त्वदवलोकनेन।[६५]

यहाँ धनपाल ने 'मर्त्यलोकवार्तानिवेदनाधिकारनियुक्तदेवदूतवृन्दनिष्ठ' तथा 'ज्वलनप्रभनिष्ठ' नृपतिमेघवाहन-विषयक रतिभाव को अभिव्यक्त किया है।

व्यजित व्यभिचारिभाव

कुशासु च स्थण्डिलनिषण्णा, परिगता परमवैराग्येण प्रदीप्तमिव सर्वतोदु ख-दहनै जीवलोकमालोकयन्ती,···विषयसुखोपभोगे भग्नाभिलापा,···अशक्यप्रतिकारता कर्मशक्ते, दु खदानव्यसनिता स्नेहस्य, निस्सारता ससारस्य,······अनिमित्तभंगुरतां भागधेयानाम्, अविधेयता विधे, विचित्रता कालपरिणते, अशरणतां प्राणिसार्थस्य,··· ···भावयन्ती क्षपयामि······कालम्।[६६]

यहाँ मलयसुन्दरीनिष्ठ निर्वेद, दैन्य, ग्लानि, चिन्ता, स्मृति, धृति आदि व्यभि-चारिभावो को व्यजित किया गया है।

रसाभास तथा भावाभास

हम देखते हैं कि तिलकमञ्जरीकथा मे रसाभास एव भावाभास का चित्रण नही किया गया है। यद्यपि वज्रायुध और मलयसुन्दरी को लेकर वज्रायुधनिष्ठ इन दोनो आभासो को चित्रित करने का धनपाल को एक अच्छा-खासा अवसर मिला था लेकिन उन्होने इसका उपयोग नही किया है। काश, वह करते!

भावोदय की अभिव्यंजना

तिलकमञ्जरी के चित्र को देखकर हरिवाहन के हृदय मे[९७] और हरिवाहन को देखकर तिलकमञ्जरी के हृदय मे[९८] क्रमश औत्सुक्य एव लज्जा नामक भाव का उदय हुआ है। इसी प्रकार मलयसुन्दरी और समरकेतु के हृदयो मे भी एक दूसरे को देखते ही औत्सुक्य का उदय हुआ है।[९९] इसके अलावा भी चित्रमाय के मुँह से हरिवाहन के लापता होने का समाचार पाकर तिलकमञ्जरी एवं मलयसुन्दरी के हृदयो मे चिन्ता का उदय देखने को मिलता है।[१००]

भावशान्ति

तिलकमञ्जरीकथा मे अकस्मात् 'भावशान्ति' का सबसे अच्छा स्थल वही है जहाँ हरिवाहन द्वारा भेंट मे भेजे हुए हार के देखने से तिलकमञ्जरी के हृदय मे हरिवाहन के प्रति उत्सुकता शान्त हो जाती है।

भावसन्धि

तारक के माध्यम से समरकेतु की प्रणय-प्रार्थना को सुनकर मलयसुन्दरी के मन मे भावों का जो द्वन्द्व उठा है,[१०१] उसे साहित्यिक भाषा मे भावसन्धि कह सकते है। इसी प्रकार अपने पूर्व एव वर्तमान जन्मो की कथा को सुनकर ज्वलनप्रभ एव हरिवाहन को लेकर तिलकमञ्जरी के मन मे विषाद एव हर्ष की लहरें एक ही साथ उठ पडी है। अत उस स्थल को भी 'भावसन्धि' का क्षेत्र मानने मे कोई आपत्ति नही हो सकती है।[१०२]

भावशवलता

इसका एक उदाहरण तो वह है जब हरिवाहन रात मे अपनी शय्या पर लेटा हुआ तिलकमञ्जरी के विषय मे विचार करता है। उस समय उसके मन मे औत्सुक्य, चिन्ता, वितर्क, मति, स्मृति, दैन्य, धृति आदि आदि अनेक सचारी विचार (व्यभिचारि-भाव) आने और जाने लगते है।[१०३] अत उसकी उस मनोभूमि को हम भावो की शबलता (विचित्रता) से ओत-प्रोत मानने मे संकोच नही करेंगे। इसी प्रकार इसका एक दूसरा उदाहरण तब देखने को मिलता है जब समरकेतु गीतध्वनि के अनुसरण की असफलता पर अपनी खिन्नता प्रकट करता है।[१०४]

तिलकमञ्जरीकथा के भावपक्ष (हृदयपक्ष) को लेकर मैं लिखना तो बहुत कुछ चाहता हूँ, किन्तु शोधग्रन्थ की सीमा की एक अमूर्त्त दीवार मेरी लेखनी के सामने आ खड़ी होती है। फिर भी इस सोपान के अन्त मे यहाँ इतना और भी कहना चाहूँगा कि धनपाल हृदय के बहुत बडे धनी थे, और इसीलिए उन्होने अपनी कथावस्तु के कण-कण मे काव्य की आत्मा को प्रतिष्ठित करने मे अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है।

सन्दर्भ

१. मेक्डूगल दी इनर्जीज् ऑफ मेन, अध्याय ७, पृ० ९७-९८

२. (क) विभावानुभावव्यभिचारिसयोगाद् रसनिष्पत्ति ।

—भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, अध्याय ६, कारिका ३२ के आगे ।

(ख) कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च ।
रत्यादे स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययो: ।
विभावा अनुभावास्तत्कथ्यन्ते व्यभिचारिण ।
व्यक्त स तैर्विभावाद्यै स्थायी भावो रस स्मृत. ॥

—मम्मट, काव्यप्रकाश, उल्लास ४, कारिका २७-२८

(ग) विभावेनानुभावेन व्यक्त सचारिणा तथा ।
रसतामेति रत्यादि स्थायिभाव. सचेतसाम् ॥

—विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, परिच्छेद ३, कारिका १

(घ) विभावै सानुभावोद्यत्सात्त्विकव्यभिचारिभि ।
स्वादुत्व नीयमानोऽसौ स्थायिभावो रसो भवेत् ॥

—सर्वेश्वराचार्य, साहित्यसार, प्रकाश ५, कारिका ३ का उत्तरार्ध और ४ का पूर्वार्ध ।

३. देखिये— (क) भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, अध्याय ६, कारिका ४३-४८

(ख) विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, परिच्छेद ३, कारिका १८३-१८६

४. दर्शनस्पर्शनादीनि निषेवेते विलासिनौ ।
यत्रानुरक्तावन्योन्य सम्भोगोऽयमुदाहृत ॥

—साहित्यदर्पण, परिच्छेद ३, कारिका २१०

५ (क) भावो यथा रतिर्नाम प्रकर्षमधिगच्छति ।
नाधिगच्छति चाभीष्ट विप्रलम्भस्तदोच्यते ॥

—सरस्वतीकण्ठाभरण, परिच्छेद ५, कारिका ४५

(ख) यत्र तु रति प्रकृष्टा नाभीष्टमुपैति विप्रलम्भोऽसौ ।

—साहित्यदर्पण, परिच्छेद ३, कारिका १८७ का पूर्वार्ध ।

६. (क) तत्र शृङ्गारस्य द्वौ भेदौ—सम्भोगो विप्रलम्भश्च । तत्राद्य परस्परावलोकनालिङ्गनाधरपानपरिचुम्बनाद्यनन्तत्वादपरिच्छेद्य इति एक एव गण्यते ।

—मम्मट, काव्यप्रकाश, उल्लास ४, कारिका २९ के आगे ।

(ख) सख्यातुमशक्यतया चुम्बनपरिरम्भणादिबहुभेदात् । अयमेक एव धीर' कथित सम्भोगशृङ्गार. ।

—विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, परिच्छेद ३, कारिका २११

७. (क) भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, अध्याय ६, कारिका ४६ के आगे का वृत्तिभाग ।

(ख) मम्मट, काव्यप्रकाश, उल्लास ४, कारिका २९ के आगे का वृत्तिभाग ।

(ग) विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, परिच्छेद ३, कारिका १८६ के उत्तरार्ध से २०९ तक ।

८. तिलकमञ्जरी, पृ० ३६२
९. वही, पृ० ३६२-३६३
१०. वही, पृ० ३६८-३६९
११. वही, पृ० ३९४-३९५
१२. वही, पृ० २२९-२३०
१३. वही, पृ० ४२५-४२६
१४. वही, पृ० ४२८
१५. न विना विप्रलम्भेन सम्भोगः पुष्टिमश्नुते ।
कषायिते हि वस्त्रादौ भूयान् रागोऽनुषज्यते ॥
—सरस्वतीकण्ठाभरण, परिच्छेद ५, कारिका ५२
१६. तिलकमञ्जरी, पृ० १७५-१७७
१७. वही, पृ० १७९
१८. वही, पृ० १७९-१८१
१९. वही, पृ० २५०-२५३
२०. वही, पृ० ३९७
२१. वही, पृ० ३५४-३५५
२२. वही, पृ० ३९०-३९१
२३. वही, पृ० ३९१
२४. वही, पृ० ४१३-४१६
२५. वही, पृ० २३-२५
२६. वही, पृ० ३३
२७. वही, पृ० १९४-१९५
२८. वही, पृ० २४२
२९. वही, पृ० ३७६ तथा ३७७
३०. (क) वही, पृ० ४६-४९
(ख) वही, पृ० १९९-२००
३१. वही, पृ० ५२-५४
३२ वही, पृ० १८८-१९१
३३. वही, पृ० १८९
३४. वही, पृ० १९३
३५. वही, पृ० ३०५-३०९
३६. वही, ० ४१६
३७ वही, पृ० ८७
३८. वही, पृ० ८९-९०
३९. वही, पृ० ११५-१२०
४०. वही, पृ० १३३

४१. वही, पृ० ५१-५३
४२ वही, पृ० ३९७-४००
४३. उत्तमप्रकृतिर्वीर उत्साहस्थायिभावक.।

× × × ॥

स च दानधर्मयुद्धैर्दयया च समन्वितश्चतुर्धा स्यात्।
—साहित्यदर्पण, परिच्छेद ३, कारिका २३२ का पूर्वार्ध और २३४ का उत्तरार्ध।

४४. तिलकमञ्जरी, पृ० ३८२-३८३
४५. वही, पृ० २४४
४६. वही, पृ० ४२६
४७. स्फुट चमत्कारितया वत्सल च रस विदु।
स्थायी वत्सलता स्नेह पुत्राद्यालम्बन मतम्॥
उद्दीपनानि तच्चेष्टाविद्याशौर्यदयादय।
आलिङ्गनाङ्गसस्पर्शशिरश्चुम्बनमीक्षणम्॥
पुलकानन्दवाष्पाद्या अनुभावा प्रकीर्तिता।
सचारिणोऽनिष्टशङ्काहर्षगर्वादयो मता॥
—साहित्यदर्पण, परिच्छेद ३, कारिका २५१-२५३

४८. तिलकमञ्जरी पृ० ८७ यथा १०१
४९. वही, पृ० २७०-२७३
५०. वही, पृ० ३२८-३२९
५१. (क) नहि रसादृते कश्चिदर्थ प्रवर्तते इति।
— भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, अध्याय ६, कारिका ३२ के आगे।

(ख) वाग्वैदग्ध्यप्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम्। — अग्निपुराण।

(ग) (।) काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवे पुरा।
क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थ शोक श्लोकत्वमागत.॥
विविधवाच्यवाचकरचनाप्रपञ्चचारुण काव्यस्य स एवार्थ. सारभूत.।

× × × ।

सरस्वती स्वादु तदर्थवस्तुनि ष्यन्दमाना महतां कवीनाम्।
अलोकसामान्यमभिव्यनक्ति परिस्फुरन्त प्रतिभाविशेषम्॥
—आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक, उद्योत १, कारिका ५-६

(।।) कथाशरीरमुत्पाद्य वस्तु कार्यं तथा तथा।
यथा रसमय सर्वमेव तत्प्रतिभासते॥
—वही, उद्योत ३, कारिका १४ का परिकर श्लोक।

(घ) रगोऽभिमानोऽहङ्कार. शृङ्गार इति गीयते।
योऽर्थस्तस्यान्वयात्काव्य कमनीयत्वमश्नुते॥
— भोज, सरस्वतीकण्ठाभरण, परिच्छेद ५, कारिका १

(ङ) वाक्यं रसात्मकं काव्यम्……रस एवात्मा साररूपतया जीवनाधायको यस्य, तेन विना तस्य काव्यत्वानङ्गीकारात्।

—विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, परिच्छेद १, कारिका ३

५२. अथ विभाव इति कस्मात्? उच्यते, विभावो नाम विज्ञानार्थः। विभावः कारणं निमित्त हेतुरिति पर्याय। विभाव्यन्तेऽनेन वाङ्गसत्त्वाभिनया इति विभाव.। यथा विभावित विज्ञातमित्यर्थान्तरम्। अत्र श्लोकः—

बहवोऽर्था विभाव्यन्ते वागङ्गाभिनयाश्रिता।
अनेन यस्मात्तेनायं विभाव इति सज्ञित॥

—नाट्यशास्त्र, अध्याय ७, कारिका ३ के आगे ४ तक।

५३. ……वासनात्मतया स्थितं स्थायिन रसत्वेन भवन्त विभावयन्ति आविर्भावना-विशेषेण प्रयोजयन्ति इति आलम्बनोद्दीपनरूपा ललनोद्यानादयो विभावाः।

—नाट्यदर्पण, विवेक ३, कारिका ८ का वृत्तिभाग।

५४. रत्याद्युद्बोधका लोके विभावाः काव्यनाट्ययोः। ये हि लोके रामादिगतरतिहासादीनामुद्बोधकारजानि सीतादयस्त एव काव्ये नाट्ये च निवेशिता. सन्तः 'विभाव्यन्ते आस्वादांकुरप्रादुर्भावयोग्या. क्रियन्ते सामाजिकरत्यादिभावा एभि' इति विभावा उच्यन्ते। —साहित्यदर्पण, परिच्छेद ३, कारिका २९ का पूर्वभाग वृत्ति सहित।

५५. आलम्बनोद्दीपनाख्यौ तस्य भेदावुभौ स्मृतौ।

—साहित्यदर्पण, परिच्छेद ३, कारिका २९ का मध्य भाग।

५६. तिलकमञ्जरी, पृ० १५९-१६०, १६२, २४६-२४६-२४८ और २७६-२७८
५७. वही, पृ० १७९-१८१, २४५, २४९-२५०, २९७-२९८ तथा ३७०-३७२
५८. वही, पृ० २४
५९. वही, पृ० ३३
६०. वही, पृ० २४२
६१ वही, पृ० ५३
६२. वही, पृ० १८९
६३. वही, पृ० ३०६-३०९
६४. वही, पृ० ४१६
६५. वही, पृ० ८६-९०
६६. वही, पृ० ३८१-३८२
६७. वही, पृ० २४४
६८. वही, पृ० ७७-७८
६९. वही, पृ० २७०-२७३
७०. वही, पृ० ३२८-३२९
७१. वही, पृ० १६२
७२. वही, पृ० १७७-१७९

७३. वही, पृ० ३६२
७४. वही, पृ० ३६४-३६५ तथा ३६८-३६६
७५. वही, पृ० ३०६, ३३३, ३३८, ३६७ तथा ४१६
७६. वही, पृ० २७७ तथा २७८
७७. वही, पृ० २५
७८. वही, पृ० १८८-१६१ तथा १६३, ४१६
७६. वही, पृ० ८६-६६
८०. वही, पृ० ३८२
८१. वही, पृ० २४४ तथा ४२६
८२. वही, पृ० ७७-८०
८३. दशरूपक, प्रकाश ४, कारिका ७
८४. तिलकमञ्जरी, पृ० १७५-१७७
८५. वही, पृ० ३६२-३६३
८६. वही, पृ० ८०-६१
८७. वही, पृ० ३८२ तथा ३८३
८८. वही, पृ० ३२८-३२६
८६. वही, पृ० २७१-२७४
६०. रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाञ्जित ।
भाव. प्रोक्त· ··· ··· ··· ··· ॥
—काव्यप्रकाश, उल्लास ४, कारिका ३५ का उत्तरार्ध तथा ३६ का प्रथम चरण ।
६१. स्फुट चमत्कारितया वत्सल च रस विदु ।
स्थायी वत्सलता स्नेह पुत्राद्यालम्बन मतम् ॥
उद्दीपनानि तच्चेष्टा विद्याशौर्यदयादय ।
आलिङ्गनाङ्गसस्पर्शशिरश्चुम्बनमीक्षणम् ॥
पुलकानन्दबाष्पाद्या अनुभावा प्रकीर्तिता ।
सचारिणोऽनिष्टशङ्काहर्षगर्वादयो मता ॥
—साहित्यदर्पण, परिच्छेद ३, कारिका २५१-२५३
६२. तिलकमञ्जरी, पृ० २१८
६३. वही, पृ० ३४
६४. वही, पृ० २५ और २६
६५. वही, पृ० ३६
६६. वही, पृ० ३४५
६७. वही, पृ० १६२
६८. वही, पृ० ३६२
६६. वही, पृ० २७६-२७६

१००. वही, पृ० ४१४
१०१. वही, पृ० २८७-२८८
१०२. वही, पृ० ४१३
१०३. वही, पृ० १७४-१७७
१०४. वही, पृ० १४८-१५०

द्वितीय सोपान

कला-पक्ष

काव्य में कला-पक्ष का स्वरूप

हृदय की सवेदनापूर्ण विचारधारा को रोचक, आकर्षक, सुन्दर और चमत्कार-पूर्ण ढँग से प्रस्तुत करने के कविप्रयास को काव्य के क्षेत्र मे कलापक्ष की सज्ञा दी गई है। इसी अध्याय के प्रथम सोपान के आरम्भ मे मैं यह तथ्य प्रकट ही कर चुका हूँ कि काव्य के दो पहलू होते हैं—पहला भाव-पक्ष, जो कवि के हृदयतत्त्व से सम्बन्ध रखता है और दूसरा कला-पक्ष, जो उसके बुद्धितत्त्व किवा प्रतिभातत्त्व का परिचायक होता है। इन दोनो मे प्रधानता भाव-पक्ष की ही मानी गई है, कला-पक्ष का कार्य तो उस भाव-पक्ष मे केवल निखार लाना है। पर यह निखार होता बडे काम का है। क्योकि इसमे भाव-पक्ष की सम्प्रेषणीयता निश्चित ही कई गुनी हो जाती है।

कला-पक्ष की सीमा

यहाँ यह कहने मे कोई हर्ज नही है कि जो महत्त्व चित्रकार के चित्र मे रग भरने का और कामिनी के कमनीय कलेवर मे 'मेक-अप' करने का है वही महत्त्व काव्य के भाव-पक्ष को रोचक एव हृदयावर्जक बनाने मे कला-पक्ष का है। लेकिन हमे यह भी नही भूलना चाहिए कि जिस प्रकार जरूरत से ज्यादा और बेढगा रग और मेक-अप क्रमश. चित्र और कामिनी की शक्ल को भौडा (विद्रूप) बना देते है ठीक उसी प्रकार कला-पक्ष का अनावश्यक एव अनुपयोगी अतिरेक भी काव्य के भाव-पक्ष की सवेदनीयता को नष्ट कर सकता है। इसलिए भूलकर भी कला-पक्ष को कभी बोझिल नही होने देना चाहिए। हम यह देखते भी है कि उच्चकोटि के सभी साहित्यकारो ने अपनी कला की सार्थकता केवल कला की अभिव्यजना मे ही नही, बल्कि मानस की मनोभूमियों को सवेदनशील बनाने मे मानी है।

कला-पक्ष के भेद

साहित्यकार अपने भाव-पक्ष मे रोचकता, सजीवता एव सवेदनशीलता लाने के लिए भाषा, शैली, गुण, अलकार, सवाद, छन्द, चित्रोपमता, वाग्वैदग्ध्यादि जिन तत्त्वो का सहारा लिया करता है वे सभी इस कला-पक्ष के अग होने के नाते इसके भेद है। साहित्यकार के बुद्धितत्त्व की सच्ची कसौटी कला-पक्ष के इन भेदो की सुचारु एव सयत

अभिव्यजना ही है। यदि वह इनका भावपक्षसापेक्ष प्रयोग करने मे सफल हो जाता है तो निश्चय ही उसका काव्यकुसुम सहृदयो के हृदयो को सदैव सुवासित करता रहता है।

अब हम यह उचित समझते हैं कि कला-पक्ष की इसी पृष्ठभूमि मे अपने आलोच्य महाकवि धनपाल की तिलकमञ्जरीकथा के सभी कलात्मक पहलुओ पर अपनी एक क्रमिक एव निष्पक्ष सारगर्भित विचारशृखला प्रस्तुत कर दी जाए ताकि पाठको को धनपाल की बौद्धिक प्रतिभा का कुछ ज्ञान हो सके।

तिलकमञ्जरी की भाषा

साहित्यसर्जना का वास्तविक मेरुदण्ड भाषा ही है। क्योकि इसमे जरा-सी शिथिलता या विचारो को वहन करने की अक्षमता आते ही सारा काव्य गठियावात से पीडित शरीर के समान दूभर और कुरूप हो जाता है। अत हम कह सकते है कि चित्रकार के लिए जो महत्त्व रग के डिब्बे का है ठीक वही महत्त्व साहित्यकार के लिए भाषा का है। इसीलिए प्रत्येक समझदार साहित्यकार इसके प्रयोग के प्रति सतत जागरूक रहता है। हमारे आलोच्य महाकवि धनपाल को भाषा के इस महत्त्व का पूरा-पूरा अहसास है; और यही वजह है कि उनकी भाषा सस्कृत-साहित्य जगत् की गद्यविधा के अन्य प्राचीन साहित्यकारो की भाषा की अपेक्षा कही अधिक हृदयावर्जक है।

जाहिर है कि उनकी तिलकमञ्जरीकथा की भाषा लौकिक सस्कृत है। क्योकि वह जमाना ही सस्कृत का था। लगता है धनपाल ने भाषा के यथोचितप्रयोगविषयक मर्म को भलीभाँति समझा है। तभी तो हमे उनकी भाषा मे भावो के अनुरूप विविधता देखने को मिलती है। वर्णनसापेक्ष एव परिचयसापेक्ष विषयो की अभिव्यजना मे जहाँ एक ओर उनकी भाषा मे प्रौढ़ता, गम्भीरता एव कुछ जटिलता की झलक मिलती है वहाँ दूसरी ओर पात्रो के पारस्परिक वार्त्तालापो के प्रसगो मे, अन्तर्मन की उलझी हुई विचारात्मक गुत्थियो की अभिव्यक्ति करने मे, तथा कथानक को गति प्रदान करने के स्थलो मे उसमे नितान्त सरलता, हृदयावर्जकता एव गतिशीलता भी दृष्टिगोचर होती है।[1] लगे हाथ मै यहाँ पर यह भी कह देना उचित समझता हूँ कि उनकी भाषा मे जहाँ कही भी प्रौढता, गम्भीरता एव जटिलता आई है वहाँ वह है अपनी सीमा के अन्दर ही। इसीलिए अर्थावबोध करने मे पाठको को बौद्धिक व्यायाम नही करना पडता है। पर एकाध स्थल इस अच्छाई का अपवाद भी है, जहां न केवल कथाप्रवाह ही अवरुद्ध होता है बल्कि शब्दार्थज्ञानपूर्वक भावार्थज्ञान के लिए भी जरूरत से ज्यादा प्रयत्न करना पडता है।[2]

उपर्युक्त वास्तविकता को देखते हुए हमे तो यह भी कहना पड रहा है कि धनपाल की भाषा मैदानी भागो मे बहती हुई भागीरथी की जलधारा के समान है। क्योकि उसमे जो प्रवाह है वह नितान्त शान्त, सरल एव सुव्यवस्थित है। उसमे जो उपयुक्त समासो की छटा और अलङ्कारो का समुचित सन्निवेश है, वह भागीरथी की थिरकती हुई छोटी-छोटी लहरो और नाचती हुई हल्की-हल्की भँवरो के समान ही चित्ताकर्षक तो है पर भयङ्कर कदापि नही।

उन्होने इस बात का हमेशा ध्यान रखा है कि उनकी भाषा समासो और

अलङ्कारो के अनावश्यक बोझ से कही भी दबने न पाए; और इसमे उन्हे सफलता भी खूब मिली है। फलस्वरूप उनकी भाषा मे गतिशीलता, सहजता, सुबोधता, प्रासादिकता एव विचारो की रोचक सम्प्रेषणीयता कूट-कूटकर भरी हुई सी प्रतीत होती है। साथ ही साथ शब्द और वाक्य के आकार को विस्तार देना भी उन्हे पसन्द नही है। क्योकि इससे अर्थ की सगति लगाने मे ही पाठक की बुद्धि फँसी रह जाती है और कथानक का प्रवाह अवरुद्ध-सा हो उठता है। शब्द भी उन्होने वे ही प्रयुक्त किए है जो अप्रसिद्ध नही है, ताकि पाठको को शब्दकोश न खोजना पड़े। क्रियापदो मे भी उन्होने दुरूहता को जरा भी पास नही फटकने दिया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि धनपाल ने अपनी भाषा को सभी दृष्टियो से रोचक बनाने मे पूरी जागरूकता बरती है।

शैली के स्वरूप पर एक विहग दृष्टि

विचारो को प्रकट करने के ढँग को आजकल शैली कहते हैं। उस 'शैली' शब्द की व्युत्पत्ति के मूल मे 'शील' शब्द निहित है, जो कृति मे लेखक के व्यक्तित्व की ओर मूक सकेत-सा करता हुआ प्रतीत होता है।[3]

वास्तव मे शैली एक ऐसा तत्त्व है जिसके माध्यम से लेखक अपनी रचना मे हृदयपक्ष एव बुद्धिपक्ष के समुदित व्यक्तित्व की छाप छोड जाता है। उच्चकोटि के सुलझे हुए साहित्यकारो के लिखने का ढँग उनका निजी होता है, जो उनकी मौलिकता, शिक्षा-दीक्षा एव मानसिक धरातल का परिचायक होता है।

आजकल नई रोशनी के समीक्षको मे यह भ्रान्त धारणा लगभग घर करती जा रही है कि शैली शब्द अग्रेजी भाषा के 'स्टायल' शब्द की देन है। पर बात और ही है, और वह यह है कि शैली शब्द भारतीय मनीषा की मौलिक उपज है और साथ ही साथ वह काफी पुराना भी है। क्योकि हम देखते है कि ईसापूर्व द्वितीय शताब्दी मे महर्षि पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य मे 'हयवरट्' सूत्र की व्याख्या के प्रसग मे इस शब्द को इसी अर्थ मे प्रयुक्त किया है[४], जिसमे कि इसका प्रयोग आजकल हो रहा है। दरअसल देखा जाए तो इस भ्रान्ति का मूल कारण प्राचीन काव्यशास्त्र के ग्रन्थो मे इस (शैली) शब्द के प्रयोग का न होना ही है क्योकि भामह, वामन, रुद्रट आदि आचार्यो ने इस तत्त्व को प्रकट करने के लिए उन दिनो 'रीति' शब्द के प्रयोग का एक ऐसा समाँ बाँध रखा था जो काफी सकुचित था और आज के शैली नामक तत्त्व की सभी विशेषताओ से पूर्ण भी नही था। जाहिर है कि इन आचार्यो की रीतिविषयक वह अवधारणा भारतवर्ष के ही किसी न किसी भूभागविशेष किंवा देशविशेष की सीमा मे बुरी तरह घिरी हुई थी, जैसा कि—वैदर्भी, पाचाली, गौडी, लाटी आदि—उसके नामभेदो से ही प्रकट होता है। ध्यान देने पर पता चलता है कि उसमे लेखक के निजी व्यक्तित्व का अभाव था। जबकि वास्तविकता यह है कि किसी एक ही भूखण्ड विशेष मे रहने वाले लोगो की सांस्कृतिक एकता भले ही हो, लेकिन विचारो को प्रकट करने का तरीका उन सबका अलग-अलग ही होता है। उसकी सर्जना (कृति) मे भी जो विशेषताएँ होती है वे उसके निजी व्यक्तित्व की ही देन होती है, न कि किसी देशविशेष की।

आचार्य कुन्तक को इस कमी का पूरा-पूरा अहसास हुआ। इसलिए उन्होने रीति के पैरो मे पडी हुई भौगोलिक सीमा की नई-पुरानी सभी बेडियाँ काटकर उसे आजाद किया, और उसे नया नाम भी दिया जो 'मार्ग' कहलाया।[५] इसमे वस्तुतत्त्व के साथ ही साथ लेखक के व्यक्तित्व की भी झलक का समावेश किया गया। इसमे कोई शक नही है कि कुन्तक का यह मार्ग नामक तत्त्व आज के शैली नामक तत्त्व से पूरा-पूरा मेल खाता है। उन्होने बडी दृढता के साथ लेखक के स्वभाव, संस्कार एव रुचि के अनुसार—सुकुमार, विचित्र और मध्यम (अर्थात् उभयात्मक) बस ये—तीन ही भेद स्वीकार किए हैं, जिनका स्वरूप सक्षेप मे इस प्रकार है—

सुकुमार मार्ग

इसमे कवि की 'नवनवोन्मेषशालिनी' अकुण्ठित प्रतिभा के चुम्बक से आकृष्ट हुए से सुन्दर-सुन्दर शब्दो और अर्थो का मजुल प्रयोग देखने को मिलता है। अलङ्कारो का प्रयोग नितान्त सीमित, मनोरम तथा उत्कर्षाधायक होता है। प्रतिपाद्य पदार्थ कवि की मनीषा के सस्पर्श को पाकर अपने स्वाभाविक रूप मे थिरक उठता है। वाक्य-विन्यास मे सहृदयो के हृदयो को आनन्द-विभोर करने की सामर्थ्य होती है। इस मार्ग के सहारे ही कवि अपने अनुपम वर्णनकौशल से अपनी काव्यरचना को विधाता की सृष्टि से भी कही अधिक ललित एवं हृदयावर्जक बना देता है। साहित्यकारो के लिए यह सुकुमार मार्ग सचमुच उतना ही आह्लादजनक हुआ करता है जितना कि भ्रमरो के लिए खिले हुए खुशबूदार फूलो से भरा हुआ उपवन। इसमे न तो लम्बे-लम्बे समासो के लिए कोई गुँजाइश होती है और न श्रुतिकटु शब्दो के लिए ही। बल्कि जहाँ तक बन पडता है इसमे मधुरता, प्रासादिकता, रमणीयता और उदात्तता लाने का ही प्रयत्न किया जाता है।[६]

विचित्र मार्ग

इस मार्ग मे कवि चमत्कारवादी हो जाता है। उसके शब्दो मे वक्रता और उक्ति-वैचित्र्य कूट-कूटकर भरा हुआ सा नजर आता है। अलङ्कारो का प्रयोग करने की उसकी तृष्णा कभी शान्त ही नही होती दीखती। यहाँ तक कि वह अलङ्कार को भी अलकृत करने के लिए किसी दूसरे अलङ्कार का प्रयोग कर बैठता है। उसे अपनी कविता-कामिनी को हमेशा अलङ्कारो की ही चमचमाहट मे देखने का व्यसन लग जाता है। फलस्वरूप असली काव्यार्थ तो ओझल होने लगता है, और पाठको के पल्ले पडता है कवि का अतिशयोक्तिपूर्ण केवल पाण्डित्य। इसमे सहृदयजनो का हृदय साहित्यकार की लोकोत्तर-वैचित्र्यवर्णना की थपेडो से सदैव व्यथित होता रहता है। इसमे मधुर और प्रसन्नभावो के वर्णन मे भी ओजस्विता का पुट रहता है। शब्दो मे या तो मिश्रित व्यजन मिलेगे, या फिर विसर्गान्त शब्दो की बहुलता होगी। देखा जाए तो प्रौढता ही इसका प्राण है।[७]

मध्यम मार्ग

इसमे सुकुमार मार्ग एव विचित्र मार्ग का मिला-जुला रूप पाया जाता है, जो

निहायत ही समुज्ज्वल तथा आकर्षक होता है। भावो का माधुर्य और अभिव्यक्ति का आर्जव तो बस देखते ही बनता है। शब्द-सन्निवेश एव वाक्य-विन्यास मे एक आकर्षक ओज टपकता दीखता है। साहित्यकार की सर्जनाशक्ति एव निपुणता के समुदित प्रयत्नो से काव्यगत सौन्दर्य मे एक अनोखा निखार आ जाता है।[८]

लगता है कि कुन्तक का आशय यही रहा होगा कि साहित्यकार किसी भी देश-विशेष का या किसी भी भाषा-विशेष का क्यो न हो, लेकिन वह अपनी साहित्य-सर्जना के लिए इन्ही उपर्युक्त तीन मार्गो (शैलियो) मे से किसी न किसी एक मार्ग (शैली) का आश्रय लेता है। फलस्वरूप उसकी शैली उसके निजी व्यक्तित्व की परिचायिका बनकर पाठको के सामने आती है, जो नितान्त स्वाभाविक है।

धनपाल की शैली

अब हम अपने आलोच्य महाकवि धनपाल की शैली की मीमासा कुन्तकसम्मत इसी काव्यमार्गत्रयी के दायरे मे ही कर लेना उचित समझते है। उनकी तिलकमञ्जरी-कथा के परिशीलन से पता चलता है कि उन्होने अपनी लेखन कला मे मध्यम मार्ग अपनाया है। उन्होने जहाँ कहाँ भी प्रौढता और ओजस्विता को मुखरित किया है वहाँ निश्चय ही उस पर माधुर्य एव आर्जव की पालिश भी कर दी है; ताकि पढने वाला उद्विग्न न हो। समासो और अलङ्कारो के प्रयोग मे भी उनका सन्तुलन सराहनीय है। फलस्वरूप उनकी शैली जहाँ एक ओर लम्बे-लम्बे और दुरूह समासो की शृङ्खलाओ से, तथा अनावश्यक एव भोडे अलङ्कारो के बोझ से सर्वथा दूर दिखाई देती है, वही दूसरी ओर वह सुगम समासो के कनकसूत्रो से तथा सीमित एव चित्ताकर्षक अलङ्कारो की छठा मे रतिगृह मे बैठी हुई नई नवेली दुलहन की तरह पाठको के लिए मनोहारिणी भी है।

धनपाल की शैली अवसरवादिनी भी है। वह प्रतिपाद्य विषय की प्रकृति से 'मेच' करती हुई ही आगे बढती है। जिस प्रकार एक कुशल भावनर्त्तकी भावो की आत्मा एव विविधता के अनुरूप अपनी भङ्गिमाओ को बदल लिया करती है, ठीक उसी प्रकार धनपाल की शैली भी वर्ण्यविषयो की प्रकृति के अनुरूप कभी सरल तो कभी थोडी गम्भीर, कभी अधीर तो कभी थोडी धीर, कभी निरलङ्कार तो कभी सालङ्कार, कभी सोत्साह तो कभी निरुत्साह, कभी प्रसन्न तो कभी खिन्न होती हुई नजर आती है। उसके कुछ नमूने इस प्रकार है—

······किं बहुना, यदुचित यौवनस्य, रुचित चित्तवृत्ते, आराधकं विदग्धानाम्, अबाधक लोकद्वयस्य, तदपरमपि अविकलतया विवेकस्य, स्थिरतया कुलाभिमानस्य, स्वभ्यस्ततया विनयस्य, भूयिष्ठतया च सत्त्ववृत्ते, यथा न धर्म सीदति, यथा नार्थ क्षय व्रजति, यथा न राजलक्ष्मीरुन्मनायते, यथा न कीर्त्तिर्मन्दायते, यथा न प्रतापो निर्वाति, यथा न गुणा श्यामायन्ते, यथा न श्रुतमुपहस्यते, यथा न परिजनो विरज्यते, यथा न शत्रवस्तरलायन्ते तथा सर्वमन्वतिष्ठत्।[९]

इस प्रस्तुत गद्याश मे सम्राट् मेघवाहन का परिचय दिया गया है। कहना न होगा कि धनपाल ने यहाँ जो वर्णन-शैली अपनाई है वह काफी रोचक एव प्रवाहपूर्ण है।

इसमें जहाँ एक ओर भाषा की सरलता है वहाँ दूसरी ओर विषय को स्पष्ट करने की अधीरता भी है। इस स्थल को पढते समय चित्त मे उत्साह एव आह्लाद थिरकने लगता है।

उनकी इसी प्रकार की प्रवाहपूर्ण, सरल, रोचक, प्राजल और स्वाभाविक शैली के कुछ और भी उदाहरण प्रस्तुत कर रहा हूँ जो पाठको के मनोरूपी लौहखण्ड को चुम्बक पथरी के समान अपनी ओर आकृष्ट किये रहती है। हाँ, तो लीजिए—देखिए—

(क) ······तत्र च कुर्वताधिपत्यमचिरेणैव शिक्षिता तेन सकलापि नौ-प्रचार-विद्या; विदितमखिलमपि कर्णधाराणां कर्म; कृतानि बहुकृत्व· सलिलराशौ गमनागमनानि, दृष्टा दूरविप्रकृष्टा अपि द्वीपान्तरभूमय.; प्रत्यक्षीकृता. क्षुद्रा अपि जलपथा:, लङ्घितानि तेपु सम्यक् समविषमस्थानानि; किं वहुना, स्वल्पेनापि कालेन जात स सकलस्यापि कर्णधारचक्रस्य धौरेय:······।[10]

(ख) ······यतो दूरमायाता वरूथिनी, व्यथितो निशीथिनीजनितजाड्योद्रेकेण समुद्रमारुता सर्व एव सुखोचितो जन ; श्रमविकलबाहवो न वाहयन्ति सत्वरमरित्राणि यानपात्रेपु पौतिका:, न शक्नुवन्ति निद्रावशीकृता कर्त्तुमवष्टम्भ कूपस्तम्भकेषु कर्णधारा , समीरोऽपि सम्प्रति प्रतीपगति प्रवाति,······अतो विलम्ब्य त्रिचतुराण्यहानि, प्रतिपाल्य पृष्ठानुपातिन सैनिकलोक, विधाय······वीरवर्गस्य व्रणकर्म, कृत्वा······क्षुध प्रतीकार ······गम्यते प्रतिदिनमविच्छिन्नै प्रयाणै ।[11]

(ग) भद्र ! सर पुर किञ्चिद्, आर्य ! देहि गमनमार्गम्, अङ्ग ! मा पीडय ममाङ्गमङ्गेन; मङ्गलक ! कोऽय वलदर्प· ? कूर्पराघातै: परानाहंसि, हस ! हस्यसे दूर-मुत्क्षिप्तनिवसनाग्रपल्लवोऽनया,······तरङ्गिके ! दूरमपसर, विघ्निता गतिस्तव जघन-भित्त्या सर्वतो निरुद्धमार्गस्यास्य सैनिकवर्गस्य,······व्याघ्रदत्त ! धाव शीघ्रमेषा विपद्यते निपतिता पोतात् पितामही मकरिकायास्तव श्वश्रू , अश्रूणि किं सृजसि ? ······।[12]

(घ) अहो ! विरसता संसारस्थिते ! अहो विचित्रता कर्मपरिणतीनाम् ! अहो यदृच्छाकारितायामभिनिवेशो विधे ! अहो ! भगुरस्वभावता विभवानाम् ! ·· · एवम-स्वस्थमानसो मानयामि न तद् राज्यम्; न ते राजान , न स मदान्धगजघटासहस्रसकुल. स्कन्धावार , न ते छत्रचामरादयो नरेन्द्रालङ्कारा , न तानि श्रवणहारीणि चारणस्तुति-वचनानि; सर्वमेव स्वप्नविज्ञानोपम सम्पन्नम्। आस्ता च तावदन्यदप्रत्यासन्नम्; आरोप्य येन स्कन्धमात्मीयमहमेता भूमिमानीत., यश्च सार्धं मयैव अस्मिन् अगाधसलिले सरसि मग्न·, सोऽपि नास्ति प्राणभूतो मे पट्टवारण ······।[13]

(ङ) ······प्रत्यह जपन्ती प्रियसमागममन्त्राक्षराणि,······आगतमतिथिलोक शाकफलमूलादिभि सादरमुपचरन्ती, तदुपनीतशेषेण वन्यान्नेन विरलविरलमात्मदेह वर्तयन्ती,······जातविद्वेषा विषयसुखोपभोगे, भग्नाभिलाषा जीवितव्ये, व्यपेतस्पृहा सुहृत्सम्प्रयोगे, विप्रयोगावसानतां सयोगानाम्, अवश्यमनुभाव्यतामनुभवनीयानाम्, अशक्यप्रतीकारतां कर्मशक्ते , दु खदानव्यसनितां स्नेहस्य, नि सारता ससारस्य, विरसितां विलासानाम्, अनिमित्तभगुरता भागधेयानाम्, अविधेयता विधे., विचित्रता कालपरिणते , अशरणता प्राणिमार्थस्य, पुण्यभागितामसङ्गानाम्, धन्यता धर्मनिरतानाम्, अन्तरान्तरा

भावयन्ती क्षपयामि साम्प्रतमनवलोकिता कृतान्तेन कालमिति निजवृत्तान्तमावेद्य तूष्णी-काभवत् ।[१४]

उपरिलिखित पांच उद्धरणो मे जो चौथे (घ) और पांचवें (ट) नम्बर पर उद्धृत किए गए है उनमे तो सचमुच ही धनपाल की शैली कमाल दर्जे की हो गई है । इन प्रसङ्गों मे क्रमश हरिवाहन के निर्वेद और मलयसुन्दरी की विरक्ति का चित्र साकार हो उठता है । शैली की ऐसी सजीवता, जो भोली-भाली और आकर्षक गम्भीरता से विभूषित हो, कम ही देखने को मिलती है ।

अब उनकी ऐसी शैली के भी कुछ उदाहरण देने का लोभ लग रहा है जहाँ प्रौढता, ओजस्विता और साथ ही साथ प्रासादिकता का अनोखा सङ्गम हुआ है । ऐसे स्थलो मे उनकी शैली का 'प्रसन्नगम्भीरपदत्व' बस देखते ही बनता है । लीजिए, पहिला उदाहरण ज्वलनप्रभवर्णन से ही प्रस्तुत करते हैं—

प्रविशन्नेव च तस्य द्वारदेशे झगिति दत्तदर्शनम्,······अल्पावशेषदेवायुषम्,··· उचितप्रमाणशालिनामतिभास्वरतया तडिद्दण्डैरिव निर्मिताना पुष्परागपरमाणुमृत्ति-काभिरिव दत्तोपचयानामातपेनेव कल्पितत्वचामङ्गानामनलस्फुलिङ्गपिङ्गलेन गलता समन्तत प्रभाजालेन ज्वलदनेकदीपिकाचक्रवालमिव मण्डपान्तरालं कुर्वाणम्,······ अकठोरविद्रुमकन्दलीसरलाभि अम्भोजदलभ्रमापतद्भ्रमरसम्भ्रमादिवान्योन्यलग्ना-भिरग्रत स्फुरदुन्मयूखनखलेखाभिरन्धकारदुरुपलक्ष्याध्वपरिस्खलनशङ्कया पुरस्कृत-शशिकलाभिरिवागुलिभिरुपेतेन गत्युत्कम्पगलितवैकक्षकस्रग्दामरेणुनिश्चलनिलीनैरलिभि पुनरागमनप्रार्थनापुर सरमानतायास्त्रिदशलोकश्रियो वियोगाश्रुभिरिव सकज्जलै. कल्मा-षितेन कल्पतरुपल्लवचारुणा चरणद्वयेन द्योतमानम्,··· ··उरुस्तम्भयुगलेन निवसितातिसूक्ष्मदेवाङ्गवसनम्, आनीलपाटलेन पद्मरागेन्द्रनीलखण्डखचितस्य मेखलादाम्न प्रेङ्खिता-धोमुखेन मयूखमालामण्डलेन समन्तादाच्छादितनितम्बभागम्, अभिनवकल्पपादपप्रवाल-विरचितपरिधानम्,······प्रियापयोधरपरिरम्भशसिभि पृथुलपरिमण्डलै दिव्यचन्दन-रसस्तवकै स्वर्गच्यवनकालसुलभो हृदयदवथु इतरसुरमिव एनमपि मा पीडयेदिति बुद्ध्या समागतैरखिलपौर्णमासीशशिमण्डलैरिवाधिष्ठितवक्ष स्थलाभोगम्·· ···एक वैमानिकम-पश्यत् ।[१५]

उपर्युक्त सक्षिप्तीकृत गद्याश मे धनपाल ने ज्वलनप्रभ नामक वैमानिक (देवता) का वर्णन किया है । इस स्थल पर उनकी शैली अवश्य ही कुछ जटिलता लिए हुए है । विशेष्यभूत एव द्वितीया विभक्त्यन्त वैमानिक शब्द के कतिपय विशेषणो मे समास काफी लम्बे हो गए है । लेकिन बीच-बीच मे उन्होने सरल एव छोटे-छोटे समासो वाले शब्दो का सम्पुट देकर शैली की सुबोधता भी कायम रखी है ।

आलङ्कारिक दृष्टि से भी उनकी उद्भावनाएँ नितान्त मौलिक एव रोचक बन पडी है । उनकी इसी प्रकार की शैली का एक नमूना वेताल वर्णन से भी देखिए—

······दक्षिणेतरविभागे सन्निहितमेव देवताया झगिति दत्तदर्शनम्,····· अक्षुद्रसरलशिरादण्डनिचितेन निश्चेतुमुच्छ्रायमूर्ध्वलोकस्य सगृहीतानेकमानरज्जुनेवोप-लक्ष्यमाणेन गगनसीमोल्लङ्घिना जङ्घाद्वितीयेन निरन्तरारूढविततव्रततिजालयमलताल-

शिखरनिषण्णमिव दृश्यमानम्,······अमृक्प्रवाहपाटलया वैतरणीसरित्सलिलवेणिकयेव पृथुलदीर्घया रोमलतया सीमन्तितकरालकुक्षिकुहरपातालम्,······दशनमालयाप्यन्तराल-प्रविष्टकुणपास्थिशकलया सकलत्रिभुवनाभ्यवहाराय सहायीकृतानन्तदन्तयेवाक्रान्तमुख-कुहरम्,······आजानुलम्बमानशवशिरोमालमेक वेतालमद्राक्षीत् ।[16]

प्रस्तुत स्थलो पर ही नही, वल्कि इनके अतिरिक्त युद्धवर्णन,[17] यात्रावर्णन,[18] समुद्रवर्णन,[19] अटवीवर्णन[20] आदि अन्य प्रसगो मे भी उनकी शैली की ओजस्विता दर्शनीय है। क्योकि उसमे जहाँ एक ओर स्वाभाविकता है वही दूसरी ओर प्रासादिकता भी है। फलस्वरूप पाठक का मन जरा भी कही ऊबने नही पाता, और इसीलिए मेरा जी चाहता है कि धनपाल की शैली को जाडे के दिनो की समशीतोष्ण कोमल धूप के समान घोषित कर दिया जाए।

धनपाल की शैली को यदि आधुनिक उपन्याससमीक्षा की कसौटी पर कसा जाए तो भी किसी को निराशा हाथ नही लगेगी। क्योकि आज के उपन्यास समीक्षको ने—वर्णनात्मक शैली, आत्मकथात्मक शैली, पत्रात्मकशैली, डायरीशैली, मिश्रितशैली आदि —जिन शैलियों की परिकल्पना की है, धनपाल की शैली उनमे से भी एक है; और वह है उनकी मिश्रित शैली। उन्होने अपनी तिलकमञ्जरीकथा के कथानक के कुछ ही भागो का स्वय वर्णन किया है, पर उसके अधिकांश भागो का वर्णन पात्रो के मुँह से उनकी 'आपबीती' (आत्मकथा) के रूप मे ही प्रस्तुत किया है। हम देखते है कि धनपाल ने तिलकमञ्जरीकथा मे कथानक के विकास के लिए चार आत्मकथाओ का आसरा लिया है—समरकेतु की आत्मकथा, हरिवाहन की आत्मकथा, मलयसुन्दरी की आत्मकथा और गन्धर्वक की आत्मकथा। कहने को ये सभी एक ही मुख्य कथानकरूपी फल की रगीन, सुसगठित और खुशबूदार पखुडियां है। लेखक ने इन सभी आत्मकथाओ मे सामजस्य बैठाने के लिए सर्वत्र ही वडी सफाई के साथ अपनी वर्णनात्मक शैली का दामन थामा है। जरूरत पडने पर उसने पत्रलेखन[21] का भी सहारा लिया है। फलस्वरूप हमे कहने मे संकोच नही है कि धनपाल ने अपनी तिलकमञ्जरीकथा मे मिश्रित शैली का एक अति सुन्दर एव स्वाभाविक निदर्शन प्रस्तुत किया है।

वास्तव मे यदि सोचा जाए तो कथाकाव्य (उपन्यास) लिखने के लिए यह मिश्रित शैली ही, जिसे कुन्तक के शब्दो मे मध्यममार्ग कह सकते हैं, सर्वश्रेष्ठ शैली है। क्योकि इसमे लेखक अपनी कथावस्तु के भिन्न-भिन्न पहलुओ को रोचक एव स्वाभाविक रूप मे अभिव्यक्त करने के लिए अपनी सुविधा एव आवश्यकता के अनुसार पहले से अपनाई गई किसी भी अनुपयुक्त शैली को त्यागकर उपयुक्त शैली को अपना सकता है। मिश्रित शैली के लेखक का उद्देश्य अपनी कथावस्तु को अच्छी से अच्छी अभिव्यक्ति देना होता है। वह किसी शैली विशेष का क्रीतदास नही वनता, और मेरी समझ से वनना भी नही चाहिए। क्योकि शैली तो एक साधन है, इसे साध्य वनाना हरगिज ठीक नही। देखा जाता है कि जिस किसी भी लेखक ने किसी शैली विशेष को साध्य वनाकर लिखा है उसकी काव्यकला 'काव्यकला' न रहकर अवश्य ही 'काव्यपिशाची' वन गई है। सौभाग्य से हमारे आलोच्य महाकवि धनपाल ने अपने काव्य को एक अभिराम अभि-

व्यजना देने के लिए सर्वत्र ही किसी शैली विशेष के प्रदर्शन से अपने आपको कोसों दूर रखा है। हाँ, यह बात दूसरी है कि वह भी उनकी एक शैली है, जो मिश्रित शैली के नाम से पुकारी जा सकती है, और जो सर्वश्रेष्ठ भी है।

स्मरण रहे कि मैने 'मिश्रित शैली' को 'शैली विशेष' की सुदृढ परिधि मे बाहर रखकर ही अपने ये विचार प्रस्तुत किए है। इसलिए मेरी इस उपर्युक्त विचारधारा को 'वदतोव्याघात' दोष से दूषित न समझा जाए।

काव्य मे गुणो का सामान्य स्वरूप

ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः॥

(मम्मट, काव्यप्रकाश, उल्लास ८, कारिका ६६)

जिस प्रकार आत्मा मे रहने वाले शौर्य, औदार्य, आर्जव आदि धर्मों को संसार मे गुण कहा जाता है उसी प्रकार काव्य के क्षेत्र मे भी रस मे रहने वाले माधुर्य, ओज आदि धर्मों को गुण माना गया है। इनका काम है रस की चर्वणा को उत्कृष्ट करना; यानी उसमे चार चाँद लगाना।

चूँकि रस को काव्य का आभ्यन्तरिक पहलू माना गया है, यहाँ तक कि उसे काव्य की आत्मा भी स्वीकार किया गया है, इसलिए सरल शब्दो मे यह भी कह सकते है कि माधुर्यादि गुणो से काव्य के भीतरी सौन्दर्य की वृद्धि होती है, और इतना ही नही, बल्कि रस मे इन गुणो की सत्ता अनिवार्य भी होती है।

गुणो के भेद

गुणो की सख्या के विषय मे भारतीय मनीषियो मे काफी मतभेद है। भामह, आनन्दवर्धन, मम्मट, हेमचन्द्र, विश्वनाथ, पण्डितराज जगन्नाथ आदि कुछ आचार्यो का तो कहना है कि माधुर्य, ओज और प्रसाद, बस ये तीन गुण ही सारे काव्योद्यान को सुवासित करने के लिए काफी है। लेकिन भरतमुनि,[२२] दण्डी[२३] और वामन[२४] की दृष्टि मे गुण दश है—श्लेष, प्रसाद, समता, माधुर्य, सुकुमारता, अर्थव्यक्ति, उदारता, ओज, कान्ति और समाधि। जयदेव ने अपने चन्द्रालोक के चौथे मयूख मे इनकी सख्या —श्लेष, प्रसाद, समता, समाधि, माधुर्य, ओज, सौकुमार्य और उदारता—आठ मानी है। उन्होने दशगुणवादियो के कान्ति नामक गुण का शृगार रस मे और अर्थव्यक्ति का प्रसाद गुण मे अन्तर्भाव करने का सुझाव दिया है।

इतना ही नही, बल्कि भोज[२५] और विद्यानाथ[२६] ने गुणो की सख्या चौबीस कर दी है। अग्निपुराणकार[२७] तो इनसे भी आगे है। उन्होने इनकी सख्या पच्चीस तक पहुँचा दी है। इस प्रकार हम देखते है कि गुणो की सख्या के निर्धारण करने मे भारतीय मनीषी एकमत नही है। लेकिन गम्भीरता एव सूक्ष्मेक्षिका से विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि मूलरूप से काव्य के गुण तीन ही है, और वे है—माधुर्य, ओज और प्रसाद। क्योकि इनके अतिरिक्त और जो भी गुण गिनाए गए है वे न तो मौलिक है और

न निर्दुष्ट। उनमे से कुछ तो इन्ही तीन मे अन्तर्भूत हो जाते हैं, कुछ दोपाभावमात्र है, और कुछ तो गुण के नाम की कलई से पुते हुए दोप ही है, जो कभी-कभार कलई के खुल जाने से दोप के रूप मे प्रकट भी होने लगते है। इसलिए गुणो की वास्तविक सख्या तो तीन ही मानी जानी चाहिए।[२८]

गुणो का विशेप स्वरूप एव उनके अभिव्यजक तत्त्व

प्रत्येक पदार्थ का 'सामान्यस्वरूप' के अतिरिक्त एक 'विशेपस्वरूप' भी होता है, जो उसे अपने अन्य सजातीय पदाथो से भिन्न सिद्ध करता है। अत गुणो के स्वरूप की चर्चा के प्रसग मे यह कहना असगत न होगा कि प्रत्येक गुण का एक विशेषस्वरूप भी हुआ करता है जो उसे अन्य गुणो से भिन्न सावित करता है।

यहाँ हम क्रम से तीनो ही गुणो के विशेप-विशेप स्वरूपो पर सक्षेप मे प्रकाश डालेगे। साथ ही साथ हम उन तत्त्वो की भी चर्चा करेगे जो इन गुणो को अभिव्यक्ति देते है, अर्थात् जिनके माध्यम से ये गुण पाठको की अनुभूति का विपय वनते है।

माधुर्य गुण का स्वरूप एव उसके अभिव्यजक तत्त्व

जव किसी काव्य को पढकर या सुनकर मन मे एक प्रकार की गुदगुदी-सी पैदा होने लगे, दिल वाग-वाग हो उठे, शरीर मे कोमलता घर करने लगे, विचारों मे लालित्य आ जाए तो समझना चाहिए कि वह काव्य माधुर्यगुण से ओतप्रोत है। ऐसे काव्य को वारम्वार पढने की इच्छा होती है। उसमे एक विलक्षण आकर्षण होता है, जो नित्यनूतन होता है।

आचार्यो की धारणा है कि ट, ठ, ड, और ढ को छोडकर 'क' से लेकर 'म' तक के वर्ण जो स्पर्शवर्ण कहलाते हैं, अपने वर्ग के पाँचवे अक्षर के साथ सयुक्त होकर इस माधुर्यगुण की अभिव्यजना करते है। रेफ और णकार यदि ह्रस्व हो तो ये भी माधुर्य के अभिव्यजक हो जाते है। पर मैं तो समझता हूँ कि जिन वर्णो और शब्दो मे कोमलता और श्रुतिप्रियता होती है, जो सुनने मे वीणा के सधे हुए तारो जैसे प्रतीत होते है और जिनसे हृदय की वाँसुरी वज उठती है वे माधुर्य गुण की सजीव अभिव्यजना कर दिया करते हैं। इस गुण की एक खास विशेपता और है, और वह यह कि इसमे समासो का प्रयोग या तो विल्कुल ही नही होता है, या फिर निहायत ही सरल, विरल और सुगम हुआ करता है। इसीलिए कुल मिलाकर कह सकते है कि इस माधुर्य गुण से सवलित सर्जना मे एक अनुपम मिठास की अनुभूति होती है।[२९]

उदाहरण के लिए विश्वनाथ विरचित एक श्लोक प्रस्तुत कर रहा हूँ—

लताकुञ्ज गुञ्जन् मदवदलिपुञ्ज चपलयन्
समालिङ्गन्नङ्ग द्रुततरमनङ्ग प्रबलयन्।
मरुन्मन्दं मन्दं दलितमरविन्दं तरलयन्
रजोवृन्दं विन्दन् किरति मकरन्दं दिशि दिशि॥

ओजोगुण का स्वरूप एवं उसके व्यंजक तत्त्व

जिसे पढकर या सुनकर चित्त स्फुरित होने लगे, धमनियो मे रक्त की गति बढने लगे, सारे शरीर मे उत्साह की लहरें दौडने लगे और मन या तो कुछ कर गुजरने के लिए या फिर किये जाते हुए को देखने के लिए उतावला हो उठे तो समझना चाहिए कि वहाँ ओजोगुण मौजूद है।

इसकी अभिव्यजना के लिए साहित्यकार को ऐसे शब्दो का सहारा लेना पड़ता है जिनमे वर्ग का पहला वर्ण दूसरे वर्ण से, और तीसरा वर्ण चौथे वर्ण से सयुक्त रहता है। कभी-कभी दो समान वर्ण भी परस्पर सयुक्त दीखते है, वर्णों मे रेफ का मिश्रण भी खूब रहता है, ट वर्ग की बहुलता पाई जाती है, और 'श' तथा 'ष' का भी प्रयोग देखा जाता है। समास काफी लम्बे-लम्बे होते हैं और रचना मे औद्धत्य तथा गर्व कूट-कूट कर भरा जाता है।[30] उदाहरण के लिए 'हनुमन्नाटक' से एक श्लोक प्रस्तुत कर रहा हूँ—

मूर्ध्नामुद्वृत्तकृत्ताविरलगलद्रक्तसंस धारा
धौतेशाङ्घ्रिप्रसादोपनतजयजगज्जातमिथ्यामहिम्नाम्।
कैलासोल्लासनेच्छाव्यतिकरपिशुनोत्सर्पिदर्पोद्धुराणां
दोष्णां चैषां किमेतत् मिह नगरीरक्षणे यत्प्रयासः॥

प्रसादगुण का स्वरूप एवं उसके अभिव्यजक तत्त्व

जिस काव्य को पढते ही या सुनते ही उसका अर्थ समझ मे आ जाए, अर्थात् जहाँ बौद्धिक व्यायाम किए विना ही काव्य का आनन्द मिलने लगे तो समझना चाहिए कि वहाँ प्रसादगुण है। यह किसी वर्ण, शब्द, समास और रचना विशेष पर निर्भर नही रहता, इसे अभिव्यक्त करने के लिए बस अर्थ की त्वरापूर्ण स्पष्टता पर ध्यान देना पडता है।[31] जिस रचना मे यह गुण पाया जाता है वह पाठको के गले का हार बन जाती है। उदाहरण के लिए कवयित्री विज्जिका का लिखा हुआ एक श्लोक प्रस्तुत है—

धन्यासि या कथयसि ि सङ्गमेऽपि
विस्रब्धचाटुकशतानि रतान्तरेषु।
नीवीं प्रति प्रणिहिते तु करे प्रियेण
सख्यः शपामि यदि किंचिदपि रामि॥

तिलकमञ्जरीकथा मे गुणो की स्थिति

पृष्ठभूमि के रूप मे काव्य के गुणो का इतना परिचय पाने के पश्चात् अब हम समझते है कि हमारे सुधी पाठक सरलता से ही धनपाल की तिलकमञ्जरीकथा मे अभिव्यक्त हुए काव्यगुणो की स्थिति को भली-भाँति समझ लेगे। परिशीलन करने से मुझे अनुभूति हुई है कि धनपाल ने अपनी इस कथाकृति मे माधुर्य और प्रसादगुणो को बहुत ही रोचक और हृदयावर्जक ढग से प्रस्तुत किया है। फलस्वरूप उनकी सारी कथावस्तु पाठको के अन्तस्तल मे सुमधुर और रसीले रसगुल्ले की तरह आनन्द देती हुई धँसती

चली जाती है। वह उनके दिल और दिमाग पर पूरी तौर से छा जाती है। उदाहरण के लिए सर्वप्रथम माधुर्य गुण से पूरित कुछ गद्यांश प्रस्तुत कर रहा हूँ—

अयोध्या की वैश्याओ के वर्णनप्रसग मे वह लिखते है—

····· सकृदाह्वानेन नरेन्द्राणामपि सर्वस्वमाकर्षयन्तीभि ,······ईषत्कटाक्षपातेनाचलानपि द्रावयन्तीभि , सुरतशिल्पप्रगल्भतावष्टम्भेन रूपमपि निरुपयोगमगच्छन्तीभि. तारुण्यमपि तृणलघु गणयन्तीभि , विलासानपि हास्यकोटौ कलयन्तीभि., आभरणसम्भारमपि भारमवधारयन्तीभि , प्रसाधनाडम्बरमपि विडम्बनापक्षे स्थापयन्तीभि., उपचारमप्याचारबुद्ध्या प्रपञ्चयन्तीभि',·········विलासिनीभिर्वितीर्णत्रिभुवनजिगीषुकुसुमसायकसाहायका······।[32]

लीजिए, अब सुवेल पर्वत की प्रान्तभूमि के वर्णन की भी मधुरिमा देखिए—

तस्य च शिखरिण स्वभावरमणीयेषु सर्वत स्तबकिततिलकचम्पकाशोकवकुलेषु, कलहायमानमत्तपिककुलालापवाचालविकचचूतमालेषु, परिमलमिलितमधुकरीनिकरान्धकारितकोरकितसरससहकारेषु, रत्नाविलसमुद्रशैवलप्रवालजटिलितराजतालीमूलजटाजालकेषु, घटितसेतुवानरविकीर्णगिरिकूटकुटिलितान्तरालमार्गेषु,· ····अनेकश क्रीडानिमित्तमागतया प्रधाननक्तञ्चरीभि. सह पादचारेण विचरन्त्या लतामन्दिरेषु मन्दोदर्या सविभ्रमावचितविकचमन्दारेषु, सेतुशिखरोत्सङ्गलवङ्गतरुतलासीनकिन्नरमिथुनगीयमानरामचन्द्रचरिताद्भुतेषु,·······जनकानुकारिभिर्मारीचमृगसमागतानामरण्यमृगीणामुदरसम्भवैर्भ्रमद्भिरेणकै. स्वदेहकाञ्चनप्रभया पिशङ्गितोद्देशेषु ·· ··तटवनेषु······ विचरन्······कतिचिद्दिनान्यतिष्ठम्।[33]

अब एक नमूना वसन्तवर्णन की भी माधुरी का देखिए—

एकदा च मुकुलभरनम्रनूतनाग्रस्तम्बे, स्तबकनिकुरम्बसम्बाधमाधवीवीरुधि, मधुस्यन्दिसिन्दुवारे, मन्दारामोदिनि, मदकलितकामिनीकटाक्षच्छटाच्छोटनकुड्मलिततिलकितहरिति, हरितालवर्णकुसुमाकीर्णकिङ्किराते,···कलिकाचितकाञ्चनारावनीरुहि, नीहारधवलकङ्कोलधूलिपटलसम्पादितदिगङ्गनांशुके······राजीविनीवनविराजितपल्लवे, पल्लविताशोकविटपिनि, विपिनपाटलपरिमलपानपीनालिमाले ·····रागान्धबन्धकीजनरजनीयमानवासरे, विसारिश्रृङ्गारसागरप्लावितजगति···सकलत्रैलोक्यरामणीयैकवसतौ वसन्तसमये······।[34]

सहृदयो के लिए कहने की आवश्यकता न होगी कि उपर्युक्त इन तीनो ही उद्धरणो मे माधुर्य की एक अच्छी-खासी निर्झरिणी-सी वहती नजर आती है, जिसमे पाठक का मन नहाने से ऊवता ही नही है।

तिलकमञ्जरीकथा मे प्रसादगुण

धनपाल ने अपनी कथाकृति मे प्रसादगुण का तो खूब ही ध्यान रखा है। फलस्वरूप उनकी सारी कृति इस गुण से ओतप्रोत है। उन्होने कठिन से कठिन पदार्थ का और जटिल से जटिल विपय का ऐसी सरलता और सफाई के साथ वर्णन किया है कि वस देखते ही बनता है। पाठक के मनोमस्तिष्क पर उन्होने कही भी और जरा भी

अनावश्यक दबाब नही पडने दिया है। यह उनके प्रसादगुण का ही प्रसाद है जो सस्कृत भाषा मे होने के बावजूद भी उनके कथाकाव्य (उपन्यास) का कथानक अविरलता एव सरलता को बडे कायदे से सँजोये हुए है। क्षमा करिएगा, स्थान की कुछ कमी होने के कारण मै यहाँ उनके प्रसादगुण से परिपूर्ण कुछ ही उदाहरण प्रस्तुत कर सकूँगा, जो अधिक जिज्ञासा रखते है उन्हे तो प्रकृतग्रन्थ ही देखने का कष्ट करना होगा। हाँ तो लीजिए, पहला उदाहरण मेघवाहन के परिचय से ही दे रहा हूँ—

·· ·· यदुचित यौवनस्य, रुचित चित्तवृत्तेः, आराधक विदग्धानाम्, अबाधक लोकद्वयस्य, तदपरमप्यविकलतया विवेकस्य, स्थिरतया कुलाभिमानस्य, स्वभ्यस्ततया विनयस्य, भूयिष्ठतया च सत्त्ववृत्तेः यथा न धर्म. सीदति, यथा नार्थं क्षय व्रजति, यथा न राजलक्ष्मीरुन्मनायते, यथा न कीर्तिर्मन्दायते, यथा न प्रतापो निर्वाति, यथा न गुणाः श्यामायन्ते, यथा न श्रुतमुपहस्यते, यथा न परिजनो विरज्यते, यथा न मित्रवर्गो म्लायति, यथा न शत्रवस्तरलयन्ते तथा सर्वमन्वतिष्ठत्।[३५]

अब एक उदाहरण समुद्रवर्णन से भी देखिए, कितनी प्रासादिकता है इसमे—

युवराज! गम्यते न कश्चिदपि दोष, दृश्यते च कौतुकमिदम्। किन्तु सर्वत एव दुर्ग पर्वतस्यास्य पर्यन्तेषु तोयराशि, न शक्यते महान्त यत्नमन्तरेण यानपात्रिकैरवगाहयितुम्। अत्र हि महाप्रमाणा. सचरन्ति जलचरा; पदे-पदे प्रकृतिदुस्तरा प्रवहणाना निवर्त्तयन्ति गतिमावर्त्ता, स्थाने-स्थाने शिथिलयन्ति यात्रोत्साहमातिशयोदग्रास्तटग्रावाण.,·· ···।[३६]

अब लीजिए एक छोटा-सा नमूना हरिवाहनकृत 'तिलकमञ्जरीचित्रदर्शन' का भी देखिए, शब्दो की सुबोधता तो इसमे से छलक-सी रही है—

अनुपरतकौतुकश्च मुहु केशपाशे, मुहुर्मुखशशिनि, मुहुरधरपत्रे, मुहुरक्षिपात्रयो., मुहु कण्ठकन्दले, मुहु स्तनमण्डले, मुहुर्मध्यभागे, मुहुर्नाभिचक्राभोगे, मुहुर्जघनभारे, मुहुरुरुस्तम्भयो, मुहुश्चरणवारिरुहयो कृतारोहावरोहया दृष्ट्या ता व्यभावयत्।[३७]

धनपाल की काव्यकला की मधुरता और प्रासादिकता के ऊपर जो तीन उदाहरण दिए गए है वे 'स्थालीपुलाकन्याय' से उनकी सम्पूर्ण कृति की मधुरता और प्रासादिकता के परिचायक है। इन्हे इन्ही के परिवेश तक सीमित समझना धनपाल के साथ अन्याय करना होगा।

तिलकमञ्जरी मे ओजोगुण

तिलकमञ्जरीकथा के प्रस्तावनाश्लोको को पढने से पता चलता है कि धनपाल को कठिन और घने श्लेषो से भरपूर तथा लम्बी-लम्बी साँसो से पढे जाने वाले लम्बे-लम्बे समासो से युक्त जटिल 'गद्यबन्ध' पसन्द नही है। ठीक भी तो है, क्योकि इस प्रकार की रचना, मै समझता हूँ कि किसी भी रोमाण्टिक कथा के सौरस्य को समाप्त करके उसमे विकटवैरस्य पैदा कर सकती है। अत कोमलसाहित्यस्रष्टा को इससे दूर ही रहना चाहिए। यही कारण है कि धनपाल की तिलकमञ्जरीकथा मे ओजोगुण की स्थिति वही-वही नजर आती है जहाँ-जहाँ वह परमावश्यक है। वेतालवर्णन, युद्धवर्णन, समुद्र-

वर्णन, अटवीवर्णन आदि के कुछ प्रसगो मे उनकी काव्यकला मे ओजस्विता पाई ही जाती है। लेकिन उन्होने इन प्रसगो मे भी इस बात का पूरा-पूरा ध्यान दिया है कि वे वर्णन ओजस्वी होने के साथ ही साथ सयत एव सुबोध भी बने रहे। नमूने के तौर पर मै यहाँ उनके एक दो गद्याश प्रस्तुत भी किए देता हूँ।

भयङ्कर वेताल के प्रकट होने की भूमिका बाँधते हुए धनपाल ओजस्विता के साथ लिखते है—

अत्रान्तरे नितान्तभीषणो विशेषजनितस्फातिरास्फालिताशातटै., प्रतिफलद्भिरतिपरिस्फुटै. प्रतिशब्दकै. शब्दमयमिवादधानस्त्रिभुवनम्, उद्भ्रान्तनयनतारकाकान्तिकर्वुरीकृतदिग्भिराकर्णित. सन् सभयमुभयकर्णदत्तहस्ताभिरायतनदेवताभि, कुलिशताडितकुलाचलशिखरसमकालनिपतद्गण्डशैलनिवहनादोद्धुरो हासध्वनिरुदलसत्।[३८]

अब एक नमूना समरकेतु की युद्धयात्रा के प्रसग का भी देखिए—

....सितपिष्टपङ्कपाण्डुरितगात्रम्, अक्षुद्रमणिचित्रनक्षत्रमालापरिक्षिप्तम्, सिन्दूरपाटलविकटकुम्भभागम्, आरोपितानेकनिशितशस्त्रप्रभाशारशातकुम्भशारीपरिकरितपृष्ठपीठम्, अश्रान्तमदवारिधारादुर्दिनान्धकारितकरटकूट चित्रकूटपर्वतमिव परित्यक्तस्थावरावस्थममरवल्लभाभिधान गन्धगजमारूढो दृढावनद्धतारतूणीरवन्धुरोभयस्कन्धशिखर, कनकपत्रभङ्गचित्रमध्यभागभाजा शरासनेन सनाथवामहस्त,...... सदर्पसर्पत्पदातिनिर्दयपादपातप्रवर्तिताकाण्डमेदिनीकम्प, प्रहर्षोत्तालवैतालिकव्राततारतरोद्घुष्यमाणजयजयध्वनि., ध्वनद्विजयमङ्गलाभिधानतूर्यनिर्घोषवधिरिताखिलब्रह्मस्तम्ब, पुरस्तात् सलीलचलितकरिघटारूढकिङ्करपुरुषपातितविरलघनघातानामुत्पातनिर्घातघोरघोपोद्गारमतितारमारसन्तीना ढक्काना ध्वनितेन मुखरयन्नखिलान्यपि दिशामुखानि,......राजकुलान्निरगच्छम्।[३९]

अब एक नमूना अटवीवर्णन की भी ओजस्विता का देखिए—

... 'क्वचिद्दावदहनाश्लिष्टवशीवनश्रूयमाणश्रवणनिष्ठुरष्टात्कारया, क्वचिदकुण्ठकण्ठीरवारावचकितसारङ्गलोचनाशुशारया, क्वचित् तरुतलासीनशबरीविरच्यमानकरिकुम्भमुक्ताशवलगुजाफलप्रालम्बया, क्वचिदध सुप्तदृप्ताजगरनिःश्वासनर्तितमहातरुस्तम्बया, क्वचिदुदश्रुकणिकश्वागणिकशोच्यमानकोलदलितनि स्पन्दसारमेयवृन्दया, क्वचिच्छेकशाखामृगाच्छिन्नपाथेयपथिकनिष्फललोष्टवृष्टिहासिताटविकवर्गया, क्वचिच्चर्मलुब्धलुब्धकानुबध्यमानमार्गणप्रहतमर्मद्वीपिमार्गया......गन्तुमटवीभुवा प्रावर्तत।[४०]

कहना न होगा कि ऊपर दिए हुए तीनो ही उद्धरणो मे धनपाल ने जहाँ एक ओर विषयानुकूल एव स्वाभाविक ओजस्विता भरी है, वहाँ दूसरी ओर उनमे सुबोधता एव सरलता का भी उत्तम सम्पुट लगा दिया है। इस प्रकार हम पाते है कि धनपाल ने अपनी कथाकृति मे माधुर्य, प्रसाद और ओज—इन तीनो ही गुणो का नितान्त आनुपातिक एव उत्कर्षाधायक प्रयोग करके कथा की रोचकता मे चार चाँद लगा दिए है।

अलकार का स्वरूप

अलकार कहते हैं खूबसूरती बढाने वाले तत्त्व को। मानवजगत् हो या काव्य-

जगत्, सभी जगह अलकारो की महिमा अक्षुण्ण है। जिस प्रकार बिन्दिया, काजल, लिपिस्टिक, कुण्डल, हार, करधनी, पायजेब आदि अलकारो के प्रयोग से कामिनी के शरीर की शोभा बढ जाती है, उसी प्रकार अनुप्रास, यमक, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलकारो के प्रयोग से कविता मे भी निखार आ जाता है। इसी तथ्य पर भरोसा करते हुए आचार्यों ने अलकारो की परिभाषा देते हुए कहा है कि कविता के शरीरभूत शब्द और अर्थ मे सौन्दर्य कि वा चारु चमत्कार की वृद्धि करने वाले तत्त्व को अलकार कहा जा सकता है। हाँ, इतना अवश्य देखा जाता है कि यह अलंकार तत्त्व काव्य के आत्मभूत रसतत्त्व मे कभी तो उत्कर्ष कर देता है; और कभी नही करता। यही वजह है कि इतना महत्त्वपूर्ण होने के बावजूद भी यह तत्त्व काव्य का आवश्यक अग नही बन सका है।

काव्य मे अलकार

स्त्री गोरी हो या काली, छरहरी हो या मोटी, पढी लिखी हो या अनपढ, पर वह 'मेक-अप' जरूर करती है। करना भी चाहिए; क्योकि इससे उसके व्यक्तित्व मे अवश्य ही कुछ न कुछ आकर्षण बढ जाता है। ठीक इसी प्रकार कविता पद्यात्मिका हो या गद्यात्मिका, मुक्तकमयी हो या प्रबन्धमयी, दृश्य हो या श्रव्य, पर उसमे अलङ्कार-योजना जरूर ही रहती है। रहनी भी चाहिए; क्योकि इससे उसकी रोचकता और सुशिक्षित सहृदयो के हृदयो को आवर्जित करने की उसकी क्षमता बढ जाती है।

लेकिन कुशल साहित्यकार को इस बात का हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि उसके काव्य मे अलकारो की बेढगी भरमार न होने पाए। क्योकि जिस प्रकार जरूरत से ज्यादा और अनुचित रीति से किया गया 'मेक-अप' कामिनी की शालीनता को नष्ट करके उसे भौडा बना देता है, ठीक उसी प्रकार अनाप-शनाप ढग से किया गया अनावश्यक अलकारो का अनुचित प्रयोग भी काव्य के असली आनन्दामृत को मिट्टी मे मिला देता है। इस प्रकार का प्रयोग साहित्यकार के आचार्यत्व का झण्डा भले ही फेहरा दे, लेकिन इतना अवश्य है कि सहृदय पाठको को वह सिवाय 'बोरियत' के और कुछ नही दे सकेगा। यही कारण है कि प्रत्येक अच्छा साहित्यकार अलकारो का प्रयोग करते समय उसके औचित्य पर ध्यान दिए रहता है।[४१]

अलकारो के भेद

चूंकि काव्य का शरीर 'शब्द और अर्थ इन दो तत्त्वो से ही बनता है, इसलिए अलकारो का भी सम्बन्ध इन्ही दो तत्त्वो से माना गया है। आचार्यों ने काव्य मे शब्द एव अर्थ के आधार पर ही—शब्दालकार, अर्थालकार और उभयालकार नाम से—तीन प्रकार के अलकारो की चर्चा की है। जो अलकार किसी शब्द विशेष की सत्ता पर ही निर्भर रहते है उन्हे शब्दालकार माना जाता है। ऐसे अलकार शब्द का परिवर्तन होते ही नष्ट हो जाते है। इसके विपरीत जो अलकार शब्द का परिवर्तन होने के बावजूद भी अपना आसन जमाए रहते है, वे अर्थालकार कहलाते है। ऐसे अलकार केवल अर्थ के सहारे रहते हैं, उन पर पर्यायवाची शब्दो का प्रभाव नही पडता है। लेकिन जो अलकार

एक ही साथ शब्द और अर्थ—दोनों ही—का सहारा पकडता है, उसे उभयालकार की कोटि मे रख दिया जाता है।

तिलकमञ्जरीकथा मे अलकार

हमारे आलोच्य महाकवि धनपाल ने अपनी तिलकमञ्जरीकथा को सजाने और सँवारने की पूरी-पूरी कोशिश की है। उसमे चमत्कार लाने के लिए उन्होने अलकारो का बडा ही रोचक प्रयोग किया है। उनकी अलकारयोजना ने तो ठीक वसन्त ऋतु जैसा काम किया है। क्योकि जिस प्रकार वसन्त के दिनो मे प्रकृति मे बहार आ जाती है ठीक उसी प्रकार उनकी अलकारयोजना से कथानक मे पूरी तौर से आकर्षण भर गया है। धनपाल की अलकारयोजना के सन्दर्भ मे एक बात और भी उल्लेखनीय है, और वह यह है कि उन्होने अपनी तिलकमञ्जरीकथा के आरम्भ के दो तिहाई भाग को अलकृत करने का जितना प्रयत्न किया है, उतना अन्त के एक तिहाई भाग को अलकृत करने का नही। कविता-कामिनी की साज-सज्जा के प्रयत्न का यह भेद शायद इस कटुसत्य की ओर सकेत करने मे समर्थ है कि जब उमर ढलने लगती है तो स्त्री मेक-अप करना कम कर देती है।

तिलकमञ्जरी का परिशीलन मेरे इस कथन का साक्षी होगा कि धनपाल ने अपनी कृति को कमनीय बनाने के लिए अधिक नही तो कम से कम सत्ताईस अलकारो का प्रयोग तो किया ही है। उनके नाम हैं—अनुप्रास, श्लेष, यमक, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, परिसख्या, विरोधाभास, काव्यलिङ्ग, समासोक्ति, व्यतिरेक, अतिशयोक्ति, तुल्ययोगिता, दीपक, उल्लेख, कारणमाला, सन्देह, भ्रान्तिमान्, विभावना, विशेषोक्ति, अन्योक्ति, व्याजोक्ति, अपह्नुति, पर्यायोक्त, व्याजस्तुति, व्याजनिन्दा और विषम। लेकिन उन्होने जिन अलकारो का बारम्बार प्रयोग किया है वे तो गिनती के चार या पाँच ही हैं; और उनके नाम है—उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, परिसख्या और विरोधाभास। इनमे भी देखा गया है कि धनपाल का झुकाव, लगाव या ममत्व जितना उत्प्रेक्षा के लिए है उतना और किसी के लिए नही। आप देखेगे कि उनकी कृति अधिकाश उत्प्रेक्षाओ की ही छठा से विभूषित हुई है। कुछेक को छोडकर वास्तव मे उनकी ये उत्प्रेक्षाएँ है भी बडी प्यारी। मैं तो कहूँगा कि जिस प्रकार कालिदास की उपमासिद्धि को देखकर आलोचको मे 'उपमा कालिदासस्य' की मान्यता चल पडी है, उसी प्रकार अब धनपाल की 'उत्प्रेक्षा-सिद्धि' को देखकर 'उत्प्रेक्षा धनपालस्य' की भी मान्यता चल जानी चाहिए।

अब मैं चाहूँगा कि तिलकमञ्जरीकथा से कुछ ऐसे उदाहरण भी प्रस्तुत करूँ जिनसे धनपाल की अलकारयोजना के सौष्ठव का आपको आनन्दानुभूतिपूर्वक विश्वास हो सके। अच्छा, तो लीजिए सर्वप्रथम उत्प्रेक्षा (सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य यत्—काव्यप्रकाश) की ही छठा देखिए—

······दृष्ट्वा च तमकाण्डवैरिणा मन्मथेन घर्मर्तुना च युगपदुपताप्यमानम् उत्पन्नानुकम्पो निर्वापयितुमिव चक्रे जगत्यामवतारमखिलविश्वोपकारी वारिदागम। प्रवर्तितप्रबलधारापङ्क्तयो भङ्क्तुमिव तस्य धारागृहस्पृहा क्षिप्रमेव अन्तरिक्षमाच्छादयाचक्रुः अब्जिनीपलाशप्रकरनीला पयोमुच। सततयामिनीजागरणजडतारका प्रसाद-

यितुमिव तद्दृष्टिम् अविरलोद्भिन्नमरकतश्यामशाद्वला बभूव भूतधात्री। प्रथमजलधरासारशिशिरास्तदङ्गतापमिव निर्वापयितु निर्वातुमारभन्त सन्ततामोदमकरन्दमासला कदम्बमरुत। मानसस्मरणसजातरणरणका तदनुरागमाख्यातुमिव खेचरेन्द्रदुहितु उत्तरा दिशमभिप्रतस्थिरे राजहसा। तद्विरहदाहविच्छेदाक्षमेण पत्रखण्डाडम्बरेण विहितापत्रपाणीव वर्षासलिलपूरितासु विलाससरसीपु निममज्जुरम्भोजिनीवनानि·· ।[४२]

स्पष्ट है कि यह वर्षा के आगम का वर्णन है। पर गर्मी के दिनो मे राजकुमार हरिवाहन को विद्याधरराजकुमारी तिलकमञ्जरी के वियोग की आग मे झुलसता हुआ देखकर उसको कुछ सुख पहुँचाने के लिए और उसकी कुछ मदद भी करने के लिए वर्षा के आने की यह जो उत्प्रेक्षा धनपाल ने की है वह अपने आप मे अनूठी ही है। उनकी प्रतिभा सचमुच ही बडी पैनी है। तभी तो बरसते हुए कारे कजरारे बादल उन्हे ऐसे लगे मानो वे हरिवाहन की फौव्वारे के नीचे नहाने की इच्छा को शान्त करने के लिए ही बरस रहे हो। मरकतमणियो जैसे रगवाली शस्यश्यामला वसुन्धरा उन्हे ऐसी प्रतीत हुई मानो वह सारी-सारी रात जागते रहने से हरिवाहन की पथराई हुई आँखो को कुछ आराम पहुँचाने के लिए ही हरी-भरी हुई हो। शीतल, मन्द और कदम्ब की सुगन्धि से भरी हुई हवाएँ उन्हे ऐसी लगी मानो वे तिलकमञ्जरी की विरहवह्नि मे झुलसते हुए हरिवाहन के शरीर की जलन को शान्त करने के लिए ही चल रही हो। मानसरोवर की ओर जाते हुए राजहस उन्हे ऐसे प्रतीत हुए मानो वे तिलकमजरी के पास हरिवाहन का प्रणय-सन्देश ले जा रहे हो, और तालाबो मे बरसात के पानी की बाढ आने से डूबे हुए कमल उन्हे ऐसे दिखाई दिये मानो वे हरिवाहन की विरहज्वाला को शान्त करने मे अपने आपको असमर्थ पाकर ही शर्म के मारे पानी मे डूब गए हो।

वर्षाकालीन बरसते हुए बादल, लहलहाती हुई धरती, ठण्डी-ठण्डी हवाओ, मानसरोवर की ओर जाते हुए हसो और पानी मे डूबे हूए कमलो के लिए इतनी सटीक और ऐसी प्रासगिक उद्भावनाएँ, जो पढने वालो के दिल और दिमाग की धडकनो मे समा जाएँ, अलभ्य नही तो दुर्लभ अवश्य बनी रहेगी। एक नमूना और देखिए—

जानीथः श्रुतशालिनौ खलु युवामावां प्रकृत्यर्जुनी
त्रैलोक्ये वपुरीदृगन्ययुवतेः सम्भाव्यते किं क्वचित् ?
एतत्प्रष्टुमपास्तनीलनलिनश्रेणीविकासश्रिणी
शङ्केऽस्याः समुपागते मृगदृशः कर्णान्तिकं लोचने ॥

—तिलकमञ्जरी, पृ० स० २४८

यह वर्णन तिलकमञ्जरी की नीलकमल की पाँखो जैसी लम्बी-लम्बी आँखो का है, जो उसके कानो की ओर नुकीली होती गई है। धनपाल की कल्पना है कि इस मृगनयना की भोली-भाली आँखे जानकार कानो के पास तक इसीलिए लम्बी होती गई है मानो वे कानो से यह पूछना चाहती हो कि त्रिलोकी मे तिलकमञ्जरी के शरीर जैसा सुन्दर शरीर क्या किसी दूसरी युवती का भी हो सकता है ?

वाह, क्या ही फडकती हुई उत्प्रेक्षा है। सलौनी आँखो की लम्बाई का वर्णन करने

के लिए इससे अच्छी और क्या उद्‌भावना हो सकती है ?

यद्यपि इस प्रसग मे उल्लेखनीय तो वहुत है, किन्तु शोध-प्रबन्ध के दायरे की सीमा मे घिरा होने के कारण मै धनपाल की उत्प्रेक्षाओ की बानगी के रूप मे केवल इन उपर्युक्त दो ही उद्धरणो को देकर अपने कर्त्तव्य की अवास्तविक इतिश्री समझ लेता हूँ। लेकिन जिज्ञासुओं से यह आशा अवश्य करूँगा कि वे इस सन्दर्भ मे तिलकमञ्जरीकथा के पन्ने अवश्य ही पलटे।

उपमालकार

(उपमा यत्र सादृश्यलक्ष्मीरुल्लसति द्वयो —कुवलयानन्द)

उपमा देने मे माहिर तो कालिदास ही है, पर धनपाल भी काफी कुशल है। वह उपमेय और उपमान के साधारण धर्म को उपमा की तराजू पर वडी वारीकी के साथ तौलते है, और ऐसे-ऐसे तथ्य सामने ला देते है कि वस उन्हे देखते ही बनता है। कुछ उदाहरण इस प्रकार है—

कषाश्मनेव श्यामेन मुखेनाधोमुखेक्षणः।
काव्यहेम्नो गुणान् वक्ति कलाद इव दुर्जनः ॥

—तिलकमञ्जरी प्रस्तावना भाग, श्लोक १४

जिस प्रकार सुनार कसौटी के काले पत्थर के समान ही (धुएँ से) काले हुए अपने मुँह से आँखो और मुँह को नीचा करके (दवी जबान से ही दूसरे के) सोने की तारीफ करता है, ठीक उसी प्रकार दुष्ट व्यक्ति भी कसौटी के काले पत्थर के समान (ईर्ष्याविसाद से) काले (हर्षहीन) हुए मुंह से अपनी आंखो और मुँह को नीचा करके (दवी जबान मे ही, दूसरे की) कविता की तारीफ किया करता है।

यहाँ पूर्णोपमा है, जो ईर्ष्यालु समाज की गहरी अनुभूति को अपने आप मे सँजोये हुए है।

आपने अनुभव किया होगा कि किसी दूसरे कवि की बनाई हुई सरस कविता को पढकर, ईर्ष्या और हीन भावना से जिनका चेहरा उतर जाता है ऐसे दुर्जन (साहित्यकार तथा समालोचक) व्यक्ति पहले तो उस कविता की प्रशंसा मे कुछ कहना ही नही चाहते, और यदि उन्हे कुछ कहना ही पड जाए तो बहुत ही दवी आवाज मे कहते है। इतना ही नही, वल्कि उस समय वे अपने मुँह को, जो ईर्ष्या के धुएँ से स्याह (हतप्रभ) हो जाता है, भी झुका लेते है। धनपाल ने ऐसे ही ईर्ष्यालु साहित्यकार एव समालोचक की उपमा एक वेईमान सुनार से देकर अपनी इस सार्वभौम अनुभूति की अभिव्यजना करने मे अद्‌भुत सफलता प्राप्त की है। क्योकि सुनार भी किसी दूसरे के यहाँ से खरीदे हुए असली सोने को भी असली वताने मे काफी आनाकानी करता है। कसौटी पर कसने के वाद भी अपने धूमिल मुँह और आँखो को नीचा करके उसे वार-वार देखता है। उसमे किसी न किसी की मिलावट ढूंढने की कोशिश करता है। जब वह अपनी इस कोशिश मे नाकामयाव हो जाता है तव कही दवी जवान से थोड़ी तारीफ कर दिया करता है।

अब आप ही बताईये कि इस छोटे से अनुष्टुप् छन्द में भी उपमा का सहारा लेकर क्या धनपाल ने समाज के एक अति महत्त्वपूर्ण रहस्य का उद्घाटन नही किया है ? मै तो समझता हूँ कि आपका उत्तर निषेधात्मक नही होगा। मेरी तो यहाँ तक आस्था है कि धनपाल की उपमाओ की उपमा 'सतसैया के दोहरो' से दी जानी चाहिए, क्योंकि ये भी अनुभूतियो के गहरे घावो को ताजा कर दिया करती है।

लीजिए, कुछ और भी नमूने पेश किये देता हूँ। दुरूह गद्यकाव्य की उद्वेजकता प्रकट करते हुए यह लिखते है—

अ डदण्डकारण्यभाजः प्रचुरवर्णकात्।
व्याघ्रादिव भयाघ्रातो गद्याद् व्या ते जनः॥

—तिलकमञ्जरी, प्रस्तावना भाग, श्लोक १५

उपमा सम्राट् कालिदास की प्रशसा मे उपमा का ही सहारा लेते हुए वह अपनी बात बडे ही प्यारे ढँग से कह जाते है—

ययन्ति सकलाः कालिदासेनासन्नवर्तिना।
गिरः कवीनां दीपेन मालतीकलिका इव॥

—तिलकमञ्जरी, प्रस्तावना भाग, श्लोक २५

उपमालकार को गढने के लिये कभी-कभी वह श्लेष की भी मदद ले लिया करते है। लेकिन उनकी इस प्रकार की श्लेषगर्भा उपमाएँ कलमी आम के समान होती बहुत ही मजेदार है। नमूने के तौर पर नीचे लिखे हुए उद्धरणो को आप देख भी सकते है—

कादम्बरीसहोदर्या सुधया वैबुधे हृदि।
हर्षाख्यायिकया ख्यातिं बाणोऽब्धिरिव लब्धवान्॥
माघेन विघ्नितोत्साहा नोत्सहन्ते पदक्रमे।
स्मरन्ति भारवेरेव कवयः कपयो यथा॥

—तिलकमञ्जरी, प्रस्तावना भाग, श्लोक २७-२८

हरिवाहन की खोज मे पहाडो पर भटकते हुए समरकेतु के वर्णन मे धनपाल ने उपमाओ की जो झडी लगाई है वह भी कम दर्शनीय नही है—

अनेन क्रमेण·· ··यावकरसस्येव वारवार लङ्घितमहिलाधरस्य,······कदाचिदुत्तमप्रकृतेरिव महाजनपदानुसारिण, कदाचिन्महामुनेरिव फलमूलकन्दै कल्पिताभ्यवहारस्य,······कदाचिदद्रेरिव शीतलै प्रस्रवणवारिभि स्वय धौतपादस्य,·· ···मासा षडतिजग्मु।[४३]

अदृष्टपार सरोवर के वर्णन मे भी उनकी प्रसन्नश्लेषगर्भा उपमाओ को देखकर तबीयत खुश हो जाती है—

सौमित्रचरितमिव विस्तारितोर्मिलास्यम्, विलासिनीगमनमिव कलहसकलापकृतक्षोभम्,··· ··गगनमिव मकरमिथुनाध्यासितम्, दिनकरमिवानेकपत्त्ररथचक्राक्रन्दमुखरिताम्बरम्· ···सरो दृष्टवान्।[४४]

अब लीजिए, उनकी 'मालोपमा' का भी चमत्कार देखिये—

शुष्कशिखरिणि कल्पशाखीव, निधिरधनग्राम इव,
कमलखण्ड इव मारवेऽध्वनि ।
भवभीमारण्य इह, वीक्षितोऽसि मुनिनाथ ! कथमपि ।।[४५]

यहाँ उपमेयभूत एक ही जिनेन्द्र भगवान् की कल्पवृक्ष, दौलत और कमलवन रूप अनेक उपमानो से उपमा दी गई है। इस प्रकार हम देखते है कि धनपाल ने उपमालकार को भी बडी खूबसूरती के साथ गढ कर तैयार किया है।

रूपकालंकार

(तद् रूपकमभेदो य उपमानोपमेययो —काव्यप्रकाश)

धनपाल रूपक बाँधने मे भी माहिर नजर आते है। पर उन्होने अपनी इस कला का प्रयोग कम किया है, और जहाँ कही किया भी है वहाँ बस एक या दो तथ्यो का रूपक बाँध कर झट से आगे बढ गये है। उनके रूपको के कुछ नमूने आपको दिखा रहा हूँ—

सत्यं बृहत्कथाम्भोधेर्बिन्दुमादाय संस्कृताः ।
तेनेतरकथाकन्थाः प्रतिभान्ति तद :।।

तिलकमञ्जरी, प्रस्तावना श्लोक २१

इस श्लोक मे गुणाढ्य कवि की लिखी हुई बृहत्कथा पर समुद्र का आरोप किया गया है; और उसमे से अन्य कवियो द्वारा लिये हुए कथानको पर बूँद का आरोप किया गया है। साथ ही साथ उन कथानको के आधार पर बनी हुई अन्य रचनाओ पर कन्था (गुदडी) का आरोप कर दिया गया है।

मेरे विचार से यहाँ के इस रूपक का अन्तिम रूप बुद्धिग्राह्य नही है। क्योकि कथानक को बूंद का रूप देकर उससे बनने वाली काव्यरचना को कन्था (कथरी या गुदडी) कहना सगत नही है। कारण स्पष्ट है कि बूँद का विस्तार धारा की आकृति तो ले सकता है, पर कन्था की नही।

हाँ, पानी भरने के लिए समुद्र के ऊपर आसमान से उतरते हुए और पानी भर लेने के पश्चात् आसमान की ही ओर उठते हुए बादलो की कतार पर, कुएँ मे चलती हुई रेहट के, कुएँ के जल की सतह की ओर जाते हुए खाली घडो की कतार का, और वहाँ से जल भर लेने के पश्चात् कुएँ के घाट की ओर उठते हुए भरे घडो की कतार का जो आरोप किया है वह अवश्य ही बहुत प्यारा है।[४६]

इसी प्रकार सूर्यसारथि अरुण के आकाश से प्रातःकालीन तारामिश्रित अन्धकारापकर्षणरूप व्यापार पर धीवर (कैवर्त) की तालाब से मछलियो से भरे हुए जाल के समेटने की क्रिया का बडा ही सुन्दर आरोप किया गया है। उक्ति इस प्रकार है—

.. ..,
... ...।

अन्तर्विस्फुरितोरुतारकतिमिस्तोमं नभःपल्वलात्,
ध्वान्तानायमयं च धीवर इवानूरुः करैः कर्षति ।।

—तिलकमञ्जरी, पृ० २३८

है तो यहाँ उपमा भी, पर पाठक के दिल पर हावी रूपक ही हो रहा है।

परिसख्यालकार

(परिसख्या निषिध्यैकमेकस्मिन् वस्तुयन्त्रणम्—कुवलयानन्द)

धनपाल को यह अलकार काफी पसन्द है। अयोध्या, काची तथा मेघवाहन का परिचय देते समय उन्होने इसका अच्छा प्रयोग किया है। उनकी परिसख्याएँ कही शाब्दी है, और कही आर्थी भी। लेकिन आनन्ददायक दोनो ही है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत है—

पहले शाब्दी परिसख्या देखिये—

(क) ······उच्चापशब्द शत्रुसहारे, न वस्तु-विचारे, वृद्धत्यागशीलो विवेकेन, न प्रज्ञोत्सेकेन, गुरुवितीर्णशासनो भक्त्या, न प्रभुशक्त्या, स्वजनपराङ्मुख परभार्यामु, न सपर्यासु, अवनितापहारी पालनेन, न लालनेन, अकृतकारुण्य करचरणे, न शरणे;···।

—तिलकमञ्जरी, मेघवाहनवर्णन, पृ० १३

(ख) ·· यत्र मुग्धता रूपेषु, न सुरतेषु, हरिद्रारागो देहेषु, न स्नेहेषु, बहुवचनप्रयोग पूज्यनामसु, न परप्रयोजनाङ्गीकरणेषु, विभ्रमो रतेषु, न चित्तेषु,···।

—तिलकमञ्जरी, कांचीवर्णन, पृ० २६०

अब आर्थी परिसंख्या देखिये—

(क) ······ ··अलसाभिर्नितम्बभारवहने, तुच्छाभिरुदरे, तरलाभिश्चक्षुषि, कुटिलाभिर्भ्रुवो, अतृप्ताभिरङ्गशोभायाम् उद्धताभिस्तारुण्ये,······।

—तिलकमञ्जरी, अयोध्याकुलवधूवर्णन, पृ० ६

(ख) ······यस्या च वीथीगृहाणा राजपथातिक्रम, दोलाक्रीडासु दिगन्तरयात्रा, कुमुदखण्डानाम् राज्ञा सर्वस्वापहरणम्, अनङ्गमार्गणाना मर्मघट्टव्यसनम् वैष्णवानाम् कृष्णवर्त्मनि प्रवेश, सूर्योपलाना मित्रोदयेन ज्वलनम्,······।

—तिलकमञ्जरी, अयोध्यावर्णन, पृ० १२

धनपाल के परिसख्यालकार की चमत्कारिणी अभिव्यजना को प्रकट करने के लिए ऊपर दिए गए चार उदाहरण काफी है।

विरोधाभास

(आभासत्वे विरोधस्य विरोधाभास इष्यते—कुवलयानन्द)

धनपाल ने प्रयोग विरोधाभास का भी किया है, पर किया काफी सोच-समझकर है, ताकि वह पाठको के लिए समस्या न बन सके। देखने मे आया है कि इनके विरोधाभास, एकाध को छोडकर प्राय सरल एव सुबोध ही है। इन्होने सरलता और सुबोधता को कायम रखने के लिए किसी भी स्थल पर विरोधाभासो की झडी नही लगाई है। फलस्वरूप विरोधाभास अपने आप मे एक बौद्धिक व्यायाम होने के बावजूद भी इनके नियन्त्रण मे रहकर कही भी नीरस एव उद्वेजक नही हो पाया है। कुछ नमूने इस प्रकार है—

आसीद् द्विजन्माखिलमध्यदेशप्रकाशसांकाश्यनिवेशजन्मा ।
अलब्धदेवर्षिरिति प्रसिद्धिं यो दानवर्षित्वविभूषितोऽपि ॥
—तिलकमञ्जरी, प्रस्तावना श्लोक ५१

यहाँ 'दानवर्षित्व' से युक्त होने के बावजूद भी 'देवर्षि' के रूप मे जो प्रसिद्ध होना बताया गया है वह विरुद्ध प्रतीत होता है। क्योकि जो दानवो मे ऋषि होगा वह देवताओ मे ऋषि कैसे हो सकता है? लेकिन जब हम 'दानवर्षित्व' शब्द को 'दान की वर्षा करने वाले' अर्थ को द्योतित करने वाले 'दानवर्षी' शब्द की त्वप्रत्ययान्त भाववाचक सख्या के रूप मे देखते है तो विरोध फौरन गायब हो जाता है और एक अच्छा-खासा चमत्कार पैदा हो जाता है।

इसी प्रकार मदिरावती वर्णन प्रसग मे—'······निरपत्यापि सततमुत्सङ्गेन लालितापत्या[४७]', विद्याधरमुनि के वर्णन प्रसग मे—'···निष्परिग्रहमपि सकलत्रम्[४८]', समुद्रवर्णन के प्रसग मे—'चारुकल्लोलमपि कूर्मि[४९]', अदृष्टपारसरोवर के वर्णन मे—'······मद्गुरुतरुचितमपि नमद्गुरुतरुचितम्, वकैरवभासितमपि नवकैरवभासितम्[५०]' आदि प्रयोग भी उनके विरोधाभासो की रमणीयता को प्रकट करते हुए नजर आते है।

अनुप्रासालकार

(अनुप्रास शब्दसाम्य वैषम्येऽपि स्वरस्य यत् विश्वनाथ)

धनपाल ने अपनी तिलकमञ्जरीकथा मे जहाँ कही भी शब्दो की शय्या विछानी चाही है, अनुप्रासालङ्कार विना बुलाए टेलीफोन की घण्टी की तरह वही आ धमका है। मैं समझता हूँ कि यहाँ उसके दो-तीन ही नमूने काफी होगे—

(क) आरम्भ मे अपना परिचय देते धनपाल अपने पिता सर्वदेव का वर्णन करते हुए लिखते हैं—

··· ··तस्यात्मजन्मा समभून्महात्मा······।[५१]

(ख) सुवेलगिरि की चोटियो का वर्णन करते हुए वह लिखते है—

······कलहायमानमत्तपिककुलालापवाचालविकचचूतमालेषु, परिमलमिलित-मधुकरीनिकरान्धकारितकोरकितसरससहकारेषु, रत्नाविलसमुद्रशैवलप्रवालजटिलित-राजतालीमूलजटाजालकेषु······।[५२]

(ग) तिलकमञ्जरी की भ्रमण सीमाएँ बताते हुए उन्होने लिखा है—

······कदाचिद् दक्षिणार्णवतरङ्गताडिततरुणताडीतरुषु, सम्भोगलालसभुजङ्ग-ललनासततसकुलतमाललवलीलतागुल्मेषु मलयतटवनेषु विचरति, कदाचिदासक्तकन-काम्बुजरजोराजिपिंजरपलायमानकलहसकुलेषु मानससर सलिलेषु कूलासीनसकुतूहल-कुबेरकुलकुमारावलोकिता मज्जनकेलिमनुभवति ·· ·।[५३]

मेरी धारणा है कि उपर्युक्त उद्धरणो से धनपाल की अनुप्रासप्रियता पर प्रत्येक सहृदय को विश्वास उत्पन्न हो जाएगा।

तिलकमञ्जरीकथा मे उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, परिसख्या, विरोधाभास और

अनुप्रास—इन छ अलङ्कारो के अलावा भी श्लेष, काव्यलिङ्ग, तुल्ययोगिता, व्यतिरेक, समासोक्ति, सन्देह, भ्रान्तिमान् आदि अन्य अच्छे-अच्छे अलङ्कारो का भी रसोत्कर्षाधायक प्रयोग हुआ है। यहाँ उन सबके नमूने देकर मै अपने शोध-प्रबन्ध को मोटा नही बनाना चाहता। पर इतना अवश्य कहूँगा कि वे सभी अलङ्कार सुनियोजित है, और प्रकृत रस की निष्पत्ति कराने मे पूरा-पूरा सहयोग करते है।

तिलकमञ्जरीकथा के प ों में न्दोविधान

धनपाल ने अपनी तिलकमञ्जरीकथा को अधिक प्रभावशालिनी बनाने के लिए स्थान-स्थान पर पद्यो का भी सहारा लिया है। इनकी सख्या ९८ है। उनके इन पद्यो से तिलकमञ्जरीकथा उसी प्रकार अधिक चित्ताकर्षक बन गई है जिस प्रकार बीच-बीच मे गुँथे हुए चमेली के फूलो से कुन्द के फूलो की माला अधिक मनोरम हो जाया करती है।

गद्यकाव्यकारो की परम्परा के अनुसार उन्होने भी कथा की प्रस्तावना पद्यो मे ही की है। प्रस्तावना के ये पद्य सख्या मे ५३ होते है। इनमे पथ्या नामक भेद विशेष से युक्त अनुष्टुप् छन्द की बहुलता पाई जाती है जो सस्कृत साहित्य के कथाकार के लिए निहायत ही स्वाभाविक है।[५४] बाकी बचे हुए ४५ पद्य कथाभाग मे यत्र-तत्र चार-चाँद लगाते हुए नजर आते है।

धनपाल के इन सभी पद्यो के परिशीलन से विदित हुआ है कि उन्होने अपने इस कथाकाव्य (उपन्यास) मे कुल मिलाकर पन्द्रह प्रकार के छन्दो का प्रयोग किया है, जिनके नाम इस प्रकार है—अनुष्टुप्, शार्दूलविक्रीडित, शिखरिणी, वसन्ततिलका, मन्दाक्रान्ता, आर्या, उपजाति, स्रग्धरा, द्विपदिका, मात्रा, वदनक, अपरवक्त्र, हरिणी, प्रहर्षिणी और मालिनी। इनमे शुद्ध अनुष्टुप् का एक वार, मविपुला, भविपुला, नविपुला और अनुष्टुप् का तीन-तीन वार, पथ्यानुष्टुप् का २७ वार, शार्दूलविक्रीडित का २९ वार, शिखरिणी का ६ वार, वसन्ततिलका का पाँच वार, मन्दाक्रान्ता और आर्या का चार-चार वार, उपजाति और स्रग्धरा का तीन-तीन तथा द्विपदिका, मात्रा, वन्दक, अपरवक्त्र, हरिणी, प्रहर्षिणी और मालिनी नामक छन्दो का केवल एक-एक वार प्रयोग हुआ है। इसे देखते हुए लगता है कि धनपाल का झुकाव अनुष्टुप् और शार्दूलविक्रीडित छन्दो की ओर अधिक था। इनके शार्दूलविक्रीडित छन्द की प्रभावोत्पादकता एव ध्वन्यात्मकता देखते हुए तो यहाँ तक कहा जा सकता है कि यह छन्द उनका प्रिय एव सिद्ध छन्द है।

धनपाल की छन्दोयोजना स्वच्छन्द है। वह किसी भावविशेष किंवा दृश्यविशेष की ही अभिव्यजना के दायरे मे कैद नही हुई है। उसे धनपाल की प्रतिभा का साथ मिला था। अत उसकी लपेट मे जो भी भाव या जो भी दृश्य आया उसे ही उसने चमका दिया।

छन्द तो कानो को प्यारा लगने वाला एक सगीत है, एक साज है, एक सुरीली और मधी हुई आवाज है। अगर वह स्वय मे सही हो तो किसी भी प्रतिपाद्य अर्थ की अभिव्यजना मे कोई रुकावट आ ही नही सकती। शुद्ध इत्र की खुशबू को भला कौन रोक सकता है? छन्दोयोजना कोई मेकअप तो नही है जो निश्चित अग को ही सुशोभित

करे। हमारे धनपाल का छन्दोविधान कुछ ऐसा ही विलक्षण है। वह स्वच्छन्द होने के बावजूद भी भावो की अभिव्यक्ति करने मे सर्वथा समर्थ है। उनके कुछ प्रमुख छन्दो के प्रयोग की मीमांसा सक्षेप मे प्रस्तुत कर रहा हूँ—

अनुष्टुप्

श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् ।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययो ।। —श्रुतबोध से।

यह छन्द प्राय: शुरूआत करने के लिए, कथावस्तु के विस्तार या सकोच के लिए, या फिर शान्तिपूर्ण उपदेश देने के लिए अच्छा माना जाता है।[५५] पर धनपाल ने इसके अतिरिक्त प्रतापवर्णन मे भी इस छन्द का सफल प्रयोग कर दिखाया है।[५६]

शार्दूलविक्रीडित

सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ।
—छन्दोमजरी, स्तबक २ से।

इस छन्द के बारे मे कुछ समीक्षको का कहना है कि इसका प्रयोग राजाओ के शौर्यवर्णन मे किया जाना चाहिए।[५७] ठीक है, धनपाल ने भी इन प्रसंगो मे इस छन्द का प्रयोग किया है, और वह सराहनीय भी रहा है।[५८] पर इसके अलावा उन्होने मगलाचरण[५९], प्रकृतिवर्णन[६०], नारी-सौन्दर्यवर्णन[६१] और वियोगवर्णन[६२] मे भी इस छन्द का सफल प्रयोग किया है।

शिखरिणी

रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी।
—छन्दोमजरी, स्तबक २ से।

धनपाल ने एक स्थल पर प्रभातवर्णन के प्रसग मे शिखरिणी का प्रयोग किया है।[६३] उनका यह प्रयोग काफी रोचक एव सगत रहा है। भावो की गम्भीरता एव सम्प्रेषणीयता के लिए यह छन्द अतीव उपयोगी माना गया है। धनपाल ने इस मर्म को परखकर ही इसका प्रयोग किया है। उनकी शिखरिणी को पढकर पाठक को भवभूति की शिखरिणी की याद आए बिना नही रह सकती।

वसन्ततिलका

उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।
—वृत्तरत्नाकर, अध्याय ३ से।

वसन्ततिलका के प्रयोग मे धनपाल की कोई निश्चित धारणा नही है। उन्होने इसका प्रयोग नगरीवर्णन[६४] एव शौर्यवर्णन[६५] मे ही नही, बल्कि मगलाचरण[६६] और सन्दर्भ योजना[६७] मे भी किया है; और तारीफ की बात तो यह है कि उसे बुरा भी नही कहा जा सकता।

मन्दाक्रान्ता

मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम् ।

—छन्दोमजरी, स्तवक २ से।

कहा जाता है कि मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग वर्षा और विरह वेदना के वर्णन मे अधिक अच्छा रहता है।[६८] कालिदास का मेघदूत इस तथ्य का ज्वलन्त प्रमाण है। पर धनपाल ने इस तथ्य की परवाह नही की; और उन्होने गन्धर्वदत्ता[६९] तथा मलयसुन्दरी[७०] की शारीरिक सुषमा के वर्णन मे भी इस छन्द का प्रयोग कर डाला है। वैसे उनका यह प्रयोग कोई अभिनव प्रयोग नही था। क्योकि सुन्दरियो के सौन्दर्य वर्णन मे मन्दाक्रान्ता छन्द बिल्कुल अस्पृश्य तो कही नही माना गया।

स्रग्धरा

म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् ।

—वृत्तरत्नाकर, तृतीय अध्याय से।

धनपाल ने स्रग्धरा छन्द के प्रयोग मे भी काफी स्वछन्दता वरती है। वैसे इसका प्रयोग ओजस्वी एव उद्धत विषयो की अभिव्यजना मे होता रहा है। लेकिन धनपाल ने इसका प्रयोग काचीनगरी की नारियो के शरीर की उदात्तता के वर्णन मे किया है।[७१] किन्तु इस स्थल पर धनपाल को सफलता नही मिल पाई है। क्योकि यहाँ उनकी शब्द-शय्या मे भी कुछ कठोरता आ गई, जिससे प्रतिपाद्य विषय की कोमलता पर कुछ आघात हो गया है।

उपजाति

(इन्द्रवज्रा + उपेन्द्रवज्रा = उपजाति)

धनपाल ने उपजाति छन्द का प्रयोग तीन बार किया है। एक बार तो गन्धर्वदत्ता के रूपवर्णन मे[७२] और दो बार प्रस्तावना के श्लोको मे।[७३] उनके उपजाति छन्द के ये तीनो ही प्रयोग भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से अच्छे कहे जा सकते है।

आर्या

यस्याः पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि ।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पंचदश सार्या ॥ —श्रुतबोध से।

धनपाल ने आर्या छन्द का प्रयोग कुल मिलाकर चार बार किया है।[७४] लेकिन उनके वे चारो ही प्रयोग बडे ही भावाभिव्यजक है। इनकी आर्याओ की खास विशेषता यह है कि उनमे प्रतिपाद्य विपय की अभिव्यजना घण्टे की गूँज की तरह पाठक के मन मे काफी देर तक गूँजती रहती है।

उपर्युक्त छन्दो के अतिरिक्त मालिनी, अपरवक्र, प्रहर्षिणी, मात्रा, वदनक, द्विपदिका और हरिणी छन्दो का भी एक-एक बार प्रयोग करके धनपाल ने अपनी विविध

छन्दोविधाननैपुणी का सकेत दे दिया है।[७५]

इनके 'मात्रा' छन्द[७६] और 'वदनक' छन्द[७७] के प्रयोगो को देखकर लगता है कि इन्हे अपभ्रशभाषा के भी छन्दो की अच्छी जानकारी थी। सस्कृत भाषा मे इन छन्दो का सफल एव सरस प्रयोग करके इन्होने सस्कृत के साहित्यकारो को अन्य भाषाओ की अच्छाइयो को अपनाने की दिशा दिखा दी है। छन्दोमर्मज्ञ आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने मात्रा छन्द के उदाहरण के रूप मे इनके 'शुष्कशिखरिणि···' पद्य को उद्धृत करके इनके छन्दो की विद्वज्जनप्रियता को सिद्ध कर ही दिया है।[७८]

इस प्रकार हम देखते है कि धनपाल ने अपने छन्दोविधान मे स्वछदता का दामन थामते हुए भी पर्याप्त सफलता प्राप्त कर ली है। उनकी विविध एव सफल छन्दोयोजना को देखते हुए यह भी कहा जा सकता है कि वह पद्यात्मक महाकाव्य की भी सर्जना करने मे सफल हो सकते थे।

उपन्यासों मे सवाद

सम्वाद शब्द का तात्पर्य कथोपकथन है जिसे अग्रेजी पढे लिखे लोग 'डायलाग' कहा करते है। नाटको मे तो इसका बोलबाला रहता ही है, पर उपन्यासो मे भी यह कम महत्त्वपूर्ण नही माना जाता। पाश्चात्य समालोचक श्री हडसन ने सुव्यवस्थित सवादो को उपन्यास के आनन्ददायक तत्त्वो मे गिना है।[७९]

मुझे लगता है कि उपन्यास मे सम्वादो का वही महत्त्व है जो कमरे मे खिडकियो और झरोखो का होता है। जिस प्रकार खिडकियो और झरोखो के न होने से कमरे मे शुद्ध वायु और प्राकृतिक प्रकाश का अभाव रहता है, जिससे उसमे बैठने वाले का दम थोडी ही देर मे घुटने-सा लगता है ठीक उसी प्रकार सम्वादो के न होने से उपन्यास मे भी रोचकता का अभाव रहता है। फलस्वरूप ऐसे उपन्यास को पढने से पाठक का मन कुछ उखडने-सा लगता है। कहना न होगा कि नाटको की अधिक लोकप्रियता मे इन सम्वादो का ही विशेष हाथ हुआ करता है।

इसमे कोई सन्देह नही है कि सम्वादो की सयोजना से उपन्यास के पात्रो के कार्य-कलापो मे सजीवता एव स्वाभाविकता आ जाती है। पात्रो की व्यक्तिगत चारित्रिक विशेषताओ का आभास उनके वार्तालाप या स्वगत भाषण किवा चिन्तन से ही मिल पाता है। क्योकि ऐसे स्थलो पर पात्र और पाठक के बीच से लेखक अपने को कुछ हटा सा लेता है। फलस्वरूप पात्र खूब खुलकर बात करता है। उस समय पाठक की निगाह भी सीधी पात्र की ही ओर रहती है, जिससे वह पात्र की व्यक्तिगत मनोभूमि मे कुछ परिचित भी हो जाता है।

इतना ही नही बल्कि कथावस्तु की गतिशीलता भी बहुत कुछ इन सम्वादो या कथोपकथनो पर ही निर्भर करती है। सवादो एक ऐसा तत्त्व है जिसमें पाठको का मन चिपक-सा जाता है और जिज्ञासा की नदी मे बहने-सा लगता है। कभी-कभी तो इन सवादो की ही तराइयो मे लेखक की विचारधारा का भी स्रोत बहता हुआ नजर आने लगता है। पर यह स्थिति लेखक के लिए होती बड़ी नाजुक (रिस्की) है। क्योकि ऐसे

स्थल पर पाठक के 'बोर' होने की भी काफी सम्भावना रहती है।

इस प्रकार हम देखते है कि उपन्यास मे पात्र, पाठक, कथावस्तु और लेखक—सभी की दृष्टि से सवादो का अतीव महत्त्वपूर्ण स्थान है।

सवादों के गुण

सवादो को इतना महत्त्व उनकी जिन विशेषताओ के कारण मिलता है उनके नाम हैं—उपयुक्तता, सजीवता, स्वाभाविकता, सक्षिप्तता, सार्थकता, सरलता और नाटकीयता। इन गुणो के अभाव मे अच्छे से अच्छे उपन्यासो के भी सवाद रेशम की रजाई मे लगी हुई 'टाट' की थिगली के समान बेहूदे और उद्वेजक लगने लगते है। इसलिए हर समझदार उपन्यासकार सवादो की योजना मे काफी जागरूक रहता है।

तिलकमञ्जरीकथा मे सवाद

देखा गया है कि सस्कृत के प्राचीन गद्यकाव्यकार अपनी भाषा को लच्छेदार और अलकृत करने के लोभ मे सवादतत्त्व की काफी उपेक्षा करते रहे है। जहाँ कही उन्होने अपनी कृतियो मे सम्वादों की सर्जना की भी है, तो वहाँ उन्होने उसे कथावस्तु के वर्णनात्मक अनुच्छेद मे ही कुछ इस प्रकार घुला मिला दिया है कि सम्वाद की जो स्वतत्र आभा हुआ करती है वह बिलकुल धूमिल पड गई है।

यद्यपि हमारे आलोच्य महाकवि धनपाल भी इस कमी से नही बच पाए है, तथापि उनकी तिलकमञ्जरीकथा मे मुझे एकाध स्थल ऐसा भी मिला है, जहाँ सम्वाद की झाँकी मन को मोहती हुई सी नजर आती है। वह स्थल मार्मिक भी है। विद्याधरराज विचित्रवीर्य को नगर-विप्लव मे खोई हुई लगभग दस वर्षीया अपनी पुत्री गन्धर्वदत्ता की तलाश है। इस तलाश मे करीब तेईस-चौबीस वर्ष बीत जाते है। एक बार कार्त्तिक के महीने की पूनम की रात मे वह दक्षिणी समुद्र के पचशैल नामक टापू पर अवस्थित जिनेन्द्र भगवान् महावीरस्वामी के मन्दिर मे मङ्गलाभिषेक का आयोजन बडी धूमधाम से करता है। इस आयोजन मे लालित्य लाने के लिए वह अपने सेवक पवनगति द्वारा अङ्ग, बङ्ग, कलिङ्ग, काची आदि देशो की राजकुमारियो को जो उस समय अपने-अपने महलो मे सो रही होती हैं, मन्त्रविद्या के प्रभाव से उठवा मगाता है। इनमे मलयसुन्दरी भी होती है। अभिषेक और गीत के बाद जब नृत्य शुरू होता है तो मलयसुन्दरी की अद्भुत नृत्यकला के कौशल से वह बहुत ही खुश होता है, और आयोजन के समाप्त होते ही वह उसे अपने पास बिठाकर उससे वात्सल्य और बुजुर्गियत से भरी हुई जो बातचीत करता है वह निश्चित ही उत्तम सवाद की कोटि मे आती है। लीजिए, धनपाल के ही शब्दो मे देखिए—

"वत्से ! मलयसुन्दरि ! दूरमावर्जितानि त्वया सामाजिकमनासि। कथय कुतस्तवेदृशस्यास्य विद्याधरलोकेऽपि अतिविरलप्रचारस्य सकलखेचरचमत्कारकारिणो नाट्यवेदस्याधिगति ?......।"

"............... ...."

पुत्रि ! जनकनिर्विशेषे मयि किमिय त्रपा ? स्वकीयं तव स्थानमिदम्, अशङ्किता व्याहर।"

"तात ! नैक कश्चिदुपदेष्टा नाट्यविद्यायां ममाभूत्, य विज्ञापयामि।···मम पित्रा पृथिव्यामपि ये केचिदुपलब्धा ····· ते समस्ता अप्युपसगृहीताः।······ये पुनरिहातिरमणीबतया विशेषत प्रतिपन्नास्तातेन, ते मया नृत्यन्तीमम्बामवलोकयन्त्या पृच्छन्त्या च तामनवरतमवगता।"

"वत्से ! तयापि ते कुतो विज्ञाता ?"

"तात ! विद्याधरलोके क्वचिद्।"

"वत्से किमभिधाना तव जनयित्री ?"

"तात ! गन्धर्वदत्ता नाम।"

"··· ··· ··· ··· ··· ··· ···"

"··· ··· ··· ··· ·· ··· ···"

"वत्से ! अपि ध्रियते तव सवित्री ?"

तात ! सर्वान्ति पुरपरीता शुद्धान्तसौधशिखरात् पुरजनप्रवर्तित कौमुदीमहोत्सवमवलोकयन्ती निरामयशरीरा सप्रत्येव मुक्ता मया।"

कियत् प्रमाणम् ? कीदृशो वर्णविशेष ? कियती वयोऽवस्था ? किमनुकारिणी च शरीराकृतिरस्या ?"

"तात ! प्रमाणतो नातिह्रस्वा न चात्यायता, वर्णेन विकचचम्पकावदाता, वयसापि यादृग् मयि प्रथमगर्भसम्भवाया सम्भवति तादृशेनोपेता, रूपेण तु······देवस्यैव किञ्चिदनुकरोति।"

"··· ··· ··· ··· ··· ·· ·· "

"वत्से ! कस्तस्या पिता ?"

तात ! तापसः कश्चिद्।"

"··· ··· ··· ·· ··· ··· ···"

"··· ··· ··· ··· ··· ··· ···"

"वत्से ! दृष्टस्त्वया स तापस ?"

तात ! न क्वचिद् दृष्ट , जनप्रवादादवगत ।"

वत्से ! त्वज्जननी किमाचष्टे ?

"न किञ्चिदाचष्टे, प्राक्तन निजवृत्तान्त केवल पृष्टा कथाप्रसगेषु सखीभि अधोमुखी मुक्तदीर्घनि श्वासा नि शब्दमविरताश्रुबिन्दुर्दर्शितदुर्दिना रोदिति।"

"··· ··· ··· ·· ··· ··· ···"

"··· ··· ··· ··· ··· ···"

"वत्से ! यदि न किञ्चित् कथयति, ततो विद्याधरलोके नाट्यप्रयोगास्त्वया अधिगता इति त्वया कुतो विज्ञातम् ?"

"तात ! विज्ञापयामि,·········।"[८०]

सवादयोजना की दृष्टि से तिलकमञ्जरीकथा का यही एक ऐसा स्थल है जहाँ

धनपाल को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। उसकी यह सवादयोजना हिन्दी के सफल उपन्यासकार आचार्य चतुरसेन की सवादयोजना की याद ताजी किए बिना नही रहती। आश्चर्य तो इस बात का है कि सस्कृत के उस पुराने वर्णनात्मक युग मे भी धनपाल ने अपनी कथाकृति मे इतनी सजीव सवादयोजना की सर्जना कर डाली।

हालाँकि इसके अतिरिक्त धनपाल ने सवादो की कुछ और भी सयोजनाएँ की है, जिनमे मेघवाहन और विद्याधरमुनि सवाद, मेघवाहन और वेताल सवाद, मेघवाहन और लक्ष्मी सवाद, वज्रायुध और समरकेतु सवाद, तारक और प्रियदर्शना सवाद, समरकेतु और तारक सवाद, हरिवाहन और गन्धर्वक सवाद, समरकेतु और गन्धर्वक सवाद तथा यक्ष और गन्धर्वक सवाद प्रमुख है। किन्तु इन सवादो मे ऐसा एक भी सवाद नही है जिसमे उपर्युक्त सवाद जैसी सजीवता और चुस्ती दिखाई दे सके। क्योकि ये सभी सवाद लम्बे-लम्बे अनेक वाक्यो से बोझिल हो गए है, और इनमे कोई बोलने वाला जब बोलना शुरू करता है तो बस बोलता ही चला जाता है, सुनने वाले का ध्यान ही नही रखता है। ऐसा लगता है जैसे कि वह अपने मन की सारी बाते एक ही साँस मे कह देना चाहता है। इन सवादो मे भाषा भी अलकारो के भार से दबी हुई सी नजर आती है। अनेक पात्र तो बातचीत के सिलसिले मे या तो आत्मकथा शुरू कर देते है या फिर उपदेश जैसा देने लगते है, जिससे न केवल सवादीय शैली ही कोशो दूर हटी है, बल्कि सवाद के आवश्यक तत्त्व—स्वाभाविकता, सार्थकता और नाटकीयता—भी लुप्त हो गए है।

तिलकमञ्जरीकथा के उपेक्षित सवाद

धनपाल ने कुछ महत्त्वपूर्ण एव रोचक सवादो की उपेक्षा भी की है। उन्हे चाहिए था कि वह सन्तान की प्राप्ति के लिए तरसते हुए मेघवाहन और मदिरावती की बातचीत को प्रत्यक्ष रूप से सवादात्मक शैली मे प्रस्तुत करते[८१], पर ऐसा उन्होने नही किया। ज्वलनप्रभ के साथ मेघवाहन की खुलकर बात होने देते, पर नही होने दी।

वह प्रथम साक्षात्कार के अवसर पर समरकेतु और मेघवाहन की भी बातचीत करा सकते थे, पर नही कराई।[८२] इसी प्रकार जब हरिवाहन की खोज मे भटकते हुए समरकेतु की भेट प्राग्ज्योतिषेश्वर के छोटे भाई मित्रधर से हुई थी तो उस समय भी उन दोनो के वार्तालाप का विवरण उन्ही दोनो के शब्दो मे दिया जा सकता था, पर दिया नही गया।[८३] उन्होने तो नायक (हरिवाहन) और नायिका (तिलकमञ्जरी) मे भी कोई प्रत्यक्ष बातचीत नही कराई। इतने ही नही, बल्कि कुछ और भी स्थल है जहाँ सवादो की सर्जना से कथा मे अधिक जान आ सकती थी। काश ! धनपाल ने उनकी ओर ध्यान दिया होता।

तिलकमञ्जरीकथा मे अन्तर्द्वन्द्व

कभी-कभार ऐसी भी स्थिति आ जाया करती है कि आदमी यह सोचने के लिए मजबूर हो जाता है कि उसे क्या करना चाहिए और क्या नही करना चाहिए ? साथ ही साथ कभी किसी किए हुए कार्यविशेष की असफलता भी उसे विचारशृङ्खला मे जकड

लिया करती है। ऐसे अवसरो पर वह विचारो के तूफान मे बुरी तरह फँस जाता है। उसकी यह वैचारिक उलझन ही समालोचको की भाषा मे 'अन्तर्द्वन्द्व' कहलाती है।

धनपाल की तिलकमञ्जरीकथा के चारो ही प्रमुख पात्र (हरिवाहन-तिलकमञ्जरी और समरकेतु-मलयसुन्दरी) विषय परिस्थितियो के शिकार बने है। अप्रत्याशित मिलन और वियोग के घात-प्रतिघातो ने उन्हे काफी झकझोरा है। इसलिए उनमे अन्तर्द्वन्द्व का पाया जाना स्वाभाविक ही है। स्पष्ट है कि गीतध्वनि के उद्गम स्थान की खोज मे असफलता मिलने पर समरकेतु की मनोभूमि ग्लानिसूचक विचारो के घेरे मे बुरी तरह से जा फसी है।[८४] इसी प्रकार जब समुद्र मे नाव पर बैठे हुए युवराज समरकेतु को देखकर मलयसुन्दरी के क्वाँरे दिल की घण्टियाँ बज उठती है और उसी समय तारक आकर उसे समरकेतु की प्रणयिनी बनने की प्रार्थना करता है तो उसके मस्तिष्क मे वैचारिक सघर्ष का तूफान उठ खडा होता है। एक ओर तो उसका दिल समरकेतु को अपना बनाने के लिए तडफ उठता है; दूसरी ओर उसकी बुद्धि माता-पिता की मर्यादा की दुहाई देने लगती है, और रहा समरकेतु का प्यार, सो तो उसे अपनी ओर खीचता ही है। इतना ही नही, बल्कि समरकेतु के प्रेम की दृढ़ता का आभास पाकर उसे उसके प्राणो की भी चिन्ता हो उठती है। ऐसी परिस्थिति मे वह बहुत बडी मानसिक उलझन मे पड जाता है। धनपाल ने उसकी इस उलझन का बडा ही स्वाभाविक वर्णन किया है।[८५]

मलयसुन्दरी के मन मे उस समय भी अन्तर्द्वन्द्व जाग उठता है, जब उसके पिता कुसुमशेखर विजयप्राप्ति से निराश होकर युद्ध रोकने के लिए अपने शत्रु वज्रायुध के साथ उसका विवाह करने को तैयार हो जाते है।[८६]

तिलकमञ्जरी के चित्र को देखकर जब हरिवाहन उसे पा सकने और न पा सकने के दो-राहे पर अपने आप को खड़ा पाता है तो उस समय का उसका भी अन्तर्द्वन्द्व काफी स्वाभाविक एव उल्लेखनीय है।[८७]

अन्तर्द्वन्द्व की स्वाभाविक सयोजना का एक उदाहरण उस समय भी मिलता है जब हरिवाहन हाथी के साथ आकाश से अदृष्टपार सरोवर मे गिरकर उससे निकलता है। उस समय वह, कुछ आश्वस्त होने पर, सोचने के लिए मजबूर हो जाता है। धनपाल ने उस समय के लिए सहज मनोभावो का बडा ही सजीव चित्रण किया है।[८८]

बडे खेद के साथ लिखना पड रहा है कि तिलकमञ्जरी, जो इस गद्यकाव्य की नायिका है, के अन्तर्द्वन्द्व का निरूपण करने मे धनपाल को कोई उल्लेखनीय सफलता नही मिल सकी है।

तिलकमञ्जरीकथा मे वाग्वदग्ध्य

उचितैरेव वचनैः काव्यमायाति चारुताम्।
अदैन्यधन्यमनसां वदनं विदुषामिव ॥

—क्षेमेन्द्रकृत औचित्यविचारचर्चा से।

सच मानिए, कुछ लोग ऐसे भी होते है जिनकी बाते सुनकर चेहरे की शिकन और मन की थकान जाती रहती है। ऐसे लोग बडे प्यारे लगते है। उनकी बातचीत मे

एक विलक्षण शालीनता होती है, सरसता होती है, और साथ ही साथ विद्वत्ता भी होती है। ऐसे व्यक्तियो को समालोचको की दुनियाँ मे वाग्विदग्ध कहा जाता है; और उनके उस वार्त्तालाप के कौशल को वाग्वैदग्ध्य।

हमे धनपाल की तिलकमञ्जरीकथा मे भी कुछ ऐसे पात्र मिले हैं जो वाग्विदग्ध है। उनकी वाणी वैदुष्य एव लालित्य से परिपूर्ण है। उनकी बातचीत का ढग भी बडा ही प्यारा है, और शिष्टता तो उनमे कूट-कूटकर भरी हुई है। यही कारण है कि पाठको का दिल उनकी ओर हठात् आकृष्ट होता है। कुछ उदाहरण आपके सामने प्रस्तुत कर रहा हूँ—

(क) विद्याधरमुनि के साथ बातचीत करते समय सम्राट् मेघवाहन का वाग्वैदग्ध्य उल्लेखनीय है। वह बडे ही शालीन, शिष्ट और साहित्यिक शब्दो मे मुनि का स्वागत करते है।[८६] लक्ष्मी जी से पुत्रप्राप्ति का वरदान माँगते समय भी उनकी वचन-चातुरी प्रशसनीय है। जिस खूबी के साथ उन्होने मदिरावती के गर्भ से अपने पुत्र की उत्पत्ति का वर माँगा है वह सचमुच ही कमाल दर्जे की है। बडो की मर्यादा को रखते हुए बडो से ही अपने दाम्पत्य मे निखार लाने के लिए सहायता करने की प्रार्थना करने का काम सरल नही होता है, क्योकि तमाम लोकलाज सामने आ खडी होती है; पर मेघवाहन ने यह सब कर दिखाया है।[९०]

(ख) वाग्विदग्ध तारक भी है। वह अपनी प्रेमिका की प्रणययाचना को बडे ही मनोरम शब्दो मे स्वीकार करता है।[९१] वह अपने स्वामी समरकेतु की हार्दिक इच्छा से सम्पन्न आज्ञा का भी बडी ही हृदयरजक वाक्ययोजना के साथ पालन करता है।[९२] इसके अतिरिक्त जब वह अपने मालिक समरकेतु के लिए मलयसुन्दरी से प्रणय की भिक्षा माँगता है, उस समय तो उसकी लम्बी-चौड़ी वचनचातुरी बस देखते ही बनती है।[९३]

(ग) धनपाल ने एक स्थान पर मनोरजक कथा को कानो का अमृत और नयन-रजक चित्र को आँखो का अमृत कह कर भी वाणी-वैभव का परिचय दिया है—

……कुमार! युवराजवार्त्ताद्भुतश्रवणेन पीतमतिचिर कर्णामृतम्, इदानीमीक्षणामृत क्षणमेकमास्वाद्यताम्।[९४]

(घ) अयोध्या मे सरयू नदी के किनारे के उपवन मे गन्धर्वक के साथ बातचीत करते समय हरिवाहन का भी वाग्वैदग्ध्य उल्लेखनीय है। तिलकमञ्जरी के चित्र को देखकर अकस्मात् उत्पन्न हुई अपनी प्रेम बेल को सीचने के लिए हरिवाहन ने गन्धर्वक से जिस शालीनता और वचोनिपुणता के साथ निवेदन किया है वह सचमुच ही प्रशसनीय है।[९५] मलयसुन्दरी से भेट होने पर उसका परिचय प्राप्त करने मे भी हरिवाहन ने अपने उत्कृष्ट वाग्वैदग्ध्य का नमूना प्रस्तुत किया है। वह मलयसुन्दरी का नाम और धाम जानने की इच्छा से बडे ही ललित शब्दो मे उससे पूछते है—

"कथय, का त्वम्? कस्मिन्नखिलदोषमुक्ते मुक्तेव देवारण्यवशे वशे समुत्पन्नासि? कानि ते हृदय-दाहज्वरहराणि दिव्यमन्त्रपदानीव नामाक्षराणि क्षरन्ति कर्णयोरमृतम्? केनात्र तव वपुषि देवाङ्गनिवसनार्हे गर्हणापेक्षेण विनिक्षिप्तानि अमूनि

वृक्षाणां वल्कलानि ?·········किं चैप विपमसायकैकाधिवासे नवे वयसि विपयोपभोग-विद्वेप. ?······९६

(ङ) हरिवाहन के उपर्युक्त प्रश्नो का उत्तर देने की भूमिका बाँधती हुई मलय-सुन्दरी भी वाग्वैदग्ध्य मे कम प्रतीत नही होती—

कुमार !···सर्वदा सुखोचितस्य ते न किञ्चिदनेकदु खपरम्पराविरसेन श्रुतेनानेन फलम्। दाय कुतूहलम्, तत. शृणु निवेदयामि, यात्वनेनैव तावद्विनोदेन सर्वदैव दु ख-तप्ताया दिनमिदं मे। त्वमपि भुवनत्रयप्रथितमहामहिमा महामेदिनीपालसूनु. समान-देशावाप्तजन्मा कथञ्चिद् गृहमुपागत' प्राप्नुहि जनात् निष्किञ्चनादपूर्वं तावदिदमेवा-तिथ्यम्।[९७]

(च) मलयसुन्दरी की सहेली वन्धुसुन्दरी भी कम वाग्विदग्धा नही है। मलय-सुन्दरी को आत्महत्या के फदे मे फँसी देखकर उसने जो विलाप किया है वह उसके वाग्वैदग्ध्य की सूचना देता है। हालाँकि इस स्थल की उसकी यह वाग्विदग्धता श्मशान भूमि मे लगाई गई रूप की हाट के समान कुछ अधिक सामयिक नही प्रतीत होती, लेकिन फिर भी मस्तिष्क को आनन्द देने मे वह कृतकृत्य ही है।[९८] उसे जब यह मालूम होता है कि उसकी प्राणप्रिय सहेली मलयसुन्दरी का चितचोर तो वही व्यक्ति है जिसे वह मलय-सुन्दरी को फाँसी के फन्दे से निकालने के लिए चटपट बुला लाई है, तो वह मुस्कराती हुई बडे ही सुललित एव सुमधुर शब्दो मे मलयसुन्दरी और समरकेतु की मीठी चुटकी लेती है।[९९]

हमे खेद है कि हम स्थानाभाव एव विस्तारभय के कारण इन सभी प्रसगो के मौलिक उद्धरण नही दे सके है। पाठको से अनुरोध है कि वे नीचे फुट-नोटो मे एतदर्थ मूलग्रन्थ के सकेतित पृष्ठो का अवलोकन करें। कहना न होगा कि उपर्युक्त प्रसगो के अतिरिक्त और भी ऐसे अनेक प्रसग है, जहाँ पात्रो का वाग्वैदग्ध्य झलक उठा है।

देशकाल का स्वरूप और महत्त्व

साहित्यकार की कथावस्तु या तो पूरी काल्पनिक होती है या फिर उसमे कल्पनाओ का यत्र-तत्र पुट रहता है। कुछ भी हो, पर इतना निश्चित है कि उस कथा-वस्तु को वास्तविकता और रमणीयता के धरातल पर उतारने के लिए यह नितान्त आवश्यक होता है कि उसके देश तथा काल की अनुरूपता पर पर्याप्त ध्यान दिया जाए।

तात्पर्य यह है कि कथावस्तु जिस देशविशेष और जिस कालविशेप से सम्बन्धित हो, उसमे उस देशविशेप का और उस कालविशेप का ऐसा सजीव वर्णन किया जाए कि पाठको के सामने वह देश और वह काल हूबहू चित्रित हो उठे; उनके मन पर उस देश और उस समय की सच्ची छाप पडने लगे, ताकि वे अपने आपको उसी देश और उसी काल मे घूमता हुआ पाएँ। इससे होता यह है कि पात्रो के सुख-दु ख मे पाठको को भी पूरा-पूरा हिस्सा मिल जाता है। अर्थात् उनकी रसास्वाद की प्रक्रिया मे उन्हे कोई बाधा नही होती है; साथ ही साथ उनके मन की पतग को भी सदैव पात्रो के कथासूत्र के साथ ही लहराने का मौका मिलता रहता है।

इस देश और काल मे सजीवता और वास्तविकता लाने के लिए लेखक को चाहिए कि वह कथावस्तु से सम्बन्धित देश का वर्णन करते समय उस देश की भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक, सास्कृतिक और प्रशासनिक परिस्थितियो की उपेक्षा न करे। बल्कि उसे चाहिए कि वह उस देश की इन परिस्थितियो का कुछ इस प्रकार से आवश्यक वर्णन कर दे कि पढने वाले को यह विश्वास हो उठे कि वह सचमुच ही उसी देश की घटना पढ रहा है। इन सब वर्णनो के लिए काल (समय) का भी ध्यान रखना पड़ता है। क्योकि कथावस्तु के समय के विरुद्ध कोई भी वर्णन नही होना चाहिए। भारतवर्ष के पुराने राजा-महाराजाओ की वेशभूषा के वर्णन मे यदि कोट, पेन्ट, टाई और हैट के नाम आ जाएँगे, तो भला कौन-सा ऐसा जरा-सा भी समझदार पाठक होगा जो इस वर्णन को पसन्द करेगा? मैं तो समझता हूँ कि कोई भी नही। इसलिए लेखक को इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए कि उसकी कोई भी बात कथावस्तु के देश और समय के विपरीत न होने पाए। वह जो भी वर्णन करे, उस देश और उस समय को ध्यान मे रखकर ही करे। उसके पात्रो की वेशभूषा, भाषा, रहन-सहन, रीति-रिवाज, खाना-पीना आदि सभी कुछ उसी देश और उसी समय का प्रतिनिधित्व करता हुआ नजर आये, जिससे वे सम्बन्धित हो तभी कथावस्तु के देश और काल का सही-सही वातावरण बन पाता है, अन्यथा नही।

वास्तव मे देखा जाए तो देश और काल का समन्वय कथावस्तु के वातावरण को उभारने और सच्चा साबित करने के लिए ही होता है। क्योकि इसमे कोई सन्देह नही है कि वातावरण जितना ही सही और प्रभावशाली होगा, उसमे आने वाले पात्रो के क्रिया-कलाप भी उतने ही विश्वसनीय और प्रभावशाली होगे। अत प्रत्येक उपन्यासकार को अपनी कथावस्तु को उभारने के लिए एक वातावरण पैदा करना होता है। इसके लिए वह अपने कथानक मे लोकल कलर (स्थानीय रग) और रीजनलिज्म (आचलिकता) का भी थोडा-बहुत टच् दे सकता है।

तिलकमञ्जरीकथा मे देश-काल

अब हमे धनपाल की तिलकमञ्जरीकथा मे देशकाल की सयोजना पर विचार करना है। वास्तव मे तिलकमञ्जरीकथा की कथावस्तु और पात्र धनपाल के उर्वर मस्तिष्क की प्यारी उपज है। वह विशेषरूप से अयोध्या, काची, सिंहलद्वीप और वैताढ्य पर्वत—इन चार स्थानो से सम्बन्धित हैं। उनके कुछ पात्र मानव लोक के है, कुछ विद्याधरलोक के है, और कुछ पात्र देवलोक के भी है। लेकिन धनपाल ने इन सबका चित्रण देश और काल की मर्यादा के अनुरूप ही किया है। फलस्वरूप उनमे कही भी विद्रूपता नही आने पाई है।

धनपाल ने अपनी कथावस्तु से सम्बन्धित करीब-करीब सभी देश (स्थान) विशेपो का भौगोलिक वर्णन के साथ ही साथ सामाजिक, आर्थिक, सास्कृतिक और और प्रशासनिक परिचय इतना दे दिया है[१००] कि पाठको के सामने उन स्थानो का एक चित्र खिच जाता है, और एक ऐसा वातावरण भी तैयार हो जाता है जो घटित होने

वाली घटनाओ की पृष्ठभूमि का भी काम कर जाता है।

आरम्भ मे अयोध्या नगरी का जो परिचय दिया गया है वह, उस पाठक के भी मन पर, जिसने कभी अयोध्या को नही देखा है, एक सर्वांगसुन्दर बिम्ब बनाने मे सर्वथा समर्थ होता है। शहर के चारो ओर का परकोटा, लहलहाते हुए रोमानी उपवन, हीरा, मोती, जवाहरात आदि से भरे हुए शर्राफा-बाजार, कई-कई मजिलो वाले और स्नान-सरसियो से युक्त भव्य भवन, सरयू सरिता का सामीप्य, सुन्दर-सुन्दर चौराहो से युक्त चौडी-चौड़ी सडके, हजारो मनोरम देवालय आदि का वर्णन करके पाठको के सामने अयोध्या का एक सजीव प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करने मे धनपाल ने काफी जागरूकता बरती है।[१०१]

काचीनगरी के वर्णन मे भी सजीवता एव स्वाभाविकता को लाने का पूरा-पूरा प्रयास किया गया है। दोनो (अयोध्या और काची) नगरियो के वर्णनो पर ध्यान देने से यह तथ्य भी उभरने लगता है कि धनपाल ने अयोध्या को धर्मप्रधान और काची को कामप्रधान नगरी के रूप मे चित्रित करना चाहा है, जो उन दोनो नगरियो के 'नेचर आफ सिटी' को देखते हुए ठीक भी जँचता है। धनपाल जो कुछ भी लिखते है, खूब सोच-समझकर लिखते है। उन्होने काचीनगरी मे नागवल्ली (नागकेसर या पान की बेल), पूगीफल (सुपारी), चन्दन, चम्पक (चम्पा), कतक (निर्मलीवृक्ष या रीठा), एला (इलायची), नागरखण्ड (नारगी), सहकार (आम) आदि जिन-जिन वृक्षो और लताओ का वर्णन किया है वे वहाँ आज भी उपलब्ध है।[१०२]

सिंहलद्वीप के परिचय मे अवश्य ही धनपाल ने कुछ आलस्य दिखाया है। लेकिन उसी सन्दर्भ मे उन्होने समरकेतु की युद्ध-यात्रा का जो वर्णन किया है, और उसमे ग्रामवासियो की जो चेष्टाएँ वर्णित की है वे सचमुच ही एक सजीव वातावरण पैदा कर देती है। समुद्रीय यात्रा का श्रीगणेश करने के पूर्व समरकेतु द्वारा समुद्र की पूजा न केवल वातावरण मे ही सजीवता लाती है, वल्कि उस देशविशेष की सास्कृतिक चेतना को भी ध्वनित कर जाती है।[१०३]

वैताढ्य पर्वत, जहाँ नायिका की रथनूपुरचक्रवाल नामक नगरी बसी हुई है, के प्रान्तवर्त्ती पर्वतीय परिसर का भौगोलिक वर्णन भी काफी सजीवता और चित्रोपमता लिए हुए है। लेकिन यह बात मेरे मन को बारम्बार कचोटती है कि धनपाल ने रथनूपुरचक्रवाल नगरी की जो परिकल्पना की है उसका एक सागोपाग प्रतिबिम्ब पाठको के सामने क्यो नही प्रस्तुत किया ? मै तो समझता हूँ कि नायिका की नगरी होने के कारण इसका परिचय देना नितान्त आवश्यक था। फिर विद्याधरो की नगरी की रूपरेखा जानने की इच्छा भी तो सबको रहती है। धनपाल ने पाठको की इस हार्दिक इच्छा की उपेक्षा करके अच्छा नही किया।

इसके अतिरिक्त वातावरण को सजीव बनाने के लिए उन्होने प्राकृतिक तथा वैकृतिक—दोनो ही प्रकार के—पदार्थो का काफी औचित्यपूर्ण वर्णन किया है, जिसकी विशदमीमासा पाँचवे अध्याय के सोपानो मे देखी जा सकेगी। मुझे यह लिखते हुए सतोष है कि धनपाल ने अपने वर्णनो मे ऐसी कोई भी चर्चा नही की है जो देश और काल के

विरुद्ध हो। उन्होने पात्रो के आचार-विचार, रहन-सहन, वेशभूषा आदि के वर्णनो मे भी औचित्य का पूरा-पूरा ध्यान रखा है। अत. हम कह सकते हैं कि धनपाल एक-दो कमियो के रहने के बावजूद भी देश और काल की औचिती का निर्वाह करने मे सफल रहे है।

सन्दर्भ

१ तिलकमञ्जरी (क) अयोध्या वर्णन, पृ० ७-१२
(ख) विद्याधरमुनि वर्णन, पृ० २३-२५
(ग) ज्वलनप्रभ वर्णन, पृ० ३५-३८
(घ) राजकुल वर्णन, पृ० ६३-६५
(ङ) वज्रायुध-समरकेतु युद्धवर्णन, पृ० ८६-९१
(च) समरकेतुविजययात्रा वर्णन, पृ० ११४-१२२
(छ) वर्षर्तु वर्णन, पृ० १७९-१८१
(ज) अदृष्टपार सरोवर वर्णन, पृ० २०२-२०५
(झ) जिनायतन वर्णन, पृ० २१४-२१६
(ञ) अटवी वर्णन, पृ० २३३-२३६
(ट) तिलकमञ्जरी वर्णन, पृ० २४६-२४७
(ठ) तिलकमञ्जरीभवन वर्णन, पृ० ३७०-३७२

२. वही, (क) वेताल वर्णन, पृ० ४६-४९
(ख) नाविक वर्णन का कुछ अश, पृ० १२५

३. शीले भवा शैली इति विग्रह, भावार्थे अण् प्रत्यय, शील+अण्+ङीप् इति परिच्छेद।

४. एषा ह्याचार्यस्य शैली लक्ष्यते—यत्तुल्यजातीयास्तुल्यजातीयेषूपदिशति, अचोऽक्षु, हलो हल्षु। —व्याकरणमहाभाष्य (नवाह्निक), चौखम्वा प्रकाशन, १९५४, अध्याय १, पाद १, आह्निक २, पृ० ११७

५. वक्रोक्तिजीवित, उन्मेष १, कारिका २४ का व्याख्या भाग।

६ वही, कारिका २५-३३

७ वही, कारिका ३४-४८

८ वही, कारिका ४९-५१

९ तिलकमञ्जरी, पृ० १८-१९

१०. वही, पृ० १२९-१३०

११. वही, पृ० १३८

१२. वही, पृ० १३९

१३. वही, पृ० २४४

१४. वही, पृ० ३४५

१५. वही, पृ० ३५-३८

१६ वही, पृ० ४६-४९
१७. वही, पृ० ८६-९१
१८. वही, पृ० ११४-१२०
१९ वही, पृ० १२०-१२२
२०. (क) वही, पृ० १९९-२००
(ख) वही, पृ० २३३-२३६
२१. वही, पृ० १९३-१९४, ३३८-३३९
२२ श्लेष प्रसाद समता समाधिर्माधुर्यमोज पदसौकुमार्यम्।
अर्थस्य च व्यक्तिरुदारता च कान्तिश्च काव्यार्थगुणा दशैते ॥
—नाट्यशास्त्र, अध्याय १६, कारिका ९७
२३ श्लेष प्रसाद समता माधुर्यं सुकुमारता।
अर्थव्यक्तिरुदारत्वमोज.-कान्तिसमाधय ॥
—काव्यादर्श, परिच्छेद १, कारिका ४१
२४ ओज प्रसादश्लेषसमतासमाधिमाधुर्यसौकुमार्योदारतार्थव्यक्तिकान्तयो बन्धगुणा ।
—काव्यालङ्कारसूत्र, अधिकरण ३, अध्याय १, कारिका ४
२५. सरस्वतीकण्ठाभरण, परिच्छेद १, कारिका ६०-६५
२६. देखिए 'प्रतापरुद्रयशोभूषण'।
२७ देखिए अग्निपुराण, अध्याय १०
२८. देखिए (क) केचिदन्तर्भवन्त्येपु दोषत्यागात्परे श्रिता ।
अन्ये भजन्ति दोषत्व कुत्रचिन्न ततो दश ॥
—काव्यप्रकाश, उल्लास ८, कारिका ७२
(ख) साहित्यदर्पण, परिच्छेद ८, कारिका ९ के उत्तरार्द्ध से १६ तक।
२९. मूर्ध्नि वर्गान्त्यगा. स्पर्शा अटवर्गा रणौ लघू।
अवृत्तिर्मध्यवृत्तिर्वा माधुर्ये घटना तथा ॥
—मम्मट, काव्यप्रकाश, उल्लास ८, कारिका ७४
३० योग आद्यतृतीयाभ्यामन्त्ययो रेण तुल्ययो ।
टादि. शषौ वृत्तिदैर्घ्यं गुम्फ उद्धत ओजसि ॥
—काव्यप्रकाश, उल्लास ८, कारिका ७५
३१. श्रुतिमात्रेण शब्दात्तु टोनार्थप्रत्ययो भवेत्।
साधारण: समग्राणा स प्रसादो गुणो मत ॥ —वही, कारिका ७६
३२. तिलकमञ्जरी, पृ० ९-१०
३३. वही, पृ० १३४-१३६
३४. वही, पृ० २९७-२९८
३५ वही, पृ० १८-१९
३६. वही, पृ० १४२-१४३
३७. वही, पृ० १६२

३८ वही, पृ० ४६
३९ वही, पृ० ११५-११६
४० वही, पृ० २००
४१. अथौचित्यवता सूक्तिरलङ्कारेण शोभते ।
पीनस्तनस्थितेनेव हारेण हरिणेक्षणा ॥
—क्षेमेन्द्र, औचित्यविचारचर्चा ।
४२ तिलकमञ्जरी, पृ० १७९
४३. वही, पृ० २०१-२०२
४४ वही, पृ० २०४
४५ वही, पृ० २१८
४६. '' '' मुहुरवतरन्त्या तोयमादायादाय पुनरूर्ध्वमतिदूरमुत्पतन्त्या······अमरपतिना प्रकल्पितस्य ·····गगनारघट्टस्य घटीमालयेव जलदसतत्या सततमुदच्यमानम्···।
—वही, पृ० १२१
४७. वही, पृ० २३
४८. वही, पृ० २४
४९. वही, पृ० १२२
५० वही, पृ० २०४
५१. वही, पृ० ७
५२. वही, पृ० १३४-१३५
५३. वही, पृ० १६८
५४ कथाया सरस वस्तु गद्यैरेव विनिर्मितम् ॥
क्वचिदत्र भवेदार्या क्वचिद् वक्त्रापवक्त्रके ।
आदौ पद्यैर्नमस्कार खलादेर्वृत्तकीर्तनम् ॥
—साहित्यदर्पण, परिच्छेद ६, कारिका ३३२ का उ० एव ३३३
५५ आरम्भे सर्गबन्धस्य कथाविस्तरसग्रहे ।
शमोपदेशवृत्तान्ते सन्त शसन्त्यनुष्टुभम् ॥
—क्षेमेन्द्रकृत, सुवृत्ततिलक, ३/१६
५६ तिलकमञ्जरी, पृ० १६
५७ शौर्यस्तवे नृपादीना शार्दूलक्रीडित मतम् । —क्षेमेन्द्रकृत, सुवृत्ततिलक, ३/२२
५८ तिलकमञ्जरी, प्रस्तावना श्लोक ३८-३९, ४१-४६, ४८-४९
५९ वही, श्लोक ४ और ६
६० वही, पृ० २१२ तथा २३७-२३८
६१ वही, पृ० २३, २४८, २५५,२५६
६२ वही, पृ० ३९१
६३ वही, पृ० ३५८-३५९
६४ वही, तृतीय भाग, बोटाद-सौराष्ट्र प्रकाशन, पृ० १७४-१७५

६५. वही, प्रस्तावना श्लोक ४०
६६. वही, श्लोक ५
६७. वही, श्लोक ५०
६८ प्रावृट्प्रवासव्यसने मन्दाक्रान्ता विराजते। —क्षेमेन्द्रकृत, सुवृत्ततिलक ३/२१
६९ तिलकमञ्जरी, पृ० २६२
७०. वही, पृ० २५५-२५६
७१. वही, तृतीय भाग, बोटाद-सौराष्ट्र प्रकाशन, पृ० १७५
७२. वही, नि० सा० प्रकाशन, पृ० २६२
७३. वही, प्रस्तावना श्लोक ५१-५२
७४. वही, पृ० १०९, २३२, ३९६ तथा ४०२
७५. वही, पृ० क्रमश १, २८, २०५, २१८, २२२ तथा २४८
७६. शुष्कशिखरिणि कल्पशाखीव, निधिरधनग्राम इव, कमलखण्ड इव मारवेऽध्वनि।
भवभीष्मारण्य इह, वीक्षितोऽसि मुनिनाथ! कथमपि॥
—तिलकमञ्जरी, पृ० २१८

विशेष—यह अपभ्रंश भाषा का छन्द है। इसमे पाँच चरण होते है। इसका लक्षण है—

पाचदाश्चिस्तृतीये पचमे चो जो लीर्वा।
पचांह्रिस्त्रिपात्पूर्वार्धा मात्रा॥
—हेमचन्द्र, छन्दोऽनुशासन, अध्याय ५, सूत्र १७

७७. दृष्टे भवति नयनसृष्ट्या सममद्य जन्म जिन! सफलमभून्मम।
अकृतपुण्यमपि सुकृतिजन प्रति लघुमात्मानमवैमि न सम्प्रति॥
—तिलकमञ्जरी, पृ० २१८

विशेष—यह छन्द भी अपभ्रंश भाषा का है। यह तुकान्त होता है। इसका लक्षण है —

षचचाद् दो वदनकम्।
—हेमचन्द्र, छन्दोऽनुशासन, अध्याय ५, सूत्र २८

७८. छन्दोऽनुशासन, भारतीय विद्या भवन, बम्बई प्र०, पृ० १७६
७९. ......Dialogue, well managed, is one of the most delightful elements of a novel.
—An Introduction to the study of Literature, p. 154
८०. तिलकमञ्जरी, पृ० २७०-२७२
८१. वही, पृ० २९
८२. वही, पृ० १०१-१०२
८३. वही, पृ० २०१
८४. वही, पृ० १४८-१५०
८५. वही, पृ० २८७-२८८

८६. वही, पृ० २९८-२९९
८७ वही, पृ० १७४-१७७
८८. वही, पृ० २४४
८९. वही, पृ० २६
९० वही, पृ० ५७-५८
९१. वही, पृ० १२८-१२९
९२. वही पृ० १४४
९३. वही, पृ० २८३-२८६
९४. वही, पृ० १६१
९५ वही, पृ० १७२-१७३
९६ वही, पृ० २५८
९७ वही, पृ० २५६
९८. वही, पृ० ३०८
९९ वही, पृ० ३१६-३१८
१०० इन परिचयो का अपेक्षाकृत विशदरूप प्रस्तुत शोध-प्रवन्ध के छठे अध्याय मे देखा जा सकता है।
१०१ तिलकमञ्जरी, पृ० ७-१२
१०२. वही, पृ० २६१
१०३ वही, पृ० ११४-१२३

५

प्रकृति-चित्रण

प्रथ सोपान

उपन्यास में प्रकृति-चित्रण

ऐसा विरला ही कोई कलाकार होगा जो प्रकृति के अव्याज-मनोहर सौन्दर्य पर थोडा-बहुत रीझा न हो। क्योकि साहित्य को प्रभावशाली बनाने मे प्रकृति का महत्त्वपूर्ण सहयोग रहता है। पद्यात्मक काव्यो मे तो प्राकृतिक छठा के वर्णन के लिए पूरे सर्ग के सर्ग ही समाप्त कर दिये जाते है, लेकिन गद्यात्मक कथाकाव्यो मे कथाप्रवाह की प्रधानता होने के कारण प्रकृति-वर्णन एक सीमित एव सापेक्ष दायरे मे ही हुआ करता है। औपन्यासिक शिल्प की दृष्टि से भी उपन्यास मे प्रकृति का सन्तुलित वर्णन नितान्त आवश्यक होता है। देश, काल, वातावरण आदि की सृष्टि के लिए प्रकृति-वर्णन एक अतीव सशक्त साधन माना गया है। रोमानी या भयङ्कर वातावरण के लिए प्रकृति की सौम्यता या भीषणता का चित्रण बहुत ही उपयोगी सिद्ध होता है। पाठक के हृदयपटल पर दृश्य की अमिट छाप डालने के लिए प्रकृति का सहारा लेना बहुत ही उपादेय है। पात्रो को मनोभूमि मे उदित होते हुए विचाररूपी अकुरो का प्रतिबिम्ब भी प्रकृति के दर्पण मे ही खुले आम पडता है। मैं तो कहता हूँ कि पात्रो के अन्तर्मन की विचारधारा कितनी ही गहरी क्यो न हो, लेकिन प्रकृति के सस्पर्श को पाकर वह अवश्य ही फूट निकलती है। इसलिए जो समझदार उपन्यासकार होते हैं, उनके उपन्यासो मे प्रकृति का एक नितान्त सन्तुलित एव जीवन्त पुट किसी न किसी रूप मे देखने को मिलता ही है।

सस्कृत साहित्य प्रकृति-चित्रण का विशेष रूप से धनी है। यहाँ प्रकृति की कोमलता और कठोरता—दोनो की ही सजीव झाँकी सजाई गई है। साथ ही ऋषि-मुनियो के आश्रमो मे प्रकृति की पावनता भी पाठको के मन को उदात्त बनाने मे पूर्णतया समर्थ हुई है। अपने पूर्ववर्त्ती कादम्बरीकार बाणभट्ट के समान ही हमारे धनपाल ने भी साहित्य-सर्जना मे प्रकृति की उपादेयता को भली-भाँति समझा है और इसीलिए इन्होने अपनी कथाकृति 'तिलकमञ्जरी' मे उसे यथास्थान चित्रित भी किया है। इन्होने अपनी कृति मे प्रकृति की कोमलता, कठोरता और पावनता की जो सरस त्रिवेणी बहाई है उसमे गोता लगाने वाला प्रत्येक पाठक अपने आप मे एक विचित्र प्रकार की सुखानुभूति करता है। वह थोड़ी देर के लिए इस कृत्रिम और विकृत दुनियाँ से दूर हटकर अन्तर्जगत् मे

भाव-विभोर हो जाता है। आपको इनका प्रकृति-वर्णन निश्चय ही अनूठा लगेगा। इन्होने जिन उत्प्रेक्षाओ और उपमाओ की उद्भावना की है वे अधिकाश रूप मे इनकी अपनी ही है। तिलकमञ्जरी के परिशीलन से पता चलता है कि इन्होने प्रकृति का वस्तुनिष्ठ वर्णन ही अधिक किया है। उसे उसी के रूप मे प्रस्तुत करने मे धनपाल सिद्धहस्त है। यह जिस किसी भी प्राकृतिक दृश्य को लेते है, उसकी एक-एक खूबी पर प्रकाश डाल देते है और तब पाठक को ऐसा प्रतीत होने लगता है जैसे कि वह दृश्य उसकी आँखो के सामने ही है।

वसुन्धरा की छाती मे अथाह गहराई तक घुसे चले जाने वाले क्या समुद्र का और अनन्त आकाश की ऊँचाई को नापने की इच्छा करने वाले क्या पहाडो का, क्या बियावान बेहड का और क्या कल्पवृक्ष वन का, क्या अदृष्टपारसरोवर का और क्या जलमण्डप का, क्या चमकीले प्रभात का और क्या सुनहरी सन्ध्या का, क्या वर्षा का और क्या वसन्त का, आप उनकी किसी भी प्राकृतिक वस्तु का वर्णन पढ़ना शुरू कर दे, बस आपका दिल उस वर्ण्य विषय मे, चुम्बक मे लोहे की तरह चिपक जाएगा। समुद्र मे मिलती हुई नदियो की अभिसारिकाओ के रूप मे की गई कल्पना बहुत ही सुन्दर बन पडी है। उसकी गहराई मे पडे हुए मोतियो के गुणो मे जो उत्प्रेक्षाएँ की गई है वे बहुत ही आकर्षक है। सरयू के तीर का और जलमण्डप का भी उदात्त रूप प्रस्तुत किया गया है। इनकी ग्रीष्मकालीन उपयोगिता के पहलू पर तात्त्विक प्रकाश डाला गया है। अटवी की सभी विशेषताओ को धनपाल ने ढूँढ निकाला है। प्रतिपाद्य विषय के रूप को रोचकता-पूर्वक मुखरित करने मे यह बाणभट्ट से भी दो कदम आगे बढ गए हैं। प्रभात और सन्ध्या की स्वर्णिम आभा पाठक के मन क्षितिज को आलोकित कर देती है। उसमे काव्यात्मकता का भी स्पृहणीय पुट पाया जाता है। कादम्बरी के 'अच्छोद सरोवर' के बाद 'अदृष्टपार सरोवर' की मजुल अभिव्यजना करके धनपाल ने 'नहला' के ऊपर अच्छा खासा 'दहला' लगा दिया है।

इन्होने वर्षा-वर्णन के प्रसग मे जो उद्भावनाएँ की है वे साहित्य-जगत् की अनूठी विचारमणियाँ है। उत्प्रेक्षा की चमक ने उन्हे और भी अधिक ओजस्वी बना दिया है। इन्होने अपनी प्रकृति सुन्दरी के सुहावने और सलौने मुखडे को अलङ्कारो से उतना ही सजाया है, जितने से वह दबे नही, और उस पर अपनी शैली का घूँघट भी काफी झीना और झिलमिलाता हुआ ही डाला है, ताकि वह उस आवरण के भीतर से भी बाकायदे चमचमाता रहे। इसी का परिणाम है कि धनपाल के प्राकृतिक दृश्यो के वर्णन मे पाठको को नैसर्गिकता एव विश्वसनीयता की अनुभूति होती है।

अब हम उनके कतिपय प्राकृतिक पदार्थो की रूपरेखाएँ उन्ही की भावनाओ के अनुसार प्रस्तुत कर रहे है, जिन्हे पढकर निश्चय ही धनपाल की प्रकृतिविषयक सवेदना का पता लग जाएगा।

समुद्र वर्णन

युवराज समरकेतु अपने साम्राज्य के दुष्ट सामन्तो के दमन के लिए अपनी

विशाल सेना को साथ लेकर सिंहल द्वीप से चल पडते है। नगरसीमा एव ग्रामो को पार करते ही उन्हें समुद्र दिखाई देने लगता है। समुद्र क्या है, बिल्कुल पाताल लोक का ढक्कन जैसा दिखाई देता है। त्रिलोकीरूपी चौराहे का मणिजटित फर्श जैसा प्रतीत होता है। आकाशरूपी नीलकमल का उत्पत्ति स्थान जैसा मालूम पडता है। पृथ्वीरूपी चारपाई की नीली चादर की तरह लगता है। अथाह होने की वजह से दुनियाँ की बराबरी-सी कर रहा है, क्योकि दुनियाँ की भी थाह नही मिल पाती है। अनन्त होने के कारण मोक्ष सुख का उपमान-सा बन रहा है, क्योकि मोक्ष सुख का भी अन्त नही होता है। किसी महाकवि की असीम प्रतिभा से वह इसीलिए समानता रखता है कि वह भी असीम है। उसके उछलते और उमडते हुए जल की गहरी नीली कान्ति से निर्भीको के भी मन मे भय का सचार होने लगता है। उसकी श्यामता को देखकर लगता है कि मानो वह पाताल-लोक के निविड अन्धकार से ही निकली हो, काले साँपो की काली कान्ति से उसमे वृद्धि हुई हो, और यमुना की नीली देहप्रभा से मानो वह लिप्त हो। चोरी-छिपे, घाट-कुघाट अभिसार करने वाली कामिनियो के समान तमाम छोटी-मोटी नदियाँ जगह-जगह पर इससे आ-आकर मिलती रहती है। इन नदियो मे और अभिसारिकाओ मे पूरी-पूरी समानता देखने को मिलती है, क्योकि यदि अभिसारिकाएँ अपने पैरो मे हसो के समान मधुर गुंजन करने वाले नूपुरो को धारण करती है, तो ये नदियाँ भी मधुर गुँजन करने वाले हसो को ही अपने पास रखती है। यदि अपने प्रेमी से मिलने की उत्सुकता और किसी के देख लेने के भय से अभिसारिकाएँ जरा जल्दी-जल्दी अपना अभिसारपथ पार करती है और फलस्वरूप साँस के तेज हो जाने से उनके उरोज काँपने (उठने-बैठने) लगते है, तो इधर तेजी से बहने के कारण नदियो के किनारे भी काँप उठते हैं। यदि अभिसारिकाएँ झनझनाती हुई करधनी से सुशोभित नितम्बो और जाँघो को धारण करती है, तो नदियाँ भी सारसपक्षियो से सुशोभित पुलो को धारण करती है। यदि अभिसारिकाओ की आँखे कमल के समान है, तो नदियो के किनारे खिले हुए कमल भी उनकी आँखे ही है। समरकेतु को समुद्र उस समय भी काफी प्यारा प्रतीत होता है जबकि बादलो का झुण्ड आसमान से उतरकर पानी भरता है और फिर समुद्र की सतह पर काफी दूर तक उडता हुआ आगे बढकर आकाश की ओर उठता है, तथा साथ ही साथ पानी के बिखरते हुए छीटो मे सूरज की रंगीन चमक से सतरगा धनुप बन जाता है। उस समय ऐसा लगता है मानो ससाररूपी बगीचे को सीचने के लिए इन्द्र ने आकाशरूपी रेहट पर बादलरूपी कलशमाला लगा दी हो।

मन्थन के समय जब सूर्य और चन्द्रमा ने देखा कि समुद्र से उच्चैःश्रवा घोडा और आह्लादमयी चन्द्रकला का उद्भव हुआ है तो तभी से अपने रथ के सात घोडो की विपमता दूर करने के लिए (अर्थात् आठवाँ घोडा खोजने के लिए) तो सूर्य, तथा अपनी सोलहवी कला की तलाश मे चन्द्रमा, दोनो ही सागर के जल मे डूबते-उतराते रहते हैं। समुद्र के गर्भ मे वडवानल धधकता रहता है, ऐसा लगता है कि यह वडवानल अगस्त्यमुनि के उदर की आग ही है, जो समुद्रपान करते समय उसमे लग गई थी।

इसका तलभाग मोतियो से सुशोभित रहता है। चूंकि पानी साफ-सुथरा है,

इसलिए गहराई मे भी पडे हुए ये मोती हथेली मे चमकते हुए से दिखाई देते रहते हैं। ये मोती देवाङ्गनाओ के आभूषणो मे जडे जाने के काबिल हैं। उजले इतने हैं कि लगता है ये गाय के दूध मे धोये गये हो। कठोर इतने है कि लगता है लक्ष्मीजी के स्तनो की कठोरता इन्ही मे आ गई हो। यह अपने फेनसमूह से दिशाओ को धवल बनाता रहता है। इसका यह फेनसमूह कैलाश पर्वत के समान सफेद है। देवताओ मे बची हुई कुछ अप्सराएँ यहाँ घूमा करती हे, जिससे पता चलता है कि कभी यहाँ समुद्र-मन्थन हुआ था। कुछ बूढे-बूढे हाथी भी यही कीचड मे धँसे या घूमते हुए नजर आते रहते हैं। इसके किनारे-किनारे वन है। अपने से उत्पन्न होने वाले दुष्ट पुत्र से जैसे पिता प्रतिदिन दुर्बल होता जाता है वैसे ही यह समुद्र भी अपने शरीर से ही उत्पन्न होने वाले वडवानल से प्रतिदिन सूखता रहता है।

इसकी गहराई का ठीक-ठीक पता इसमे उठने वाली लहरो को भी नही लग पाता है। इसके गर्जन-तर्जन को दिग्गज भी नही सह पाते है। इसकी लहरो की ऊँचाई को आकाश मे विचरण करने वाले भी नही जान पाते हैं। इसमे बसने वाले जल जन्तुओ के नामो को कोई सर्वज्ञ भी नही जान पाता है। इसमे उठने वाले भीषण भँवरो को तिमिङ्गिल मछली भी पार नही कर पाती है। इसकी एक विशेषता यह भी है कि इसमे विष और अमृत, पानी और आग, वृद्धि और क्षय—परस्पर विरोधी तत्त्वो का निवास है। इसका जल हीरा मोतियो की चमक से चमचमाता रहता है। यह किनारे पर फेन के ढेरो मे पडे हुए हीरो से लोगो की गरीबी दूर करता है। इसमे खूब ऊँची-ऊँची और मन को लुभाने वाली लहरे उठती रहती हैं। समुद्र के इसी जल को लोग धरती की साडी और विष्णु का निवास स्थान भी बताया करते हैं।[1]

धनपाल का यह समुद्र-वर्णन बहुत ही स्वाभाविक है। इसमे आपको कृत्रिमता की गन्ध जरा भी नही मिलेगी। इसे पढते ही पाठक के बुद्धिपटल पर समुद्र का चित्र बन जाता है। उसे ऐसा लगने लगता है कि मानो वह समुद्र के किनारे खडा हो और दूर-दूर तक फैली हुई उसकी विशाल जलराशि पर अपनी आँखे जमा रहा हो।

बन्द कमरे मे बैठे हुए पाठक की आँखो के सामने दृश्य लाकर प्रत्यक्ष की तरह उपस्थित करने मे धनपाल बेजोड है। समुद्र की लम्बाई-चौडाई, ऊँचाई-गहराई, लहरो का उतार-चढाव, उसमे बिखरे हुए हीरा मोती जवाहरातो आदि की चर्चा करके उन्होने उसके सर्वांगीण स्वरूप का जीवन्त चित्र खीच दिया है।

सरयूतीर वर्णन

राजकुमार हरिवाहन अपने दोस्त युवराज समरकेतु के साथ घूमते-घामते सरयू नदी के किनारे पहुँच जाते हैं। वहाँ की शोभा उन्हे बहुत ही भली लगती है। क्योकि वहाँ पर जल के ससर्ग से फलने वाले जामुन के घने पेड खडे हुए थे, खिलते हुए फूलो के गुच्छो से लथपथ केतकी लताएँ लहरा रही थी, जगह-जगह पर छूटते हुए फौव्वारो से ग्रीष्मकाल के सूर्य की प्रखर रश्मियो की ऊष्मा दूर की जा रही थी, और उन फौव्वारो मे जो पानी था वह कुँओ से यन्त्रो द्वारा पहुँचाया जा रहा था। वहाँ के लतामण्डपो मे कही

जंगी मोर, कही-कही शराब के दौर मे मस्त होते हुए लोग-बाग तबले पर थाप लगाकर वातावरण को और भी अधिक रोमानी बना रहे थे। किनारे के पास ही सरयू का अथाह पानी भी लहरे मार रहा था।[2]

कुल मिलाकर वह सरयू तीर आज की बम्बई के 'जुहू' नामक स्थान से भी कही अधिक मनोरम था। यद्यपि धनपाल ने सरयू तीर का वर्णन बहुत ही सक्षेप मे किया है, लेकिन फिर भी वह है काफी स्पष्ट। इससे आज के किसी भी विकसित शहर के समीप बहती हुई नदी के किनारे की रमणीयता की रूपरेखा का थोडा-बहुत तो अनुमान लगाया ही जा सकता है। मेरा विश्वास है कि यदि वह इस वर्णन मे थोडी और रुचि लेते तो नदी तीर के इस सौन्दर्य मे एक अनोखा ही आकर्षण भर जाता।

जलमण्डप वर्णन

धनपाल की कल्पना के अनुसार सरयू के मनोरम तीर पर स्थित कामदेव के मन्दिर के पास ही एक जलमण्डप भी बनाया है। यह जलमण्डप आम के बगीचे के बीचो-बीच है और चारो ओर केले के लहलहाते हुए वृक्षो से घिरा है। बगीचा भी काफी लम्बा-चौड़ा है और उसमे जो आम के पेड हैं वे ज्यादा ऊँचे नही है। क्योकि वे नये हैं। उन पेडो के पत्तो मे छिपी हुई कोयलो का अन्दाज तभी लग पाता है जब वे कूकती है। इन दिनो फलो के गुच्छो के भार से उन पेडो की डालियाँ झुकी हुई हैं। सरयू की लहरो से अठखेलियाँ करता हुआ, पानी की फुहार को बिखेरता हुआ और सारसपक्षियो को मदमत्त करता हुआ पवन उस बगीचे मे झकोरें मारता रहता है। ताजे खिले हुए शिरीप के फूलो के गुच्छो से उसका अग्र भाग और भी ज्यादा मनोहर प्रतीत होता है। शिरीप पुष्पो के इन गुच्छो का रग तोतो के बच्चो के गले के रग के समान ही है। भँवरो की चपेट मे आते रहने के कारण ये अपने डण्ठल से गिरते रहते हैं, जो बहुत ही भले लगते हैं। उस समय इन्हे देखकर ऐसा लगता है कि मानो आकाश गगा से शैवाल के खण्ड गिर रहे हो। उस जलमण्डप की प्रत्येक दीवार पर कमल के तन्तुओ के चामर लटकते रहते है, प्रत्येक दरवाजे पर हरिचन्दन नामक वृक्ष के कोमल किसलयो की मालाएँ लटकती रहती है, प्रत्येक खम्भे पर शीतल पत्थर की स्त्री-प्रतिमा जडी हुई है, और प्रत्येक खिडकी पर सुगन्धित अगरबत्तियाँ सुलगती रहती है। देह मे लगाने के काम आने वाले चन्दन की, मणियो से बनी हुई, छोटी-छोटी कटोरियाँ जगह-जगह पर पडी दिखाई देती है, जिनसे ऐसा लगता है मानो वह मण्डप चमचमाते हुए तारागणो से सुशोभित हो। पुष्पो के सौरभ से इतने भँवरे इकट्ठे हो जाते हैं कि उनकी देह की कालिमा से वहाँ अन्धेरा-सा छा जाता है। चीन देश के सफेद रेशमी वस्त्रो से बने हुए वितानो (बम्बुओ) की चमक बिजली जैसी लगती है।

वहाँ शीतल पेय जल से भरे हुए और मोटे वस्त्र से ढँके हुए घडे भी रखे रहते हैं। उद्यान के हस अपनी चोचो मे मृणाल तन्तुओ को लिए हुए इधर-उधर दौडते रहते है, मानो वे किसी वस्त्र के ताने-बाने डाल रहे हो। पर्वत-विहार का आनन्द उठाने के लिए वहाँ बने हुए क्रीडा-पर्वतो के शिखरो पर मयूरो के कूजन को सुनकर ऐसा लगता है मानो

वे क्रीडापर्वत उन मोरो के जरिये गर्मी से बचने के लिए अपने सजातीय अन्य पर्वतो को भी वही आ जाने के लिए आवाज लगा रहे हो। इस जलमण्डप का वातावरण ऐसा मनोरम है कि पेड भी आपस मे आलिंगन-सा करते हुए नजर आते है। लगता है सरयू नदी अपने प्रेमी सागर के वियोग से उत्पन्न हुई विकलता को यही दूर करती है, ग्रीष्म ऋतु की तपन से भागकर शिशिर ऋतु यही आकर छिपती है; सूर्य के मण्डल में प्रवेश करने से उत्पन्न हुई जलन को मेटने के लिए चन्द्रमा यही आकर अपनी चिकित्सा करता है, और इन्द्र के वज्र की आग से झुलसा हुआ हिमालय भी यही आकर शीतोपचार करता है। मण्डप के चारो ओर निरन्तर छूटे हुए पानी के फौव्वारो से ऐसा लगता है मानो स्फटिकमणियो से इसकी सीमा बना दी गई हो। इन फौव्वारो की ध्वनि को सुन-कर मयूर नाच उठते है, क्योकि वे इसे सच्ची बारिश समझ बैठते है।

इस जलमण्डप की खिडकियो मे नगर की सुन्दर-सुन्दर नौजवान वेश्याएँ आ बिराजती है। इनकी खूबसूरती का क्या कहना ? ये अपने-अपने जूडो मे मल्लिका के ताजे फूलो की माला सजाए रहती है, कानो मे शीतलता प्रदान करने वाली शैवाल लता के हरे-भरे किसलयो को धारण किए रहती है, जिनसे उनके गुलाबी गालो की चमक कुछ अनोखी ही हो जाती है, गले मे पडे हुए हिमहार से इनके उभरते हुए या उभरे हुए उरोज और भी अधिक नेत्राकर्षक हो जाते है, अपनी कोमल कलाइयो मे नीलकमलो के डण्ठल पहने रहती है, ये करधनी के रूप मे कमर मे बकुल के कुसुमो की माला पहने रहती है, जिससे इनकी जघाएँ और भी अधिक मादक हो उठती है, कपूर से मिश्रित हरिचन्दन के रस से ये अपने सारे शरीर को शीतल एव सुगन्धित बनाए रहती है, तथा अपने-अपने महीन और हल्के दुपट्टो को पानी मे आर्द्र किए रहती है। इन्हे देखकर ऐसा लगता है मानो ये इस उद्यान की देवियाँ हो। इतना ही नही, बल्कि इस जलमण्डप मे अनेक सुन्दर-सुन्दर चित्रशालाएँ भी है।[3]

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि महाकवि धनपाल के मस्तिष्क मे एक उच्चकोटि के ग्रीष्म-भवन (समर-हाउस) की सशक्त रूपरेखा विद्यमान है। आज के राजकीय उद्यानो मे भले ही इतनी कोमलता एव मनोरमता के दर्शन हो, किन्तु प्राचीन भारत मे राजा-महाराजाओ के उपवनो मे कुछ ऐसा ही समशीतोष्ण ठाठ-बाट देखने को मिलता था। धनपाल ने जिस जलमण्डप की कल्पना की है वह उत्कृष्ट एव भव्य है। उसमे कला एव सुविधाओ का मजुल समन्वय किया गया है। ऐसे जलमण्डपो मे सुन्दरता एव शान्ति का जो विलक्षण अनुभव हुआ करता है वह वाचामगोचर ही है। चित्त मे लालित्य की सर्जना भी ऐसे ही स्थानो की रम्य देन हुआ करती है। इस स्थान पर धनपाल की मजुल एव ललित परिकल्पना की प्रशसा न करना उनके प्रति अन्याय ही होगा।

अटवी वर्णन

युवराज समरकेतु राजकुमार हरिवाहन की खोज मे अकेले ही रात मे बिना किसी को कुछ बताए छावनी छोड़कर निकल पडते है। सारी रात जगल के रास्ते

उत्तरदिशा की ओर बढते रहते है। जब सवेरा होता है तो यह सोचकर कि कही उसी रास्ते से उन्हे ढूँढते हुए उनके साथी अन्य राजकुमार उन तक न आ पहुँचे वह मुख्यमार्ग छोड़कर जगल की ऊबड-खाबड़ राह पकड लेते है। वह जगल बहुत ही भयानक था। साहसरहित व्यक्ति जिस प्रकार युद्धभूमि मे नही जा सकता उसी प्रकार उस भयकर अटवी मे भी डरपोक आदमी घुसने की हिम्मत नही कर सकता था। वहाँ की गुफाएँ पाताल के समान गहरी और भयकर थी। साखू, सोंजना, अर्जुन, शल्लकी आदि के पेड़ो का वहाँ ऐसा झुरमुट था कि सूरज के निकलने और डूबने का पता ही नही चलता था। वे पेड़ ऊँचे भी बहुत थे, लगता था मानो वे आसमान के तारो को अपने ऊपर फूलो के गुच्छो के रूप मे धारण किए हो। उस खौफनाक जगल मे पहाडी नदियो के बहाव से तमाम गहरी-गहरी घाटियाँ बन गई थी। उन नदियो के किनारे बहुत ही ऊबड-खाबड और ऊँचे थे। इसलिए उनमे उतरना टेढी खीर थी। उनकी पथरीली कगारे उनमे टूट-टूट कर गिरती रहती थी, जिसके कारण उनमे तमाम धाराएँ इधर-उधर से वह निकलती थी। लताओ और छोटे-छोटे वृक्षो के झाड-झकारो से तथा पथरीली बालू के ढरो से उनके पुल भर जाया करते थे। उनके किनारो पर झाड़ियो मे छिपे हुए म्लेच्छ पुरुषो की अस्पष्ट आवाजे आती रहती थी। उस भयानक अटवी मे काहला नामक जंगली वाद्य विशेष की ध्वनि से आते हुए और साथियो से बिछुडे हुए राहगीरो को सूचना दी जाती थी।

उस जंगल मे भीलो की बस्तियाँ थी। वे सब पहाड़ के ऊँचे-नीचे स्थानो मे बसे हुए थे। उन बस्तियो मे रहने वाले भील विवेक से शून्य थे और दया से रहित थे। वहाँ दिन-रात चिल्लपों मची रहती थी; शराब पीने वालो का गाना-बजाना होता रहता था, हर चूल्हे पर जगली जानवरों का मांस पकता रहता था, हर निकुज मे कैद किए हुए राहगीरो की चीख-पुकार सुनाई देती रहती थी, हर घर मे चोरी के माल का बटवारा होता रहता था, हर बच्चे को हरिणो को मोहित करने का गीत सिखाया जाता था, हर तालाब पर मछलियो को पकडने के लिए जाल और कांटा लिए हुए धीवर बैठे रहते थे, और हर रोज चण्डी देवी पर बलि-चढाने के लिए किसी न किसी पुरुष की खोज होती रहती थी।

वहाँ से गुजरने वाले राहगीरो का बुरा हाल होता था। वे हाथ मे आत्मरक्षा के लिए धनुष-बाण लेकर चलते थे। मन ही मन रक्षा की कामना से चण्डीदेवी का स्तोत्र भी पढते जाते थे। डर के मारे उनकी आँखे बारबार इधर-उधर उठ जाती थी। चोरो के भय से वे अपने धन को सिर के बडे-बडे बालो के जूडों मे छिपा लेते थे, और वहाँ के रास्ते को, जितनी जल्दी हो सके, पार करने की कोशिश करते थे। पिंजरो मे बन्द रहने वाले पालतू तोते भी वहाँ से निकलने वाले राहगीरो की सूचना उन्हे दे दिया करते थे। वे तोते चिल्ला-चिल्ला कर कहा करते थे कि—अरे जल्दी आओ, जल्दी आओ, इधर से रास्ते को रोक लो, इस राहगीर के पास बहुत-सा धन है, यह देखो, रास्ता छोड़कर भागना चाहता है आदि आदि। भीलो की इन बस्तियो को देखकर ऐसा लगता था मानो

सत्ययुग के भय से भागकर अधर्म की नगरियो ने उस जगल मे आकर अपना डेरा डाल लिया हो ।

उस अटवी मे कही-कही भयकर आग लगी हुई थी, और उस आग में जलते हुए बाँसो के झुरमुटो मे से बाँसो की गाँठो के फूटने की भडाभड आवाजे आ रही थी, जो कानो मे दर्द पैदा कर देती थी। कही-कही पर शेरो की लगातार दहाडो से भयभीत हुई हिरनियाँ अपनी चचल चितवन इधर-उधर बिखेर रही थी। कही-कही पर पेडों के नीचे बैठी हुई भीलो की स्त्रियाँ हाथियो के मस्तको से निकले हुए सफेद जगमगाते हुए मोतियो को बीच-बीच मे मिलाकर अपने लिए लालगुंजाओ का हार पिरो रही थी। कही-कही पर नीचे सोये हुए विशालकाय अजगर साँपो की लम्बी-लम्बी साँसो से बडे-बड़े पेड भी हिल रहे थे। कही-कही पर शिकारी लोग अपने उन शिकारी कुत्तो की मौत पर आँसू बहा रहे थे जिन्हे जगली सूअरो ने मार डाला था। कही-कही पर घरो से निकले हुए जगली लोग अपने पेट की आग बुझाने के लिए कन्दमूल, फल आदि की खोज मे लगे हुए थे। कही-कही पर जगली लोग उन राहगीरो को देख-देखकर खूब हँसा करते थे जिनके खाने की चीजे चालाक बन्दर छीन कर भाग जाते थे और तब वे बिचारे उन पर पत्थर फेकने ही रह जाते थे। कही-कही पर चमडे के लोभी शिकारी घायल किए हुए बाघो का रास्ता रोके खडे रहते थे। वहाँ प्रियाल, कटहल, प्रियगु और शाखोटक पेडो की भरमार थी। उस अटवी मे गिलहरी, भालू और हिरनो की भी कमी नही थी। ऐसे उस भयकर जगल मे युवराज समरकेतु अपने हाथ मे नगी तलवार लिए हुए निडर होकर आगे बढता चला जा रहा था।[4]

अटवी वर्णन का दूसरा प्रसग वहाँ आता है जहाँ समरकेतु हरिवाहन के साथ स्वचालित वायुयान पर बैठकर उसकी नई राजधानी गगनवल्लभनगर की यात्रा करता है। उस रास्ते मे उसे जो वियावान जगल मिला वह आश्चर्यजनक था। वह प्रलयकालीन समुद्र के काले कीचड रूपी पलग पर सोते हुए वराह भगवान् के समान तो काला था, और नीरव भी खूब था, लगता था मानो भगवान् भास्कर की प्रखर रश्मियो के सन्ताप से सन्तप्त होकर पृथ्वी वहाँ बेहोश हो गई है। उस अन्धकारपूर्ण अटवी को देखकर प्रतीत होता था मानो पाताल मे रहने वाले भयकर साँपो के विष की ज्वालाओ से उछलते हुए वहाँ के कीचड के निकलने का रास्ता वही से हो। वह अटवी उत्तरी समुद्र के हरे जल-तृणो से आच्छादित मार्ग जैसी लगती थी। उसमे बीच-बीच मे पहाडो की ऊँची-ऊँची चोटियाँ भी दिखाई दे रही थी, जिससे वह सूर्य के रथ की ऊँची-नीची रेखा के समान लग रही थी। स्थान-स्थान पर उसमे निर्मलनीरवाहिनी नदियाँ भी बह रही थी। पेडो की शाखाओ मे अठखेलियाँ करते हुए जगली हाथी वहाँ धूलि उडाते रहते थे। रास्तो मे कोमल भोजपत्र बिखरे रहते थे, जिससे चलने-फिरने वालो को आराम मिला करता था। उगती हुई मजिष्ठा नामक लताओ के लाल-लाल अकुरो से सरोवरो के किनारे बडे भले मालूल पडते थे। वहाँ पर तिरछे पडे हुए काले आँवलो से ऐसा लगता था मानो पृथ्वी-रूपिणी नायिका ने तिलक लगा लिया है। वहाँ कन्दराओ मे जहाँ-तहाँ टूटी पडी हुई गुजाफलो की करधनियो से साफ जाहिर हो जाता था कि यहाँ भीलो की स्त्रियो ने जम

कर सुरत विहार किया है। गाय की शक्ल वाले गवय नामक पशुओ के खुरो के आघातो से वहाँ की मन शिला नामक शिलाएँ खूब चमचमा उठी थी।

उस अटवी मे बुढापे के कारण पीले बालो वाले भालुओ की कमी नही थी। जगली भैसे अपने सीगो के प्रहार से नीलगिरि की चोटियो को खोदते रहते थे, मानो वे अटवी की नीलिमा के सामने उसकी नीलिमा को तुच्छ समझकर उस (पर्वत) की हँसी उड़ा रहे हो, वहाँ तमाम छोटे-छोटे जलाशय थे। उनमे ऐसे बडे-बडे मेढक रहते थे जो सांपो को भी पकड़ कर खा जाते। लेकिन जगली शिकारी उन मेढको को पकडने के लिए उन जलाशयो पर अपकी रौदगश्त करते रहते थे। वहाँ तमाम छोटे-छोटे प्रस्तरखण्ड पडे थे। वे रग-बिरगे थे, लगता था जैसे वे धरती के जेवरात हो। उनमे सोना, चाँदी, तांवा, पीतल, लोहा, जस्ता और सीसा उत्पन्न करने की क्षमता थी। उनमे चुम्बकीय शक्ति भी थी, इसलिए पैरो मे चुभी हुई लोहे की कीलो को निकालने मे उनसे बडी सहायता मिलती थी। उनमे कोई-कोई तो पारस पत्थर जैसे ही थे, और कुछ मणियो के परखने के काम मे आते थे।

वहाँ तरह-तरह की औषधियाँ भी थी, जिन्हे तमाम सिद्ध महात्मा लोग खोजते रहते थे। उनकी पहचान उनके तरह-तरह के फूलो, फलो और जडो के आधार पर हुआ करती थी। उनमे अतिवृष्टि को रोकने की अद्भुत क्षमता थी। दुष्टग्रहो के फल को भी वे रोक देती थी। उनसे तरह-तरह की रोगनाशक भस्मे तैयार हो सकती थी। उनमे लोगो का स्तम्भन, निवारण, उच्चाटन, विद्वेषण, मोहन आदि करने की विलक्षण शक्ति थी। इतना ही नही, उनमे से किसी-किसी के प्रयोग से तो वज्र की धार भी बेकार हो जाती थी और सर्पराज तक्षक का भी जहर दूर भाग जाता था। उनमे से कुछ ऐसी भी थी जिनका अजन बनाकर आँख मे लगाने से सुदूर देशो की अदृश्य वस्तुएँ भी दिखाई देने लगती थी, और पैरो मे मलने से हवा मे उडने की क्षमता आ जाती थी, माथे पर तिलक लगा लेने से सबके सामने देखते-देखते अदृश्य हो जाने की शक्ति आ जाती थी, और खा लेने से बुढापा और मौत कभी पास नही फटक सकते थे।

वहाँ कही-कही जलाशयो मे खौलता हुआ भँवरदार पानी बहता रहता था, जहाँ पथिक पोटली मे बाँधकर चावल पका लेते थे। कही-कही पानी बेहद जहरीला भी था। लोगो ने ऐसे पानी के चारो ओर काँटे लगा रखे थे, ताकि कोई उसे पिये नही। मगर पक्षी तो फिर भी पी लेते थे, फलस्वरूप उसी के किनारे मरकर गिरे पडे रहते थे।

स्थान-स्थान पर प्रसिद्ध-प्रसिद्ध देवताओ की प्रतिमाएँ थी। वे सब मणिजटित थी और काफी ऊँची-ऊँची भी थी। इसीलिए लोग सिर उठाकर ही उनका दर्शन कर पाते थे। आकाश मे चलने-फिरने वाले गन्धर्व, विद्याधर आदि उनके ऊपर फूलो की वर्षा करते रहते थे। उन प्रतिमाओ का निर्माण प्राचीन युग के मनुष्यो ने किया था। उसमे ऐसे तमाम स्थान थे जहाँ देवदम्पति स्वच्छन्द विहार कर सकते थे, ऐसा लगता था मानो वे रमणीय स्थान नन्दन वन के अश हो। वहाँ के लताकुजो मे किन्नर-किन्नरियो के शिरो से शिथिल होकर गिरे हुए तमाम मोर-पख पडे रहते थे। आपस मे लडते हुए जगली सुअरो के मुँह से बिखरे हुए मोती भी वही पडे-पड़े चमचमाते रहते थे। तमाल वृक्षो के झुरमुटो

मे वहाँ महात्माओ ने ही नही, बल्कि हरिणो ने भी निश्चिन्त होकर अपना बसेरा बना लिया था। वहाँ भारुण्ड पक्षियो की भी खूब भरमार थी। पत्थर की चट्टानो पर जगह-जगह पेडो के वल्कलो के ढेर लगे हुए थे। वृक्षो की शाखाओ से लटकते चमकीले अकुरो से ऐसा अन्दाज लगता था मानो वहाँ धरती मे हीरा मोतियो का खजाना छिपा हो। इधर-उधर बिखरी हुई सुनहरी धूलि से खनिज पदार्थों का पता चलता था। पर्वत की चोटी पर स्थित चामुण्डा देवी के मन्दिर मे वरदान की आशा मे तमाम लोग अनशन किए बैठे रहते थे। वहाँ झरनो के समीप सिद्ध महात्माओ के आश्रमो मे भिन्न-भिन्न धर्मो के मानने वाले रहा करते थे। ·····कुछ गगनविहारी अपनी कामुकता के कारण धरा-सुन्दरियो को अपहृत करके वही ले जाते थे, वे बिचारी अपने को असहाय पाकर वहाँ सिसकियाँ भरती रहती थी। वहाँ स्थान-स्थान पर हाथियो के ठहरने के अवशेष पडे थे, जिनसे सूचित होता था कि किसी जमाने मे वहाँ किसी चक्रवर्त्ती सम्राट् की सेना ने पडाव डाला होगा।

उस अटवी मे बहुत से विद्याधर थे। वे सिद्धि प्राप्त करने के लिए कठिन तपस्या मे लगे रहते थे। उन्होने भोग-विलास त्याग दिए थे; और पर्वतकन्दरा मे, कोई गहरी घाटियो मे, कोई झाडियो मे और कोई पर्णकुटीरो मे निवास करते थे। उनमे कुछ तो ऐसे थे जिन्होने खाना-पीना बिल्कुल छोड़ रखा था, और कुछ ऐसे थे जो भोजन के नाम पर केवल फल-मूल खा लिया करते थे।· ···उस जगल मे बिल्लौरी पत्थरो की भी भरमार थी। वहाँ की धरती ज्यादातर रेतीली थी। हरी-हरी घासो के बीच नीवार नामक घास के पौधे खूब पाए जाते थे। पशुओ मे अधिकाश कस्तूरी हिरन थे, पक्षियो मे मोरो और कोयलो की तादाद ज्यादा थी, मनुष्यो मे किन्नर और किन्नरियो की सख्या अधिक थी, झरने ज्यादातर चन्द्रकान्तमणियो से ही निकल रहे थे, आग की लपटें भी ज्यादातर चकमक पत्थरो से ही निकलती थी, वहाँ की हवा मे अधिकाश वनदेवियो की सुगन्धित साँसे मिली थी आदि-आदि।[५]

तारीफ तो यह है कि धनपाल ने अटवी वर्णन के उपर्युक्त इन दोनो प्रसगो मे अपने विचारो का पिष्ट-पेषण जरा भी नही होने दिया है। उन्होने पाठको के सामने दोनो ही प्रसगो का अलग-अलग सजीव और स्वाभाविक वर्णन करके जगल के अच्छे-खासे दो चित्र ही प्रस्तुत कर दिए है। इन दोनो प्रसगो की अपनी-अपनी क्षेत्रिय विशेषताएँ है।

पहले प्रसग मे धनपाल की दृष्टि अटवी की भीषणता पर ही अटकी हुई है। हिसक पशुओ के साथ ही साथ शिकारियों, लुटेरो और डाकुओ के अड्डो से भरे हुए घने और बियावान जगल का वातावरण कितना भयावह हो जाता है, वहाँ से गुजरने वाले राहगीरो के दिल पर क्या बीतती है और वे उस सकट को कैसे पार करते है—इन सब बातो का एहसास दिलाने मे धनपाल को पूरी कामयाबी मिली है। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि धनपाल अपने जीवन मे कभी ऐसे ही जगली रास्तो से अवश्य गुजरे होगे और उन्होने क्रूर डाकुओ और भीलो की बस्तियो को भी अपनी आँखो से देखा होगा, तभी तो वह इतना सशक्त, स्वाभाविक और सजीव वर्णन कर सकने मे समर्थ हो सके है।

हम देखते है कि अटवी वर्णन के दूसरे प्रसग मे धनपाल की निगाह उसकी

रमणीयता, धार्मिकता, पवित्रता और समाजोपयोगिता पर गई है। अटवी का यह रूप-भेद, मैं तो समझता हूँ कि देश-भेद पर आधारित है। वैताढ्य पर्वत पर विद्याधरो का निवास है। इन लोगो मे मनुष्यो की अपेक्षा शील, सत्त्व एव सभ्यता की मात्रा अधिक पाई जाती है। ये लोग प्राय. भिन्न-भिन्न प्रकार की विद्याओ की सिद्धि मे लगे रहते है। फलस्वरूप समाजविरोधी तत्त्वो का इनमे प्राय अभाव रहता है। विद्याधरो की भूमि होने के कारण वैताढ्य पर्वत के उत्तरीय भाग का निहायत ही खूबसूरत होना और जडी-बूटियो तथा खनिज पदार्थो से भरपूर रहना भी स्वाभाविक ही है। अत धनपाल ने इसी देश-भेद के आधार पर अटवी के दो रूपो का वर्णन किया है।

इस दूसरे प्रसग मे अटवी का रूप लम्बे-चौडे तपोवन से मिलता-जुलता सा प्रतीत होता है। इसमे भयङ्करता के स्थान पर रमणीयता का, डाकुओ की वस्तियो के स्थान पर सिद्ध महात्माओ के आश्रमो और देवताओ की प्रतिमाओ का, झाड-झङ्खार के स्थान पर जडी-बूटियो का, ककड-पत्थरो के स्थान पर हीरा-मोती जवाहरातो का वर्णन करके धनपाल ने इस स्थल पर वैज्ञानिको के लिए वन-सम्पदा की ओर भी सकेत किया है।

अटवी वर्णन के इन दोनो प्रसगो मे धनपाल की पैनी निगाह की तारीफ किए विना कोई रह नही सकता। अटवी की जो प्रमुख-प्रमुख विशेषताएँ होती हैं, उनमे से क्या मजाल कि एक भी छूट जाए। पढते समय वस ऐसा ही लगता है जैसे कि हम भी समरकेतु के साथ उसी जगल के बीच से गुजर रहे है और सब कुछ हमारी आँखो के सामने आ-जा रहा है। सचमुच जगल का, जगली जीवन का और जागली यात्रा का ऐसा फडकता हुआ सर्वांगीण वर्णन अन्यत्र दुर्लभ ही है।

पर्वत वर्णन

यह कहने की शायद आवश्यकता नही है कि प्रकृति सुन्दरी का वास्तविक निवास धरती और आकाश की दूरी को मेटने की कोशिश करने वाले पर्वत रूपी सुरम्य प्रासादो मे ही होता है। लगता है यह प्रकृति सुन्दरी बड़ी ही लजीली है। तभी तो एकान्त पर्वतो मे छिपकर यह अपना शृङ्गार करती है। कवियो ने इसके निवास को पहिचान लिया है। इसीलिए वे पर्वत वर्णन के विना प्रकृति का वर्णन ही अधूरा मानते है। देखा भी जाता है कि साहित्य-जगत् के प्राय सभी कलाकार प्रकृति की नैसर्गिक छवि का अङ्कन करने के लिए पर्वतो का साङ्गोपाङ्ग वर्णन अवश्य ही करते है।

हमारे महाकवि धनपाल भी इस तथ्य के अपवाद नही है। उन्होने अपने तिलक-मञ्जरी नामक कथाकाव्य (उपन्यास) मे सुवेलगिरि, रत्नकूटगिरि, वैताढ्यगिरि, एक-शृङ्गगिरि, अष्टापदगिरि और विजयार्धगिरि नामक छ पर्वतो का प्रसगानुसार वर्णन किया है। इनमे आरम्भ के दो पर्वत दक्षिणी समुद्र के तटवर्त्ती पर्वत है, और शेष चार पर्वत भारत की उत्तरीय सीमा पर अपना शिर उठाये हुए प्रहरी की भाँति अचल खडे हुए है। अब मै यहाँ उनमे से प्रत्येक का वर्णन धनपाल की उद्भावना के आधार पर प्रस्तुत कर रहा हूँ। लीजिए, सबसे पहले सुवेलगिरि के विषय मे ही पढिए—

सुवेलगिरि

युवराज समरकेतु हरिवाहन आदि राजकुमारो को अपनी समुद्र-यात्रा का सस्मरण सुनाता है कि वह अपनी नौसेना के साथ समुद्र की उत्ताल तरगो को चीरता हुआ और अनुशासनहीन सामन्तो का दमन करता हुआ सुवेलगिरि के समीप पहुँच जाता है। वहाँ पर यह उस पर्वत की रमणीयता को देखकर विश्राम करने के लिए अपनी छावनी डाल देता है। उस पर्वत की हरी-भरी वन-परम्परा दूर से ही दिखाई देती है। उसके ऊँचे-ऊँचे गगनचुम्बी शिखरो से दिशाओं के आयाम छिपे रहते है। वह लम्बा इतना है कि उसका पूर्वी भाग उदयाचल के अचल से और पश्चिमी भाग अस्तावल के छोर से जुड जाता है। डूबते और विखरते हुए मोतियो की चमक से चमकीली समुद्रतट की लहरो की थपेडे उस पर हमेशा पडती रहती है। उसकी तलहटियाँ बडी ही खूबसूरत और दिलबहार है, उनमे तिलक, चम्पा, अशोक और मौलिश्रि के पुष्पित वृक्ष काफी तादाद मे हैं। वहाँ की अमराईयो मे मस्ती भरी कोयलें कूकती रहती है और प्यार भरे भँवरे गुँजार करते रहते है। वहाँ जो सुपारी के पेड हैं उनकी जडो मे समुद्री लहरो के साथ काई (सेवार— एक प्रकार का जलीय पौधा) मे मिलकर वहकर आए हुए मूंगे चिपके रहते है, जो देखने मे बहुत ही अच्छे लगते हैं। राम-रावण-युद्ध के समय समुद्र पर पुल बनाने वाले बन्दरो ने बची हुई पहाडी चोटियो को इधर-उधर फैक दिया था जिससे वहाँ के रास्ते टेढे-मेढे हो गये थे। त्रिजटा कभी-कभी सीता के मन को वहलाने के लिए उसको वही ले आती थी। मन्दोदरी तो अपनी सहेलियो के साथ घूमने के लिए वहाँ प्राय आया करती थी, और मन्दार के फूलो से अठखेलियाँ किया करती थी। वहाँ तपस्वियो के बालक निर्भीक घूमा करते थे, जिससे पता चलता था कि अब रावण का नही, बल्कि विभीषण का राज्य है। उस पहाड पर सुनहरे हिरन बस देखते ही बनते थे। राम-रावण के भीषण सग्राम के अवशेषो से भी वह पर्वत पूरी तरह भरपूर था।[६]

रत्नकूट

यह पर्वत सुवेलगिरि से लगा हुआ ही है। मागलिक दिव्यगीतध्वनि का नौका द्वारा अनुसरण करते हुए युवराज समरकेतु को यह रास्ते मे मिलता है। तारक जो समरकेतु का नौका-सचालक है, बडी रोचकता के साथ इस पर्वत का परिचय देता है। यह पर्वत असीम आश्चर्य का जनक है, दर्शनीय पदार्थो का आदर्श है, और कौतूहलो का स्थान है।

इस पर्वत पर जगह-जगह पर निहायत ही खूबसूरत क्रीडास्थल है, जिनमे विहार करने के लिए देवता भी ललचाया करते हैं। वहाँ सभी ऋतुओ का आनन्द देने वाले वन काफी सख्या मे है। प्रत्येक वन मे रत्नो के समान चमचमाते हुए पुष्पो से लदे हुए कल्प-वृक्ष है। प्रत्येक कल्पवृक्ष पर नागकेसर की लताएँ झूला के रूप मे लटकती रहती है, और प्रत्येक नागकेसर लता पर मस्ती से बैठा हुआ साफ-सुथरे और सुन्दर वस्त्र पहने हुए कोई न कोई विद्याधर-दम्पति आनन्द से झूलता रहता है। इसकी प्रत्येक चोटी पर किन्नरो

द्वारा गाए जाते हुए गीतो की प्यारी-प्यारी ध्वनि सुनाई देती रहती है। जगह-जगह पर झरनो का कल-कल नाद होता रहता है। नदियो के किनारे चमकीली बाल पर रग-बिरगे पक्षियो की चहचहाहट सुनने को मिलती रहती है। यहाँ समय-समय पर ऐसी मादक हवाएँ बहती है जो देवताओ को भी रोमास करने के लिए प्रोत्साहित कर देती है। यहाँ चप्पा-चप्पा चित्त को चैन देता है, प्रत्येक वस्तु आँखो की प्यास बुझा देती है, वृक्षो की छाया मे शरीर की सारी थकान मिट जाती है, फूलो की खुशबू पाकर घ्राणेन्द्रिय तृप्त हो जाती है, वासन्ती हवाओ के झोको से वन-लताएँ महक उठती है, और प्रेम की चर्चा मात्र से प्रेमिकाओ के हृदय सागर मे कामलहरी उठने लगती है।[७]

वैताढ्यगिरि

यह पर्वत भारतवर्ष की उत्तरी सीमा पर स्थित है। तिलकमञ्जरी के पिता और विद्याधरो के चक्रवर्त्ती सम्राट् चक्रसेन की रथनूपुरचक्रवाल नामक राजधानी इसी के अचल मे बसी हुई है। यह बहुत ही ऊँचा है। इसकी किसी भी चोटी पर पहुँचकर आपको स्वर्गलोक हथेली मे, भूलोक पैरो पर और दिशाएँ आँखो के सामने नजर आएँगी। यह जम्बूद्वीप का भाल है और भारतवर्ष का मानसूत्र है। लगता है कि यह आकाशरूपी सागर का पुल है और उत्तरदिशा का हार है। × × × यह सफेद भी बहुत है, इसलिए इसे देखकर ऐसा लगता है मानो यह ताण्डव नृत्य के समय भगवान् शकर की भुजाओ से गिरी हुई पक्तिबद्ध भस्म है, प्रलयकालीन क्षीरसागर से उछला हुआ फेन समूह है, और स्वर्गलोक को देखने की इच्छा से उछला हुआ गगा का धवल प्रवाह है। इसमे कोई सन्देह नही है कि यह समस्त पृथ्वी के भार को धारण करने मे समर्थ होने के कारण शेषनाग के दूसरे रूप जैसा, रत्नो से भरे-पूरे शिखरो वाला होने के कारण क्षीरसागर की रत्नाभूषण-मण्डित भुजा जैसा, पाताल तक धँसी हुई जडो वाला होने के कारण भूमण्डल के आधार-स्तम्भ जैसा, अपनी विशाल तलहटियो से भूभाग को आक्रान्त करने वाला होने के कारण हिमालय का प्रतिद्वन्द्वी जैसा प्रतीत होता है।

लम्बाई मे इसके दोनो किनारे पूर्वी और पश्चिमी समुद्रो से मानो इसीलिए मिलते है कि यह प्यासा है। प्रलय की प्रतीक्षा करने वाले सवर्तक मेघो के पुंज जैसा दिखाई देता है। इसकी धवलिमा को देखकर कैलाश पर्वत भी झेप-सा जाता है। इस पर तमाम झरने है, जिन्हे देखकर लगता है कि एक गगा को प्रवाहित करने वाले हिमालय को नीचा दिखाने के लिए ही यह हजारो गगा-प्रवाहो को जन्म दे रहा है।

इसकी बडी-बडी कन्दराओ के मुँहानो से उठती हुई हवाओ के झोको से ऐसा प्रतीत होता है मानो यह सुमेरु पर्वत की बढती हुई महिमा को सहन न कर पाने के कारण लम्बी-लम्बी साँसे भर रहा है। × × × × वज्राघात से उत्पन्न घावो के समान लाल-गैरिक खदानो मे पडे हुए अजगरो से, जो दूषित रक्त को चूसने मे लगी हुई जोकों के समान लग रहे है, यह कुछ भयानक भी हो गया है। इसकी चोटियो पर कही किरातो का जमघट है; कही सरिताओ के प्रवाह है, कही सिद्ध-मन्दिर बने हुए है, कही अन्धकार-गह्वरो मे झरनो की धाराएँ बहती है, कही-कही दिव्य आश्रम बने हुए है, कही-कही

ताड वृक्षो के सुन्दर-सुन्दर वन है, और कही-कही पर मणिमयी शिलाशय्याएँ पडी हुई है, जिन पर देव-दम्पति वडे इत्मीनान से काम-लीलाएँ करते रहते है। × × × × इस पर्वत पर कही-कही मण्डलाकार वैठे हुए गरुडपक्षी देश-देशान्तरो की चर्चा करते हुए मे नजर आते है, कही-कही पर मदोन्मत्त हाथी अपने प्रतिद्वन्द्वी हाथियो से कुपित होकर अपने दाँतो के प्रहारसे पत्थरो की चट्टाने उखाडते रहते है, कही वादलो को तितर-वितर करते हुए शेर दिखाई देते है, कही मस्ती से नाचते हुए मोर मिलते है, और कही-कही पर जगली भैसे किन्नरो का पीछा करते हुए नजर आते है।[८]

एकशृङ्गगिरि

यह पर्वत वैताढ्य पर्वत से लगा हुआ ही वताया गया है। इसकी एक ही चोटी है, जिसके कारण ही शायद लोग इसे एकशृङ्ग कहने लगे होगे। अपनी ऊँचाई से यह आसमान को नीचा दिखाता रहता है। इसका ऊपरी भूभाग काफी लम्बा-चौडा है, जो कोमल घास और वन-परम्परा से सदैव हरा-भरा रहता है। इसकी ढलानो पर अनेक सिद्धायतन वने हुए है, जिनमे सिद्धो (देवजाति विशेष) के जोडे मगलगान करते रहते है। गगा नदी इसके चारो ओर वहती है। समीपवर्ती आश्रमो मे रहने वाले तपस्वियो ने उसके किनारे-किनारे मणिशिलाओ की वेदिकाएँ वना ली हैं, ताकि उन पर बैठकर वे आराम से समाधि लगा सके। इसके प्रान्तवर्ती भूभागो मे झरनो का कल-कल सगीत होता रहता है। हमेशा ही मयूरो के कूजन से कन्दराएँ भी प्रतिध्वनित होती रहती है, और सुगन्धित फूलो तथा मधुर फलो की यहाँ सदैव भरमार रहती है।[९]

अष्टापदगिरि

यह पर्वत एकशृङ्गगिरि से पूर्वदिशा मे है। वैताढ्यगिरि से यह भी ज्यादा दूर नही है। तिलकमञ्जरी अपने पूर्वजन्म के प्रेमी पति ज्वलनप्रभ के विरह से पीडित होकर घर से निकलकर सवसे पहले यहाँ पहुँचती है। जैनधर्म के वन्दनीय तीर्थकर श्रीनाभितनय ने अपना पार्थिव शरीर यही त्यागा था। अत इसकी महिमा और भी अधिक बढ गई है। इसकी मन्दार, हरिचन्दन और कल्पवृक्षो से सुशोभित तथा गगनचुम्बी चोटियो पर भारतवर्ष के प्रथम चक्रवर्त्ती सम्राट् भरत द्वारा बनवाए हुए अनेक जैन-मन्दिर है, जिनमे तीर्थकरो की सुन्दर-सुन्दर मणिनिर्मित प्रतिमाएँ स्थापित की गई है, और वन्दनमाला के रूप मे जहाँ जगमगाते हुए रग-विरगे असख्य रत्न जडे हुए है।[१०]

विजयार्द्धगिरि

यह पहाड एकशृङ्गगिरि के पास ही उत्तरदिशा मे आसमान को सहारा-सा दिये हुए खडा है। मन्त्र विद्याओ की सिद्धि देने वाला 'चण्डगह्वर' नामक स्थान इसी पर है। अनगरति की समृद्धि के लिए कुमार हरिवाहन यही तपस्या करता है। इसी पर्वत पर एक ऐसी भी चोटी है, जिसके विषय मे वहाँ के लोगो की धारणा है कि वहाँ से गिरकर मरने वाले की कामनाएँ दूसरे जन्म मे पूरी हो जाया करती है। हरिवाहन, अनगरति

और गन्धर्वक आत्मघात करने के लिए उधर ही जाते हैं। इसी पर्वत के उत्तरी अचल मे कुमार हरिवाहन की 'गगनवल्लभ' नामक नई राजधानी वसी हुई है।[११]

धनपाल ने अपनी तिलकमञ्जरी मे उपर्युक्त सभी पहाड़ो का वर्णन करने मे वड़ी सूझ-बूझ से काम लिया है। उन्होने भौगोलिक सीमाओ और रूपरेखाओ का पूरा-पूरा ध्यान रखा है। समुद्रतटवर्त्ती पर्वतो के वर्णन के प्रसग मे वह इस बात के लिए काफी सतर्क रहते है कि किसी भी ऐसी चीज का नाम न आ जाए जो वहाँ पाई न जाती हो। सुवेल और रत्नकूटगिरि के वर्णन को पढकर जहाँ एक ओर पाठक के मन पर भारत की दक्षिणीसमुद्रतटवर्तिनी पर्वतमाला का रूप अकित होता है, वही दूसरी ओर वैताढ्य और एकश्रृङ्ग के वर्णन-प्रसगो मे भारत की उत्तरी सीमा पर सिर उठाए खडे हुए और धरा-गगन के संयोजक पहाडो की शक्ले भी उसकी आँखो के सामने आ जाती हैं। इन प्रसगो मे सचाई को खूबसूरती के साथ पेश करने मे धनपाल ने कमाल कर दिखाया है। जहाँ कही उन्होने सत्य को कल्पना के रगीन पखो पर उडाया है वहाँ भी वह सफल ही हुए है।

अदृष्टपारसरोवर

कादम्वरी मे जो महत्त्व 'अच्छोद सरोवर' का है, तिलकमञ्जरी मे वही 'अदृष्टपारसरोवर' का है। इसके नाम से ही पता लगता है कि इस सरोवर के दूसरे किनारे को कोई देख नहीं सकता है। हवा के झोको से इसमे बडी-बडी लहरे उठती रहती है; कमल पुष्प झूमते रहते है, और हवा के साथ उड़ती हुई पानी की फुहारो से दिशाएँ गीली होती रहती है। इस सरोवर के चारो ओर ऊँचे-ऊँचे किनारे हैं। उन पर वृक्षो की हरी-भरी कतारें हैं, जिनकी चोटियो पर सारस पक्षी बैठे रहते है और नीचे मतवाले मोर नाचते या कूजते रहते हैं। उनमे से बहुत से वृक्षो की शाखाओ को हाथियो के बच्चो ने अपनी सूँड मे खीच-खीच कर तोड डाला है, और बहुत से बन्दर उन पेडो पर फैली हुई लताओ को झूला बनाकर झूलते रहते हैं। × × × इस अथाह सरोवर को देखकर ऐसा लगता है मानो यह त्रिलोकीरूपी लता का पानी से भरपूर आलवाल (जलाधार) हो, पृथ्वी की चमकती हुई नाभि हो, दिशाओ का चाँदी से बना हुआ दर्पण हो, आसमान का प्रतिविम्ब हो, शेषनाग का छत्र हो, पातालवासी शकर का अट्टहास हो, दैत्यराज बलि की कीर्त्तिकौमुदी के निकलने का रास्ता हो, पाताल मे गगा के प्रवेश करने के लिए द्वार हो; × × × × × जलरूप मे परिणत हुआ मेघलोक हो।

इसकी धवलता और निर्मलता को देखकर लगता है कि यह सिन्धुदेश की कामिनियो के कपोलो की······तथा केरल देश की स्त्रियो के दाँतो की कान्ति से वनाया गया है। इसमे उतरने के लिए इन्द्रनीलमणियो से वनी हुई सीढियाँ हैं। वे ऐसी लगती है मानो इसके विस्तार से हार मानकर समुद्र ने अपनी नीली-नीली लहरो को इसे भेट मे प्रदान कर दिया हो। × × × समीपवर्त्ती वृक्षो के लाल-लाल किसलयो के पानी मे पडते हुए प्रतिविम्वो को देखकर इसमे रहने वाली मछलियो को ताजे मांस के टुकडो का धोखा हो जाया करता है। × × × इसमे तरह-तरह के रग-विरगे कमलवनो की भरमार है। कही सुनहरे कमलो से झरते हुए पराग से पानी मे चन्द्रमा की शक्ले बनती हुई नजर

आती है, तो कही माणिक्यमणि के समान लाल कमलो की लालिमा से अरुणोदय की मजुल शोभा देखने को मिलती है, कही मूंगे की लताओ की लालिमा सन्ध्या का दृश्य प्रस्तुत करती रहती है, तो कही नीलकान्तमणि के समान नीले कमलो की कान्ति से रात्रि का प्रारम्भकाल सा प्रतीत होता रहता है, और खिले हुए कुमुदवनो से कही चन्द्रोदय की भी छठा छिटकती रहती है। × × × उठती हुई लहरों के नर्तक, हसो के कलरव, पद्मो के उडते हुए सुरभित पराग, × × × और मँडराती हुई विहगमालाओ से इसकी शोभा मे चार-चाँद लगते रहते हैं। इसकी गम्भीरता, स्वच्छता, विशालता और रमणीयता के सामने मानसरोवर भी तुच्छ है। चाहे जितने जगली हाथी इसमे अवगाहन के लिए घुस पडे, पर क्या मजाल कि पानी जरा भी मैला हो जाए। कारण यही कि इसके चारो ओर किनारो पर खडे हुए कतकवृक्षो के मलनाशक फल इसमे अनायास ही गिरते रहते है × × ×।[१२]

वास्तव मे धनपाल ने अदृष्टपारसरोवर का वर्णन करने मे स्वाभाविकता और विश्वसनीयता का काफी ध्यान रखा है। इसे पढ़ते समय पाठक को ऐसा लगने लगता है जैसे कि वह उसके किनारे-किनारे घूम रहा हो। उसकी आँखो के सामने सारा दृश्य नाच सा उठना है। फलस्वरूप उस अपार, सुन्दर, निर्मल तथा रम्य जलराशि को साक्षात् देखने के लिए भी उसकी आँखे तरस उठती है और मन मचलने लगता है। धनपाल का यह सरोवर वर्णन बाणभट्ट के अच्छोद सरोवर वर्णन से किसी भी मायने मे कम नही है, बल्कि दृश्य की सत्यता और उद्भावनाओ के औचित्य की दृष्टि से धनपाल दो कदम आगे ही लगते हैं।

कल्पवृक्ष वन

युवराज समरकेतु को कुमार हरिवाहन की खोज मे अदृष्टपारसरोवर के बाद जो एक विशाल उपवन मिलता है, यह कल्पवृक्ष वन भी उसीका एक भाग है। कल्पवृक्षो का आकार भी बडा विलक्षण बताया गया है, इसलिए यह वन अतीव आश्चर्यजनक है। ये वृक्ष बहुत हरे-भरे रहते हैं, इनके पत्ते चमचमाती हुई नीलमणियो के समान होते हैं। इसलिए इस वन मे सदैव सघन छाया रहनी है। इन वृक्षो मे कही-कही हवा के झोको से झूमती हुई लताओ के झकोरो से लहराते हुए तमाम रग-बिरगे किसलयो के समान कोमल दिव्यवस्त्र लटकते रहते है, कही-कही चमचमाते हुए आभूषण फूलो के गुच्छो के समान शोभा पाते हैं, कही-कही देवागनाएँ झूला झूलती हुई नजर आती हैं, कही-कही पर यहाँ का भूभाग तारो भरे आसमान जैसा लगता है, क्योकि मधुरस पान करने के पश्चात् विद्याधर-दम्पतियो द्वारा फेके गए मणिमय प्याले यत्र-तत्र बिखरे पडे रहते है। यहाँ तमाम सुनहरे वल्कल भी पडे रहते हैं, जिन्हे बिछाकर सिद्ध महात्मा आराम किया करते है। उन पर जब सूर्य की रोशनी कभी-कभार पडने लगती है तो उनकी चमक बढ जाती है और वे बहुत ही अच्छे लगने लगते हैं। आकाश मे या वृक्षो की चोटियो पर विहार करने वाली वनदेवियो के केश-कलापो से खिसककर गिरी हुई दिव्य मालाओ का सौरभ सब ओर समाया रहता है और सन्ध्याकालीन मेघो के समूह के समान इसकी भी

शोभा देखने में बड़ी प्यारी लगती है।[13]

इसमे तो कोई शक नही है कि धनपाल ने 'कल्पवृक्ष वन' का जो कुछ भी वर्णन किया है वह अपने आप मे काफी भावपूर्ण है। किन्तु यहाँ मैं यह कहने के लिए भी मजबूर हूँ कि उन्होने उदारता और वदान्यता के लिए विख्यात कल्पवृक्षो की मौलिक विशेपता को विल्कुल ही नजर-अन्दाज कर दिया है। पता नही, यहाँ उनके विचारो मे कृपणता कहाँ से आ गई ? तथा उनकी कल्पना के पख क्यो बोझिल हो गए ? मुझे तो लगता है कि शायद कथावस्तु के प्रवाह की चिन्ता मे उनके भाव-प्रसून यहाँ अधखिले रह गए है। क्योकि रससिद्ध लेखक के विषय मे उसके विचारदारिद्र्य की कल्पना कर लेना तो न्यायसगत प्रतीत नही होता।

प्रभात वर्णन

धनपाल ने तिलकमञ्जरी के कथानक की सघटना मे प्रभातकाल की चर्चा अधिक नही तो कम मे कम छब्बीस बार तो की ही है। किन्तु उसका वर्णन केवल पाँच प्रसग मे ही किया है। यहाँ नमूने के तौर पर हम उनके दो प्रसगो को ही लेंगे। उनमे पहला तो उस समय का है जब समरकेतु को गीतध्वनि के अनुसरण की व्यर्थता पर सोचते-सोचते नाव मे समुद्र की लहरो पर ही सवेरा हो जाता है। धनपाल ने इस दृश्य का अंकन इतनी सूक्ष्मता और सजीवता के साथ किया है कि लगता है मानो वह समुद्र के किनारे खड़े हो और अपनी आँखो देखा वर्णन करते जा रहे हो।

एक तो प्रभातकालीन शोभा वैसे ही रमणीय होती है, फिर समुद्र के किनारे तो इसका कहना ही क्या ? लीजिए, पश्चिम दिशा मे चन्द्रमा डूब रहा है, उसकी किरणे ऊपर की ओर उठ रही है और अन्धकार खिसक रहा है। इस दृश्य के वर्णन मे धनपाल का कहना है कि अन्धकार ऊपर उठती हुई किरण रूपी रस्सियो से बँधे हुए चन्द्रमा रूपी लगर को डालकर पश्चिम दिशा रूपी जलपोत से समुद्रीय व्यापारी की भाँति उतर रहा है।

उन्होने समुद्र के क्षितिज पर विलीन होते हुए चाँद का जो उत्प्रेक्षापरक वर्णन किया है वह भी कम हृद्य नही है—

मन्दराचल ने मन्थन के समय निकले हुए रत्नो की जो पोटली बना ली थी मानो वह समुद्र की गर्जना सुनकर उसे ही चाँद के रूप मे इस समय वापिस कर रहा हो और समुद्र उसे पकड़ रहा हो।

प्रभातकालीन सुनहरी धूप, जो आसमान को रँगती हुई धरती पर फैल रही थी, को धनपाल ने चन्द्रमा के विरह से विदीर्ण हुए रात्रि के हृदय से निकले हुए रुधिर के रूप मे उद्भावित किया है। उनकी यह उद्भावना यद्यपि वीभत्स है, किन्तु हिन्दी के सुविख्यात आचार्य कवि केशव के लिए प्रेरणा बन गई, और उन्होने उदीयमान भास्कर को 'शोणित कलित कपाल' कह डाला।[14]

इतना ही नही, बल्कि अन्धकार की पकड से छूटती हुई दिशाओ का, समुद्र के किनारे वृक्षो पर चहचहाती हुई चिडियो के कलरव का, आहार की खोज मे उड-उड़कर

जाते हुए पक्षियो का, मछलियो का शिकार करने की गरज से समुद्र के किनारे आ-आकर एकत्र होते हुए काले-कलूटे धीवर बालको का, काई पर लहराते हुए, चन्द्रकातमणिशिला का सस्पर्श करते हुए, फेन-पटल को फोडते हुए और समुद्र की लोल-लहरियो पर अठ-खेलियाँ करते हुए पवन का, कोमल शय्या का त्याग करके सुवेलगिरि की ढलानो पर अपनी-अपनी हथिनियो के साथ खेलते हुए हाथियो का, × × × किनारे पर पडे हुए शङ्खो और मोतियो का, शीत मे ठिठुरते हुए और इसीलिए धूप मे बैठे हुए जलमानुषो का, लहरो को शान्त करते हुए समुद्र का, उठते हुए सूर्य का और सब ओर फैलते हुए सूर्य के प्रकाश का जो धनपाल ने वर्णन किया है वह स्वाभाविकता, सत्यता एव साहित्यिक रोचकता से ओत-प्रोत है।[९५] इसमे कोई शक नही है कि तथ्य को कलात्मक रीति से प्रस्तुत करने मे धनपाल की कलम बेजोड है।

ग्रन्थ-विस्तार के भय के होने के बावजूद भी गगनवल्लभनगर के पर्यावरण मे किये गए प्रभात-वर्णन की चर्चा किए विना मैं आगे नही बढ सकता। यह वर्णन है तो केवल छ शार्दूलविक्रीडित छन्दो मे, किन्तु इसे पढते समय कालिदास और माघ, जिन्हे प्रभात-वर्णन मे माहिर माना जाता है, की याद बरबश आने लगती है। यहाँ नमूने के लिए एक पद्य काफी है—

उद्यज्जाड्य इव प्रगेतनमरुत्संसर्गतश्चन्द्रमाः
पादानेष दिगन्ततल्पतलतः सङ्कोचयत्यायतान् ।
अन्तर्विस्फुरितोरुतारकतिमिस्तोमं नभः पल्वलाद्
ध्वान्तानायमयं च धीवर इवानूरुः करैः कर्षति ।।

सवेरा हो रहा है। चन्द्रमा सभी दिशाओ के छोर से अपनी किरणे (पाद) समेट रहा है, मालूम होता है कि प्रात काल की हवा के ससर्ग से उसे ठण्ड लग रही है। इसीलिए मानो वह दिशारूपी शय्या पर अपने किरणरूपी पैर समेट रहा है। ठीक भी तो है, सोते-सोते जिसे सर्दी लगती है वह अपने पैर समेट ही लेता है। उधर सूर्य का सारथि भी एक मछुए के समान ही आकाशरूपी सरोवर से चमकती हुई ताराओ रूपी मछलियो से भरे हुए अन्धकाररूपी जाल को अपनी किरणरूपी बाँहो से खीच रहा है।[९६]

वाह, डूबते हुए चाँद का और निकलते हुए सूर्य का क्या ही अनोखा और काव्यमय वर्णन है। पढकर तबियत खुश हो जाती है। यहाँ श्लेष, उत्प्रेक्षा, रूपक और उपमा का सन्निवेश बहुत ही स्वाभाविक और भावोत्कर्षाधायक है।

सन्ध्या वर्णन

तिलकमञ्जरी मे सन्ध्या का प्रसग तो चौदह बार आया है किन्तु वर्णन दो ही स्थलो पर हुआ है।[९७] यद्यपि धनपाल के सन्ध्या वर्णन मे बाणभट्ट के सन्ध्या वर्णन जैसा प्रौढ लालित्य नही है, तथापि पढने वाले के हृदय को आकृष्ट करने के लिए वह काफी है।

प्रथम स्थल पर युवराज समरकेतु हरिवाहन की खोज मे निकलने के लिए कृतसङ्कल्प है। उसी समय सूरज ढल रहा है, अस्तकालीन लालिमा उसमे आ रही है, लगता

मानो वह समरकेतु के यात्रामुहूर्त्त को सूर्य से पूछ रही हो। धूप धरती से उठकर पेडो की चोटियो पर पहुँच गई है, मानो वह यात्रा की शुभ सूचक वन्दनमाला को बनाने के लिए कोमलकिसलय तोड रही हो। सभी पक्षी अपने-अपने घोसले मे शान्त है, मानो कानन-भूमि ने अमगल शब्द की आशङ्का मे उन्हे सुला दिया हो × × ×।[१८]

हालांकि सन्ध्या का यह चित्रण है तो अपने आप मे बहुत थोडा, पर आलकारिक काफी है। धनपाल ने यहाँ अलङ्कार-योजना के साथ ही साथ भारतीय सस्कृति का भी थोडा परिचय करा दिया है। भारत मे ज्योतिषी के पास जाकर अनुरक्त (श्रद्धालु) होकर यात्रा मे शुभ मुहूर्त्त को पूछने की, उसकी सफलता हेतु कोमल-कोमल पत्तो की वन्दनवार सजाने की, और अमगलकारी रोना-धोना, चीख-चिल्लाहट, खासकर छीक आदि से बचने के लिए बच्चो को या तो अलग हटा देने की या उन्हे सुला देने की प्रथा प्राचीनकाल के राजघरानो मे पाई ही जाती थी।

हाँ, दूसरे स्थल पर अवश्य ही इनका सन्ध्या वर्णन विस्तृत भी है और कुछ प्रौढ भी। विरहिणी और तापसी मलयसुन्दरी राजकुमार हरिवाहन को अपने आश्रम मे आश्रय देती है, अपनी सारी जीवनगाथा सुनाती है और इसी समय शाम भी होने को आ जाती है। उस समय आरे से कटे हुए लालचन्दन के खम्भे के तलभाग के समान गोलाकार और लाल-लाल सूर्य को पश्चिम दिशा के किनारे पर डूबते हुए देखकर धनपाल को आकाश की शोभा ठीक वैसी ही प्रतीत होने लगती है जैसी कि छोर मे सुनहरी मुद्राओ के बाँध लेने पर किसी फैले हुए वस्त्र की हो जाती है। पेडो की छाया पूर्व की ओर शायद इसी-लिए बढने लगी है कि उसे उस ओर दिखाई देने वाले अन्धकार का अनुसरण करना है। × × × दिन ढल जाने पर गुजा फल के समान लाल-लाल सन्ध्या सुशोभित हो उठी है मानो यह दीपक के बुझ जाने पर भी अग्नि से व्याप्त उसकी बत्ती हो; × × × अदृष्ट-पार सरोवर का पानी सन्ध्या की लालिमा से रजित हो गया है मानो सूर्य के विरह से विदीर्ण हुए कमलिनी के हृदय के रुधिर से रग गया हो।[१९]

इतना ही नही, बल्कि कही धूप से और कही अन्धकार से आच्छादित हुई चितकबरी धरती का, कमलो की वापियो मे चकोर-चकोरी के पैरो के पास गुनगुनाते हुए भँवरो का, और क्रमश घने अन्धेरे मे डूबते हुए वनप्रान्त आदि का भी धनपाल ने काफी प्रौढ और उद्भावनापरक वर्णन किया है, जिसे पढकर सन्ध्या का न केवल मनोरम रूप ही, अपितु उसका एकान्त शान्त और गम्भीर रूप भी हमारे सामने आ जाता है।

वर्षा वर्णन

तिलकमञ्जरी मे यह प्रसग दो बार आता है, लेकिन विशद वर्णन एक ही स्थल पर है। नायिका से मिलने के लिए नायक बैचेन रहता है। इसी बीच गर्मी के दिन बीत जाते हैं और वर्षा आ जाती है। आसमान बादलो मे घिर जाता है, धरती पर हरी-हरी दूब लहलहा उठती है, शीतल मन्द-सुगन्ध हवाएँ बहने लगती है, हस उत्तर दिशा की ओर बढ जाते हैं; कमल पानी मे गोते लगाने लगते है, सूर्य की किरणो मे शीतलता आ जाती है और केतकी (केवड़े) के वनो मे फूल खिल जाते है। वर्षाकाल के इन नितरां

नैसर्गिक दृश्यो का वर्णन करने मे धनपाल ने अपना एक निराला ही ढँग अपनाया है। उन्होने यहाँ हेतूत्प्रेक्षाओ की जो शानदार झडी लगाई है उसे देखकर उनके कल्पना-सागर मे छिपे हुए विचाररत्नो को बड़े आराम से सँजोया जा सकता है। यहाँ पर मैं उनकी उद्भावन शैली के चन्द नमूने ही पेश कर रहा हूँ, हाँ तो लीजिए, देखिए—

वर्षा मानो इसीलिए आ गई कि ग्रीष्मऋतु की उष्णता तथा तिलकमञ्जरी के विरहानल मे एक साथ झुलसते हुए हरिवाहन के शरीर मे उसे ठण्डक पहुँचानी है, कमलिनी के पत्तो के पुज के समान नीले बादलो ने आसमान को मानो इसीलिए आच्छादित कर लिया कि उन्हे फौव्वारो के पास बैठने की हरिवाहन की इच्छा समाप्त करनी है, धरती मानो इसीलिए शस्य श्यामला हो उठी कि उसे तिलकमञ्जरी को पाने के उपायो की उधेड-बुन मे जागते रहने से हरिवाहन की शिथिल हुई आँखो को सुख पहुँचाना है, × × × हस उत्तरदिशा की ओर मानो इसीलिए चल पडे कि उन्हे उत्तर-दिशा मे रहने वाली विद्याधरराजकुमारी तिलकमञ्जरी को हरिवाहन की विरह-व्यथा जाकर सुनानी है।[२०]

अब आगे उन्ही की भाषा और उन्ही की वाक्ययोजना मे भी चन्द उदाहरण पढिए—

"तद्विरहदाहविच्छेदाक्षमेण पत्रखण्डाडम्बरेण विहितातपत्रपाणीव वर्षासलिल-पूरितासु विलाससरसीषु निममज्जुरम्भोजिनीवनानि। घनधाराभिवृष्टमूर्त्तयस्तदार्ति-दर्शनदुःखिता इव दूरविनतैः पल्लवेक्षणैरम्बुकणिकाश्रुविसरमजस्रमसृजन्नुपवनद्रुमा।··· तस्मिन्नसकृदुत्सृष्टवाणविसरं निवारयितुमिव मकरकेतुमावद्धकुसुमाञ्जलिपुटान्यजायन्त केतकीकाननानि।"[२१]

ऊपर दिए हुए दोनो उद्धरणो से इस तथ्य का भी उद्घाटन होता है कि धनपाल ने अपने इस वर्षा वर्णन को न केवल प्राकृतिक पर्यावरण का, अपितु हरिवाहन के मानसिक पर्यावरण का भी परिचायक बना दिया है, और यह तो स्पष्ट ही है कि इस स्थल पर उनकी कल्पना ने जो उडान भरी है वह काफी ऊँची है, नई है, और आकर्षक भी है।

वसन्त वर्णन

धनपाल ने वसन्त वर्णन किया तो है, पर उन्होने उसे साहित्यशास्त्रीय अलङ्कारो से बोझिल नही होने दिया है। वह वस्तुपरक है; कल्पनापरक नही। उसमे उद्भावनाओ की भव्यता का चमत्कार भले ही न हो पर वातावरण की विश्वसनीयता का सम्बल शत-प्रतिशत है। आरम्भ मे वसन्त ऋतु मे पुष्पित होने वाले आम, सिन्धुवार, तिलक, किङ्किरात, कनैल, कचनार, सदाबहार, अशोक, चम्पा, मौलिश्रि आदि वृक्षो की एक सूची ही दे डाली है। यह वसन्त मे न खिलने वाली चमेली को भी याद रखते है।[२२] यहाँ मुझे हिन्दी के आचार्य कवि केशव की याद आ जाती है।[२३] क्योकि रामचन्द्रिका नामक महाकाव्य मे उन्होने भी पचवटी के वर्णन के प्रसग मे वृक्षो की ऐसी ही अच्छी-खासी और लम्बी सूची प्रस्तुत की है।

बाद मे धनपाल की दृष्टि वसन्त के प्रभाव पर आ जाती है जिसकी अभिव्यक्ति

वह काफी ललित शब्दो में करना चाहते है; और इसमे वह काफी हद तक सफल भी हुए हैं। अमराईयो मे कोयलो की मीठी-मीठी तानो का, सूरज की प्यारी-प्यारी सुनहरी धूप का, धीरे-धीरे छोटी होने वाली रातो का, तालाबो मे खिलते हुए कमलो का, गुलाबी फूलो पर मँडराते हुए भँवरो का और फैली हुई दूधिया चाँदनी का उन्होने जो वर्णन किया है वह अपने-आप मे सौफीसदी सही है।

धनपाल की निगाह काफी पैनी है। मैं तो समझता हूँ कि उनके इस तथ्य-कथ्य से सभी सहमत होगे कि वसन्त मे धर्म को कोई टके सेर भी नही पूँछता; तरुण युवक और युवतियो के मन रिरसा के लिए मचल उठते है; हठीली स्त्रियो की भी हठ छूट जाती है, वेश्याओ के लिए तो दिन मे भी रात ही रहती है; शृगार का सागर सब ओर हिलोरे मारने लगता है; परदेशियो की युवतियाँ जीने की आशा छोड बैठती है, रगीन जवानी सयम की जजीरे तोड़ने लगती है और सभी कुछ खूबसूरत नजर आने लगता है।[२४]

नीचे चौबीसवी सन्दर्भ सख्या मे दिए हुए उद्धरण को देखने से स्पष्ट होगा कि इस वर्णन मे अलङ्कारो का प्रयोग नही किया गया है। लेकिन प्रतिपाद्य विषय की सम्प्रेषणीयता मे फिर भी कोई कमी नही है। यह बहुत बडी बात है। मै तो कहता हूँ कि धनपाल ने अलङ्कारो की सहायता के बिना ही यहाँ वासन्ती वातावरण को बहुत ही ललित एव मनोरम शैली मे प्रस्तुत करके सस्कृत जगत् के अलङ्कार भक्त लेखको के लिए मार्गदर्शन कर दिया है। खैर, कुछ भी हो, उनका वसन्त वर्णन है बहुत ही आकर्षक। सुन्दरता और सुबोधता तो इसमे सचमुच कूट-कूट कर ही भर दी गई है।

मेरा विश्वास है कि इतने वर्णनो को पढकर आप निश्चय ही धनपाल की प्रकृति वर्णननैपुणी से परिचित हो जाएँगे और सस्कृत साहित्य मे उनके लिए निर्धारित किए जाने वाले स्थान के प्रति सहिष्णु एव सवेदनशील हो उठेगे।

सन्दर्भ

१ तिलकमञ्जरी, पृ० १२०-१२२
२. वही, पृ० १०५-१०६
३. वही, पृ० १०६-१०७
४. वही, पृ० १९९-२००
५. वही, पृ० २३३-२३६
६. वही, पृ० १३४-१३६
७. वही, पृ० १४७-१४८
८. वही, पृ० २३९-२४०
९. वही, पृ० २०२
१०. वही, पृ० ४०५-४०६
११ वही, पृ० ३९८ तथा ४०१
१२ वही, पृ० २०२-२०६

१३. वही, पृ० २१३-२१४
१४. रामचन्द्रिका, सस्करण ८, पृ० १८, ना० प्र० स० काशी प्रकाशन।
१५. तिलकमञ्जरी, पृ० १५०-१५२
१६. वही, पृ० २३८
१७ वही, पृ० १९७ तथा ३५०
१८. वही, पृ० १९७
१९. वही, पृ० ३५०
२०. वही, पृ० १७९
२१ वही, पृ० १७९-१८०
२२ वही, पृ० २९७
२३ रामचन्द्रिका, पृ० ६७-६८, ना० प्र० सभा प्रकाशन।
२४. ······मन्थरितप्रथमपुरुषार्थसामर्थ्ये, मिथुनमन्मथमुखसख्यदानदक्षे, दक्षिणाशासमीरणोत्सारितमनस्विनीमानपरागे, रागान्धबन्धकीजनरजनीयमानवासरे, विसारिशृङ्गारसागरप्लावितजगति, जर्जरिताध्वगवधूजनजीविताशे, निरंकुशीकृताभिनवयौवनविकारे······वसन्तसमये······। —तिलकमञ्जरी, पृ० २९७-२९८

द्वितीय सोपान

विविध-वस्तुवर्णन

वस्तु-वर्णन : एक परम्परा

साहित्यकार चाहे पूर्व का हो चाहे पश्चिम का, चाहे सस्कृत भापा का हो चाहे अँग्रेजी भापा का, चाहे हिन्दी का हो चाहे अन्य किसी प्रान्तीय भाषा का, चाहे अतीत का हो चाहे वर्तमान का, पर इतना निश्चित है कि उसकी काव्यात्मक कृति मे प्रधान पात्रो की जीवन-सरिता के प्रवाह मे पडने वाले तथा किनारे पर मिलने वाले प्रमुख-प्रमुख स्थानो, पदार्थों और कार्य-कलापों का रूपात्मक एव प्रभावात्मक वर्णन आपको अवश्य ही पढ़ने को मिलेगा। क्योकि कविहृदय की यह एक ऐसी शाश्वत एवं सार्वभौम सवेदना है जिसे कोई भी उपेक्षित नही कर सकता है। यहाँ वस्तुवर्णन से मेरा तात्पर्य इसी उपर्युक्त प्रकार के वर्णन से है।

अपने सस्कृत-साहित्य मे तो जहाँ जिसको भी जरा भी मौका मिला है वही उसने अपनी कल्पना के पख फैला दिए हैं और वस्तुओ का साङ्गोपाङ्ग वर्णन कर डाला है। वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, अश्वघोप, भट्टि, कुमारदास, श्रीहर्ष आदि मे से कौन ऐसा है जिसने वस्तु-वर्णन न किया हो? सुवन्धु, दण्डी, वाण, भोज आदि गद्य-काव्यकारो मे और त्रिविक्रम आदि चम्पूकाव्यकारो मे तो यह प्रवृत्ति पराकाष्ठा का ही स्पर्श कर गई है। इसी प्रकार हिन्दी-साहित्य मे भी केशवदास, मलिक मुहम्मद जायसी, जयशङ्कर प्रसाद, मैथिलीशरणगुप्त, चतुरसेन आदि ने भी अपनी-अपनी कृतियो मे वहुत ही रोचक एव साहित्यिक रीति से वस्तु-वर्णन किया है।*

चूँकि हमारे आलोच्य महाकवि धनपाल को सुवन्धु, दण्डी और वाणभट्ट जैसे उद्भट गद्यकाव्यकारो की कलात्मक शैली विरासत के रूप मे प्राप्त हुई थी, और साथ ही साथ यह स्वय भी एक वहुत वड़े प्रतिभाशाली और विवेचनाशील कलाकार थे, अत इन्होने भी अपनी रोमाण्टिक कथाकृति तिलकमञ्जरी मे प्रमुख-प्रमुख वस्तुओ का कलात्मक वर्णन करने मे अपनी सुरुचिपूर्ण प्रतिभा को वहुत ही स्वाभाविक एव हृदयावर्जक शैली मे प्रस्तुत किया है। यद्यपि वस्तुवर्णन की यह परम्परा अब शिथिल हो चली है, लेकिन संस्कृत का साहित्यकार दृष्टिकोण मे थोड़ा-वहुत हेर-फेर होने के बावजूद भी, इसे आज भी अपनाए हुए है।

धनपाल और वस्तु-वर्णन

प्रस्तुत सोपान के अगले पृष्ठो को पढकर पाठक के मन मे यह धारणा सहज मे ही बन जाएगी कि धनपाल वस्तु-वर्णन की दृष्टि से अन्य किसी भी साहित्यकार से उन्नीस नही है। कथावस्तु मे प्रमुख-प्रमुख स्थानो, पदार्थों और व्यापारो के स्वरूप मे सजीवता भरने के लिए धनपाल की प्रतिभा सदैव जागरूक रही है। क्योकि इन्हे इस तथ्य पर पूरा-पूरा भरोसा है कि साहित्यकार की वही सृष्टि सहृदयो के हृदयो को चमत्कृत कर पाती है जिसमे प्रमुख पात्रो के देशकाल और कार्य-कलापो का कलात्मक वर्णन होता है। इसीलिए तो उन्होने अपनी तिलकमञ्जरी नामक कथाकृति मे अयोध्या, काची, कामरूप, सिद्धायतन, जिनेन्द्रप्रतिमा, नारी-सौन्दर्य, नारी-चेष्टा, नौ-यात्रा, युद्ध आदि का बडा ही जीता-जागता और कलापूर्ण वर्णन किया है।

मेरी यह भी धारणा है कि आगे के पन्नो मे अयोध्या और काची के वर्णनो को पढकर आपको यह स्पष्ट हो जाएगा कि दसवी और ग्यारहवी शताब्दी मे भारतवर्ष के शहरो का बसाव कैसा था, मकानो की स्थिति कैसी हुआ करती थी, बाजारो और सडको की कैसी-क्या व्यवस्था रहती थी, और लोगो को हवा-खोरी के लिए बाग-बगीचो आदि की क्या कैसी सहूलियत थी।

उन्होने जैन-मन्दिरो और जिनेन्द्र-प्रतिमाओ के उभयात्मक-रूपात्मक और गुणात्मक वर्णनो मे तो कमाल ही कर दिखाया है। लगता है कि तत्कालीन सामाजिक और धार्मिक वस्तु-कला के सवेदनशील सौन्दर्यबोध ने उन्हे पूर्ण रूप से प्रभावित कर दिया है, तभी तो उन्होने उसे अपनी कृति मे बडे चाव से सँजोया है। उनके नारी-सौन्दर्य और नारी-चेष्टाओ के वर्णनो को पढकर यही कहना पडता है कि वह निश्चित ही नारियो की रूपच्छटा और मनोदशा के पूरे-पूरे पण्डित थे। इसीलिए तो वह नारियो की अनुपम रूपमाधुरी और गहरी विचारधारा की सूचक मुद्राओ का वर्णनात्मक चित्र खीचने मे सफल हो सके है। मेरा तो विश्वास है कि धनपाल के इन वर्णनात्मक चित्रो मे यदि कोई कुशल चित्रकार अपनी तूलिका से रग भर दे तो निश्चित ही वह अमर हो जाएगा।

नौ-यात्रा के वर्णन के प्रसग मे वह आज के किसी भी जलयात्रा विशेषज्ञ से होड ले सकते है। उस समय ऐसा लगता है कि जैसे समुद्र मे नाव चलाना ही धनपाल का पुश्तैनी पेशा रहा हो। ऐसे ही उस समय भी इनकी तारीफ किए बिना नही रहा जाता जबकि इनकी रोमानी कलम तूफानी युद्ध का वर्णन करने लगती है। युवतियो के चचल कटाक्षो से सदैव परिचित रहने वाली उनकी लेखनी जब समरकेतु और वज्रायुध के निशायुद्ध मे सनसनाते हुए पैने बाणो का फड़कता हुआ रोमाचकारी वर्णन प्रस्तुत करने लगती है तो पाठको का हृदय पहले तो विस्मय से और बाद मे उनकी बहुमुखी प्रतिभा के प्रति आकर्षण से भर जाता है।

अब मैं आगे के पृष्ठो मे महत्ता, आवश्यकता और ग्रन्थ के कलेवर की समुचितता को ध्यान मे रखता हुआ कही विस्तार से तो कही सक्षेप से, कही धनपाल के ही शब्दो मे तो कही अपने शब्दों मे उनके प्रमुख-प्रमुख वस्तु-वर्णनो को प्रस्तुत करना चाहूँगा, क्योकि

मैं समझता हूँ कि तभी तो पाठकों की इस विषय मे उमडती हुई जिज्ञासा शान्त हो सकेगी। अच्छा, तो बढ़िये और आगे पढिये।

अयोध्या वर्णन

धनपाल ने अयोध्या नगरी का पूरी तरह से पर्यवेक्षण करने के बाद ही उसका वर्णन किया है। उन्होने उसकी जो रूपरेखा हमारे सामने रखी है, वह बहुत ही उदात्त और भव्य है। भला हो भी क्यो नही ? चक्रवर्ती सम्राट् मेघवाहन की राजधानी जो थी। इसीलिए उस समय अयोध्या के ठाठ-बाट कुछ निराले होने भी चाहिएँ। पर आज वह काफी बदल भी गई है। काश ! न बदली होती।

हम देखते है कि उनकी निगाह मुख्य रूप से अयोध्या की चारदीवारी, इमारतो, बाजारो, उद्यानो, सरोवरो, देवालयो तथा स्त्रियो और पुरुषो के रहन-सहन पर गई है। उन्होने अयोध्या के चारो ओर सुरक्षा की दृष्टि से जिस चारदीवारी की बात कही है वह बहुत ही ऊँची और सुदृढ थी, तथा कलई से जगमग होती रहती थी। उस चारदीवारी से बाहरी ओर लगी हुई काफी गहरी और चौडी खाई भी थी, जिसमे अथाह पानी भरा रहता था और तमाम भयङ्कर जल-जन्तु भी तैरते रहते थे। उस खाई के पानी मे सफेद चारदीवारी की जो छाया पडती थी उससे ऐसा लगता था मानो हिमालय पर्वत उसे समुद्र समझकर अपने मैनाक पर्वत को खोजने के लिए उसमे घुस गया हो। चारदीवारी मे चारो दिशाओ की ओर खुलने वाले बडे-बडे चार दरवाजे थे, जिन पर हसो के समान धवल पताकाएँ फहराती रहती थी।[1]

उस समय अयोध्या के भवन भी भव्य थे। उनके चारो ओर ऊँची चारदीवारी होती थी। उसके बाद लहलहाता हुआ हरा-भरा गृह-उद्यान हुआ करता था, जिसके पिछले भाग मे घर के तरुण दम्पति मनोविनोद किया करते थे। वे भवन काफी ऊँचे थे, क्योकि उनमे कई मजिले होती थी। वही कही एक क्रीडासरसी भी हुआ करती थी, जो जल-विहार के काम आती थी। मुख्य-मुख्य द्वारो पर प्रतिहारियो (सेवको या अर्दलियो) के बैठने के लिए ऊँची-ऊँची ड्योढियाँ बनी रहती थी। मकर की आकृति के बने हुए खम्भो मे हरी-हरी वन्दनमालाएँ लटकती रहती थी। भीतर आँगन मे वेदियो पर झूले पडे रहते थे। मणियो से जडी हुई खिड़कियो मे से जो रग-बिरगी चमक निकलती थी, उसे देखकर ऐसा मालूम पडता था मानो निरन्तर जलती हुई धूप के सुगन्धित धुएँ से परेशान होकर दीवालो के चित्र निकल-निकल कर बाहर आ रहे हो। वे हमेशा कलई से पुते रहते थे, इसलिए उनकी धवलता से वहाँ सदैव चाँदनी-सी खिली रहती थी।[2]...... उन भवनो पर फरफराती हुई पताकाएँ बहुत ही आकर्षक होती थी। भवन का ऊपरी भाग पद्मराग मणियो से जडा हुआ होता था, जिसकी लालिमा से चाँद भी लाल रग का दिखने लगता था।[3]

चौराहो पर देवालय बने हुए थे, जिनके चारो ओर कलई से जगमगाता हुआ गोलाकार परकोटा होता था और उनके गुम्बद की नुकीली चोटी पर सोने के कलश चमचमाते रहते थे। इन मन्दिरो को देखने से ऐसा लगता था मानो गौरवर्ण के शेषनाग

अपने मणिमण्डित फन को उठाये हुए कुण्डली मारे बैठे हो। वहाँ के शर्राफा बाजारों की चौडी सडको के दोनो ओर स्वर्णजटित भवन बने हुए थे, जहाँ पन्ना, नीलकान्तमणि, हीरा, नीलम, मोती आदि जवाहरातो के ढेर लगे रहते थे।

अयोध्या की कुलवधुओ का भी धनपाल ने बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है। वे अपने घर-गृहस्थी के काम बडे चाव से करती थी। अपने वश के आचार-विचार का उन्हे पूरा-पूरा ध्यान रहता था। वे कामोत्तेजक भड़कीले वस्त्रो को न पहनकर सादे, पर साफ-सुथरे, वस्त्र पहना करती थी। अपने से बडो की आज्ञा की अवहेलना वे भूलकर भी नही करती थी।[४] उनका व्यक्तित्व सब प्रकार से सौन्दर्यपरक भी था।

धनपाल ने महिला समाज की उन सदस्याओ की ओर भी सकेत किया है जिन्हे लोग वेश्या कहते हैं। उनकी खूबसूरती का क्या कहना ? उनके पैरो की शोभा से कमल (और कमला) तथा उतार-चढाव वाली चिकनी जघाओ से रम्भा (केले के खम्भे और रम्भा नामक अप्सरा) भी झेप जाती थी। चाँद उनके चेहरे की चमक के लिए तरसता रहता था। कामदेव उनके हृदयरूपी सौन्दर्य-सुधासागर मे प्रवेश पाने पर खुशियाँ मनाया करता था। वडे-वडे देवता उनके एक-एक ही अग की शोभा पर दीवाने हो जाते थे। राजा-महाराजा तो उनके एक इशारे पर अपना खजाना भी खाली कर दिया करते थे। उनकी नजर मे जादू था, इसीलिए बडे से वडे पत्थर दिल व्यक्ति भी उनकी तिरछी नजर के शिकार चट से हो जाया करते थे। फलस्वरूप तमाम लोग उनके दरवाजो पर भीड लगाए रहते थे।

वहाँ के लोगो मे अमीर-गरीब का, शिक्षित-अशिक्षित का, अच्छे-बुरे का, धार्मिक और अधार्मिक का भेद करना बडा मुश्किल था, क्योकि सभी साफ-सुथरे उज्ज्वल कपडे पहनते थे, बोल-चाल मे भी होशियार थे, परोपकारी थे; सन्मार्गगामी थे, सभी शास्त्रो के ज्ञाता थे, और अभिमानरहित थे।

सार्वजनिक उद्यान शहर के बाहर थे। भ्रमणशील व्यक्ति थक जाने पर वहाँ पेडो की छाया मे बैठे-बैठे रेहट की मीठी-मीठी घरघराहट सुनते रहते थे। कुछ मनचले तरुण भी अपना काम-धन्धा छोडकर वहाँ आ जाते थे और सुन्दरियो से छेडखानी किया करते थे। उत्तर दिशा की ओर बहती हुई सरयू नदी की छठा से नगर की शोभा दुगुनी हो गई थी। स्नान करती हुई सुन्दरियो के नितम्बो के आघात से उस सरयू नदी मे लहरो की बाढ आ जाती थी। किनारे पर कमलनालो को चोचो मे दावे हुए राजहस ऐसे प्रतीत होते थे मानो उस सरयू नदीरूपिणी नायिका की देखभाल के लिए समुद्ररूपी नायक ने कचुकियो की नियुक्ति कर दी हो।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अयोध्या नगरी सुख और सुविधाओ से सम्पन्न थी। वहाँ किसी प्रकार की कुण्ठाओ का निवास नही था, सभी सुखी थे और सभी प्रसन्न थे।

काञ्ची वर्णन

यह दक्षिणी भारत की एक प्रसिद्ध नगरी है। आजकल इसका नाम काजिवरम् अधिक प्रचलित हो गया है। समुद्र से ज्यादा दूर नही है। धनपाल की दृष्टि मे यह नगरी

भी अपनी सुन्दरता से अनुपम है। जिस तरह से लकापुरी सागर से घिरी है उसी प्रकार यह भी चारो ओर पानी से लबालब भरी हुई खाई से घिरी है। इसकी सगमरमरी चार-दीवारी ऐसी लगती है मानो प्रतिदिन लहरो की थपेडो से उठा हुआ फेनसमूह चारों ओर लग गया हो। सब ओर चौडी-चौडी सडको के दोनो ओर बडे-बडे सेठ-साहूकारो के भव्य भवन हैं, जिनमे नीचे हीरा मोती जवाहरात की आकर्षक दूकाने है। जगह-जगह पर चमचमाते हुए देवालय ऐसे लगते है मानो शरत्कालीन बादलो की छावनी हो। नगर की परिसरभूमि मे सुन्दर-सुन्दर बाग-बगीचो की छटा बस देखते ही बनती है।[५]

धनपाल ने यहाँ के लोगो को खाने-पीने और पहनने-ओढने का काफी शौकीन बताया है। उन्हे कृपालु, धार्मिक, दानी, सदाचारी और स्वाध्यायशील भी बताया है। स्त्रियो को सुन्दर और हाव-भावो से परिपूर्ण चित्रित किया है। यहाँ की द्रविड सुन्दरियो का तो कहना ही क्या ? उनकी कपोलकान्ति के प्रतिबिम्ब से तो चाँद भी रजित हो जाया करता है। इसीलिए तो यहाँ के युवक युवतियो के कपोलो पर कोमलता से दाँत गढ़ाने (दन्तक्षत करने) का पूर्वाभ्यास आम के कच्चे फलो पर किया करते है। धनपाल ने यहाँ इस बात का भी खुलासा कर दिया है कि काची मे युवा पीढी के स्त्री-पुरुषो को उपवनो मे विहार करना, लताकुंजो मे बैठकर गपशप मारना, लवङ्गलता के कोमल-कोमल पत्तो से बनी हुई शय्या पर आराम करना, प्यार-भरी झडपो को खुशी-खुशी बरदास्त करना, सुरत-चिह्नो को आभूषण की तरह मानना, प्रिय जन के अधरास्वाद मे अमृत जैसा आस्वाद समझना, कामसूत्र को मन लगाकर पढना, बाजीकरण (शुक्र-रज स्तम्भन) के लिए तरह-तरह की औषधियो का सेवन करना और आए दिन कामदेव की पूजा करना बहुत ही अच्छा लगता है। अच्छा, लीजिए उन्ही के शब्दो मे पढिए—

यत्र मन्दिरोपवनान्यावासनगराणि, तमालतरुनिकुञ्जाः सदनानि, लवङ्गपल्लव-प्रस्तरा पर्यङ्का., प्रणयकलहा. कलय., नखदशनविन्यासा शरीरभरणमणयः, प्रियावदन-शतपत्राणि पानपात्राणि, कामसूत्रमध्यात्मशास्त्रम्, बाजीकरणोपयोगो व्याधिभेपजम्, अनङ्गपूजा देवतार्चनम्······इति। —तिलकमञ्जरी, पृ० २६०

यहाँ के भवन सदैव अगरबत्तियो के कोमल एव सुरभित धूप से सुवासित रहते हैं, हवेलियो के मणिमण्डित फर्शो पर सुन्दरियो के लाक्षारस रजित चरण कमलो के चिह्न उभरते रहते है, फलस्वरूप कमलपुष्पो के उपहार का मूल्य यहाँ कम हो जाता है।[६]

इस प्रकार हम देखते है कि धनपाल ने काची नगरी के वैभव, विलास और सौन्दर्य का जो सगम पाठको के समक्ष प्रस्तुत किया है वह सचमुच बहुत ही प्रभावोत्पादक है।

कामरूपदेश

तिलकमञ्जरी के विरह से व्याकुल होकर अपना मन बहलाने के लिए राजकुमार हरिवाहन अपने सगी-साथी समरकेतु, कमलगुप्त आदि राजकुमारो को साथ लेकर सेना-सहित पूर्वोत्तर दिशा की ओर निकल पडते हैं और घूमते-घामते शरावती नदी को पार करके कामरूप (आज के कामाख्या अर्थात् आसाम) देश मे पहुँच जाते हैं। इसी प्रसग मे

धनपाल ने वहाँ का कुछ वर्णन किया है।

उनका यह लिखना ठीक ही है कि इस प्रदेश मे धान की खेती खूब होती है। जब हरिवाहन वहाँ पहुँचे तो शरद् ऋतु का साम्राज्य था। इसीलिए उन दिनो वहाँ के खेतो मे धान या तो पक चुका था या पक रहा था। फलस्वरूप धान के खेतो की सुनहरी छटा से ग्राम-सीमाएँ पीताभ हो रही थी। जगली भैसे शरद् की धूप से परेशान होकर छोटे-छोटे जलाशयो के किनारे अगरुवृक्षो की छाया मे बैठा करते थे। सप्तछद (सतौना) वृक्षो पर फूलो के गुच्छे खिल रहे थे, जिनसे वह देश हँसता हुआ-सा नजर आता था। वहाँ के कमलवन पूरी तरह विकसित थे, इसीलिए उनसे निकलने वाले परिमल से दिशाएँ महक रही थी और भँवरे गुँजार कर रहे थे। धान के खेतो की रखवाली करने वाली स्त्रियो की तालियो की आवाज सुनकर फर्र से उडकर टें-टें करते हुए सुग्गो के झुण्डो से राहगीर भौचक्के हो जाया करते थे। लहलहाते हुए गन्ने के खेतो की भी शोभा कम आकर्षक नही थी।[७]

धनपाल ने कुल मिलाकर कामरूप देश का बस इतना ही वर्णन किया है, जो अपने आप मे बहुत ही कम है। भला बताइए कि धान के खेतो, जगली भैसो, सप्तछद वृक्षो, कमल के वनो और सुग्गो के अलावा क्या उस देश मे और कुछ भी वर्णनीय नही है? क्या इतने मात्र से कामरूप देश का पूरा-पूरा चित्र पाठको के सामने आ गया? मैं तो कहूँगा कि कदापि नही, और इसीलिए मुझे बडा ताज्जुब भी है कि धनपाल ने नैसर्गिक सौन्दर्य के साथ ही साथ तन्त्रमन्त्रादिकला मे प्रख्यात इस प्रदेश का चन्द शब्दो मे ही परिचय देकर कैसे सन्तोष कर लिया? उन्हे कथानक को आगे बढ़ाने की ऐसी क्या जल्दी पडी थी जो कामरूप जैसे महत्त्वपूर्ण प्रदेश की पूर्ण अभिव्यजना किए बिना ही किनारा काटकर आगे बढ गए? मैं तो कहूँगा कि यहाँ वह जरा चुक गए। यदि वह यहाँ थोड़ा भी ध्यान देते तो उन्हे इस प्रदेश की नारियो और पुरुषो की सामाजिक, आर्थिक और सास्कृतिक गतिविधियो का विश्लेषण करने मे अपनी प्रतिभा के प्रयोग का स्वाभाविक और पूरा-पूरा अवसर मिलता हुआ नजर आता और मेरा विश्वास है कि सभी पाठक इस प्रदेश की सुन्दर और विस्मयजनक विशेषताओ को बड़े चाव से पढते भी। लेकिन खैर, कोई बात नही, क्योकि यहाँ हम यह भी तो सोच सकते है कि धनपाल ने कथानक के प्रवाह मे पडकर कामरूप देश पर अपनी भरपूर नजर न डाल पाई हो। इसीलिए उन्हे उस देश की एक झलकमात्र ही देकर आगे बढना पड गया हो। यदि ऐसा है तब तो हमे चाहिए कि हम इसमे उनका दोष न मानें और इसे उनके कथाप्रवाह का एक गुण ही मान ले। पर इसमे भी तो कोई शक नही है कि यदि वह वहाँ कामरूप देश का वर्णन जरा जम कर कर जाते तो उनके कथाप्रवाह के अवरोध को भी कोई अनुचित नही बताता।

सिद्धायतन

धनपाल ने मुख्य रूप से जिन तीन सिद्धायतनो (जैन मन्दिरो) का चित्रण किया है उनमे से एक तो अयोध्या मे ही है, एक उत्तरी भारत मे एकशृङ्ग पर्वत पर है, और एक दक्षिणी भारत मे समुद्र के बीचो-बीच पचशैल नामक टापू पर रत्नकूट नामक पर्वत

के पश्चिमी भूभाग मे स्थित है। इनमे भी वास्तुकलाकौशल एव कविकल्पना की दृष्टि से एकश्रृङ्ग पर्वत पर स्थित सुदर्शन नामक सिद्धायतन के वर्णन को प्रथम कोटि मे, पचशैल टापू पर स्थित भगवान् महावीर स्वामी के मन्दिर को द्वितीय कोटि मे और अयोध्या स्थित शक्रावतार नामक सिद्धायतन के वर्णन को तृतीय कोटि मे रखना उचित होगा।

तिलकमञ्जरी के परिशीलन से पता चलता है कि अयोध्या नगरी के बाहर एक सुरम्य उद्यान मे बहुत ही भव्य जैन मन्दिर था। इसमे जैन सम्प्रदाय के प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव की प्रतिमा स्थापित थी। इसकी प्राण-प्रतिष्ठा स्वय देवराज इन्द्र ने की थी,[८] और यही वजह थी कि इस मन्दिर का नाम शक्रावतार हो गया था। यह मन्दिर उद्यान के मध्य भाग मे था और चारो ओर चारदीवारी से घिरा था, साथ ही इसका शिखर भाग भी काफी ऊँचा था और तोरण द्वार भी विशाल था। इस मन्दिर की महिमा भी बहुत थी, तभी तो मेघवाहन जैसे चक्रवर्ती सम्राट् और ज्वलनप्रभ जैसे तेजस्वी देवता भी दर्शन के लिए वहाँ आया करते थे।

धनपाल ने पचशैल नामक समुद्री टापू पर स्थित जिस सिद्धायतन का वर्णन किया है वह अपेक्षाकृत अधिक प्राजल है। यहाँ उनकी कल्पनाशक्ति कुछ उद्भावनात्मक प्रतीत होती है। यह सिद्धायतन लालरग के पत्थरो से बना था। इसका ऊपरी भाग मरकतमणियो से मण्डित था। वास्तुकला की दृष्टि से यह मन्दिर काफी ऊँची कुर्सी (आधार पीठ) देकर बनाया गया था। इसमे मुख्यद्वार से प्रवेश पाने के लिए चन्द्रकान्त-मणियो से बनी हुई तमाम सीढियाँ थी। चारो ओर मणिजटित बराण्डो की निराली ही शोभा थी। उनकी दीवालो पर सुन्दरियो की तमाम प्रतिमाएँ उत्कीर्ण थी, जिन्हे देखकर ऐसा लगता था मानो उस मन्दिर की छटा को देखने के लिए स्वर्ग से परियाँ उतर आई हो। उसके कगूरो पर पद्मराग मणियो के बने हुए कलशो के ऊपर मँडराते हुए काले मेघ बडे सुहावने प्रतीत होते थे। वहाँ इन्द्रधनुष की सतरगी चमक से चमचमाती हुई और हीरो से जडी हुई खिडकियो मे बैठे हुए मयूरो का पता तभी चलता था जब वे बोलते थे। उसके शिखर भाग की ऊँचाई को देखकर ऐसा लगता था मानो वह सूर्य को अपने शोभाकलश के रूप मे धारण करना चाहता है। समुद्र की ओर की सीढियो मे लहरो के थपेड़े लगते रहते थे, उन पर समुद्रीय जलजन्तु भी बैठे नजर आते रहते थे। उसके चारो ओर स्फटिक मणि की धवल दीवाल थी, जिसमे सब कुछ प्रतिबिम्ब होता रहता था। उसके चारो ओर और भी तमाम छोटे-छोटे मन्दिर बने हुए थे, जिनसे उनकी शोभा मे चार-चाँद लग रहे थे।[९]

इसमे कोई सन्देह नही है कि धनपाल ने इस सिद्धायतन का निर्माणनैपुणी की दृष्टि से काफी अच्छा चित्रण किया है। वह पाठक के मन पटल पर अतिविशाल, भव्याकार मन्दिर की रूपरेखा प्रस्तुत करने मे काफी हद तक सफल सिद्ध हुए है। अलङ्कार-निवेशसौष्ठव की दृष्टि से भी उनका वर्णन हृदयावर्जक है। लेकिन उन्होने उत्तराखण्ड के एकश्रृङ्गपर्वत पर स्थित सुदर्शन नामक सिद्धायतन का जो वर्णन किया है वह तो बस देखते ही बनता है। लगता है कि यहाँ उनके कल्पना-सागर मे भाव-तरगो का वेग काफी बढ़ गया है। तभी तो उसमे काव्यात्मकता की गहरी छाप लग गई है। पद्मरागपाषाण

खण्डो से निर्मित उस मन्दिर की लालिमा और उस लालिमा से उत्पन्न देदीप्यमान कांति-स्फटिकमणियो से बने हुए आधारपीठ की धवलिमा, फर्श पर जडी हुई मणियो की आभा आदि को लेकर धनपाल ने यहाँ उत्प्रेक्षाओ की तो झडी ही लगा दी है। भ्रान्तिमान्, श्लेष, श्लेषगर्भा उपमा, विरोधाभास, रूपक आदि अन्य अलङ्कारो का भी वहाँ उन्होने बडी ही उदात्तता के साथ सन्निवेश किया है। अत कहना ही पडेगा कि उनका यह वर्णन बहुत ही प्राचल एव मजुल बन गया है। लीजिए, नमूने के तौर पर धनपाल के ही कतिपय शब्दो मे देख लीजिए—

······ दीपिताशेषदिग्विभागम्, आभोगरुद्धवसुन्धरोत्सङ्गम्, उत्तुङ्गशृङ्गोत्तम्भिताम्बरम्,·· ·· · उद्यानजाड्यपीडया दवाग्निशिखाखण्डमिव पिण्डीभूय स्थितम् अदभ्राभ्रभ्रमिखेदेन सौदामिनीसन्दोहमिव लब्धनिद्रम्, उदधिजलात्यशनदु खासिकया वडवामुखमिवागत्य विश्रान्तम्, उद्दण्डवात्यावर्तवशेन भोगवतीशातकुम्भाम्भोजवनरजोराशिमिवाकाशमुत्पतितम्, अमृतमथनकर्दथितमन्दरक्रोधेन निर्भर्त्स्य वैरोचनिममरशैलमिव पातालमूलान्निर्गतम् अशेषतश्च विसर्पता ·· ··भक्तिभरमुरसुन्दरीसुखावतरणाय सिन्दूरकुट्टिमानीव रचयता, ग्रीष्मवशविजृम्भितरजोरोधाय कुङ्कुमजलासारमिव क्षिपता, गगनकुट्टिमालङ्करणाय जपाकुसुमनिकरानिव प्रकिरता··· ··तरुतलान्धकारतिरस्काराय तरुणातपमिव वर्षता प्रभाजालेन दिवापि ज्वलितौषधिकलापमिव पल्लवित रक्ताशोकमिव कुसुमितपलाशमिव विकसितबन्धूकमिव त प्रदेश कुर्वाणम्, ·······नवप्राकारेण परिवृतम्, अन्त प्राकारभित्ति समन्ततो निर्मितानामतिरम्याकृतीना स्फाटिकानामपि सक्रान्ततरुप्रतिमाभि श्यामायमानकान्तितया मरकतमयानामिव प्रासादानामासादितपरभागै शिखरमण्डलाडम्बरधारिभि प्रतिबिम्बै परिक्षिप्तशिखरम् अग्रशिखरसङ्गिनो मृगाङ्कमणिकलशस्य ज्योत्स्नापटलपाण्डुना द्युतिमण्डलेन महत्त्वचरितार्थतापादनार्थं धृतेन धवलातपत्रेणेव विस्तारितच्छायम्, अच्छमणिकुट्टिमोच्छलत्प्रभापटलनिर्मग्नमूलतया प्लवमानमिव, सुघटितस्फटिकोपलपट्टकल्पितानल्पपीठबन्धात्यच्छतयाऽन्तरिक्षस्थितमिव विभाव्यमानम् ·· ··आयतन ददर्श ।[१०]

स्पष्ट है कि धनपाल ने उपर्युक्त अनुच्छेद मे जिस सिद्धायतन की परिकल्पना प्रस्तुत की है वह अतीव भव्य है। इस मन्दिर की आभा से वहाँ का समस्त भूभाग प्रकाशित बना रहता था, वह विशाल घेरे मे बना हुआ था, और अपने ऊँचे शिखर से आसमान को छूता रहता था। चूँकि इसका निर्माण पद्मरागमणिशिलाओ से किया गया था इसलिए उसकी चमचमाती हुई अरुण आभा को देखकर धनपाल ने इसकी स्थिति पर अपनी उद्भावनाओ का अम्बार लगा दिया है। इस प्रसग मे उनका यह कहना कि—"मानो उपवन की शीतलता से दु खी होकर दावाग्नि का समूह सिमिटकर एकत्रित हो गया है, मानो अनन्त आकाश मे परिभ्रमण करने से थकी हुई विजलियो का झुण्ड सोया हुआ हे, सागर के जल को अत्यधिक मात्रा मे पी लेने से उत्पन्न हुई वेदना से दु खी होकर मानो वडवानल अपने मुख को बाहर निकालकर विश्राम कर रहा है, प्रबल झञ्झावात के झकोरो से मानो पातालगंगा के सुनहरी-कमल-वनो का सारा पराग उडकर यहीं आ गया है, इत्यादि इत्यादि"—सचमुच बहुत ही प्यारा लगता है। इतना ही नहीं,

बल्कि मन्दिर की दूर-दूर तक फैली हुई लाल-लाल जगमगाहट मे— श्रद्धालु सुरसुन्दरियो को आकाश से आराम से नीचे उतरने के लिए सिन्दूरी फर्श की, गर्मी के दिनो मे उडती हुई धूलि को शान्त करने के लिए कुकुममिश्रित जलवृष्टि की तथा वहाँ के वृक्षो के घने अन्धकार को दूर भगाने के लिए उदीयमान सूर्य के अरुण प्रकाश की—उत्प्रेक्षाएँ भी काफी सुन्दर वन पडी है।

उस मन्दिर की चारदीवारी के भीतर किनारे-किनारे और भी अन्य सुन्दर भवन वने हुए थे (इन्ही मे से तो किसी एक मे समरकेतु को गीत गुनगुनाता हुआ गन्धर्वक मिला था।)। खिडकियो मे इन्द्रनीलमणियाँ जडी हुई थी। उनमे बैठे हुए मयूर कूजन करते रहते थे। उन्हे कभी-कभी हवा से लहराती हुई पताकाओ के फर्श पर पडते हुए प्रतिविम्बो मे साँपो की भ्रान्ति हो जाया करती थी और वे झट से उन पर टूट पडते थे। वहाँ के तोतो को सूर्यकान्तमणियो के दानो मे अनार के दानो का भ्रम हो जाया करता था। पक्षियो का शिकारी वाज भी धोखे मे आकर कृत्रिम पक्षियो पर झपट पडता था। कामाकुल कवूतर अपनी ही छाया को कवूतरी समझ बैठता था। चातक पक्षी मोतियो की माला को चाट-चाटकर अपनी तृष्णा शान्त कर लिया करते थे। उस सिद्धायतन मे तरह-तरह के चित्र बने हुए थे, दरवाजे पर विशाल फाटक लगा हुआ था, जगह-जगह पर आराम से वैठने के स्थान वने हुए थे, जिनमे रग-विरगी मणियाँ जडी हुई थी, वहाँ के खम्भे सुनहरी थे; और महरावदार बने हुए दरवाजो मे मणिमालाएँ लटकती रहती थी।[११]

इस प्रकार हम देखते है कि धनपाल ने अपनी उदात्त एव अलकृतशैली मे इस सिद्धायतन का वर्णन करके इसे पाठको के मन पटल पर पूरी तौर से प्रतिफलित कर दिया है। इसके अतिरिक्त उन्होने जैन मन्दिरो की सामान्य विशेपताओ—जैसे कि उनका लाल रग का होना, ऊँची कुर्सी देकर बनना, मुख्य द्वार तक पहुँचने के लिए सीढियो का होना, उनके चारो ओर दीवाल के घेरे का होना, उस घेरे के अन्दर अन्य छोटे-छोटे या तो देवालयो का या फिर निवासोपयोगी प्रकोष्ठो का होना, ऊँचे, शिखरो पर स्वर्णकलश और पताकाओ की सत्ता आदि की भी अच्छी-खासी जानकारी दे दी है।

यहाँ मैं इस रहस्य को भी स्पप्ट कर देना नितान्त आवश्यक समझता हूँ कि उत्तर भारत के एकश्रृङ्ग पर्वत पर कल्पवृक्षो के उपवन के वीचो-बीच वर्णित सुदर्शन नामक जैनमन्दिर को प्रियगुसुन्दरी ने वनवाया था, और इसी प्रकार पचशैल नामक समुद्री टापू के किनारे रत्नकूट पर्वत पर उल्लिखित जैनमन्दिर का निर्माण प्रियंवदा ने करवाया था। चूंकि ये दोनो ही देवकोटि की थी, इसीलिए इनके द्वारा वनवाये हुए मन्दिरो मे वैभव तथा ऐश्वर्य की छटा का लोकोत्तर होना स्वाभाविक ही है। अपने-अपने पति की खोज मे भटकती हुई इन दोनो सहेलियो को जव जयन्त स्वामी नामक एक महात्मा से पूछने पर यह पता चला था कि प्रियगुसुन्दरी को एकश्रृङ्गपर्वत पर, और प्रियवदा को रत्नकूट पर्वत पर पति की प्राप्ति होगी तो ये दोनो तुरन्त ही अपने-अपने लक्ष्य स्थलो पर जाकर देवशक्ति से मन्दिरो का निर्माण कराकर पति-मिलन की आशा मे रहने लगी थी।[१२] काश ! उनकी आशा उनके उसी जन्म मे सफल हो गई होती। पर हुई

नही थी। दोनो को ही दूसरा जन्म लेना पडा। प्रियगुसुन्दरी तिलकमञ्जरी बनी; और प्रियवदा मलयसुन्दरी। तब कही तिलकमञ्जरी को एकशृग पर्वत पर हरिवाहन, जो पूर्वजन्म का उसका पति ज्वलनप्रभ था, मिला,[13] और मलयसुन्दरी को रत्नकूट पर्वत के तटवर्ती समुद्र के किनारे नाव पर बैठा हुआ समरकेतु, जो पूर्वजन्म का उसका पति सुमाली था, मिला,[14] पर वह भी सपने जैसा। खैर कुछ भी हो, महात्मा की बात तो पूरी हुई।

धनपाल ने अपनी तिलकमञ्जरी मे इन तीन सिद्धायतनो के अलावा दक्षिणी समुद्र से घिरे हुए नन्दीश्वर नामक द्वीप मे भी परमैश्वर्य एव सुषमा-सम्पन्न बीस जैन-मन्दिरो की सत्ता की ओर ध्यान आकृष्ट किया है।[15] उन्होने उत्तराखण्ड मे अष्टापद (कैलाश) नामक पर्वत के उपवनो मे भारतवर्ष के प्रथम चक्रवर्ती सम्राट् भरत द्वारा बनवाये हुए और भी अनेक जैन मन्दिरो का वर्णन किया है।[16] लेकिन उन सबका उन्होने सकेतमात्र कर दिया है, कोई काव्यकलात्मक और वास्तुकलात्मक निरूपण नही किया है। वह जानते थे कि समान धर्म वाले पदार्थों का बारबार वर्णन करने मे पिष्टपेषण किंवा पुनरुक्त दोष की झलकती हुई छाया से पाठको के चित्त मे वैरस्य भरने लगता है।

जिनेन्द्र प्रतिमा

तिलकमञ्जरी कथा-काव्य (उपन्यास) मे धनपाल ने कुल मिलाकर—अयोध्या, नन्दीश्वरद्वीप, एकशृग पर्वत, रत्नकूट पर्वत और अष्टापद (कैलाश) पर्वत - पांच स्थानो पर जिनेन्द्र भगवान् के मन्दिरो और प्रतिमाओ का वर्णन किया है। इनमे अयोध्या स्थित जैन मन्दिर की प्रतिमा के रूप-सौन्दर्य के विषय मे उनकी लेखनी, पता नही क्यो, मुखरित नही हुई है। इसके विषय मे हम केवल इतना ही जान पाते हैं कि यह प्रतिमा जैन धर्म के प्रथम तीर्थङ्कर श्री ऋषभदेव की है, और इसकी स्थापना स्वय देवराज इन्द्र ने की है।

हाँ, इस प्रतिमा के गुणो की महिमा पर उन्होने अलबत्ता थोडा-बहुत प्रकाश अवश्य डाला है, जिससे पता चलता है कि वह आदि जिनेन्द्र श्री ऋषभदेवजी ससार का कल्याण करने वाले, लुप्त हुए धर्म का उद्धार करने वाले, सभी के पूजनीय और त्रिकाल-दर्शी है।[17]

धनपाल ने नन्दीश्वर नामक द्वीप मे जिन बीस जैन मन्दिरो की असीम शोभा को देखने के लिए सुमाली नामक देवविशेष को गया हुआ बताया है उनके विषय मे तो उन्होने किसी भी उल्लेखनीय तथ्य पर प्रकाश नही डाला है। किन्तु एकशृङ्ग पर्वत पर स्थित सुदर्शन नामक सिद्धायतन मे स्थापित भगवान् जिनेन्द्र की प्रतिमा का रूपात्मक और गुणात्मक—दोनो ही प्रकार का—परिचय भली-भाँति दिया है। धनपाल की परि-कल्पना के अनुसार इस सिद्धायतन मे गगा की धवल लहरो के समान चन्द्रकान्तमणि जटित सीढियो से चलकर मुख्यद्वार को पार करके दर्शक ज्यो ही अन्दर पहुँचता है त्यो ही उसे सामने ही आदि तीर्थंकर श्री ऋषभदेव की प्रतिमा के दर्शन हो जाते है। इस प्रतिमा की रूप सुषमा अनुपम बताई गई है। यह प्रधान पूजाकक्ष के आन्तरिक भाग मे

ही प्रतिष्ठित होकर वहाँ की शोभा बढाया करती है। उस पूजाकक्ष के द्वार पर दोनो ओर यक्षो की प्रतिमाएँ स्थापित है, दीवालो मे हाथी दाँत की खूँटियो पर धवल चामर लटकते रहते है, एक ओर सिमटे हुए रेशमी झीने पर्दे से प्रतिमा का कुछ भाग ढका हुआ भी कहा गया है, सोने की जजीर में हीरो से जड़ा हुआ घण्टा लटकता रहता है, और धूपबत्तियो का सुरभित धुआँ वहाँ इतना अधिक छाया रहता है कि रत्नदीपको की भी कान्ति मलिन दिखाई देती है। यह प्रतिमा जिस विशाल सिंहासन पर स्थापित है उसमे सूर्य आदि नवग्रहो की, दो हिरनो की और दो सिंहो की मूर्त्तियाँ समानान्तर से उत्कीर्ण की गई है। चूंकि पद्मासन की मुद्रा मे यह अपनी दोनो खुली हुई हथेलियो को गोद मे रखे हुए है इसलिए ऐसा मालूम पडता है मानो गोद मे नई कौपले निकल आई हो। कन्धो तक लटकते हुए घुंघराले बाल ऐसे प्रतीत होते है मानो कालागरु के धुएँ से चित्रकारी की गई हो, लम्बी-लम्बी, भोली-भाली तथा कुछ झुकी हुई पलको वाली आँखे मुखरूपी चाँद की शोभा मे वृद्धि करती रहती है,··· ··इसके पृष्ठभाग मे चमचमाते हुए मण्डलाकार तेजोवलय को देखकर ऐसा लगता है कि मानो सूर्य स्वय ही इसके द्वारा छीनी हुई अपनी कान्ति को वापिस माँगने के लिए इसकी सेवा मे आया हो, चाँद के समान देदीप्यमान तीन छत्र भी इसके ऊपर तने हुए बताए गए है, जिनसे इसके तीनो लोको के ऐश्वर्य की अभिव्यजना होती रहती है, साथ ही साथ इस प्रतिमा के चारो ओर अन्य देवताओ और अप्सराओ की भी तमाम प्रतिमाएँ (या तो दर्शन करने की मुद्रा मे, या दिव्य वाद्य बजाने की मुद्रा मे, या फिर पुष्पवृष्टि करने की मुद्रा मे अथवा प्रार्थना करने की मुद्रा मे) दृष्टिगोचर हुआ करती है। इसकी अर्जना मे सदैव हरिचन्दन और पारिजात के पुष्पो का प्रयोग किया जाता है, ·····तथा इसका निर्माण चिन्तामणिनामक सर्वश्रेष्ठमणियो से किया गया है, और आकार मे भी यह काफी विशाल है।[१८]

धनपाल ने भगवान् श्रीऋषभदेव की इस प्रतिमा को ससाररूपी अथाह सागर को पार करने के लिए मनुष्यो के काम आने वाला एक सुदृढ पुल बताया है (अगाधभवजलधिसेतुबन्धस्य ·····तिलकमञ्जरी, पृ० २१७) उनका यह भी कहना है कि इसकी शरण मे आने वाले प्राणियो को फिर कोई भय भी नही रहता है (शरणार्थिजन्तुसार्थसाध्वसमुष·······वही, पृ० वही।) इतना ही नही, बल्कि उन्होने तो जिनेन्द्र भगवान् श्रीऋषभदेव की इस प्रतिमा को ससाररूपी भयङ्कर जगल मे उतना ही सुखद बताया है जितना कि दावाग्निदग्ध पर्वत पर कल्पवृक्ष, दरिद्र गाँव मे मिला हुआ खजाना और रेगिस्तान मे खिले हुए कमलो का खेत हुआ करता है।[१९]

मैं समझता हूँ कि इतने विवरण से इस प्रतिमा के रूप की माधुरी और गुणो के सागर का पता विज्ञ पाठको को चल ही गया होगा। यहाँ मैं इतना और कह देना चाहता हूँ कि यही वह जैनमन्दिर है जिसके इर्दगिर्द तिलकमञ्जरीकथा के अधिकाश और महत्त्वपूर्ण कथा-भाग के रहस्य का धीरे-धीरे उद्‌घाटन होता है। मलयसुन्दरी अपनी विरहवेदना की शिला को तिल-तिल करके यही काटती है। हरिवाहन और समरकेतु भी घूमफिर कर यही इकट्ठे होते है, और तिलकमञ्जरी की तो वह पहले से ही विहारभूमि है। इतना ही नही, बल्कि यही एक ऐसा सिद्धायतन है जिसकी प्रतिमा को इन सभी पात्रो

ने अपने-अपने श्रद्धासुमन समर्पित किए है। धनपाल ने इस विशाल सिद्धायतन के परिसर मे बने हुए दूसरे मन्दिरो मे अजितनाथ आदि अन्य जिनेन्द्रो की प्रतिमाओ का भी उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है—

"उनमे कुछ तो पुष्पराग (पुखराज) नामक मणियो से बनी हुई थीं, जो सब ओर फैलते हुए अपने तेजोवलय से घिरी हुई जैसी सुशोभित होती थी। कुछ का निर्माण तो पद्मराग नामक अरुणाभ मणियो से हुआ था, पर वे स्थापित थी इन्द्रनीलनामक नीले रग की मणियो से बने हुए सिहासनो पर, इसीलिए वे श्याममेघो के बीच छिपे हुए अरुण सूर्य की शोभा को धारण करती रहती थी। .....कुछ मरकत नामक हरे रग की मणियो से बनी हुई थी, इसीलिए उनके अगो के सौन्दर्य की छवि भी सदैव जलाप्लावित शैवाल की हरीतिमा के समान हरी ही बनी रहती थी,......।"[२०]

इन प्रतिमाओ की भी छवि और महिमा मे इतना प्रबल आकर्षण है कि किसी भी काम के लिए कितनी ही जल्दी मे कोई क्यो न हो, पर इन्हे उपेक्षित करके वह वहाँ से तेजी से निकल नही सकता। तभी तो हरिवाहन के आशुदर्शन की प्रबल उत्कण्ठा लेकर भी समरकेतु इन प्रतिमाओ को देखकर भक्तिभाव विभोर हुए बिना नही रह सका ("......रूपान्तरनिरीक्षणप्रवर्धमानाक्षेपतया मन्दीभूतहरिवाहनदिदृक्षारस., क्षरदमन्दानन्दवाष्पवृष्टिर्ललाटघटिताञ्जलिपुटो गौरवाकृष्टेनेव सुदूरमवनमता मुहुर्मुहुरुत्तमाङ्गेन वन्दमानो......निर्जगाम"—तिलकमञ्जरी, पृ० २२६)।

पाठको को याद होगा कि आगे चलकर मलयसुन्दरी की आत्मकथा के प्रसंग मे हमको पञ्चशैल नामक द्वीप मे रत्नकूट नामक पर्वत के पश्चिमी अचल मे समुद्र के तट पर बने हुए सिद्धायतन मे स्थापित जैन-धर्म के चौबीसवें तीर्थङ्कर श्रीमहावीरस्वामी की प्रतिमा का भी परिचय प्राप्त होगा। यह प्रतिमा देवालयोपयोगिनी भारतीय वास्तुकला के अनुसार मन्दिर के भीतरी कक्ष मे स्थापित थी। इसमे इतना तेज था कि वहाँ के जलते हुए दीपको की आभा क्षीण रहती थी। हाथी, सिह और धर्मचक्र के चित्रो से चित्रित चमचमाते हुए स्वर्णनिर्मित विशाल सिहासन पर यह प्रतिष्ठित की गई थी, इसीलिए यह हाथियो और सिहो के झुण्डो (चक्र) से भरे हुए सुमेरु (स्वर्ण) पर्वत पर प्रकाशमान भगवान् सूर्य के समान सुशोभित होती रही थी। हरिचन्दन और देववृक्ष (कल्पवृक्ष) के ताजे फूलो की मालाओ से इसका पूजन होता था, साथ ही कालागरु का सुगन्धित धूम भी अलग से इसे सुवासित करता रहता था। यह भी अति विशाल थी और हीरो से गढी गई थी, तथा ससाररूपी सागर मे जन्ममरणरूपी भँवरो मे फसे हुए प्राणियो को सहारा देने वाली थी।[२१]

मैं समझता हूँ कि इस सिद्धायतन के तीन ओर बने देवालयो मे भी अन्य अनेक जैनेन्द्रो की प्रतिमाएँ स्थापित रही होगी। पर उन्हे न तो समरकेतु ने ही देखा था और न मलयसुन्दरी ने ही, इसीलिए धनपाल को समरकेतु और मलयसुन्दरी द्वारा कही जाने वाली आत्मकथाओ के प्रसग मे उन प्रतिमाओ के वर्णन करने का अवसर ही नही मिला है, और यह ठीक भी है।

धनपाल ने अष्टापदपर्वत (जिसे लोग कैलाश पर्वत कहा करते है) पर भी कुछ

जैनमन्दिरो की परिकल्पना की है। उनका लिखना है कि इन मन्दिरो का निर्माण प्रथम चक्रवर्ती सम्राट् भरत ने कराया है। राजकुमार हरिवाहन द्वारा उपहार के रूप मे भेजे गए हार को देखकर अपने पूर्वजन्म के पति ज्वलनप्रभ की याद आ जाने से उसकी विरह-वेदना से अभिभूत तिलकमञ्जरी भी अपनी सहेली मलयसुन्दरी, जो स्वय भी हरिवाहन द्वारा ही भेजी गई अँगूठी को देखकर अपने पूर्वजन्म के पति सुमाली की याद मे बैचेन हो उठी थी, के साथ घूमती-घामती इसी पवित्र क्षेत्र मे पहुँची थी और इनके दर्शन उन दोनो ने ही वडी श्रद्धा के साथ किए थे। इन रत्नजटित मन्दिरो मे जो जिन-प्रतिमाएँ स्थापित थी, वे सभी मणिखचित थी।[२२]

इस प्रकार हम देखते हैं कि तिलकमञ्जरी मे जिनेन्द्रो (तीर्थङ्करो) के आयतनो (मन्दिरो) और प्रतिमाओ का वडा ही भव्य और हृदयावर्जक वर्णन किया गया है। इससे पाठक के चित्त पटल पर समय-समय पर जहाँ एक ओर धार्मिक वातावरण का पूरा-पूरा प्रभाव होता चलता है वही दूसरी ओर उस पार भारतीय वास्तुकला के कौशल का भी अङ्कन हुए विना नही रहता।

नारी सौन्दर्य

तिलकमञ्जरी के परिशीलन से यह भी निष्कर्ष निकला है कि धनपाल ने कुलांगना और वारागना—दोनो ही प्रकार की नारियो—के सौन्दर्य का वोध कराया है। धनपाल की दृष्टि इनके अतिरिक्त समाज की उन नारियो की भी ओर गई है जो किसी राजा-महाराजा के महल मे रहकर उसकी तथा रानी, महारानी, राजकुमार, राजकुमारी आदि की सेवा करके अपनी आजीविका चलाती है। मैं समझता हूँ कि तिलकमञ्जरी और मलयसुन्दरी के महलो मे रहने वाली चित्रलेखा, मृगाङ्कलेखा, वन्धुसुन्दरी, तरङ्ग-लेखा महिलाएँ इसी कोटि मे आती हैं।

सर्वप्रथम अयोध्यानगरी के वर्णन के प्रसग मे धनपाल ने वहाँ की कुलवधुओ की रूपमाधुरी का जो विशद वर्णन किया है वह पर्याप्तरूप से उदात्त है। लगता है कि अयोध्या की पौरवनिताओ की शरीरसरचना विधाता ने अपने अवकाश के क्षणो मे बड़े चाव से तथा नाप-तौल से की होगी, क्योकि तभी तो वह उन्हे उभरे हुए उरोज, भरे हुए नितम्व, पतली कमर, चंचल चितवन, कमान की तरह टेढी भौहे, लुभावना शरीर और शरारती यौवन से समलकृत अतएव युवजनमनोमोहक शारीरिक सुषमा दे पाया होगा।[२३]

धनपालकृत उपर्युक्त नारी-सौन्दर्य के वर्णन को पढकर मुझे तो ऐसा लगता है कि उन्हे नारी के शारीरिक सौन्दर्य की पूरी-पूरी परख थी। वह इस बात को भी भलीभाँति जानते होगे कि नारी के शरीर का कौन-सा अवयव किस मुद्राविशेष मे आकर आकर्षक हो जाता है तथा सहृदयो को चमत्कृत करने लगता है। यही कारण है कि उनके नारी-विषयक सौन्दर्यवोध पर कोई विपरीत टीका-टिप्पणी नही की जा सकती है। वे जानते है कि सुन्दरियो के उदर पर पडी हुई तीन सलवटे वडी प्यारी लगती हैं, और जव वे कलाई मे पहिने हुए सोने के कँगनो की मीठी-मीठी झङ्कार से झकृत अपनी वाँह को किसी कार्य-

विशेष से ऊपर उठाती है तो उस समय उभरते हुए और दिखाई देते हुए उनके उरोजो का आकर्षण काफी बढ जाता है।[२४]

उनकी अवधारणा है कि नारियो का मुख कमल जैसा, मुस्कान चाँदनी जैसी, साँसे सुगन्धित, बातें रसीली, आँखे कटीली और रग चम्पई होना चाहिए।[२५] काचीनगरी की नारियो मे उन्होने कुछ ऐसा ही सौन्दर्य पाया था। तिलकमञ्जरी और मलयसुन्दरी के शोभा-सम्पन्न शरीरावयवो का उन्होने जो वर्णन किया है वह तो निश्चय ही पाठको के हृदय मे एक सुखद स्पन्दन भर देता है। इनके चरित्र-चित्रण के प्रसंग से मैं अपने पाठको को इनके रूप की माधुरी का आस्वाद करा चुका हूँ। अत यहाँ उसका पुन. निरूपण एक पिष्टपेषण मात्र समझकर ही नही कर रहा हूँ।

धनपाल ने वारागनाओ के भी सौन्दर्य की खूब हिमायत की है। वह लिखते हैं कि अयोध्या की वारागनाओ के सुन्दर पैरो के समान कमल, और चढाव-उतार वाली चिकनी जाँघो के सामने केले के खम्भे कुछ भी नही थे। उनका रग गोरा था, मुखडा चाँद को भी मात देता रहता था, और शङ्कर की नेत्राग्नि से झुलसा हुआ कामदेव उनके शरीर-सौन्दर्यसिन्धु मे ही शान्ति पाता था। हाँ, इतना अवश्य है कि वारागनाओं का सौन्दर्य वासना को जन्म देता है जबकि कुलागनाओ का शालीनता को। मै समझता हूँ कि धनपाल को भी इस भेद का ध्यान है, तभी तो उन्होने कुलागनाओ के आचार-विचार को भारतीय समाज की सीमा से बाहर नही होने दिया है।[२६]

धनपाल न केवल लौकिक नारी के ही सौन्दर्य के बोध मे पटु हैं, बल्कि वह तो अलौकिक नारी की भी रूपच्छवि का अङ्कन करने मे पूर्णरूप से कुशल है। उन्होने सम्राट् मेघवाहन को वरदान देने के लिए प्रकट हुई लक्ष्मी देवी के व्यक्तित्व का जो परिचय दिया है उसे पढकर हृदय निश्चय ही श्रद्धा से पूर्ण हो जाता है। क्योकि वह सौन्दर्य अलौकिक-शील एव शक्ति से सम्पन्न है इसीलिए पाठक के हृदय मे उसे भोगने की नही, बल्कि पूजने की इच्छा जागरित हो जाती है। उन्होने लक्ष्मी जी के रूप की जो परिकल्पना की है वह सक्षेप मे इस प्रकार है—

"चन्द्रमा की किरणो के धवल सहस्रदलकमल पर वह विराजमान थी। शङ्ख के समान उनकी दूधिया देह की छठा चारो ओर फैल रही थी, उनके पैरो मे कमल की विशेषताएँ थी, सुन्दर सुडौल जाँघो पर उज्ज्वल एव दिव्य परिधान शोभा पा रहा था। उदर पर, शक्तियो की प्रतीक जैसी, तीन सलवटे पड़ रही थी। उभरे हुए उरोजो के ऊपर शङ्खाकार ग्रीवा मे मोतियो का हार शोभा पा रहा था। एक कान पर मन्दारवृक्ष की मञ्जरी महक रही थी। वह अपने बाए हाथ की कोमल अँगुलियो से अपने केशपाश को बारम्बार सम्हाल रही थी। उनका ललाट चन्द्रकला के समान था; होठ गुलाबी थे, आँखे चचल थी और मुख से सुगन्धि आ रही थी।"[२७]

लक्ष्मी देवी के इस उपर्युक्त सौन्दर्य वर्णन मे पवित्रता, पूजनीयता और स्वाभाविकता का जो मजुल समावेश पाया जाता है वह इस बात का प्रबल प्रमाण है कि धनपाल अलौकिक किवा दिव्य नारी-सौन्दर्य की वासनाहीन अभिव्यजना करने मे काफी

कुशल थे। फलस्वरूप हम कह सकते हैं कि धनपाल को भिन्न-भिन्न स्तर की नारियो के सौन्दर्य का पूरा-पूरा बोध था।

नारी चेष्टाएँ

धनपाल ने अपनी तिलकमञ्जरी में नारियो की सहज और स्वाभाविक चेष्टाओ का भी चित्रण किया है। उनकी यह चेष्टाएँ कही तो शृङ्गारपूर्वक अर्थपरक हैं, कही शालीनतापूर्वक त्यागपरक। एक ओर हमे जहाँ अपनी रूपच्छटा के माध्यम से धन के पीछे दीवानी रहने वाली वेश्याएँ मिलती है, तो दूसरी ओर अपने प्यार की रक्षा मे तिल-तिल कट कर मर मिटने की साध रखने वाली मलयसुन्दरी जैसी कुलकुमारियाँ भी दीखती है। चेष्टाओ की तीव्रता की दृष्टि से वह स्थल काफी महत्त्वपूर्ण है जहाँ मलय-सुन्दरी प्रथमबार समुद्र के तट पर जिनेन्द्र स्वामी महावीर के मन्दिर मे युवराज समरकेतु को देखती है। उस समय मलयसुन्दरी की मानस चेष्टाएँ बस देखते ही बनती है। उसके चेहरे की लाज भरी लालिमा, माथे का पसीना, धडकड़ा हुआ सीना और रोमाचित शरीर—इस बात की गवाही दे देते हैं कि मलयसुन्दरी के नन्हे-मुन्ने दिल मे कामदेव ने घुसपैठ शुरू कर दी है। समुद्र के जल की शीतलता को प्रकट करने के वहाने मादक सीत्कार करना, उदीयमान भास्कर की अरुणिमा को कठोर वताने के वहाने अपने झीने दुपट्टे से मुँह को ढकना, सीढियो पर चढने की थकावट के वहाने दीवाल का सहारा लेना, ललकती हुई और सकुचती हुई निगाह से समरकेतु को देखना आदि कुछ कामचेष्टाएँ उसकी ऐसी है जो निश्चय ही उसके दिल मे उठती हुई सिहरन की ओर एक मूक इशारा कर ही जाती है।

. इसी प्रकार अपने प्रेमी युवराज समरकेतु के वियोग से और अप्रिय वज्रायुध के सयोग की सम्भावना से पीड़ित मलयसुन्दरी जव कामदेवोद्यान मे आत्महत्या के लिए अशोकवृक्ष की शाखा मे फाँसी लगाकर लटक जाती है तब उसकी रक्षा मे उसकी सहेली वन्धुसुन्दरी की भी त्वरापूर्ण चेष्टाएँ पढकर पाठक के हृदय की धडकनें तेज हो जाती हैं—

"वह कभी तो अशोकवृक्ष पर चढ़कर फांसी के फन्दे को काटने के लिए अपनी कमर कसती है और असफलता मिलने पर तेजी से डाली को नीचे की ओर खीचकर तोडना चाहती है; कभी पेड की चवूतरिया पर चढकर अपने हाथ फैलाकर फन्दे की गाँठ खोलना चाहती है, कभी फन्दा काटने के लिए तेजी से धारदार शस्त्रादि ढूंढने लगती है, कभी मलयसुन्दरी के गले को राहत पहुँचाने के लिए उसे उचकाने (ऊपर को उठाने) लगती है, कभी उसके सहारे के लिए नीचे पत्थरो का ढेर लगाने लगती है, और कभी निराश होकर फूट-फूटकर रोने लगती है।"[२८]

कहना न होगा कि उसकी इन स्वाभाविक और करुण चेष्टाओ का पाठक के हृदयपटल पर गहरा प्रभाव पड़ता है। यहाँ तो ऐसा लगता है जैसे कि धनपाल ने यह प्रसग वन्धुसुन्दरी के हृदय मे प्रवेश करके ही लिखा हो।

इसी प्रकार जब प्रशान्तवैर नामक आश्रम मे प्रवास के दिनो मे मलयसुन्दरी

जहरीला फल खाकर दुबारा आत्महत्या करना चाहती है तब उसके साथ उसकी देखभाल के लिए नियुक्त की गई वृद्ध दासी तरगलेखा की भी करुण चेष्टाएँ काफी मार्मिक है।

वैताढय पर्वत पर मलयसुन्दरी के आश्रम मे जब तिलकमञ्जरी हरिवाहन से मुलाकात करती है तो उसकी शृगारपरक एव लाजभरी मौन चेष्टाएँ भी बहुत ही प्रभावशालिनी दीखती है। हरिवाहन को कटाक्षपूर्ण आँखो से देखना, मारे लाज के पानी-पानी हो जाना, फिर भी प्यार से पान खिलाना आदि उसके व्यवहारो को देख-देखकर पाठको के हृदय का पुलकित होना स्वाभाविक है। जब वह हरिवाहन को अपने महल मे लिवा ले जाती है और उसे अपनी सहेली मृगाङ्कलेखा की देख-रेख मे महल मे ही ठहरा लेती है तब तो वह थकावट का बहाना बनाकर अपने महल की सबसे ऊँची अटारी पर बनी हुई शयन-चित्रशाला मे जाकर उस खिडकी मे कमल के पत्ते बिछवा कर लेट जाती है जहाँ से यह छिपे तौर से हरिवाहन को देखती रह सके और इसी प्रकार कुछ तृप्ति का अनुभव कर सके।

भोजन के उपरान्त तोते के रूप मे आए हुए, पर दिव्यवस्त्र के सस्पर्श से अपने असली रूप मे परिवर्तित हुए गन्धर्वक के द्वारा लाए हुए पत्र मे समरकेतु की हालत पढ-कर जब हरिवाहन मलयसुन्दरी और तिलकमञ्जरी से विदा लेकर अपनी छावनी लौट जाता है, तब भी उसके वियोग मे तिलकमञ्जरी के सारे क्रियाकलाप बहुत ही भावना-पूर्ण होते है। वह उन सभी स्थानो को वडे प्यार से देखती है जहाँ हरिवाहन जरा भी रुके है। उन्ही की याद मे वह वीणा का अभ्यास करती है, उनके चित्र बनाती है, नृत्यादि का आयोजन करती है, और बारम्बार गन्धर्वक से अयोध्या मे हुई बातचीत के विषय मे पूछा करती है। उसकी यह सभी चेष्टाएँ उसके हृदय-सागर की गहराइयो मे उठती हुई प्रेमतरगो की प्रतीक है।

तिलकमञ्जरी के महल मे कुछ नारियाँ सगीत के अभ्यास मे मग्न रहा करती थी, कुछ कविगोष्ठी का आनन्द लिया करती थी, कुछ चौसर के खेल मे मस्त रहती थी, कुछ याचको की माँगो को पूरा करने मे लगी रहती थी, और कुछ अन्य युवतियाँ ऐसी भी होती थी जो तिलकमञ्जरी से मिलने के लिए यो ही सुबह से वहाँ आ पहुँचती थी। लेकिन हरिवाहन के स्वागत की तैयारी मे ये सभी जुट जाती है। उनमे कोई तो फूल-मालाएँ तैयार करने लगती है, कोई महल की सफाई-पुताई और रँगाई मे लग जाती है, कोई मणिजटित फर्श पर कमलपुष्प बिछाने लगती है तो कोई वन्दनमालाएँ सजाने लगती है, कोई मागलिक ऐपन की रचना करने लगती है तो कोई अगलेप तैयार करने लगती है, कोई चन्दन की भस्म से शीशे साफ करने लगती है तो कोई मादक पेयरस तैयार करने लगती हैं, कोई स्नानसरसी मे सुगन्धित पानी भरने लगती हैं तो कोई कामदेव का भोग लगाने चल पडती है। इस प्रकार उन नारियो की इन त्वरापूर्ण चेष्टाओ को धनपाल ने वडे ही कौशल के साथ अभिव्यक्त किया है। इस स्थल पर उनकी प्रत्यक्षा-त्मिका शैली, वस, देखते ही बनती है।[२६]

हम यहाँ चक्रवर्ती सम्राट् मेघवाहन के राजकुमार हरिवाहन के जन्म की खुशी पर रीति-रिवाज मे कुशल वृद्ध महिलाओ के निर्देशन मे वहाँ की नारियो के—'चन्दन से

प्रसूतिका गृह के आँगन को लीपना, वहाँ जगह-जगह पर रत्नो के चूर्ण से स्वस्तिक के चिह्नो को बनाना, दरवाजो पर आम के कोमल पत्तो से वन्दनवार को सजाना, कक्ष के भीतरी भाग मे खिले हुए कमलपुष्पो को बिछाना, सब ओर शान्तिदायक अभिमन्त्रित जल को छिडकना, सद्योजातशिशु के कल्याण के लिए पष्ठी देवी आदि षोडश-मातृकाओ को आहूत और स्थापित करना, प्रसूतिका की शय्या को अभिमन्त्रित करना आदि'— कार्यकलापो को भी नजर-अन्दाज नही कर सकते हैं। क्योकि ये भी अपने आप मे काफी एव रोचक बन पडे है।[30]

इनके अतिरिक्त काची और रगशाला नामक नगरियो की नारियो की भी चेष्टाएँ उपेक्षणीय नही हैं। इन्हे पढकर हृदय मे नारियो के स्वाभाविक कार्यकलापो की पूरी-पूरी जानकारी हो जाती है। वास्तव मे यह धनपाल की अनोखी विशेषता है कि वह पहले तो पात्र की मनोभूमि एव कर्मभूमि का गम्भीर विश्लेपण कर लेते है और फिर तदनुकूल ही उसके कार्यकलापो की परिकल्पना को जन्म देते है, ताकि पढने वालो की चित्तभूमि पर एक लहलहाता हुआ विश्वासरूपी अंकुर उत्पन्न हो सके।

नौ-यात्रा

धनपाल ने अपनी तिलकमञ्जरी मे नौ-यात्रा का बहुत सजीव वर्णन किया है। सिंहलद्वीप के युवराज समरकेतु दुष्ट सामन्तो के दमन के लिए अपनी नौ-सेना लेकर समुद्रीय विजय-यात्रा पर निकले हैं। उनकी नौका का नाविक तारक है, जो नौ-सचालन मे अद्वितीय है, और इसीलिए जो सभी मल्लाहो का सरदार बनाया गया है।

अठारह पृष्ठो के इस प्रसग के स्वाध्याय से जहाँ समरकेतु की वीरता का पता चलता है वहाँ यह बात भी साफ जाहिर हो जाती है कि धनपाल को नौ-यात्रा की अच्छी-खासी जानकारी थी। समुद्र की उछलती हुई लहरो की छाती पर नाव द्वारा लम्बी सफर करने के लिए जो भी सुरक्षात्मक पूर्व-प्रयत्न किए जाने चाहिएँ, उन सबका ज्ञान धनपाल को है। तारक के माध्यम से उन्होने यह स्पष्ट कर दिया है कि नौ-यात्रा की नाव सभी प्रकार से मजबूत होनी चाहिए, उसमे कही भी किसी भी प्रकार की कोई भी कमजोरी नही रहनी चाहिए, उसकी सहायता के लिए छोटी-छोटी दूसरी नौकाएँ भी यदि साथ मे हो तो और भी अच्छा रहता है। खाद्य सामग्री, पेयजल, सूखा ईंधन, गर्म कपडे, औपधि आदि परमावश्यक एव परमोपयोगी वस्तुएँ भी पर्याप्त मात्रा मे अपने साथ ले लेनी चाहिएँ, क्योकि क्या पता टापू कब मिले ? मिलने पर भी वहाँ ये वस्तुएँ मिले या न मिले ? यदि मिले तो वहाँ से भी इन्हे फिर पर्याप्त मात्रा मे सचित कर लेना चाहिए। जल मे रहने वाले हिंसक जन्तुओ से मुकाबिला करने के लिए अस्त्र-शस्त्रो का भी होना जरूरी है। धार्मिक दृष्टिकोण रखने वाले समुद्रयात्री को चाहिए कि वह समुद्र और नाव को प्रणाम करके ही यात्रा शुरू करे, ऐसा करने से उसे आत्मबल और आत्मविश्वास मिलता है।

पर्वतक नामक किरातराज को रात मे छापा-मार लडाई मे परास्त करके लौटते समय रास्ते में सेनापति ने युवराज के पास अन्नि नामक भटपुत्र के द्वारा जो प्रस्ताव भेजा

है उससे धनपाल की यह धारणा भी प्रकट हो जाती है कि जब मल्लाह थक गया हो, उसे नीद आने लगी हो, हवा भी विपरीत चल पडी हो और खाने-पीने की सामग्री भी कम हो तो अवश्य ही किसी न किसी अतिसमीपवर्ती टापू पर विश्राम के लिए रुक जाना चाहिए; ताकि वहाँ अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके।

समरकेतु की इच्छा और आज्ञा से रात मे नौका द्वारा गीतध्वनि का अनुसरण करते हुए तारक ने अपने अन्य साथी मल्लाहो को नौ-संचालन के जो संकेत दिए है, वे एक नौ-यात्री के लिए बडे काम के है। रात मे मगरो, घडियालों, गोहो आदि से बचे रहने के लिए नौ-यात्री को चाहिए कि वह मशालो को जला ले; और जहाँ तक बने उन हिंसक जलजन्तुओ से नाव को दूर ही रखे। अगर कोई मगर आक्रमण करने की तैयारी मे ही हो तो उसके सामने खौलता हुआ तेल पानी मे फेंकना चाहिए; ताकि उनका हौसला पस्त हो जाए। तैरते हुए बड़े-बडे कछुवो से भी नाव को दूर रखना चाहिए, क्योकि इनकी पीठ पर आई नाव कही की कही पहुँच सकती है। तिमिगिल नामक दीर्घकाय मछली से तो बहुत ही सावधान रहना चाहिए; क्योकि इसका गुस्सा बडा खतरनाक होता है। इसलिए इससे बचने के लिए शान्त रहकर अपनी सत्ता का भी आभास नही होने देना चाहिए। नाव को भयङ्कर भँवरो की चपेट से दूर रखना जरूरी है। यदि हवा का तूफान चल पडे तो नाव के ऊपर तने हुए कपडे को चट-पट उतार लेना चाहिए और लगर डाल देना चाहिए। फिर जब तूफान की तेजी खत्म हो जाए तभी आगे बढना चाहिए। यदि हवा के छोटे-मोटे ही झोंकोरे हो तो तुरन्त पाल की रस्सियो की देखभाल कर लेना ही काफी है, जिससे कि पाल हवा मे उखड न सके। साथ ही नाव की भी देखभाल करते रहना चाहिए। यदि कही किसी छेद मे नाव मे पानी भरने लगे तो फौरन उसमे ऊन से मिला मोम भर देना चाहिए ताकि छेद बन्द हो जाएँ। रात मे दिशा ज्ञान के लिए सप्तर्षिमण्डल पर भी नजर रखना जरूरी होता है।[31]

धनपाल ने उस समय का भी बहुत स्वाभाविक और रोचक वर्णन किया है जबकि समरकेतु की नौ-सेना रत्नकूट नामक पर्वत की तराई मे डेरा डालने के लिए समुद्र के किनारे लगती है। उस समय सभी को जल्दी मचती है। इसीलिए धक्कम-धक्का भी खूब होता है। जल्दबाजी मे कोई समुद्र के पानी मे ही गिर पडता है, कोई लड्डूओ को समुद्र के खारे पानी से सुरक्षित नही रख पाता है, किसी की मोटी गुदडी को समुद्र मे गिरते ही तिमिङ्गिल मछली निगल जाती है, कोई नाव से किनारे पर आने के लिए वही से छलाँग भर लेता है, इससे उसके पैरो मे चोट आ जाती है; कोई घाट छोडकर कुघाट उतरते है, उनको ग्राह से पकडे जाने का डर रहता है, किसी-किसी का तो पैर ही कछुवे ने पकड रखा है और जब तक उसके मर्मस्थान पर चोट नही पहुँचाई जाती तब तक वह छोडता ही नही है, कोई-कोई विशालकाय और चुपचाप बैठे हुए समुद्रीय मेढक को पाषाणशिला समझकर उसी पर बैठ जाता है, पर वह मेढक एकदम उछल पड़ता है और उसे गहरे पानी मे गिरा देता है।[32]

इस प्रकार हम देखते है कि महाकवि धनपाल ने अपनी तिलकमञ्जरीकथा मे नौ-यात्रा के सभी पहलुओ पर बहुत ही अच्छे ढँग से विचार कर लिया है। लगता है कि

उन्हे समुद्रीय यात्रा का अनुभव रहा होगा। इसीलिए वह उसकी रमणीयता एव भयङ्करता—दोनो से ही—भलीभाँति परिचित मालूम पडते है। इसमे कोई सन्देह नही है कि उनका यह नौ-यात्रा का विवरण सभी को सहज और हृदयावर्जक प्रतीत होगा।

युद्ध वर्णन

यद्यपि तिलकमञ्जरी एक रोमांटिक उपन्यास है, किन्तु धनपाल ने इसमे रोमानी वातावरण को अत्यधिक सङ्घर्ष एव सवेदना से परिपूर्ण बनाने के लिए युद्ध की भी सर्जना की है। सर्वप्रथम हमको सम्राट् मेघवाहन और यक्ष के सवाद से पता चलता है कि मेघवाहन ने अपने साम्राज्य विस्तार के दिनो मे सैंकडो युद्ध किए है और उनमे उन्हे अद्वितीय सफलता मिली है। परन्तु उनके इन युद्धो का धनपाल ने कोई भी विवरण नही दिया है। जहाँ तक युद्ध के याथातथ्य विवरण की जिज्ञासा है उसके लिए तो तिलकमञ्जरी के केवल दो ही स्थल प्रस्तुत किए जा सकते हैं—उनमे एक तो है वज्रायुध के साथ कांचीनरेश कुसुमशेखर का युद्ध एवं समरकेतु का निशायुद्ध, और दूसरा है अपने राज्य के दुष्ट सामन्तो का दमन करने के लिए समरकेतु की समुद्रीय युद्ध-यात्रा का वर्णन।

पाठको को विदित है कि मेघवाहन की आज्ञा से उनका प्रधान सेनापति वज्रायुध दक्षिणापथ के राजाओ को पराजित करता हुआ काचीनरेश पर धावा बोल देता है। वहाँ लगातार कई दिनो तक घमासान युद्ध होता है। उसमे योद्धाओ का विपक्षीय योद्धाओ को चुनौती देना, सिंहनाद करना, नुकीले पत्थरो को पूरी ताकत से फैंक-फैंक कर शत्रुओ को घायल करना, पैंदल सैंनिको को तितर-बितर करने के लिए उन पर यन्त्रो द्वारा खौलता हुआ तेल फैंकना, सुरक्षा के लिए खाइयाँ खोदना, जलती हुई घास को हाथियों के हौदो पर फैंकना और फिर हौदो मे आग लग जाने से महावतो का कूद-कूद कर भागना, आग उगलने वाले बाणो की वर्षा करना और कुल्हाड़ी से फाटको को तोडना आदि बहुत ही सशक्त शब्दो मे वर्णित किया गया है।[33] इतना ही नही, जब समरकेतु अचानक ही रात के दूसरे पहर मे वज्रायुध की सेना पर अपनी सेना लेकर टूट पडता है, तब तो युद्ध की भयङ्करता अपनी सीमा का अतिक्रमण करने लगती है। धनपाल ने इस युद्ध-प्रसग का वर्णन इतना सजीव और इतना यथार्थ किया है कि लगता है कि वह उस समय समरकेतु के साथ ही रहे हो, जैसे कि शिवाजी के साथ भूषण रहा करते थे। उन्होने इस प्रसग मे लिखा तो बहुत कुछ है पर यहाँ हम उसके कुछ सक्षिप्त नमूने ही दे सकेंगे, जो इस प्रकार हैं—

"अथ निशीथानुभावभासुरेण विपममुन्मीलता निमीलता च दीपिकानिवहेन पिशुनितम्, अमञ्जुगुञ्जत्काहलम्, आकर्ण्यमानतारपरुषहयह्रेपारवम्, इतस्तत. श्रूयमाणगम्भीरगजगर्जितम्, आवेगतर्जिताश्वैर्वारवारमश्ववारैरावेद्यमानागमनम्, अग्रस्कन्धताडितोद्धुरसमरढक्कम्, अढौकत चक्षुप पथि प्रतिपन्थिबलम्। अविरलनिरस्तशरनिकरशीकरासारडामर च तद् दुर्वाररभसम्, उद्दामकलकलव्याप्तसकलदिङ्मुखम्,

अभिमुखप्रधावितेन जलदागमक्षुभितम् अमरापगापूरजलमिव लवणजलधिना प्रत्युद्गतास्मद्वलेन ।"[३४]

प्रस्तुत उद्धरण मे समरकेतु और वज्रायुध की सेनाओ की मुठभेड का वर्णन किया गया है। समरकेतु की सेना मशालो की रोशनी मे आगे बढती चली जा रही थी। बडी-बडी भेरियो की भयङ्कर गटगटाहट, घोडो की रोबीली हिनहिनाहट और हाथियो की भीषण चिघाड से वह सेना बहुत ही खतरनाक लगने लगी थी। बाणो की निरन्तर बौछार करती हुई और हो-हल्ला मचाती हुई समरकेतु की सेना के वेग को रोक पाना कोई हँसी का खेल नही था। लेकिन फिर भी वज्रायुध की सेना ने उसमे डीक वैसे ही टक्कर ली जैसे कि गगा की प्रबल धारा से समुद्र टक्कर लिया करता है।

इसके बाद उन दोनो सेनाओ मे जो घमासान युद्ध हुआ उसका आँखो देखा जैसा वर्णन करते हुए धनपाल लिखते हैं—

"वे दोनो सेनाएँ एक दूसरे के सहार के लिए कमर कसे हुए थी, उस लडाई को देखने वाले प्राणी काँप उठे थे, ऐसा लगता था जैसे कि दो समुद्रो मे टक्कर हो रही हो। पैदल सैनिक बादलो के समान रुधिर की वर्षा कर रहे थे; डाकिनी, शाकिनी आदि पिशाचियाँ बहुत खुश हो रही थी और रुधिर पान करने के लिए प्याले के स्थान पर राजाओ की खोपडियाँ खोज रही थी, वीर रस मे सराबोर हुए राजा लोग अन्धा-धुन्ध युद्ध कर रहे थे ·····मरे हुए योद्धाओ की चर्बी पी-पीकर शृगालियाँ खूब मग्न हो रही थी;······भाले उल्काओ के समान चमक रहे थे, गदाओ की चोट वज्र जैसी पड रही थी,····· तीक्ष्ण चक्र प्रलयकालीन सूर्य के समान घूम रहे थे, बछिया बिजली की तरह चमक जाती थी,······। उस समय हाथियो की चिघाड, घोडो की हिनहिनाहट, रथो की चरमराहट, धनुषो की टङ्कार, टूटती हुई पताकाओ की चरपराहट, छूटते हुए बाणो की सनसनाहट, ······और नगाडो की गडगडाहट से सारा ब्रह्माण्ड चिल्लाने सा लगा था, अट्टहास सा करने लगा था और विदीर्ण सा होने लगा था।"[३५]

समरकेतु और वज्रायुध का जो परस्पर बाण-युद्ध हुआ है उसका वर्णन करने मे धनपाल ने यद्यपि आलङ्कारिता का सहारा लिया है, क्योकि बाणो की मछलियो, राहगीरो, देवताओ, अश्वो आदि से श्लेष के माध्यम से उपमाएँ दी गई है, फलस्वरूप वीररस की अनुभूति मे थोडा व्यवधान भी होने लगा है, किन्तु फिर भी उनका यह अनुच्छेद उपेक्षणीय नही कहा जा सकता। लेकिन जिस समय समरकेतु वज्रायुध को चुनौती देकर अपने प्रखर-शरो की अनवरत वृष्टि करने पर उतारू हो गया है उस समय के सनसनाते हुए उसके बाणो का वर्णन करने मे तो धनपाल ने सचमुच कमाल ही कर दिखाया है। उदाहरण प्रस्तुत है—

"···तदेतर्हि कृत्वा मन सविशेषावधान प्रहर सर्वात्मना, विधेहि च स्वशक्त्या महात्मन् आत्मनो रक्षाम्। एप मुच्यसे ··· 'समक्ष ·· ··सामन्तलोकस्य मर्त्यलोकावाससौख्येन, इति व्याहरन्नेव वेगाकृष्टचापयष्टिरुत्पातजलधर इव जलधारासारम्,··· ···स्तूयमानमिव सुभटशस्त्रपातरणितेन, प्रणम्यमानमिव भूमिनिक्षिप्तमूर्धभि कवन्धै., अर्च्यमानमिव निपतदातपत्रकुसुमै स्यन्दनै क्षिप्यमाणलाजमिव मुक्तासृग्वृष्टिभि प्रहार-

व्रणै ,…मूकं मांसभेदे, मन्दं मेदसि, मुखरमस्थिषु, मन्थर स्नायुग्रन्थिष्वसख्यमसृजन्मार्गण-व्रातम् । अतिवेगव्यापृतोऽस्य तत्र क्षणे प्रोत इव तूणीमुखेषु, लिखित इव मौर्व्याम्, उत्कीर्ण इव पुङ्खेषु, अवतसित इव श्रवणान्ते तुल्यकालमलक्ष्यत वामेतर पाणि ।"[३६]

मैं समझता हूँ कि धनपाल को इस बात की भी अच्छी-खासी जानकारी है कि युद्ध-आरम्भ करने के पूर्व आक्रान्तपक्ष को क्या कैसी तैयारी कर लेनी चाहिए। क्योकि उन्होने वज्रायुध से आक्रान्त होने पर कुसुमशेखर द्वारा युद्ध की तैयारी का बहुत ही अच्छा, उपयोगी और स्वाभाविक वर्णन किया है। वह लिखते है कि—"उस समय कुसुमशेखर ने (खाने-पीने की) सभी आवश्यक सामग्री को इकट्ठा कर लिया था (ताकि युद्ध के दिनो मे अकाल न पड सके), राजधानी की चारदीवारी और खाई को ठीक करा लिया था (ताकि शत्रु घुस न सके), पास के गाँवो को खाली कराकर उन्हे तहस-नहस करा दिया था (ताकि दुश्मन वहाँ डेरा न जमा सके), शहर के बाहर के तालावो को नष्ट करा दिया था (ताकि शत्रुओ को पानी की सुविधा न मिल सके), …शहर के सभी पुराने कुओ और वापियो की सफाई करा ली थी (ताकि अपने पक्ष के लोगो को पानी की कमी नही पडे), सभी निर्बल व्यक्तियो को बाहर किसी सुरक्षित स्थान पर पहुँचा दिया गया था (ताकि वे पराजय के क्षणो मे दुश्मनो का शिकार न बन सके),… …अपरिचित व्यक्तियो का आना-जाना रोक दिया गया था (ताकि कोई गुप्त भेद शत्रु तक न पहुँच सके), राजमार्गो पर अतिविश्वसनीय एव सतर्क सैनिको को गस्त देने के लिए नियुक्त कर दिया गया था (ताकि अपने पक्ष के लोगो मे सुरक्षा की भावना बनी रहे), खाई के पीछे जगह-जगह पर पत्थरो के छोटे-छोटे टुकड़ो, जिन्हे हाथ से फेंका जा सके, का ढेर लगवा दिया गया था (ताकि उनकी मार से आगे बढते हुए दुश्मनो को दूर से ही लौटने को मजबूर किया जा सके), अश्वारोही सैनिको द्वारा देखभाल कराई जाने लगी थी, खाई के ऊपर जगह-जगह पर यन्त्रचालित अस्त्रो को रखवा लिया गया था (ताकि शत्रुओ पर दूर से ही प्रहार किया जा सके), और सहायता के लिए मित्र राजाओ के पास प्रतिदिन प्रधान सन्देशवाहक भेजे जा रहे थे।[३७]

इसमे कोई सन्देह नही है कि धनपाल ने उपर्युक्त स्थल पर सामरिक-सुरक्षा की दृष्टि से अतिमूल्यवान् सकेत दिए हैं, जो आज के भी युग मे उपेक्षित नही किए जा सकते।

इस प्रसग के अतिरिक्त समरकेतु की नौ-समर यात्रा के दौरान मे भी सुवेलगिरि के आस-पास द्वीपो मे रहने वाले सामन्तो के साथ समरकेतु के युद्ध की चर्चा की गई है। किन्तु वह प्रत्यक्षवर्णनात्मक न होकर सूचनात्मक ही है।[३८] अत वर्णन की दृष्टि से वह महत्त्वहीन है। इसी प्रकार पत्रलेखा के साथ चित्रलेखा की बातचीत के सिलसिले मे वैताढ्यगिरि स्थित वैजयन्तीनगर पर जितशत्रु द्वारा किए गए अचानक और भयानक निशा-आक्रमण का और युद्ध का पता लगता है।[३९] पर है वह भी सूचनात्मक ही। अत युद्ध-वर्णन की दृष्टि से धनपाल का कौशल केवल वज्रायुध और कुसुमशेखर, एव वज्रायुध और समरकेतु के युद्ध वर्णन मे ही सिमिट कर रह गया है, जो मैं समझता हूँ कि ठीक भी है। क्योकि यदि सभी प्रसंगो मे युद्ध का साङ्गोपाङ्ग वर्णन किया जाता तो

तिलकमञ्जरीकथा 'प्रेम-कथा' न बनकर निश्चय ही एक अच्छी-खासी अनचाही 'शौर्य-कथा' बन जाती।

सन्दर्भ

१ टिप्पणी—शोध-प्रबन्ध के कलेवर की अनावश्यक वृद्धि के विचार से इन सभी साहित्यकारो के वस्तु वर्णनो को उनकी कृतियो से उद्धृत नही किया गया है। जिज्ञासु जन यदि चाहे तो, उनकी कृतियो को देख सकते है। —लेखक

१. तिलकमञ्जरी, पृ० ७-८

२ धृतोद्धुरप्राकारपरिवेषैरभ्रङ्कषप्रतोलिभिरुत्तुङ्गमकरतोरणावनद्धहरितवन्दनमालै-र्दोलाविभूषिताङ्गनवेदिभिरश्रान्तकालागुरुधूपधूमाश्लेपभयपलायमानदन्तवलभिका-भित्तिचित्रानिव विचित्रमयूखजालकमुचो माणिक्यजालकान् कलयद्भिरद्भुताकारै-रनेकभूमिकाभ्राजिष्णुभि सौधै प्रवर्तिताविरतचन्द्रोदया……। —वही, पृ० ८

३. वही, पृ० १२

४. वही, पृ० ९

५. वही, पृ० २५९-२६०

६. सक्रान्तकान्तवनितानवकुकुमार्द्र पादारविन्दपदमण्डललाञ्छितासु।
हर्म्याग्रभूमिपु सुधाधवलासु यस्या व्यर्थीभवन्ति विकचाम्बुरुहोपहारा ॥
—तिलकमञ्जरी, वोटाद—सौराष्ट्र प्रकाशन, भाग ३, पृ० १७५

७. तिलकमञ्जरी, नि० सा० प्र०, पृ० १८२

८. वही, पृ० ३९ तथा ४०

९. वही, पृ० १५४-१५५

१०. वही, पृ० २१४-२१५

११. वही, पृ० २१५

१२. वही, पृ० ४०७-४०८

१३ वही, पृ० २४८ तथा ३६२-३६३

१४ वही, पृ० २७६-२९२

१५. वही, पृ० ४०

१६. वही, पृ० ४०५-४०६

१७. वही, पृ० ३९

१८. वही, पृ० २१६-२१७

१९. शुष्कशिखरिणि कल्पशाखीव, निधिरधनग्राम इव, कमलखण्ड इव मारवेऽध्वनि।
भवभीमारण्य इह, वीक्षितोऽसि मुनिनाथ! कथमपि ॥ —वही, पृ० २१८

२० वही, पृ० २२६

२१ वही, पृ० २७५

२२ वही, पृ० ४०५-४०६

२३. "अस्ति···कुचकुम्भयोरपि कदर्थ्यमानाभिरुद्धतया, मणिभूषणानामपि खिद्यमानाभिर्मुखरतया,···अलसाभिर्नितम्बभारवहने, तुच्छाभिरुदरे, तरलाभिश्चक्षुषि, कुटिलाभिर्भ्रुवोः, वतृष्णाभिरङ्गशोभायाम्, उद्धताभिस्तारुण्ये······अलंकृता वधूभि.······अयोध्या···नगरी।"
—तिलकमञ्जरी, पृ० ९

२४. वही, पृ० ११५

२५. वही, पृ० २६०-२६१

२६. वही, पृ० ९

२७. वही, पृ० ५४

२८. वही, पृ० ३०७-३०८

२९. वही, पृ० ३७२-३७३

३०. वही, पृ० ७३

३१. वही, पृ० १३० से १४७

३२. वही, पृ० १३९-१४०

३३. वही, पृ० ८३

३४. वही, पृ० ८६-८७

३५. वही, पृ० ८७

३६. वही, पृ० ९०

३७. वही, पृ० ८२

३८. वही, पृ० १३०-१४७

३९. वही, पृ० ३४२

६

तिलकमञ्जरीकथा में चित्रित विविध वातावरण

सामाजिक वातावरण का प्रतिविम्ब

धनपाल की 'तिलकमञ्जरीकथा' के स्वाध्याय मे मुझे इस प्रश्न का भी समाधान मिला है कि ईसा की दशम शताब्दी के उत्तरार्द्ध और ग्यारहवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे भारतीय समाज की स्थिति क्या और कैसी रही होगी। क्योकि धनपाल एक संवेदनशील कवि थे। समाज का प्रतिविम्ब उनके निर्मल मनोदर्पण पर पूरी तौर से प्रतिफलित हो चुका था। अत उनकी लेखनी से वही लिखा गया है जिसका कि उन्होंने समाज मे साक्षात्कार किया था। हाँ, लिखने की शैली अलबत्ता उनकी अपनी ही है। तो अब लीजिए, मै अपने शब्दो मे उनकी 'तिलकमञ्जरीकथा' के आधार पर तत्कालीन समाज की समीक्षा प्रस्तुत कर रहा हूँ।

यद्यपि वह समाज राजतन्त्रात्मक था और सारे भारतवर्ष मे राजाओ और महाराजाओं का ही शासन चलता था, लेकिन फिर भी वह था बहुत खुशहाल। प्रजा अपने राजा से असन्तुष्ट नही रहती थी, राजा भी अपनी प्रजा की भलाई का सदैव ध्यान रखते थे। मेघवाहन, कुसुमशेखर, चन्द्रकेतु आदि नरेशो की शासन-पद्धति का वर्णन इस तथ्य का ज्वलन्त प्रमाण है।

उस समय के भी समाज मे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नाम से चार जातियो के निर्देश मिलते हैं। ये जातियाँ अपने-अपने जातीय कार्यों के करने मे ही गौरव का अनुभव करती थी। इस जातिप्रथा की कठोरता के कारण ही विवाह के लिए वर-कन्या का सजातीय होना आवश्यक था। इसीलिए अन्तर्जातीय विवाहो को लज्जाजनक समझा जाता था। तभी तो तारक को, जो कि एक वैश्य का पुत्र था, शूद्र जाति की कन्या के साथ प्रेमविवाह कर लेने के कारण अपनी वैश्य जाति को छोडना पड़ गया था।[1] जातियो मे कार्यसाङ्कर्य नही पाया जाता था। क्षत्रिय दान देना जानते थे, लेना नहीं, इसकी उम्मीद तो ब्राह्मण से ही की जाती थी। इसीलिए तो ज्वलनप्रभ ने मेघवाहन को मुक्ताहार स्वीकार कर लेने के लिए बडी लम्बी-चौडी भूमिका बाँधी थी और काफी मिन्नत भी की थी।[2] मेघवाहन द्वारा विद्याधरमुनि के भव्य स्वागत को तथा उनके मन्त्र

प्रयोग को, प्रशान्तवैर नामक आश्रम के कुलपति की गन्धर्वदत्ता और मलयसुन्दरी के प्रति वात्सल्य भावना को, कांचीनगरी मे आए हुए महात्मा के साथ गन्धर्वदत्ता के वार्तालाप को, तथा तिलकमञ्जरी और मलयसुन्दरी के अतीत के पतियो एव बर्तमान के प्रेमियो के विषय मे विस्तृत जानकारी देते हुए विद्याधर मुनि के ही सान्त्वना वचनो को पढ़कर यह तथ्य भलीभाँति उभर कर सामने आ जाता है कि उस समय का समाज ऋषियो, मुनियो और साधु-महात्माओ पर श्रद्धा एव विश्वास करता था। क्योकि थे भी वे लोग सच्चे और सिद्ध तपस्वी। उनमे न तो पाखण्ड था और न छल-प्रपच ही। वे शरणागत एव जिज्ञासु व्यक्तियो की ईमानदारी से पूरी-पूरी सहायता किया करते थे। इसीलिए तो जरूरत पडने पर उस समय के राजा-महाराजा भी इन महात्माओ के सहारे इनके आश्रमो मे अपनी सन्तान को सर्वथा सुरक्षित समझकर भेज दिया करते थे। मलयसुन्दरी इस तथ्य का ज्वलन्त प्रमाण है।[3]

लोग वृद्धो और ब्राह्मणो का आदर करते थे। उनकी शुभकामनाओ का मूल्य समझते थे। सम्राट् मेघवाहन अपनी राजधानी के वृद्ध पुरुषो से बडी शालीनता के साथ बात किया करते थे।[४] ब्राह्मणो की माँगो को पूरा करने का वह काफी ध्यान रखते थे। राजकुमार हरिवाहन[५] और युवराज समरकेतु[६] भी ब्राह्मणो के प्रति श्रद्धा रखते है। वह समाज विधि के विधान पर भी खूब विश्वास रखता था। कुमार कमलगुप्त ने तो इसकी तुलना निरकुश और बलवान् सर्प से की है।[७] विद्वान् अपनी प्रज्ञारूपिणी जजीर से इसे बाँधने की चाहे जितनी कोशिश करे पर सब बेकार जाती है।

भौतिक सुख समृद्धि की दृष्टि से वह समाज अच्छा ही कहा जाएगा। लोगो के पास धन-दौलत की कमी नही थी। अयोध्या और कांचीनगरियो का वैभव इन्द्रपुरी को भी मात देता था। हीरा, मोती, जवाहरात आदि की कमी नही थी। यदि कहा जाए कि घी-दूध की नदियाँ बहती थी, तो भी कोई अत्युक्ति नही होगी।[८] अयोध्या और काची के भवनो तथा जैन-मन्दिरो और जैन देव-प्रतिमाओ की बनावट को देखकर वास्तुकला और स्थापत्यकला की उत्तम प्रगति का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। चित्रकला-कौशल भी अपनी उन्नति कर रहा था। उन दिनो का चित्रकार चित्र मे रग की योजना, भावनाओं की अभिव्यक्ति, शरीर की सुगठित सरचना, वातावरण की पृष्ठभूमि, आकर्पण की भिन्न-भिन्न विधाओ आदि का पूरा-पूरा ध्यान रखता था। गन्धर्वक द्वारा बनाया गया तिलकमञ्जरी का चित्र और उस पर राजकुमार हरिवाहन की समीक्षा, मैं तो समझता हूँ कि, सभी को दर्शनीय और माननीय होगी।[९]

काव्य-कला के विकास के लिए कविगोष्ठियो के आयोजन भी हुआ करते थे, जिनमे गूढ प्रहेलिकाओ, चित्रगत या प्रश्नोत्तरगर्भित या बिन्दु मात्रा अक्षर आदि से रहित कविताओ को सुनाने और समझने की प्रतियोगिताएँ हुआ करती थी।[१०] फलस्वरूप उस समाज में काव्य-कला प्रौढ थी, किन्तु वह उस अन्तिम सीढी पर भी पहुँच रही थी जहाँ से आगे चलकर उसे फिसलकर चकनाचूर हो जाना था। सगीतकला के प्रति भी लोगो मे काफी सवेदना थी। युवराज समरकेतु का मन तो सगीत की ध्वनितरगो पर ऐसा नाच उठा था कि वह अँधेरी रात और गरजते हुए सागर की भी परवाह किए बगैर

तारक के साथ चल पड़ा था।[11] वीणा और वेणु वादन मे स्त्रियाँ ही नही, बल्कि पुरुष भी निपुण थे। हरिवाहन के सम्मोहक वीणावादन से तो पाठक परिचित है।[12]

ग्रामीण जनता उस समय भी भोली-भाली थी। जरा भी किसी को ठाट-बाट मे देखती, तो उसके बारे मे बडी ही ऊँची कल्पना कर लेती थी। युवराज समरकेतु की सेना को देखकर ग्रामीणो की जिन चेष्टाओ का वर्णन किया गया है, उनसे उनका निरा भोलापन ही टपकता है। पालतू पशुओ को देखकर उनकी कीमत का अन्दाज लगाना, पूछने पर भी डर के मारे जवाब न देना, पास के व्यक्ति को भी अँगुली के इशारे से बताना, हाथियो और घोडो की उछल-कूद पर भागना या फटाफट तालियाँ बजाकर हँसना, शहर के लोगो को देखने के लिए ललकना, भीड लगाना और खाना-पीना छोड़ देना आदि उस समय के ग्रामीण समाज की सरलता के परिचायक है।[13]

यह तो मै लिख ही चुका हूँ कि तत्कालीन समाज कलाओ की दृष्टि से काफी विकसित था। पर यहाँ मैं यह भी कह देना उचित समझता हूँ कि उस समाज मे पढे-लिखे लोग अपने विचारो को ताडपत्रो या भोजपत्रो पर लिखा करते थे। हरिवाहन ने वैताढ्य पर्वत से कमलगुप्त और समरकेतु के लिए जो पत्र लिखा था वह ताड़ीपत्र पर ही था।[14] युवराज समरकेतु ने अयोध्या से गन्धर्वक के हाथो जो पत्र मलयसुन्दरी के पास भिजवाया था, वह भी ताडवृक्ष के पत्ते पर ही था।[15] उन दिनो केवल सस्कृत भाषा मे ही नही, बल्कि अन्य प्रातीय भाषाओ मे भी ग्रन्थो का निर्माण शुरू हो गया था। युवराज समरकेतु को अपनी विजय यात्रा मे उपहार के रूप मे जहाँ तमाम धन प्राप्त हुआ था, वहाँ उसे ताडीपत्र पर ही हाथ से लिखी हुई उपर्युक्त प्रकार की अनेक पुस्तके भी मिली थी।[16] ठीक भी तो है उस समय तक न तो मुद्रण यन्त्र थे और न आज जैसे कागज का ही आविष्कार हो पाया था। पर इतना होने के बावजूद भी ग्रन्थो के रचना कार्य मे कोई शिथिलता नही थी।

उस समय के समाज मे महिलाएँ केवल 'भोग' की सीमा मे ही सिमिट चुकी थी। उन्हे पति के घर की चारदीवारी के अन्दर ही अपनी सारी जिन्दगी बितानी पडती थी। बाहर क्या हो रहा है? और कैसा हो रहा है? इसकी जानकारी उन्हे नही हो पाती थी। घरेलू काम-काजो के करने मे ही उन्हे अपना मन बहलाना पडता था। भडकीले रग का कपडा तो उनके नसीब मे ही न था। क्योकि यदि वे किसी प्रकार के चटकीले-भडकीले वस्त्र पहिनती थी तो समाज उन्हे तुरन्त ही 'वेश्या' की उपाधि देने पर उतारू हो जाया करता था। उन दिनो महिलाओ को घरेलू कामकाजो के साथ ही साथ सास-ससुर की सेवा भी खूब करनी पडती थी, और अपने पति की काम-पिपासा को शान्त करने मे तो उनके कर्त्तव्य की 'इतिश्री' ही समझ ली जाती थी। आप चाहे अयोध्या की कुलवधुओ को देख ले या चाहे काची की नई नवेली नारियो को, चाहे अतिमानवीय परिवेश मे रहने वाली और परियो को भी मात देने वाली विद्याधरियो को देख ले, या चाहे तो गाँव की गोरियो को देख ले, पर इतना निश्चित है कि आपको ये सभी स्त्रियाँ आर्थिक दृष्टि से निहायत ही पराधीन मिलेगी।

पत्नी के रूप मे भी, उस समय, नारी की स्थिति पति की अनुकम्पा पर ही निर्भर

करती थी। साधारण परिवार की स्त्रियो को तो जाने दीजिए, आप मदिरावती और गन्धर्वदत्ता को लीजिए। ये दोनो ही महिलाएँ राजपरिवार की उत्तम महिलाएँ है, और दोनो ही पटरानी के गौरवपूर्ण पद को सुशोभित करती है। लेकिन फिर भी हम देखते है कि इतना होने के बावजूद भी ये महिलाएँ सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्र मे अपनी स्वय की कोई भी अहमियत नही रखती है। इन्हे भी चौबीसो घण्टे अपने-अपने पति की आज्ञा या इच्छा के परिवेश मे ही रहना पडता है। लक्ष्मी जी के साथ मेघवाहन की बातचीत को पढकर यह निष्कर्ष सहज मे ही निकल आता है कि मेघवाहन को अपनी अन्य पत्नियो की नाराजी की तो जरा भी परवाह नही थी।[१७] हाँ, मदिरावती का, अलवत्ता यह ख्याल जरूर रखते थे। इसका कारण निश्चय ही उसकी अनुपम सुन्दरता और पतिभक्ति ही थी, न कि केवल पत्नीत्व। क्योकि वह हमेशा ही उन्हे अपने अद्वितीय-रूप और मधुर प्यार का प्याला पिलाती रहती थी, जिसमे उनके यौवन की अतृप्त प्यास शान्त बनी रहती थी, उसके साथ काम-क्रीडाओ मे उन्हे अनिर्वचनीय आनन्द मिला करता था; और अपने जीवन की सार्थकता का सतत अनुभव होता रहता था।[१८] गन्धर्व-दत्ता की स्थिति तो प्रत्यक्ष ही है। वह कहने-सुनने को तो पटरानी है, किन्तु अपने भावी पति के निर्णय के प्रतिकूल अपनी पुत्री का भी हित करने मे वह विचारी लाचार है।[१९]

पुत्री के रूप मे भी उस समय की नारी को अपने भावी पति को रिझाने के लिए ही पढ़ाया-लिखाया जाता था, और इसीलिए उसे नृत्य-गान आदि ललित कलाएँ ही सिखाई जाती थी।[२०] मलयसुन्दरी के याद दिलाने पर तिलकमञ्जरी हरिवाहन को प्रसन्न करने के लिए अपनी सीखी हुई ललितकलाओ के अभ्यास मे ऐसे मनोयोग से जुट जाती है जैसे कि उसे कोई इम्तहान पास करना हो।[२१] मलयसुन्दरी की आत्मकथा पढते समय जब मुझे यह लिखा मिला था कि काचीनरेश कुसुमशेखर ने अपनी बेटी मलयसुन्दरी के जन्म की खुशी मे ऐसा जलसा मनाया था जैसाकि लोग बेटे के जन्म की खुशी मे मनाते है ('तातोऽपि•• पुत्रजन्मसदृशमतिमहान्तमुत्सवमकारयत्'— तिलकमञ्जरी, पृ० २६३), तो मुझे यह समझकर महान् दु ख हुआ था कि आज की भाँति उस समाज मे भी लोग पुत्र-जन्म पर जितनी प्रसन्नता प्रकट करते थे, उतनी पुत्री के जन्म पर नही। माना कि आज वर-पक्ष से दहेज माँगने की कुप्रथा के कारण समाज मे पुत्री का जन्म वहुत नही तो कुछ मायने मे एक अभिशाप जैसा ही होगया है, पर ताज्जुब तो यह है कि उस युग मे इस कुप्रथा के न होने के वावजूद भी पुत्री का जन्म, पुत्र के जन्म के समान सुखद नही माना जाता था। इसलिए यदि हम इसे नारी की हीन दशा न कहे, तो क्या कहे? हाँ, इतना अवश्य है कि उन दिनो क्षत्रियो मे स्वयवर की प्रथा माननीय थी। क्योकि इस बात का सकेत 'तिलकमञ्जरी' मे मुझे कई बार मिला है।[२२] इसीलिए राजकन्याएँ कभी-कभी अपने पिता की जानकारी के बिना भी अपने पति को स्वय पसन्द करने का साहस कर लिया करती थी। उदाहरणार्थ हम राजकुमारी मलयसुन्दरी का नाम उल्लिखित कर सकते हैं। क्योकि इसने काफी ऊहापोह के पश्चात् समरकेतु को अपने पिता की अनुमति के विना भी अपने आप ही अपना पति मान लिया था; और उसके गले मे फूलो का हार पहना दिया था।[२३]

लेकिन सामान्य व्यावहारिक रूप से देखा जाए तो स्पष्ट होगा कि कन्याओं को अपने माता-पिता की इच्छा पर ही निर्भर रहना पड़ता था। उनकी निज की क्या इच्छा है, यह पूछा तक नही जाता था। इस विषय मे उन्हे बिना कुछ सोचे-समझे अपने माता-पिता (वास्तव मे केवल पिता) के निर्णय को मान लेने के लिए उपदेश दिए जाते थे। यदि कन्याएँ पिता के निर्णय के प्रतिकूल अपने विवाह के विषय मे कुछ विचार करने लगती थी तो यह उनका अनाचार समझा जाता था।[२४] यही कारण है कि मलयसुन्दरी जैसी राजकुमारियो को भी आत्महत्या तक करने की नौबत आ जाती थी। हाँ, विद्याधरो मे स्वयवर की प्रथा अवश्य ही सर्वमान्य थी। तिलकमञ्जरी ने जब हरिवाहन को पति के रूप मे पसन्द किया तो उसके पिता चक्रसेन ने भी उसकी इच्छा का पूरी तरह से अनुमोदन किया और सहयोग भी दिया।[२५] इन लोगो मे नारियो को घूमने-फिरने की और हवाखोरी करने की भी मानवीय स्त्रियो की अपेक्षा कुछ छूट थी।

उस समाज मे स्त्री पुरुष की सहचरी न होकर अनुचरी थी। पुरुष जितने चाहे उतने विवाह कर सकता था, किन्तु स्त्री को दूसरा विवाह करने की अनुमति नही थी। आश्चर्य है कि हरिवाहन जैसे आदर्श राजकुमार ने तिलकमञ्जरी जैसी प्रेमिका पत्नी को पाकर भी अन्य कई विवाह स्वीकार कर लिए, और अपने दोस्त आदर्श प्रेमी समरकेतु के भी कई विवाह करवा दिये।[२६] इससे साफ जाहिर है कि उन दिनो नारी को, पुरुषो के लिए, केवल 'भोग' की वस्तु ही समझा जाता रहा होगा। काम क्षुधा को मेटने के लिए स्त्रियो को युद्ध के दिनो मे भी अपने साथ ले जाया जाता था। हम देखते है कि वज्रायुध और समरकेतु की सेनाओ मे स्त्रियाँ भी थी।[२७] लगता है कि सुन्दरियो के साथ छेड़खानी करने का रोग उस समय के भी युवको मे था। पर गनीमत यह है कि ऐसे लोगो को 'भुजङ्ग' (चरित्रहीन) की सज्ञा दे दी जाती थी। ये लोग अपने सभी काम-काजो को छोडकर अपनी आँखो और होठो पर तरह-तरह की काम-चेष्टाएँ प्रदर्शित करते हुए मन्दिरो जैसे सार्वजनिक एव धार्मिक स्थानो पर आने-जाने वाली सुन्दरियो पर किसी न किसी बहाने कुछ न कुछ छीटा-कसी कर ही देते थे।[२८]

काची के युवक तो और भी अधिक मनचले थे। युवतियो के कपोलो पर कितनी कोमलता से दाँत गढाना चाहिए, इसका प्रयोगात्मक अभ्यास वे आम के अधपके, पर रसीले, फलो पर किया करते थे।[२९]

हाँ, उस समाज मे वेश्याओ का खूब बोलबाला था। आज की सरकार की भाँति उन दिनो के राजा-महाराजाओ ने वेश्याओ की आजीविका का उन्मूलन नही किया था। उन्हे लोग आदर से नही तो घृणा से भी नही देखा करते थे। नैतिकता और पति के दायरे से दूर ये वेश्याएँ स्वतन्त्रता के साथ बडे ठाठ-बाट से रहती थी। स्वय तो नाचती ही थीं, पर अपने उस नाच मे अँगुली के इशारे पर बडो-बडो को भी नचा दिया करती थी।[३०]

शराब पीने-पिलाने का फैशन उन दिनो भी था। स्त्री और पुरुष, सभी पीते थे। अपनी प्रणयकुपित प्रेमिकाओ को मनाने के लिए मेघवाहन अगूरी शराब का प्रयोग करते थे।[३१] तिलकमञ्जरी अपनी सहेलियो के साथ पिकनिक मे कल्पवृक्ष के सुमधुर फलो के

रस से बनी हुई मदिरा का दौर चलाती थी।[32] रही वेश्याओ की बात, वे तो इसकी आदी ही थी।[33] हाँ, इतना अवश्य है कि ब्राह्मण जाति मे इसका प्रचलन कतई नही था, यहाँ तक कि कोई इसका नाम भी सुनना पसन्द नही करता था।[34]

उस समाज मे धनपाल ने जहाँ एक ओर हिजडो (नपुसको) का सकेत किया है,[35] वहाँ दूसरी ओर दुर्दान्त डाकुओ और लुटेरो की भी चर्चा की है।[36] अटवी वर्णन के प्रसग मे इन दस्युओ के सनसनीखेज काले कारनामो पर मैं थोडा-बहुत प्रकाश डाल ही चुका हूँ। उन दिनों लोगों को प्राकृतिक जडी-बूटियो का भी अच्छा-खासा ज्ञान था। वे उनके प्रयोग से अतिवृष्टि और बुरे ग्रहो का प्रभाव और अस्त्र-शस्त्र की पैनी धार को भी रोक लेते थे। विष दूर करने मे, आँखो की रोशनी बढाने मे, बुढापे की झुर्रियाँ दूर करने आदि मे लोग-बाग इन्ही औषधियो को काम मे लेते थे।[37]

पत्र-व्यवहार उस समय के भी लोग करते थे। किन्तु आज जैसे उस समय न तो पोस्ट-आफिस ही थे, और न सार्वजनिक कोई पत्रवाहक ही थे। इसलिए जब किसी को कोई पत्र कही भेजना होता था तो उसे इस काम के लिए अपने किसी खास आदमी को चुनना पडता था। समरकेतु ने मलयसुन्दरी के पास अपना प्रेम-पत्र गन्धर्वक के हाथो भिजवाया था।[38] चन्द्रकेतु का पत्र लेकर समरकेतु के पास उनका एक अपना निजी पत्र-हारक आया था।[39] हरिवाहन और कमलगुप्त के पत्रो को एक-दूसरे के पास शुकरूपधारी गन्धर्वक ने ही पहुँचाया था।[40] इसी प्रकार विचित्रवीर्य ने भी हरिवाहन के पास एक लडके के द्वारा अपना पत्र भेजा था।[41]

उन दिनो पत्रो के लिखने की शैली भी भिन्न थी। लिखने वाला अपना नाम आरम्भ मे ही उल्लिखित कर देता था।[42] इसीलिए उसे फिर अन्त मे अपना हस्ताक्षर करने की आवश्यकता का अनुभव नही होता था। यह पुरातन शैली ग्रामीण क्षेत्रो मे आज भी पाई जाती है।

इस प्रकार हम देखते है कि धनपाल के दिनो का समाज यदि कुछ बातो मे आज जैसा था, तो कुछ बातो मे आज के समाज से भिन्न भी था। मानव की मूल भावनाएँ आज जैसी ही थी, पर आधुनिक विज्ञान के अभाव मे उस समय आज के समाज जैसी प्रगतिशीलता की प्रतियोगिता नही थी।

सांस्कृतिक वातावरण की झलक

सांस्कृतिक वातावरण पर दृष्टिपात करने के पहले हमे सक्षेप मे 'सस्कृति' के स्वरूप को समझ लेना चाहिए। यद्यपि सस्कृति को समझने और समझाने के लिए विश्व के तमाम विद्वानो ने अथक प्रयत्न किए है, तथापि यह शब्द अपनी अमूर्त्तता के कारण आज भी जिज्ञासा का विषय बना हुआ है। मै यहाँ कतिपय विद्वानो की लिखी हुई 'सस्कृति' की परिभाषाओ को उद्धृत करके अपने विचार प्रस्तुत करूँगा।

प्रसिद्ध पाश्चात्य मनीषी टायलर ने लिखा है कि "सस्कृति वह जटिल सम्पूर्णता है, जिसमे सामाजिक मनुष्यो के ज्ञान, विश्वास, कला, नैतिकता, कानून, रीति-रिवाज और आदते शामिल होती हैं।" (A)

रेडफील्ड का कहना है कि "कलाओं और उपकरणो के रूप मे प्रतीत होने वाले परम्परागत ज्ञान के उस सगठित स्वरूप को सस्कृति कहते है, जो परम्पराओ मे पलता हुआ आगे चलकर मनुष्य समूह की विशेषताओ को निर्धारित करने लगता है।" (B)

भारतीय मनीषी श्री के० एम० मुन्शी के विचार है कि "हमारे रहन-सहन के पीछे जो हमारी मानसिक अवस्था है या जो मानसिक प्रकृति है, जिसका उद्देश्य हमारे अपने जीवन को परिष्कृत, शुद्ध और पवित्र बनाना है तथा अपने लक्ष्य की प्राप्ति करना है, वही सस्कृति है। संस्कृति जीवन के प्रति हमारा दृष्टिकोण है।" (C)

इसमे कोई सन्देह नही है कि उपर्युक्त विद्वानो ने 'सस्कृति' शब्द को परिभाषित करने मे बडी सूझ-बूझ से काम लिया है; और निश्चय ही ये लोग सस्कृति के गम्भीर धरातल का सस्पर्श करने मे सफल हो गए है। लेकिन इस तथ्य को भी नकारा नही जा सकता कि इनकी परिभाषाएँ व्याख्या सापेक्ष है। इनमे 'सस्कृति' की एकरूपरेखा (ढाँचा) तो तैयार हो गई है पर इसमे व्याख्या का रग भरना शेष रह गया है।

दरअसल बात कुछ ऐसी है कि बडी से वडी बौद्धिक (वैज्ञानिक) उपलब्धि कर लेने के वाद भी मनुष्य अपने हृदय-सवेगो के प्रभाव से अछूता नही रह सकता। चूँकि इन हृदय-सवेगो मे रागात्मकता की प्रधानता होती है, इसलिए वह अपने जीवन मे शील, शक्ति और सौन्दर्य का अधिक से अधिक समन्वय करना चाहता है। इसके लिए वह जहाँ एक ओर अपने मनोदर्पण को परिमार्जित और प्राजल बनाना चाहता है वही दूसरी ओर वह अपने शरीर को भी फौलादी बनाने का प्रयत्न करता है, ताकि वह जीवन मे प्राप्त होने वाले सुख-दुःख के भार को झेल सके। इतना ही नही, वलिक कुरूपता को दूर करने के लिए वह सौन्दर्य की भी खोज मे रहता है। अपनी इस शील, शक्ति और सौन्दर्य की आराधना मे उसे 'सत्य शिव सुन्दरम्' की शाश्वत अवधारणा का भी ध्यान रखना पडता है, ताकि उसके हृदय-सवेग समाज के लिए अभिशाप न बन सके। हृदय-सवेगो की अपनी इस शील-शक्ति-सौन्दर्यमयी रागात्मक प्रवृत्ति की पूर्ति के लिए मनुष्य का ध्यान तन्त्र-मन्त्र, जादू-टोना, सगुन-असगुन, पढने-लिखने, पहिनने-ओढने, शादी-व्याह, खानदानी रीति-रिवाज, कर्मकाण्ड, पूजा-पाठ, जप-तप, दान-दक्षिणा, मूर्त्तिकला, वस्तुकला, चित्र-कला, सगीतकला, काव्यकला आदि की सर्जना की ओर अवश्य ही आकृष्ट होता है, और वह इनकी सृष्टि एव विकास भी करता है। मनुष्य की ये ही क्रियाएँ कुछ पीढियो के गुजरने के वाद आने वाले मानव के मन मे 'सस्कृति' नाम से बस जाती है, और फिर वह इन्हे अपनी पैतृक सम्पत्ति समझकर सदैव अपने गले लगाये रखता है। भारतवर्ष की वर्ण, आश्रम और जाति की व्यवस्था के मूल मे भी यही आध्यात्मिक, साँस्कृतिक एव भौतिक उन्नति की भावना निहित रही है।

मानवीय सृष्टि के इस स्वाभाविक पहलू को देखते हुए यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि मानव समाज के वे सभी रीति-रिवाज, प्रथा और परम्पराएँ सस्कृति के अन्दर आती है जिनसे मानव का मानसिक विकास हो, उसे आध्यात्मिक सुख और शान्ति का अनुभव हो, समाज मे सदाचार का सचार हो, नैतिकता का प्रचार हो, तथा पारस्परिक व्यवहार मे मर्यादा, सभ्यता, शिष्टता और शालीनता की सुगन्धि हो। सक्षेप मे मनुष्यो

की मानसिक विचारधारा को सूचना देने वाले सभी कार्य-कलापो को सस्कृति के नाम से पुकारा जा सकता है, क्योकि सस्कृति मूलत विचारो की ही वाहिका है।

अब मैं इस प्रासगिक विश्लेपण को यही समाप्त करके सस्कृति की इसी रूपरेखा के सन्दर्भ मे धनपालकालीन सास्कृतिक पर्यावरण की एक झलक आपके सामने प्रस्तुत कर रहा हूँ।

यदि हम कहे कि धनपाल की 'तिलकमञ्जरी' शुद्ध हिन्दू-संस्कृति की द्योतिका है तो कोई अत्युक्ति नही होगी। यद्यपि उन दिनो भी राजनैतिक उथल-पुथल हो रही थी, आये दिन युद्ध होते थे, लेकिन भारत की हिन्दू-सस्कृति थोडे बहुत हेर-फेर के साथ अपनी जगह पर जमी हुई थी। हम देखते हैं कि हिन्दू-सस्कृति मे देव-ऋण, ऋषि-ऋण और पितृ-ऋण नामक जिन तीन ऋणो को दूर करने की प्रेरणा प्रत्येक प्राणी को दी गई है,[४३] उनका प्रभुत्व उन दिनो पर्याप्त मात्रा मे था। इसीलिए उस समय के लोग खूब यज्ञ करते थे और वेद-वेदागो का स्वाध्याय भी लगन के साथ करते थे। इससे न केवल देव और ऋषि-ऋणो से मुक्ति मिलती थी, वल्कि मन और बुद्धि दोनो मे निर्मलता एव आत्मविश्वास की भी जागृति हुआ करती थी। पितृ-ऋण से मुक्ति पाने के लिए अपनी वंशपरम्परा को आगे वढाना आवश्यक समझा जाता था। जो ऐसा नही कर पाते थे उन्हे 'पुम्' नामक नरक की यातना सहने के लिए याद दिला दी जाती थी। फलस्वरूप वैध सन्तानोत्पत्ति करना उन दिनो परमावश्यक बना हुआ था और समाज मे 'पुन्नामक नरक से त्राण दिलाने वाले' पुत्र का महत्त्व सर्वोपरि समझा जाता था। ऐसे लोग अपने आपको उन पशुओ से भी गया गुजरा समझते थे जिनके कि सन्ताने होती थी। उन दिनो तक तराजू मे पुत्र-सुख को एक पलडे मे और ससार के अन्य सभी सुखो को दूसरे पलडे मे रखकर तौल दिया जाता था, इतने पर भी पुत्र-सुख का पलडा भारी ही समझा जाता था। इसीलिए लोग सन्तान प्राप्ति के लिए सभी कुछ करने को तैयार रहते थे। वे देवी-देवताओ की शरण मे भी जाया करते थे और उनसे सन्तान के लिए प्रार्थना किया करते थे। अपने समय की इन सभी धारणाओ की झलक धनपाल ने अपनी 'तिलकमञ्जरी' मे दिखाई है।[४४]

मेघवाहन के पास भगवान् का दिया हुआ सब कुछ है, पर सन्तान के अभाव से यह सदैव मर्मान्तिक वेदना का अनुभव करते है। उन्हे अपनी राजलक्ष्मी वन्ध्या-सी प्रतीत होने लगती है और अपनी रानियो के रजोधर्म को सरकण्डे के फूलो के समान निष्फल समझने लगते हैं। उनकी यह पुत्राभावविषयक आत्मग्लानि इतनी बढ जाती है कि विद्या-धर मुनि को वह उस महावृक्ष के समान दिखाई देते हैं जिसकी जड मे आग धधक रही होती है, या फिर वह कमलो के उस वन की तरह नजर आते है जिसमे कीडे लग रहे होते हैं।[४५] सन्तान प्राप्त करने के लिए वह राज-सुख छोडकर वन मे जाकर तपस्या करने तक का विचार कर लेते है। विद्याधरमुनि के वचनो पर विश्वास करके कुलदेवता लक्ष्मीदेवी का मन्दिर बनवाकर वही रहकर नियमपूर्वक उनकी आराधना करते हैं, जिससे उन्हे पूरी-पूरी सफलता भी मिलती है।[४६]

उस समय के लोग भाग्य और पुनर्जन्म पर भी खूब विश्वास करते थे। पूर्वजन्म

मे किए हुए कर्मो के फलो को भोगने के लिए सभी तैयार रहते थे, चाहे सम्राट् मेघवाहन हो या चाहे ज्वलनप्रभ नामक देवविशेष। कोई भी उपाय ऐसा नही समझा जाता था जो पूर्वजन्म के कर्म फलो के विपरीत फल दे सके ('समग्राण्यपि हि कारणानि न प्राग्जन्मजनितकर्मोदयक्षणनिरपेक्षाणि फलमपनयन्ति।'…तिलकमञ्जरी, पृ० २०)। इसीलिए मेघवाहन को पुत्राभाव की वेदना सहनी पडी, ज्वलनप्रभ को स्वर्ग सुख को तिलाजलि देनी पडी (वही, पृ० ४२), और मलयसुन्दरी को महल छोडकर जगलो के पत्थरो की ठोकरे खानी पडी (वही, पृ० २५८-२५९)। इतना ही नही, बल्कि मुझे तो (क) कमलगुप्त, (ख) हरिवाहन, (ग) बन्धुसुन्दरी, (घ) चित्रलेखा, (ङ) प्रियवदा, (च) प्रियगुसुन्दरी, (छ) तिलकमञ्जरी आदि सभी प्रमुख पात्र भाग्य की दासता स्वीकार करते हुए और उसके भँवर मे घूमते हुए नजर आते है।[४७]

अष्टापद पर्वत पर महर्षि द्वारा हरिवाहन और तिलकमञ्जरी, समरकेतु और मलयसुन्दरी के पूर्वजन्मो की रोचक प्रणयकथा का रहस्योद्घाटन करा कर धनपाल ने तत्कालीन समाज मे चली आ रही पूर्वजन्म के प्रति प्रगाढ आस्था की ही ओर सकेत किया है।[४८]

लगता है कि उस समय के लोगो मे देवी-देवताओ के प्रति अपार श्रद्धा थी, और अटूट विश्वास भी रहा होगा। तभी तो धनपाल ने अपनी 'तिलकमञ्जरीकथा' मे जीतेजागते और मनुष्यो के साथ बोलते-बालते देवी-देवताओ की कल्पना करने का साहस किया होगा। इतना ही नही, बल्कि भूत, प्रेत, यक्ष, वेताल आदि की सत्ता भी सर्वमान्य रही होगी। क्योकि तभी धनपाल ने इन अतिमानवीय प्राणियो को भी कथा के मानवीय पात्रो के बीच लाकर खडा किया है, और तत्कालीन पाठको ने इस पर कोई आपत्ति भी नही की है।[४९]

मन्त्रो की शक्ति पर भी लोगो का खूब विश्वास रहा होगा, और इनका असर भी शर्तिया होता होगा। क्योकि तभी तो लोगो ने धनपाल की इस बात पर विश्वास किया होगा कि मन्त्र के जप से ही मेघवाहन को पुत्र की प्राप्ति,[५०] विद्याधरमुनि को आकाश मे उडने की शक्ति[५१] और हरिवाहन को विद्याधरचक्रवर्त्तित्व की प्राप्ति[५२] हुई थी।

तत्कालीन समाज मे मणियो के प्रभाव का भी पता चलता है। क्योकि समरकेतु के साथ सग्राम मे वज्रायुध को जो विजय प्राप्त होती है उसका सारा श्रेय बालारुण नामक उस अँगूठी को दिया गया है जिसे मेघवाहन ने लक्ष्मीजी से प्राप्त करके युद्ध मे सकट के क्षणो मे पहिनने के लिए वज्रायुध के पास भेजा था।[५३] क्योकि उसके पहिनने से ही तो वज्रायुध को विजयश्री प्राप्त हो सकी थी।[५४]

उस समय पुरोहित के कर्मकाण्ड और ज्योतिष विद्या का भी खूब बोलबाला था। कोई भी शुभकार्य तभी किया जाता था जब पुरोहित लोग उसके लिए एक विशेष मुहूर्त्त और लग्न निकाल देते थे। सम्राट् मेघवाहन ने देवालय का निर्माण और उसमे लक्ष्मीदेवी की प्रतिमा की प्रतिष्ठा कर्मकाण्ड के अनुसार ही कराई थी, और वह उनकी पूजा भी बडे विधान से किया करते थे।[५५] पुत्र प्राप्ति के लिए वह अपने महल मे कुछ न कुछ अनुष्ठान कराते ही रहते थे।

शिशु के चिरायुष्य की कामना से षष्ठी देवी, जिसे आजकल 'छठी' के नाम से जानते है, की पूजा का प्रचलन था। जन्म के अवसर पर उन दिनो नौ दिनो के सूतक का भी विधान चल पडा था। इसलिए केवल ग्यारहवे दिन ही नही, वल्कि दसवे दिन भी वालक का नामकरण सस्कार कर दिया जाता था। धनपाल ने दोनो ही प्रकार के विधानों के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। हरिवाहन का नामकरण सस्कार दशवे दिन दिया गया है (तिलकमञ्जरी, पृ० ७८) तथा मलयसुन्दरी का नामकरण ग्यारहवे दिन हुआ है (वही, पृ० २६३)। वालक को एक विशेष शुभमुहूर्त्त मे अन्नप्राशन (भोजन का श्रीगणेश) कराया जाता था। छठा वर्ष शुरू होते ही उपनयन और अक्षरारम्भ करा दिया जाता था। ब्रह्मचर्य एवं विद्याध्ययन को पूरा कराकर ही गृहस्थधर्म मे प्रवेश कराया जाता था। धनपाल ने हमारे सामने राजकुमार हरिवाहन को इन सभी तथ्यो के मूर्तिमत् उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है।[५६] तिलकमञ्जरीकथा मे इस तथ्य के भी सकेत मिलते है कि उन दिनो मृतात्माओं की भूख-प्यास मेटने के लिए लोग वडी श्रद्धा के साथ श्राद्धकर्म करते थे। मृत-पितरों के नाम से, इस विश्वास के साथ कि यह उन्हे प्राप्त होगा, पिण्ड-दान और जलदान भी करते थे।[५७] गृहस्थ लोगो मे पंचमहायज्ञ करने का प्रचलन था। विश्वदेवबलि और काकवलि देना तो एक आम रिवाज था।

उन दिनो ज्योतिष विद्या पर इतना विश्वास था कि लोग नवजात शिशु के जन्मकालीन ग्रहो के आधार पर ज्योतिषियों के कहने से उसके भावी जीवन मे मिलने वाले सुखो या दुःखो का निश्चय कर लेते थे। मलयसुन्दरी के भविष्य के विषय मे वसुरात नामक राजज्योतिषी ने जो कुछ भविष्यवाणी की थी, उस पर काची के सभी लोगो को भरोसा था।[५८] वन्धुसुन्दरी उसे शतप्रतिशत सही मानकर ही मलयसुन्दरी को धीरज वँधाया करती थी।[५९] राजकुमार हरिवाहन के भी जन्मकालीन ग्रहो के शुभाशुभ फल की ज्योतिषियो ने वडी ही छानवीन की थी।[६०] शादी-विवाह ही नही, वल्कि कही जाने-आने तक मे ज्योतिषियो से समय निर्धारित कराया जाता था। समरकेतु और हरिवाहन के विवाह मे लग्न की शुद्धता पर अवश्य ही ध्यान दिया गया है।[६१] इसी प्रकार जब ये राजकुमार अपने-अपने महलो से निकलते हैं तो ज्योतिषियो के वताए हुए शुभ-मुहूर्त्त मे ही निकलते है।[६२] इस प्रकार हम देखते हैं कि उन दिनो बिना मुहूर्त्त के कोई काम किया ही नही जाता था।

उन दिनो के सास्कृतिक रीति-रिवाजो मे ज्योतिषियो के कर्मकाण्ड की ही तरह जन्तर-मन्तर, जादू-टोना, टुटका आदि का भी खूव जोर था। किसी भोले-भाले और छोटी आयु वाले लड़के के हाथ के अँगूठे मे मन्त्र सिद्ध काजल को लगा दिया जाता था; और जव थोडी देर मे उस काजल मे वालक को किसी देवी-देवता की शक्ल घूमती-फिरती नजर आने लगती थी तो उस वालक के माध्यम से लोग अपने-अपने सवालो का जवाव पूछा करते थे। कुछ लोग कर्मपिशाची नामक प्रेतस्त्री को सिद्ध कर लेते थे, जो जरूरत पडने पर छिपे तौर से उनके कान मे भूत-भविष्य की घटनाएँ वताया करती थी। कामनाओ की पूर्त्ति के लिए लोग तावीज भी पहना करते थे। छोटे-छोटे वच्चो की भविष्यवोधविषयक निश्छल वाते विश्वास के साथ सुनी जाती थी। अपनी कामनापूर्त्ति

के लिए दुधारी गौओ और स्वादिष्ट फलो को दान में देने की खूब प्रथा थी। हस्तरेखा-ज्ञान (पाम्-मिस्ट्री) पर भी लोगो का पूरा-पूरा विश्वास था। तभी तो पामिष्टो (हस्त-रेखाविशारदो) के ऐसा बताने पर कि अमुक राजकन्या के सन्तान होने की रेखाएँ है, बहुत से राजशुभचिन्तक लोग मन्त्रियो को उस राज-कन्या के साथ मेघवाहन का विवाह कराने के लिए तैयार करने लगते थे। मुझे इन उपर्युक्त सभी सास्कृतिक सकेतो का पता सम्राट् मेघवाहन के 'राजकुल' का वर्णन पढते समय लगा है।[६३]

मागलिक अवसरो पर उन दिनो भी 'स्वस्तिक' जिसे आज 'सतिया' के नाम से पुकारते है, के चिह्न बनाए जाते थे; आम के हरे-हरे पत्तो की झालरें लटकाई जाती थी, फूल बिखेरे जाते थे, और मन्त्रो से अभिषिक्त जल का छिडकाव किया जाता था। जब राजकुमार हरिवाहन का जन्म हुआ था, तब रीति-रिवाजो से परिचित बड़ी-बूढी स्त्रियो ने प्रसूतिकागृह को इसी प्रकार सुरक्षित और सुसज्जित किया था। उन्होने बालक की रक्षा हेतु तमाम टोने और टुटके भी किए थे।[६४] हरिवाहन की दिन मे तीन बार तो नजर ही उतारी जाती थी, ताकि किसी की दुष्ट नजर का असर उस पर न पड सके।[६५]

धनपाल ने एक जगह पर लिखा है कि पत्रलेखा एक विशेष प्रकार के मन्त्र का जप करके सो गई तो सपने मे उसकी समस्या का समाधान उसे मिल गया।[६६] इससे सिद्ध होता है कि उन दिनो सपनो की अधिष्ठातृ-देवता को खुश करने का कोई मन्त्र रहा होगा जिसके सिद्ध कर लेने पर स्वप्नदेवी सपने मे सब कुछ बता जाती होगी। इस प्रक्रिया के अलावा भी लोग सपनो को देखकर शुभ या अशुभ फल का अनुमान ही नही, बल्कि कभी-कभी तो विश्वास भी कर लिया करते थे। सम्राट् मेघवाहन ने प्रात काल सपने मे इन्द्र के वाहन ऐरावत हाथी को अपनी पत्नी मदिरावती का स्तनपान करते हुए देखकर पुत्रोत्पत्ति पर विश्वास कर लिया था।[६७] इसी प्रकार अपने मित्र हरिवाहन की खोज मे भटकते हुए समरकेतु ने भी सपने मे पाताल लोक से ऊपर उठे हुए, सुगन्धित पुष्पो से लदे हुए, गुँजन करते हुए भ्रमरो से भरे हुए, और एक सुन्दरलता से घिरे हुए से कल्पवृक्ष को देखकर अपने मित्र की प्राप्ति का विश्वास कर लिया था।[६८]

उन दिनो सम्भ्रान्त परिवारो मे शयनागार मे शय्या के सिरहाने स्वच्छ जल से परिपूर्ण कलश रखा जाता था और इस कलश को 'निद्राकलश' के नाम से पुकारा जाता था। मैं समझता हूँ कि इसके दो प्रयोजन रहे होगे—एक तो सास्कृतिक और दूसरा व्यावहारिक। सांस्कृतिक दृष्टि से तो निद्राकलश को दुष्ट स्वप्नो का निवारण करने वाला समझा जाता होगा, जिससे सोने वाले को चैन की मीठी-मीठी नीद आने की अवधारणा बना ली गई होगी, और व्यावहारिक दृष्टि से इस निद्रा कलश का जल प्यास बुझाने के भी काम मे लिया जाता होगा। धनपाल ने सम्राट् मेघवाहन और उनके पुत्र राजकुमार हरिवाहन के शयनागारो मे निद्राकलश का वर्णन किया है।[६९] सामान्यत सम्भ्रान्त भवनो के मुख्यद्वार पर 'स्वस्तिक' का चिह्न बनाया जाता था (तिलकमञ्जरी, पृ० १६२)।

दूर्वा, दधि, अक्षत, चन्दन, इत्र, ताम्बूल, लाजा (धान या धान की खील), पुष्पमालाएँ, आम्रपल्लव आदि पदार्थो को मागलिक समझा जाता था और प्रत्येक शुभ

कार्य में इनका वर्णन तथा प्रयोग कल्याणकारी माना जाता था।[७०] ऐसे अवसरो पर आरती उतारने की प्रथा उस समय भी थी। भोजनोपरान्त पान खाने का शौक उन दिनो में भी था। वीणा और बाँसुरी—ये दोनो ही वाद्य—मनोरजन के प्रधान साधन थे। स्त्री और पुरुष, सभी इन्हे पसन्द करते थे। हरिवाहन, तिलकमञ्जरी, गन्धर्वक आदि पात्रो को इन वाद्यो की वादनकला मे विशेष सफलता मिल चुकी थी। हरिवाहन ने तो अपनी वीणा के तारो की स्वरलहरी से मदोन्मत्त हाथी को भी अपने वश मे कर लिया था।[७१]

उन दिनो के रीति-रिवाजो के अनुसार लगता है कि युवक और युवतियाँ कामदेव की पूजा वडी उमग के साथ किया करते थे। धनपाल ने अयोध्या और काची, दोनो ही नगरो मे वसन्त के दिनो मे वडी धूमधाम के साथ प्रेम और वासना के देवता कामदेव की पूजा होने के स्पष्ट सकेत दिये हैं।[७२] इतना ही नही वल्कि माता-पिता अपनी लड़कियो को शादी के पहले कामदेव के दर्शन और पूजन करने को अवश्य ही भेजते थे। मलयसुन्दरी ने अपनी आत्मकथा के प्रसग मे इस वात का उल्लेख किया ही है।[७३]

छोटी-छोटी लड़कियो के खेल प्रचलित थे। वे रगीन कपडो के बने हुए गुड्डा-गुड़ियो को सजीव सा समझकर उनका विवाह रचाने मे अपने समय को खुशी-खुशी विता देती थी। कन्या-शिशुओ का यह खेल सार्वभौम और सार्वकालिक सा प्रतीत होता है। आज के इस वैज्ञानिक युग मे भी यह चल रहा है। हाँ, इतना अवश्य है कि आज गुड्डा-गुड़ियाँ कपड़ो की वजाय, रवड़ के वनने और विकने लगे हैं, जवकि पुराने जमाने मे माताएँ इन्हे स्वय ही रग-विरगे कपडो और धागो से सिलकर अपनी लडकियो को खेलने के लिए दिया करती थी। गरीव घरो की लडकियो मे यह प्रथा आज भी सुरक्षित है। कभी-कभार गेंद भी खेल लिया करती थी।

वह समाज शकुन और अपशकुन का भी काफी हिमायती था। पुरुषो के लिए उनकी दाहिनी वाँह और दाहिनी आँख का फडकना वहुत ही शुभ शकुन माना जाता था, जो आज भी मान्य है। इस शकुन से लोग अपने कार्य की सफलता पर विश्वास कर लेते थे और अपने काम मे दूने उत्साह से जुट जाते थे। युवराज समरकेतु जव हरिवाहन की खोज मे निकला है तव उसे ऐसे ही शकुन हुए है, जिनसे उसे सतत प्रेरणा और उत्साह मिलता रहा है, और अन्त मे सफलता भी मिली है।[७४] लेकिन स्त्रियो की आँख का फड़कना आज की भाँति उन दिनो भी वहुत ही वुरा समझा जाता था, तभी तो तिलकमञ्जरी अपनी दाहिनी आँख के फड़कने से अत्यधिक व्याकुल हो उठी थी (तिलकमञ्जरी, पृ० ४१३-४१४)।

राजा महाराजाओ का दर्शन और स्वागत करना प्रजा कर्त्तव्य समझती थी। जव इनकी सवारी निकलती थी तो नगर की कुलवधूटियाँ अटारियो और छज्जो पर चढकर इनके ऊपर खीलो और फूलो की वर्षा करने लगती थी, जो अपने राजा-महाराजा के प्रति उनकी भक्ति और श्रद्धा की सूचक समझी जाती थी।[७५]

उन दिनो की संस्कृति भोगपूर्वक त्यागोन्मुखी थी। क्योकि आश्रम-व्यवस्था का वोलवाला था। इमीलिए लोग गार्हस्थ्य सुख का अनुभव कर चुकने के वाद वानप्रस्थी और सन्यासी का भी जीवन विताने के लिए सहर्ष तैयार रहते थे। वैताढ्य पर्वत पर

तपोवन और तपस्वियो का वर्णन मिलता है। दक्षिण भारत मे प्रशान्तवैर नामक तपोवन की सत्ता मानी ही गई है। मेघवाहन जैसे सम्राट् को भी हम देखते है कि अन्त मे अपने पुत्र हरिवाहन को साम्राज्य का भार सौपकर अपना परलोक सुधारने मे लग जाते है।[७६]

घर आये अतिथि का हार्दिक स्वागत किया जाता था। इसके लिए अन्य दूसरे महत्त्वपूर्ण कार्यों की उपेक्षा कर दी जाती थी। मलयसुन्दरी अपने आश्रम मे आए हुए हरिवाहन का भली-भाँति स्वागत-सत्कार करती है। हालाँकि वह उनसे सर्वथा अपरिचित थी, लेकिन फिर भी उसने उनके स्वागत मे जरा भी उपेक्षा नही की।[७७] वह उनकी उपेक्षा करके अपनी प्यारी सहेली तिलकमञ्जरी के बुलावे पर भी उसके घर नही जाती है।[७८] तिलकमञ्जरी भी हरिवाहन को जब अपने यहाँ लिवा ले जाती है तो वह भी उनके स्वागत का पूरा-पूरा प्रबन्ध करती है। हाँ, यह बात दूसरी है कि वह कामजनित-लज्जावश स्वय कम सामने आती है।[७९] उन दिनो सम्भ्रान्त परिवारो के लोग भोजन की प्रतीक्षा मे 'चौसर' आदि कुछ खेलने लगते थे। तिलकमञ्जरी की सहेली मृगाङ्कलेखा ने ऐसे अवसर पर हरिवाहन का मनोरजन चौसर के खेल से ही किया था।[८०]

उस समय के लोगो मे धार्मिक भावना अधिक वलवती थी। वे अपने देवी-देवताओ की ही नही, बल्कि मन्दिरो की भी बहुत इज्जत करते थे। इनकी अवहेलना महान् अपराध समझा जाता था। गन्धर्वक को ऐसे ही अपराध के कारण तो यक्ष ने क्रोध मे भरकर अदृष्टपारसरोवर मे फेंक दिया था और तोता बन जाने का शाप भी दे दिया था।[८१]

उन दिनो के लोगो की वेशभूषा आडम्बरपूर्ण नही थी। पुरुषो की तो बात ही दूर रही, परिवार की स्त्रियो का भी पहनावा-ओढावा सरल और सादा था। वे रग-विरगे भडकीले कपडो का पहनना पसन्द ही नही करती थी। उनके कपडो का कलर 'सोबार' हुआ करता था। लेकिन उनकी वह सौम्य वेशभूषा होती बहुत साफ-सुथरी थी, आकर्षण भी उसमे कम नही होता था। इसीलिए धनपाल ने उनके लिए 'अनुल्वणोज्ज्वल-वेषा' शब्द का प्रयोग किया है।[८२] उस समय स्त्रियो मे चोली (कचुक) और घाँघरा (अशुक) पहिनने का अधिक रिवाज था। समरकेतु ने मलयसुन्दरी को पहली बार ऐसी देखा था।[८३] कभी-कभी चोली को ढँकने के लिए झीने से दुपट्टे (उत्तरीय-अचल) का भी प्रयोग कर लिया जाता था।[८४]

उन दिनो युवतियाँ अपने केशो मे देदीप्यमान मणियो को गूँथा करती थी, कानो मे मणिनिर्मित धवल कुन्दपुष्पो (कनफूल) को धारण करती थी, माथे पर काले अगरु की विंदिया (तिलक) लगाया करती थी, गले मे मोतियो की माला पहिना करती थी, कमर मे झनकती हुए करधनी (मणिमेखला) बाँधा करती थी, हाथो मे खनकते हुए सुनहरी कगन (कनकवलय) पहिनती थी, अगुलियो मे चमकती हुई अँगूठियाँ पहिनती थी, और पैरो मे झनकती हुई पायल भी बडे शौक से पहिनती थी।[८५] नगरो की वेश्याओ और राजमहलो मे रहनी वाली स्वतत्राजीवा विलासिनी नारियो की वेशभूषा मे अच्छा-खासा भड़कीलापन भी देखने को मिलता था।

उन दिनो पुरुषो के पहनावे मे धोती और दुपट्टा (धौतवस्त्र और उत्तरीयवस्त्र) —ये दो ही वस्त्र—अधिक प्रचलित थे। मेघवाहन, हरिवाहन, समरकेतु आदि सभी लोग धोती और उत्तरीय ही धारण करते हुए नजर आते है। उस समय के लोग धोती से कमर और कमर से नीचे का भाग आच्छादित कर लिया करते थे और उत्तरीय को दोनो कन्धो पर या तो इस प्रकार फैलाकर डाल लेते थे कि उनकी पीठ और छाती ज्यादा से ज्यादा ढँकी रह सके, या फिर उसकी दस-बारह अँगुल चौडी कई तहे बनाकर आजकल की कारतूस की पेटी की तरह, या कह सकते है कि यज्ञोपवीत की तरह, कन्धे से कमर तक लपेट लेते थे।

शायद उन दिनो सिले हुए वस्त्रो के पहिनने का प्रचलन नही हो पाया था। इसीलिए लोग जरूरत पडने पर अपने उत्तरीय के छोर मे ही वस्तुओ को बाँध लेते थे। ज्वलनप्रभ ने मेघवाहन को जो हार दिया था उसे उन्होने अपने दुपट्टे के ही तो छोर से बाँध दिया था।[८६] हरिवाहन के मञ्जीर नामक वन्दिपुत्र को कामदेव के मन्दिर के पास जो पड़ा हुआ किसी का प्रणयपत्र मिला था उसे भी उसने अपने उत्तरीय वस्त्र के एक छोर मे ही बाँध लिया था।[८७] समरकेतु ने गन्धर्वक के हाथो जो पत्र मलयसुन्दरी के पास भिजवाया था वह भी उसे गन्धर्वक के दिव्योत्तरीय के एक छोर मे ही बँधा हुआ मिला था।[८८] समरकेतु के पास कमलगुप्त द्वारा भेजे हुए हरिवाहन के पत्र को भी परितोषनायक पत्र अपने उत्तरीय मे ही बाँधकर लाया था।[८९] उपहार के रूप मे भी आभूषणो के साथ-साथ धोती और दुपट्टा—ये दो ही वस्त्र दिए जाते थे। पत्रलेखा ने गन्धर्वक को यही वस्त्र दिए थे।[९०]

इन सभी तथ्यो से स्पष्ट हो जाता है कि उन दिनो पुरुषो का पहिनावा धोती और उत्तरीय का ही था। कभी-कभार सिर पर पगडी (उष्णीष) भी बाँध ली जाती थी। उच्च परिवारो के कला एव सौन्दर्य-प्रेमी युवक अपने बडे-बडे बालो के जूडे मे सुगन्धित पुष्पो की मालाएँ भी लपेट लेते थे, माथे पर चन्दन का टीका तो रहता ही था, वे सारे शरीर को भी चन्दन से सुगन्धित कर लेते थे। कानो मे शिरीषकुसुम, गले मे ऋतुकुसुमो का या मोतियो का हार, कलाई मे सोने के कडे और अँगुलियो मे मणिजटित अँगूठी पहिनने का शौक पुरुषो मे भी पाया जाता था। इस प्रकार हम देखते हैं कि उनकी वेशभूषा निहायत ही सौम्य और साथ ही साथ अति सुन्दर भी हुआ करती थी।

इस प्रकार सक्षिप्त, पर सारगर्भित, विश्लेषण करने के पश्चात् मैं वेझिझक कह सकता हूँ कि तत्कालीन सस्कृति पर हिन्दू और हिन्दुत्व की पूरी-पूरी छाप थी। भारतीय संस्कृति के उन दिनो वे सभी तत्त्व जीवित थे जिनका नाम उसे विश्व की अन्य सस्कृतियो से पृथक् और वेहतर सावित करने के लिए लिया जाता है।

आर्थिक व्यवस्था पर विचार

मै इस शीर्षक के अन्तर्गत धनपाल की 'तिलकमञ्जरीकथा' मे प्रतिफलित तत्कालीन समाज की आर्थिक व्यवस्था का विम्व प्रस्तुत करना चाहूँगा। मै यह मानता हूँ कि धनपाल को जिसकी छत्रछाया प्राप्त थी, वह राजा भोज था, जिसके राज्य मे प्रजा

सभी तरह से खुशहाल थी। यही कारण है कि हमें उनकी 'तिलकमञ्जरी' में भी समाज का आर्थिक स्तर ऊँचा ही देखने को मिलता है। लेकिन समाज की आर्थिक व्यवस्था का मूल्याङ्कन ऊँचे-ऊंचे मकानो और बाग-बगीचो को देखकर नही किया जाता, इसके लिए तो सभी औद्योगिक धन्धो, व्यवसायो और सभी प्रकार के बाजारो की स्थिति पर विचार करना होता है। इस दृष्टि से जब हम धनपाल की 'तिलकमञ्जरीकथा' का परिशीलन करते है तो अधिकाश निराशा ही हाथ लगती है।

यह सच है कि उन्होने अयोध्यावर्णन के प्रसग में कई मजिलो वाले (अनेक-भूमिकाभ्राजिष्णु) भव्य भवनो और लहलहाते तथा महकते हुए उद्यानो के साथ ही साथ वहाँ की चौडी-चौडी सडको के दोनो ओर ऊँची-ऊँची दूकानो की भी चर्चा की है[६१], ऐसे ही उन्होने 'अपारधनकनकसञ्चया' कांचीनगरी[६२] मे भी लम्बे-चौडे बाजारो ('विशाला-यतनविपणिपथ') की सत्ता का सकेत किया है, लेकिन उन्होने दोनो ही शहरो के इन बाजारो मे केवल पन्ना, इन्द्रनीलमणि, हीरा, नीलम आदि रत्न-जवाहरातो के ही क्रय-विक्रय की बात लिखी है। इसलिए हम इन बाजारो को सिर्फ सर्राफा बाजार ही मान सकते हैं, न कि सामान्य बाजार (जहाँ रोजाना की जरूरत की सभी चीजें बिकती है)। फलस्वरूप केवल इन बाजारो से अर्थ-व्यवस्था पर पूरा-पूरा प्रकाश पडना असम्भव ही है। क्योकि समाज की अर्थ-व्यवस्था पर हीरे-जवाहरातो की बिक्री का उतना असर नही पडता जितना कि दैनिक उपयोग मे आने वाली वस्तुओ की बिक्री का पडा करता है। मगर धनपाल ने अयोध्या और काची—दोनो ही शहरो—मे इस प्रकार के बाजारो का जरा भी कही वर्णन नही किया है। हाँ, समरकेतु की विजय-यात्रा के प्रसग मे नदियो के किनारे-किनारे ग्रामीण क्षेत्रो मे लगने वाली छोटी-मोटी हाटो का अवश्य ही जिक्र किया है[६३], जिसे पढकर जहाँ हम एक ओर यह अनुमान लगा सकते हैं कि उन दिनो भारतवर्ष मे नदियो के रास्ते नावो द्वारा व्यापारी देश-विदेश घूमा करते थे, वही दूसरी ओर इस बात के भी सकेत पा सकते है कि गाँवो के बनियाँ (छोटे-छोटे दूकानदार) लोग अपनी जीविका के निर्वाह के लिए नदियो, जिनसे देशी या विदेशी व्यापारी नावो द्वारा आते-जाते थे, के किनारे दूध, दही, भात, घी, खांड, लड्डू आदि खाने-पीने की चीजें बेचा करते थे।

नौकाओ द्वारा भारतीयो के विदेशी व्यापार की पुष्टि तारकवृत्तान्त से भी होती है।[६४] लेकिन इस व्यापार मे भारतीयो के पास जवाहरातो और सोने-चाँदी के जेवरातो के अतिरिक्त कुछ भी बेचने को नही होता था। ग्रामीण क्षेत्रों मे कृषि के नाम पर धान और गन्ने की फसलो का ही जिक्र मिलता है। पालतू पशुओ मे दूध-दही के लिए गाय, खेती-बाडी के लिए बैल, और सवारी के लिए ऊँट-घोडे प्रमुख माने जाते थे।

वास्तव मे धनपाल ने अपने समय की अर्थ-व्यवस्था पर प्रकाश डालने का कोई प्रयत्न किया ही नही है। उस समय के सामान्य बाजारो, उद्योग-धन्धो तथा मुद्रा-प्रचलन आदि के वर्णन के प्रसग मे उनकी लेखनी मूक नही तो आलसी अवश्य ही कही जा सकती है। धनपाल की ओर से इस प्रकार की सफाई भी तो कोई पेश नही कर सकता कि उन्हे इन सब तथ्यो को प्रकट करने का अवसर नही मिला। अयोध्या, काची और रगशाला

नामक तीन-तीन समृद्ध नगरियो के वर्णन के प्रसगो मे वह चाहते तो बड़े आराम से बाजारो और शहरी उद्योग-धन्धो का वर्णन कर सकते थे। समरकेतु की विजय-यात्रा और हरिवाहन की मनोरजन-यात्रा के प्रसगो मे वह गाँवो की कृषि-प्रधान अर्थव्यवस्था पर भलीभाँति प्रकाश डाल सकते थे। मगर पता नही, समाज के इस पहलू से वह क्यो उदासीन रहे ?

लेकिन उन्होने इस ओर जो कुछ भी सकेत किए है उनसे हम सक्षेप मे यह तो कह ही सकते हैं कि उन दिनो के लोग आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न और सन्तुष्ट अवश्य थे। हाँ, यह बात दूसरी है कि हम उनकी सम्पन्नता के साधनो का पूरा-पूरा परिचय न पा सके।

राजनैतिक वातावरण पर प्रभाव

इतिहास साक्षी है कि ईसा की दसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे उज्जयिनी नगरी (आधुनिक उज्जैन) मे परमार वश का सातवाँ राजा मुञ्ज राज्य कर रहा था। यह बहुत ही प्रतापी और दुर्धर्ष राजा था। इसने अपने बाहुबल और नीति-बल से साम्राज्य का खूब विस्तार किया; और अपने छोटे भाई सिन्धुराज के पुत्र भोजदेव को गोद लेकर उसे अपने राज्य का उत्तराधिकारी बनाया। उसकी मृत्यु के बाद जब उसके छोटे भाई सिन्धुराज की मृत्यु हो गई तो भोज राजगद्दी पर बैठा।[६५] उन दिनो उसकी आयु लगभग २० वर्ष होगी। ये वे दिन थे जब भारतवर्ष मे यवनो के आक्रमण के कारण राजनैतिक स्थिति काफी डाँवाडोल हो चली थी।

यह ऐतिहासिक तथ्य है कि गजनी के सुलतान महमूद ने भारतीय नरेशो मे एक-दूसरे के लिए भडकती हुई ईर्ष्या-द्वेष की अग्नि को देखकर ईसवीय सन् १००१ से हिन्दुस्तान पर आतङ्कजनक अनेक आक्रमण किए थे। उसने अपने और अपने पिता के शत्रु जयपाल के पुत्र आनन्दपाल पर जो प्रबल आक्रमण किया था उसका मुँहतोड जबाब देने के लिए भारतीय राजाओ को भी सम्मिलित सेना तैयार करनी पड़ी थी। पर दुर्भाग्य की बात यह, कि अपनी जीत को भी धोखे से हार समझकर भारतीय सेना के पैर उखड गये थे और महमूद हारता हुआ भी जीत गया था। इस लडाई मे राजा भोज भी शामिल हुआ था।[६६] स्मरण रहे कि इसी महमूद गजनी ने सोमनाथ के मन्दिर को भी लूटा था।

इस सक्षिप्त विवरण से यह स्पष्ट निष्कर्ष निकलता है कि उन दिनो भारतवर्ष मे राजनैतिक उथल-पुथल बहुत थी। राजाओं को अपने राज्य-विस्तार या राज्य-रक्षण के लिए जहाँ एक ओर अपने पडौसी राजाओ से निबटते रहना पडता था, वही दूसरी ओर उन्हे यवन राजाओ के आक्रमणो का भी सामना करना पड़ता था। इस प्रकार उस समय की राजनीति सदैव दोहरे खतरे मे रहती थी। हमारे आलोच्य महाकवि धनपाल राजनीति के इस दौर को बड़ी बारीकी से देखते और समझते रहते थे। क्योकि उन्हे मुज और भोज, दोनो राजाओ की छत्रच्छाया प्राप्त हुई थी। इसीलिए उनकी कथाकृति 'तिलक-मञ्जरी' मे रोमास की प्रधानता होने के बावजूद भी तत्कालीन युद्धप्रधान राजनीति का प्रतिबिम्ब झलक ही गया है।

'तिलकमञ्जरी' मे वेताल के साथ मेघवाहन के वार्तालाप मे यह अनुमान सहज मे ही लग जाता है कि उन दिनो देश मे मव और युद्धो का वातावरण था।[९७] मेघवाहन को अपने जीवन मे सैकडो वार रणभूमि मे उतरना पडा था। तव कही वह अपने साम्राज्य की सुरक्षा कर पाये थे। लेकिन फिर भी मौका पाते ही दूसरे राजा उनके खिलाफ हो जाया करते थे। तभी तो दक्षिणापथ के ऐसे ही राजाओ को पुन. स्वाधीन करने के लिए उन्हे अपने विश्वसनीय और परमवीर मुख्य सेनाध्यक्ष वज्रायुध को सेना-सहित भेजना पडा था। उन्होने श्री लक्ष्मीजी की दी हुई वालारुण नामक दिव्य अँगूठी भी वज्रायुध के पास भेजी थी, ताकि रात की छापामार लडाईयो मे उसे विजय प्राप्त होती रहे।[९८]

'तिलकमञ्जरी' मे युद्ध-वर्णन के जो प्रसग हैं उन्हे पढकर यह भी निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उन दिनो युद्ध की एक सर्वमान्य नीति थी। एक योद्धा को अपने विपक्षीय योद्धा के साथ युद्ध मे क्या कैसा वर्ताव करना चाहिए, इसके लिए लगता है कि उन दिनो भी कोई न कोई युद्धाचारसहिंता रही होगी, जो वहुत कुछ महाभारत-कालीन समरनीति से मिलती-जुलती होगी। वहाँ हमे लिखा मिलता है कि—

'क्षत्रिय योद्धा को चाहिए कि वह कवचहीन से युद्ध नही करे, और एक समय मे एक के साथ एक ही युद्ध करे। 'तू मुझ पर प्रहार कर, मैं तुझ पर प्रहार करता हूँ' इत्यादि रीति से खुले आम चुनौती भी देते रहना चाहिए। कवच पहनकर कवचधारी के साथ ही लडना चाहिए, और यदि शत्रु सेना सहित लड रहा हो तभी सेना सहित लडना चाहिए, अन्यथा नही। जिसके अस्त्र-शस्त्र नष्ट हो गए हो, या किसी दूसरे तरह की परेशानी मे फँस गया हो, या धनुष की डोरी टूट गई हो, या वाहन नष्ट हो गया हो, तो ऐसे शत्रु पर कभी प्रहार नही करना चाहिए। घायल शत्रु को या तो उसके घर भिजवा दे, या स्वय उसका इलाज कराए, और जव वह ठीक हो जाए तो उसे मुक्त भी कर दे।"[९९]

वज्रायुध और समरकेतु के युद्ध मे हमे इन वातो की थोडी-वहुत झलक मिली है। आपको याद होगा कि समरकेतु को जव यह पता चलता है कि उसकी प्रियतमा मलयसुन्दरी के साथ सेनापति वज्रायुध जवरदस्ती शादी करना चाहता है और इसी कारण मलयसुन्दरी फाँसी लगाकर मर रही थी, तो वह तुरन्त ही, रात मे, उस पर तूफानी आक्रमण कर देता है। घमासान युद्ध होने लगता है। वह वज्रायुध को पुकारता है और युद्ध के लिए चुनौती देता है। वज्रायुध भी अपना परिचय देता हुआ उससे युद्ध करता है। समरकेतु वज्रायुध के रणकौशल से प्रसन्नता का अनुभव करता है, और वह फिर उसकी प्रशसा करता हुआ अपने घातक प्रहार से उसे बचाने के लिए सचेत भी करता है। वज्रायुध भी समरनीति का पूरा-पूरा आदर करता है। दिव्य अँगूठी के प्रभाव से समरकेतु और उसकी सेना के वेहोश हो जाने पर जव वह यह देखता है कि उसकी सेना मार-काट और लूट-खसूट मे प्रवृत्त होने लगी है तो वह तुरन्त ही अपनी सेना को ऐसा करने से रोक देता है और स्वय समरकेतु की हालत जानने के लिए उसके पास तेजी से पहुँच जाता है। उसके युद्ध-कौशल की ताजी याद से वह वहुत ही विस्मित होता है,

और उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा भी करता है। इतना ही नही, बल्कि उसकी चामरग्राहिणी से उसका परिचय पूछकर उसको अपने शिविर मे लाता है। अपने हाथो उसकी मरहम-पट्टी करता है और विश्वस्त चिकित्सको मे उसका इलाज कराता है। न केवल अपनी ही सेना के बल्कि उसकी भी सेना के घायल सिपाहियो की दवा का प्रबन्ध करता है। जब समरकेतु सर्वथा स्वस्थ हो जाता है तो उसे उसकी सम्पूर्ण युद्ध सामग्री जो युद्ध मे उसके अधिकार मे आ गई थी, आदर सहित वापस करता हुआ उसे आजाद कर देता है।[100]

देखा जाए तो यह एक ऐसी आदर्श भारतीय समरनीति है, जो मानवता की हिमायती मानी जा सकती है और प्राचीन राजतन्त्रकालीन होने के बावजूद भी आज की इस प्रजातान्त्रिक राज्य-पद्धति मे भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनाये हुए है।

रात मे सोते समय की छापामार लड़ाई (सौप्तिक युद्ध) को उन दिनो भी अच्छा नही समझा जाता था। हालांकि इसका रिवाज जारी था, पर यह क्षुद्र क्षत्रियो का ही काम माना जाता था। इसीलिए समरकेतु जैसे वीर को सौप्तिक युद्ध मे प्रवृत्त देखकर वज्रायुध को आश्चर्य होता है।[101] महाभारत मे भी अश्वत्थामा के सौप्तिक-वध के विचार की कृपाचार्य ने काफी निन्दा की है।[102] युद्ध मे वीरगति पाने वालो को शोकपूर्ण तिलाजलि और श्रद्धाजलि देकर उनके प्रति सम्मान प्रकट किया जाता था।[103] उन दिनो के युद्ध काफी लम्बे चलते थे। इसलिए आक्रामक सेना मे मनोरजनार्थ सुन्दर-सुन्दर वनिताएँ और वार-वनिताएँ भी चला करती थी। वज्रायुध और समरकेतु—दोनो की सेनाओ मे वार-वनिताओ का होना सिद्ध होता है। उन दिनो आक्रमणकारी आक्रान्त की सुन्दरी कन्या या बहिन से शादी करने की अपनी तमन्ना पूरी होने पर ही युद्ध समाप्त करने की धमकी दिया करता था, इसका ज्वलन्त प्रमाण वज्रायुध है।

काची नरेश कुसुमशेखर की सुरक्षात्मक युद्ध की तैयारियाँ भी तत्कालीन युद्ध-प्रणाली की ओर सकेत करती है। वज्रायुध के आक्रमण को रोकने के लिए वह अपनी ओर से पूरा-पूरा वन्दोबस्त करता है। किले की चारदीवारी जहाँ कहीं भी टूटी हुई थी वहाँ उसकी मजबूत मरम्मत कराता है, खाई को गहरी और दुष्पार बनवा देता है, आसपास के गाँवो को खाली कराकर जलवा कर साफ करा देता है, ताकि दुश्मन वहाँ पनाह न ले सके, बाहर के सभी कूपो और तालाबो के पानी को जहरीला बनवा देता है, ताकि दुश्मन उसे पीते ही मर जाएँ, अपनी राजधानी मे सभी तरह की खाने-पीने की चीजें अधिक से अधिक मात्रा मे जमा करा लेता है, ताकि शहर मे भुखमरी न फैल सके, हिजडे, लगडे, लूले, भिखमगे, पागल और डरपोक आदमियो को शहर से दूर पहुँचवा देता है, ताकि वे वहाँ की प्रजा का मनोबल कमजोर न कर सके, अपरिचितो का आना-जाना बन्द करवा देता है, ताकि कोई भेद दुश्मनो तक न पहुँच सके, विश्वस्त सैनिको की सशस्त्र टुकडियो को सब ओर गस्त लगाने और रक्षा करने के लिए तैनात कर देता है, ताकि प्रजा मे सुरक्षा की भावना बनी रह सके, चारदीवारी के पीछे जगह-जगह हाथ से फैके जाने काबिल छोटे-छोटे नुकीले पत्थरो के ढेर लगवा देता है, ताकि वक्त-जरूरत पर उनकी मार से भी दुश्मनो को लौटाया जा सके, और स्थान-स्थान पर तोपो को भी लगवा देता है।[104]

उसके इन सभी सुरक्षात्मक उपायो पर दृष्टिपात करते ही महाभारत के शान्ति-पर्व मे भीष्म पितामह द्वारा युधिष्ठिर को बडे विस्तार के साथ बताए गए सुरक्षात्मक उपायो की याद बरबश आ जाती है। तिलकमञ्जरी मे बताए गए ये सभी उपाय, एकाध को छोडकर महाभारत मे बताए गए उपायो मे से ही है।[१०५] उन दिनो अपनी सहायता के लिए मित्र राजाओ का सहयोग भी ले लिया जाता था।

राजा लोग अपने दैनिक जीवन मे सतर्क भी खूब रहते थे। विश्वस्त चिकित्सको द्वारा परीक्षा कराने के बाद ही भोजन करते थे। इस पर भी, भोजन की थाली के पास ही तोता, मैना, चकोर, क्रौच, कोयल आदि पक्षियो को भी बैठा लिया जाता था; क्योकि जहरीले भोजन को देखकर इनकी चेष्टाओ मे कुछ विशेष प्रकार का परिवर्तन हो जाया करता है।[१०६] जहाँ कही ये जाते थे वहाँ की पहले से ही देखभाल करा ली जाती थी। खुशी के अवसरो पर उस समय के राजा लोग इनाम तो दिया ही करते थे, लेकिन कभी-कभी कैदियो को भी मुक्त कर देते थे।[१०७] राज्य के सच्चे शुभचिन्तको को हार्दिक सम्मान दिया जाता था।

इस प्रकार हम देखते है कि उन दिनो का राजनैतिक वातावरण अपने आप मे अस्थिर होने के बावजूद भी पूरी तौर से अपनी गौरवपूर्ण प्राचीनता को लिए हुए था, जिसे हम अस्वाभाविक नही कह सकते है।

सन्दर्भ

१ तिलकमञ्जरी, पृ० १२६
२ वही, पृ० ४२-४५
३ वही, पृ० ३२६ तथा ३३०
४ वही, पृ० ६६
५ वही, पृ० १७३
६ वही, पृ० ११४
७ वही, पृ० ११२
८ वही, पृ० ११७
९. वही, पृ० १६२-१६७
१०. वही, पृ० १०७-१०८
११. वही, पृ० १४४
१२ वही, पृ० १८६
१३. वही, पृ० ११८-११९
१४. वही, पृ० १६६
१५. वही, पृ० ३४९
१६ वही, पृ० १३४ तथा २९१
१७ वही, पृ० ५९-६०

१८. वही, पृ० २८
१९ वही, पृ० ३२७-३२८
२०. वही, पृ० १६८, २६४ तथा २७०-२७१
२१. वही, पृ० ३९०-३९१
२२. वही, पृ० १७५, २८५, २८८-३१८
२३. वही, पृ० २८७-२८९
२४. वही, पृ० २९९-३००
२५. वही, पृ० ४१७
२६. वही, पृ० ४२७-४२८
२७. वही, पृ० ८४, १३९ तथा १४१
२८. वही, पृ० ८
२९. वही, पृ० २६१
३०. वही, पृ० ९-१०
३१. वही, पृ० १८
३२. वही, पृ० १६९
३३. वही, पृ० १०
३४. वही, पृ० ५१
३५. वही, पृ० ११९
३६. वही, पृ० १३७ तथा २००
३७. वही, पृ० २३४-२३५
३८. वही, पृ० १७३
३९. वही, पृ० ३२१
४०. वही, पृ० ३८४
४१. वही, पृ० ४२२
४२. वही, पृ० १९३-१९४

(A) "Culture is that complex whole of which includes Knowledge, Belief. Art, Morals, Law, Custom, and any other capabilities, and habits acquired by man as a member of society"
—Quoted in 'Evolution of Indian Culture', By V. C. Pandey & K. Singh, p. 2

(B) "An organised body of conventional understanding manifest is art and artifact, which Persisting through traditions, characterizes human group." —Ibid, p. 3

(C) Ibid, p. 3

४३. ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत् ।
अनपाकृत्य मोक्ष तु सेवमानो व्रजत्यध ॥ —मनुस्मृति, अध्याय ६, श्लोक ३५

४४. तिलकमञ्जरी, पृ० २०, २१, २८-३१ तथा ५८
४५. वही, पृ० २७
४६. वही, पृ० ३२-६१
४७ वही, पृ० (क) ११२, (ख) २४४, (ग) २९५, (घ) ३४२, (ङ) ४०९, (च) ४१०, (छ) ४१७-४१८
४८ वही, पृ० ४०६-४१३
४९ वही, पृ० ३५-४५, ४६-५२, ५४-६१, १९४ तथा ३८१-३८३
५०. वही, पृ० ६०
५१. वही, पृ० ३३
५२. वही, पृ० ३९८-४०२
५३ वही, पृ० ६३
५४ वही, पृ० ९१-९२ तथा ९८
५५. वही, पृ० ३४
५६. वही, पृ० ७५-८०
५७ वही, पृ० २० तथा १३५
५८. वही, पृ० २६३
५९ वही, पृ० २९५
६०. वही, पृ० ७६
६१. वही, पृ० ४२२-४२३ तथा ४२५
६२. वही, पृ० ११५ तथा १८१
६३. वही, पृ० ६३-६५
६४. वही, पृ० ७७
६५. वही, पृ० ७८
६६ वही, पृ० १६९-१७०
६७. वही, पृ० ७३-७४
६८. वही, पृ० २०७-२०८
७९. वही, पृ० ७१ तथा १७४
७० वही, पृ० ७२, ७७, ११५-११६ तथा १२३
७१. वही, पृ० १८६
७२ वही, पृ० ८३, ९५ तथा १०८
७३ वही, पृ० २९८, ३००-३०१

टिप्पणी—आजकल यह प्रथा कही भी नही पाई जाती है। आज न तो कामदेवता के कही मन्दिर है और न कोई इनकी पूजा की चर्चा ही किया करता है। आज 'काम' को देवता के रूप मे स्वीकार करने की भावना, पता नही क्यो, किसी भी शिष्ट व्यक्ति के मन मे नही जागती? शायद आज के मानव मन मे सयम एव सीमा के टूट जाने से पाशविक भोग-वासना की उच्छृङ्खल आंधी मे 'काम' के प्रति देवत्व-

भावना का अमर दीपक प्रज्वलित ही नहीं हो पाता है। पर काश! ऐसा हो पाता! यद्यपि आजकल की 'वसन्त पचमी' का उत्सव कुछ मायने मे उसी काम-पूजा का प्रतीक माना जा सकता है, पर विवाह के पूर्व लडकियो से काम-पूजन के स्थान पर तो अब गौरी-पूजन कराने की ही प्रथा चल रही है। तुलसीदास के राम-चरितमानस की सीता ने भी गौरी-पूजा ही की है। —लेखक

७४. वही, पृ० १६८-१६६ तथा २१०
७५. वही, पृ० ११६ तथा २३६-२३७
७६ वही, पृ० ४२६-४२७
७७. वही, पृ० २५६-२५७
७८. वही, पृ० ३५६
७९. वही, पृ० ३६६-३८६
८०. वही, पृ० ३७०
८१. वही, पृ० ३८१-३८३
८२. वही, पृ० ९
८३. वही, पृ० १६०
८४. वही, पृ० ३०६
८५. वही, पृ० १५८-१६१
८६. वही, पृ० ४५
८७ वही, पृ० १०८-१०९
८८. वही, पृ० ३३८
८९. वही, पृ० १९२
९०. वही, पृ० ३४१
९१. 'गिरिशिखरततिनिभशातकुम्भप्रासादमालाध्यासितोभयविभागै स्फुटविभाव्यमान-मरकतेन्द्रनीलवज्रवैदूर्यराशिभिश्चामीकराचलतटीव चण्डाशुरथचक्रमार्गै पृथुलायतै-र्विपणिपथै. प्रसाधिता······।'

—तिलकमञ्जरी, पृ० ८

९२. वही, पृ० २५९-२६०
९३ वही, पृ० ११७
९४. वही, पृ० १२७
९५. "······परमारनरेश मुज (वाक्पतिराज द्वितीय) ने अपने जीतेजी ही अपने भतीजे भोज को गोद ले लिया था। परन्तु उसकी मृत्यु के समय भोज की अवस्था छोटी होने के कारण इस (भोज) का पिता सिन्धुराज मालवे की गद्दी पर बैठा। इसके बाद जब वि० स० १०५४ (ई० सन् ९९७) से वि० स० १०६६ (ई० सन् १०१०) के बीच यह भी युद्ध मे मारा गया, तब राजा भोज मालवे का स्वामी हुआ।"

—राजा भोज, लेखक—विश्वेश्वरनाथरेउ, प्रथम सस्करण, पृ० ६५

९६. वही, पृ० ६३-६४

९७ "……त्वया हि वहव कृता सङ्ग्रामा', हताश्च सख्यातीता क्षत्रियक्षोणीपतय';
·· ···इति ब्रुवाणम् · उवाच नक्तचर नृपति.—प्रेतनाथ! नान्यथोदित भवता।
तथ्यमेवेदम्। कृता शतकृत्वो मया सङ्ग्रामा। हताश्च सख्यातीता' क्षत्रियक्षोणी-
पतय। किन्तु··· · न कृतस्तत्कपालाना सङ्ग्रह।"

—तिलकमञ्जरी, पृ० ५१

९८ ……तिलकमञ्जरी, पृ० ६३, ६१, ६३ तथा ६८

९९. "नैवासन्नद्धकवचो योद्धव्य क्षत्रियो रणे।
एक एकेन वाच्यश्च विसृजेति क्षिपामि च॥
स चेत्सन्नद्ध आगच्छेत्सन्नद्धव्य ततो भवेत्।
स चेत्ससैन्य आगच्छेत्ससैन्यस्तमथाह्वयेत्॥
··· ··· ··· ···
भग्नशस्त्रो विपन्नश्च कृत्तज्यो हतवाहन'।
चिकित्स्य' स्यात्स्वविषये प्राप्यो वा स्वगृहे भवेत्॥
निर्व्रणश्च स मोक्तव्य एष धर्म सनातनः।
तस्माद् धर्मेण योद्धव्यमिति स्वायम्भुवोऽब्रवीत्॥"

—महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय ९५, श्लोक ७-८ तथा १३-१४

१००. तिलकमञ्जरी, पृ० ८६-९८

१०१. वही, पृ० ९४

टिप्पणी—समरकेतु एक प्रशस्त और ख्यातिप्राप्त उदीयमान योद्धा था। पर अपनी अनन्यवल्लभा प्रेमिका मलयसुन्दरी की कोमल भावनाओ से खिलवाड़ करने वाले और उसकी प्राणान्तक पीडा मे कारण बनने वाले वज्रायुध के नृशस व्यवहार को सुनकर क्रोध से उसका शौर्यसम्पन्न खून खौलने लगा, और यही कारण है कि उसने सूर्योदय की प्रतीक्षा किए बिना ही वज्रायुध पर रात मे धावा बोल दिया।

—लेखक

१०२ "न वध पूज्यते लोके सुप्तानामिह धर्मत।
तथैवापास्तशस्त्राणा विमुक्तरथवाजिनाम्॥
ये च ब्रूयुस्तवास्मीति ये च स्यु शरणागता।
विमुक्तमूर्धजा ये च ये चापि हतवाहना'॥
अद्य स्वप्स्यन्ति पञ्चाला विमुक्तकवचा विभो।
विश्वस्ता रजनी सर्वे प्रेता इव विचेतस॥
यस्तेषां तदवस्थानां द्रुह्येत पुरुषोऽनृजु।
व्यक्त स नरके मज्जेदगाधे विपुलोऽप्लवे॥"

—महाभारत, सौप्तिकपर्व, अध्याय ५, श्लोक ११-१४

१०३ तिलकमञ्जरी, पृ० ९७

१०४. वही, पृ० ८२

१०५ महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय ६९

१०६. तिलकमञ्जरी, पृ० ६९

टिप्पणी—विषमिश्रित भोजन को देखकर ही कतिपय पशु-पक्षियो मे होने वाले परिवर्तन निम्न प्रकार से कहे गये हैं—

"...... चकोरस्याक्षिवैराग्य जायते क्षिप्रमेव तु ॥
दृष्ट्वान्न विषसंसृष्ट म्रियन्ते जीवजीवका ।
कोकिल. स्वरवैकृत्य क्रौञ्चस्तु मदमृच्छति ॥
हृष्येन्मयूर· उद्विग्नः क्रोशतः शुकसारिके ।
हसः क्ष्वेडति चात्यर्थं भृङ्गराजस्तु कूजति ॥"

—सुश्रुतसहिता, कल्पस्थान, अध्याय १, श्लोक ३०-३२

१०७. तिलकमञ्जरी, पृ० ७७, १७३ तथा १९५

७

पूर्ववर्त्ती साहित्यकारों का प्रभाव

प्रथम ोपान

साहित्यकार एव साहित्यिक आदान-प्रदान : एक संक्षिप्त विश्लेषण

वास्तव मे साहित्यकार की दुनियाँ दोहरी होती है। एक तो वह, जहाँ से उसे खाने-पीने, पहिनने-ओढने आदि की शरीरोपयोगी सभी चीजो के साथ ही साथ अपनी साहित्यिक दुनियाँ की रचना के लिए जोरदार मसाला भी मिलता है, और दूसरी वही उसकी साहित्यिक दुनियाँ, जिसे वह कुछ अश मे स्वय भी बसाता है और काफी अश मे उसे वह दूसरे साहित्यकारो द्वारा बसी बसायी भी मिलती है। यही कारण है कि साहित्यकार जहाँ एक ओर अपने वर्तमानकालीन समाज के विविध वातावरणो से प्रभावित होता है, वही दूसरी ओर वह वर्तमान तथा अतीत के साहित्यिक-ससार की भी विचारधाराओ से अछूता नही रह पाता।

साहित्यकार की जिस प्रकार दुनियाँ दोहरी होती है उसी प्रकार उसका व्यक्तित्व भी दोहरा होता है—एक तो आभ्यन्तरिक और दूसरा वाह्य। आभ्यन्तरिक व्यक्तित्व के सम्पोषण मे जहाँ विचारधाराओ को ही सभी अधिक महत्त्व देते हैं, वहाँ बाह्य व्यक्तित्व के परिस्फुरण मे समाज की प्रधानता को भी कोई नजर-अन्दाज नही करता। चूँकि सच्चे साहित्यकार को बाह्य व्यक्तित्व से अधिक अपने आभ्यन्तरिक व्यक्तित्व की चिन्ता रहती है, इसलिए वह उसके निर्माण, परिमार्जन एव विकास के लिए स्वाध्यायशील और मननशाल भी होता है। उसे दूसरे साहित्यकारो की बसाई हुई साहित्यिक दुनियाँ की भी सैर करने का शौक लग जाता है, और लगना भी चाहिए। क्योकि ऐसा होने पर ही तो उसके आभ्यन्तरिक व्यक्तित्व मे बसने वाला 'साहित्यकार' जागता है, और यदि उसमे उस समय 'नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा' का थोडा भी सस्पर्श हुआ तो वह निश्चय ही सर्जनाशील भी हो उठता है। कालान्तर मे उसकी यही सर्जनाशीलता साहित्य-जगत् के लिए किसी न किसी प्रकार की देन बन जाती है और फिर उसकी इस देन से उसकी उस साहित्यिक दुनियाँ का भी दायरा बढ जाता है जिसके परिवेश मे वह स्वय समाया हुआ रहता है।

साहित्यकार के इस स्तर की अनुभूति करने के बाद एक समालोचक के मन मे यह जिज्ञासा उठना स्वाभाविक है कि उपर्युक्त साहित्यकार अपनी काव्य रचनाओ के

लिए अपने पूर्ववर्त्ती तथा सहवर्त्ती साहित्यकारो की काव्य रचनाओ से कुछ लेता (आदान करता) है या नही ? तथा अपने सहवर्त्ती और परवर्त्ती साहित्यकारो को काव्य-रचना के लिए अपनी काव्य रचनाओ से वह कुछ देता (प्रदान करता) है या नही ?

इस जिज्ञासा को पूरा करने के लिए यदि हम किसी भी देशविशेष के किसी भी समाजविशेष मे रहने वाले मानवो की सस्कृति और सभ्यता के स्वरूप पर दृष्टिपात करें तो अनुभव करेंगे कि मानव-शिशु समाज की जिस सस्कृति और जिस सभ्यता मे पलता और पुष्ट होता है, उसके जीवन पर उसका अवश्य ही प्रभाव पड़ता है। लेकिन जब वह बड़ा हो जाता है तब उसकी स्वय की भी एक सस्कृति बन जाती है, जिसे उसकी विचार-धारा कह दिया जाता है। इतना ही नही, बल्कि उसकी एक व्यक्तिगत सभ्यता भी होती है। मगर उसकी इस सस्कृति और सभ्यता पर समाज की विरासत के रूप मे मिलने वाली समष्टिगत सस्कृति और सभ्यता की छाप अवश्य ही रहती है। हाँ, इतना अवश्य है कि किसी पर अधिक और किसी पर कम। जिस पर अधिक होती है उसकी सस्कृति और सभ्यता को समाज की सस्कृति और सभ्यता से भिन्न समझने की नौबत ही नही आती, और जिस पर कम होती है उसकी सस्कृति और सभ्यता को समाज की सस्कृति और सभ्यता से अलग समझ लिया जाता है। कालान्तर मे उसकी वही सस्कृति और सभ्यता दूसरे मनुष्यो के लिए किसी न किसी रूप मे प्रेरणा का स्रोत भी बन जाती है। तात्पर्य यह है कि मनुष्य के जीवन पर एक ओर समाज की पीढी दर पीढी से चली आ रही विरासत का प्रभाव पडता है, वही दूसरी ओर उसका भी जीवनदर्शन समाज को प्रभावित किए बिना नही रहता।

हम दूसरा ज्वलन्त उदाहरण वैज्ञानिक जगत् से भी दे सकते है। देखा जाता है कि प्रत्येक सच्चा वैज्ञानिक अपनी वैज्ञानिक दुनियाँ के समकालीन और अतीतकालीन वैज्ञानिको की उपलब्धियो से प्रभावित होता है और उनसे बहुत कुछ सीखता है। साथ ही साथ वह उन्ही प्राचीन उपलब्धियो के सहारे अपनी मेधा और प्रतिभा के बल पर कुछ नवीन उपलब्धि भी करना चाहता है। यदि वह इसमे सफल हुआ तो निश्चय ही अपनी वैज्ञानिक दुनियाँ के दूसरे समकालीन और भविष्यकालीन वैज्ञानिको की खोज को एक नई दिशा भी दे जाता है। सारांश यह है कि वैज्ञानिक जहाँ एक ओर अपनी वैज्ञानिक दुनियाँ से बहुत कुछ लेता है वही दूसरी ओर वह अपनी विज्ञान-साधना से उसे कुछ देता भी है।

इस प्रकार हम इन उपर्युक्त दो उदाहरणो से इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते है कि जिस प्रकार एक सामाजिक प्राणी अपने समाज से, तथा एक क्रियाशील वैज्ञानिक अपने वैज्ञानिक जगत् से बहुत कुछ लेने के साथ ही साथ उसे यथाशक्ति कुछ न कुछ देता भी है, ठीक उसी प्रकार एक सर्जनाशील साहित्यकार भी एक ओर अपने साहित्यिक जगत् से बहुत कुछ लेता भी है और दूसरी ओर वह उसे कुछ न कुछ देता भी है। अर्थात् साहित्यिक जगत् मे साहित्यकार का यह साहित्यिक आदान-प्रदान हमे सामाजिको और वैज्ञानिको के आदान-प्रदान के समान ही सुतरा शाश्वतिक और स्वाभाविक मानना पड़ेगा।

इस प्रसग मे मुझे यह भी कहना है कि आदान-प्रदान की यह प्रक्रिया सभी प्रकार के ज्ञान, विज्ञान और कला के क्षेत्रो मे अपनाई जाती है। यदि ऐसा नही किया जाता तो हम आज भी जीवन के उसी स्तर मे होते जहाँ हजारो साल पहले थे। क्योकि ज्ञान-विज्ञान और कला-विषयक विरासत को अपनाये बिना और उसे परिमार्जित या परिवर्धित किए बिना हम उसके ककहरा और बारहखडी से आगे उसके विषय मे कुछ जान ही नही सकते। चूँकि साहित्य भी एक कला है, और इसमे जनजीवन की मीमासा भी है, अत इसके प्रत्येक साधक को अपनी साहित्यिक विरासत पर नजर रखनी ही पडती है। साथ ही साथ वह अपनी भावी साहित्यिक पीढी के लिए कुछ न कुछ नई रोशनी भी देना चाहता है। इसका स्पष्ट परिणाम यह होता है कि उसे साहित्यिक आदान-प्रदान करना ही पडता है, और करेगा भी क्यो नही ? वह इससे बच भी तो नही सकता।

आदान-प्रदान के विविध प्रकार

साहित्य के उद्यान मे जब कोई साहित्यकार सैर करता है तो वह वहाँ का कोना-कोना छानता है, उसके अगो और प्रत्यगो पर अपनी पारदर्शिनी और सारग्राहिणी दृष्टि जमाता है, और उस समय उसे वहाँ भाव, भाषा, रस रीति, छन्द, ध्वनि, गुण, अलङ्कार, उद्देश्य आदि साहित्य के उपस्कारक जो भी तत्त्व मिलते है उन सभी पर वह सहृदयता-पूर्वक मनन-चिन्तन करता है। साथ ही वह उनका अपने लिए सभी पहलुओ से मूल्याङ्कन भी करता है। वह सोचता है कि उनमे से उसकी काव्य-रचना के लिए कौन-कौन से तत्त्व उपयोगी और कीर्त्तिवर्धक हो सकते है। उस समय उसकी उर्वर मनोभूमि पर वे तत्त्व अकुरित होने लगते है जिनमे प्रभविष्णुता और अनुकरणीयता की मात्रा प्रबल होती है, और कालान्तर मे जब वही साहित्यकार अपनी भावनाओ को काव्य का रूप प्रदान करता है तो उसकी मनोभूमि मे बसे हुए वे ही तत्त्व उसकी रचना मे प्रतिफलित भी होने लगते है।

चूँकि मनुष्यो की रुचि भिन्न-भिन्न हुआ करती है इसलिए सभी साहित्यकारो की मनोभूमियो पर साहित्य के सङ्घटक तत्त्वो का प्रभाव समान रूप से नही पडता। कोई किसी एक तत्त्व विशेष से प्रभावित होता है तो कोई किसी दूसरे तत्त्व विशेष से। इसीलिए देखा गया है कि कोई तो साहित्य जगत् की विरासत के रूप मे प्राप्त होने वाले रस को ही अपने काव्य मे प्रधानता देता है तो कोई रीति को ही सर्वस्व समझता है, कोई अलङ्कारो को तो कोई छन्दो की विविधता को, और कोई भाषा की भव्यता को तो कोई प्रतिपाद्य की परिकल्पना को ही महत्त्व देता है। कभी-कभी साहित्यकारो के मन पटल पर काव्य-जगत् के गद्यात्मक किवा पद्यात्मक स्वरूप की अनुकरणीयता का भी प्रभाव पड जाता है।[1] इतना ही नही, वल्कि इन गद्यात्मक और पद्यात्मक काव्य विधाओ के अन्य भेदो और उपभेदो की परम्परा के चल जाने मे भी हमे तो इस साहित्यिक आदान-प्रदान की प्रक्रिया का ही हाथ लगता है। इन सभी तथ्यो की ओर विहगावलोकन करते हुए यहाँ यह भी कहा जा सकता है कि साहित्य के क्षेत्र मे आदान और प्रदान के विषयो की सीमा दिन-प्रतिदिन काफी व्यापक ही होती जा रही है। यहाँ हम उन्हे, फिलहाल,

निम्नलिखित सात प्रतीको मे विभक्त कर रहे हैं—

(१) कथानक का आदान,
(२) शब्दो का आदान,
(३) विषय का आदान,
(४) शैली का आदान,
(५) छन्दो का आदान,
(६) दृश्य का आदान तथा
(७) वस्तु (पदार्थ) का आदान।

अब आईए, प्रत्येक प्रतीक पर कुछ विश्लेषण भी कर लिया जाए।

(१) कथानक का आदान

समाज मे जब कभी किसी व्यक्तिविशेष को, उसके कार्यकलापो के आधार पर, विशिष्ट महत्त्व दे दिया जाता है तो साहित्यकार उसके जीवनचरित एव जीवनदर्शन को झट से अपनी सर्जना का विषय बना लेते है। भला बनाएँ भी क्यो नही ? उसमे आकर्षण ही इतना होता है कि वे उसकी उपेक्षा कर नही सकते। यही कारण है कि जब दूसरा साहित्यकार इस प्रकार के विशिष्ट चरित्र सम्पन्न महापुरुषो से सबधित काव्यो को पढ़ता है तो वह उनसे इतना प्रभावित हो जाता है कि वह स्वय भी उसी कथानक को लेकर, अपनी ओर से भी, एक स्वतन्त्र रचना करने की बात सोचने लगता है। यदि वह प्रतिभाशाली है तो केवल सोचकर ही नही रह जाता, बल्कि उसे पूरा भी कर डालता है। कालान्तर मे जब उसकी वही रचना पाठको के सामने आती है तो उन्हे यह समझते देर नही लगती कि उसने अपनी रचना के कथानक का अवश्य ही आदान (आहरण) किया है। हम देखते हैं कि हमारे भारतवर्ष मे राम, कृष्ण, युधिष्ठिर, उदयन, गौतमबुद्ध, अशोक, महाराणा प्रतापसिह, क्षत्रपति शिवाजी, गुरु गोविन्दसिह, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरु आदि महापुरुषो से सम्बन्धित कथानको का साहित्यकारो ने खूब खुलकर आदान-प्रदान किया है। इनमे भी राम और कृष्ण के कथानको का तो इतना अधिक आदान-प्रदान हुआ है कि न केवल सस्कृत साहित्य में ही अपितु हिन्दी साहित्य मे भी इन दोनो (राम-कृष्ण) के कथानको से सम्बन्धित काव्यों की दो धाराएँ ही बन गई हैं।

चूंकि इसी प्रसग मे मैं यह भी कहना चाहता हूँ कि कथानक का आदान-प्रदान केवल प्रबन्धात्मक काव्यो मे ही नही होता, बल्कि मुक्तक पद्यो मे भी पाया जाता है, इसलिए मैं यहाँ यह भी स्पष्ट करना उचित समझता हूँ कि कथानक शब्द से यहाँ मेरा तात्पर्य केवल सुसङ्गठित प्रबन्धात्मक कथा (प्लाट) से ही नहीं है, (जैसा कि इसी शोध ग्रन्थ के द्वितीय अध्याय मे रहा है,) बल्कि कवि के पूर्वापरसन्दर्भविहीन 'भावमात्र' से भी है। कवियो के ऐसे मुक्तक पद्य, जिनमे पर्याप्त भाव-साम्य पाया जाता है, आए दिन पाठको के सामने आते ही है। उदाहरणार्थ समानभावात्मक कुछ पद्य प्रस्तुत कर रहा हूँ—

(क) कान्ते तल्पमुपागते विगलिता नीवी स्वयं बन्धनात्
तद्वासः श्लथमेखलागुणधृतं किञ्चिन्नितम्बे स्थितम्।
एतावत् सखि ! वेद्मि केवलमहं तस्याङ्गसङ्गे पुनः
कोऽसौ कास्मि रतं नु किं कथमपि स्वल्पापि मे न स्मृतिः।

यह मुक्तक पद्य अमरुक कवि का लिखा हुआ है। इसका भाव यह है कि हे सखि ! ज्योंही प्रियतम मेरे बिस्तर पर आया, त्यो ही मेरी नीवी अपने आप ही खुल गई थी...... ...बस इतना तो मुझे याद है। पर उसके अङ्गो की लपेट मे आने पर वह कौन है ? मै कौन हूँ ? सम्भोग क्या है ? इसकी मुझे फिर जरा भी याद नही रही।

स्पष्ट है कि यहाँ किसी प्रिय सहेली के पूछने पर कोई नायिका उसे अपने सम्भोग सुख का अनुभव सुना रही है। पर अमरुक कवि के इस मुक्तक का भाव प्रसिद्ध कवयित्री विज्जिका को इतना अच्छा लगा कि उन्होने भी इसे अपना लिया; और इसी आशय का एक पद्य भी लिख डाला। हाँ, शार्दूलविक्रीडित की बजाय छन्द उन्होने वसन्ततिलका कर लिया। उनका वह पद्य इस प्रकार है—

धन्यासि या कथयसि प्रियसङ्गमेऽपि
विश्रब्धचाटुकशतानि रतान्तरेषु।
नीवीं प्रति प्रणिहिते तु करे प्रियेण
सख्या शपामि यदि किञ्चिदपि स्मरामि॥

मतलब यह है कि तू धन्य है जो प्रियतम के साथ सम्भोग करते समय भी मीठी-मीठी बाते कर लेती है, (लेकिन अपनी मैं क्या कहूँ ?) मेरा प्रियतम मेरे नीवी-बन्धन को खोलने के लिए जैसे ही हाथ बढाता है वैसे ही मुझे तो तेरी कसम कुछ भी याद नही रहता।

(ख) ते पान्तु वः पशुपतेरलिनीलभासः, कण्ठप्रदेशघटिताः फणिनः स्फुरन्तः।
चन्द्रामृताम्बुकणसेकसुखप्ररूढैर् यैरङ्कुरैरिव विराजति कालकूटः॥

भाव यह है कि भगवान् शकर के गले मे लिपटे हुए तथा भ्रमरो के समान काले वे साँप तुम लोगो की रक्षा करे, चन्द्रमा मे रहने वाले अमृत की बूंदो के टपकते रहने से मानो उत्पन्न हुए अकुरो के समान जिनसे (शकर के गले का) कालकूट (हलाल विष) सुशोभित होता रहता है।

अब लीजिए, इसी भाव से मिलते-जुलते भाव का दूसरा पद्य भी देखिए—

जयन्ति नीलकण्ठस्य नीलाः कण्ठे महाहयः।
गलद्गङ्गाम्बुसंसिक्तकालकूटाङ्कुरा इव॥

इसमे कवि का कहना है कि भगवान् शकर के गले मे काले साँप, गङ्गा-जल के निरन्तर झरते रहने से मानो उगे हुए कालकूट विष के अकुरो के समान, सुशोभित होते रहते है।

स्पष्ट है कि इस दूसरे कवि ने पहले वाले कवि के पद्य के भाव का आदान (आहरण) कर लिया है।

(ग) शून्यं वासगृहं विलोक्य शयनादुत्थाय किञ्चिच्छनैर्
निद्राव्याजमुपागतस्य सुचिरं निर्वर्ण्य पत्युर्मु ।
विश्रब्धं परिचुम्ब्य जातपुलकामालोक्य गण्डस्थलीं
लज्जानम्रमुखी प्रियेण हसता वाला चिर चुम्बिता ॥

सभी जानते हैं कि यह उपर्युक्त पद्य अमरुशतक का है, पर इसी के भावार्थ का आहरण करके हिन्दी साहित्य के कविवर बिहारीलाल ने भी एक दोहा लिखा है, जो इस प्रकार है—

मैं मिसहा सोयो झि, मुँह चूम्यो ढिग जाय।
हँस्यो, खिसानी, गलु गह्यो, रही गरे लिपटाय ॥

बिहारी पर संस्कृत साहित्य की काफी छाप पड़ी है। उनकी सतसई मे अनेक दोहे ऐसे है जिनमे गोवर्धनाचार्य की आर्यासप्तशती और हाल की गाथासप्तशती के पद्यो का पर्याप्त प्रभाव दीखता है। यहाँ मैं सिर्फ नमूने के तौर पर कुछ ही पद्य प्रस्तुत कर रहा हूँ—

(घ) चिकुरविसारणति ड्नतकण्ठीविमुक्तवृत्तिरपि वाला।
त्वामियमंगुलिकल्पितकचावकाशा विलोकयति ॥

—आर्या सप्तशती से।

कंजनयनि मंजन किए, वैठी व्यौरति वार।
कच रिन विच दीठ दै, चितवति नन्दकुमार ॥

—विहारी सतसई से।

(ङ) आयासः परहिंसा वैतंसिकसारमेय तव सारः।
त्वामपसार्य विभाज्यः कुरङ्ग एषोऽधुनैवान्यैः ॥

—आर्या सप्तशती से।

स्वारथ, सुकृत न श्रम वृथा, देखि विहंग विचार।
बाज, पराए पानि परि, तू पंछीनु न मार ॥

—विहारी सतसई से।

(च) भ्रामं भ्रामं स्थि स्नेहे तव पयसि तत्र त ।
आ पतितनौकायितमनग्रा विनयमपनीय ॥

—आर्या सप्तशती से।

फिरि फिरि चित उतही रहत, टूटी लाज की लाव।
अंग अंग छवि भौंर में, भई भौंर की नाव ॥

—विहारी सतसई से।

(छ) दत्तमनाकर्णनमिह सम्यगथाभूद् वृथा समाह्वानम् ।
मन्ये तारणविरुदस्त्यक्तो द्विरदं समुत्तार्य ॥

—आर्या सप्तशती से ।

नीकी दई अनाकिनी, फीकी परी गुहार ।
तज्यो मनो तारन विरुद, वारिक वारन तार ॥

—बिहारी सतसई से ।

(ज) यावन्न कोशविकासं प्राप्नोतीषन्मालतीकलिका ।
मकरन्दपानलोभयुक्तो भ्रमरस्तावदेव मर्दयसि ॥

—गाथा सप्तशती से ।

नहि पराग नहि मधुर मधु, नहि विकास इहि काल ।
अली कली ही सो बिंध्यो, आगे कौनु हवाल ॥

—बिहारी सतसई से ।

(झ) स्फुरिते वामाक्षि ! त्वयि ष्यति स ि ोऽद्य सत्सुचिरम् ।
सम्मील्य दि त्व तं प्रेक्षिष्ये ॥

—गाथा सप्तशती से ।

बाम बाँह फरकत मिलै, जो हरि जीवन मूरि ।
तो तोही सौं भेंटिहौं, राखि दाहिनी दूरि ॥

—बिहारी सतसई से ।

(ञ) वाचया किं भण ां कियन्मात्रं वा लिख्यते लेखे ।
तव विरहे यद् दुःख तस्य त्वमेव गृहीतार्थः ॥

—गाथा सप्तशती से ।

कागद पर नहि लिखत बन, कहत संदेस लजात ।
कहि है सब तेरो हियो, मेरे हिय की बात ॥

—बिहारी सतसई से ।

अब बिहारी को छोडिए और हिन्दी साहित्य के आचार्य कवि केशव को देखिए । इन्होने अपनी 'रामचन्द्रिका' मे सस्कृत साहित्य के प्रसन्नराघव और हनुमन्नाटक नामक नाटको से कई भावो का आदान किया है । उदाहरणार्थ दो पद्य प्रस्तुत है—

(क) मातस्तातः क्व यातः ? सुरपतिभवनं, हा कुतः ? पुत्रशोकात्,
कोऽसौ पुत्रश्चतुर्णां ? त्वमवरजतया यस्य जातः, किमस्य ?
प्राप्तोऽसौ काननान्तं, किमिति ? नृपगिरा, किं तथाऽसौ बभाषे ?
मद्वाग्बद्धः, फलं ते किमिह ? तव धराधीशता, हा हतोऽस्मि ॥

—जयदेव के प्रसन्नराघव से ।

कहु मातु कहाँ नृप ? तात, गए सुरलोकहिं, ाे सुतशोक लए,
सुत कौन सु ? राम, कहाँ है अबै ? वन लक्ष्मण सीय समेत गए।
वन क कहा कहि ? केवल मो सुख, यामे कहा सुख तोको भए ?
तुमको प्रभुता, धिक तोकों कहो, अपराध विना सिगरेई हए॥

—केशव की रामचन्द्रिका से।

(ख) ब्रह्मन्नध्ययनस्य नैष समयस्तूष्णी बहिः स्थी
स्वल्पं जल्प बृहस्पते, जडमते, नैषा सभा वज्रिणः।
स्तोत्रं संहर नारद स्तुतिकथालापैरलं तुम्बरो
सीतारल्लकभल्लभग्नहृदयः स्वस्थो न लङ्के र:॥

—हनुमन्नाटक से।

पढ़ौ विरंचि मौन वेद जीव सोर छण्डि रे
कुबेर बेर कै कही न जक्ष भीर मण्डि रे।
दिनेस जाइ दूरि बैठि नारदादि ही
न बोलि चन्द मन्दबुद्धि इन्द्र की सभा नहीं॥

— केशव की रामचन्द्रिका से।

इन उपर्युक्त कतिपय पद्यो को पढ लेने के पश्चात् इस धारणा का दृढ होना अस्वाभाविक नही कहा जा सकता कि एक साहित्यकार दूसरे साहित्यकार के भाव से प्रभावित होकर कभी-कभी उसी भाव से मिलते-जुलते दूसरे पद्य की सर्जना का लोभ नही रोक पाता है।

(२) शब्दो का आदान

कभी-कभी लोग दूसरे कवि के चमत्कारपूर्ण शब्दो का, या फिर पूरे वाक्य का ही आहरण कर लिया करते है। काव्यमीमासा के रचयिता यायावरीय राजशेखर ने शब्दो के इस आदान को—पद, पाद, अर्धवृत्त और प्रबन्ध के भेद से—पाँच प्रकार का माना है[२], और सोदाहरण समझाया भी है। पर जहाँ तक मैं समझता हूँ, उन्होने आरम्भिक—पदहरण, पादहरण और अर्थहरण—तीन भेदो को तो भली-भाँति समझा लिया है, लेकिन अन्तिम—वृत्तहरण और प्रबन्धहरण—दो भेदो को समझाने मे काफी शिथिलता दिखाई है। यहाँ तक कि वृत्तहरण के विश्लेषण मे वह बिल्कुल मौन ही है। अब लीजिए, हम उन्ही के अनुसार शब्द-आहरण के भेदो को सक्षेप मे सोदाहरण प्रस्तुत करते है—

(अ) पद हरण

दूराकृष्टशिलीमुखव्यतिकरान्नो किं किर निमान्
आराद् व्यावृतपीतलोहितमुखान् किं वा पलाशानपि।

पान्थाः केसरिणं न पश्यत पुरोऽप्येनं वसन्तं वने
मूढा रक्षत जीवितानि शरणं यात प्रियां देवताम् ॥

अरे राहगीरो ! क्या तुम लोग शिलीमुखो (वाणो-भ्रमरो) के झुण्डो को दूर से ही खीच रखने वाले इन किरातो (लुटेरे भीलो, फूले हुए चिरायता नामक विशेष प्रकार के वृक्षो) को नही देख रहे हो ? और पास मे ही खडे हुए लाल-पीले मुँह वाले इन पलाशो (नरमास-भोजी राक्षसो, फूले हुए ढाक के पेडो) को भी नही देख रहे हो ? ताज्जुब है कि तुम लोग सामने खडे हुए इस केसरी (सिंह, नागकेसर के वृक्ष) को भी नही देख रहे हो। अरे मूर्खो ! अपने प्राणो की रक्षा करो, भागो और सीधे अपनी इष्ट-देवता (सकट से रक्षा करने वाली आराध्यदेवी, कामवेदना से रक्षा करने वाली प्रेमिका) की शरण मे जाओ।

इस उपर्युक्त पद्य के द्व्यर्थक 'शिलीमुख' और 'किरात' शब्दों का आदान करके किसी दूसरे कवि का बनाया हुआ पद्य इस प्रकार है—

(ब) पादहरण

इत्युक्तवानुक्तिविशेषरम्यं
मनः समाधाय जयोपपत्तौ।
उदारचेता गिरमित्युदारां
द्वैपायनेनाभिदधे नरेन्द्रः ॥

—भारवि किरातार्जुनीय, ३/१०

इस पद्य के प्रथम पाद के शब्दो का पूरा-पूरा आहरण निम्नलिखित पद्य मे पाया जाता है—

इत्युक्तवानुक्तिविशेषरम्यं
रामानुजन्मा विरराम मानी।
संक्षिप्तमाप्तावसरं च वा
सेवाविधिज्ञैः पुरतः प्रभूणाम् ॥

कभी-कभी ऐसा भी देखा गया है कि किसी कवि द्वारा प्रयुक्त, अर्थान्तरन्यास से सम्बन्धित, पद्य के चतुर्थपाद को पूरी तरह से व्याप्त करने वाली किसी सूक्ति को निराशावश गलत सावित करने के लिए कुछ साहित्यकार उसका पूर्ण आहरण करके उसी से अपना नया पद्य आरम्भ कर देते है। उदाहरण प्रस्तुत है—

त्यागाधिका स्वर्गमुपाश्रयन्ते
त्यागेन हीना नरकं व्रजन्ति।
न त्यागिनां किञ्चिदसाध्यमस्ति
त्यागो हि सर्वव्यसनानि हन्ति ॥

उपर्युक्त पद्य के चतुर्थ पाद को लेकर शुरू किया गया पद्य नीचे है—

त्यागो हि सर्वव्यसनानि हन्ती-
त्यलीकमेतद् भुवि सम्प्रतीतम् ।
जातानि सर्वव्यसनानि तस्यास्
त्यागेन मे मुग्धविलोचनायाः ॥

(स) अर्ध-आहरण

इसका तात्पर्य है आधे श्लोक का आहरण । उदाहरण प्रस्तुत है—

पादस्ते नरवर ! दक्षिणे द्रे
पादोऽन्यो हिमवति हेमकूटलग्ने ।
आक्रामत्यलघु महीतलं त्वयीत्थं
भूपालाः प्रणतिमपास्य किन्नु कुर्युः ॥

उपर्युक्त श्लोक के पूर्वार्ध का आहरण करके बनाया गया श्लोक निम्नलिखित है—

पादस्ते नरवर ! दक्षिणे समुद्रे
पादोऽन्यो हिमवति हेमकूटलग्ने ।
इत्थं ते वि पदद्वयस्य राजन्
आश्चर्यं कथमिव सीवनी न भिन्ना ॥

(द) वृत्तहरण

राजशेखर ने शब्दाहरण के भेदो मे इस वृत्तहरण को गिनाया तो है, पर समझाया नही है । मेरी दृष्टि से इसका अन्तर्भाव मेरे मनोनीत 'छन्दो के आदान' के भेद मे बडी अच्छी तरह हो सकता है । अत मैं अपनी ओर से अलग से इसका विश्लेपण करना यहाँ उचित नही समझता हूँ । क्योकि मै आगे चलकर 'छन्दो का आदान' प्रतीक को स्पष्ट करूँगा ही ।

(ई) प्रबन्धहरण

राजशेखर ने शब्दाहरण का प्रबन्धहरण नामक यह जो पाँचवाँ भेद किया है, समालोचना की कसौटी पर खरा नही उतरता है । क्योकि किसी कवि के पूरे प्रबन्ध का या पूरे पद्य का आहरण करके उसे अपना घोषित कर देना, या उसकी दूसरे रूप मे व्याख्या कर देना कवित्व नही माना जा सकता है । ऐसा व्यक्ति या तो चोर कहा जाएगा या फिर व्याख्याकार; पर कवि किसी भी हालत मे नही कहा जा सकता ।

(३) विपय का आदान

साहित्यकारो मे साहित्य रचना के विपय का भी आदान-प्रदान चला करता है । पाश्चात्त्य जगत् के उपन्यास-साहित्य की भाँति हिन्दी साहित्य मे तिलस्मी और जासूसी

उपन्यासो की सर्जना हुई है। देवकीनन्दन खत्री के 'चन्द्रकान्ता', 'चन्द्रकान्तासन्तति' और 'भूतनाथ' नामक तिलस्मी और अय्यारी उपन्यासो के प्रभाव ने ही किशोरीलाल गोस्वामी को भी 'कटे मूँड की दो-दो बातें', 'खूनी औरत के सात खून', 'जिन्दे की लाश' आदि तिलस्मी और जासूसी उपन्यास लिखने की प्रेरणा दी है। उपन्यासकार सम्राट् प्रेमचन्द की रचनाओ से प्रेरणा लेकर, बालविवाह, विधवाजीवन, पुनर्विवाह, वेश्यावृत्ति, किसानो की समस्याएँ, दहेज-प्रथा, देशभक्ति आदि विषयो को लेकर न जाने कितने औपन्यासिक साहित्यकारो ने साहित्य सर्जना की है। अत. इन सभी तथ्यो को दृष्टि मे रखते हुए यह कहा ही जा सकता है कि क्रियाशील साहित्यकार किसी अन्य साहित्यकार द्वारा भी चर्चित विषय पर कुछ विशेष रुचिकर प्रकाश डालने के लिए अपनी लेखनी उठा लिया करता है, जो उचित भी है। क्योकि उसके ऐसा करने से वह विषय और उसका समाधान—दोनो ही—समाज के सामने और भी अधिक खुलकर आ जाते है।

(४) शैली का आदान

साहित्यकार की लिखने की एक अपनी ही शैली होती है। अपनी बात को कहने का उसका एक खास तरीका होता है। जब कभी किसी साहित्यकार की यह शैली किसी दूसरे साहित्यकार को पसन्द आ जाती है तो वह उसे अपना भी लेता है, और फिर उसी शैली मे अपनी साहित्य साधना भी करने लगता है। मै देखता हूँ कि कालिदास की सरलतापूर्ण सरल शैली को अश्वघोष और कुमारदास ने, भारवि की चित्रजटिल शैली को माघ ने, बाणभट्ट की वर्णनात्मक शैली को धनपाल ने, सुमित्रानन्दन पन्त की रहस्यवाद-मयी और छायावादमयी शैली को महादेवी वर्मा ने बडी खूबी के साथ अपनाया है। इस तथ्य से मैं समझता हूँ कि सस्कृत-साहित्य और हिन्दी-साहित्य के सभी अध्येता परिचित ही होगे।

(५) छन्दो का आदान

कभी-कभी किसी विशेष प्रतिभाशाली कवि के प्रयोग मे आकर कोई-कोई छन्द भी गौरव पा जाते है। जैसे कि मेघदूत मे महाकवि कालिदास की प्रतिभा सस्पर्श पाकर सन्देशात्मक विरहवर्णन के लिए मन्दाक्रान्ता छन्द प्रसिद्ध हो गया। यही कारण है कि मेघदूत के बाद लिखे गए सन्देशकाव्यो मे मन्दाक्रान्ता छन्द की ही भरमार मिलती है।[3]

कथावस्तु को तेजी से, साथ ही साथ तरकीब से भी, आगे बढाने के लिए आदि कवि वाल्मीकि कृत अनुष्टुप् छन्द के प्रयोग का प्रभाव व्यास आदि परवर्त्ती कवियो पर स्पष्ट ही परिलक्षित होता है। इधर हिन्दी साहित्य मे भी तुलसीदास के रामचरितमानस की दोहा-चौपाइयो के स्वरूप ने जायसी के पद्मावत को प्रभावित किया है। इतना ही नही बल्कि तुलसी की विनयपत्रिका के और सूर के सूरसागर के पदो का भी स्वरूप परस्पर मिलता-जुलता है। वीर रस के कवि श्यामनारायण पाण्डेय की 'हल्दी घाटी' के छन्दो का आहरण डॉ० आनन्द ने अपने 'झाँसी की रानी' नामक काव्य मे किया है। अत

इन सभी वास्तविकताओ को देखते हुए यह कहना ही पडेगा कि साहित्यकारो मे दूसरे साहित्यकारों के अच्छे-अच्छे छन्दो का भी आहरण प्रचलित है।

(६) दृश्य का आदान

प्रत्येक उच्चकोटि की साहित्यिक रचना मे कुछ न कुछ भावुक दृश्यो की परिकल्पना लगभग निश्चित ही है। आप जानते ही हैं कि ऋतु, चन्द्रोदय, सूर्योदय, जल-विहार, सन्ध्या आदि दृश्यो के लम्बे-लम्बे और हृदयस्पर्शी वर्णनो के लिए संस्कृत साहित्य तो प्रसिद्ध ही है। पर इस सिलसिले मे मुझे हिन्दी साहित्य के जयशकरप्रसाद और अयोध्यासिंह उपाध्याय की भी याद आती है। अत मैं समझता हूँ कि अपनी कृति में दृश्य वर्णन के लिए साहित्यकार कभी-कभी दूसरे साहित्यकार के दृश्य वर्णनो से भी मशाला (प्रेरणा) ले लिया करता है।

(७) वस्तु (पदार्थ) का आदान

वस्तुओ को सामान्य रूप से—चेतन और अचेतन के भेद से—दो प्रकार का माना जाता है। साहित्यकार की सृष्टि मे दोनो ही प्रकार की वस्तुओ का वर्णन मिलता है। चेतन वस्तुओ मे नायक-नायिका के मानवीय परिकर के अतिरिक्त प्रत्येक प्रतिभाशाली काव्यकार अपनी रचनाओ मे तोता, मैना, कोयल, मोर, चकोर, चकोरी, हस, खञ्जन आदि कोमल पक्षियो का, तथा पशुओ मे खासकर हिरन-हिरनियो और हाथी-घोड़ो का वर्णन करना चाहता है। साथ ही अचेतन जगत् के वन, पर्वत, सरोवर, झरने, नदी, समुद्र आदि प्राकृतिक वस्तुओ का तथा ग्राम, नगर, देवालय आदि कृत्रिम वस्तुओ का भी वर्णन करके उन्हे महाकाव्य की कसौटी पर चढने काबिल बनाना चाहता है। इसके लिए वह अपने समसामयिक तथा अतीतसामयिक साहित्यकारो से प्रेरणा लेने मे कोई गुनाह नही समझता। इसका परिणाम यह होता है कि उसकी रचनाओं मे वस्तु वर्णन के आदान की एक हल्की-सी झलक आ जाती है। इस दृष्टि से सस्कृत साहित्य के महाकवि कालिदास, माघ, भारवि, रत्नाकर, श्रीहर्ष, सुबन्धु, वाण, धनपाल आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

इस उपर्युक्त विश्लेषण से यह सिद्ध हो जाता है कि साहित्यकार के आदान-प्रदान के भिन्न-भिन्न रूप हुआ करते है। मैंने यहाँ जिन सात भेदो का निरूपण किया है उन्हे उन रूपो का उपलक्षणमात्र ही समझना चाहिए। क्योकि इनके अलावा भी तो साहित्यिक आदान-प्रदान सम्भव है, और एक साहित्यकार को दूसरे साहित्यकार की कब कौन सी चीज पसन्द आ जाए, इसका आकलन, भला बताइए, किया भी कैसे जा सकता है?

आदान-प्रदान के औचित्य एवं अनौचित्य पर आनन्दवर्धन के विचार

अब प्रश्न यह उठता है कि साहित्यकारो का यह साहित्यिक आदान-प्रदान उचित है या अनुचित? यह अपनाने काबिल है या नही? और यदि अपनाने काबिल है तो किस रूप मे? आदि-आदि। इसके समाधान के लिए यहाँ मैं आनन्दवर्धनाचार्य के विचारो का

विश्लेषण कर लेना नितान्त आवश्यक समझता हूँ। क्योंकि इस विषय पर उन्होंने अपने ध्वन्यालोक नामक आलोचनाग्रन्थ के चतुर्थ उद्योत मे काफी विस्तार मे अपने सोदाहरण विचार प्रकट किए है।

पूर्व पक्ष

साधारण तौर पर, मैं समझता हूँ कि, कुछ लोग इस विषय मे ऐसा कह सकते हैं कि जनाब ! वह भी कोई साहित्यकार है जो दूसरो की रचनाओ की नकल करके रचना करे? अरे साहब ! वह तो सरासर चोर है चोर। वह तो दूसरो के काव्यों की चोरी करके साहित्यकार बनने का सिर्फ ढोंग करता है। ऐसे काव्यचोरो से तो प्रत्येक सच्चे और मौलिक साहित्यकार तथा समीक्षक को हमेशा सावधान रहना चाहिए, आदि-आदि।

उन लोगो के इन आदानविरोधी विचारो को महाकवि बिल्हण भी तो पुकार-पुकार कर ऐसा ही कुछ कह गए हैं—

साहित्यपाथोनिधिमन्थनोत्थं काव्यामृतं रक्षत हे कवीन्द्राः।
यदस्य दैत्या इव लुण्ठनाय काव्यार्थचौराः प्रगुणीभवन्ति ॥

—विक्रमाङ्कदेवचरित, १/११

यहाँ उनका भाव है कि—हे कविवरो ! आप लोग साहित्यरूपी सागर के मन्थन से उत्पन्न हुए अपने काव्यरूपी अमृत की रक्षा करिए। क्योंकि (समुद्र-मन्थन के समय निकले हुए अमृत को छीनने की घात मे लगे हुए) दैत्यो के समान ही बहुत से काव्य-चोर इसे चुराने के लिए (इस साहित्यिक दुनियाँ मे) जमा होते जा रहे हैं।

बिल्हण के समान ही, मुझे तो लगता है कि, पण्डितराज जगन्नाथ भी इस साहित्यिक आदान को पसन्द नही करते थे, और मौलिकता को ही अधिक गौरवपूर्ण समझते थे। क्योंकि 'रसगङ्गाधर' मे उनकी जो यह एक गर्वोक्ति है कि—मैंने इस रसगङ्गाधर नामक ग्रन्थ मे उदाहरणो के अनुरूप स्वय नये-नये पद्य बनाकर प्रयुक्त किए है, इनमे किसी दूसरे कवि का कुछ भी (पद्य या पद्यांशादि) नही है। भला जो हिरन अपने आप कस्तूरी को पैदा करने की क्षमता रखता है वह क्या कभी फूलो को सूँघने का मन करता है?[४] इसे पढकर निश्चय ही यह धारणा बनने लगती है कि पण्डितराज साहित्यिक लेन-देन की अपेक्षा 'मौलिक सर्जना' के ही प्रशसक थे।

सिद्धान्त पक्ष

वैसे देखने-सुनने मे तो उपर्युक्त आदान-विरोधी विचार बडे ही अच्छे लगते है, लेकिन यदि इन पर जरा भी गहराई से गौर किया जाए तो ये यथार्थता और व्यावहारिकता से काफी दूर नजर आएँगे। आनन्दवर्धनाचार्य ने साहित्यकारो के आदान-प्रदान की इस औचिती और अनौचिती की समस्या को बडी बारीकी के साथ समझा है, और सहृदयता के साथ सुलझाया भी है। साहित्यशास्त्र मे उनकी पहुँच भी काफी गहरी

है, और वह ग्राह्य का ग्रहण तथा त्याज्य का त्याग करने मे जरा भा नही सकुचाते है। यही कारण है कि उनके काव्यालोचनासम्वन्धी निर्णयो की सहृदय समाज मे आज भी पर्याप्त प्रतिष्ठा है।

साहित्यिक आदान-प्रदान के औचित्य एव अनौचित्य के सम्बन्ध मे उनके विचार दो टूक हैं। उनका कहना है कि—

ध्वनेर्यः स गुणीभूतव्यङ्ग्यस्याध्वा प्रदर्शितः।
अनेनानन्त्यमायाति कवीनां प्रतिभागुणः॥
अतो ह्यन्यतमेनापि प्रकारेण विभूषिता।
वाणी नवत्वमायाति पूर्वार्थान्वियवत्यपि॥

—ध्वन्यालोक, चतुर्थ उद्योत, कारिका १-२

अर्थात् गुणीभूतव्यङ्ग्यसहित ध्वनि के जो भेद बताए गए है उनसे कवियो की प्रतिभा असीमित हो जाती है। इन भेदो मे से किसी एक भी भेद से यदि कविता ओत-प्रोत होती है तो वह निश्चय ही प्राचीन कवियो के भाव पर आधारित होने के बावजूद भी नई समझी जाती है।

ध्वनिकार के इन उपर्युक्त विचारो को हम सरल शब्दो मे इस प्रकार कह सकते है कि जब किसी साहित्यकार को ध्वनि और गुणीभूतव्यङ्ग्य के भेदो की पूरी-पूरी जानकारी हो जाती है तो उसकी प्रतिभा मे भी असीमितता आ जाती है। फलस्वरूप उसके मस्तिष्क मे वाल्मीकि, व्यास, कालिदास आदि प्राचीन कवियो द्वारा वर्णित विषयो के सम्वन्ध मे भी नई-नई परिकल्पनाओ की लहरे उठने लगती है। वह प्रत्येक पदार्थ को अपने एक निराले ही दृष्टिकोण से देखने लगता है, और फिर इसका परिणाम यह होता है कि उसकी कविता एकदम नई और अपने ढग की निराली ही होती है, चाहे भले ही उसने अपनी उस कविता के लिए अपने किसी पूर्वकालीन या समकालीन साहित्यकार की रचना से भापा-भावादि का आदान (आहरण) किया हो। चूंकि ध्वनि और गुणीभूत-व्यङ्ग्य के उक्तिवैचित्र्य किवा वाग्वैदग्ध्य मे अनन्तता है, इसीलिए उनके सम्पर्क मे आते ही वर्णनीय विपय भी अनन्तता को प्राप्त हुए विना नही रह सकता। यही कारण है कि सच्चा साहित्यकार प्राचीन कवियो द्वारा वर्णित विषयो को भी अपनी नवनवोन्मेप-शालिनी प्रतिभा के सहारे ध्वनि या गुणीभूतव्यङ्ग्य से सम्पृक्त करके पाठको के सामने कुछ इस प्रकार से प्रस्तुत करता है कि उसकी कविता मे एक नया निखार और एक नई सवेदनीयता आ जाती है, और सहृदयो के समाज मे फिर उसकी वह कविता प्राचीन कवि की उसी भाव से सम्वन्धित कविता की अपेक्षा कही अधिक आदर पा जाती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आचार्य आनन्दवर्धन उक्तिवैचित्र्यपूर्ण आदान (अनुकरण) को पसन्द करते हैं और साहित्यकारो को खुली छूट भी देते है कि वे अन्य किसी साहित्यकार द्वारा वर्णित विपय का आदान करने मे सङ्कोच नही करे। हाँ, उन्हे उसके प्रस्तुतीकरण मे अपनी मौलिक नवीनता लाने के लिए ध्वनि या गुणीभूतव्यङ्ग्य के किसी प्रभावोत्पादक भेद का पुट अवश्य देना चाहिए।[५] अपने विचारो की पुष्टि के लिए

उदाहरण के तौर पर वह कुछ ऐसे पद्य भी प्रस्तुत करते है जो किसी न किसी प्राचीन पद्य के भाव पर आधारित है, लेकिन ध्वनि के नूतन सस्पर्श को पाकर वे अनुकरण के कलङ्क से सर्वथा मुक्त प्रतीत होते है, और पाठको के हृदयपटल पर उन प्राचीन पद्यो की अपेक्षा कही अधिक अमिट छाप छोड जाते है। लीजिए, नमूने के लिए उनमे से कुछ पद्यो को मै यहाँ उद्धृत ही किए देता हूँ—

(क) स्मितं किञ्चिन्मुग्धं तरलमधुरो दृष्टिविभवः
परिस्पन्दो वाचामभिनवविलासोर्मिसरसः।
गतानामारम्भः किसलयितलीलापरिमलः
स्पृशन्त्यास्तारुण्यं किलिव नहि रम्यं मृगदृशः॥

(युवावस्था को प्राप्त होती हुई मृगनयनी कामिनी की कुछ मुग्ध मुस्कुराहट, तरलता और मधुरता लिए हुए निगाह, नूतन विलास की लहरो से सरसता लिए हुए वाणी का प्रवाह, किसलय का आचरण करने वाला और हाव-भावो के परिमल से परिपूर्ण चलने का ढग—भला वताईये, इनमे से उसकी कौन-सी चीज मनोहर नही है ?)

इस उपर्युक्त नवीन पद्य पर जिस प्राचीन पद्य के भाव की छाया है, वह यह है—

सविभ्रमस्मितोद्भेदो लोलाक्ष्यः प्रस्खलद्गिरः।
नितम्बालसगामिन्यः कामिन्यः कस्य न प्रियाः॥

(अदाओ से भरी हुई मुस्कान वाली, चचलचितवनवाली, लडखडाती हुई वाणी वाली और नितम्बा के भार मे धीरे-धीरे चलने वाली कामिनियाँ भला किसे अच्छी नही लगती ?)

हम देखते हैं कि 'स्मित किंचिन्मुग्धम्० · ·' पद्य मे कवि ने मुग्ध, मधुर, विभव, परिस्पन्द, सरस, किसलयित, परिमल और स्पर्श शब्दों मे लक्षणामूलध्वनि के अत्यन्ततिरस्कृतवाच्य भेद का सस्पर्श करके उसके भाव मे एक नया ही आकर्षण भर दिया है, जो 'सविभ्रमस्मितोद्भेदा ·· ···' पद्य मे कही ढूंढे भी नही मिलता है। यही कारण है कि यह पद्य भावानुकरण से युक्त होने के बावजूद भी सहृदय समाज मे अपने अनुकार्य पद्य की अपेक्षा कही अधिक आदर पा रहा है।

(ख) निद्राकैतविनः प्रियस्य वदने विन्यस्य वक्त्रं वधूः
बोधत्रासनिरुद्धचुम्बनरसाप्याभोगलोलं स्थिता।
वैलक्ष्याद् विमुखीभवेदिति पुनस्तस्याप्यनारम्भिणः
साकांक्षप्रतिपत्ति नाम हृदयं यात तु पारं रतेः॥

यह पद्य अमरुक कवि के निम्नलिखित पद्य की भावच्छाया पर आधारित है। मिलाईए—

शून्यं वासगृह विलोक्य शयनादुत्थाय किञ्चिच्छनैर्
निद्राव्याजमुपागतस्य सुचिरं निर्वर्ण्य पत्युर्मुखम्।

विश्रब्धं परिचुम्ब्य जातपुलकामालोक्य गण्डस्थलीं
लज्जानम्रमुखी प्रियेण हसता बाला चिरं चुम्बिता ॥

लेकिन कवि ने इसमे अभिधामूलकध्वनि के असलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य नामक रसध्वनि का कुछ इस प्रकार से सन्निवेश किया है कि यह पद्य अमरुक के पद्य की अपेक्षा कही अधिक अच्छा बन पड़ा है। कवि ने इस पद्य मे नायक और नायिका—दोनो ही—की एक-दूसरे को चूमने की अभिलाषा के प्रवाह द्वारा रति की जितनी सफल अभिव्यजना की है, उतनी अमरुक नही कर पाए है।

(ग) वणिजक ! हस्तिदन्ताः कुतोऽस्माकं व्याघ्रकृत्तयश्च ।
यावल्लुलितालकमुखी गृहे परिष्वङ्क्ते स्नुषा ॥

किसी व्यापारी ने जब किसी वृद्ध शिकारी से हाथीदाँत और व्याघ्र के चर्म को बेच डालने के लिए कहा तो वह उत्तर देता है कि हे व्यापारी ! जब तक लहराती हुई लटो से युक्त मुँहवाली पुत्रवधू मेरे घर मे अठखेलियाँ करती है तब तक मेरे यहाँ हाथी-दाँत और व्याघ्र-चर्म कहाँ से आ सकते है ?

इस गाथा मे निम्नलिखित पद्य के भावार्थ का पूरा-पूरा आदान कर लिया गया है—

करिणीवैधव्यकरो मम पुत्र एककाण्डविनिपाती ।
हतस्नुषया तथा कृतो यथा काण्डकरण्डकं वहति ॥

(अर्थात् एक ही बाण के प्रहार से बड़े-बडे हाथियो को मार गिराने वाले, और हथिनियो को विधवा बनाने वाले मेरे बेटे को मेरी बेवकूफ पुत्रवधू ने ऐसा (दुर्बल) बना दिया है कि अब तो वह बाणो के तरकस को सिर्फ लिए-लिए ही घूमता रहता हे ।)

लेकिन यहाँ सहृदयो की यह अनुभूति है कि नई नवेली वधू के साथ निरन्तर सम्भोग से उत्पन्न युवा पुत्र की दुर्बलता की, और उस दुर्बलता के कारण ही हाथियो और व्याघ्रो का शिकार करने की उसकी असमर्थता की अभिव्यक्ति जितनी शालीनता से 'वणिजक ! हस्तिदन्ता ......' पद्य द्वारा हुई है, उतनी 'करिणीवैधव्यकर ..... ' पद्य द्वारा नही । क्योकि करिणीवैधव्यकर' पद्य मे तो 'हस्तनुषया तथाकृत ' कहकर व्यङ्ग्यार्थ को वाच्य बना दिया है; लेकिन 'वणिज ! हस्तिदन्ता ......' गाथा मे 'लुलितालकमुखी' शब्द द्वारा ही उस मार्मिक रहस्यभूत व्यङ्ग्यार्थ को पूरी तरह से व्यङ्ग्य ही रहने दिया है। इसीलिए 'करिणीवैधव्यकर .... ' पद्य के भाव की छाया पर आधारित होने के बावजूद भी 'वणिजक हस्तिदन्ता .. .. ' पद्य अपने ढँग का बिल्कुल निराला ही हो गया है; और उसके इस निरालेपन का सारा श्रेय विवक्षितान्यपरवाच्यध्वनि के अन्तर्गत सलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यध्वनि अर्थशक्ति से उत्पन्न होने वाली और कविनिबद्धवक्तृप्रौढोक्तिसिद्ध वस्तु से वस्तुध्वनि के कविकृत मञ्जुल प्रयोग को है।

इन उपर्युक्त पद्यो की तुलना करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि साहित्यकार किसी भी वर्णित विषय का आदान करके उसे ध्वनि या गुणीभूतध्वनि के सहारे पुन

अपने नये ढँग से सहृदयो के सामने प्रस्तुत कर सकता है। बस, उसमे नूतन बनाने की प्रतिभा होनी चाहिए, और वह प्रतिभा यदि उसमे है तो फिर प्राचीन काव्यो की अनुकृति करने का दोष उसके मत्थे कभी कोई मढ ही नही सकता।[६]

आनन्दवर्धनाचार्य का यह भी दावा है कि साहित्यिक ससार म प्रतिभाशाली साहित्यकारो की मनीषा मे समानता भी स्वाभाविक है।[७] अत यह भी सम्भावना असगत नही है कि एक ही विषय पर भिन्न-भिन्न, पर लगभग मिलती-जुलती प्रतिभा वाले, कवि एक-दूसरे से मिलती-जुलती ही परिकल्पना कर डाले। ऐसी स्थिति मे यदि उनकी कविताओ मे भावसाम्य पाया जाता है तो हमे चाहिए कि उन पर एक-दूसरे की नकल करने का कलङ्क न मढे।

लेकिन उन्होने सभी प्रकार की समानताओ को साहित्य जगत् मे मान्यता नही दी है। उनका कहना है कि समानताएँ तो तीन प्रकार की हो सकती है—एक तो प्रतिबिम्ब के समान, दूसरी चित्र के आकार के समान और तीसरी अन्यदेहधारी प्राणी के समान।[८] इनमे से पहले और दूसरे प्रकार की समानता (अनुकरण) को साहित्य के क्षेत्र मे मान्यता नही दी जा सकती है। क्योकि पहले प्रकार की प्रतिबिम्बकल्प समानता तो अपने बिम्ब (अनुहार्य) के अतिरिक्त अपना कुछ भी स्वतन्त्र अस्तित्व न रख सकने के कारण त्याज्य है, और रही दूसरे प्रकार की चित्राकारकल्प समानता—सो वह भी चित्र्य की तुलना मे चित्र की तुच्छता के समान तुच्छ होने के कारण त्याज्य ही है। हाँ, जो तीसरे प्रकार की तुल्यदेहिवत् समानता है उसे साहित्यकार अपना सकता है क्योकि जिस प्रकार दो हमशक्ल इन्सानो मे दोनो का ही अपना-अपना स्वतन्त्र महत्त्व प्रभाव होता है वैसे ही दो मिलती-जुलती प्रतिभाओ वाले साहित्यकारो की, समान भाव वाली होने के बावजूद भी स्वतन्त्र अभिव्यंजना के प्रकारो से विभूषित होने के कारण, दोनो ही कविताओ का साहित्य-समाज मे समादर होता है। इसलिए इस तीसरे प्रकार के साम्य (अनुहरण) का त्याग नही करना चाहिए।[९]

मैं समझता हूँ कि आनन्दवर्धनाचार्य के विचारो का इतना विश्लेषण करने के बाद यह सिद्ध हो जाता है कि उन्हे साहित्यिक आदान, अनुकरण या अनुहरण से कोई चिढ नही है। उन्होने ऐसा करने के लिए कवि को ध्वनि या गुणीभूतव्यङ्ग्य के भेदो का सहारा लेने का स्पष्ट ही निर्देश दिया है। वह बिम्ब के प्रतिबिम्ब की भाँति तथा चित्र्य के चित्र की भाँति साहित्यिक आदान को अवश्य ही बुरा मानते है, लेकिन जो अनुकरण तुल्यदेहिवत् है उसे उन्होने ग्राह्य माना है। इस प्रकार उन्होने साहित्यिक आदान के सम्बन्ध मे निष्पक्ष होकर आदान की विधि और सीमा का निर्धारण करके साहित्यकारो का मार्ग पूरी तरह से प्रशस्त कर दिया है।

यायावरीय राजशेखर के विचार

राजशेखर ने साहित्यिक आदान के सम्बन्ध मे आनन्दवर्धनाचार्य से भी कही अधिक विस्तारपूर्ण विश्लेषण प्रस्तुत किया है। यही कारण है कि इनकी 'काव्यमीमासा' के तीन अध्याय (ग्यारहवाँ, बारहवाँ और तेरहवाँ) इसी विचार से ओतप्रोत है। इन्होने

आदान को शब्द और अर्थ के भेद से दो भागों मे विभक्त करके शाब्दिक आदान के प्रकारो को ग्यारहवें अध्याय मे, और आर्थिक आदान के भेद-प्रभेदो को बारहवे और तेरहवे अध्यायों मे सोदाहरण प्रस्तुत किया है।

आनन्दवर्धनाचार्य की भाँति राजशेखर भी साहित्यिक आदान-प्रदान के हिमायती ही नही, बल्कि इनका तो यहाँ तक कहना है कि ऐसा कोई साहित्यकार है ही नही जो साहित्यिक आहरण न करता हो। अपने इसी साहित्यिक आहरण के कारण कोई-कोई साहित्यकार तो बदनाम भी हो जाते हैं और लोग उन्हे काव्यचोर तक कहने लगते हैं। पर कुछ ऐसे भी साहित्यकार होते है जो दूसरे साहित्यकारो के काव्यो से अपनी काव्य रचना के लिए पर्याप्त आहरण करने के बावजूद भी प्रशसा के पात्र बने रहते है।

अब सवाल यह उठता है कि एक ही कारण से भिन्न-भिन्न प्रकार के दो कार्य (परिणाम) क्यो ? इस विषय मे राजशेखर का सीधा-सा उत्तर यह है कि यह तो आहरण करने वाले साहित्यकारो के कौशल पर निर्भर करता है। यदि किसी साहित्यकार मे साहित्यिक आहरण को आत्मसात् करने की कला नही है तो उसकी निन्दा होगी ही; लोग उसे काव्यचोर कहेंगे ही। लेकिन जो साहित्यकार अपनी काव्यकला के आवरण मे उस साहित्यिक आहरण को भलीभाँति छिपा लेता है और उसे आत्मसात् करके ही प्रकट करता है तो भला फिर उसकी निन्दा कौन कर सकता है ? उसकी तो सभी तारीफ ही करेंगे।[१०]

राजशेखर ने साहित्यकारो को साहित्यिक आहरण (आदान) करने के कुछ तरीके भी समझाये है। साथ ही साथ वह यह भी कहते गए है कि उन तरीको मे कौन-कौन से तरीके ऐसे है जो अपनाने काबिल हैं, और कौन-कौन से है जो त्याज्य हैं। उदाहरणार्थ शब्दाहरण के विश्लेषण के सन्दर्भ मे उनका कहना है कि—

१. श्लेषयुक्त पद के एकदेश का आहरण किया जा सकता है।
२. जिसकी सङ्घटना में किसी की प्रतिभाविशेष का व्यय नही हुआ है ऐसे पद-समूह का भी आहरण किया जा सकता है।
३. किसी पद्य के किसी पाद मे कही हुई उक्तिविशेष के अर्थ को यदि विपरीत साबित करना हो तो उसके उस पूरे पाद का भी आहरण किया जा सकता है।
४. किसी दूसरे साहित्यकार के भिन्न-भिन्न अर्थ वाले पद्यो के पादो मे अपनी ओर से एक पाद जोडकर उन सबकी अर्थसङ्गति बैठाने वाला साहित्यकार भी प्रशसनीय ही होता है।

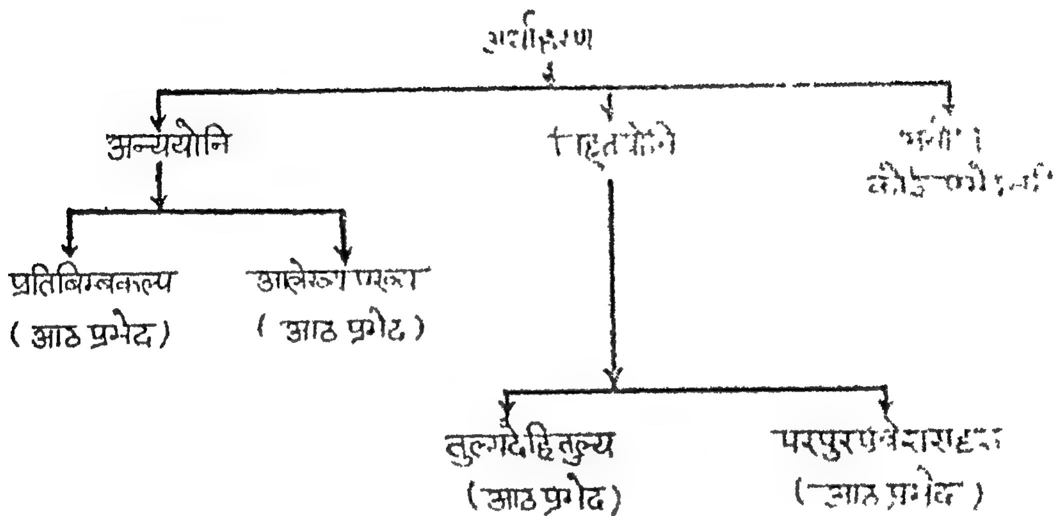
लेकिन—

१ साहित्यकार को दो अर्थो वाले कई शब्दो का आहरण नही करना चाहिए।
२. जिसकी सङ्घटना में प्रतिभाविशेप का सस्पर्श हो ऐसे पदसमूह का आहरण कदापि नही करना चाहिए।

३. किसी साहित्यकार की अप्रसिद्ध रचना को अपना बताने की धूर्त्तता और मूर्खता भी नही करनी चाहिए।

४. धन के बल पर भी किसी की कृति को खरीदकर अपनी नही बताना चाहिए।

अर्थाहरण का विश्लेषण करते हुए उन्होंने उसके निम्नलिखित भेद-प्रभेद किए है—



प्रतिबिम्बकल्प के प्रभेद

व्यस्तक, खड, तैलविन्दु, नटनेपथ्य, छन्दोविनिमय, हेतुव्यत्यय, सङ्क्रान्तक तथा सम्पुट।

आलेख्यप्र के प्रभेद

समक्रम, विभूषणमोष, व्युत्क्रम, विशेपोक्ति, उत्तस, नटनेपथ्य, एकपरिकार्य तथा प्रत्यापत्ति।

तुल्यदेहितुल्य के प्रभेद

विषयपरिवर्त्त, द्वन्द्वविच्छित्ति, रत्नमाला, सख्योल्लेख, चूलिका, विधानापहार, माणिक्यपुञ्ज तथा कन्द।

परपुरप्रवेशसदृश के प्रभेद

हुडुयुद्ध, प्रतिकञ्चुक, वस्तुसञ्चार, धातुवाद, सत्कार, जीवजीवक, भावमुद्रा तथा तद्विरोधी।

यहाँ इतना और कह देना, मै समझता हूँ कि, असङ्गत नही समझा जाएगा कि राजशेखर ने—

(क) प्रतिबिम्बकल्प अर्थाहरण को सर्वथा त्याज्य घोपित कर दिया है। क्योकि यह

कवि को अकवित्व प्रदान करता है तथा सहृदय समाज मे उसका उपहास भी करता है।[११]

(ख) आलेख्यप्रख्य अर्थाहरण को उक्तिवैचित्र्य की महिमा का सहारा लेते हुए उचित ही बताया है।[१२]

(ग) तुल्यदेहितुल्य अर्थाहरण को उचित एव विद्वज्जनानुमोदित बताया है।[१३]

(घ) परपुरप्रवेशसदृश अर्थाहरण को भी उचित तथा सुकविजनादृत माना है।[१४]

इस प्रकार हम देखते है कि आनन्दवर्धन और राजशेखर—दोनो ही आचार्य—साहित्यिक आदान के औचित्य को साङ्गोपाङ्ग सिद्ध कर रहे है। हाँ, उन्होने इस औचित्य की अपनी-अपनी दृष्टि से सीमा अवश्य ही निर्धारित कर दी है, जो ठीक भी है। क्योकि उसका अतिक्रमण होते ही वही आदान अनुचित और उपहसनीय भी बन जाता है। मैं समझता हूँ कि भारतीय साहित्यिक-आदान-विषयक मान्यता पर सन्देह नही किया जा सकता। यदि पूर्वपक्षियो की बात को मानकर साहित्यिक आदान को सर्वथा अमान्य घोषित कर दिया जाए तो आदि कवि वाल्मीकि के अलावा किसी को कवि नही कहा जा सकेगा। क्योकि प्रत्येक कवि किसी न किसी रूप मे किसी न किसी दूसरे कवि से प्रभावित होता ही है। पर कालिदास, भारवि, माघ, श्रीहर्ष, सुबन्धु, बाण, धनपाल, तुलसी, सूर, जायसी, मैथिलीशरण आदि को कौन व्यक्ति ऐसा है जो कवि न कहना चाहेगा? मैं समझता हूँ कि सभी कहते ही है। अत यह तथ्य सुतरा सिद्ध हो जाता है कि साहित्य-जगत् मे साहित्यिक आदान नितान्त स्वाभाविक एव समौचित्यपूर्ण है। बस आदान करने वाले को इतना ध्यान अवश्य रखना है कि वह आहृत तत्त्व को अपनी काव्यप्रतिभा के रग मे खूब ही रगकर पाठको के समक्ष उसे प्रस्तुत करे; ताकि उस पर आहरण का धब्बा न दिखाई दे सके। इसके लिए उसे मधुमक्खियो से शिक्षा लेनी चाहिए। ये मधुमक्खियाँ तरह-तरह के फूलो का रस ग्रहण करती है। पर जब वे उसे शहद के रूप मे परिणत करके प्रस्तुत करती हैं तो उसमे उनकी मौलिकता और आत्मीयता की पूरी-पूरी छाप रहती है। उस समय उस शहद मे किसी फूल का नही, बल्कि उस शहद का ही रग, रूप और गुण आ जाता है। बस इसी प्रकार साहित्यकार को भी साहित्यिक आहरण की प्रक्रिया मे बड़ी चतुराई से काम लेना चाहिए; ताकि उसकी रचनाओ मे नूतनता और रमणीयता का समावेश हो सके।

महाकवि धनपाल एक ऐसे ही प्रतिभाशाली साहित्यकार हैं। उन्होने अपने कथा-काव्य (तिलकमञ्जरी) की सङ्घटना के लिए अपने पूर्ववर्ती साहित्यकारो की कृतियो से जो कुछ भी साहित्यिक आदान किया है उसको उन्होने अपनी काव्यकला के कौशल से पूरी तरह नया और अपना बना लिया है तथा उस पर अपनी मौलिकता की भी छाप लगा दी है। उन्होने गुणाढ्य, सुबन्धु, दण्डी, बाणभट्ट आदि सभी गद्य साहित्यकारो की कृतियो से कुछ न कुछ आदान किया है, जो स्वाभाविक भी है। अतएव मेरे लिए भी यह आवश्यक ही हो जाता है कि मैं उनके उस आदान पर कुछ प्रकाश डालूँ। यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना अप्रासगिक नही होगा कि साहित्यिक आदान-प्रदान से सम्बन्धित इस अध्याय मे मेरे विवेचन की सीमा केवल कथात्मक-विधा तक ही सीमित रहेगी।

तिलकमञ्जरी पर गुणाढ्य की छाया

गुणाढ्य पैशाची भाषा के सर्वोत्तम कथाकार थे। सातवाहन राजाओ के शासन-काल मे (ईसा की प्रथम या द्वितीय शताब्दी के लगभग) इन्होने बृहत्कथा नामक जिस महान् कथाग्रन्थ की सर्जना की थी उसका सस्कृत साहित्यकारो पर इतना प्रभाव पडा कि वाल्मीकि की रामायण और व्यास के महाभारत तथा भागवत के समान ही यह (बृहत्कथा) भी अन्य साहित्यकारो के लिए उपजीव्य काव्य बन गई, और मैं समझता हूँ कि भास, हर्षवर्धन, बाणभट्ट आदि साहित्यकारो की कृतियाँ तो बृहत्कथा के ऋण से कभी मुक्त हो ही नही सकती।

आज सभी को इस बात का महान् खेद है कि गुणाढ्य की पैशाची भाषा मे लिखी गई वह लोकप्रिय बृहत्कथा ईसा की ग्यारहवी शताब्दी के साथ ही साथ करालकाल के गाल मे लुप्त हो गई है। लेकिन सन्तोष इतना ही है कि ईसा की पाँचवी शताब्दी मे बुधस्वामिकृत 'बृहत्कथाश्लोकसग्रह', ग्यारहवी शताब्दी मे क्षेमेन्द्रकृत 'बृहत्कथामञ्जरी' और सोमदेवकृत 'कथासरित्सागर' नामक उसके तीन अनुवाद ग्रन्थ आज सुरक्षित है, जो उसके अभाव की पूर्त्ति कुछ अशो मे तो कर ही देते है। चूँकि हमारे आलोच्य महाकवि धनपाल सोमदेव से, जिन्होने बृहत्कथा को देखकर ही उसका कथासरित्सागर नाम से सस्कृत पद्यानुवाद किया था,[१५] कुछ पहिले ही हो चुके थे, अत यह निश्चित है कि इनके समय मे बृहत्कथा रही होगी और इन्होने उसे जरूर पढा होगा। क्योकि तभी तो यह इस प्रकार की धारणा बना सके होगे कि यह सच है कि साहित्यकारो ने बृहत्कथारूपी समुद्र से ही कथारूपी एक-एक बूंद को लेकर अपनी-अपनी कृतियो के कथानको को सजाया और सँवारा है। इसलिए उनकी कृतियाँ बृहत्कथा के सागर मे कन्थाओ जैसी प्रतीत होती है।[१६] उनकी इस धारणा को पढकर ऐसा लगने लगता है कि यह भी गुणाढ्य से प्रभावित हुए होगे। लेकिन, अब मुझे, देखना यह है कि इनकी तिलकमञ्जरी पर गुणाढ्य की बृहत्कथा का क्या और कितना प्रभाव पडा है। इस विषय मे क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामञ्जरी और सोमदेव के कथासरित्सागर को बृहत्कथा का आदर्श मानकर मै इतना ही कह सकता हूँ कि धनपाल ने अपनी तिलकमञ्जरीकथा के लिए गुणाढ्य की बृहत्कथा से निम्नलिखित रूपो मे प्रेरणा प्राप्त की होगी—

(क) तिलकमञ्जरी मे वर्णित सम्राट् मेघवाहन की शासन-प्रणाली और दिनचर्या पर बृहत्कथा मे वर्णित वत्सराज उदयन की शासन-प्रणाली और दिनचर्या की छाप हो सकती है।

(ख) धनपाल ने बृहत्कथा के नायक नरवाहनदत्त के नाम से कुछ अश मे मिलता-जुलता ही नाम अपनी तिलकमञ्जरी के कथानायक का भी रक्खा होगा।

(ग) बृहत्कथा के नायक नरवाहनदत्त के जन्म पर भगवान् शकर की कृपा के चमत्कार से प्रभावित होकर धनपाल ने तिलकमञ्जरी के नायक हरिवाहन के जन्म पर भगवती लक्ष्मीदेवी की कृपा की परिकल्पना की होगी।

(घ) पुत्र प्राप्ति के लिए यदि बृहत्कथा मे सम्राट् उदयन को महर्षि नारद भगवान् शिव

की आराधना का उपदेश देते है तो तिलकमञ्जरीकथा मे सम्राट् मेघवाहन को विद्याधरमुनि भगवतीलक्ष्मी की उपासना के विषय मे समझाते है।

(ङ) बृहत्कथा की वासवदत्ता और तिलकमञ्जरी की मदिरावती—दोनो ही—के दोहदो मे करीब-करीब साम्य पाया जाता है।

(च) बृहत्कथा के नायक नरवाहनदत्त तथा उसके पिता उदयन के समान ही तिलकमञ्जरी का नायक हरिवाहन भी वीणा का प्रकाण्ड पण्डित चित्रित किया गया है। तिलकमञ्जरी मे हरिवाहन की गजविमोहिनी वीणा प्रवीणता पर निश्चय ही बृहत्कथा के उदयन की वीणावादनपटुता का प्रभाव पडा होगा।

(छ) युवराज समरकेतु की समुद्रीयद्वीपविजय के प्रसग मे वर्णित नौ-यात्रा पर बृहत्कथा के चतुर्दारिका नामक लम्बक के अन्तर्गत वर्णित शक्तिवेग नामक विद्याधरराज की, कनकपुरी की खोज मे, समुद्रयात्रा का प्रभाव परिलक्षित होता है।

(ज) धनपाल ने अपनी तिलकमञ्जरी मे पत्रलेखा की सखी चित्रलेखा की परिकल्पना निश्चय ही बृहत्कथा मे मदनमञ्चुका नामक लम्बक के अन्तर्गत वर्णित बाणासुर की पुत्री उषा की सखी चित्रलेखा के आधार पर की होगी।

(झ) धनपाल ने अपनी तिलकमञ्जरी मे वैताढ्य पर्वत पर दक्षिण श्रेणी और विजयार्ध-गिरि पर उत्तरश्रेणी के नाम से विद्याधरो की जो दो श्रेणियाँ पल्लवित की हैं उनका भी बीज गुणाढ्य की बृहत्कथा मे पाया जाता है।[१७]

(ञ) हरिवाहन को तपस्या द्वारा विद्याधरो के चक्रवर्त्ती सम्राट् बनाने की सूझ भी धनपाल को गुणाढ्य से ही मिली होगी। क्योकि नरवाहनदत्त ने भी विद्याधरो का चक्रवर्त्ती सम्राट् बनने के लिए कठिन तपस्या की थी।[१८]

(ट) धनपाल ने तिलकमञ्जरी के कथानक और पात्रो की सङ्घटना के लिए निश्चित है कि मकरन्दिकोपाख्यान से सहायता ली होगी। क्योकि हरिवाहन का हाथी द्वारा अपहृत होकर विद्याधरो की निवास भूमि वैताढ्य पर्वत पर पहुँचना, मलयसुन्दरी से भेट करना, उसकी आत्मकथा सुनना, तिलकमञ्जरी से भेट करना तथा उसका आतिथ्य ग्रहण करना और साथ ही साथ उसके प्रणयपाश मे बँध जाना आदि जिन कार्य-कलापो का धनपाल ने चित्रण किया है उन पर सोमप्रभ का आशुश्रवा नामक दिव्याश्व द्वारा विद्याधरो के देश हिमालय पर पहुँचने, मनोरथप्रभा से भेट करने, उसकी आत्मकथा सुनने, मकरन्दिका के निवासस्थान पर जाकर उसका आतिथ्य और प्रणय स्वीकार करने आदि की घटनाओ की पूरी-पूरी छाप दिखाई देती है।[१९]

इन उपर्युक्त कतिपय भावसाम्यो को देखकर यह कहना ही पडता है कि धनपाल ने अपनी कथा का प्रारूप तैयार करने मे गुणाढ्य की बृहत्कथा से अवश्य ही आहरण किया होगा। एक बात यहाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है, और वह यह है कि मैने बृहत्कथा के अभाव मे उपलब्ध होने वाले उसके बृहत्कथामञ्जरी और कथासरित्सागर नामक अनुवादग्रन्थो के आधार पर ही धनपालकृत तिलकमञ्जरी पर उसके प्रभाव का विश्लेषण किया है, और उपर्युक्त तुलनात्मक प्रतीको मे बृहत्कथा का उल्लेख भी उसके

अनुवादग्रन्थो की सार्वजनीन विश्वसनीयता के बल पर ही कर दिया है। आशा है कि विज्ञ मनीषियो को इसमे आपत्ति न होगी।

तिलकमञ्जरी पर सुबन्धु की झलक

सुबन्धु एक प्रौढ-गद्य-काव्यकार थे। वासवदत्ता इनकी एकमात्र उपलब्ध कथा-कृति है, जो नितान्त काल्पनिक है और लोकप्रसिद्ध वासवदत्ता-उदयन की कहानी से जरा भी मतलब नही रखती है। चूंकि सुबन्धु की वासवदत्ता मे श्लेषालङ्कार की भरमार है[२०], जिसे धनपाल अच्छा नही समझते है[२१], इसलिए उनकी तिलकमञ्जरी पर सुबन्धु की भाषा-शैली की झलक का तो कोई प्रश्न ही नही उठता। हाँ, उन्होने सुबन्धु की वासवदत्ता के कुछ घटनाचक्रो को और एकाध दृश्य को, लगता है कि, जरूर पसन्द किया है। मै यहाँ सक्षेप मे ही उनकी चर्चा करूँगा।

(क) 'वासवदत्ता' की नायिका राजकुमारी वासवदत्ता की भाँति 'तिलकमञ्जरी' की नायिका विद्याधर राजकुमारी तिलकमञ्जरी भी विवाह से कतराती हुई चित्रित की गई है।[२२]

(ख) वासवदत्ता के विरह मे कन्दर्पकेतु समुद्र मे कूद कर आत्महत्या करना चाहता है। इसी भाँति तिलकमञ्जरी के विरह मे हरिवाहन भी विजयार्धगिरि की चोटी से गिरकर मरना चाहता है।[२३]

(ग) यदि 'वासवदत्ता' मे सुबन्धु ने वासवदत्ता को मुनि के शाप से पाषाणमयी बनाया है तो 'तिलकमञ्जरी' मे धनपाल ने भी गन्धर्वक को महोदर नामक यक्ष के शाप से तोता बना दिया है।[२४]

(घ) सुबन्धु की 'वासवदत्ता' मे नायक कन्दर्पकेतु सोकर उठने के बाद नायिका वासवदत्ता को न पाकर उसकी खोज मे बहुत दिनो तक भटकता रहता है। इस घटना का भी प्रभाव 'तिलकमञ्जरी' पर है। पर इसमे धनपाल ने नायक को नायिका की खोज मे नही भटकाया है। इसमे तो एक दोस्त (समरकेतु) अपने दूसरे दोस्त (हरिवाहन) की ही खोज मे महीनो जगलो मे भटकता है।

(ङ) सुबन्धु ने वासवदत्ता के भवन मे कन्दर्पकेतु के पहुँचने पर वहाँ की युवतियो के वाग्विलास को एव कार्यकलाप को जिस शैली मे वर्णित किया है, धनपाल ने भी तिलकमञ्जरी के भवन मे हरिवाहन के पहुँचने पर वहाँ की युवतियो की कार्य-व्यस्तता का उससे मिलती-जुलती शैली मे वर्णन किया है। मै देखता हूँ कि इस स्थल पर सुबन्धु का यह प्रयत्न रहा है कि वाक्य मे सम्बोधित की गई, या वर्णन का विषय बनाई गई युवती के नाम के ज्यादा से ज्यादा अक्षर उस वाक्य के या तो क्रियापद मे, या फिर किसी अन्य शब्द मे आ जाएँ। धनपाल का भी कुछ ऐसा ही प्रयत्न नजर आता है। लीजिए आप भी देखिए—

(अ) "भद्रे ! द्रवसि द्रवसिद्धेरगदिता। चपला चपलायते किमेषा।' ....कलहे ! कलहेम-काञ्चीदामक्वणितै स्मरमिवाह्वयसि। कलिके ! कलिकेतुमिमा मुखरा मुञ्च मेखलाम्।'... "कुरङ्गिके ! कल्पय कुरङ्गशावकेभ्य शष्पाकुरम्। किशोरिके !

कारय किशोरप्रत्यवेक्षाम्। तरलिके ! तरलय कृष्णागरुधूपपटलम्। कर्पूरिके ! पाण्डरय कर्पूरधूलिभि पयोधरभारम्। मातङ्गिके ! मानय मातङ्गशिशुयाचनम्। शशिलेखे ! विलिख ललाटपट्टे शशिलेखाम्।·········मदनमञ्जरि ! मञ्जीरय लतामण्डपम्।······पल्लविके ! पल्लवय कर्पूरधूलिभि कृत्रिमकेतकीकाननम्।······ ··विलासवति ! विलासय मयूरकिशोरकम्। ·····इत्यन्योन्य प्रणयपेशला प्रमदानामालापकथा शृण्वन् कन्दर्पकेतुर्मकरन्देन सह तद्भवन प्राविशत्।"

—वासवदत्ता, चौखम्बा प्रकाशन, पृ० १९७-२०६

(ब) "वरुणिके ! वारय निकटनाट्यशालाशैलूषकुलसङ्गीतकलहम्। कोकिले ! विधेहि स्वविषयादुपेयुप किन्नरराजकुलचारणकुलस्य स्वसन्देहविच्छेदम्।···पत्रलतिके ! पुपाण पुरुपरूपवन्ध्येन स्वविद्धचित्रेण देवीविचित्रवलभिकाभित्तिसौभाग्यम्।·· ···शिखण्डिके ! शेखरीकुरु पण्डकोपवनखण्डजाता पारिजातसुमनस। सिंहिके ! समुपसंहर वेणुवीणादिवाद्यविनोदम्। विनयवति ! नायमवसरो नयद्यूतस्य।······ ···रञ्जिके ! रञ्जय···सौधवलभी। चन्द्रलेखे ! विलिख प्रशस्तललितान् इतस्तत: क्षीरोदमौक्तिकक्षोदै. स्वस्तिकान्। ··वसन्तिके ! वासय घ्राणपुटसर्पिभि कर्पूरवासै मानसजलभूतान् अम्भ कुम्भान्। पुरन्दरिके ! पूरय सुखोष्णसुरभिणा गन्धसलिलेन भर्तृदारिकास्नानपुष्करिणीम्।···· ·इत्यादिकान् आकर्णयन् अविकृतान्तर्वंशिक-जनस्य नानाविधालापान्··· ··भोजनभवनमण्डपमगच्छम्।"

—तिलकमञ्जरी, पृ० ३७२-३७४

स्पष्ट है कि उपर्युक्त स्थल पर हमारे धनपाल सुबन्धु की शैली से प्रभावित हुए है। अन्तर केवल इतना है कि वासवदत्ता के महल की महिलाओ को तो कन्दर्पकेतु के आने की कोई जानकारी नही है, जबकि तिलकमञ्जरी के भवन की समस्त युवतियो को हरिवाहन के पदार्पण का पता था। इसीलिए वासवदत्ता के महल की महिलाएँ जहाँ अपनी पारस्परिक चुहलबाजी और रोजमर्रा के कामा मे ही व्यस्त है वहाँ तिलकमञ्जरी के भवन की स्त्रियाँ अपने सभी काम-काज छोडकर हरिवाहन के स्वागत की तैयारी मे दौड-धूप करती हुई नजर आती है। यह अन्तर उनकी जानकारी पर निर्भर करता है, जो नितान्त स्वाभाविक भी है।

इस प्रकार वासवदत्ता और तिलकमञ्जरी के उपर्युक्त कतिपय घटनाचक्रविपयक एव कुछ अश मे शैली विपयक साम्य को देखते हुए मुझे यह कहने मे कोई सङ्कोच नही है कि धनपाल की तिलकमञ्जरी पर सुबन्धु की वासवदत्ता की कुछ झलक अवश्य है।

तिलकमञ्जरी पर बाणभट्ट के प्रभाव की विशद मीमासा

तिलकमञ्जरीकार महाकवि धनपाल कादम्बरीकार महाकवि बाणभट्ट के कथा-कौशल से बेहद प्रभावित थे। कादम्बरीकथा की उदात्त परिकल्पना एव उसकी अनुपम सङ्घटना तथा पाण्डित्यपूर्ण वर्णन शैली ने धनपाल के हृदयपक्ष एव बुद्धिपक्ष — दोनो ही —को काफी गहराई तक आन्दोलित कर दिया था। वह बाणभट्ट के वाणी-वैभव पर रीझ गए थे। बाणभट्ट के पुत्र पुलिन्दभट्ट जिन्होने अपूर्ण कादम्बरीकथा को पूर्ण किया था,

के प्रति भी उनके हृदय मे पर्याप्त सम्मान था, जिसे उन्होंने अपनी 'तिलकमञ्जरीकथा' की भूमिका मे अभिव्यक्त भी किया है।[२५] यही कारण है कि उनकी कथाकृति तिलकमञ्जरी की वस्तुयोजना एव वर्णन पद्धति पर वाणभट्ट की वस्तुयोजना एव वर्णन पद्धति का कही भावात्मक तो कही शब्दात्मक प्रभाव पड़ गया है।

हम देखते है कि धनपाल ने अपनी तिलकमञ्जरीकथा मे अयोध्यानगरी[२६] का जो वर्णन किया है उस पर कादम्बरीकथा मे वाणभट्ट द्वारा किए गए उज्जयिनी वर्णन[२७] की वहुत कुछ छाप है। इसी प्रकार उनके मदिरावती वर्णन[२८] पर वाणभट्ट के हर्षचरित मे किए गए यशोमतीवर्णन[२९] की, ज्वलनप्रभ नामक वैमानिकद्वारा मेघवाहन को समर्पित किए जाने वाले चन्द्रातप नामक हार की दानवर्णनशैली[३०] पर कादम्बरी की मदलेखा नामक प्रिय सहेली द्वारा चन्द्रापीड को समर्पित किए गए शेषनामक हार की दानवर्णनशैली[३१] की, हरिवाहन के जन्मवर्णन[३२] पर चन्द्रापीड के जन्मवर्णन[३३] की, अदृष्टपार सरोवर के वर्णन[३४] पर अच्छोद सरोवर के वर्णन[३५] की छाप छिपी नही है। इतना ही नही, वल्कि धनपाल ने तो विरहिणी मलयसुन्दरी के तपोजीवन की परिकल्पना भी, लगता है कि, वाणभट्ट की महाश्वेता के आधार पर ही की है। स्वभाव एव आचरण मे मलयसुन्दरी महाश्वेता की प्रतिकृति ही प्रतीत होती है। आप देखेंगे कि सखी-प्रेम और अतिथि-सत्कार मे वह किसी भी प्रकार महाश्वेता से हीन नही है। मलयसुन्दरी के आश्रम मे हरिवाहन के पहुँचने पर धनपाल ने जो कुछ भी वर्णन किया है उस सब पर महाश्वेता के आश्रम मे चन्द्रापीड के पहुँचने पर वाणभट्ट द्वारा किए गए वर्णन का पूरा-पूरा प्रभाव है। इस स्थल पर धनपाल ने अतिथि और आतिथेय के जिन पारस्परिक एव पवित्र कर्त्तव्यो का निर्वाह किया है उन पर बाणभट्ट की छाया साफ नजर आती है।[३६] जिस प्रकार कादम्वरी मे कथा का रहस्योद्घाटन महर्षि जावालि[३७] ने किया है उसी प्रकार तिलकमञ्जरी मे भी एक महर्षि ही कथा की परतें खोलते है।[३८] इतना ही नही वल्कि कथावस्तु की सङ्घटना मे भी धनपाल ने वाणभट्ट से पर्याप्त प्रेरणा ग्रहण की है। पुत्रप्राप्ति के लिए मेघवाहन की उत्कण्ठा और उसकी पूर्ति के लिए तपस्या, सन्तानलाभ-सूचक स्वप्न का देखना, हरिवाहन का जन्म और उसकी शिक्षा-दीक्षा का वर्णन वाणभट्ट की कादम्बरी से वहुत कुछ मिलता-जुलता है। क्योकि कादम्वरी मे भी तारापीड सन्तान-प्राप्ति के लिए चिन्तित है। वह अपनी पत्नी विलासवती को ज्यादा धर्म, दान, पुण्यादि करने के लिए कहता है ताकि उसे सन्तान का मुख देखने का सुख मिल सके। वह भी सन्तानप्राप्ति सूचक सपना देखता है और चन्द्रापीड के जन्म, शिक्षा और दीक्षा मे प्रगाढ रुचि रखता है।

तिलकमञ्जरी मे चित्रमाय नामक विद्याधर हाथी का रूप धारण करके हरिवाहन को उडा ले जाता है और वह स्वय अदृष्टपारसरोवर मे गिरकर अपने हाथी के रूप को त्यागकर पुन पूर्ववत् चित्रमाय बन जाता है। मेरी समझ से तो ये घटनाएँ कादम्बरीकथा मे इन्द्रायुध अश्वद्वारा चन्द्रापीड को गन्धर्व नगर तक पहुँचाने की, और चन्द्रापीड के वियोग मे इन्द्रायुध अश्व के अच्छोदसरोवर मे डूबकर पुन कपिञ्जल के रूप मे वनकर निकलने की याद दिला ही देती है। धनपाल ने हरिवाहन की मलयसुन्दरी से जो और

जिस प्रकार भेंट कराई है उस पर क्या चन्द्रापीड और महाश्वेता की मुलाकात का प्रभाव नही है ? मैं तो समझता हूँ कि बहुत कुछ है। जिस प्रकार बाणभट्ट की महाश्वेता नायक (चन्द्रापीड) और नायिका (कादम्बरी) के मिलन मे एक आदर्श भूमिका निभाती है, लगभग उसी प्रकार धनपाल की मलयसुन्दरी ने नायक (हरिवाहन) और नायिका (तिलकमञ्जरी) के मधुरदाम्पत्य जीवन के लिए सतत शुभकामनाएँ की है। बाणभट्ट की देखा-देखी ही धनपाल ने भी अपनी कथाकृति मे नायक के साथ उपनायक और नायिका के साथ उपनायिका की परिकल्पना करके कथा की सरसता और आकर्षणशीलता, अन्य कथाकारो की कथाओ की अपेक्षा, दूनी कर ली है।

यहाँ यह कहना भी मै असङ्गत नही समझता हूँ कि तिलकमञ्जरी के भवन मे स्वागत कार्य मे व्यस्त युवतियो के वर्णन पर कादम्बरी के भवन मे ललित कार्यकलापो मे व्यस्त युवतियो के वर्णन का, तिलकमञ्जरी द्वारा हरिवाहन को स्वागत-ताम्बूल भेट करने की परिकल्पना पर कादम्बरी द्वारा चन्द्रापीड को ताम्बूल समर्पण करने की सूझ-बूझ का, विरहिणी तिलकमञ्जरी से कदलीगृह मे हरिवाहन द्वारा की गई भेट पर वियोगिनी कादम्बरी से हिमगृह मे चन्द्रापीड द्वारा की गई मुलाकात का, और कथा के अन्त मे समरकेतु के सहारे हरिवाहन की निश्चिन्तता एव साम्राज्य सुख को भोगने की शैली पर पुण्डरीक के सहारे चन्द्रापीड की निश्चिन्तता एव साम्राज्य सुख को भोगने की शैली का भी पूरा-पूरा प्रभाव परिलक्षित होता है।

यहाँ तक किए गए इस तुलनात्मक विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि धनपाल पर बाणभट्ट का काफी प्रभाव है। वह मुझे कही भावार्थ का आहरण करते दीखते हैं। तो कही शब्दराशि का आहरण करते हुए। वास्तव मे उन्होने बाणभट्ट से बहुत कुछ लिया है। लीजिए, कुछ नमूने भी पेश किए देता हूँ —

(क) अवनीश्वरोऽपि परमोत्पन्ननिर्वृत्तिर्जलकटाहक्रोडनिक्षिप्तनाडिकानिहितचक्षुषा गणकनिवहेन निश्चित्य देव्या प्रसवलग्नमागतेन मुहुर्मुहुरनेकप्रकारैं कृतोपवर्णनमाकर्ण्य जन्मगृहवल बालकस्य कृतमज्जनादिकृत्य शुभे मुहूर्त्ते निवारितानुचरलोक परिगतप्रान्तमुत्खातखड्गैं समन्ततो वीरपुरुषैं प्रशस्ततरुपल्लवास्तृतमुखेन··· ·· मङ्गलकलशयुगलेनावभासितम्, उदारगन्धोद्गारगुग्गुलधूपधूमान्धकार-दूरीकृतदुष्ट-चक्रवक्राक्षिसञ्चारम्,········वन्धुवृद्धाभिरारब्धमङ्गलगीतकोलाहलम्········ सकललौकिकाचारकुशलेन—'कुरुत हरिचन्दनोपलेपहारि मन्दिराङ्गणम्, रचयत स्थानस्थानेषु रत्नचूर्णस्वस्तिकान्, दत्त द्वारि नूतन चूतपल्लवदाम, विकिरतान्तरुत्फुल्लपङ्कजोपहारम्, कारयत सर्वत शान्तिसलिलक्षेपम्, आहरत भगवती षष्ठीदेवीम्, आलिखत जातमातृपटलम्, आरभध्वमार्यवृद्धासपर्याम्, निधत्त पर्यन्तेषु शयनस्य मन्त्रोऽभिमन्त्रितां रक्षाभूतिरेखाम्', इत्यादि जल्पता ··शुद्धान्तजरतीजनेन क्रियमाणविविधशिशुरक्षाविधानम्,·······अचञ्चलावस्थानैं ·· ····मङ्गलप्रदीपैं प्रकाशिताभ्यन्तरम्,····· प्रसूतिकागृहमविशत्।

—तिलकमञ्जरी, पृ० ७६-७७

धनपाल ने निश्चय ही इस उपर्युक्त हरिवाहन के प्रसूतिकागृह का वर्णन करने मे

बाणभट्ट कृत चन्द्रापीड के निम्नलिखित प्रसूतिकागृह के वर्णन से प्रेरणा ग्रहण की होगी—

पार्थिवस्तु तनयाननदर्शनमहोत्सवहृतहृदयोऽपि··· मौहूर्त्तिकगणोपदिष्टे प्रशस्ते मुहूर्त्ते निवारितनिखिलपरिजन·· ·मणिमयमङ्गलकलशयुगलाशून्येन······विविधनवपल्लवनिवहनिरन्तरनिचितेन ·····विरलग्रथितसितकुसुममिश्रदूर्वाप्रवालमालालंकृतेन··· ···द्वारदेशेन विराजमानम्,······मर्यादानिपुणेन गोमयमयीभि ······अन्तरान्तरावद्धविविधवर्णरागरुचिरकार्पासकुसुमलेशलाञ्छिताभि कुसुम्भकेसरलवाण्लेपलोहिताभिर्लेखाभिरालिखितस्वस्तिकभक्तिजालमुपरचयता, ·····भगवती षष्ठी देवी कुर्वता,··· पुरन्ध्रिवर्गेण समधिष्ठितम्··· ·अनवरत ·····दह्यमानाज्यमिश्रभुजगनिर्मोकमेपविपाणक्षोदम्, अनलप्लुष्यमाणारिष्टतरुपल्लवोल्लसितरक्षाधूमगन्धम्··· अभिनवलिखितमातृपट-पूजाव्यग्रधात्रीजनम्, अनेकवृद्धाङ्गनारब्धसूतिकामङ्गलगीतिकामनोहरम्, आवध्यमानधवलकुसुमदामशतम्, ·· ··निश्चलशिखैं·········मङ्गलप्रदीपैरुद्भासितम्, उत्खातासिलतासनाथपाणिभि सर्वतो रक्षापुरुपैं परिवृत सूतिकागृहमपश्यत् ।

—कादम्बरी, पृ० २१५-२१६

(ख) धनपाल—तिग्मांशुमय इव तेजसि, सरस्वतीमय इव वचसि ।[३९]

बाणभट्ट—वाचि सरस्वत्या ···· तेजसि सवित्रा ।[४०]

(ग) धनपाल—तमपि भुवनभारमनायासेनैव धृतासिना भुजेन यो वभार ।[४१]

बाणभट्ट—वलयमिव लीलया भुवनभारमुद्वहन् ।[४२]

(घ) धनपाल—कदाचिन्नीलपटावगुण्ठिताङ्गो·········बहुलप्रदोषाभिसारिका सुदूरमाचकर्ष ।[४३]

बाणभट्ट—कदाचिन्नीलपटविरचितावगुण्ठनो वहुलपक्षप्रदोषदत्तसङ्केता. सुन्दरीरभिससार ।[४४]

(ङ) धनपाल—कदाचित् क्रीडायै द्यूतपराजित पणितमप्रयच्छन् 'क्व गच्छसि ?' इति बद्धालीकभ्रूकुटिभिर्विदग्धवनिताभिराकृष्य कृतविषमपदपातः ········ सपत्नसमक्षमेवाक्षिप्यत ।[४५]

बाणभट्ट—कदाचित् सङ्केतवञ्चिताभि· प्रणयिनीभिरावद्धभगुरभ्रूकुटिभि ······ वकुलकुसुमावलीभि. सयतचरण···· ··कुसुमदामभि कृतापराधो दिवसमताड्यत् ।[४६]

(च) धनपाल—सेवकानुरागस्य सरक्षणाय च वितीर्णसर्वावसरमन्तरान्तरा सभामण्डपमध्यास्त । धर्मपक्षपातितया च देवद्विजातितपस्विजनकार्येषु महत्सु कार्यासन भेजे ।

बाणभट्ट—प्रजानुरागहेतोरन्तरान्तरा दर्शन ददौ, सिहासन च निमित्तेष्वारुरोह ।[४८]

(छ) धनपाल—भाग्यसम्पत्तिरिव सौभाग्यस्य, पुण्यपरिणतिरिव लावण्यस्य, सङ्कल्पसिद्धिरिव सङ्कल्पयोने , सर्वकामावाप्तिरिव कमनीयताया ···मदिरावती नाम देव्यभवत् ।[४९]

बाणभट्ट—आज्ञासिद्धिरिव मकरध्वजस्य, ···दैवसम्पत्तिरिव लावण्यस्य,·· ···

वरप्राप्तिरिव सौभाग्यस्य,········सर्गसमाप्तिरिव सौन्दर्यस्य······ यशोमती नाम महादेवी······अभूत्।[५०]

(ज) **धनपाल**—नदीतटतरुमिव स्फुटोपलक्ष्यमाणजटम्।[५१]

बाणभट्ट—नदीतटतरुरिव सततजलक्षालनविमलजट.।[५२]

(झ) **धनपाल**—आचारमिव चारित्र्यस्य, ··शुद्धिसञ्चयमिव शौचस्य, धर्माधिकारमिव धर्मस्य, सर्वस्वदायमिव दयाया, ·· ··विद्याधरमुनिमपश्यत्।[५३]

बाणभट्ट—धाम धर्मस्य,······पत्तनं पूतताया.···आकर करुणायाः···भैरवाचार्यं ददर्श।[५४]

(ञ) **धनपाल**—इद राज्य, एपा मे पृथ्वी, एतानि वसूनि, असौ हस्त्यश्वरथपदातिप्रायो बाह्यः परिच्छद., इद शरीरमेतद्गृह गृह्यता······यदत्रोपयोगार्हम्।[५५]

बाणभट्ट—तस्मै च राजा सान्त.पुर सपरिजन सकोषमात्मान निवेदितवान्।[५६]

(ट) **धनपाल**—अभूमिर्मुनिजनो विभवानाम्। विषयोपभोगगृध्नवो हि धनान्युपाददते। मद्विधास्तु संन्यस्तसर्वारम्भा. समस्तसङ्गविरता निर्जनारण्यबद्धगृह-बुद्धयो भैक्षमात्रभावितसन्तोपा किं तैः करिष्यन्ति ?[५७]

बाणभट्ट—जन्मनः प्रभृत्यदत्तदृष्टिरेवास्मि स्वापतेयेपु। यत. सकलदोषकलापान-लेन्धनैर्धनैरविक्रीत क्वचिच्छरीरकमस्ति। भैक्षरक्षिता सन्ति प्राणा।[५८]

(ठ) **धनपाल**—सलिलनिर्भराम्भोधरनिनादगम्भीरेण स्वरेण मधुरमब्रवीत्।[५९]

बाणभट्ट—नवाम्भोभरगभीराम्भोधरध्वाननिभया भारत्या···सुधीरमुवाच।[६०]

(ड) **धनप** —द्रष्टा कालत्रितयवर्त्तिना भावानाम्।[६१]

भट्ट—सहि······कालत्रयदर्शी······।[६२]

(ढ) **धनपाल**—उपदेष्टा चिरप्रनष्टस्य धर्मतत्त्वस्य,··· ·सेतुबन्धः ससारसिन्धो।[६३]

बाणभट्ट— ··सन्तरणसेतुः ससारसिन्धो,···उपदेष्टा सिद्धिमार्गस्य···।[६४]

(ण) **धनपाल**—तदेष ··अवाप्य·· त्वां·· ··प्राप्नोतु सदृशवस्तुसयोगजा प्रीतिम्। अस्य हि ·····त्वद्वसतिरेव स्थानम्। नहि त्र्यम्बकजटाकलापमन्तरिक्ष वा विहाय··· ··हरिणलक्ष्मा क्षितौ पद बध्नाति।[६५]

बाणभट्ट—तदय···तयापि त्वद्वपुरस्यानुरूपमाभरणस्येति विभावयन्त्या नभस्तलमेवोचित सुधासूतेर्धाम न धरेत्यवधार्यानुप्रेषित।[६६]

(त) **धनपाल**—त्वया मनस्विना वरेण ·····कदाचिदकृतप्रणयमङ्गस्य मे न कार्य प्रथम-प्रार्थनाभङ्ग।[६७]

बाणभट्ट—न खलु महाभागेन मनसापि कार्य कादम्बर्याः प्रथमप्रणयप्रसरभङ्ग.।[६८]

(थ) **धनपाल**—सकललोकाचारकुशलाभि ····· ·वारवनिताभि कृतावतारणक-मङ्गलाम्······।[६९]

बाणभट्ट—आचारकुशलेनान्त पुरजरतीजनेन क्रियमाणावतारणकमङ्गलाम्···।[७०]

(द) **धनप** —उपस्पृश्य च समाघ्रातधूपधूमवर्त्ति ·· ··गृहीत्वा च ताम्बूलम्·· ···।[७१]

बाणभट्ट—परिपीतधूम (धूपधूम) वर्त्तिरुपस्पृश्य च गृहीतताम्बूल.······।[७२]

(ध) **धनपाल**—देवि ! सम्पन्नास्ते गुरुजनाशिष ।······भविष्यत्यशेषभूभृच्चक्रचूडारत्नमचिरेणैव सूनु.।[७३]

बाणभट्ट—देव ! सम्पन्ना सुचिरादस्माक प्रजाना च मनोरथा.। कतिपयैरेवाहोभिरसशयमनुभविष्यति स्वामी सुतमुखकमलावलोकनसुखम्।[७४]

(न) **धनपाल**—प्रतिदिवसमुपचीयमानगर्भा······।[७५]

बाणभट्ट—प्रतिदिनमुपचीयमानगर्भा······।[७६]

(प) **धनपाल**—अतिक्रान्ते च षष्ठीजागरे, समागते च दशमेऽहनि······दत्त्वा समारोपिताभरणा सवत्सा सहस्रशो गा स्वर्णं च प्रचुरं······विप्रेभ्यः 'स्वप्ने शतमन्युवाहनो वारणपतिर्दृष्ट' इति सम्प्रधार्य तस्यैव स्वप्नस्य सदृश ··· ··हरिवाहन इति शिशोर्नाम चक्रे।[७७]

बाणभट्ट—अतिक्रान्ते च षष्ठीजागरे प्राप्ते दशमेऽहनि ··· ·गा सुवर्णं च कोटिशो ब्राह्मणसात्कृत्वा (ब्राह्मणेभ्यो दत्त्वा) 'मातुरस्य मया परिपूर्णमण्डलश्चन्द्रः स्वप्ने मुखकमलमाविशन् दृष्ट' इति स्वप्नानुरूपमेव सूनोः चन्द्रापीड इति नाम चकार।[७८]

(फ) **धनपाल**—प्रतीहारी प्रविश्य क्षितितलन्यस्तजानुहस्तयुगला सविनय व्यजिज्ञपत्।[७९]

भट्ट—प्रतीहारी समुपसृत्य क्षितितलनिहितजानुकरकमला सविनयमब्रवीत्।[८०]

(ब) **धनपाल**—आत्मप्रतिबिम्बकैरिव समानरूपै समानवयोभि समानवसनालङ्कारधारिभि ······प्रधानराजपुत्रै परिवृत्तम्······।[८१]

बाणभट्ट—समानवयोविद्यालङ्कारै ······आत्मनः प्रतिबिम्बैरिव राजपुत्रै सह रममाण ······उवास।[८२]

(भ) **धनपाल**—कस्मान्मया···· ···शिशुनेव लघुतां परमात्मा नीत ?······अहो ! चञ्चलस्वभावता चित्तपरिणते ···।[८३]

बाणभट्ट—किमिति निरर्थकमयमात्मा मया शिशुनेवायासित ?······अहो ! मे मूर्खताया. प्रकारः, अहो ! यत्किञ्चनकारितायामादर. ··।[८४]

(म) **धनपाल**—लोचनसृष्ट्या दृष्ट समस्तरमणीयाना सीमा, विलोकित कौतुकविधायिनामवधि., वीक्षित विस्मयनीयानामन्त, साक्षात्कृतमद्भुतानामास्पदम्, आसादित महिम्नामायतनम्, अधिगतमगाधानामधिष्ठानम्।[८५]

बाणभट्ट—अद्य परिसमाप्तमीक्षणयुगलस्य द्रष्टव्यदर्शनफलम्, आलोकित खलु रमणीयानामन्त, दृष्ट आह्लादनीयानामवधि, वीक्षिता मनोहराणा सीमान्तलेखा, प्रत्यक्षीकृता प्रीतिजननाना परिसमाप्ति, विलोकिता दर्शनीयानामवसानभूमि ।[८६]

(य) **धनपाल**—राजहसाना श्रोत्रहारिभि कोलाहलैरभ्यर्थित इवाकारित इव, कृतस्वागत इव जलाभिमुखमुच्चचाल।[८७]

बाणभट्ट—श्रोत्रहारिभि कलहसाना कोलाहलैराहूयमान इव प्रविवेश।[८८]

(र) **धनपाल**—अन्यतामिवापन्नेनान्तरात्मना मदनमयमिव, शृङ्गारमयमिव, प्रीतिमयमिव, आनन्दमयमिव, विलासमयमिव, रम्यतामयमिव, उत्सवमयमिव

सकलजीवमाकलयन्…कल्पतरुखण्डमपश्यत् ।[८६]

बाणभट्ट—अनङ्गयुगावतारमिव दर्शयन्तम्, चन्द्रमयीमिव सृष्टिमुत्पादयन्तम्, विलासप्रायमिव जीवलोक जनयन्तम्, अनुरागमयमिव सर्गान्तरमारचयन्तम्, शृङ्गारमयमिव दिवसमापादयन्तम्…युवानमद्राक्षीत् ।[९०]

(ल) **धनपाल**—अतिस्थिरतया कायस्य लिखितामिव, उत्कीर्णामिव, स्तम्भितामिव विभाव्यमाना…एकां…तापसकन्यका…व्यलोकयम् ।[९१]

बाणभट्ट—स्तम्भितेव, लिखितेव, उत्कीर्णेव, सयतेव,…निष्पन्द……सकलावयवा …अहमपि…त…व्यलोकयम् ।[९२]

(व) **धनपाल**—तां च दृष्ट्वा तथाविधा…मनस्यकरवम्—'अहो पूर्वजन्मान्तरसञ्चितैरशुभकर्मभिरायोजिता' सुनिपुणमपि निरूपितोपायैर्मनीषिभिरनीपत्करा' परिहर्त्तुमुपतापा । येनेयमपहाय परमसक्लेशहेतु सकलमङ्गमेकाकिनी……गिरिकान्तारे कृतस्थिति …ईदृशस्य मानसदु:खभारस्य भाजनं कृता महानुभावा दैवेन' इति सोद्वेगविस्मय……उत्थाय च कराञ्जलिपुटावर्जित दीर्घिकाजलमुपानयम् । सापि किञ्चिद्विरलशोका वाष्पजलपरिप्लुतारपक्ष्मा भाल प्रक्षाल्य तेन प्रमृद्य चोत्तरीयपल्लवप्रातेन वदनमुत्सृष्टदीर्घनि श्वासा विलम्ब्य किञ्चित्कालम् उपचक्रमे वक्तुम् ।[९३]

बाणभट्ट—तां च प्ररुदिता दृष्ट्वा – तत्क्षणमचिन्तयत्—'अहो ! दुर्निवारता व्यसनोपनिपातानाम्, यदीदृशीमप्याकृतिमनभिभवनीयामात्मीयां कुर्वन्ति ।……इति सम्वर्धितकुतूहलश्च…उत्थाय प्रस्रवणादञ्जलिना मुखप्रक्षालनोदकमुपनिन्ये । सा तु…अविच्छिन्नवाष्पजलधारासन्तानापि …प्रक्षाल्य लोचने वल्कलोपान्तेन वदनमपमृज्य दीर्घं ··नि श्वस्य शनै· …शनै· प्रत्यवादीत् ।[९४]

इस प्रकार इन उपरिलिखित तुलनात्मक उद्धरणो का परिशीलन करने से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि धनपाल पर वाणभट्ट की काफी गहरी छाप है । भला हो भी क्यो नही, वाणभट्ट ने सस्कृत साहित्य की गद्यात्मक एव परिकल्पनात्मक शैली को चरमकोटि तक पहुँचा जो दिया है । यही कारण है कि परवर्त्ती सभी गद्यकार वाणभट्ट से प्रभावित हुए विना रह ही नही सके ।

पर इसका मतलब यह कदापि नही समझना चाहिए कि धनपाल ने वाणभट्ट की साहित्यिक चोरी की है और उनका अपना कुछ भी नही है । यह ठीक है कि धनपाल उनसे प्रभावित हुए हैं, उनकी कथा-सयोजना, भाषा, भावादि को भी उन्होने यत्र-तत्र अपनाया है, पर इतना सब कुछ होने के वावजूद भी उन्होने अपने व्यक्तित्व को, अपनी शैली को और अपनी कथावस्तु के सङ्घटन की स्वतन्त्र परिकल्पना को पूरी तौर से कायम रखा है । उन्होने वाणभट्ट से जो कुछ भी ग्रहण किया है उसे वह पूरी तौर से आत्मसात् कर गए हैं । उसे उन्होने अपनी प्रतिभा के अमिट रग मे सरोवर करके ही पाठको के समक्ष प्रस्तुत किया है । अत: उन पर साहित्यिक चोरी का अभियोग सावित नही हो पाता है ।

वास्तव मे देखा जाए तो धनपाल तो उस मधुमक्खी के समान है जो भिन्न-भिन्न फूलो से पराग लेकर ऐसे स्वादिष्ट मधु की सर्जना करती है कि जिसके स्वाद की अनुभूति किसी भी फूल के पराग मे नही की जा सकती। क्योकि धनपाल ने भी तो कादम्बरीरूपी सुन्दर पुष्पवाटिका, जिसके माली बाणभट्ट है, से कुछ अशो मे भाषा एव भावरूपी पराग को लेकर तिलकमञ्जरीकथारूपी मधुर एव स्वादिष्ट मधु का निर्माण किया है। यही कारण है कि पाठक के हृदय मे उनकी तिलकमञ्जरीकथा का स्वाध्याय करते समय एक अनिर्वचनीय एव अननुभूतपूर्व आनन्द की अनुभूति हुआ करती है, जो उनकी अपनी निजी देन है।

तिलकमञ्जरी पर दण्डी का प्रभाव

दण्डी भी सस्कृत साहित्य की गद्यात्मक विधा के उत्कृष्ट साहित्यकार है। इनकी तीन रचनाएँ प्रसिद्ध है—पहली काव्यादर्श, जो एक अलङ्कारशास्त्रीय ग्रन्थ है, दूसरी अवन्तिसुन्दरीकथा और तीसरी रचना दशकुमारचरित है।[६५] इनमे अवन्तिसुन्दरीकथा और दशकुमारचरित—ये दोनो ही—गद्यात्मक कथाकृतियाँ है।

अब जहाँ तक तिलकमञ्जरी पर दण्डी के प्रभाव का प्रश्न उठता है, मैं तो यही समझ सका हूँ कि इस प्रश्न की मीमासा का परिवेश नितान्त सीमित है। क्योकि हम देखते है कि तिलकमञ्जरी की कथात्मक सङ्घटना और शैली पर दण्डी की जो कुछ भी छाया परिलक्षित होती है वह बहुत ही क्षीण है। इसमे कोई सन्देह नही है कि धनपाल ने दण्डी की कृतियो को पढा अवश्य ही होगा और उनकी शैलीप्रधान अवन्तिसुन्दरीकथा से वह प्रभावित भी हुए होगे। पर सुबन्धु और बाण के ही रंग मे रगी हुई दण्डी की अवन्तिसुन्दरीकथा से उन्होने साहित्यिक आदान करने का विचार शायद बहुत ही कम किया है। लेकिन इसका मतलब यह भी नही समझना चाहिए कि धनपाल ने दण्डी से कुछ भी नही लिया। क्योकि उनकी तिलकमञ्जरी पर दण्डी की अवन्तिसुन्दरीकथा का यत्र-तत्र प्रभाव पड़ा ही है। उदाहरणार्थ उसके कतिपय सकेत निम्नलिखित है—

(क) दण्डी ने अपनी अवन्तिसुन्दरीकथा के आरम्भ मे मङ्गलाचरण के बाद अपने पूर्ववर्त्ती कवियो की प्रशस्ति की है।[६६] इसी प्रकार धनपाल ने भी अपनी तिलकमञ्जरीकथा के आरम्भ मे मङ्गलाचरण के बाद कविप्रशसा की है।[६७]

(ख) दण्डी ने काञ्चीनगरी और कुसुमपुर के वर्णनो मे शैली की जो चुस्ती दिखाई है,[६८] उसे धनपाल ने अयोध्या और काञ्ची नगरियो के वर्णनावसर पर बडी खूबी और अहमियत के साथ अपनाया है।[६९]

(ग) दण्डी ने राजा राजहस की शूरता, सचिवायत्तता और भोगविलासिता का जैसा उदात्त वर्णन किया है[१००], वैसा ही धनपाल की तिलकमञ्जरी मे सम्राट् मेघवाहन की भी शूरता, सचिवायत्तता और भोगविलासिता का उपलब्ध होता है।[१०१]

(घ) दण्डी ने रानी वसुमती का जो वर्णन किया है,[१०२] उसकी भी एक हल्की-सी झलक धनपालकृत मदिरावतीवर्णन पर परिलक्षित होती है।[१०३]

(ङ) दशकुमारचरित मे दिए गए अतिसक्षिप्त वसन्तवर्णन[104] का भी प्रभाव तिलकमञ्जरी मे किए गए वसन्तवर्णन[105] के कुछ अशो मे देखा जा सकता है।

अब मैं दण्डी और धनपाल के भावात्मक शब्दसाम्य के द्योतक कतिपय उद्धरण भी प्रस्तुत करना उचित समझता हूँ। लीजिए, देखिए—

(च) **दण्डी**—पत्रांगुलिरिव सकलोज्ज्वलवर्णशोभिनी सन्निविष्टा···।[106]

धनपाल—वृत्तोज्ज्वलवर्णशालिनी कर्णिकेव स्थिता···।[107]

(छ) **दण्डी**—कैलासशिखरमालाविडम्बिना प्राकारवलयेन···।[108]

धनपाल—तुषारधवलभित्तिना विशालवप्रेण परिगता···।[109]

(ज ी)—चतुर्भिर्गोपुरैरुपेता···।[110]

धनपाल—चतुर्भिरत्युच्चैर्गोपुरैरुपेता···।[111]

(झ) ी—मदमञ्जुल (कल) हस गद्‌गद्‌रवया युवतिजनकुचक्षोभजनितवीचीवेगया··· ··।[112]

धनप —माद्यत्कोशलविलासिनीनितम्बास्फालनस्फारिततरङ्गया·······राजहसैःक्षणमप्यमुक्तपार्श्वया······।[113]

(ञ) **दण्डी**—निदाघभिया शरणागत शिशिरमिवाभिपालयन्ती···।[114]

धन —दुर्गनिवेशमिव ग्रीष्मनिर्दयावस्कन्देषु शिशिरस्य···।[115]

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपर्युक्त तुलनात्मक उद्धरण भी यह सिद्ध कर रहे हैं कि धनपाल पर दण्डी का थोड़ा-बहुत तो प्रभाव मानना ही पड़ेगा। वैसे तो मैं यही कहूँगा कि—'सर्वे पादा. हस्तिपादे निमग्ना'—के न्यायानुसार धनपाल पर पडे हुए बाणभट्ट के प्रबल प्रभाव मे दण्डी तो क्या, सभी के प्रभाव डूबते-उतराते से नजर आते हैं।

सन्दर्भ

१. श्लेषे केचन शब्दगुम्फविषये केचिद् रसे चापरेऽ-
लङ्कारे कतिचित् सदर्थविषये चान्ये कथावर्धने।
आ सर्वत्र गभीरधीरकविताविन्ध्याटवीचातुरी-
सञ्चारी कविकुम्भिकुम्भभिदुरो बाणस्तु पञ्चानन ॥
—श्री चन्द्रदेव

२. ···शब्दहरणमेव तावत्पञ्चधा। पदत, पादत, अर्थत, वृत्तत, प्रबन्धतश्च।
—काव्यमीमासा (बिहारराष्ट्रभाषा-परिषद् प्रकाशन), अध्याय ११, पृ० १३६

३. देखिये— (क) हससन्देश, लेखक—अज्ञातनामा, सम्पादक—श्री के० साम्बशिव शास्त्री, अनन्तशयनसस्कृतग्रन्थावलि, ग्रन्थ स० १०३ पर त्रिवेन्द्रम् से १९३० मे प्रकाशित।

(ख) हससन्देश, लेखक—श्री पूर्णसरस्वती, सम्पादक—श्री के० साम्व शिव शास्त्री, अ० श० स० ग्र० स० १२९ पर त्रिवेन्द्रम् से १९३७

(ग) भृङ्गसन्देशः, लेखक—श्री वासुदेव, सम्पादक—वही, प्रकाशन—वही।

(घ) प्रियप्रवास, षष्ठ अध्याय, पद्य स० २६-८३, लेखक—हरिऔध।

४. निर्माय नूतनमुदाहरणानुरूप काव्य मयाऽत्र निहित न परस्य किञ्चित्।
किं सेव्यते सुमनसा मनसाऽपि गन्ध कस्तूरिकाजननशक्तिभृता मृगेण ॥
—पण्डितराज जगन्नाथ, रसगङ्गाधर, प्रथम आनन।

५. युक्त्यानयानुसर्त्तव्यो रसादिर्बहुविस्तर ।
मितोऽप्यनन्तता प्राप्तः काव्यमार्गो यदाश्रयात् ॥
—ध्वन्यालोक, चतुर्थ उद्योत, कारिका ३

६. ध्वनेरित्थ गुणीभूतव्यङ्ग्यस्य च समाश्रयात्।
न काव्यार्थविरामोऽस्ति यदि स्यात् प्रतिभागुण ॥
—ध्वन्यालोक, उद्योत ४, कारिका ६

७. सवादास्तु भवन्त्येव बाहुल्येन सुमेधसाम्।
नैकरूपतया सर्वे ते मन्तव्या विपश्चिता ॥ —वही, ४/११

८. सवादो ह्यन्यसादृश्य तत्पुन प्रतिबिम्बवत्।
आलेख्याकारवत्तुल्यदेहिवच्च शरीरिणाम् ॥ —वही, ४/१२

९. तत्र च पूर्वमन्यात्म तुच्छात्म तदनन्तरम्।
तृतीयन्तु प्रसिद्धात्म नान्यसाम्य त्यजेत्कवि ॥ —वही, ४/१३

१०. नास्त्यचौर कविजनो नास्त्यचौरो वणिग्जन ।
स नन्दति विना वाच्य यो जानाति निगूहितुम् ॥
—काव्यमीमासा, अध्याय ११, अन्तिमाश।

११. अर्थ स एव सर्वो वाक्यान्तरविरचनापर यत्र।
तदपरमार्थविभेद काव्य प्रतिबिम्बकल्प स्यात् ॥
सोऽय कवेरकवित्वदायी सर्वथा प्रतिबिम्बकल्प परिहरणीय ।
यत —पृथक्त्वेन न गृह्णन्ति वस्तु काव्यान्तरस्थितम्।
पृथक्त्वेन न गृह्णन्ति स्ववपु प्रतिबिम्बितम् ॥
—काव्यमीमासा, प्रथमाधिकरण, अध्याय १२

१२. (क) कियतापि यत्र सस्कारकर्मणा वस्तुभिन्नवद् भाति।
तत्कथितमर्थचतुरैरालेख्यप्रख्यमिति काव्यम् ॥ —वही।

(ख) ······ता इमा आलेख्यप्रख्यस्य भिदा । सोऽयम् अनुग्राह्यो मार्ग । आहुश्च—
सोऽय भणितिवैचित्र्यात् समस्तो वस्तुविस्तर ।
नटवद् वर्णिकायोगाद् अन्यथात्वमिवाच्छंति ॥
—वही, अध्याय १३

१३. विषयस्य यत्र भेदेऽप्यभेदबुद्धिर्नितान्तसादृश्यात्।
तत्तुल्यदेहितुल्य काव्य बध्नन्ति सुधियोऽपि ॥ —वही, अध्याय १२

१४. मूलैक्य यत्र भवेत् परिकरबन्धस्तु दूरतोऽनेक.।
तत्परपुरप्रवेशप्रतिम काव्य सुकविमतिभाव्यम् ॥ —वही।

१५. (क) प्रणम्य वाच निश्शेषपदार्थोद्योतदीपिकाम्।
वृहत्कथाया. सारस्य सग्रहं रचयाम्यहम् ॥
—कथासरित्सागर, प्रथम लम्बक, प्रथम तरङ्ग, तृतीय श्लोक।

(ख) नानाकथामृतमयस्य वृहत्कथाया:
सारस्य सज्जनमनोऽम्बुधिपूर्णचन्द्रः।
सोमेन विप्रवरभूरिगुणाभिराम-
रामात्मजेन विहित. खलु सग्रहोऽयम् ॥
—कथासरित्सागर की समाप्ति पर ग्रन्थकर्त्ता की प्रशस्ति से।

१६. सत्य वृहत्कथाम्भोधेर्विन्दुमादाय सस्कृता.।
तेनेतरकथा: कन्था. प्रतिभान्ति तदग्रत: ॥
—तिलकमञ्जरी, प्रस्तावना श्लोक २१

१७. .... ।
इह विद्याधराणा द्वौ वैद्यर्धौ स्तो हिमाचले ॥
उत्तरो दक्षिणश्चैव नानातच्छृङ्गभूमिगौ।
परत: किल कैलासादुत्तरोऽर्वाक्तु दक्षिण ॥
—कथासरित्सागर:, तरङ्ग १०७, श्लोक ६५-६६

१८. वही, तरङ्ग वही।

१९. वही, तरङ्ग ५६, पृ० ३६३-३०८

२०. सरस्वतीदत्तवरप्रसादश्चक्रे सुवन्धु सुजनैकवन्धु ।
प्रत्यक्षरश्लेपमयप्रवन्धविन्यासवैदग्ध्यनिधिर्निबन्धम् ॥
—वासवदत्ता, प्रस्तावना श्लोक १३

२१. वर्णयुक्तिं दधानापि स्निग्धाञ्जनमनोहराम्।
नारिश्लेपघना श्लाघा कृतिर्लिपिरिवाश्नुते ॥
—तिलकमञ्जरी, प्रस्तावना श्लोक १६

२२. देखिये— (अ) वासवदत्ता, चौखम्वा प्रकाशन, सस्करण १९५४, पृ० ११०
(ब) तिलकमञ्जरी, नि० सा० प्र० पृ० १६६

२३. देखिये— (अ) वासवदत्ता, चौखम्वा प्रकाशन, सस्करण १९५४, पृ० २३९
(ब) तिलकमञ्जरी, नि० सा० प्र० पृ० ३९७

२४. देखिये— (अ) वासवदत्ता, पृ० २५६ (ब) तिलकमञ्जरी, पृ० ३८३

२५. केवलोऽपि स्फुरन् वाण. करोति विमदान् कवीन्।
किं पुन. क्लृप्तसन्धानपुलिन्ध्रकृतसन्निधि. ॥
कादम्वरीसहोदर्या सुधया वैवुधे हृदि।
हर्पाख्यायिकया ख्यातिं वाणोऽब्धिरिव लब्धवान् ॥
—तिलकमञ्जरी, प्रस्तावना श्लोक २६-३७

२६. तिलकमञ्जरी, पृ० ७-१२
२७. कादम्बरी, चौखम्भा प्रकाशन १९५६, पृ० १५१-१६५
२८. तिलकमञ्जरी, पृ० २१-२२
२९. हर्षचरित, चौखम्भा प्रकाशन, १९५८, पृ० १९९-२०२
३०. तिलकमञ्जरी, पृ० ४२-४५
३१ कादम्बरी, पृ० ५८०-५८१
३२. तिलकमञ्जरी, पृ० ७३-७८
३३ कादम्वरी, पृ० २००-२०२, २१३-२२० तथा २२६-२२७
३४. तिलकमञ्जरी, पृ० २०२-२०७
३५. कादम्बरी, पृ० ३६९-३७९
३६. (क) तिलकमञ्जरी, पृ० २५५-२५९
(ख) कादम्बरी, पृ० ३८७-४०९
३७. कादम्बरी, पृ० १४९
३८. तिलकमञ्जरी, पृ० ४०६-४१३
३९. वही, पृ० १४
४०. कादम्बरी, पृ० १५
४१. तिलकमञ्जरी, पृ० १५
४२. कादम्बरी, पृ० १९
४३. तिलकमञ्जरी, पृ० १७
४४. कादम्बरी, पृ० १८२
४५. तिलकमञ्जरी, पृ० १८
४६. कादम्बरी, पृ० १८०
४७. तिलकमञ्जरी, पृ० १९
४८. कादम्बरी, पृ० १८३
४९. तिलकमञ्जरी. पृ० २२
५०. हर्षचरित, चौखम्बा प्रकाशन १९५८, पृ० २०१-२०२
५१. तिलकमञ्जरी, पृ० २४
५२. कादम्बरी, पृ० ११२
५३. तिलकमञ्जरी, पृ० २५
५४. हर्षचरित, पृ० १७२-१७३
५५. तिलकमञ्जरी, पृ० २६
५६. हर्षचरित पृ० १७५
५७. तिलकमञ्जरी, पृ० २६
५८. हर्षचरित, पृ० १७४-१७५
५९. तिलकमञ्जरी, पृ० ३९
६०. हर्षचरित, पृ० ४६

६१. तिलकमञ्जरी, पृ० ३९
६२. कादम्बरी, पृ० १४१
६३. तिलकमञ्जरी, पृ० ३९
६४. कादम्बरी, पृ० १३६
६५. तिलकमञ्जरी, पृ० ४३-४४
६६. कादम्बरी, पृ० ५८०
६७. तिलकमञ्जरी, पृ० ४४
६८. कादम्बरी, पृ० ५८१
६९ ति[illegible]कमञ्जरी, पृ० ६५
७० कादम्बरी, पृ० २०९-२१०
७१. तिलकमञ्जरी, पृ० ६९
७२. कादम्बरी, पृ० ५०
७३. तिलकमञ्जरी, पृ० ७४
७४. कादम्बरी, पृ० २०१
७५. तिलकमञ्जरी, पृ० ७५
७६. कादम्बरी, पृ० २०३
७७. तिलकमञ्जरी, पृ० ७८
७८ कादम्बरी, पृ० २२६-२२७
७९. तिलकमञ्जरी, पृ० ८०
८०. कादम्बरी, पृ० २३
८१. तिलकमञ्जरी, पृ० १००
८२. कादम्बरी, पृ० २०
८३. तिलकमञ्जरी, पृ० १४८-१४९
८४. कादम्बरी, पृ० ३६३
८५. तिलकमञ्जरी, पृ० २०५
८६. कादम्बरी, पृ० ३७५
८७. तिलकमञ्जरी, पृ० २०६
८८. कादम्बरी, पृ० ३६९
८९. तिलकमञ्जरी, पृ० २१३-२१४
९०. हर्षचरित, पृ० ३६
९१. तिलकमञ्जरी, पृ० २५५
९२. कादम्बरी, पृ० ४२३-४२४
९३. तिलकमञ्जरी, पृ० २५८-२५९
९४. कादम्बरी, पृ० ४०७-४०८
९५. त्रयोऽग्नयस्त्रयो देवास्त्रयो वेदास्त्रयो गुणा ।
त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च त्रिपु लोकेषु विश्रुताः ॥ —राजशेखरकृत सुभाषितहारावली

टिप्पणी—दण्डी की ग्रन्थत्रयी के अन्तर्गत काव्यादर्श और अवन्तिसुन्दरी—इन दो ग्रन्थो—को सभी लोग स्वीकार करते है। पर दशकुमारचरित को अवन्तिसुन्दरी-कथा का ही दण्डी द्वारा बाद मे लिखा गया सरलीकृत सस्करण मानकर इसे उनके तीसरे ग्रन्थ के रूप मे अब स्वीकार नही किया जाता। क्योकि जबसे भोजराजकृत शृङ्गारप्रकाश मे दण्डिकृत 'दण्डिद्विसन्धान' नामक श्लिष्ट पद्यात्मक महाकाव्य का उल्लेख मिला है तब से विद्वानो ने उसे ही उनके तीसरे ग्रन्थ के रूप मे मानने की धारणा बनाना शुरू कर दिया है।

९६ अवन्तिसुन्दरीकथा, अनन्तशयन त्रिवेन्द्रम् प्रकाशन, १९५४, पृ० १-३
९७. तिलकमञ्जरी, ० १-७
९८. अवन्तिसुन्दरीकथा, पृ० ४-७ तथा १८-२०
९९. तिलकमञ्जरी, पृ० ७-१२ तथा २५९-२६१
१००. अवन्तिसुन्दरीकथा, पृ० २१-३७
१०१. तिलकमञ्जरी, पृ० १२-२०
१०२. अवन्तिसुन्दरीकथा, पृ० २३-२४
१०३. तिलकमञ्जरी, पृ० २१-२२
१०४. दशकुमारचरित, चौखम्भा प्रकाशन, १९४८, पृ० ९७-९९
१०५. तिलकमञ्जरी, पृ० २९७-२९८
१०६. अवन्तिसुन्दरीकथा, अ० श० त्रिवेन्द्रम् प्रकाशन, १९५४, पृ० ४
१०७. तिलकमञ्जरी, पृ० ७
१०८. अवन्तिसुन्दरीकथा, प्रकाशन वही, पृ० ४
१०९ तिलकमञ्जरीकथा, पृ० ७
११०. अवन्तिसुन्दरीकथा, प्रकाशन वही, पृ० ४
१११. तिलकमञ्जरीकथा, पृ० ८
११२. अवन्तिसुन्दरीकथा, प्रकाशन वही, पृ०४
११३. तिलकमञ्जरीकथा, पृ० ९
११४ अवन्तिसुन्दरीकथा, प्रकाशन वही, पृ० ५
११५. तिलकमञ्जरीकथा, पृ० १०६-१०७

द्वितीय सो नं

परवर्त्ती ग   ाहित्यकारों पर प्रभाव

इस तथ्य से इनकार नही किया जा सकता कि एक कुशल साहित्यकार अपनी परिकल्पना या शैली के माध्यम से अपने परवर्त्ती साहित्यकारो को साहित्यसर्जना के लिए या तो परिकल्पनात्मक या फिर शैलीस्वरूपात्मक दिशानिर्देश कर ही जाता है। साहित्यजगत् के लिए यही उसका साहित्यिक प्रदान वन जाता है। हमारे आलोच्य महाकवि धनपाल ने भी तिलकमञ्जरीकथा लिखकर अपने परवर्त्ती समानकर्मा गद्य-साहित्यकारो को काफी प्रभावित किया है।

यह सच है कि वाणभट्ट की कादम्बरी का नशा सस्कृत साहित्य के केवल गद्य-काव्यकारो पर ही नही, और वलिक चम्पू काव्यकारो पर भी सैकडो वर्षो तक छाया रहा है; और यही कारण है कि दण्डी की अवन्तिकथा, सोड्ढल की उदयसुन्दरीकथा तथा वादीभसिंह की गद्यचिन्तामणि जैसी कथाकृतियो पर ही नही, वलिक त्रिविक्रमभट्ट के नलचम्पू और सोमदेव के यशस्तिलकचम्पू जैसे चम्पूकाव्यो पर भी वाणभट्ट की कादम्वरी का काफी प्रभाव दिखाई देता है। स्वय हमारे धनपाल भी कादम्वरीकथा से कम प्रभावित नही है। लेकिन हम देखते है कि इन्होने अपनी तिलकमञ्जरीकथा के कथानक का ताना-बाना कुछ इस प्रकार से बुना कि कुछ दिनो के वाद इनके परवर्त्ती गद्यसाहित्यकारो की आँखे वाण की कादम्बरी तक ही सीमित न रहकर इनकी तिलकमञ्जरी पर भी जमने लगी, और उनके रसास्वाद का विषय कादम्वरी की सहधर्मिणी तिलकमञ्जरी भी हो गई। फलस्वरूप उन (परवर्त्ती गद्यकारो) की कृतियो मे केवल वाण का ही नही, अपितु धनपाल का भी प्रतिविम्व झलकने लगा।

चूँकि उदयसुन्दरीकथाकार सोड्ढल और गद्यचिन्तामणिकार वादीभसिंह पर वाणभट्ट की तुलना मे धनपाल का प्रभाव नगण्य-सा दिखाई देता है (इसका कारण मै यह समझता हूँ कि वह युग कादम्वरी का युग रहा होगा, जिसमे सद्योलिखित तिलकमञ्जरी-कथा की पूर्ण प्रतिष्ठा नही हो पाई होगी जो कि वाद मे चलकर हुई।), इसीलिए मैंने भी इस 'साहित्यिकप्रदान' के सन्दर्भ मे तिलकमञ्जरीकथा के साथ उदयसुन्दरीकथा और गद्यचिन्तामणि की तुलना करना फलहीन समझकर केवल उन्ही साहित्यकारो की कृतियो का विश्लेपण प्रस्तुत किया है जिनपर धनपाल का प्रभाव स्पष्टतया प्रतीत होता है।

इस प्रसग मे सर्वप्रथम उन साहित्यकारो की चर्चा करना उचित होगा जिन्होने महाकवि धनपाल की तिलकमञ्जरीकथा के सम्पूर्ण कथानक को ही अपनी कृतियो का

वर्ण्य विषय बनाया है। ईशवीय सन् १९१९ मे हेमचन्द्र सभा पाटन, गुजरात से पण्डित वीरचन्द्र और प्रभुदास नामक दो विद्वानो ने पण्डित लक्ष्मीधर विरचित 'तिलकमञ्जरी-कथासार' नामक एक सक्षेप-ग्रन्थ का सम्पादन किया है। इसकी भूमिका मे उनका कहना है कि महाकवि धनपाल विरचित तिलकमञ्जरी के साराश को लेकर 'सक्षेप-ग्रन्थो' (Epitome)का निर्माण करने वाले तीन विद्वान् पाए जाते है। उनके पहले है—पल्लीपाल धनपाल, दूसरे है पण्डित लक्ष्मीधर, और तीसरे है श्रीपद्मसागर।[१] लीजिए, अब इन तीनो ही साहित्यकारो पर स्पष्टतया दिखाई देने वाले महाकवि धनपाल के साहित्यिक प्रभाव का सक्षिप्त दिग्दर्शन यहाँ कालानुक्रम से प्रस्तुत किया जा रहा है।

पल्लीपाल धनपाल पर प्रभाव

सन्तोष का विषय है कि पल्लीपाल धनपाल ने अपना सक्षिप्त-सा परिचय अपनी कृति 'तिलकमञ्जरीसार' के अन्त मे दे दिया है। तदनुसार यह अणहिल्लपुर (पाटन) नामक नगर, जो गुजरात प्रान्त मे पडता है, के निवासी थे। इनका परिवार 'पल्लीवाल परिवार' के नाम से सुविख्यात था। धनपाल के तीन भाई और थे—एक बडा और दो छोटे। बडे का नाम अनन्तपाल और छोटो का क्रम से रत्नपाल और गुणपाल था। इनके पिता का नाम आमन था, जो बहुत बडे विद्वान् और कवि थे। पल्लीपाल धनपाल ने अपने पिता की ही आज्ञा से महाकवि धनपाल की 'तिलकमञ्जरी' के कथानक को ही सक्षिप्त करके प्रमुखतया अनुष्टुप् छन्द मे 'तिलकमञ्जरीसार' नामक पद्यात्मक कथा-काव्य का निर्माण किया है, और जिसकी समाप्ति, लेखक के ही शब्दो मे, विक्रम सवत् १२६१ कार्तिक शुक्लपक्षीया अष्टमी गुरुवार को हुई थी।[२]

पल्लीपाल धनपाल ने अपनी इस 'तिलकमञ्जरीसार' नामक कृति मे महाकवि धनपालकृत 'तिलकमञ्जरी' के कथानक को तो पूरा का पूरा निस्सन्देह अपनाया ही है, पर इसके साथ ही साथ उन्होने अनेक स्थलो पर धनपाल की भाषा और भाव का भी अनुहरण कर लिया है। हम अपने शोधग्रन्थ के कलेवर की वृद्धि के भय से उनके सभी अनुहरणो को तो पाठको के समक्ष रख नही सकते, पर कुछ स्थलो को प्रस्तुत करने का लोभ अवश्य कर रहे है, जो इस प्रकार है—

(क) तिल ञ्जरीसार

सकज्जलकराम्भोजव्यञ्जिताश्रुप्रमार्जना
इय च लक्ष्यते सद्यो रोदनाद् विरतेव किम्?॥[३]

तिलकमञ्जरी

……इयमपि च ··पाणितलसक्रान्तकज्जलकलङ्कपिशुनिताश्रुप्रमार्जना सद्यो विरतेव रोदनाद् विज्ञायते।[४]

(ख) तिल ञ्जरीसार

इय च प्रमपात्र मे कलत्र मदिरावती।[५]

तिलकमञ्जरी

इयं .....मदिरावतीनाम प्रेमपात्रं मे कलत्रम् ।[6]

(ग) तिलकमञ्जरीसार

षष्ठीजागरणे जाते प्राप्तेऽथ दशमे दिने ।[7]

ति मञ्जरी

अतिक्रान्ते च षष्ठीजागरे समागते च दशमेऽह्नि ।[8]

(घ) तिलकमञ्जरी र

रणे तेन कृतः कश्चिदुपकारश्चमूपते ?
सोऽपि विज्ञापयामास देव तेन स कश्चन ।
कृतोऽयं न करोत्यन्य श्रूयतां कथयामि तत् ॥[9]

तिलकमञ्जरी

"......क्वचित्कृतस्तेन कश्चिदुपकार सङ्गरेषु सेनापते ......। स जगाद—देव ! स कृतोऽयं न कश्चिदन्य करोति। आकर्णयतु देव ।[10]

(ङ) ति मञ्जरीसार

प्रभाव. कोऽपि सोऽन्यस्य कोऽहं तव पराजये ।[11]

तिलकमञ्जरी

कोऽहं तव पराजये......स तु प्रभावोऽन्यस्य कस्यचित् ।[12]

(च) तिलकमञ्जरीसार

... ...किम् ।
इद समेऽपि स्खलन तदल सम्भ्रमेण ते ।
आत्मान सवृणु क्षोभगलद्वक्षोजवाससम् ॥[13]

तिलकमञ्जरी

......किमिद समेऽपि स्खलनम् ? अलममुना सम्भ्रमेण । सवृणु क्षोभ-विगलितस्तनांशुकम् ।[14]

(छ) तिलकमञ्जरीसार

द्विप. सुप्त इव श्रान्त इव... ..।[15]

तिलकमञ्जरी

वारण' श्रान्त इव सुप्त इव .....।[16]

(ज) तिल ञ्जरीसार

वत्से ! को जनकस्तस्यास्तात ! कश्चन तापस. ।[17]

तिलकमञ्जरी

वत्से ! कस्तस्या पिता ? तात ! तापस कश्चित् ।[18]

(झ) तिलकमञ्जरीसार

देहस्पर्शश्च कस्यायममृतस्यन्दसुन्दर. ।[19]

तिलकमञ्जरी

कस्य चायममृतस्यन्दसुन्दरो देहस्पर्श ।[२०]

(ञ) **तिलकमञ्जरीसार**

ततो मदेन मुकुला विस्मयेन विकस्वराम् ।
प्रेरितामनुरागेण व्रीडया विषमीकृताम् ॥
सा मे वपुषि पीयूषवृष्टि दृष्टि न्यवेशयत् ।[२१]

तिलकमञ्जरी

मुकुलिता मदेन, विस्तारिता विस्मयेन, प्रेरितामभिलाषेण, विषमिता व्रीडया, वृष्टिमिव अमृतस्य, ···· वपुषि मे दृष्टिमसृजत् ।[२२]

(ट) **तिलकमञ्जरीसार**

गृहीतोदारशृङ्गार· स्थित्वा प्रारूढसख्यया ।
मृगाङ्कलेखया साकमक्षक्रीडापर क्षणम् ॥[२३]

तिलकमञ्जरी

आत्तचतुरोदारनेपथ्य ·········अकृत्रिमारूढसख्या······मृगाङ्कलेखया साकमक्षक्रीडाविनोदेन क्षणमात्रमस्थाम् ।[२४]

(ठ) **तिलकमञ्जरीसार**

अङ्गराजस्तु मुषित इवाविष्ट इव क्षणात् ।
मूर्च्छां क्षणाच्च चैतन्यमावहन् मौनमाश्रयत् ॥[२५]

तिलकमञ्जरी

स तु ·····मुषित इव, केनाप्यावेशित इव ·····क्षण मूर्च्छामनुभवन् क्षण चेतना प्रतिपद्यमान तूष्णीक एवातिष्ठत् ।[२६]

मैं समझता हूँ कि ऊपर दिए हुए इन कुछ उदाहरणो को देखने से यह साफ जाहिर हो जाएगा कि पल्लीपाल धनपाल ने कही-कही तो महाकवि धनपाल की पूरी की पूरी शब्दावली ही उतार कर रख दी है। उन्होने अपने इस साहित्यिक आदान को छिपाने की जरा भी कोशिश नही की है, बल्कि आरम्भ मे ही यह बात बडी सचाई के साथ स्वय भी स्पष्ट कर दी है कि वह 'तिलकमञ्जरी' की कथावस्तु को लगभग उसी 'अन्दाज' मे पद्यबद्ध करने जा रहे है। महाकवि धनपाल की तिलकमञ्जरी का सभी प्रकार से 'सार' ग्रहण करने मे वह एक कुशल भ्रमर के समान थे।[२७]

पण्डित लक्ष्मीधर पर प्रभाव

यह भी गुजराती थे और पाटन शहर के ही रहने वाले थे। यह जैनधर्म की श्वेताम्बर शाखा के अनुयायी थे। पल्लीपाल धनपाल की भाँति इन्होने भी महाकवि धनपाल की 'तिलकमञ्जरी' के कथानक का 'तिलकमञ्जरीकथासार' नाम से सक्षेप मे पद्यानुवाद किया है।[२८] इन्होने भी तिलकमञ्जरी की कथावस्तु के साथ ही साथ कही-कही उसकी भाषा और भावो को अपनाने मे सङ्कोच नही किया है। उनके इस

ग्रन्थ के रचनाकाल की समाप्ति का समय विक्रम सवत् १२८१ है, जो ग्रन्थ के अन्त मे लिखा मिलता है।[२६]

अब मैं यहाँ लक्ष्मीधर विरचित तिलकमञ्जरीकथासार के कुछ ऐसे उद्धरण भी प्रस्तुत किए देता हूँ जिन पर महाकवि धनपाल की तिलकमञ्जरी का भाषात्मक और भावात्मक प्रभाव परिलक्षित होता है; लीजिए, देखिए—

(क) तिलकमञ्जरीकथासार

अंगुलीयमिद प्राप्य वज्रायुधचमूपतेः।
वाच्यो विजयवेगाख्यस्तत्सखश्च यथा त्वया।
निशायुद्धेपु सरोधे धार्यं वज्रायुधान्तिके॥[30]

ति कमञ्जरी

अयमपि वालारुणाख्यो दिव्यांगुलीयकालङ्कार.······वज्रायुधस्य प्रस्थापनीयः वक्तव्यश्च तत्प्रधानप्रणयी विजयवेगः—एष यामिनीयुद्धेषु विषमशत्रुसैन्यसन्निरुद्धस्य वज्रायुधस्य पाणिप्रणयिता त्वया नेतव्य ।[31]

(ख) ति कमञ्जरीकथासार

षष्ठीजागरणे वृत्ते संप्राप्ते दशमेऽहनि।[32]

ति कमञ्जरी

अतिक्रान्ते च षष्ठीजागरे समागते च दशमेऽह्नि।[33]

(ग) ति कमञ्जरीकथासार

उपनीत मयाप्यद्य रत्नाध्यक्षमहोदधे ।[34]

तिलकमञ्जरी

मयाप्यद्य··· ··अखिलरत्नकोशाध्यक्षस्य महोदधे ······समर्पितम्।[35]

(घ) तिलकमञ्जरीकथासार

इत्युक्त्वा स्वस्य सस्मार प्रागप्रागल्भ्यचेष्टितम्।[36]

ति कमञ्जरी

इत्युक्तवति मयि सस्मृत्य तत्पुरावृत्तमात्मीयमप्रागल्भ्यविलसित······ सहसैवोदतिष्ठत्।[37]

(ङ) तिलकम रीकथासार

प्रियगुसुन्दरी नाम तत्प्रियाऽथ विषादिनी॥
प्रवृत्ति वेदितु तस्य जम्बूद्वीपमुपागमत्।[38]

तिलकमञ्जरी

प्रिया प्रियगुसुन्दरी नाम देवी ·····वेदितुमुदन्तमभिमतस्य······जम्बूद्वीपमागच्छत्।[39]

इन उपर्युक्त उद्धरणो से और तिलकमञ्जरीकथासार की कथावस्तु की सयोजना को देखने मे यह तथ्य पुष्ट हो जाता है कि पण्डित लक्ष्मीधर पर भी महाकवि धनपाल की साहित्यिक प्रतिभा का पूरा-पूरा प्रभाव पड़ा है।

पद्मसागर पर प्रभाव

प्रो० एच० डी० वेलकर ने अपने जैनरत्नकोश[४०] नामक ग्रन्थ मे 'तिलकमञ्जरी-के नाम से पद्मसागरकृत एक काव्यग्रन्थ का उल्लेख किया है। उन्होने इस ग्रन्थ का नाम इसकी कुछ पाण्डुलिपियो मे उपलब्ध होने वाली पुष्पिका (Colophon) के आधार पर निर्धारित किया है,[४१] और इसके लेखक का नाम निर्धारित करने मे उन्हे भण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च-इस्टीट्यूट पूना मे सुरक्षित इस ग्रन्थ की एक हस्तलिपि के पत्र सख्या ६७ पर लिखे हुए अन्तिम श्लोक—

"वाचकाग्रेसरश्रीमद्धर्मसागरशिष्यकैः।
निर्मितोऽयं कथाग्रन्थः पण्डितैः पद्मसागरैः॥—

से सहायता प्राप्त हुई है। लेकिन प्रो० नारायणमणिलाल कसारा[४२] ने इस ग्रन्थ के श्लोक[४३] के आधार पर इसका नाम 'तिलकमञ्जरीकथोद्धार' ही रखना अधिक उचित समझा है। उन्होने इस ग्रन्थ के लेखक का भी नाम, पद्मसागर न मानकर, चन्द्रप्रभसूरि मानने का सुझाव दिया है। इस सन्दर्भ मे उनका कहना है कि आत्माराम जैन ज्ञानमन्दिर बडौदा के कान्तिविजयी भण्डार मे उन्हे ताडपत्रो पर लिखी हुई इस ग्रन्थ की जो एक पुरानी पाण्डुलिपि मिली है उसमे वह श्लोक नही पाया जाता है जिसके आधार पर प्रो० वेलङ्कर ने पद्मसागर को इसका रचयिता माना है। इस पाण्डुलिपि की पुष्पिका को भी रगडकर मिटाया गया है, लेकिन इसके बावजूद भी प्रयत्न करने पर उसमे चन्द्रप्रभसूरि नाम पढा जा सकता है। इससे पद्मसागर के कर्त्तृत्व मे सन्देह उत्पन्न हो जाता है। उधर कागज पर लिखी हुई मेनुस्क्रिप्ट मे पद्मसागर के कर्त्तृत्व को सूचित करने वाला जो श्लोक[४४] है वह अपनी जगह पर—पुष्पिका के ठीक ऊपर न होकर पृष्ठ के ऊपरी हाशिये मे लिखा हुआ है। इतना ही नही, बल्कि इस श्लोक का हेण्डराइटिंग भी मेनु-स्क्रिप्ट के हेण्डराइटिंग से कुछ भिन्न नजर आता है। इन सब कारणो को देखते हुए ऐसा लगता है कि यह श्लोक बाद मे जोडा गया है।[४५]

वास्तव मे इस ग्रन्थ के नाम और इसके लेखक के नाम की गवेषणा करना तो भविष्य मे इसके सम्पादक का ही परमावश्यक कर्त्तव्य बनेगा। इसलिए मुझे इस समय अपनी लेखनी को इस ग्रन्थ के केवल प्रतिपाद्य विषय, भाषा और भावो तक ही सीमित रखना है। यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है। इसके रचनाकाल की सम्भावना ईसा की तेरहवी शताब्दी मे की जाती है।[४६] इसकी भी कथावस्तु की सयोजना महाकवि धनपाल की 'तिलकमञ्जरी' के ही कथानक की सयोजना पर आधारित है।

तिलकमञ्जरी के अन्य सक्षेपकारो की भाँति इस लेखक ने भी अनुष्टुप् छन्द का आश्रय लिया है। इसमे कुल मिलाकर १६६७ श्लोक पाए जाते है। लेकिन लेखक ने इसमे यत्र-तत्र अपनी भी स्वतन्त्र कल्पनाशील प्रतिभा का प्रयोग कर दिया है, जो कही-कही अनुचित भी हो गया है। उसके उदाहरण अनावश्यकता के कारण यहाँ प्रस्तुत नही किए जा रहे है। भाषा और भाव की दृष्टि से भी इस ग्रन्थ के लेखक पर महाकवि धनपाल की तिलकमञ्जरी का प्रभाव पडता है। लीजिए, एक नमूना देखिए—

अदत्तां गुरुभिर्वोढुं वाञ्छंस्त्वमचिरेण ।
गन्तासि वृत्तगहने तत्र पार्श्वस्थितानलः ।।[४७]
गुरुभिरदत्तां वोढुं वाञ्छन्मामक्रमात्त्वमचिरेण ।
स्थातासि पत्रपादपगहने तत्रान्तिकस्थाग्निः ।।[४८]

उपर्युक्त पद्ययुगल के भाषा साम्य को देखकर इस ग्रन्थ के लेखक पर पड़े हुए महाकवि धनपाल के साहित्यिक प्रभाव की पुष्टि हो जाती है।

कृष्णमाचार्य पर प्रभाव

यह मद्रास के पास श्रीरङ्गनामक नगर के रहने वाले थे। इनकी जीवनलीला का समय १८६६ ई० से १९२४ ई० तक रहा है। इनके गद्यकाव्यसर्जनाकौशल पर रीझकर विद्वानो ने इन्हे अभिनवबाण की प्रशस्त उपाधि से विभूषित किया था। यह मद्रास मे 'सस्कृतस्टडीज' के अध्यक्ष थे। यह 'सहृदय' नामक सस्कृत मासिकपत्रिका का भी प्रकाशन किया करते थे; उसमे इनकी रचनाएँ भी प्रकाशित होती रहती थी।

इन्होने भी महाकवि धनपाल की 'तिलकमञ्जरी' के कथासूत्र के आधार पर 'तिलकमञ्जरीसग्रह' नामक एक प्रशस्त गद्यकथा की सर्जना की है। 'तिलकमञ्जरी' के अन्य सक्षेपकारो की अपेक्षा इनमे इतना अन्तर पाया जाता है कि इन्होने इस कार्य के लिए गद्य को ही अपना माध्यम बनाया है, जबकि पल्लीपाल धनपाल, लक्ष्मीधर और पद्मसागर ने पद्य को। इनका यह ग्रन्थ इनकी 'सहृदय' नामक सस्कृत मासिकपत्रिका मे तो समय-समय पर क्रमश. प्रकाशित हुआ ही है, लेकिन यह पुस्तक के आकार मे अलग से भी उपलब्ध है।[४९] उन्होने इस ग्रन्थ मे महाकवि धनपाल की तिलकमञ्जरीकथा का कथानक तो आहृत किया ही है, साथ ही साथ यत्र-तत्र भाषात्मक आहरण भी कर लिया है। लेकिन इतना सब कुछ होने के बावजूद भी उसमे इनकी अपनी भी प्रतिभा काफी निखर कर सामने आई है, जिससे इनके उस ग्रन्थ मे परायापन होने के बावजूद भी अपनापन कायम है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाकवि धनपाल की तिलकमञ्जरीकथा का उनके चार परवर्त्ती कथाकारो—पल्लीपाल धनपाल, लक्ष्मीधर, पद्मसागर और कृष्णमाचार्य—पर जबरदस्त प्रभाव पड़ा है।

अब हम उन कतिपय गद्यकथाकारो की चर्चा का श्रीगणेश करते है जिन्होने अपनी रचनाओ का विषय तो अपनी स्वतन्त्र कल्पना से प्रसूत किया है, किन्तु उनके प्रस्तुतीकरण मे उनकी जागरूक आँखे केवल बाणभट्ट की कादम्बरी की ही ओर नही, बल्कि धनपाल की तिलकमञ्जरी की ओर भी लगी हुई प्रतीत होती है। इस दृष्टि से हम इस सन्दर्भ मे मन्दारमञ्जरीकार विश्वेश्वरपाण्डेय, शिवराजविजयकार अम्बिकादत्त व्यास, चन्द्रप्रभाचरितकार शङ्करलाल और चन्द्रमहीपतिकार श्रीनिवास—चार कथा (काव्य)-कारों की कथाकृतियो मे झलकते हुए तिलकमञ्जरीकार धनपाल के साहित्यिक प्रभाव (प्रदान) का विश्लेषण करेंगे।

विश्वेश्वर पाण्डेय की मन्दारमञ्जरी पर प्रभाव

विश्वेश्वर पाण्डेय सस्कृत साहित्य के प्रौढप्रतिभाशाली साहित्यकार हैं। इनका जन्म ईसा की अठारहवी शताब्दी के पूर्वार्ध मे उत्तर प्रदेश के अलमोडा जिले के पाटिया नामक गाँव मे हुआ था। इनके पिता का नाम लक्ष्मीधर पाण्डेय था। इन्होने वैयाकरण-सिद्धान्त सुधा-निधि, अलङ्कारकौस्तुभ, अलङ्कारप्रदीप, तर्ककुतूहल, कवीन्द्रकर्णाभरण आदि अनेक प्रौढ और शास्त्रीय ग्रन्थो के अलावा मन्दारमञ्जरी नामक एक उत्कृष्ट कथा-काव्य का भी निर्माण किया है। लेकिन खेद है कि वाणभट्ट के समान यह भी इस कथा को पूरा नही लिख पाए हैं, क्योकि विधाता ने इन्हे पृथ्वी पर ज्यादा रहने ही नही दिया। बाद मे जिस प्रकार बाणभट्ट की कादम्बरीकथा को उनके पुत्र पुलिन्दभट्ट ने पूरा किया, उसी प्रकार विश्वेश्वर पाण्डेय की मन्दारमञ्जरीकथा को भी उनके किसी शिष्य ने पूरा किया है।[५०]

खेद का विषय है कि अभी तक सम्पूर्ण मन्दारमञ्जरीकथा छप नही पाई है। पर जितनी (पूर्वभागस्वरूपा) छपी है उतनी ही उसकी भाषात्मक, परिकल्पनात्मक, अलङ्कारात्मक एव रसात्मक उत्कृष्टता सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है। उसे पढकर प्रत्येक व्यक्ति विश्वेश्वर पाण्डेय को उत्कृष्ट गद्यकाव्यकारो की कोटि मे गिने विना रह ही नही सकता।

हालाँकि विश्वेश्वरपाण्डेय काव्यरचना मे मौलिकता पर विशेष वल देते हैं। उन्हे यह बात कतई पसन्द नही है कि अन्य साहित्यकारो की रचनाओ से कुछ भावावली या शब्दावली से ले-लिवाकर कुछ लिखा जाए। उनकी दृष्टि मे ऐसा करना माँगकर गहने पहिनने के समान है, जो अच्छा नही माना जा सकता।[५१]

उनके इन विचारो से साफ जाहिर होता है कि वह साहित्यिक आदान के विरोधी है। उन्होने अपनी इस विचारधारा का (मन्दारमञ्जरी मे भाषा एव भावो की मौलिकता को पाठकों के सामने रखकर) निर्वाह भी खूब करना चाहा है। लेकिन इतना सब कुछ होने के बाबजूद भी वह केवल बाणभट्ट से ही नही, बल्कि हमारे आलोच्य महाकवि धनपाल से भी काफी प्रभावित हुए है। फलस्वरूप उनकी मन्दारमञ्जरीकथा मे धनपाल की तिलकमञ्जरीकथा से कही भावात्मक तो कही शब्दात्मक, और कही-कही परिकल्पनात्मक भी साम्य पाया जाता है, जिसका नमूना मैं नीचे दे रहा हूँ—

(क) धनपाल की तिलकमञ्जरीकथा मे सम्राट् मेघवाहन पुत्र-प्राप्ति के लिए जिस प्रकार व्याकुल दिखाई देते है,[५२] ठीक उसी प्रकार विश्वेश्वरपाण्डेय की मन्दारमञ्जरीकथा मे भी राजा राजशेखर पुत्र-प्राप्ति के लिए चिन्तित नजर आते है।[५३] साथ ही सन्तानसूचक सपने भी दोनो ही देखते है।[५४]

(ख) धनपाल की तरह विश्वेश्वर ने भी अपने कथानक के पिता को देवराज इन्द्र का सखा वताया है।

(ग) धनपाल ने शुक को गन्धर्वक के रूप मे परिणत होता हुआ चित्रित किया है।[५५] इसी आधार पर विश्वेश्वर पाण्डेय ने एक राक्षस द्वारा अपहृत की जाती हुई कन्या का

मुनिकुमार के रूप मे परिणत हो जाना परिकल्पित किया है।[५६]

(घ) मन्दारमञ्जरीकथा मे मदयन्ती के आश्रम में आई हुई कन्याओ, और उनके बीच मे प्रकट हुई मन्दारमञ्जरी का जो वर्णन[५७] प्रस्तुत किया है, उस पर निश्चय ही तिलकमञ्जरीकथा मे दिव्यमङ्गलगीतध्वनि का अनुसरण करते हुए समुद्रीय यात्रा के प्रसग मे समरकेतु द्वारा अकस्मात् देखी गई कन्याओ के वर्णन का, तथा उनके बीच मे प्रकट हुई मलयसुन्दरी के वर्णन का पूरा-पूरा प्रभाव परिलक्षित होता है।[५८]

अब मैं आपके समक्ष मन्दारमञ्जरी के कुछ ऐसे स्थल प्रस्तुत कर रहा हूँ जहाँ तिलकमञ्जरी का भावात्मक एव भाषात्मक प्रभाव परिलक्षित होता है। लीजिए, देखिए—

(च) **मन्दारमञ्जरी**

"·········जलधिनेव लोकावलिकल्लोलकृतकोलाहलेन आपणपथेन भूषितम्।"[५९]

तिल ञ्जरी

"······विधृततदसाधर्म्यहर्म्यावलीधृतोभयविभागैः अजिरपुञ्जितप्राज्य-रत्नप्रभाजालजलनिर्भरै अनवरतवहत्समुद्रयायिजननिवहकलकलाक्रान्तदिक्चक्रै.······सीमन्तिता विशालायतै विपणिपथै · ····।"[६०]

(छ) **मन्दारमञ्जरी**

"······तर्जितपुण्डरीका जनहृदयप्रम्लोचां दृष्टिं दधानाभि···श्रीजित-कमलालयाभि.··· · ···तिरस्कृतरम्भा ऋतुस्थलायासप्राप्यामुरुतटी बिभ्रतीभि. वारमुख्याभिरध्युषितम्······दिवमप्युपाहसत्······।"[६१]

तिल ञ्जरी

"···कृतपुण्यजनोचिताभिः पादशोभयापि न्यक्कृतपद्माभिः, उरुश्रियापि लघूकृतरम्भास्तम्भाभि.······ ··विलासिनीभिर्वितीर्णभुवनजिगीषुकुसुमसायक-सहायका······।"[६२]

(ज) **मन्दारमञ्जरी**

" ·····यागस्वाध्यायादिकर्मसाध्य-ऋणद्वयापनोद इति धर्मशास्त्रविदो-ऽभ्युपगच्छन्ति, स तु ममापि प्रायेण सञ्जात एव। यत्तु पित्र्य तृतीयमृणम्, तत्पुत्र-मात्रपरिहार्यमितितद्बद्धोऽह सकलातिशायिनीमपि सम्पदमिमा न बहुमन्ये ··।"[६३]

तिलकमञ्जरी

"······राजन्! अध्वरस्वाध्यायविधानादानृण्य गतोऽसि, न पितॄणामपि गच्छ इति याचितप्रसूतेरिव······देवर्षिभि,··· ··'विद्वन्! किमपरैस्त्रातैः? आत्मान त्रायस्व पुन्नाम्नो नरकात्' इति शासितस्येव श्रुतिधर्मेण मर्मदाही मुर्मुर इव प्रादुरभवदस्य चेतसि चिन्तासज्वर.। येन······गुणानुरक्तयापि राजलक्ष्म्या ······नारमत।"[६४]

(झ) **मन्दारमञ्जरी**

अथ·····प्राप्ते ····जनने मासि शङ्कुयन्त्रादिभि.········उपायैरा-

कलिताया······गणकगणे ······गृहीते लग्ने सार्वभौमाविर्भावयोग्याया वेलायाम् ···औत्सुक्याकलितेषु सकलान्त.पुरलोकेपु···महादेवी मलयवती ··सुतमसूत।[६५]

तिलकमञ्जरी

पूर्णेषु च क्रमेण किञ्चित्सातिरेकेपु नवसु मासेपु सारतिथिवारकरणाश्रितेऽतिश्रेयस्यहनि पुण्ये मुहूर्त्ते यथास्वमुच्चस्थानस्थितै······शुभग्रहैरवलोकिते विशुद्धे लग्ने लग्नचारुतादर्शनजातपरितोषायामिव ऊर्ध्वमुख्या होरायाम्······ अजनयत्तनयम्।[६६]

(ञ) **मन्दारमञ्जरी**

"···सौरभेयीरपरिमेयास्तपनीय चागणनीय श्रोत्रियेभ्यो विश्राण्य···।"[६७]

तिलकमञ्जरी

"······दत्त्वा समारोपिताभरणा सवत्सा सहस्रशो गा. सुवर्णं च प्रचुरमारम्भनि स्पृहेम्यो विप्रेभ्य ··· ·।"[६८]

(ट) **मन्दारमञ्जरी**

"किञ्च तेषा समविषमावगाहिनी बुद्धिरेव विजय जनयति, मनीपितविलासमात्रमनीकिन्य । सर्वदा सर्वदिग्व्यापी गुणगण एव जनान् वशयति, प्रपञ्च एव परिच्छिन्नवृत्ति ।······लोकलोचनातिलङ्घनजङ्घालस्तेजोविशेप एव जनानुपगन्तु न ददाति, साधनसम्पत्तिमात्र प्रतीहारा । अवदाततममौदार्यमेव जगत्प्राणजनकम्, बालवुद्धिव्यामोहनमात्र बालव्यजनानि ।······दिगन्तरव्यापी समुत्सृष्टगन्धसिन्धुरमधुकरध्वनिरेव यशो विशदयति, स्वजीविकामात्राभिनन्दिनो वन्दिन । ····· सर्वकालिक्यसद्वृत्तिनिवृत्तिरेव आस्तिकता गमयति, सवादापेक्षा यागादिक्रिया ··· ··।"[६९]

तिलकमञ्जरी

"यस्य च प्रताप एव वसुधामसाधयत्, परिकर एव सैन्यनायका । महिमैव राजकमनामयत, नीति प्रतीहारा ।·· आकार एव प्रभुता शशस, परिच्छदश्छत्रचामरग्राहा ।·· ·· धार्मिकतैव दुरितानि प्रतिचकार, प्रपञ्च पुरोधस. । प्रज्ञैव मन्त्रान् निश्चिकाय, शोभा मन्त्रिण । आभिगामुकगुणग्राम एव परपक्षमाचकर्ष, रूढिर्गूढपुरुपा । त्याग एव दिक्षु कीर्तिमगमयत्, विभवो बन्दिपुत्रा ।"[७०]

(ठ) **मन्दरामञ्जरी**

"तपस्विनीभिरिव तिमिरप्रायाभि , बलाहकावलिभिरिव चपलान्तर्भावयोग्याभि., तमोवल्लिभिरिव अपिहितदिगन्तराभि , धूमावलिभिरिव दर्शनानुरूपाभि , · · ·प्रलयान्धकारावलिभिरिव अनासादिततरणितेजोऽभिभवाभि · · ····तमालवीथीभिर्ग्रथितपर्यन्तम्, प्रतिबिम्बच्छलेन तलभागगवेषणार्थिभिरिव वेतसतरुभिरुपशोभितोपान्तम्······।"[७१]

तिलकमञ्जरी

"निरन्तराभि. तरुणकुन्तलीकुन्तलकलापकान्तिभि , ध्वान्तमालाभिरिव रसातलोल्लासिताभि , उल्लसन्मयूरकेकारवमुखराभि , शिखरदेशविश्रान्तमत्तसार-

साभि ,····· अम्बुगर्भनिर्भरनिभृताभ्रमण्डलीविभ्रमाभिर्वनराजिभिः······परितः परिक्षिप्तम्······क्वचिदत्यायतैः तालविटपिभि कुतूहलान्मृग्यमाणगाम्भीर्यमानमिव······।"[७२]

(ड) मन्दारमञ्जरी

"अथ सा तेन तस्य वचसा पूर्ववृत्तमपि साक्षादिवानुभवन्ती प्रवाहानुसारेणाविच्छिन्नप्रवाहान्तरेव सरिद् गद्गदरुद्धकण्ठतया वक्तुमशक्ता उद्भिद्य निर्गच्छदिव वेगवदश्रु निरोद्धुम् अपारयन्ती···निर्भरतरमरोदीत्···।"[७३]

तिलकमञ्जरी

"इति वदत्येव मयि सहसैव तस्या. प्रकम्पितपयोधरो विद्युतगलसरणिरतिपरिस्फुटस्फुरितनासापुट·,···· ·व्यापदङ्गमतिक्रान्तवैभवस्मरणयोनिमन्यु· । ···मुकुलीभूतमीक्षणयुगमपूर्यत विसारिणा वाष्पनीरेण । तत्क्षणनिवद्धरागायाश्च लोचनापाङ्गसरित ······पपाताजस्रमश्रुकणविस्तर· ।"[७४]

(ढ) मन्दारमञ्जरी

'कुसुमितसहकारानोकहकूजत्कोकिलकुलकलकलाकुले······।'[७५]

तिलकमञ्जरी

'पिककुलकलकोलाहलाकुलितसहकारकानने···।'[७६]

(ण) मन्दारमञ्जरी

'श्रूयन्ते च बह्व्य कन्या स्वेच्छयैव अभिमतान् भर्तॄन् भजमाना· धर्मानुशासनेपु······।"[७७]

तिलकमञ्जरी

'अविरुद्धो हि राजकन्याजनस्य स्वयवरविधि.······।'[७८]

(त) मन्दारमञ्जरी

"विलोचनविलासै कुवलयावलीमयमिव, मुखमण्डलै राकासुधाकरमयमिव, ·····पाणिभि. पल्लवमयमिव, अधरप्रभाभि प्रभातातपमयमिव, ····· कलेवरकान्तिभिश्चम्पकमयमिव, चरणैररुणराजीवमयमिव जीवलोकमुपदर्शयन्त्य क्षण तस्थु ।"[७९]

तिलकमञ्जरी

"काश्चित्सुवर्णचम्पककलिकासवर्णा , काश्चिदसितोत्पलदलश्यामावदातत्विप कस्तूरिकातिलककलङ्कितैराननेन्दुभि· शतचन्द्रमिव गगनतलमादधाना ,··· ···आभोगशालिभि पयोधरोत्सेधै पर्वतमयमपरमिव सेतुमासूत्रयन्ती , विभ्रमावलोकितैरुदधिमिव मर्यादालङ्घनमध्यापयन्ती , भ्रूविभ्रमै मन्मथमिव धनुर्वेद शिक्षयन्ती ·····कन्यका.······अद्राक्षम् ।"[८०]

ऊपर दिए हुए मन्दारमञ्जरी और तिलकमञ्जरी के तुलनात्मक उदाहरणो के परिशीलन से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि मन्दारमञ्जरी पर तिलकमञ्जरी का परिकल्पनात्मक तथा भावात्मक (और साथ ही साथ कुछ अशो मे भाषात्मक भी) प्रभाव पड़ ही गया है । पर यह भी निश्चित है कि विश्वेश्वर पाण्डेय ने जो कुछ भी धनपाल से

लिया है उसे उन्होने अपनी सशक्त लेखनी के हवाले करके एक नया रूप देकर ही प्रस्तुत किया है। फलस्वरूप उनकी मन्दारमञ्जरीकथा का विद्वानो ने एक स्वतन्त्र ही महत्त्व निर्धारित कर दिया है।

अम्बिकादत्त व्यास के शिवराजविजय पर प्रभाव

व्यासजी उन्नीसवी शताब्दी के साहित्यकार है। उन दिनो वगलावाङ्मय की औपन्यासिक विधा, जो स्वय योरोपीय उपन्यासकला से प्रभावित थी, का हिन्दी साहित्य पर जबरदस्त प्रभाव पड रहा था। व्यासजी चूँकि सस्कृत साहित्य के साथ ही साथ हिन्दी साहित्य के भी सर्जनाशील साहित्यकार थे, और उनका सम्पर्क भी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जैसे मूर्धन्य एव युगप्रवर्तक हिन्दी साहित्यकार के साथ था, इसीलिए उन्होने भी सस्कृत साहित्य की पुरानी घिसी-पिटी रोमाटिक एव अलङ्कारो से बोझिल बनी हुई मन्थरगद्यशैली को ठुकराकर एक निहायत ही गतिशील एव कथाप्रधानशैली को जन्म दिया, जिसका ज्वलन्त एव उत्कृष्ट उदाहरण सस्कृत भाषा मे लिखा हुआ उनका शिवराजविजय नामक ऐतिहासिक उपन्यास है।[८१]

यद्यपि उनका यह 'शिवराजविजय' नितान्त मौलिक है, इसमे उनकी अपनी भाषा है, अपने भाव है, परिकल्पनाएँ भी उनकी अपनी ही है; और शैली तो उनकी सर्वथा ही अपनी है। लेकिन फिर भी हमे उनकी इस कृति मे यत्र-तत्र कई पूर्ववर्त्ती साहित्यकारो का कुछ न कुछ प्रभाव दिखाई देता है, और हमारे आलोच्य महाकवि धनपाल भी उनमे से एक है। क्योकि तिलकमञ्जरी की कुछ झाँकियाँ व्यासजी के शिवराजविजय मे काफी स्पष्ट न सही, धूमिल ही सही, पर झलकती-सी तो नजर आती ही है। लीजिए, उनके कुछ उदाहरण भी देखिए—

(क) शिवराजविजय के आरम्भ मे ही ब्रह्मचारिगुरु और समाधि से उठे हुए योगिराज के बीच (क्षत्रपति शिवाजी की कुशलता, और समुद्री तूफान मे खोये हुए पुत्र रामसिह की प्राप्ति के विषय मे) जिस नाटकीय ढग से बातचीत हुई है,[८२] उस पर तिलकमञ्जरीकथा मे विचित्रवीर्य और मलयसुन्दरी के बीच हुई बातचीत के ढग का प्रभाव परिलक्षित होता है।[८३]

(ख) सौवर्णी और रघुवीरसिह की प्रणयकथा पर, जो पताका के रूप मे वर्णित है, मलयसुन्दरी और समरकेतु की प्रेमकथा की छाया प्रतीत होती है। रघुवीरसिह के विरह से पीडित, और उसे पाने की आशा मे भगवान् शकर की आराधना मे लगी हुई सौवर्णी का वर्णन करते समय[८४] लगता है कि व्यासजी की आँख समरकेतु के विरह से पीडित और उसे पाने की आशा मे तापसी बनकर भगवान् आदि तीर्थङ्कर की आराधना करती हुई मलयसुन्दरी पर टिकी रही है।[८५]

(ग) जिस प्रकार तिलकमञ्जरीकथा मे समरकेतु ने आत्मकथा सुनाई है,[८६] उसी प्रकार शिवराजविजय मे भी गौरसिह अपनी दुखभरी कहानी सुनाता है।[८७]

(घ) तिलकमञ्जरीकथा मे विद्याधरो का राजा विचित्रवीर्य शत्रुविप्लव मे खोई हुई लगभग दसवर्षीया अपनी पुत्री गन्धर्वदत्ता की खोज मे दुखी है।[८८] उधर गन्धर्वदत्ता

भी अपने पिता के दर्शन के लिए तरसती रहती है।[८९] इन दोनो (पिता-पुत्री) की इच्छाएँ, मलयसुन्दरी के विवाह के कुछ ही क्षण पहिले पूरी ही हैं।[९०] शिवराजविजय मे भी वहुत कुछ इसी प्रकार है। वीरेन्द्रसिंह समुद्री तूफान मे बिछुड़े हुए अपने लगभग दसवर्षीय पुत्र रामसिंह को पाने की आशा मे ब्रह्मचारिगुरु बना हुआ अपनी जिन्दगी के दिन पूरा करने मे लगा है।[९१] इधर रामसिंह भी रघुवीरसिंह के नाम से अपने को विख्यात किए हुए है; और पिता के अभाव को अपने अथाह दिल मे सँजोये हुए हैं।[९२] इन दोनो (पिता-पुत्र) का मिलन सौवर्णी के विवाह के कुछ ही दिन पहले होता है।[९३]

(ङ) तिलकमञ्जरीकथा मे वर्णित समरकेतु की छापामार लड़ाई[९४] की छाप शिवराजविजय मे प्रदर्शित शिवाजी के युद्ध के तरीको पर साफ नजर आती है।[९५]

इन उपर्युक्त परिकल्पनात्मक आदानो के अतिरिक्त लगता है कि व्यासजी ने तिलकमञ्जरीकथा से कुछ भाषात्मक एवं भावात्मक आदान भी किया है। उसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

(च) **शिवराजविजय**

यशस्विसिंहस्तु तदाकर्ण्य स्थगित इव, चकित इव, ह्रीत इव, अवहेलित इव, आक्षिप्त इव, पुत्तलीकृत इव, क्षणमध., क्षण पुर, क्षण त्रिवलीमण्डिते महादेवललाटे, क्षणं च नासाग्रे दत्तदृष्टि अवागिव, स्तब्धवागिव, मन्त्रित इव च तूष्णीमेव तस्थौ।[९६]

ति कमञ्जरी

स तु न कञ्चिदैक्षत न किञ्चिदाभाषत, न कस्यचिद् वचनमशृणोत्; न कस्यचित्प्रतिवच. प्रायच्छत्। केवलं वञ्चित इव, छलित इव, मुषित इव, केनाप्यावेशित इव, विमुक्तदीर्घनिश्वास क्षण मूर्च्छामनुभवन्, क्षणं चेतना प्रतिपद्यमान तूष्णीक एवातिष्ठत्।[९७]

(छ) **शिवराजविजय**

भवितव्य भवत्येव नारिकेलफलाम्बुवत्।[९८]

तिलकमञ्जरी

अत्याहता गति. सर्वत्र भवितव्यताया.।[९९]

(ज) **शिवर वि य**

"......सौवर्णी ....महादेवमूर्त्ति......विल्वपत्रै सम्पूज्य...... ...ध्यायन्ती......आत्मान विस्मृत्य चित्रार्पितेव, जडीकृतेव, पुत्तलिकायितेव, गतचेतनेव, मोहनमन्त्रमोहितेव च......तथैव समस्थित।" .... सा तु आनन्दपरवशा जड़ीकृतेव, चित्रार्पितेव, मन्त्रकीलितेव, मायामोहितेव, विक्रीतचित्तेव, हारितहृदयेव, मथितमानसेव च......त विससर्ज।"[१००]

तिलकमञ्जरी

"......कनकारविन्दैरुपरचितपूजस्य.... युगादिजिनबिम्बस्य पुरतो नातिनिकटे समुपविष्टाम् आबद्धपद्मासनाम् अतिस्थिरतया कायस्य लिखितामिव,

उत्कीर्णामिव, निखातामिव, स्तम्भितामिव, विभाव्यमाना……तापसकन्यका व्यलोकयम्।"[१०१]

(झ) शिवराजविजय

"…कदाचन पाणिगृहीत्या विहरन्, कदाचन कुमार लालयन्, कर्हिचित् सैनिकाना व्यूहरचनाकौशल शस्त्रक्षेपलाघव-कौशल च परीक्षमाण, कर्हिचिच्च सैन्धवैर्धाव धाव कन्दुकादिक्रीडाकुतूहलानि रचयन् विलसति।'[१०२]

तिलकमञ्जरी

हरिवाहनोऽपि……पालयन् एकातपत्र राज्यम्, कदाचित् सिंहलेपु,……कदाचित्… ··काञ्चीनगरीपरिसरारामेपु, कदाचित्… ·रत्नकूटाद्रिकटकेषु रममाण.,… ·· ··कदाचिद्……गुरुजनस्य……दर्शयन् तीर्थस्थानानि, कदाचिद्…विलोकयन् जिनजन्ममहोत्सवम् एकहेमासनार्धोपविष्टया मुहूर्त्तमप्यरहितान्तिकस्तिलकमञ्जर्या दिनान्ययापयत्।[१०३]

इन उपर्युक्त भाषा-भावात्मक साम्यसूचक उद्धरणो को देखकर यह मानना ही पडता है कि अम्बिकादत्त व्यास के शिवराजविजय पर भी धनपाल की तिलकमञ्जरी-कथा का कुछ न कुछ प्रभाव पड़ा ही है।

चन्द्रप्रभाचरित पर तिलकमञ्जरी का प्रभाव

महामहोपाध्याय आशुकवि शङ्करलाल विरचित चन्द्रप्रभाचरित[१०४] नामक गद्यकथाकाव्य का अनुशीलन करने पर यह तथ्य प्रकट हुआ है कि यह कृति भाषा के प्रवाह और परिकल्पना की उडान के साथ ही साथ सदाचार एव अध्यापन के महत्त्वपूर्ण पहलू पर पूरा-पूरा प्रकाश डालती है। यद्यपि कवि ने अपनी इस कृति के उपोद्घात मे—" ·· ··इदानीमेव कल्पितम्, अनितिहासभाषितम्, अपुराणपठितम्, अकथाकथानककथितम्, अरूपकनिरूपितम्, अकाव्यकल्पनाकल्पितम्…… किमपि भाषण श्रोतुमिच्छति"—[१०५] लिखकर इस कथा को सर्वथा मौलिक एव नवीनतमकल्पनाकल्पित बनाने का एक प्रकार से बीडा उठाया है, लेकिन कथा को ओर से छोर तक पढने पर स्पष्ट हो जाता है कि लेखक की इस कृति पर उसके पूर्ववर्त्ती गद्यकाव्यकार बाणभट्ट एव धनपाल की पर्याप्त छाया है।

अब मैं यहाँ चन्द्रप्रभाचरित पर बाणभट्ट के प्रभाव को अपनी शोधसीमा से बाहर समझ कर उस पर पडे हुए केवल धनपाल के प्रभाव को ही आपके समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूँ—

(क) चन्द्रप्रभाचरित मे उपमन्यु नामक मुनि की देखभाल मे राजा कीर्त्तिपाल और उसका मन्त्री शिवशर्मा—दोनो ही—शङ्कर की आराधना करते है और पुत्र रत्नो को प्राप्त करते है। निश्चय ही इस परिकल्पना पर तिलकमञ्जरी मे वर्णित विद्याधर मुनि के उपदेश मेघवाहन द्वारा की गई लक्ष्मी की उपासना और उसके फलस्वरूप पुत्ररत्न की प्राप्ति की परिकल्पना का प्रभाव पडा है।

(ख) तिलकमञ्जरी मे राजकुमार हरिवाहन के प्रति युवराज समरकेतु का जैसा प्रगाढ़

अनुराग दिखाया है, वैसा ही चन्द्रप्रभाचरित मे भी राजकुमार शत्रुशल्य के प्रति मन्त्रिकुमार सत्यशील का दिखाया गया है। अत चन्द्रप्रभाचरित मे वर्णित मित्रता-रूपिणी लता का आलबाल और अकुर तिलकमञ्जरी मे उपलब्ध हो ही जाता है।

(ग) तिलकमञ्जरी मे यक्ष के शाप से ग्रस्त शुक रूपी गन्धर्वक दिव्यपट के सम्पर्क से पुन अकस्मात् ही गन्धर्वक के रूप मे परिणत होता हुआ दिखाया गया है।[१०६] धनपाल की उस चित्ताकर्षक कल्पना के आधार पर शङ्करलाल ने भी अपने चन्द्रप्रभाचरित मे उग्रतपा नामक ऋषि के शाप से ग्रस्त बिडालरूपी चित्रसेन को चन्द्रप्रभा के उपदेशामृत के प्रभाव से पुन. चित्रसेन के रूप मे बदलते हुए दिखाया है।[१०७]

(घ) जिस प्रकार तिलकमञ्जरीकथा मे एक विद्याधर मुनि द्वारा हरिवाहन-तिलकमञ्जरी तथा समरकेतु-मलयसुन्दरी के पूर्वजन्म की कथा का रहस्योद्घाटन किया गया है,[१०८] उसी प्रकार चन्द्रप्रभाचरित मे भी उग्रतपा नामक महर्षि द्वारा राजा शिवप्रसाद और उसके दोनो मन्त्रियो—शिवदत्त और शम्भुदत्त—के पूर्वजन्म की कथाग्रन्थि को बडी सफाई के साथ खोला गया है।[१०९]

(ङ) तिलकमञ्जरी मे हरिवाहन के खो जाने पर समरकेतु की मनोवेदना[११०] के वर्णन का प्रभाव, चन्द्रप्रभाचरित मे शत्रुशल्य के खो जाने पर उसके परिवार की मनोवेदना के वर्णन[१११] पर, तथा उसे इन्द्रनीलमणिमय बना हुआ देखकर सत्यशील की मनोव्यथा के वर्णन पर परिलक्षित होता है।[११२]

अब हम चन्द्रप्रभाचरित और तिलकमञ्जरी से कुछ ऐसे तुलनात्मक उद्धरण भी प्रस्तुत करेंगे, जिनमे आपको या तो शब्दात्मक अनुकरण की प्रतीति होगी, या फिर भावात्मक अनुकरण की। अच्छा तो लीजिए, देखिए—

(च) **चन्द्रप्रभाचरित**

"श्राव श्राव च तौ तांस्तान् सद्विचारान्··· ·····तदनुसारेणैव सर्वाणि राजकार्याणि चक्रतु।"[११३]

ति कमञ्जरी

"सचिवलोकोऽपि· ····परिज्ञातत्वाच्च प्रभुचित्तवृत्ते परिहरन् प्रजाखेदमखिलान्यपि राजकार्याणि चक्रे।"[११४]

(छ) **चन्द्रप्रभाचरित**

"······सुखमयान्, आनन्दमयान्, उत्सवमयाश्च वासरनिचयान् निर्गमयामास।"[११५]

तिलकमञ्जरी

(i) "······निषण्णस्य चास्य···:·· ··विस्मयमयीव, कौतुकमयीव, आश्चर्यमयीव, प्रमोदमयीव, क्रीडामयीव, उत्सवमयीव, निवृत्तिमयीव, धृतिमयीव, हासमयीव सा विभावरी विराममभजत्।"[११६]

(ii) "सुखमया इव, धृतिमया इव, अमृतमया इव, प्रीतिमया इव, अतिचक्रमु कतिपयेऽपि दिवसाः।"[११७]

(ज) चन्द्रप्रभाचरित

(i) "······इद राज्यम्, इमौ प्रधानौ, अमी कोशाः, इमानि बलानि, सकलोऽप्ययं मे परिवारः, अहमपि च युष्मदायत्त एवास्मि, तन्निश्शङ्कमभिधीयताम् ·····इति प्रार्थयत् ।"[११८]

(ii) "·····सकलमपीद साम्राज्यम्, निश्शेषा अपीमे कोशा, अशेषा अपीमेऽधिकारिण, निखिलमपीद बलम्, ·····अयमपि जन सपुत्रपौत्रपरिवारो मातृचरणाज्ञायत्त एवास्ति। तत्······श्रेयसे······सकलमपीदं राज्य ब्राह्मणसात्कर्त्तु वा प्रभवत्यत्रभवत्या निर्मलतरा मनोवृत्तिः ।"[११९]

तिलकमञ्जरी

"······इद राज्य, एषा मे पृथिवी, एतानि वसूनि, असौ हस्त्यश्वरथपदातिप्रायो बाह्यपरिच्छद, इद शरीरम्, एतद् गृह गृह्यता स्वार्थसिद्धये परार्थसम्पादनाय वा यदत्रोपयोगार्हम् । अर्हसि······नश्चिराग्निर्वापयितुमेतज्जन्मनः प्रभृत्यघटितानुरूपपात्रविषादविक्लवं हृदयम् ।"[१२०]

(झ) चन्द्रप्रभाचरित

"······कुमारानुयायिना तेषा हर्षशून्यै, साश्रुसलिलै, सनिश्वासपरम्परै, दु सहदु.खभरादिव अतिनम्रै वदनै·······निवेदितात्याहिता इव सभयहृदया.······वभूविम ।"[१२१]

ति कमञ्जरी

"अथ मुहूर्त्तविशेषेऽह्नि दूरादेव विद्राणवदनान् इतस्ततो निहितशिथिलालसपदान्······मुक्तानिव जीवितेन,··· ··लज्जया परस्परस्य पृष्ठे निलीयमानांस्तानपश्यत्।"[१२२]

(ञ) चन्द्रप्रभाचरित

(i) "हा प्रियमित्र ! शत्रुशल्य ! कथमेवमेकपदे एव ईदृशी दशा गतोऽसि ? ··· ··इति वदन् मूर्च्छामीलितलोचनोऽवन्या न्यपतत् ।"[१२३]

(ii) "अपरतो हा विद्योदयैकबन्धो ! राजकुमार !······को देश. साम्प्रत पवित्रतापात्रता नीत ?······निवेदय······येन··· ··आगत्य भवन्मुखदर्शनसुखमनुभविष्याम ······।"[१२४]

ति कमञ्जरी

"······हा सर्वगुणनिधे ! हा बुधजनैकवल्लभ ! हा प्रजावन्धो ! हा समस्तकलाकुशल ! कोसलेन्द्रकुलचन्द्र ! हरिवाहन ! कदा द्रष्टव्योऽसि ? इति विलपन्नेव मीलितेक्षण क्षणेनैव निकटोपविष्टस्य खड्गग्राहिणो जगाम पर्यस्तविग्रहस्तिर्यगुत्सङ्गम् ।"[१२५]

(ट) चन्द्रप्रभाचरित

(i) "······इत्युक्त्वा व्योममार्गमनुसरति · ··मुनिवर्ये शिवप्रसादशिवदत्तशम्भुदत्ता कामप्यन्यादृशीमेव दशामन्वभूवन्। तेषा नेत्रकमलेभ्य. प्रागलग्नविरलाश्रुसलिलावलय. प्रावर्तन्त मुखेभ्यो दीर्घदीर्घा अत्युष्णाश्च निश्वासा,

शून्यतामगच्छन् मनासि। विचारशक्ति. उत्साहशक्ति. कवित्वशक्तिश्च······ अन्तर्हिता इव न पुन: कदाचिद् दर्शन ददु ······।"[१२६]

(ii) "······श्रुत्वैतद्वचन समुत्पन्नात्मर्ममित्रस्मरण सवाष्पसलिललोचनो मूढ इव, मूक इव, बधिर इव, स्तब्ध इव, न किमपि प्रतिवक्तु प्राभवत्।"[१२७]

(iii) "···तत्कालसमुच्छलदपारत्रपापारावारतरङ्गपरम्परासु निमग्नेव मे वाणी न बहिर्निर्गन्तुं शक्ताभूत्, सकलेन्द्रियवृत्तय ······स्वविषयपराङ्मुखा बभूवु. तत. क्षणमात्र तु मूक इव, अन्ध इव, बधिर इव, पगुरिव, पिशाचाविष्ट इव, भूताभिभूत इव किंकर्त्तव्यतामूढ आसम्।"[१२८]

तिलकमञ्जरी

"······इति निवेद्य······उपशान्तवचसि कोशलाधिपसुते··· स··· ···न किञ्चिदैक्षत; न किञ्चिदाभाषत, न कस्यचिद् वचनमश्रृणोत्, न कस्यचित् प्रतिवच. प्रायच्छत्। केवल वञ्चित इव, छलित इव, मुषित इव, केनाप्यावेशित इव विमुक्तदीर्घनिश्वास. क्षणं मूर्च्छामनुभवन् क्षण चेतना प्रतिपद्यमान तूष्णीक एवातिष्ठत्।"[१२९]

इस प्रकार इन उपर्युक्त साम्यपूर्ण परिकल्पनाओ और उद्धरणो को देखकर ही मेरी यह धारणा बनी है कि चन्द्रप्रभाचरितकार श्री शङ्करलाल पर तिलकमञ्जरीकार श्री धनपाल का कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य ही पड़ा है।

श्रीनिवासकृत चन्द्रमहीपति पर प्रभाव

अपनी बीस वर्ष की ही आयु मे कविराज श्री श्रीनिवास जी ने चन्द्रमहीपति नामक एक उत्कृष्ट कथाकाव्य (उपन्यास) की रचना विक्रम सवत् १९९१ मे की थी। तारीफ की बात तो यह है कि उन्होने इसे ३८ दिनो मे ही पूरा कर डाला था। लेकिन यह जानकर कुछ दु ख भी होता है कि ऐसे उत्कृष्ट और सामाजिक उपन्यास का भी मुद्रण, रचना से तेईस वर्ष बाद, विक्रम सं ् २०१४ मे, हो सका।[१३०]

इस कथाकाव्य (उपन्यास) को पढने से मेरी यह धारणा बनी है कि श्रीनिवासजी के इस 'चन्द्रमहीपति' पर धनपाल की 'तिलकमञ्जरीकथा' का ऐसा कुछ भी प्रभाव नही पड़ा है जिसे यहाँ उल्लिखित किया जा सके। यद्यपि नियतिनटी की दुर्दमनीयता,[१३१] समुद्र मे नौका-यात्रा[१३२] तथा दानव (वेताल) की रूपरेखा[१३३] के वर्णन के प्रसग चन्द्रमहीपति मे भी मिलते हैं, लेकिन उनका अपना अलग ही ढग है। उनकी तुलना तिलकमञ्जरी के ऐसे प्रसगो से नही की जा सकती है। इसी प्रकार जगल मे कथानायक के खो जाने का प्रसग [१३४] भी तिलकमञ्जरीकथा के नायक के गुम हो जाने के प्रसग से मिलता हुआ-सा प्रतीत हो सकता है, किन्तु इतना निश्चित है कि दोनो ही प्रसगो की पृष्ठभूमियो मे पर्याप्त भिन्नता है। अत: यह तथ्य दृढता के साथ लिखा जा सकता है कि चन्द्रमहीपति पर तिलकमञ्जरी की छाया नही पड़ी है।

अन्य कथाकाव्यकारो पर प्रभाव

यद्यपि ऊपर के सन्दर्भो मे पल्लीपाल धनपाल, लक्ष्मीधर, पद्मसागर, विश्वेश्वर

पाण्डेय, अम्बिकादत्तव्यास, आशुकवि शङ्करलाल आदि गद्यकथाकारों की कथाकृतियों में प्रतिफलित होने वाले धनपाल के प्रभाव की चर्चा मैं कर ही चुका हूँ, जो धनपाल के साहित्यिक प्रदान की पुष्टि करने मे भली-भांति समर्थ है। लेकिन इनके अतिरिक्त भी कुछ (दो-एक) ऐसे गद्यकारों का मुझे पता है जिन पर धनपाल की छाया झलकती है। मैं सक्षेप मे ही सही पर, यहाँ उनका और उनकी कृतियों में झलकने वाली धनपाल की साहित्यिक प्रतिभा की छाया का विश्लेषण करने के लोभ का सवरण नहीं कर पा रहा हूँ। इसलिए लीजिए, उन्हे भी देखिए—

गुणमन्दारमञ्जरी पर प्रभाव

महामहोपाध्याय प० कालीप्रसाद शास्त्री ने संस्कृत कार्यालय अयोध्या से सन् १९६१ ई० मे गुणमन्दारमञ्जरी नामक एक लघुकाय किन्तु प्रौढ कथाकृति का सम्पादन किया है। इसके रचयिता कविवर रङ्गनाथ दीक्षित हैं, और इसका रचनाकाल[१३५] विक्रम सवत् १७०७ है, जो ईशवीय सन् की गणना मे १६५० होता है। अपने सम्पादकीय निवेदन मे पण्डित कालीप्रसाद शास्त्री लिखते हैं—

सौराष्ट्रदेशीयगोण्डलस्थितश्रीभुवनेश्वरीपीठहस्तलिखितग्रन्थभाण्डारे गुणमन्दारमञ्जर्या पुस्तकद्वयमस्ति। तल्लब्ध तदध्यक्षविद्वत्प्रवरश्रीचरणतीर्थमहाराजाना परमकृपया प्रकाशनाय।······ ··लघ्वपि गद्यकाव्यमेतत्प्रकृष्टपाण्डित्यपूर्ण पठितुर्मनोहारि, सस्कृतगद्यससारस्य शोभामवश्य वर्धयिष्यति इति मे मति।

हालाँकि गुणमन्दारमञ्जरी का कथानक कुछ तिलस्मी और अय्यारी ढग का है, उस पर तिलकमञ्जरी के कथानक की सङ्घटना का कुछ भी प्रभाव प्रतीत नही होता है, लेकिन कुछ स्थलो पर धनपाल की भाषा या भावो की छाया अवश्य ही प्रतीत होती है। उदाहरणार्थ कुछ उद्धरण प्रस्तुत है—

(क) गुणमन्दारमञ्जरी

"मज्जत्पुलिन्दराजनितम्बिनीनितम्बबिम्बास्फालनजर्जरिततरलतरङ्गया··· मदकलकलहसकुलकोलाहलाकलितकूलया।"[१३६]

तिलकमञ्जरी

"माद्यत्कोशलविलासिनीनितम्बास्फालनस्फारिततरङ्गया······राजहसैः क्षणमप्यमुक्तपार्श्वया।"[१३७]

(ख) गुणमन्दारमञ्जरी

"अतिघन (· · ·?) वञ्जुलनिकुञ्जतलनिलीनजलमानुषमिथुनसार्थकृतक्रीडेन।"[१३८]

तिलकमञ्जरी

" ··सैकतेषु सुखप्रसुप्तानि प्रबोधयन्ती जलमानुषमिथुनानि।"[१३९]

(ग) गुणमन्दारमञ्जरी

"·· ····· अनेकविधकुसुममालालङ्कृतेन कल्पलताकलापेन इव सखीसमूहेन ··।"[१४०]

तिलकमञ्जरी

"...... कल्पलता इव पारिजातजन्मभूमिवलोकयितुममरकाननादागता. ......।"[१४१]

(घ) गुणमन्दारमञ्जरी

"......चित्रित इव, कीलितगात्र इव, दारुमय इव तरावराजत।"[१४२]

तिलकमञ्जरी

"......वञ्चित इव, छलित इव, मुषित इव, केनाप्यावेशित इव...... तूष्णीक एवातिष्ठत्।"[१४३]

(ङ) गुणमन्दारमञ्जरी

"......वीरसेनवर्मा कदाचिद् हेमकूटे गन्धर्वराज ...मन्दारमञ्जरी च आनन्दयन्, कदाचित् श्रीपुर्यां विजयध्वजममरसुन्दरी च......रञ्जयन् सेवमानश्च पितरौ......स्वच्छन्द यौवनसुखान्यनुवभूव। एव राघवसेनावर्मा .... गुणमञ्जर्या......सहानुभवन् विलासान् परमानन्दममन्दमविन्दत।"[१४४]

तिलकमञ्जरी

"हरिवाहनोऽपि..... पालयन्... राज्यम्, ...कदाचित् सिहलेषु... कदाचित्......काचीनगरीपरिसरारामेषु, कदाचिद्......मलयाद्रिकन्दराकच्छेषु, कदाचिद्......रत्नकूटाद्रिकटकेषु रममाण,......कदाचिद्......गुरुजनस्य... दर्शयन् तीर्थस्थानानि.... मुहूर्त्तमप्यरहितान्तिकस्तिलकमञ्जर्या दिनान्ययापयत्। असप्राप्तविप्रयोगस्य चास्य......अनुदिनम् .. अभिचस्कन्द परमा वृद्धिमानन्द।"[१४५]

यहाँ यह भी लिख देना अनुचित न होगा कि वीरसेनवर्मा के सफलतापूर्वक लौट आने की कबूतर द्वारा सुखद सूचना पाकर मन्दारमञ्जरी के महल मे राजकुमार के स्वागत की तैयारियो की जो चर्चा गुणमन्दारमञ्जरीकथा मे मिलती है,[१४६] उस पर भी मुझे विशेष रूप से तिलकमञ्जरीकथा की ही छाया नजर आती है।[१४७]

मन्दारवती पर प्रभाव

ईसवीय सन् १९२९ मे वाविल्ला प्रेस मद्रास मे सस्कृत भाषा मे मन्दारवती नामक एक रोमाण्टिक गद्यकथा का प्रकाशन हुआ है। इसके लेखक श्रीकृष्ण शर्मा है, और रचनाकाल १९२६ ई० है।[१४८] लेखक ने अपनी इस कृति मे कथानक के लिए क्षेमेन्द्र की वृहत्कथामञ्जरी मे आए हुए 'मन्दरावती उपाख्यान' और 'हसावली उपाख्यान' का ताने और बाने की तरह उपयोग किया है, जो काफी अच्छा बन गया है।

मन्दारवती को पढते समय कही-कही ऐसा लगता है जैसे कि उस पर धनपाल की तिलकमञ्जरीकथा की भी छाप हो। उदाहरण के तौर पर हम कह सकते है कि मन्दारवतीकथा मे जब राजकुमार सुन्दरसेन हसद्वीपनिवासी मन्दरदेव पर आक्रमण करने के लिए सेना सहित अपनी नगरी से प्रस्थान करता है, तो उस समय के वर्णन[१४९] पर हमे समरकेतु की विजययात्रा के वर्णन[१५०] का प्रभाव दिखाई देता है। उसके द्वारा

किया गया शोभावती नगरी का घिराव भी हमे वज्रायुध द्वारा किए गए काचीनगरी के घिराव की याद दिलाने लगता है। इतना ही नही, बल्कि जिस प्रकार तिलकमञ्जरीकथा मे वज्रायुध द्वारा मलयसुन्दरी को युद्धविराम की तराजू के पलडे मे तौला गया है[१५१] उसी प्रकार मन्दारवतीकथा मे भी मन्दरदेव ने अपनी पुत्री मन्दारवती को युद्धविराम के बदले मे सुन्दरसेन को सौप दिया है।[१५२] मन्दारवती यह जानकर कि उसके पिता ने युद्धविराम करने के बदले मे उसका विवाह आक्रान्ता सुन्दरसेन के साथ करने का विचार कर लिया है तो वह अपनी विवशता का मार्मिक वर्णन करती है,[१५३] जो कि ऐसी ही परिस्थिति मे फँसी हुई मलयसुन्दरी के विचारो से प्रभावित प्रतीत होता है।[१५४] मन्दारवतीकथा मे रहस्य के खुलने पर असली मन्दारवती के लिए सुन्दरसेन की व्याकुलता का, और उसके निवारण के लिए देशाटन का जो वर्णन किया गया है वह भी तिलकमञ्जरी के लिए छटपटाते हुए हरिवाहन की मनोरजनयात्रा से प्रभावित प्रतीत होता है।

अब मैं यहाँ दोनो कृतियो से भाषाभावात्मक साम्यसूचक कुछ उद्धरण भी प्रस्तुत किए देता हूँ ताकि मन्दारवतीकथा पर तिलकमञ्जरीकथा के प्रभाव की पुष्टि मे कोई कसर बाकी न रहे। हाँ तो लीजिए—देखिए—-

(क) **मन्दारवती**

"निर्गच्छन्त्या च सेनाया लाजाञ्जलीनवाकिरन् राजवीथिषु पौराङ्गनाः।"[१५५]

ति कमञ्जरी

"···उत्सृष्टलाजवृष्टिभिरुद्घुष्यमाणमनोरथसिद्धि नगरवृद्धाभि····।"[१५६]

(ख) **मन्दारवती**

'······अनतिलङ्घनीय हि दौरात्म्यदुर्विलसित दुष्टविधेः।"[१५७]

ति कमञ्जरी

"······निसर्गत एव निरंकुश पापकारी······बलीयान् विधि ···।"[१५८]

(ग) **मन्दारवती**

"अथवा बलवती खलु भवितव्यता।"[१५९]

तिलकमञ्जरी

"अव्याहता गतिः सर्वत्र भवितव्यताया।"[१६०]

(घ) **मन्दारवती**

"निर्वृत्तोद्वाहविधिश्च सुन्दरसेनः कनकमञ्जर्या सममन्वभूद् यद् यद् अनुगुण तरुणिम्नः, यद् यद् अभीप्सित चित्तजन्मन, यद् यद् अभिमत च विदग्धतायाः।[१६१]

तिलकमञ्जरी

"किं बहुना, यदुचित यौवनस्य, रुचित चित्तवृत्ते, आराधक विदग्धानाम्··· तथा सर्वमन्वतिष्ठत्।"[१६२]

इस प्रकार इन उपर्युक्त कथासङ्घटनात्मक, भाषात्मक और भावात्मक अनुहरणो को देखकर यह कहना पडता है कि मन्दारवतीकथा पर भी तिलकमञ्जरीकथा का थोड़ा-बहुत प्रभाव अवश्य है।

अब मेरा विश्वास है कि इस अध्याय मे किए गए इस विश्लेषण से महाकवि धनपाल के 'साहित्यिक आदान और प्रदान' का वास्तविक स्वरूप पाठको के सामने अवश्य ही उभर कर आ गया होगा।

आजकल चूंकि सभी आलोचक इस तथ्य का अनुभव कर रहे हैं कि सस्कृत-साहित्य के बहुत-से ग्रन्थ या तो नष्ट हो गए हैं या फिर अप्रकाशित पडे हुए है। इसलिए मैं समझता हूँ कि इस सोपान मे चर्चित कथासाहित्यकारो के अतिरिक्त कुछ और भी ऐसे कथालेखक रहे होगे जिन पर धनपाल की प्रतिभा का प्रभाव पडा होगा। लेकिन दु ख है कि आज वे प्रकाश मे नही है; और भविष्य मे यदि आएँगे तो उनका इसी परिवेश मे मूल्याङ्कन करना, अब मैं समझता हूँ कि, कठिन नही होगा।

अब रह जाती है बात वर्तमान लेखको की, सो उन पर तो बँगला, गुजराती, हिन्दी और अग्रेजी साहित्य के लेखको का प्रभाव पड़ रहा है; साथ ही साथ उन्हे सामाजिक उत्पीड़न और उथल-पुथल भी प्रभावित किए रहती है। इसलिए उन पर प्राचीन लेखको का प्रभाव मुझे तो नही के बराबर दी ा है।

सन्दर्भ

१. "···तिलकमञ्जरीसारकर्त्तृ विद्वत्त्रयमुपलभ्यते। एक. प्रस्तुतः, अपरो तु दिगम्बर-पण्डित श्रीधनपाल. श्रीपद्मसागरश्च।"

—तिलकमञ्जरीकथासार, भूमिका भाग, पृ० १

२. अणहिल्लपुराख्यात पल्लीपालकुलोद्भव.।
जयत्यशेषशास्त्रज्ञ श्रीमान् सुकविरामन.॥
··· ··· ··· ··· ··· ···।
··· ··· ··· ··· ··· ···॥
चत्वारस्तनुजास्तस्य ज्येष्ठस्तेषु विशेपवित्।
अनन्तपालश्चक्रे य. स्पष्टा गणितपाटिकाम्॥
धनपालस्ततो नव्यकाव्यशिक्षापरायण.।
रत्नपाल स्फुरत्प्रज्ञो गुणपालश्च विश्रुत.॥
धनपालोऽल्पतश्चापि पितुरश्रान्तशिक्षया।
सार तिलकमञ्जर्या कथाया. किञ्चिदग्रथत्॥
इन्दुदर्शनसूर्याङ्कवत्सरे मासि कार्तिके।
शुक्लाष्टम्या गुरावेष कथासार समर्पित॥

—तिलकमञ्जरीसार, पृ० ९३, सम्पादक एन० एम० कसारा, अहमदाबाद प्रकाशन।

३. वही, पृ० २

४. तिलकमञ्जरी, पृ० २७

५. तिलकमञ्जरीसार, पृ० २

६. तिलकमञ्जरी, पृ०२७-२८
७. तिलकमञ्जरीसार, ११
८ तिलकमञ्जरी, पृ० ७८
९ तिलकमञ्जरीसार, पृ० १२
१० तिलकमञ्जरी, पृ० ८१-८२
११. तिलकमञ्जरीसार, पृ० १६
१२. तिलकमञ्जरी, पृ० ९८
१३. तिलकमञ्जरीसार, पृ० २०
१४ तिलकमञ्जरी, पृ० १२८
१५. तिलकमञ्जरीसार, पृ० ३०
१६ तिलकमञ्जरी, पृ० १८६
१७ तिलकमञ्जरीसार, पृ० ४४
१८ तिलकमञ्जरी, पृ० २७१
१९ तिलकमञ्जरीसार, पृ० ५४
२० तिलकमञ्जरी, पृ० ३१०
२१ तिलकमञ्जरीसार, पृ० ६५
२२. तिलकमञ्जरी, पृ० ३६२
२३ तिलकमञ्जरीसार, पृ० ६८
२४ तिलकमञ्जरी, पृ० ३७०
२५. तिलकमञ्जरीसार, पृ० ८९
२६ तिलकमञ्जरी, पृ० ४२०
२७ तस्या रहस्यमादाय मधुव्रत इवादरात् ।
मन्दवागपि सक्षेपाद् उद्गिरामि किमप्यहम् ॥
कथागुम्फ स एवात्र प्रायेणार्थास्त एव हि ।
—तिलकमञ्जरीसार, पृ० १
२८. यह ग्रन्थ भी ईसवीय सन् १९१९ मे हेमचन्द्रसभा, पाटन (गुजरात) से प्रकाशित हो चुका है, और इसके सम्पादक है प० श्रीवीरचन्द्रजी और श्री प्रभुदासजी ।
२९ "इति श्री तिलकमञ्जरीकथासार समाप्तम्—एकाशीत्या समधिकरविशतविक्रमगते समानिवहे (१२८१)··· ··।"
—तिलकमञ्जरीकथासार, हेमचन्द्रसभा पाटन प्रकाशन, १९१९, श्लोक ११८८ के बाद ।
३० तिलकमञ्जरीकथासार, श्लोक १०७ का उत्तरार्ध तथा १०८
३१ तिलकमञ्जरी, पृ० ६३
३२ तिलकमञ्जरीकथासार, श्लोक १३०
३३ तिलकमञ्जरी, पृ० ७८
३४. तिलकमञ्जरीकथासार, श्लोक १४६

३५. तिलकमञ्जरी, पृ० ८१
३६ तिलकमञ्जरीकथासार, श्लोक ८५७
३७. तिलकमञ्जरी, पृ० ३६४
३८. तिलकमञ्जरीकथासार, श्लोक १०६३ का उत्तरार्ध और १०६४ का पूर्वार्ध ।
३९. तिलकमञ्जरी, पृ० ४०७
४०. जैनरत्नकोश, लेखक एच० डी० वेलकर, बम्बई प्रकाशन १९६१, पृ० १६०
४१. (क) इति श्रीतिलकमञ्जरीप्रबन्ध सम्पूर्ण ......।
—भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इस्टीट्यूट पूना मे सुरक्षित हस्तलिपिपत्र ६७ से ।
(ख) इति श्रीतिलकमञ्जरीप्रबन्ध सम्पूर्णमगमत् ।
—आत्माराम जैन ज्ञानमन्दिर, बडौदा के कान्तिविजयजीभण्डार मे न० १८०२ पर सुरक्षित हस्तलिपि, पत्र ५३
(ग) इति श्रीतिलकमञ्जरीप्रबन्ध ।
—एल० डी० इन्स्टीट्यूट ऑफ इण्डोलोजिकल रिसर्च, अहमदाबाद के नगरसेठ भण्डार मे न० ८२७ पर सुरक्षित हस्तलिपि, पत्र ५८
४२. तिलकमञ्जरीसार, भूमिका भाग, पृ० ३१
४३. "कुर्वे तिलकमञ्जर्या कथोद्धार प्रयत्नत. ।"
—तिलकमञ्जरीकथोद्धार, श्लोक १
४४. "वाचकाग्रेसरश्रीमद्धर्मसागरशिष्यकै. ।
निर्मितोऽयं कथाग्रन्थ. पण्डितै पद्मसागरै. ।।
—भण्डारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना मे सुरक्षित हस्तलिपि, पत्र ६७
४५. तिलकमञ्जरीसार, भूमिका भाग, पृ० ३१-३२
४६. वही, पृ० ३२
४७. आत्माराम जैन ज्ञानमन्दिर बडौदा के कान्तिविजयजी भण्डार मे १८०२ सख्या पर तिलकमञ्जरी प्रबन्ध के नाम से सुरक्षित पाण्डुलिपि, श्लोक ४७९
४८. तिलकमञ्जरी, पृ० १०९
४९. देखिए— (क) तिलकमञ्जरीकथासार, भूमिका भाग, पृ० २, सम्पादक वीरचन्द्र एव प्रभुदास, हेमचन्द्रसभा पाटन प्रकाशन १९१९
(ख) सस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० २४९, लेखक डॉ० रामजी उपाध्याय, प्रथम सस्करण ।
५०. ".........अय पूर्वार्धभाग एव विश्वेश्वरपाण्डेयविरचित ; उत्तरभागस्तु, अस्य शिष्यकृतिरिति किंवदन्ती परम्परया । यत उत्तरार्धमङ्गलाचरणे—
'स्वर्गस्रवत्सुरसरिद्वहलप्रवाहकल्लोलडम्बरविडम्बिभिरेव गद्यै. ।
विश्वेश्वराभिधकवीश्वरनिर्मितेय तोष कथा न हृदि कस्य चरीकरीति ?।।
अस्या अपूर्तिजनितेन हि नोद्यमानो दु खेन चापलमह प्रकटीकरोमि ।
माला करीन्द्रवरकुम्भजमौक्तिकीया ग्रथ्नन्वरीप्यकृतवीजगणैर्हसाय ।।'

इत्यादय श्लोका. उपलभ्यन्ते। उत्तरभागीयान्यमङ्गलश्लोकेष्वपि निर्मात्रा स्वनामोल्लेखन न कुत्रापि कृतम्। अन्तिम ४/५ पृष्ठानामभावाच्च ग्रन्थकर्त्तुर्नाम न ज्ञायते।" —देखिए मन्दारमञ्जरी के सम्पादक का निवेदन, पर्वतीयपुस्तक प्रकाशन वाराणसी, पृ० १ पर।

५१. विशकलितँ परकीयँ पदार्थजातँ स्वकाव्यविन्यस्तँ.।
याचितकमण्डनैरिव न भवति शोभा विजानीया॥
—मन्दारमञ्जरी, प्रस्तावना श्लोक १९

५२ तिलकमञ्जरी, पृ० २१
५३. मन्दारमञ्जरी, पृ० ८१-८२
५४ (क) तिलकमञ्जरी, पृ० ७४
(ख) मन्दारमञ्जरी, पृ० ११३-११५
५५ तिलकमञ्जरी, पृ० ३७६-३७७
५६ मन्दारमञ्जरी, पृ० १०२
५७. वही, पृ० ३७४-३७५
५८. तिलकमञ्जरी, पृ० १५८-१६१
५९. मन्दारमञ्जरी, पृ० २२
६०. तिलकमञ्जरी, पृ० २५९-२६०
६१ मन्दारमञ्जरी, पृ० २९-३०
६२ तिलकमञ्जरी, पृ० ९-१०
६३ मन्दारमञ्जरी, पृ० ८१-८२
६४. तिलकमञ्जरी, पृ० २०-२१
६५. मन्दारमञ्जरी, पृ० १२१-१२२
६६ तिलकमञ्जरी, पृ० ७५-७६
६७ मन्दारमञ्जरी, पृ० १२८
६८. तिलकमञ्जरी, पृ० ७८
६९. मन्दारमञ्जरी, पृ० १४६-१४८
७० तिलकमञ्जरी, पृ० १४-१५
७१ मन्दारमञ्जरी, पृ० २२१-२२२
७२. तिलकमञ्जरी, पृ० २०२-२०३
७३ मन्दारमञ्जरी, पृ० २३९
७४ तिलकमञ्जरी, पृ० २५८
७५. मन्दारमञ्जरी, पृ० २४३
७६ तिलकमञ्जरी, पृ० २९७
७७ मन्दारमञ्जरी, पृ० ३०६
७८ तिलकमञ्जरी, पृ० २८८
७९ मन्दारमञ्जरी, पृ० ३५०

८०. तिलकमञ्जरी, पृ० १५९

८१. "व्यास जी हिन्दी और सस्कृत दोनो ही भाषाओ के विद्वान् कवि थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से आपका घनिष्ठ सम्पर्क था। सम्भवत उपन्यास लिखने के लिए आपको भारतेन्दु जी से प्रेरणा प्राप्त होती रही हो।······नवीन, मनोरम, चमत्कारी मार्ग की ओर संस्कृतज्ञो की प्रवृत्ति न होते देखकर व्यास जी सस्कृतसाहित्य की इस दुर्बलता को दूर करने के लिए प्रवृत्त हुए।"

—पं० अम्बिकादत्तव्यास एक अध्ययन, पृ० ४०-४१, लेखक डॉ० कृष्णकुमार।

८२. शिवराजविजय (द्वादशनिश्वासात्मक), पृ० ३६-३७, ८वाँ सस्करण।

८३. तिलकमञ्जरी, पृ० २७२-२७३

८४. शिवराजविजय, पृ० ४८३

८५ तिलकमञ्जरी, पृ० ३४५

८६. वही, पृ० ११४-१६१

८७. शिवराजविजय, पृ० १२५-१४९

८८. तिलकमञ्जरी, पृ० २७१-२७४

८९. वही, पृ० २७२-२७३

९०. वही, पृ० ४२२-४२४

९१. शिवराजविजय, पृ० ३३१-३४०

९२. वही, पृ० ४२२

९३. वही, पृ० ५३९-५४२

९४. तिलकमञ्जरी, पृ० ८३-९३, १३६-१३७

९५. शिवराजविजय, पृ० २९१-३०१ तथा ३९९-४०७

९६. वही, पृ० २४३-२४४

९७ तिलकमञ्जरी, पृ० ४२०

९८. शिवराजविजय, पृ० ३८८

९९. तिलकमञ्जरी, पृ० ३४६

१००. शिवराजविजय, पृ० ५३१-५३५

१०१ तिलकमञ्जरी, पृ० २५५

१०२. शिवराजविजय, पृ० ५८४-५८५

१०३. तिलकमञ्जरी, पृ० ४२७-४२८

१०४ यह कथाकाव्य (उपन्यास) चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी से, १९६२ ई० मे प्रकाशित हुआ है। इसका सम्पादन रमा सक्सेना ने किया है।

१०५. चन्द्रप्रभाचरित, पृ० ७-८

१०६ तिलकमञ्जरी, पृ० ३७६-३७७

१०७. चन्द्रप्रभाचरित, पृ० ११७-११८

१०८. तिलकमञ्जरी, पृ० ४०६-४१३

१०९. चन्द्रप्रभाचरित, पृ० २२९-२३१
११०. तिलकमञ्जरी, पृ० १८९-१९१
१११. चन्द्रप्रभाचरित, पृ० ६३-६४
११२. वही, पृ० ३३-३४, ६९-७१
११३. वही, पृ० ११
११४. तिलकमञ्जरी, पृ० २०
११५. चन्द्रप्रभाचरित, पृ० ११
११६ तिलकमञ्जरी, पृ० ६२
११७. वही, पृ० १०४
११८. चन्द्रप्रभाचरित, पृ० १४
११९. वही, पृ० १६६
१२०. तिलकमञ्जरी, पृ० २६
१२१. चन्द्रप्रभाचरित, पृ० ६२
१२२. तिलकमञ्जरी, पृ० १८८-१८९
१२३. चन्द्रप्रभाचरित, पृ० ३३-३४
१२४. वही, पृ० ६४
१२५. तिलकमञ्जरी, पृ० १९०
१२६. चन्द्रप्रभाचरित, पृ० २३०-२३१
१२७. वही, पृ० ७८
१२८. वही, पृ० २०१
१२९. तिलकमञ्जरी, पृ० ४२०
१३० भ्वङ्काङ्केन्दुमितेऽब्दे (१९९१) ज्येष्ठे शुक्ले रवौ दिवसे।
एकादश्यामेष प्रारम्भि श्रीनिवासेन ॥
× × × ×।
विद्वन्मण्डलकीर्तितकीर्त्ति प्रेम्णा मुदे कवीशानाम् ॥
श्रावणकृष्णतृतीयारविदिवसेऽपूरयत्स इमम्।
× × × × ॥
यस्याभिजनो लाम्बी ह्यधिवसता राजदुर्गमक्लेशम्।
चक्रे विंशे वयसि स्थित्यै भूत्यै च कीर्त्यै वा ॥
वेदेन्द्वभ्रविलोचनेऽ (२०१४) नुसमय सस्कृत्य पौषेऽल्पश
काङ्क्ष्यश्चन्द्रमहीपतिर्मतिमता मोदाय मुद्रापित।
यस्या निर्भरसेवया बहुविधे व्यस्तेन कार्यक्रमे
स्तौम्यम्बा च पतञ्जलेस्तनुमती सेवा क्षमा पार्वतीम् ॥

—चन्द्रमहीपति, उपसहार श्लोक पृ० २८७-२८८

१३१. चन्द्रमहीपति, पृ० ९
१३२, वही. पृ० ८२

१३३. वही, पृ० १७८-१७९
१३४. वही, पृ० २२-२३
१३५. नागखाद्रीन्दुभिर्गण्ये पुण्ये वर्षे इषे दिशि ।
पक्षे वलक्षे सम्पूर्णा रङ्गनाथो व्यधादिमाम् ॥
—गुणमन्दारमञ्जरी, पृ० ५२
१३६. गुणमन्दारमञ्जरी, पृ० ३
१३७. तिलकमञ्जरी, पृ० ९
१३८. गुणमन्दारमञ्जरी, पृ० २७
१३९. तिलकमञ्जरी, पृ० १४६
१४०. गुणमन्दारमञ्जरी, पृ० ३५
१४१. तिलकमञ्जरी, पृ० १५९
१४२. गुणमन्दारमञ्जरी, पृ० ३६
१४३. तिलकमञ्जरी, पृ० ४२०
१४४. गुणमन्दारमञ्जरी, पृ० ५२
१४५. तिलकमञ्जरी, पृ० ४२७-४२८
१४६. गुणमन्दारमञ्जरी, पृ० ४५-४६
१४७ तिलकमञ्जरी, पृ० ३७२-३७३
१४८. मन्दारवती, पृ० १०२
१४९. वही, पृ० १४-१६
१५०. तिलकमञ्जरी, पृ० ११४-११८
१५१. वही, पृ० २९८
१५२. मन्दारवती, पृ० ४०
१५३. वही, पृ० २८
१५४. तिलकमञ्जरी, पृ० २९९
१५५. मन्दारवती, पृ० १५
१५६. तिलकमञ्जरी, पृ० ११६
१५७. मन्दारवती, पृ० ३५
१५८. तिलकमञ्जरी, पृ० ११२
१५९. मन्दारवती, पृ० ४७
१६०. तिलकमञ्जरी, पृ० ३४६
१६१. मन्दारवती, पृ० ५१
१६२. तिलकमञ्जरी, पृ० १८-१९

८

आधुनिक उपन्यासकला के परिप्रेक्ष्य में तिलकमञ्जरी

उपन्यास का स्वरूप

चूंकि हिन्दी समालोचको की अवधारणा बन चुकी है कि हिन्दी साहित्य मे औपन्यासिक विधा का शुभागमन, बँगला के माध्यम से, पाश्चात्य जगत् से हुआ है; इसलिए उपन्यास के स्वरूप को समझने के लिए मैं भी यहाँ सबसे पहले पाश्चात्य विद्वानो के ही विचार प्रस्तुत करना उचित समझता हूँ।

क्लारारीव ने उपन्यास को वास्तविक जीवन का चित्र माना है। इन्होने उसमे तत्कालीन समाज के व्यवहार की सत्ता स्वीकार की है, और वह यह भी मानते हैं कि उपन्यास की घटनाओ मे सर्वसाधारणता के साथ ही साथ पाठक की आत्मीयता पाने की भी क्षमता होनी चाहिए।[1] प्रसिद्ध समालोचक हेनरी जेम्स ने भी उपन्यास मे मुख्यरूप से मानवीय जीवन की अभिव्यजना को ही मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है।[2]

जे० बी० प्रीस्टले के अनुसार उपन्यास एक गद्यात्मक कथा है, जिसमे पात्र और घटनाएँ प्राय काल्पनिक हुआ करती है। यह जीवन का दर्पण है और साहित्य की अन्य विधाओ की अपेक्षा इसका क्षेत्र कही अधिक व्यापक है। इसमे प्रतिपाद्य विषय का वर्णन शुद्ध एव सरल होता है, साथ ही साथ वह व्यवहारात्मक एव आचारात्मक भी होता है। वास्तव मे देखा जाए तो उपन्यास जीवनदर्शन का एक वाहन है।[3]

अब लीजिए, कुछ भारतीय मनीषियो के भी विचार देखिए। सर्वप्रथम प्रसिद्ध उपन्यासकार प्रेमचन्द के विचारो को ही लीजिए—

"मैं उपन्यास को मानवचरित्र का चित्र मानता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यो को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है।"[4]

स्पष्ट है कि प्रेमचन्द जी मानवीय जीवन की परतो को खोलने मे ही उपन्यास की सार्थकता मानते है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उपन्यासो का कर्त्तव्य समाज का पथ प्रदर्शन करना भी माना है। वह लिखते है कि—" समाज जो रूप पकड रहा है, उसके भिन्न-भिन्न वर्गो मे जो प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो रही है, उपन्यास उनका विस्तृत प्रत्यक्षीकरण ही नही करते, आवश्यकतानुसार उनके ठीक विन्यास, सुधार अथवा निराकरण की प्रवृत्ति भी उत्पन्न

कर सकते है। किसी जन समाज के बीच काल की गति के अनुसार जो गूढ और चिन्त्य परिस्थितियाँ खड़ी होती रहती हैं, उनको गोचर रूप मे सामने लाना और कभी-कभी विस्तार का मार्ग भी प्रत्यक्ष करना उपन्यासो का काम है।"[५]

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने उपन्यासो मे मनोरजकता को प्रमुखता देते हुए लिखा है कि—

"उपन्यास इस युग का बहुत ही लोकप्रिय साहित्य है। शायद ही कोई पढा-लिखा नौजवान इस जमाने मे ऐसा मिले जिसने दो-चार उपन्यास न पढे हो। यह बहुत मनोरंजक साहित्याग माना जाने लगा है। आजकल जब किसी पुस्तक को बहुत मनोरजक पाया जाता है तो प्रायः कह दिया जाता है कि उस पुस्तक मे उपन्यास का सा आनन्द मिल रहा है। किसी-किसी योरोपियन समालोचक ने उपन्यास का एकमात्र गुण उसकी मनोरजकता को ही माना है। इस साहित्याग (उपन्यास) ने मनोरजन के लिए लिखी जाने वाली कविताओ का ही नही, नाटको का भी रग फीका कर दिया है। क्योकि पाँच मील दौड़कर रगशाला मे जाने की अपेक्षा पांच सौ मील दूर से ऐसी किताब मगा लेना कही अधिक आसान हो गया है जो अपना रगमच अपने पन्नो मे ही लिए हुए हो।"[३]

औपन्यासिक विधा के स्वरूप का मार्मिक विवेचन करते हुए डॉ० भगीरथमिश्र ने लिखा है कि—

"युग की गतिशील पृष्ठभूमि पर सहज शैली मे स्वाभाविक जीवन की एक पूर्ण-व्यापक झाँकी प्रस्तुत करने वाला गद्यकाव्य उपन्यास कहलाता है।"[७]

बाबू श्यामसुन्दरदास उपन्यास के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए लिखते है कि—

"उपन्यास के अन्तर्गत वह सम्पूर्ण कथा-साहित्य आ जाता है जो गद्य की प्रणाली से व्यक्त किया गया हो। हमने यह भी उल्लेख किया है कि उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है, और वह प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उसी की कथा कहता है। यदि हम ऊपर की पक्तियो का निष्कर्ष निकालकर उपन्यास की व्याख्या करे और कहे कि उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की कल्पित कथा है तो यह अधिक असगत न होगा।"[८]

उपन्यास के स्वरूप के सम्बन्ध मे उपर्युक्त पाश्चात्य एव पौरस्त्य मनीषियो की मान्यताओ का समन्वित विश्लेपण करते ही यह स्पष्ट होने लगता है कि प्राय सभी मनीपी उपन्यास को मानव जीवन की हृदयावर्जक मीमासा मानना चाहते है, और दरअसल बात भी कुछ ऐसी ही है। क्योकि कुछ उपन्यासो का स्वाध्याय करने से यह तथ्य सामने आया है कि आधुनिक उपन्यासो मे मानवीय समाज के भिन्न-भिन्न पहलुओ के अच्छे-बुरे, सभी प्रकार के कारनामे बड़े ही रोचक ढग से गद्यात्मक भाषा मे पाठको के सामने प्रस्तुत किए गए है।

आज के उपन्यासो मे केवल रोमास का ही नही, बल्कि सामाजिक और आर्थिक समस्याओ के उत्पीडन का भी मार्मिक वर्णन देखने को मिलता है। साथ ही साथ नारीत्व के आल-बाल मे समस्यारूपी जितने भी अकुर पनप सकते है, पनपाये जाते हे। मानवीय समाज का यथार्थता से भरा हुआ आदर्शोन्मुख सर्वांगीण काल्पनिक चित्रण जितने अच्छे

ढग से उपन्यासो से उपलब्ध हो जाता है, उतने अच्छे ढंग से साहित्य की अन्य किसी भी विधा मे उपलब्ध नही होता। देखा जाता है कि उपन्यास के प्रमुख पात्रो का जीवन बडा ही सङ्घर्षमय चित्रित किया जाता है। वे समाज का प्रतिनिधित्व करते हुए नजर आते है। फलस्वरूप उनकी कथा केवल उन्ही तक सीमित नही रहती, बल्कि वह जनसाधारण की कथा मान ली जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि युवा पीढी मानवता विरोधी समाज की जडे उखाड फेकने के लिए कमर कसने लगती है, जो अपने आप मे एक बहुत बड़ी उपलब्धि हो जाती है।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि आज के उपन्यासो मे सामाजिक और आर्थिक जटिलताओ का जाल फैला कर उनका समाधान देने की प्रवृत्ति चल पड़ी है। पर यह सब होता बड़े रोचक ढंग से है ताकि पाठको का मन उखड़ने न पाए। हालाँकि उपन्यास जैसी व्यापक विधा को परिभाषा के दायरे मे बाँधना कोई सरल काम नही है; लेकिन फिर भी उपर्युक्त तथ्यो के आधार पर उसकी एक रूपरेखा प्रस्तुत करने की इच्छा से मै कहना चाहूँगा कि मानवीय जीवन की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और सास्कृतिक अच्छाइयो और बुराइयो का गद्यात्मक भाषा मे दिल और दिमाग पर असर डालने वाली रोमास-गर्भित कथा के रूप मे समाधानोन्मुख चित्रण करना उपन्यास है।

उपन्यास के मौलिक तत्त्व

जिस प्रकार पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश नामक पचीकृत पचमहाभूतो (मूलतत्त्वो) से इस भौतिक सृष्टि की रचना होती है उसी प्रकार कथावस्तु, पात्र, सवाद, देशकाल, शैली और उद्देश्य (जीवनदर्शन) नामक छ मौलिक तत्त्वो को लेकर उपन्यास की सर्जना की जाती है। ये सभी उपन्यास की ऐसी इकाइयाँ है, जिनमे से किसी की भी उपेक्षा नही की जा सकती। क्योकि इन्हे विकसित होने के लिए एक दूसरे का सहारा चाहिए। पर उपन्यास के स्वरूप मे निखार लाने के लिए इन सभी तत्त्वो की सयोजना मे अनुपात का होना आवश्यक होता है।

उपन्यास के इन आधुनिक मौलिक तत्त्वो के अन्वेषक पाश्चात्य मनीषी है। इस विधा के आधारभूत इन उपकरणो पर जिन्होने पर्याप्त एव स्पष्ट प्रकाश डाला है उनमे ई० एम० फार्स्टर[९] और डब्लू० एच० हडसन[१०] विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

यद्यपि देखा जाता है कि अधिकाश भारतीय मनीषियो ने भी उपन्यास के इन तत्त्वो की मौलिक सत्ता को स्वीकार किया है, लेकिन कुछ ऐसे भी विद्वान् है जो उपन्यास के वास्तविक मौलिक तत्त्वो की सख्या केवल तीन ही मानते है। इस सन्दर्भ मे अभिनव-भरत आचार्य सीताराम चतुर्वेदी के विचार विशेष रूप से उल्लेखनीय है—

"कुछ विद्वानो ने उपन्यास के छ तत्त्व माने है—१. वस्तु, २. पात्र, ३. सवाद, ४ देशकाल, ५ शैली, ६. उद्देश्य। किन्तु वास्तव मे उपन्यास के तत्त्व तो तीन ही होते है—१. कथा, २. पात्र और ३. व्यापार (घटनासमूह)। उद्देश्य वास्तव मे तत्त्व न होकर परिणाम है, और सवाद तथा शैली उस कथा को उद्देश्य तक पहुँचाने के साधन है।

देशकाल भी घटनासमूह या व्यापार के अन्तर्गत ही आ जाता है। कुछ आचार्यों ने घात-प्रतिघात या द्वन्द्व (कान्फ्लेक्ट) तथा कुतूहल (सस्पेन्स) को भी तत्त्व माना है; किन्तु ये सब तो उद्देश्य सिद्धि के लिए तत्त्वो के सयोजन के कौशल है, अथवा पाठको को फँसाये रखने के उपाय है। इन्हे तत्त्व नही समझना चाहिए।[11]

साफ जाहिर है कि आचार्य चतुर्वेदी की युक्तियाँ काफी पुष्ट है। उन्होने औपन्यासिक तत्त्वो की मौलिकता के मूल को पकड़ने का प्रयत्न किया है। किन्तु अरुन्धतीन्याय को दृष्टि मे रखते हुए षट्तत्त्ववादियो की विचारधारा को भी उपेक्षित नही किया जा सकता। मैने भी अपने इस शोध-प्रबन्ध मे धनपाल की कथाकृति तिलकमञ्जरीकथा की—कथावस्तु, पात्र (चरित्रचित्रण), सवाद, देशकाल, भाषा शैली और उद्देश्य (जीवन-दर्शन) नामक—छ प्रमुख तत्त्वो की दृष्टि से ही समीक्षा की है।

कहना न होगा कि कथावस्तु ही उपन्यास का असली ढाँचा है। इसके अभाव मे तो उसकी कोई रूपरेखा तक भी नही बन सकती। लेकिन इस कथावस्तु को गतिशीलता पात्रो से ही मिलती है। अत पात्रो के अभाव मे यह अचेतन रहकर सामान्य पाठक के हृदय को आवर्जित नही कर सकती। कथावस्तु की घटनाओ के प्रभाव मे पडे हुए ये पात्र जब कभी एक-दूसरे के सम्पर्क मे आते है तो इनमे आपस मे अवसरोचित बातचीत का होना नितरां स्वाभाविक ही है। कथावस्तु मे गति देने वाले पात्रो के क्रिया-कलापो मे भौगोलिक और सामयिक अनुरूपता का भी होना परम आवश्यक समझा गया है। क्योकि इसकी विपरीतता मे उपन्यास अविश्वसनीय और उपहसनीय हो जाता है। उपन्यास मे भावों की सरल और सबल अभिव्यजना के लिए उपन्यासकार की तथा पात्रो की भाषा और शैली के महत्त्व को भी झुठलाया नही जा सकता। चूँकि प्रत्येक सहृदय उपन्यासकार अपने उपन्यास की रचना मानवीय जीवन के मानवतावादी मूल्यो को प्रतिष्ठित करने के लिए ही करता है, अत उसके इस चरम उद्देश्य को भी उसके उपन्यास का साधक तत्त्व मानने मे किसी मनीषी को आपत्ति नही होनी चाहिए। इस प्रकार हम देखते है कि साहित्य की इस औपन्यासिक विधा मे उपर्युक्त सभी (छहो) तत्त्वो का प्रमुख योगदान रहता है।

उपन्यासो के भेद

देखा जाता है कि आजकल जनसाधारण मे साहित्य की अन्य विधाओ की अपेक्षा औपन्यासिक विधा का ही अधिक प्रचार है। समाज मे उपन्यासो की माँग दिनो-दिन बढती ही जा रही है। लेखक भी इस माँग की पूर्ति करने मे रात-दिन एक किए हुए है। वे तरह-तरह के उपन्यासो को लिखकर समाज के दिल और दिमाग का ऑपरेशन करने मे लगे हुए हैं। फलस्वरूप आज का औपन्यासिक वाङ्मय इतना वैविध्यपूर्ण हो गया है कि उसका वर्गीकरण करना असम्भव नही तो कठिन अवश्य है।

अब मैं आगे उपन्यासो के मौलिक तत्त्वो के आधार पर उन्हे वर्गीकृत कर रहा हूँ। इस प्रयास मे मुझे कहाँ तक सफलता मिली है, इसका निर्णय तो सुधी पाठक ही करेंगे।

मौलिक तत्वो की दृष्टि से उपन्यासो के भेद

१. कथानक-प्रधान उपन्यास।

२. चरित्र (पात्र)-प्रधान उपन्यास—

(क) व्यष्टिवादी उपन्यास

(ख) समष्टिवादी उपन्यास।

३. नाटकीय (ं ादबहुल) उपन्यास

४. वातावरण (देशकाल) प्रधान उपन्यास।

५. शैलीप्रधान उपन्यास—

(क) साहित्यिकशैली-प्रधान उपन्यास,

(ख) विश्लेषणात्मक शैली-प्रधान उपन्यास,

(ग) पत्रात्मक शैली-प्रधान उपन्यास तथा

(घ) सस्मरणात्मक शैली-प्रधान उपन्यास।

६. उद्देश्य प्रधान उपन्यास

[अ] मनोरजनात्मक उपन्यास।

(१) तिलस्मी उपन्यास,

(२) अय्यारी उपन्यास,

(३) जासूसी उपन्यास।

[ब] वैदुष्य प्रदर्शनात्मक उपन्यास—

(१) ऐतिहासिक उपन्यास,

(२) पौराणिक उपन्यास,

(३) धार्मिक उपन्यास,

(४) सास्कृतिक उपन्यास,

(५) राजनैतिक उपन्यास,

(६) मनोवैज्ञानिक उपन्यास,

(७) यथार्थोन्मुख आदर्शवादी उपन्यास,

(८) आदर्शोन्मुख यथार्थवादी उपन्यास,

(९) यथार्थवादी उपन्यास,

(१०) आदर्शवादी उपन्यास,

(११) प्रगतिवादी उपन्यास।

[स] सामाजिकसमस्यासमाधानमूलक उपन्यास—

(क) नारीविषयक उपन्यास—

१ वालविवाहनिषेधपरक उपन्यास

२. विधवाविवाहपरक उपन्यास

३. पुर्नविवाहपरक उपन्यास

४. वेश्यावृत्त्युन्मूलनपरक उपन्यास

५. स्वतन्त्राजीविकासमर्थनपरक उपन्यास,
६. शिक्षासमर्थनपरक उपन्यास
७. दहेजप्रथोन्मूलनपरक उपन्यास।

(ख) किसानविषयक उपन्यास।
(ग) मजदूरविषयक उपन्यास।
(घ) शूद्रविषयक उपन्यास।
(ङ) पारिवारिक उपन्यास।

यद्यपि उपन्यासो के उपरिलिखित इन सभी भेदो तथा उपभेदो के लक्षण और उदाहरण प्रस्तुत करने की मेरी इच्छा तो खूब ही रही है, लेकिन अपने शोधग्रन्थ के कलेवर मे अनावश्यक वृद्धि को उचित न समझकर उसे दबाए लेता हूँ। साथ ही साथ मुझे थोड़ा यह भी विश्वास है कि उपन्यासो के भेदो के जो शीर्षक है वे अपनी परिभाषा प्रकट करने मे स्वय भी समर्थ है। इस औपन्यासिक विविधता को देखते हुए हमे आज के समाज की भी जटिलता को स्वीकार करना होगा। क्योकि सरल समाज की पृष्ठभूमि मे लिखा गया साहित्य न तो इतना मार्मिक ही होता है और न उसमे इतना वैविध्यपूर्ण उद्‌बोधन ही होता है। वह तो बस आनन्दोन्मुख रोमास के चित्रण मे ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझे रहता है। अत जटिल समाज के परिवेश मे पनपता हुआ आज का औपन्यासिक साहित्य यदि अनेक रूपो मे सामने आ रहा है तो हमे इसमे कोई आश्चर्य नही करना चाहिए; बल्कि इसे स्वाभाविक ही समझना चाहिए।

उपन्यासों का नाटकीयता की ओर झुकाव

आधुनिक उपन्यासो के प्रचलन के पूर्व यह समझा जाता था कि काव्यजगत् मे नाटकीय विधा सर्वश्रेष्ठ है (काव्येषु नाटक रम्यम्)। बात भी तब कुछ ऐसी ही थी। क्योकि कथानक को रगमच पर अभिनीत होता हुआ देखकर लोगो की तबियत खुश हो जाती थी। पर जब से आधुनिक उपन्यासो का प्रचार हुआ है तब से लोगो का मन नाटको की अपेक्षा उपन्यासो मे अधिक रमने लगा है। कारण स्पष्ट है; और वह यह है कि जब उपन्यासकारो को यह आभास हुआ कि मर्मस्पर्शी सन्तुलित कथावस्तु, कुशल अभिनेता और रसानुभूति की तीव्र सवेदना से ही नाटको को महत्ता और श्रेष्ठता मिली है तो उन्होने भी अपने उपन्यासो मे नाटको की ही तरह कथावस्तु, पात्र, सवाद, भाषा-शैली, देशकाल और उद्देश्य नामक तत्त्वो का समावेश कर लिया है। साथ ही साथ आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम नामक पाँच अवस्थाओ का भी समन्वय कर लिया है। आज यह इसी का परिणाम है कि उपन्यास पढने मे पाठको को काफी हद तक कुछ वैसा ही मजा आने लगा है जैसा कि उन्हे नाटक के देखने मे आया करता था।

हालाँकि नाटक और उपन्यास साहित्य की दो स्वतन्त्र विधाएँ है। क्योकि दोनो के ही कुछ अपने-अपने मौलिक स्वरूप है। जहाँ नाटककार को रगमच की सुविधा का सदैव ध्यान रखना पड़ता है, वहाँ उपन्यासकार इस प्रकार के सभी बन्धनो से मुक्त

रहता है। नाटककार अपने नाटक मे अपनी ओर से जहाँ एक शब्द भी नही कह पाता, वहाँ उपन्यासकार अपने उपन्यास मे जब जी चाहता है खुलकर पाठको के सामने आ जाता है, और जो उसे कहना है कह जाता है। लेकिन इतना पार्थक्य होने के बावजूद भी आज उपन्यासो का झुकाव नाटकीयता की ओर रहता ही है। क्योकि आजकल प्रत्येक उपन्यासकार अपनी औपन्यासिक रचना को लोकप्रिय बनाने के लिए नाटककारो की नाटकीयविधा की लोकप्रियता के कारणो को अपनाने मे कुछ न कुछ प्रयत्न करता ही है। लगता है कि भिन्न होते हुए भी नाटकीयता की ओर उपन्यासों के इस झुकाव का एहसास शायद विख्यात समालोचक डब्लू० एच० हडसन को भी हो गया था। क्योकि उन्होने भी तो उपन्यास को कुछ सीमा तक नाटक के समकक्ष मानने की बात कही है[१२], और मत की पुष्टि मे पाश्चात्य मनीषी मेरिनोक्राफोर्ड का भी हवाला देते हुए लिखा है कि उपन्यास तो जेबी रगमच है जो अपने आप मे केवल कथावस्तु और पात्रो को ही नही, बल्कि वेशभूषा, दृश्य तथा अन्य रगमचीय विशेषताओ को भी समेटे रहता है।[१३]

यद्यपि मेरा उपर्युक्त विश्लेषण इस तथ्य का पोषक है कि उपन्यासो का झुकाव नाटकीयता की ओर रहता है, किन्तु इसका मतलब यह हरगिज नही समझना चाहिए कि ये दोनो एक है। मैं पीछे लिख चुका हूँ कि साहित्य की ये दोनो ही विधाएँ अपने आप मे पूर्णतया स्वतन्त्र और भिन्न-भिन्न है। हाँ, हम चाहे तो यह कह सकते है कि उपन्यास और नाटक—ये दोनो ही—एक ही माता-पिता से उत्पन्न होने वाले उन दो भाईयो के समान है जिनमे से एक तो सन्यासी होकर स्वतन्त्र विचरण करता है, और दूसरा गृहस्थ बनकर गार्हस्थ्य धर्म की मर्यादा के निर्वाह मे ही अपनी शान समझता है।

उपन्यासो पर सिनेमा का प्रभाव

आज सिनेमा का युग है। स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध, लडके-लडकियाँ—सभी इससे प्रभावित है। सच बात तो यह है कि पैसो की तबाही मे भले ही कोई इसे न देखने का ढोंग दिखाए, वर्ना जिसे देखिए, वही सिनेमा देखना चाहता है। आरम्भ मे सिनेमा भी आरम्भिक उपन्यासो के समान ही केवल क्षणिक मनोरजन का साधन माना गया था, किन्तु आज हम देखते है कि औपन्यासिक विधा की भाँति ही सिनेमा भी अब मनोरजन के साथ ही साथ मानवीय समाज मे सुधार लाने का एक बहुत ही अच्छा साधन बन गया है। इसने केवल सामान्य मानव-जगत् को ही नही, बल्कि हमारे साहित्यिक ससार को भी अपनी साहित्यसर्जना के लिए एक ऐसी नई दिशा प्रदान कर दी है जिससे उनकी रचनाओ मे अभिनेयता का प्रभावकारी पुट मिलने लगा है।

सिनेमा के परिवेश मे पलता हुआ आज का उपन्यासकार जब कोई उपन्यास लिखने बैठता है तो सोचता है कि काश ! उसके उपन्यास पर भी फिल्म बन जाए, ताकि उसे अपेक्षाकृत अधिक धन और यश मिल सके। इसके लिए वह उपन्यास मे सिने-ससार की उन सारी विशेषताओ को लाने की पूरी-पूरी कोशिश करता है जिनसे दर्शको पर प्रभाव पडा करता है। उदाहरणार्थ—घटनाओ की विचित्रता, सवादो की सटीकता, मार्मिक भावो की सवेदना और मानव जीवन के सही मूल्यो की अभिव्यजना उनमे प्रमुख

है। फलस्वरूप आज ऐसे ही उपन्यास अधिक लिखे जा रहे हैं जिनमे साहित्यिकता तो कम है पर इंसानियत और फिलिमयत अधिक है।

उपन्यासकारों पर समाजवाद का प्रभाव

आज का साहित्य मुख्यरूप से समाज की ही देन है। क्योकि आज का साहित्यकार अपने परिवेश की शोषक या पोषक परिस्थितियो से ही प्रेरित होकर साहित्य की सर्जना कर रहा है। फलस्वरूप उसकी कृतियो मे मानव जाति की काली और गोरी, सभी करतूतो का मर्मस्पर्शी चिट्ठा मिल जाता है।

आज के उपन्यासकारो मे तो यह तथ्य विशेष रूप से उभरा है। मेरा विश्वास है कि इनकी कृतियो मे आपको सामाजिकता की छाप किसी न किसी रूप मे अवश्य ही मिलेगी। यदि गाँधी, नेहरू, कैनेडी, ख्रुश्चेव आदि मानवतावादी जननायको को समाजवाद के ढाँचे को तैयार करने का श्रेय है, तो उसमे प्राणो का सचार करने का श्रेय प्रेमचद जयशंकर प्रसाद, टालस्टाय, मोपासा आदि उपन्यासकारो को ही दिया जाएगा। इस मायने मे सामाजिक उपन्यासकार किसी भी समाजवादी नेता से कम आदरणीय नही है।

समाजवाद मे प्रत्येक मनुष्य को अपनी बहुमुखी उन्नति करने का पूरा-पूरा अवसर मिलने की बात कही जाती है। पर इसके लिए दूसरो के उचित हितो का गला भी नही घोटा जाता। इनमें जाति-पाँति, पुरुष-स्त्री, ऊँच-नीच, अमीर-गरीब और गोरे-काले का भेदभाव त्यागने की बात भी कही जाती है। समाज की प्रत्येक इकाई को ऊँचा उठाने का प्रयत्न किया जाता है और पददलितो को गले लगाना ही सच्चा मानवधर्म माना जाता है। सक्षेप मे यह समाजवाद 'सर्वजनहिताय' और 'सर्वजनसुखाय' होता है।

भारतीय उपन्यासकारो मे समाजवाद का शङ्ख फूंकने वालो मे प्रेमचन्द का नाम अग्रगण्य है। इन्होने सेवासदन, प्रेमाश्रम, कायाकल्प, गोदान आदि अपने उपन्यासो मे समाजवाद को बडी ही रोचक और हृदयावर्जक शैली मे प्रस्तुत किया है। जयशकरप्रसाद भी समाज के उत्पीडन से काफी प्रभावित हुए हैं, तभी तो उन्होने अपने कङ्काल तथा तितली नामक उपन्यासो मे समाजवाद की दृढता और सफलता के सपने देखने का प्रयत्न किया है।

वास्तव मे देखा जाए तो बीसवी शताब्दी के अधिकाश उपन्यासकार समाज के मर्मान्तिक घात-प्रतिघातो से प्रभावित हुए है, और यही कारण है कि उनकी कृतियो मे समाजवाद अपने नए-नए रूपो मे पाठको के सामने आया है। केवल प्रेमचन्द और प्रसाद पर ही नही, बल्कि रागेय राघव, नागार्जुन, यज्ञदत्तशर्मा, श्रीनिवासशास्त्री, फणीश्वर नाथ रेणु, राजेन्द्र यादव आदि अन्य उपन्यासकारो पर भी समाजवाद का पर्याप्त प्रभाव देखने को मिलता है। आज के सभी समाजवादी उपन्यासकारो के पात्र स्वतन्त्र वातावरण मे विकसित हो रहे हैं। उनमे मानवतावादी सिद्धान्तो की प्रतिष्ठा करने के लिए अपने व्यक्तिगत सुखो का त्याग करने की पवित्र भावना है। इसके लिए उनमे शान्तिपूर्ण सङ्घर्ष करने की क्षमता भी है। इतना ही नही, बल्कि उनमे इच्छा, आशा और विश्वास का सबल सम्बल भी है।

उपन्यासकारो मे सामाजिक रूढ़ियों के प्रति आक्रोश

साहित्यकार किसी भी देश या किसी भी काल का क्यो न हो, पर इतना निश्चित है कि उसमे मानव-कल्याण की सवेदनाएँ, वहाँ के अन्य लोगो की अपेक्षा, काफी जीवन्त होती है। वह अपने समाज की हालत को बडी बारीकी मे देखा करता है। उसे जहाँ कहीं भी अन्याय और शोषण दिखाई देता है, उसका दिल और दिमाग छटपटाने लगता है। वह समाज को उस अन्याय और शोषण की ज्वालाओं से बचने के लिए उसे अपनी साहित्यिक कृतियो द्वारा बडी मार्मिकता के साथ सकेत करना अपना धर्म समझता है।

हमारे भारतवर्ष के आधुनिक उपन्यासकारो ने भी अपने लड़खड़ाते और टूटते हुए समाज की दुर्दशा को बडी सहानुभूति के साथ देखा है। फलस्वरूप गाँवो के गरीब किसानो और नगरो के मजदूरो, शूद्र और अस्पृश्य शब्दो मे सम्बोधित किए जाने वाले असख्य पददलित मनु सन्तानो तथा घर चारदीवारी मे कैद हुई नारियो के रूप में सिसकती हुई मानवता ने उनके मन और मस्तिष्क को बुरी तरह झकझोरा है; जिसका नतीजा यह हुआ कि उन्होने धर्म और जाति के नाम की दुहाई पर समाज मे फैले हुए मानवता विरोधी रीतिरिवाजो और रूढ़ियों के खिलाफ अपने उपन्यास लिखने शुरू कर दिए। ऐसा करने वालो के नामो की यदि माला बनाई जाए तो मुशी प्रेमचन्द का नाम सदैव सुमेरु के रूप मे चमकता रहेगा। इतना ही नही, बल्कि उनका नाम तो मैं समझता हूँ कि भविष्य मे प्रथम एव श्रेष्ठ समझा जाता रहेगा।

हमारे भारतीय समाज में धर्म और परमात्मा की देन के नाम पर कुछ ऐसी कुप्रथाओ और कुरीतियो ने अपना जाल फैला लिया था जिनसे मानवता मौत के मुँह के करीब जा पहुँची थी। चन्द लोगो के सुख और ऐशो-आराम के लिए असख्य नर-नारियों की जिन्दगी तबाह कर दी जाती थी। लीजिए, मैं यहाँ अति सक्षेप मे कतिपय अमानुषिक सामाजिक रीति-रिवाजो को सङ्कलित ही किए देता हूँ; ताकि पाठको को समझने मे कुछ सुविधा हो सके—

(क) लडके-लडकियो के बालविवाह की प्रथा
(ख) दहेज प्रथा
(ग) स्त्रियो को पति के मर जाने पर विधवा जीवन बिताने की प्रथा
(घ) स्त्रियो को परदे मे रखने की प्रथा
(ङ) लडकियो को न पढाने की प्रथा
(च) वेश्याप्रथा
(छ) सजातीय विवाह की प्रथा
(ज) जमीदारी प्रथा
(झ) पूँजीवादी प्रथा
(ञ) छुआछूत (स्पृश्यास्पृश्य) की प्रथा।

समाज की इन कुप्रथाओ से पीडित नारियो, युवको, किसानो, मजदूरो और अछूत कहे जाने वाले असख्य नर-नारियो के टिमटिमाते हुए जीवन-दीप को उल्लसित

करने के लिए उपन्यासकारो ने इन सभी कुप्रथाओ के मर्मान्तक पीडा पहुँचाने वाले रोमाचकारी परिणामो को साहित्य की औपन्यासिक विधा के माध्यम से जनसाधारण के समक्ष कुछ इस प्रकार से प्रस्तुत किया कि कट्टर से कट्टर रूढिवादी लोगो के भी मन मे इन सभी कुप्रथाओ और कुरूढियो के प्रति अरुचि और घृणा पैदा होने लगी। फलस्वरूप आज हम देखते है कि यह सभी कुरीतियाँ धीरे-धीरे हमारे समाज से लुप्त होती जा रही है और यहाँ की नारियों, किसानों, मजदूरो और शूद्रो (इन्हे अब हरिजन के नाम से पुकारा जाता है) के सामाजिक और आर्थिक स्तर मे भी दिनो दिन सुधार हो रहा है।

उपन्यासकारों पर योरोपीय सभ्यता का प्रभाव

योरोप प्रगतिवादी भूभाग है। वहाँ की सभ्यता मे गजब का आकर्षण है। वहाँ के लोगो का रहन-सहन, पहिनावा-ओढावा और शादी-सम्बन्ध के विषय मे स्वतन्त्र निर्णय लेने की भावना का प्रभाव आज भारत मे ही नही, बल्कि करीब-करीब सभी देशो मे देखा जाता है। उनकी वेशभूषा और भाषा का जो प्रभाव हमारे यहाँ जन-साधारण पर पड रहा है वह किसी से छिपा नहीं है।

हमारे आज के उपन्यासकार भी इसी योरोपीयीकृत समाज मे रहते हैं। फिर भला वे इस प्रसरणशील ओर मनोमोहनी सभ्यता से कैसे अछूते रह सकते है? उनकी रचनाओ मे योरोपीय सभ्यता के पुट का लगना, मै तो समझता हूँ कि, नितान्त स्वाभाविक ही है, और विशेष रूप से तब, जब कोई उपन्यासकार अपने उपन्यास की कथा-वस्तु को दफ्तरो, क्लबो, होटलो, ब्यूटीपार्को, कालेजो, यूनिवर्सिटियो और सिविल लाइन्स के बँगलो के परिवेश मे पनपाता है। क्योकि आज इन योरोपटाइप्ड सभ्य स्थानो से सम्बन्ध रखने वाले पात्रो मे योरोपीय सभ्यता का अभाव देखना, कम से कम मेरी समझ से तो, दिन को दिन और रात को रात न मानने के समान ही मिथ्यात्वपूर्ण होगा। अत आज के उपन्यासकारो की कृतियो मे मुखरित होती हुई योरोपीय सभ्यता के प्रभाव की हमे न तो उपेक्षा करनी चाहिए; और न निन्दा।

तिलकमञ्जरी . एक उपन्यास

आज के साहित्य समीक्षको मे एक नितान्त भ्रान्त धारणा फैलती जा रही है; और वह भ्रान्त धारणा यह है कि प्राचीन सस्कृत गद्य साहित्य मे औपन्यासिक विधा का अभाव है।[१४] अपनी इस धारणा की पुष्टि मे उनका आशय है कि आज उपन्यासो का जो स्वरूप है उसमे जन-जीवन की व्याख्या मिलती है; साथ ही साथ मानवता की पृष्ठ-भूमि मे समाज के पारिवारिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक आदि भिन्न-भिन्न पहलुओ के गुण और दोषो पर रोचक रीति से प्रकाश डाला जाता है; अर्थात् मानवमात्र की सभी व्यावहारिक गतिविधियो का विश्लेषण देखने को मिलता है; किन्तु सस्कृत साहित्य मे ऐसी मानव-मीमासा का सर्वथा अभाव रहता है। वहाँ के कथानक सिर्फ राजघरानो से ही सम्बन्धित रहते हैं, और वे भी केवल इस मायने मे, कि किसी राजकुमार ने किसी राजकुमारी को कैसे प्राप्त किया? उनमे प्राकृतिक वर्णन, वस्तुवर्णन

और पात्रो के शारीरिक सौन्दर्य वर्णन की इतनी भरभार रहती है कि कथानक का तो बारबार गला ही घुटता नजर आता है। हाँ, उनके ये वर्णन होते बडे ही प्रौढ है। शव्द-शय्या तो बस देखते ही बनती है। लेकिन सामान्य जन-जीवन की ओर उनमे फूटी आँख से भी नही देखा जाता। ऐसी हालत मे उनके उन उदात्त और रसपेशल वर्णनो को देखकर वासवदत्ता, कादम्बरी, तिलकमञ्जरी आदि कथाकृतियो को गद्यकाव्य तो कहना चाहिए, पर उपन्यास नही।

लेकिन गम्भीरता के साथ विचार करने से उनकी यह उपर्युक्त धारणा विवेकपूर्ण प्रतीत नही होती है। मै मानता हूँ कि सस्कृत की पुरातन कथाकृतियो मे प्रकृति की छठा और नायक-नायिकाओ की रूप-माधुरी की वेहद भरमार है, वाक्य-विन्यास भी अलङ्कारो से काफी बोझिल है, पर इसका मतलब यह तो हरगिज नही लेना चाहिए कि उनमे उपन्यास के सङ्घटनात्मक तत्त्वो का अभाव है। आप वासवदत्ता, कादम्बरी, अवन्तिसुन्दरी, तिलकमञ्जरी, गद्यचिन्तामणि, मन्दारमञ्जरी आदि सस्कृत की किसी भी कथाकृति को लीजिए, उसमे एक सुनियोजित कथावस्तु, व्यक्तित्वशाली पात्र और उनकी अपने ढँग की एक शैली आपको अवश्य ही मिल जाएगी। रहा देशकाल और उद्देश्य, सो उसका भी उसमे अभाव नही है। हाँ, इतना अवश्य है कि उनका प्रधान उद्देश्य अपनी कला का प्रदर्शन ही था। गौणरूप से भी वे अपने आश्रयदाता राजाओ और विद्वानो के मनोरजन मे ही अपनी सर्जना की इतिश्री समझते थे।

इस सन्दर्भ मे हमे यह नही भूल जाना चाहिए कि वह जमाना राजतन्त्र का था। अच्छे लेखको को राजाओ का प्रश्रय एव सम्मान प्राय प्राप्त हो ही जाता था। फलस्वरूप राजप्रासादो की विलासिता को देखते-देखते लेखको की बाहरी आँखो के समान भीतरी आँखे भी राजघरानो के उदीयमान राजकुमारो और राजकुमारियो के प्रणयचित्रण तक ही सीमित हो जाती थी। साधारण जनसमाज की आवश्यकताओ, इच्छाओ और रुचियो की ओर ध्यान देने के लिए न तो उनके पास समय था और न उनका परिवेश ही ऐसा था कि वे उधर ध्यान देते। इसके अतिरिक्त एक सबसे बडी बात यह थी कि वह समाज उन्नीसवी और बीसवी शताब्दी के समाज समान जटिल भी नही था। उस समय न तो अभाव का ताण्डव था और न विपमता की खाई। परिवार मे, नारियो मे और शूद्र कहे जाने वाले व्यक्तियो मे असन्तोष किंवा उत्पीडन नही था। जनसाधारण मे सामाजिक और आर्थिक मान्यताओ के प्रति किसी भी प्रकार का प्रश्न-वाचक चिह्न भी नही था। ऐसे परिवेश मे राजा-महाराजाओ के आश्रित रहने वाले सस्कृत के कथाकारो के सामने अपनी कृतियो मे केवल राजकुमारो और राजकुमारियो के प्रणयपरिपाक के अतिरिक्त वर्णन के लिए विषय ही क्या रह गया था? और इसी का परिणाम यह हुआ होगा कि राजमहलो के चन्दा और तारे (राजकुमार और राजकुमारियाँ) ही उनकी कथाकृतियो के प्रमुख पात्र हो गए।

जिस प्रकार आज के उपन्यासकारो की कृतियो मे समाज, परिवार, नारी और अर्थव्यवस्था को लेकर दी गई या दी जाने वाली अभिव्यक्ति इस युग और इस परिवेश की ही पुकार है, ठीक उसी प्रकार सस्कृत की वासवदत्ता, कादम्बरी, तिलकमञ्जरी,

मन्दारमञ्जरी आदि पुरातन कथाकृतियो मे उपलब्ध होने वाली कलापक्षीय प्रबलता भी उस युग और उस परिवेश की ही देन माननी चाहिए। क्योकि साहित्यकार की सर्जना पर उसके युग और परिवेश का प्रभाव अवश्य ही पडता है।

किसी भी कृति को उपन्यास की सज्ञा प्राप्त करने के लिए यह जरूरी नही होता कि उसके पन्ने नारियो और गरीबो के आँसुओ से अवश्य ही गीले किए जाएँ, और न यही जरूरी होता है कि दाम्पत्य सूत्र में बँधने के लिए उद्यत युवा और युवती को समाज और धर्म के ठेकेदारो द्वारा इसलिए सताया हुआ दिखाया जाए कि वे दोनो विजातीय हैं। इसी प्रकार रोटी और रोजी के लिए सङ्घर्ष दिखाना ही उपन्यास का काम नही है।

यहाँ मेरा मतलब यह हरगिज नही है कि उपन्यास के विषय गरीबो की आहे और नारियों के आँसू नही होते। ये होते है और खूब होते हैं, पर सिर्फ यही होते है यह मैं नही मानता। क्योकि इनके अतिरिक्त भी उपन्यासो के बहुतेरे प्रतिपाद्य विषय होते है, जिनमे उच्चकोटि की साहित्यिक और रोमांटिक कथा का वर्णन भी सम्मिलित है। यही कारण है कि उपन्यासो के प्रकार भी कई माने गए है।

हम देखते हैं कि पुराने जमाने के मनुष्यो मे और आज के मनुष्यों मे जमीन-आसमान का अन्तर है। भाषा, भावना, वेश-भूषा, खान-पान और रहन-सहन मे आज का मनुष्य पुराने जमाने के मनुष्यो से बिलकुल भिन्न है। पर इतना सब कुछ होने के बावजूद भी जहाँ तक मनुष्य होने का दावा है, वह दोनो मे समान है क्योकि मनुष्य की जो आधारभूत पहचान है वह है उसका शारीरिक ढाँचा, और वह उन (पुराने और नए मनुष्यो को भी मनुष्य ही कह कर पुकारते हैं। ऐसा हम कभी नही सोचते है कि सामाजिक और आर्थिक जटिलताओ से घिरा हुआ आज का मनुष्य ही मनुष्य है, और जो सरल और सन्तोषपूर्ण जीवन बिताता रहा है वह मनुष्य नही बल्कि कुछ और रहा होगा।

भाषा, भाव और रहन-सहन के ढँग मे अन्तर होने के बावजूद भी पुराने समय के लोगो को भी मनुष्य कहने का यह सिद्धान्त उपन्यास के क्षेत्र मे, पता नही, क्यो लागू नही किया जाता? यदि गहराई से देखा जाए तो पता चलेगा कि उपन्यास का आधारभूत तत्त्व है गद्यात्मक कथानक। रहा इसका प्रतिपाद्य विषय और प्रस्तुतीकरण, सो उपन्यासकार के पर्यावरण पर निर्भर रहता है। इस दृष्टि से यदि हम देखते है तो पता चलता है कि आज के उपन्यासो की भाँति ही सस्कृत की वासवदत्ता, कादम्बरी, तिलकमञ्जरी आदि पुरातन कथाकृतियो मे भी एक सुनियोजित और दूरगामी गद्यात्मक कथानकका ढाँचा है। भले ही उन कथानकों का प्रतिपाद्य विषय और उनके प्रस्तुतीकरण का ढँग उनका अपना अलग हो। फलस्वरूप आज के साहित्य समीक्षको को चाहिए कि वे वासवदत्ता, कादम्बरी, तिलकमञ्जरी, मन्दारमञ्जरी आदि सस्कृत की पुरातन कथाकृतियो को भी औपन्यासिक विधा मे गिनें और उन्हे उपन्यास की सज्ञा देने का न्यायसगत साहस करे। क्योकि साहित्य की जिस विधा को वे आजकल उपन्यास का नाम दे रहे हैं, पुराने जमाने मे उसे ही गद्यकाव्य की सज्ञा मिली थी। फलस्वरूप आज के उपन्यास और तब के गद्यकाव्य मे कोई मौलिक भेद नही है। अब जहाँ तक मेरी समझ

का प्रश्न है, मैं तो यही कहूँगा कि कादम्बरी और तिलकमञ्जरी जैसी कथाकृतियो को उपन्यास कहना उतना ही औचित्यपूर्ण है जितना कि पुराने जमाने के लोगो को भी मनुष्य कहना।

सम्भव है कि नवीनता के नशे में मस्त रहने वाले और भारत के अतीत की अच्छाईयो पर परदा डालने मे ही अपनी विद्वत्ता की निष्पक्षता का ढोल पीट कर अन्ता-राष्ट्रीय यश को पाने की घात मे लगे रहने वाले कतिपय भारतीय मनीषी मेरे इस सिद्धान्त से नाक-भौं सिकोडे, और इसे सङ्कीर्णता या पूर्वाग्रह का नाम देने की बात सोच उठें। लेकिन मेरा यह दृढ विश्वास है कि यदि वे उपन्यास की शाश्वत आत्मा को ध्यान मे रखकर कादम्बरी, तिलकमञ्जरी आदि सस्कृत की पुरातन कथाकृतियो को परखने का सही-सही प्रयत्न करेंगे तो उन्हे उन कृतियो मे भी उपन्यास की आत्मा का दर्शन अवश्य ही होगा। हाँ, पश्चिम की भक्ति मे कमी आती देखकर वे उस आत्मा को देखा-अनदेखा कर दें, यह बात और है।

हर्ष का विषय है कि आज भी साहित्यिक समीक्षा के क्षेत्र मे सही बात कहने का रिस्क उठाने वाले कुछ लोग है। हम अपने इस प्रकरण मे डॉ० सत्येन्द्र के नाम और विचारो को उद्धृत करने का लोभ नही रोक पा रहे है। उन्होने सस्कृत की कथाकृतियो का गहन अध्ययन करने के पश्चात् अपनी आत्मा मे उठी हुई आवाज को दबाया नही, बल्कि डके की चोट लिख दिया—

"सस्कृत मे साहित्यिक कहानियाँ है, जिनमे वस्तुत उपन्यास की परम्परा छिपी है। दशकुमारचरित, कादम्बरी और प्राचीन उपन्यास हैं। उपन्यास का आधुनिक ढाँचा योरोप से अवश्य आया, परन्तु मूल रूप मे भारत ने कादम्बरी, दशकुमारचरित जैसे उपन्यासो को पहले ही जन्म दिया है।"[१५]

इस उद्धरण से साफ जाहिर होता है कि डॉ० सत्येन्द्र सस्कृत की कादम्बरी आदि गद्यात्मक कथाकृतियो को उपन्यास मानते है, जो सोलहो आने सही है।

डॉ० शान्तिभारद्वाज[१६] और डॉ० मक्खनलालशर्मा[१७] के भी विचार कुछ इसी प्रकार के है। दोनो हाथो से तलवार चलाने वाले वीरगाथाकालीन राजपूत योद्धा की भाँति सस्कृत और हिन्दी—दोनो ही—भाषाओ मे साहित्यसर्जना करने वाले प्रसिद्ध साहित्यकार प० अम्बिकादत्तव्यास ने गद्यकाव्य के जो तमाम भेद किए हैं, उनमे उन्हे क्या पुरातन और क्या आधुनिक—सभी प्रकार की गद्यकृतियों का समावेश अभीष्ट था। उनकी दृष्टि मे भी वासवदत्ता, कादम्बरी, शिवराजविजय आदि कथाकृतियाँ उपन्यास की सज्ञा पाने की अधिकारिणी है। अपने विचारो को उन्होने इस प्रकार प्रकट किया है।

"......जो गद्यो मे ही शोभित हो उसे गद्यकाव्य कहते है। यहाँ श्रव्य-ग्रन्थ रूप गद्यकाव्य का विचार किया जाता है। इसी गद्यकाव्य को उपन्यास कहते है—जैसे कादम्बरी अथवा मेरा रचित शिवराजविजय इत्यादि।"[१८]

अब इसी पृष्ठभूमि मे धनपालकृत तिलकमञ्जरीकथा की औपन्यासिकता का प्रश्न हमारे सामने आ जाता है। जहाँ तक उसकी औपन्यासिकता (अर्थात् उपन्यास

कहलाने) की बात है, मैं समझता हूँ कि उपर्युक्त विवेचना के पश्चात् अब इस तथ्य मे कोई सन्देह नही रह जाता कि तिलकमञ्जरीकथा अपने शुद्ध रूप मे सस्कृत भाषा मे लिखा गया एक अतिपरिष्कृत, सुनियोजित एव रोचक साहित्यिक उपन्यास है। इसकी सुसङ्गठित एवं कौतूहलवर्धक कथावस्तु, अनुपम व्यक्तित्व से परिपूर्ण पात्र, चुटीले और चुभते हुए कथोपकथन, प्रवाहपूर्ण भाषा और शैली, देश-काल की उपयुक्तता और कलात्मक उद्देश्य को देखकर भला ऐसा कौन होगा जो इसे सर्वाङ्गसुन्दर उपन्यास मानने से इन्कार करेगा ? इसमे जहाँ एक ओर सहृदय समाज को आनन्दित और आकृष्ट करने की पूरी-पूरी क्षमता है, वहाँ दूसरी ओर धार्मिक और दार्शनिक व्यक्तियो को भी सन्तुष्ट करने का सामर्थ्य है। इस दृष्टि से हम चाहे तो कह सकते है कि धनपाल ने अपनी इस तिलकमञ्जरीकथा मे साहित्य के जगमगाते हुए मन्दिर मे धर्म और दर्शन के छोटे-छोटे दो घृत-दीप भी जलाने का प्रयत्न किया है।

आज के उपन्यासों से तिलकमञ्जरी की तुलना

अब रही बात उसकी आज के उपन्यासो से तुलना की, सो इस सम्बन्ध मे मेरा विचार है कि तिलकमञ्जरीकथा साहित्यिक एव रोमांटिक उपन्यास होने के कारण आज के इन ज्वलन्त समस्यामूलक उपन्यासों से काफी भिन्न पड जाती है।

आज के उपन्यास धर्म और आदर्श की सुनहरी शृङ्खलाओ मे जकडी हुई सर्वोदय के खुले हुए भरे-भरे मैदान मे मस्ती से घुमाने की बात कह रहे है। इनमे कला का प्रदर्शनकला के लिए नही, बल्कि जनजीवन को चित्रित करने के लिए ही किया जा रहा है। फलस्वरूप इनमे साहित्यिकता का अश उपेक्षित हो गया है। लेकिन जब हम 'तिलकमञ्जरीकथा' के वर्णन-कला पर विचार करते हैं तो पाते हैं कि उसमे साहित्यकार ने अपनी कला की अभिव्यक्ति प्रधानरूप से काव्य-कला की ही श्रीवृद्धि के लिए की है। इसका प्रमुख कारण, जैसा कि मैं इसी प्रकरण मे पहले लिख चुका हूँ, यही रहा होगा कि तत्कालीन समाज अपनी सामाजिक और आर्थिक मान्यताओ से सन्तुष्ट रहता होगा। उसमे रूढियो और प्रथाओ के लिए विद्रोह की भावना नही रही होगी। साहित्यकारो के कानो मे करुणक्रन्दन नही पहुँचता होगा। उनकी आँखो के सामने गरीबी और भुखमरी का नगा नाच नही होता होगा। इसीलिए वे निश्चिन्त होकर बड़े आराम से कला और सरस्वती की आराधना करते रहे होगे। यही कारण है कि धनपाल की तिलकमञ्जरी-कथा मे साहित्यिक-माधुरी का आस्वाद तो पदे-पदे प्राप्त होता है, पर उसमे आज के उपन्यासो की तरह किसी समस्या का उत्थान और समाधान होता हुआ नजर नही आता है। ऐसी स्थिति मे उसकी आज के इन समस्यामूलक उपन्यासो से तुलना करना कुछ उचित नही प्रतीत होता।

हालाँकि तिलकमञ्जरीकथा मे भी सपने मे समरकेतु के प्रथम दर्शन पर, तथा वज्रायुध के साथ विवाह करने के लिए तैयार हो जाने की पिता की आज्ञा सुनने पर मलयसुन्दरी के विचारो और क्रियाकलापो के माध्यम से धनपाल ने वैवाहिक निर्णय मे युवा-युवतियो की मनोभावना को आदर देने का अच्छा-खासा प्रयास किया है, और इसी

प्रकार वणिक्पुत्र तारक और शूद्र कन्या प्रियदर्शना के प्रेमविवाह की चर्चा करके उन्होंने अन्तर्जातीय विवाह की भी सम्भावना को पाठकों के समक्ष लाने का प्रयत्न किया है; लेकिन उनके ये दोनो ही प्रयत्न उनके उपन्यास की प्रमुख समस्या बनने का दावा नही कर सकते है। हाँ, समाज के एक पहलू के हल्के आभास मात्र अवश्य ही कहे जा सकते है।

धनपाल और आज के उपन्यास

मन्दिर के पूर्णकाम पुजारी और समाजवाद का सपना देखने वाले लोगों मे जो अन्तर होता है, धनपाल और आज के इन उपन्यासकारों मे भी वही अन्तर है। धनपाल अपने आप मे पूर्णतया सुखी और सन्तुष्ट थे। उन्हे राजा भोज का अनुपम आश्रय प्राप्त था। उनका पर्यावरण अभावो और कुण्ठाओ से सर्वथा मुक्त था। अतः उनकी दृष्टि जीवन के उदात्त एव आह्लादपूर्ण पक्ष पर ही गई। जबकि आज के उपन्यासकारो के सामने ही नही, बल्कि चारो ओर सामाजिक एव आर्थिक विषमताओ की महामारी मुँह खोले हुए खडी है। आज समाज की अधिकांश मान्यताओ के सामने प्रश्नवाचक चिह्न लग चुका है। ऐसी हालत मे आज के उपन्यासकारो की लेखनी, हम देखते है कि, वर्ग विशेष की पीडाओ और आँसुओ को पोंछने मे ही लग गई है, और यह स्वाभाविक एव आवश्यक भी है।

धनपाल ने अपने इस उपन्यास मे भूलोक निवासी राजकुमार हरिवाहन की प्रणयलता को विद्याधरो के सुरम्य एव उर्वर देश मे अकुरित, पल्लवित एव पुष्पित करके यह सिद्ध करना चाहा है कि अपनी यह धरती भी अन्य उत्कृष्ट लोको की तरह स्पृहणीय है। उपन्यासकार की दृष्टि से धनपाल साहित्यिक उपन्यासकारो की ही कोटि मे गिने जाने योग्य हैं। क्योकि उन्होने अपनी कृति मे कथावस्तु को सरस एवं साहित्यिक स्वरूप प्रदान करने का ही विशेष प्रयत्न किया है।

लगता है धनपाल के समय मे धार्मिक मान्यताएँ काफी दृढ थी। लोग उनमे विश्वास भी खूब करते थे। इसीलिए धनपाल ने लक्ष्मी और जिनेन्द्र भगवान् की आराधना को मनोरथो की पूर्त्ति का साधन साबित किया है। लेकिन आज चूंकि धर्म पाषण्ड का रूप ले चुका है, और भोली-भाली जनता को ठगने का साधन बन चुका है, इसीलिए आज के उपन्यासकारो को इसका विरोध करना पड रहा है जो किसी हद तक ठीक भी है।

धनपाल ने अपने कथानक मे गति लाने के लिए जिन पात्रो की परिकल्पना की है उनमे अधिकाश या तो राजमहलो मे रहने वाले हैं, या फिर राजमहलो से सम्बन्ध रखते हैं। वह स्वय भी भोज जैसे राजा के अनन्य कृपापात्र रहे है। चूँकि राजाओ, राजकुमारो और राजकुमारियो के ललित मनोभावो की उन्हे काफी गहरी जानकारी रही है, इसीलिए उन्होने अपनी साहित्यिककला के सुनहले धागे मे प्रणय के मोती पिरोकर सहृदय एव रसिक पाठको के कण्ठ की शोभा बढाने के लिए तिलकमञ्जरीकथा के रूप मे एक ऐसी मनोहर माला तैयार की है जिसके विषय मे आज के ये उद्विग्न साहित्यकार एव

उपन्यासकार सोच भी नही सकते। उपन्यासकार सम्राट् प्रेमचन्द से लेकर आज गुलशन नन्दा तक ऐसा एक भी उपन्यासकार नही दिखाई देता जो कथावस्तु की उदात्त परिकल्पना एव उसकी साहित्यिक अभिव्यजना के क्षेत्र मे धनपाल की बराबरी कर सके।

हाँ, यह बात और है कि धनपाल अपनी तिलकमञ्जरीकथा मे सामाजिक एव आर्थिक समस्याओ की कटुता एवं विषमता को आज के उपन्यासकारो की भाति मार्मिक अभिव्यक्ति देने मे असमर्थ रहे है। पर इसमे धनपाल का दोष भी क्या है? वह समाज ही ऐसा सन्तोषी था कि उसमे इनके प्रति आक्रोश की तो बात रही दूर, किसी प्रकार का प्रश्नवाचक चिह्न तक न था। यही कारण था कि धनपाल की कला प्रमुख रूप से काव्य-कला की ही साधना मे लगी रही।

तिलकमञ्जरीकथा और सिनेमा स्टेज

आज जब कोई उपन्यास प्रभाव एव कौतूहल से परिपूर्ण अभिनय की दृष्टि से सिनेमा स्टेज की कसौटी पर खरा उतर जाता है तो समझा जाता है कि उसकी सफलता एव लोकप्रियता मे चार चाँद लग गए। वैसे तो प्रत्येक फिल्म एक मायने मे उपन्यास ही है। लेकिन मैं यहाँ उन्ही उपन्यासो की बात कह रहा हूँ जो समाज के सामने पहले तो उपन्यास के रूप में आए, पर बाद मे जिन्हे फिल्म का भी रूप दिया गया। आचार्य चतुरसेन, भगवतीचरण वर्मा, दत्त भारती, गुलशन नन्दा आदि आधुनिक उपन्यासकारो के कई उपन्यास इसी कोटि मे आते हैं।

धनपाल की तिलकमञ्जरीकथा को जब हम सिनेमा स्टेज की दृष्टि से देखते हैं, तो कुछ कठिनाई सी नजर आती है जिसका एकमात्र कारण यह है कि इसमे विजयवेग, समरकेतु, यक्षपालित, गन्धर्वक, मलयसुन्दरी आदि कई व्यक्तियो ने कुछ न कुछ बीती हुई घटनाओ को सुनाकर कथासूत्र को आगे बढाया है। एक दो की तो कोई बात नही, चलता ही है, पर इतने लोगो की कही हुई दास्तानो को फ्लेशबैक मे दिखाने से दर्शको को बारम्बार छूटते हुए वर्तमान कथासूत्र को पकड़ने मे अवश्य ही कुछ असुविधा का अनुभव होने लगेगा, जिससे दर्शको की आनन्दधारा मे भी व्यवधान पड सकता है। क्योकि यह निश्चित है कि उन तमाम फ्लेशबैक दृश्यो की सङ्गति बैठाने मे दर्शको के हृदय पक्ष पर होने वाले बुद्धिपक्ष के आक्रमण को रोकना फिर फिल्म निर्देशक के वश की बात न रहेगी। लेकिन यह कठिनाई कोई ऐसी कठिनाई नही है जिसका कि समाधान न किया जा सके। क्योंकि दर्शको को उपर्युक्त असुविधा किंवा रसापकर्षकता से दूर रखने के लिए इस (तिलकमञ्जरीकथा) की छोटी-छोटी फ्लेशबैक कथाओ को तो सम्बन्धित पात्रो द्वारा सूचित करके ही समाप्त किया जा सकता है; कुछ को पृष्ठभूमि के रूप मे दिखाया जा सकता है, और अवशिष्ट को शुद्ध फ्लेशबैक के रूप मे भी फिलमाया जा सकता है। इस प्रकार इन फ्नेशबैक कथाओ के प्रस्तुतीकरण की समस्या का समाधान होते ही तिलकमञ्जरीकथा का फिल्मीकरण अतीव सरल एव रोचक प्रतीत होने लगता है।

कुछ लोग इस प्रकार की भी आपत्ति उठाने की भूल कर सकते है कि विद्याधर

मुनि का आकाशमार्ग से चलना, हाथी का आसमान मे उडना और फिर वही से अदृष्ट-पारसरोवर मे गिरना, गन्धर्वक का विमान द्वारा आकाश मे चलना, तिलकमञ्जरी का भी विमान द्वारा गगन-यात्रा करना, तोते द्वारा पत्र को ले जाना और ले आना आदि कुछ ऐसी घटनाएँ है जो अभिनेयता मे बाधा डाल सकती है। लेकिन इस सम्बन्ध मे मेरा निवेदन यह है कि नाटकीय रगमच पर ये घटनाएँ अभिनेयता मे भले ही बाधा पहुँचाएँ, किन्तु जहाँ तक सिनेमास्टेज पर इनके फिल्माङ्कन की बात है, मेरा विश्वास है कि उसमे कोई भी बाधा नही पड सकती है। क्योकि आज बिजली और कैमरा का जमाना है। चलती-फिरती और बोलती हुई छायाओ का युग है। आज का फिल्मकार उपन्यासकार की प्रत्येक रसमयी घटना का फिल्माङ्कन करने की क्षमता रखता है। सम्पूर्ण रामायण, महाभारत, हरिदर्शन, हाथी मेरे साथी, गाय और गोरी नामक फिल्मे उनकी इस क्षमता का ज्वलन्त प्रमाण है। जिन्होने इन फिल्मों को देखा है, मैं समझता हूँ कि, उन्हे तिलकमञ्जरीकथा के फिल्मीकरण के विषय मे इस प्रकार की आशङ्काएँ परेशान नही करेंगी।

अब बात सकती है आकाश मे उड़ने की स्वाभाविकता और अस्वाभाविकता को लेकर। यह मैं भी मानता हूँ कि बिना किसी यन्त्र की सहायता के साधारण मनुष्य का आकाश मे उड़कर चलना असम्भव है। पर तिलकमञ्जरीकथा मे जो भी पात्र आकाश मे चलते हुए दिखाए गए हैं, वे या तो विद्याधर हैं (जो अपनी कल्याणप्रद मन्त्र विद्याओ के बल से देवकोटि मे ही गिने जाते है), या फिर सिद्ध योगी है। इन लोगो के लिए आकाश मे विहार करना बिल्कुल बाएँ हाथ के खेल की तरह ही होता है। अत. अस्वाभाविकता की आशङ्का जरा भी नही करनी चाहिए।

इस सन्दर्भ मे लगे हाथ मैं यह भी कह देना चाहता हूँ कि फिल्म मे भावुकता लाने के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण प्रसगो मे गीतो का समावेश अवश्य ही करना होगा। हरिवाहन के जन्मोत्सव, जिनेन्द्र अभिषेकोत्सव, काची के वसन्तोत्सव, मलयसुन्दरी की विरह दशा, हरिवाहन की निराशा और तिलकमञ्जरी के पश्चात्ताप आदि विषयो को लेकर सम्बन्धित पात्र द्वारा काफी सरस गीतो को गवाया जा सकता है।

इस प्रकार निष्पक्ष मीमांसा करने के पश्चात् मैं इस तथ्य पर पहुँचा हूँ कि सिनेमा स्टेज के लिए तिलकमञ्जरीकथा का फिल्माङ्कन बड़े शानदार ढँग से किया जा सकता है। मेरा विश्वास है कि हरिवाहन को विद्याधरो के देश मे घूमता हुआ देखकर दर्शको को अवश्य ही अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति होगी, और वे हरिवाहन और तिलकमञ्जरी, तथा समरकेतु और मलयसुन्दरी जैसे आदर्श दम्पतियो को कभी न भूल सकेंगे।

वास्तव मे धनपाल ने अपने इस उपन्यास के लिए जो कथावस्तु चुनी है वह शुद्ध रूप मे भारतीय सस्कृति और सभ्यता की प्रतीक है। इसमे कोई सन्देह नही है कि उन्हे दाम्पत्य प्रेम की पवित्रता एव दृढता की सशक्त एव स्वाभाविक अभिव्यक्ति देने मे अद्वितीय सफलता मिली है। 'सती च योषित् प्रकृतिश्च निर्मला पुमासमभ्येति भवान्त-रेष्वपि' कहकर महाकवि माघ तो चले गए, किन्तु उनकी इस सूक्ति सुधा मे आस्वाद

भरने का काम धनपाल ने 'तिलकमञ्जरी' को लिखकर पूरा किया। मैं तो कहता हूँ कि भारतीय सस्कृति के इस पवित्र दाम्पत्य पक्ष के पोषण के लिए तिलकमञ्जरीकथा का फिल्मीकरण पर्याप्त उपयोगी ही नही, बल्कि नितान्त आवश्यक भी है।

न्दर्भ

१. "The novel is a picture of real life & manner and of times in which it is written. The novel gives familiar relation of such things, as pass everyday before our eyes, such as may happen to our friends or to ourselves, & the perfection of it is to present every scene in so easy and natural manner and to make them appear so probable as to deceive us into persuation (atlast while we are reading) that all is real until we are affected by joy, or distresses of persons in the story as if they were our own."

—The Progress of Romance.

२. "The only reason for the existence of a novel is that it does attempt to represent life."

—The art of fiction in Literary Criticism in America, p. 141

३. "It is a narrative in prose, treating chiefly imaginary characters and events......It is a large mirror of life, and has a far greater range than any other form of Literature....We may regard fiction as a narrative pure and simple, or as a picture of manners, or as an exhibition of character, or as the vehicle of certain philosophy of life."

—The English Novel by J. B. Priestley, p. 1-2

४. कुछ विचार, पृ० ४२

५. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६४४, द्वितीय सस्करण।

६. साहित्यसहचर, पृ० ७६, द्वितीय सस्करण।

७. काव्यशास्त्र, पृ० ८५

८. साहित्यालोचन, पृ० १८०

९. "See his Aspects of the Novel.

१०. "......We will begin with a brief statement of the principal elements which enter into the composition of a novel.......In the first place, the novel deals with events and actions, with things which are suffered and done, and these constitute what we

commonly call the plot Secondly, such things happen to people and are suffered or done by people; and the men and women who thus carry on the action form its Dramatic Persons or characters. The conversation of these characters introduces a third element—that of dialogue, often so closely connected with characterisation as to be an entegral part of it Fourthly, the action must take place, and the characters must do and suffer, somewhere and at sometimes; and thus we have a scene and a time of action. The element of style may be put next on our list, and with this it might seem that for practical purposes our analysis is complete. But there still remains a sixth component to which too much importance can hardly be attached. Directly or indirectly, and whether the writer himself is conscious of it or not, every novel must necessarily present a certain view of life, and of some of the problems of life,...Plot, characters, dialogue, time and place of action, style and a stated or implied philosophy of life, then, are the chief elements entering into the composition of any work of prose fiction, small or great, good or bad."

—An Introduction to the study of Literature
By W. H. Hudson, pp. 130-131

११. समीक्षाशास्त्र, पृ० ६७९

१२. "......Manifestly, the drama and prose fiction are compound of the same raw materials, ...We shall have much to say about characteristics which are common to both of them, and to some extent it will thus serve as an introduction also to the study of drama......"

—An Introduction to the study of Literature
By W. H. Hudson, pp. 128-129

१३. "...It is, as Marino Crawford once happily phrased it, a 'Pocket Theatre', containing within itself not only plot and actors, but also costume, scenery, and all the other accessories of a dramatic representation "

—Ibid. p. 129

१४. (क) डॉ० (श्रीमती) ओमशुक्ल, हिन्दी उपन्यास की शिल्पविधि का विकास, पृ० ३८-४१

(ख) डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, साहित्यसहचर, पृ० १०१

९

उपसंहार

धनपाल की सस्कृत-साहित्य को देन

पिछले अध्यायो मे धनपालकृत 'तिलकमञ्जरीकथा' की औपन्यासिक दृष्टिकोण से समीक्षा कर चुकने के पश्चात् अब हम यहाँ यह उचित समझते है कि अपने शोधग्रन्थ को उपसहार की दिशा मे ले जाया जाए। इस सम्बन्ध मे हम सर्वप्रथम धनपाल की सस्कृत साहित्य विषयक देन पर विचार करेंगे।

महाकवि धनपाल की तिलकमञ्जरीकथा सस्कृत साहित्य की गद्यविधा के लिए एक अनूठी देन है। इसके माध्यम से उन्होने जहाँ एक ओर जैनागम की पवित्रता एव ग्राह्यता को ध्वनित किया है, वहाँ दूसरी ओर सस्कृत गद्यकाव्य (उपन्यास) की भाषा और शैली को भी परिष्कृत करना चाहा है। अपनी तिलकमञ्जरीकथा को जहाँ उन्होने एक ओर सुबन्धु के कठिन श्लेषो के गठियावात से दूर रखा है, वहाँ दूसरी ओर बाणभट्ट के एकरूपात्मक और वर्णनप्राधान्यात्मक गद्य की निर्विण्णता से भी बाल-बाल बचाया है, क्योकि वह कथाप्रधानकाव्य, जिसे आज की भाषा मे उपन्यास कहा जाता है, की सुकुमार आत्मा से भली भाँति परिचित थे।[1]

उन्होने जिस कथानक (प्लाट) की परिकल्पना की है वह भारतीय पुनर्जन्मवाद एव प्रेम की अमरता तथा एकनिष्ठता की भावना का सुदृढ प्रतीक है। उसे उन्होने साहित्यिक अभिव्यक्ति देकर सस्कृत जगत् की आकर्षणशीलता मे वृद्धि की है।

साथ ही साथ वह घुणाक्षरन्याय से धार्मिक वास्तुशिल्प एव मूर्त्तिशिल्प की भी एक ऐसी रूपरेखा खीच गए है जो उन्हे उस क्षेत्र मे भी स्मरणीय बनाए रहेगी। उन्होने अपनी तिलकमञ्जरीकथा मे जिन जैनसिद्धायतनो और जिनेन्द्रप्रतिमाओ का प्रतिबिम्बात्मक वर्णन किया है, वह भारतीय वास्तुशिल्प एव मूर्त्तिशिल्प की दृष्टि से समूचे सस्कृत साहित्य मे अपने ढँग का निराला ही है।[2] आज यदि कोई वास्तुशिल्पी या मूर्त्तिशिल्पी धनपाल की उन परिकल्पनाओ के अनुसार अपनी वास्तुकला या मूर्त्तिकला को स्वरूप प्रदान कर सके, तो मेरा विश्वास है कि वह निश्चित ही अमर हो जाएगा। क्योकि धनपाल के उन शब्द-मन्दिरो और शब्द-प्रतिमाओ मे एक अनोखी स्वाभाविकता एव हृदयावर्जकता है जो किसी के भी दिल को वशीभूत कर सकती है।

चित्रकला के क्षेत्र मे भी धनपाल पीछे नही है। लक्ष्मी, तिलकमञ्जरी और

मलयसुन्दरी के उन्होने जो शब्दचित्र खीचे है वे रूपात्मक एव भावात्मक—दोनो ही—दृष्टियो से काफी प्रभविष्णु है।[3]

संस्कृत साहित्यकारो को सन्देश

सस्कृत जगत् के विख्यात गद्यकाव्यकार सुबन्धु और बाणभट्ट की भाषा-शैली को धनपाल ने काफी बारीकी से देखा और परखा था; और तब उन्हे लगा था कि ये शैलियाँ औपन्यासिक विधा के अनुकूल नही है। इसलिए उन्होने उनकी कमियो पर बडी दृढता के साथ प्रकाश डालते हुए अपने परवर्त्ती साहित्यकारो को यह सन्देश दिया कि भारी भरकम श्लेपो की भरमार से और लम्बे-लम्बे समासो के बहुल प्रयोग से पाठको के लिए गद्यकाव्य उतना ही भयङ्कर हो जाता है जितना कि राहगीर के लिए वियावान जगल मे मिला हुआ खूँख्वार शेर।[४] इसलिए संस्कृत के साहित्यकार को चाहिए कि वह अपने कथाकाव्य (उपन्यास) को कठिनश्लेषालङ्कार की चपेट से जरूर बचाए।

जाहिर है कि उनका यह इशारा 'प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्धविन्यासवैदग्ध्यनिधि' सुबन्धु की ओर है। धनपाल ने सुबन्धु की भाषा-शैली से बचे रहने की बात कहकर जहाँ एक ओर साहित्यकारो को मार्गभ्रष्ट होने से बचाया है, वहाँ दूसरी ओर पाठको का भी महान् उपकार किया है। उनका यह भी कहना है कि जिस कथाकाव्य (उपन्यास) मे एकमात्र गद्य की ही भरमार रहती है वह भी निर्वेदजनक होता है। इतना ही नही, बल्कि उनकी दृष्टि मे तो पद्यो की भरमार होने के कारण चम्पूकाव्यो मे भी कथा का वास्तविक आनन्द नही रह जाता है।[५] इसलिए सस्कृत के साहित्यकार को चाहिए कि वह अपने कथाकाव्य (उपन्यास) मे न तो पद्यो को अछूत की भाँति समझकर उन्हे बिल्कुल उपेक्षित ही करे; और न उन्हे अपने गद्य पर हावी ही होने दे। कहने का तात्पर्य यह है कि गद्य काव्य मे पद्यों का न तो बिल्कुल अभाव होना चाहिए और न अधिक भरमार ही। क्योकि कथातत्त्व का असली मजा तो पाठकों को तभी मिल पाएगा जब गद्य मे पद्यो का प्रयोग दाल मे नमक के अनुपात से किया जाएगा, अन्यथा नही।

सस्कृत के स्वाध्यायशील पाठको को छिपा न रहेगा कि धनपाल ने अपनी यह धारणा बाण की एकरसता और चम्पूकाव्यो की नीरसता को देखकर ही बनाई होगी।

कहना न होगा कि उनकी तिलकमञ्जरीकथा मे पद्यो का वही स्थान है जो नदी मे उसके सुतार एव सुरम्य घाटो का होता है। पाठक के मन को, जो कथा के प्रवाह मे बहता रहता है, उन पद्यो पर पहुँचकर ठीक वैसी ही राहत मिल जाती है जैसी कि नदी की धारा मे तैरकर यात्रा करने वाले को घाट पर पहुँचने से मिला करती है।

धनपाल की दृष्टि मे काव्य मे रसचर्वणा का मूल्य सर्वोपरि है। रसहीन रचना का प्रतिपाद्य विपय पाठको को सिवाय वैरस्य के कुछ भी नही दे पाता है।[६] उनका कहना है कि सच्चा कवि वही है जिसकी उक्तियो को पढकर पाठक झूम उठे, और दुश्मन भी जिसकी निन्दा न कर सके।[७] उन्होने साहित्यकारो को अपनी साहित्यसाधना मे पूर्णता तथा व्यवहार मे नम्रता लाने का भी उपदेश दिया है।[८] मलयसुन्दरी की रूपच्छठा के वर्णन के माध्यम से साहित्यकारो को उन्होने यह भी सूचित करना चाहा है कि

विद्याओ मे व्याकरण विद्या, वृत्तियो मे कैशिकी वृत्ति, छदो मे उपजाति छन्द, अलङ्कारो मे जात्यलङ्कार, रीतियो मे वैदर्भी रीति और गुणो मे प्रसादगुण को ही श्रेष्ठ समझना चाहिए।[९]

धनपाल का सस्कृत साहित्यकारो के लिए एक यह भी सन्देश है कि वे काव्य की सर्वाङ्गीण अभिव्यक्ति करने मे कुशलता प्राप्त करें। उनका आशय है कि शब्द, अर्थ, रस, गुण और अलङ्कार की सामञ्जस्यपूर्ण अभिव्यजना ही साहित्यकार के यश मे अजातशत्रुता उत्पन्न करती है। अत' इस ओर साहित्यकार को अवश्य ही जागरूक रहना चाहिए।[१०]

सस्कृत गद्यकाव्यकारो में धनपाल का स्थान

अब तक प्रस्तुत की गई 'तिलकमञ्जरीकथा' की समीक्षा से यह तथ्य, ग्रहणोपरान्त चन्द्रमा के समान, स्पष्टरूपेण प्रकट हो जाता है कि महाकवि धनपाल भी सस्कृत साहित्य की गद्यात्मक विधा के निस्सन्देह ही एक उत्कृष्ट साहित्यकार है।

यह उन अनमोल हीरो मे से एक है जिन पर अज्ञानता की धूलि की परतें जमी हुई है। सस्कृत साहित्य के प्राय. सभी इतिहासकार इन्हे आज तक देखा-अनदेखा और सुना-अनसुना करते चले आ रहे है। इन पर और इनकी कृति तिलकमञ्जरीकथा पर आज तक किसी ने भी सही और पर्याप्त प्रकाश डालने की कोशिश नही की है। यही कारण है कि धनपाल की वास्तविक साहित्यसुधा के आस्वाद से पाठक वर्ग अभी तक सच्चे मायने मे वचित ही रहा है। पर आज मैं उनकी तिलकमञ्जरीकथा की समीक्षा को विज्ञ पाठको के समक्ष प्रस्तुत करता हुआ यह तथ्य बड़ी दृढता के साथ सामने ला रहा हूँ कि सस्कृत साहित्य मे आज तक जो स्थान बाणभट्ट को अकेले ही मिलता रहा है उसके सच्चे भागीदार धनपाल भी है, और सच्चाई तो यहाँ तक है कि साहित्यिक औपन्यासिक विधा का जीता-जागता और प्यारा रूप जितना तिलकमञ्जरीकथा मे उभरा है उतना कादम्बरीकथा मे भी नही उभर पाया है। इसका एकमात्र कारण बाणभट्ट की अतिशयवर्णनप्रियता' एव 'कथानकोपेक्षा' ही है। इस तथ्य को देखते हुए तो धनपाल बाणभट्ट से भी कही आगे निकले हुए दिखाई देते है। खैर, कुछ भी हो, पर इतना तो मानना ही होगा कि धनपाल की प्रतिभा औपन्यासिक काव्य-कला की दृष्टि से बाणभट्ट की प्रतिभा से किसी भी मायने मे उन्नीस नही है।

धनपाल ने भावात्मक सवेदना कसौटी पर कसते हुई सुबन्धु के काव्य को तो जरा भी मान्यता नही देनी चाही है, उलटे उससे तो दूर ही रहने की बात कह दी है। दण्डी का वह कही नाम तक नही लेते है, पता नही क्यो? फलस्वरूप केवल बाणभट्ट ही शेष बचते है, जिन्हे उनकी प्रतिभा के प्रतिपक्ष मे तराजू पर तौला जा सकता है। क्योकि मेरी समझ से, बाणभट्ट के अतिरिक्त और जितने भी प्राचीन गद्यकाव्यकार बचते हैं उन सबमे तो धनपाल का ही नाम निश्चित रूप से अग्रगण्य माना जाना चाहिए।

सस्कृत गद्य साहित्य मे तिलकमञ्जरी का स्थान

महान् खेद का विषय है कि सस्कृत साहित्य के अधिकाश इतिहास लेखको के

प्रमाद से महाकवि धनपाल और उनकी तिलकमञ्जरीकथा को आज तक उचित स्थान और सम्मान नही मिल सका है। उन लोगो ने पाठको को धनपाल की तिलकमञ्जरीकथा के विषय मे जो कुछ थोड़ा-बहुत बताया है, वह इस विषय मे उनके अज्ञान और विपरीत ज्ञान का ही पर्याप्त परिचायक है, और वास्तविकता से कोसो दूर है। उन सब पर तो बाण की कादम्बरी का कुछ ऐसा नशा छाया रहा कि वे तिलकमञ्जरी के सौरभ को पहिचान ही नही सके, उन्हे उसके असली रूप का ही पता न लग सका। फलस्वरूप वे उसका मूल्याङ्कन करने मे सदैव असफल रहे; यहाँ तक कि वे, जैसा कि मैं पीछे लिख चुका हूँ, (देखिए इसी शोध-प्रबन्ध का अध्याय २, सोपान २) उसके नायक-नायिका की भी पहिचान करने मे भूल करते रहे, और यही कारण रहा कि बेचारा भोला-भाला और उन इतिहास लेखको पर अन्धविश्वास करने वाला पाठक, और यहाँ तक कि शोधकार[11] भी, आज तक धनपाल और उनकी तिलकमञ्जरीकथा के विषय मे गुमराह होता रहा। पर अब मुझे विश्वास है कि मेरे इस शोध प्रबन्ध से सस्कृत-साहित्य के पाठको का वह भ्रम दूर होगा, और वे धनपाल तथा उनकी तिलकमञ्जरी को समझने मे अब भूल नही करेगे।

तिलकमञ्जरीकथा सस्कृत गद्य साहित्य की कादम्बरीकथा के समान ही एक अमूल्य निधि है। बल्कि अधुनातन औपन्यासिक शिल्प की दृष्टि से तो यह उससे बढकर भी है। धनपाल ने इसमे भावपक्ष एव कलापक्ष का जो समन्वय कर दिखाया है वह अन्य किसी भी कथाकृति मे उपलब्ध नही होता है। एक नही, बल्कि दो-दो कथानको का अमन्दप्रवाह, भाषा की प्रासादिकता, भावो की सरसता और भव्यता, परिकल्पनाओ का आकर्षक इन्द्रजाल, शैली की रगीन चमक, अलङ्कारो की मोहनी खनक, तथा बीच-बीच मे आए हुए उत्कृष्ट छन्दो की रागिनी—इन सब आनुपातिक एव परस्परोपस्कारक मंजुल सम्प्रयोग से धनपाल ने अपनी तिलकमञ्जरीकथा को एक सर्वाङ्गसुन्दर तथा प्राणवती रचना के रूप मे प्रस्तुत किया है।

चूँकि धनपाल ने बाद मे जैनधर्म स्वीकार कर लिया था, जिसके कारण सनातन-धर्मावलम्बियो ने उन्हे उपेक्षा की दृष्टि से देखना शुरू कर दिया था; इसलिए मैं समझता हूँ कि सस्कृत भाषा, जो वास्तव मे सार्वभौम है, को एकमात्र अपनी ही दौलत समझने वाले उन्ही तत्कालीन बहुसख्यक सनातनधर्मियो ने धनपाल के जैनत्व से चिढकर उनकी तिलकमञ्जरीकथा को भी आदर नही मिलने दिया होगा। पर आज हम सबको चाहिए कि धर्म और सम्प्रदाय के सङ्कीर्ण दायरे से निकल कर सत्साहित्य का शुद्ध हृदय से समादर करे; उसका सही-सही मूल्याङ्कन करे, और साहित्यकार की धर्मगत तथा सम्प्रदायगत विपरीतता को देखकर ही उसे उपेक्षित न किया करे, माँ शारदा से भी कुछ डरा करे।

मेरा विश्वास है कि संस्कृत जगत् का जो कोई भी समीक्षाकार पूर्वाग्रहो से मुक्त होकर तिलकमञ्जरीकथा को अपनी पारखी आँखो से पढेगा और हृदय की धडकनो के साथ सुनेगा तो निश्चय ही वह इसे कादम्बरीकथा के, अधिक नही तो कम से कम आधे सिंहासन का हक तो अवश्य ही दे देगा।

सन्दर्भ

१. तिलकमञ्जरी, प्रस्तावना श्लोक १५-१७
२. वही, पृ० १५४-१५५, २१४-२१७, २२६ तथा २७५
३. वही, पृ० ५४-५५, २४६, २४८ तथा २५५
४. वही, प्रस्तावना श्लोक १५-१६
५. वही, श्लोक १७
६. वही, श्लोक १८
७ वही, श्लोक ११-१२
८. वही, श्लोक १३
९. वही, पृ० १५९
१०. वही, प्रस्तावना श्लोक ३७
११. डॉ० नीता शर्मा, बाणभट्ट : ए लिटरेरी स्टडी, पृ० २२५

शोध-ग्रन्थ के परिशिष्ट

प्रथम परिशिष्ट

(धनपाल की अन्य रचनाएँ)

पाइअलच्छीनाममाला

यह प्राकृत भाषा का उपयोगी शब्दकोश है। इसका सस्कृत नाम 'प्राकृतलक्ष्मीनाममाला' है। इसका मुद्रण, आनन्द पी० प्रेस, भावनगर से, विक्रम सवत् १९७३ (ईशवीय सन् १९१६) मे हुआ है। इसके भी रचयिता महाकवि धनपाल ही सिद्ध होते हैं क्योकि इस ग्रन्थ के अन्त मे मिलता है कि—

> वि   ालस्य गते एकोनत्रिंशदुत्तरे सहस्रे।
> मालवनरेन्द्रधाट्या लुण्ठिते मन्नखेडे॥
> धारानगर्याः परिष्ठितेन मार्गे स्थिताया मनवद्ये।
> कार्ये कनिष्ठभगिन्याः सुन्दरीनामधेय   :॥
> कवय अन्ध-जन-कृपा-कु   इति पदानामन्तिमा वर्णाः।
> नाम्नि यस्य क्रमशः तेनैषा विरचिता देशी॥

—पाइअलच्छीनाममाला, पृ०, ४५

अर्थात् जब विक्रम सवत् १०२९ मे मालवनरेश ने मन्नखेड नामक गाँव को लूटा था, उन्ही दिनो धारानगरी के प्रतिष्ठित धनपाल ने सन्मार्ग मे लगी रहने वाली अपनी छोटी बहन सुन्दरी के, प्राकृत भाषा विषयक ज्ञान की वृद्धि के लिए इस ग्रन्थ को बनाया था। मेरी इस अवधारणा की पुष्टि प० बेहचरदास एव श्रीनाथूराम प्रेमी के इतिहास ग्रन्थो से भी हो जाती है।[1]

इस कोश ग्रन्थ मे उन्होने ९९८ शब्दो के प्राकृत भाषा मे पर्यायवाची शब्दो का सङ्कलन किया है। मङ्गलाचरण के बाद आरम्भ मे एक-एक शब्द के पर्यायवाची शब्दो के लिए एक-एक गाथाच्छन्द की रचना की है। यह क्रम १७ शब्दो तक चला है। समूहवाचक अठारहवे शब्द के लिए दो गाथाएँ मिलती है। इसके बाद १४९ शब्दो के पर्याय आधी-आधी गाथा मे दिए गए है। तदनन्तर एक शब्द के पर्यायवाची शब्दों के लिए

गाथा का एक ही चरण निर्धारित किया गया है। यह क्रम ४३० शब्दो के पर्यायलेखन मे अपनाया गया है। इसके बाद कोई खास क्रम नही है। क्योकि गाथा के एक चरण मे कही तो एक ही शब्द, कही दो शब्दो, कही तीन शब्दो, और कही-कही तो चार शब्दो तक के पर्यायवाची शब्दो का सङ्कलन उपलब्ध होता है। यह क्रम ४०१ शब्दो मे, अर्थात् ग्रन्थ के अन्त तक, चला है।

इसमे शब्दो का प्रयोग सविभक्तिक है। अत: उनके लिङ्ग का भी बोध अनायास ही होता जाता है। इस ग्रन्थ के मङ्गलाचरण मे धनपाल ने श्री ब्रह्माजी को नमस्कार किया है। इससे सिद्ध होता है कि यह उस समय तक जैनधर्म मे दीक्षित नही हुए थे, अन्यथा यह जिनेन्द्र की ही वन्दना करते।[२]

सस्कृतनाममाला

महाकवि धनपाल का यह ग्रन्थ आज उपलब्ध नही हो पा रहा है; पर कोश ग्रन्थो की सूची मे ६४वें नम्बर पर उनके नाम से एक 'नाममाला' नाम के ग्रन्थ की सत्ता का पता चलता है।[३] चूंकि इसमे श्लोको की संख्या १८०० बताई गई है, अत. निश्चय ही यह पाइअलच्छीनाममाला से भिन्न होगा[४], क्योकि उसमे गाथाओ की सख्या कुल मिलाकर २७९ ही हो पाई है।

सम्भव है कि धनपाल ने इस नाम से किसी प्रामाणिक सस्कृतशब्दकोश की रचना की हो। क्योकि श्रीहेमचन्द्राचार्य ने भी अपने अभिधानचिन्तामणि नामक सस्कृत-कोश की टीका के आरम्भ मे ही 'व्युत्पत्तिर्धनपालत ' लिखकर सस्कृत भाषा के शब्दो की व्युत्पत्ति के विषय मे धनपाल के सस्कृतकोशग्रन्थ को प्रमाण माना है। इतना ही नही, उन्होने तो अपनी बनाई हुई 'देशीनाममाला' की टीका मे भी धनपाल का नाम उल्लिखित किया है। हो सकता है कि हेमचन्द्राचार्य की निगाह मे धनपाल की यही 'नाममाला' रही हो। इस दृष्टि से इसे ही धनपाल का 'सस्कृतशब्दकोश' मानकर इसे 'नाममाला' न कहकर यदि 'सस्कृतनाममाला' कहा जाए तो मैं समझता हूँ कि ज्यादा अच्छा रहेगा।

चतुर्विशतिजिनस्तुतिटीका

धनपाल के छोटे भाई शोभनमुनि ने जैनधर्म के चौबीस तीर्थङ्करो की स्तुति मे विभिन्न छन्दो मे जिन ९६ पद्यो की रचना की है उन्हे आज या तो 'चतुर्विशतिजिन-स्तुति' के नाम से या फिर 'शोभनमुनिस्तुति' के नाम से अभिहित किया जाता है। इसमे क्रम से प्रत्येक तीर्थङ्कर की सस्कृतभाषा मे चार-चार पद्यो मे वन्दना की गई है। यमकालङ्कार का सन्निवेश इसका प्रमुख आकर्षण है।

इस स्तुति काव्य पर एक सस्कृत टीका भी मिली है, जिसे महाकवि धनपाल लिखित माना गया है। क्योकि उस टीका के आरम्भ मे (मङ्गलाचरण के अन्तिम पद्य मे) तथा उसकी पुष्पिका मे रचयिता के रूप मे शोभन के बडे भाई धनपाल का नाम स्पष्टरूप से लिखा मिलता है। मङ्गलाचरण का वह पद्य इस प्रकार है—

एतां यथामति विमृश्य निजा
तस्योज्ज्वलां कृतिमलंकृत न् ़रया।
अभ्यर्थितो विदधता त्रिदिवप्रयाणं
तेनैव साम्प्रतकविर्धनपालनामा ॥

और उस टीका की वह पुष्पिका इस प्रकार है—

······तस्यैव ज्येष्ठभ्रातु. पण्डितधनपालस्य।

स्मरण रहे कि यह टीका आगमोदय समिति, बम्बई द्वारा सख्या ४७ पर प्रकाशित हो चुकी है और आधुनिक विद्वानो मे अब यह टीका 'शोभनस्तुतिटीका' के भी नाम से जानी जाती है।[५]

ऋषभपञ्चाशिका

यह एक स्तुति काव्य है। मूलरूप से तो यह प्राकृत भाषा मे लिखा गया है, पर साथ मे सस्कृतानुवाद भी है। इसमे केवल पचास गाथाएँ है, जिनमे महाकवि धनपाल ने जैनधर्म के प्रथमतीर्थङ्कर भगवान् श्री ऋषभदेव की बडे ही शुद्ध हृदय से भाव-भीनी स्तुति की है। इसके माध्यम से कविवर ने उनकी शीलसम्पदा, गुणसम्पदा और शक्ति-सम्पदा का भी यत्र-तत्र सङ्केत किया है।

धनपाल के हृदय मे शोभनमुनि (जो उनके सगे भाई थे, और जिन्होने जैनधर्म स्वीकार कर लिया था) के सम्पर्क से भगवान् श्री ऋषभदेव के प्रति आदर, श्रद्धा एवं भक्तिभाव का जो निर्मल एव अजस्र स्रोत उमगा था, ऋषभपञ्चाशिका मे वही अमन्द बन कर प्रवाहित हुआ है। इसमे उन्होने अपने आपको पूरी तौर से श्रीऋषभदेव की शरण मे सौंप दिया है।

उनकी अवधारणा है कि यह जिनेन्द्र भगवान् श्री ऋषभदेव ही रागरूपी कमल-वन को सकुचित करने के लिए चन्द्रमा का आलोक हैं, क्रोधरूपी अग्नि को बुझाने के लिए सजल मेघ हैं; और मोहरूपी अन्धकार को दूर करने के लिए यही सूर्य हैं।[६] इनके दर्शन से राग और द्वेष भावना का लोप हो जाता है,[७] और इनके उपदेशामृत से वासना का विष तत्काल ही दूर हो जाता है।[८]

धनपाल को इस बात का महान् खेद है कि भगवान् श्रीऋषभदेव की महिमा को न समझ सकने के कारण उन्हे भवसागर मे गोते खाने पड़े।[९] लेकिन अब उनके दर्शन और कृपा के प्राप्त हो जाने से वह संसार की ओर से निर्भीक हो गए है।[१०] उनकी प्रार्थना है कि आवश्यकता के क्षणो मे उन्हे भगवान् श्रीऋषभदेव का दर्शन और कृपा प्राप्त होती रहे।[११]

इस ऋषभपञ्चाशिका के माध्यम से धनपाल ने श्रीऋषभदेव मे अपनी अनुपम निष्ठा व्यक्त की है। उन्हे वे दु ख भी बुरे नही लगते जिनसे उनका भक्तिभाव बढता है।[१२] इतना ही नही, बल्कि वह उन सम्पदाओ को भी पसन्द नही करते जो उन्हे उनके आराध्य की आराधना से ही विमुख करने लगें।[१३]

धनपाल ने भक्तिभाव से भरपूर इन स्तुतिगाथाओ मे अपनी साहित्यिक प्रतिभा का प्रयोग यद्यपि करना नही चाहा है, तथापि यत्र-तत्र उसका सस्पर्श हो ही गया है। फलस्वरूप उनमे सहृदय (चाहे वह भक्त हो या न हो) के हृदय को आवर्जित करने का अद्भुत सामर्थ्य आ गया है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक और अर्थान्तरन्यास के प्रयोग बहुत ही अच्छे हुए हैं। कुछ उदाहरण इस प्रकार है—

(क) ा—

सलिल इव प्रवचने तव गृहीते ऊर्ध्वमधोविमुक्ते।
व्रजन्ति नाथ! कूपारघट्टघटीसन्निभा जीवा ॥

—ऋषभपञ्चाशिका, गाथा स० ३०

(ख) उत्प्रेक्षा—

शोभसे प्रसाधितास. कज्जलकृष्णाभिर्जगद्गुरो! जटाभि.।
उपगूढविसर्जितराजलक्ष्मीवाष्पच्छटाभिरिव ॥

—वही, गाथा स० १२

(ग) रूपक—

अनुरागपल्लववति रतिवल्लीस्फुरद्धासकुसुमे।
तपस्तापितमपि न मन शृङ्गारवने तव लीनम् ॥

—वही, गाथा स० २४

(घ) अर्थान्तरन्य —

उपशमिता अनार्या देशेषु त्वया प्रपन्नमौनेन।
अभणन्त एव कार्यं परस्य साधयन्ति सत्पुरुषा ॥

—वही, गाथा स० १३

इस प्रकार स्पष्ट है कि महाकवि धनपाल की यह ऋषभपञ्चाशिका आदितीर्थङ्कर भगवान् श्रीऋषभदेव के भक्ति-भाव से सराबोर एव सहृदयहृदयावर्जक एक अनुपम लघुकाय स्तुतिपरक काव्यग्रन्थ है।

श्रीवीरस्तुति

एक बार राजा भोज से नाराज होकर महाकवि धनपाल अपना परिवार लेकर सत्यपुर (साचोर) नामक नगर मे जा पहुँचे। वहाँ वह जैनधर्म के चौबीसवे तीर्थङ्कर श्रीमहावीरस्वामी के परमप्रसिद्ध मन्दिर मे रहे। उनके दर्शन करके वह भक्तिभाव से आनन्दविभोर हो उठे। बस फिर क्या था, गद्गद हृदय से उनकी वन्दना मे तीस गाथाओ की रचना कर डाली,[१४] जो आज श्रीवीरस्तुति के नाम से प्रकाशित है।[१५]

ऋषभपञ्चाशिका के समान यह भी प्राकृत भाषा मे है, और इसका सस्कृत अनुवाद भी मिलता है। इसके अन्तिम पद्य को छोडकर प्रत्येक पद्य मे विरोधालङ्कार मिलता है। एतदर्थ आरम्भिक पद्य मे प्रतिज्ञा भी की गई है।[१६] इसके निर्वाह के लिए प्राकृत भाषा के ऐसे-ऐसे शब्दो का प्रयोग किया गया है जिनके दो-दो अर्थ निकलते है।

फलस्वरूप श्लेषालङ्कार की गोद मे पनपते हुए उस विरोधालङ्कार की चपेट मे आ जाने से उनकी यह श्रीवीरस्तुति सहृदय भक्तों के लिए सर-दर्द बन गई है। इसमे धनपाल ने जिनेन्द्र श्रीमहावीरस्वामी से प्रश्नो की झड़ी लगा दी है, जो उनके बौद्धिक उत्कर्ष की स्पष्ट परिचायक है।

आश्चर्य है कि तिलकमञ्जरीकथा की प्रस्तावना मे सुबन्धु की निन्दा करने वाले और ऋषभपञ्चाशिका जैसी सरस एव भावगम्भीर स्तुति की रचना करने वाले धनपाल ने यहाँ अपनी सरसकाव्य प्रतिभा को इन कठोर अलङ्कारो की मोटी जजीर मे जकड दिया; पता नही क्यो ? हाँ, एकाध स्थल पर उनके विरोधाङ्कार अवश्य ही रमणीय है—

निव्वाण गओ वि जगप्पईव, भुवणाइं कह पयासेसि ?।
सयलभुवणप्पयासो वि अप्पयासो कहं होसि ?॥
(निर्वाणं (नाशं, मोक्षं) गतोऽपि जगत्प्रदीप! भुवनानि कथं प्रकाशयसि ?।
सकलभुवन ।ोऽपि अप्रकाशः (अप्रयासः) कथं भवसि ?॥)

—श्रीवीरस्तुति, पद्य स० १४

वीरस्तुति

महाकवि धनपाल की यह प्रवृत्ति रही है कि वह अपने प्रत्येक 'पद्यग्रन्थ' के अन्तिम पद्य मे अपना नाम वडे कौशल के साथ प्रकट कर देते थे।[१७] इस आधार पर ग्यारह पद्यो मे समाप्त होने वाले वीरस्तुति नामक एक छोटे से स्तुति-काव्य को भी उनकी कृति माना जा सकता है। क्योकि इसके भी अन्तिम (ग्यारहवे) पद्य मे इनका नाम (धनपाल) छिपा मिलता है।[१८]

इसमे प्रत्येक पद्य (गाथा) का पूर्वार्ध तो सस्कृत भाषा मे लिखा गया है किन्तु उत्तरार्ध प्राकृत मे है। हाँ, सस्कृत अनुवाद उस उत्तरार्ध का भी मिलता है। काव्य-प्रतिभा की दृष्टि से यह रचना महत्त्वहीन है। आरम्भ से दस पद्यो मे जिनेन्द्र श्रीमहावीरस्वामी के जन्म और कुछ उनकी प्रमुख लीलाओ का सकेत मात्र करके अन्तिम पद्य मे उनकी वन्दना करने की आज्ञा दी गई है। कुल मिलाकर कहे तो कह सकते हैं कि आरम्भ के दस पद्यो मे 'जिन्होने ऐसा किया और वैसा किया' का उल्लेख मात्र है, और अन्त के पद्य मे 'उन्हे नमस्कार करो' का सुझाव है।[१९] डॉ० प्रेमसागरजैन ने इसका उल्लेख वीरस्तव के नाम से किया है।[२०]

सत्यपुरीयश्रीमहावीर उत्साह

धनपाल का यह स्तुति काव्य अपभ्रंश भाषा मे लिखा गया है। इसमे चौवीसवे तीर्थङ्कर श्रीमहावीरस्वामी की लीलाओ का वर्णन है, जो कतिपय ऐतिहासिक तथ्यो को भी प्रकट करता है।[२१]

श्रावकविधि

अनुमान किया गया है कि महाकवि धनपाल ने श्रावक-विधि नाम की भी एक

छोटी-सी पुस्तिका लिखी होगी। इसमे गाथाओ की सख्या बीस और भाषा प्राकृत रही होगी। इस अनुमान का कारण है, 'जैनसाहित्य का सक्षिप्त इतिहास'।[२२] पर यह श्रावकविधि ग्रन्थ आज उपलब्ध नही हो पा रहा है।

सन्दर्भ

१. देखिये —(क) प० बेहचरदास, जैनसाहित्य का सक्षिप्त इतिहास, पृ० १९८-१९९, सस्करण १९१६

(ख) श्री नाथूराम प्रेमी, जैनसाहित्य और इतिहास, पृ० ४०९, द्वितीय सस्करण १९५६

२ नमिऊण परमपुरिस पुरिसुत्तमनाभिसभव देवम्।
वुच्छ 'पाइअलच्छि' त्ति नाममाल निसामेह॥
(नत्वा परमपुरुष पुरुषोत्तमनाभिसंभव देवम्।
वक्ष्ये 'प्राकृतलक्ष्मी.' इति नाममाला निशाम्यत॥)

—पाइअलच्छीनाममाला।

३. हीरालाल कापडिया, श्रीऋषभपञ्चाशिका—वीरस्तुनिद्वयरूपकृतिकलाप, गुजराती भाषा मे लिखी हुई प्रस्तावना, पृ० १७

४. प० बेहचरदास, जैनसाहित्य का सक्षिप्त इतिहास, पृ० ११९ की टिप्पणी।

५. देखिये —(क) "तासा जिनस्तुतीनां च सिद्धः सारस्वत. कविः।
टीकां चकार सौन्दर्यस्नेह चित्ते दृढ वहन्॥"

—श्रीप्रभाचन्द्रसूरि, प्रभावकचरित, महेन्द्रसूरि प्रबन्ध।

(ख) श्रीनाथूराम प्रेमी, जैनसाहित्य और इतिहास, पृ० ४१०

(ग) डॉ० प्रेमसागर जैन, जैनभक्तिकाव्य की पृष्ठभूमि, पृ० ३३

(घ) प० बेहचरदास, जैनसाहित्य का सक्षिप्त इतिहास, पृ० २०४-२०६

६. ऋषभपञ्चाशिका, गाथा १-२ (काव्यमाला, सप्तमगुच्छक, पृ० १२४)

७. वही, गाथा २७

८. वही, गाथा ३८

९ वही, गाथा ४२-४७

१०. वही, गाथा ४८

११. वही, गाथा ४९

१२. वही, गाथा ३४

१३. वही, गाथा ३६

१४. पश्चिमा दिशमाश्रित्य परिस्पन्द विनाऽचलत्।
प्राप सत्यपुर नाम पुर पौरजनोत्तमम्॥
तत्र श्रीमन्महावीरचैत्ये नित्ये पदे इव।
दृष्टे स परमानन्दमाससाद विदावर॥

नमस्कृत्य स्तुतिं तत्र विरोधाभास-संस्कृताम् ।
चकार प्राकृता देव निम्मलेत्यादि सास्ति च ॥
—प्रभावकचरित, श्रीमहेन्द्रसूरि प्रबन्ध, श्लोक २२४ से २२६ तक।

१५. श्री जीवनचन्द्रसाकरचन्द्र जहवेरी (बडेखानचाकला, सूरत) द्वारा सेठ देवचन्दलाल भाई जैन पुस्तकोद्धार संस्था के फण्ड से ग्रन्थ ८३ पर सन् १९३३ ई० मे महाकवि धनपाल प्रणीत ऋषभपञ्चाशिका, श्रीवीरस्तुति और वीरस्तुति नामक तीन ग्रन्थो का प्रकाशन हुआ है। इनके संशोधक है श्री हीरालाल कापडिया, प्राध्यापक अर्ध-मागधी विभाग, भण्डारकर प्राच्यविद्या संशोधन मन्दिर, पूना।

१६. निर्मलनखान्यपि अनखानि (अनघानि) जिनाना चरणोत्पलानि प्रणम्य ।
वीरमविरुद्धवचन स्तौमि सविरुद्धवचनमहम् (सविरुद्धवचनमथम्) ॥
—श्रीवीरस्तुति, पद्य १

१७. (क) कवय. ! अन्ध-जन-कृपा-कुशल इति पदानामन्तिमा वर्णा ।
नाम्नि यस्य क्रमश. तेनैषा विरचिता देशी ॥
—पाइअलच्छीनाममाला, उपान्त्यगाथा।

(ख) इति ध्यानाग्निप्रदीपितकर्मेन्धन ! बालबुद्धिनापि मया ।
भक्त्या स्तुतो भवभयसमुद्रयानपात्र ! बोधिफल· ॥
—ऋषभपञ्चाशिका, गाथा ५०

(ग) इति सकलश्रीनिबन्धन ! पालक ! प्रत्यह त्रिलोकलोकस्य ।
भव मम सदा मध्यस्थ ! गोचरे स्तुतिगिराम् ॥
—श्रीवीरस्तुति, गाथा ३०

१८. तं नमत नम्रशतमखमणिमुकुटविटङ्कघृष्टचरणयुगम् ।
भुवणस्स वि बधणपालणक्खम वद्धमाणजिण ॥
(भुवनस्यापि बन्धनपालनक्षम वर्धमानजिनम् ॥)
—वीरस्तुति, पद्य ११

१९. श्रीजीवनचन्द्र साकरचन्द्र जहवेरी ने सेठ देवचन्दलालभाई जैनपुस्तकोद्धार संस्था, सूरत के फण्ड से सन् १९३३ मे ग्रन्थ ८३ पर श्रीऋषभपञ्चाशिका और श्रीवीर-स्तुति के साथ ही साथ इसका भी प्रकाशन कराया है।

२०. जैनभक्तिकाव्य की पृष्ठभूमि, पृ० ३९

२१. इसका प्रकाशन जैनसाहित्य संशोधक, पूना, वर्ष ३, अङ्क ३ मे हो चुका है।

२२. प० बेहचरदास, जैनसाहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० २७९

द्वितीय परिशिष्ट

महाकवि धनपाल की सूक्तियाँ

साहित्य मे सूक्तियो का ठीक वैसा ही महत्त्व है जैसा कि रात के समय आसमान मे चमचमाती हुई ताराओ का होता है। इनमे मानव-हृदय की वास्तविकता एव गम्भीर सवेदनाओ की समुज्ज्वल तथा शाश्वत आत्मा रहती है, साथ ही साथ सचाई का सम्बल एव अनुभूति की छाप भी रहती है। ये सार्वभौम भी होती है। किकर्त्तव्यविमूढता और विपत्ति के अन्धकार मे फँसे हुए मनुष्य को निर्णय एवं धैर्य का भासुर आलोक प्रदान करना इनका प्रमुख कार्य होता है।

ये ऐसे अनमोल रत्न है, जिनका प्रादुर्भाव साधु-सन्तो और सहृदय साहित्यकारो के सवेदनशील हृदय-सागर से होता है। इनकी सत्ता के लिए सस्कृत वाङ्मय विश्व-विख्यात है। हमारे आलोच्य महाकवि धनपाल के हृदय-सागर से भी कुछ सूक्ति रत्न निकले हैं, जिनमे उनकी गहन अनुभूति का ओप व्याप्त है; और इसीलिए जो श्रोता के दिल और दिमाग को आकृष्ट करने मे काफी समर्थ है। यहाँ मैं उनकी सूची प्रस्तुत कर रहा हूँ—

	सूक्ति	ग्रन्थ का नाम	पृ०
१.	अचिन्त्या हि दैवशक्ति ।	तिलकमञ्जरीकथा	१७०
२.	अधिकारसम्पद पर्यन्तविडम्बनफला.।	ऋषभपञ्चाशिका	गाथा ३६
३.	अनुकूलविधिविहितसाहायकस्य साहसिकस्य सर्वदा शस्यसम्पदिव अनीतिरनीतिरपि फलति ।	तिलकमञ्जरीकथा	१५५
४.	अभणन्त एव कार्यं परस्य साधयन्ति सत्पुरुषा ।	ऋषभपञ्चाशिका	गाथा १३
५.	अभिमते वस्तुनि दैव प्रमाणीकृत्य सर्वात्मना प्रवर्तितव्यम् ।	तिलकमञ्जरीकथा	१५५
६.	अभूमिर्मुनिजनो विभवानाम् ।	"	२६
७.	अविरुद्धो हि कन्यकावस्थायामङ्गनाना मनुष्य-सन्निधि.।	"	१६७
८	अविरुद्धो हि राजकन्याजनस्य स्वयवरविधि ।	"	२८८
९.	अविचार्यमहिमा महात्मनामनुभाव ।	"	३६२
१०.	अव्याहता गति सर्वत्र भवितव्यताया ।	"	३४६

क्रम	क्ति	ग्रन्थ न	पृ०
११.	अशक्यप्रतीकारा कृतान्तशक्ति· ।	तिलकमञ्जरीकथा	३४६
१२.	अश्रान्तगद्यसन्ताना श्रोतॄणां निर्विदे कथा ।	"	३
१३.	अहो ! चञ्चलस्वभावता चित्तपरिणतेः ।	"	१४६
१४.	अहो ! विकारबहुलता तारुण्यगते. ।	"	१४६
१५.	अहो ! दु खदायकत्व सु भिलाषाणाम् ।	"	१४६
१६.	अहो ! व्यसनदानवैदग्ध्यमनधीनताया ।	"	१४६
१७.	अहो ! कार्यपरिणीतिविचारविद्वेषो दर्पोद्रेकविल-ि नाम् ।	"	१४६
१८.	अहो ! मतिविपर्ययप्रदानतात्पर्यं दैवप्रतिकूलस्य ।	"	१४६
१९.	अहो ! विरसता ससारस्थिते· ।	"	२४४
२०	अहो ! विचित्रता कर्म्मपरिणतीनाम् ।	"	२४४
२१	अहो ! यदृच्छाकारितायामभिनिवेशो विधे. ।	"	२४४
२२.	अहो ! भगुरस्वभावता विभवानाम् ।	"	२४४
२३	अहो ! पूर्वजन्मान्तरसञ्चितैरशुभकर्मभिः आयोजिता सुनिपुणमपि निरूपितोपायैर्मनीषिभिरनीषत्कराः परिहर्त्तुमुपतापा ।	"	२५८-२५९
२४.	अहो ! निरवधिप्रचारो विधि· नास्त्यगोचर पुराकृतकर्मणाम् ।	"	३४५-३४६
२५.	अहो ! विचित्रता कार्यपरिणते. ।	"	३८०
२६.	कल्याणानुबन्धी कल्याणसम्पल्लाभ. ।	"	४२३
२७.	कुटिलस्वभावा स्त्रियः, निसर्गसरल पुरुषवर्ग· ।	"	३१६
२८.	को हि नाम कुलवधूजन प्राकृतस्यापि पत्युरपगमे गमयति गृहीतजीवितो जन्म ? ।	"	४१७
२९.	क्रमागतो महापुरुषमार्ग कुलाभिमानिभिरत्याज्यः ।	"	३१८
३०.	अल्पकालमनुभूतः शरीरेण महान् क्लेशोऽपि वरम्, न पुनर्जीवितावधिर्मनसा स्तोकः शोक ।	"	१४३
३१.	क्व नाम न पद कुर्वन्ति विपद ?	"	४१०
३२.	गर्हितमकाले परकलत्रदर्शनम् ।	"	२७४
३३.	गुरुकाणां चरणसेवा न निष्फला भवति कदापि ।	ऋषभपञ्चाशिका	गाथा १४
३४.	जहाति पद्यप्रचुरा चम्पूरपि कथारसम् ।	तिलकमञ्जरीकथा	३
३५.	दिव्या हि मूर्त्तयो भाजन दिव्याभरणानाम् ।	"	४६
३६.	दु खहेतुरनुरागः ।	"	१११
३७.	दुष्कुलादपि ग्राह्यमङ्गनारत्नम् ।	"	१२९

	सूक्ति	ग्रन्थ का नाम	पृ०
३८.	धार्मिकजनानुवृत्त्यभिमुखानि हि भवन्ति सर्वदा धर्मतत्त्ववेदिना हृदयानि ।	तिलकमञ्जरीकथा	२५
३९.	नहि त्र्यम्बकजटाकलापमन्तरिक्ष वा विहाय क्षीणोऽपि हरिणलक्ष्मा क्षितौ पद बध्नाति ।	"	४३-४४
४०.	न कोऽपि परमार्थतः प्रेयान्, अनुवर्तनीय पूजनीयो वा प्रजारक्षणमात्रकर्त्तव्याना नरपतीनाम् ।	"	२९९
४१.	निसर्गत एध निरकुश., पापकरीव व्यालो विधि· निरवग्रहो विचरति ।	"	११२
४२.	फलाभिलाषिणा पुरुषेण नैकान्ततो नीतिनिष्ठेन भवितव्यम् ।	"	१५५
४३.	मदयन्ति न यद्वाच कि तेऽपि कवयो भुवि ?	"	२
४४.	मन्मथनरेन्द्रयोधा दृष्टिक्षोभा मृगाक्षीणाम् ।	ऋषभपञ्चाशिका	गाथा २६
४५.	वाञ्छितार्थप्रतिपन्थीनि अधर्मविलसितानि ।	तिलकमञ्जरीकथा	११२
४६.	विषयोपभोगगृध्नवो हि धनान्युपाददते ।	"	२६
४७.	विषोपमा विपयोपभोगवाञ्छा ।	"	१११
४८.	विषमा खलु विषयतृष्णा गुरुकाणामपि करोति मतिमोहम् ।	ऋषभपञ्चाशिका	वाथा १७
४९.	समग्राण्यपि हि कारणानि न प्राग्जन्मजनितकर्मोदयक्षणनिरपेक्षाणि फलमुपनयन्ति ।	तिलकमञ्जरीकथा	२०
५०.	सर्वत सुलभविघ्नोदया. काम्यक्रियारम्भा. ।	"	११२
५१.	सर्वथा अतिगहनो बलीयानेष ससारमोह. ।	"	२४४
५२.	सन्त सन्तप्यन्ते न विधुरेषु ।	"	४०२
५३.	सुदूरमपि विषण्णेन धीमता तदेव चिन्त्य वस्तु, यदुपायसाध्यम् ।	"	३४८
५४.	स्वल्पे प्रयोजने न किञ्चिदात्मना सशयमारोपितेन फलम् ।	"	१८५
५५.	स्वदारपरिपालनकर्म गृहमेधिना धर्म ।	"	३१८



तृतीय परिशिष्ट

(म ा धि नपाल पर उि याँ)

(क) वचन धनपालस्य चन्दन मलयस्य च ।
सरस हृदि विन्यस्य कोऽभून्नाम न निर्वृ त. ।। —कीर्तिकौमुदीकार

(ख) कमनीयां कथा चक्रे नाम्ना तिलकमञ्जरीम् ।
भोजभूपालविज्ञप्त्या धनपालपरमार्हत ।। —दक्षविजयगणि

(ग) तिलकमञ्जरीमञ्जरिरसञ्झरिलोलद्विपश्चिदलिजाल. ।
जैनारण्ये साल कोऽपि रसाल पफाल धनपाल ।। —दक्षविजयगणिसमुद्धृत

(घ) अशोधयदिमा चासावुत्सूत्राणां प्ररूपणात् ।
शब्दसाहित्यदोषास्तु सिद्धसारस्वतेषु किम् ।। —श्रीमेरुतुङ्गाचार्य

(ङ) व्युत्पत्तिर्धनपालत. । —श्रीहेमचन्द्रसूरि

(च) चैत्रवद् धनपालो न कस्य राजप्रियः प्रिय. ?
सकर्णाभरण यस्माज्जज्ञे तिलकमञ्जरी ।। —अममचरितकार श्रीमुनिरत्न

(छ) "अथ प्रदक्षिणावसरे सरसापूर्वस्तुतिकरणार्थमभ्यर्थिता. श्रीहेमसूरय. सकलजन-प्रसिद्धा 'जय जन्तु कप्प०-' इति धनपालपञ्चाशिकां पेठुः। राजादय प्राहु—भगवन् ! भवन्तः कलिकालसर्वज्ञा., परकृतस्तुति कथ कथयन्ति ? गुरुभिरूचे—राजन् ! श्रीकुमारदेव ! एवविधसद्भूतभक्तिगर्भा स्तुतिरस्माभि. कर्त्तुं न शक्यते। एव निरभिमानश्रीगुरुवाक्यामृतोल्लासितस्वान्ता नृपादयस्तामेव स्तुति भणन्तो राजादनीतरुतले प्राप्ताः श्रीगुरुभिरिति ज्ञापिताः।"

—श्रीजिनमण्डनगणि, कुमारपालप्रबन्ध मे ।

(ज) "······तेनो दूजो ग्रन्थ नामे तिलकमजरी छे। ते कथा सर्वगद्यग्रन्थो मा उत्तमांग समान छे। 'जनु ए सोनु' एम माननारने एकवार 'कादम्बरी' सर्वोत्कृष्ट लागे, पण तटस्थमनवाला मनस्विओ ने आ 'तिलकमजरी' सर्वोत्कृष्ट लाग्या विना रहे तेम नथी।"

("······उनके दूसरे ग्रन्थ का नाम तिलकमञ्जरी है। उसकी कथा सभी गद्य-ग्रन्थो मे उत्तमाङ्ग के समान है। 'पुराना सब सोना है' ऐसा मानने वालो को एक बार कादम्बरी सर्वोत्कृष्ट लगेगी, पर तटस्थ मन वाले मनस्वियो को यह तिलकमञ्जरी सर्वोत्कृष्ट लगे विना रहे, ऐसा नही है।") —बी० बी० एंड महाशयमडली, भावनगर।

चतुर्थ परिशिष्ट

(सहायक ग्रन्थ सूची)

संस्कृत ग्रन्थ

पुस्तक नाम	लेखक नाम	प्रकाशक	संस्करण
१. अग्निपुराण	वेदव्यास	वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई	प्रथम सस्करण
२. अग्निपुराण काव्य-शास्त्रीय भाग-२	सम्पादक— रामलाल वर्मा	नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली	प्र० सं० १९५९
३. अवन्तिसुन्दरी	दण्डी	अनन्तशयनभास्कर मुद्रणालय, त्रिवेन्द्रम्	सस्करण १९५४
४. अम्बिकादत्तव्यास : एक अध्ययन	डॉ० कृष्ण कुमार	प्रकाश बुक डिपो, बरेली	प्र० स० १९७१
५. ऋषभपञ्चाशिका	महाकवि धनपाल	नि० सा० प्रे० बम्बई	प्र० स० १९३३
६. ऋषभपञ्चाशिका	महाकवि धनपाल	देवचन्दलालभाई जैन पुस्तकोद्धार सस्था, सूरत	संस्करण १९३३
७. औचित्यविचारचर्चा	क्षेमेन्द्र	चौ० प्र० वाराणसी	प्र० स०
८. कथासरित्सागर	सोमदेव	नि० सा० प्रे० बम्बई	प्र० स०
९. कादम्बरी	बाणभट्ट	चौ० प्र० वाराणसी	स० १९५८
१०. कादम्बरी : एक सास्कृतिक अध्ययन	डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल	चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी	सस्करण १९५८
११. काव्यादर्श	दण्डी	भण्डारकर इस्टीट्यूट, पूना	सस्करण १९३८
१२. काव्यमीमासा	राजशेखर	बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना	प्र० स० १९५४
१३. काव्यालङ्कार	भामह	चौ० प्र० वाराणसी	स० १९२८
१४ काव्यालङ्कार	रुद्रट	वासुदेव प्रकाशन, दिल्ली	प्र० स० १९६५
१५. काव्यालङ्कार-सूत्राणि	वामन	चौ० प्र० वाराणसी	प्र० स० १९७१

पुस्तक न	लेखक न	शक	रण
१६. काव्यप्रकाश	मम्मट	ज्ञानमण्डल, वाराणसी	द्वि०स० १९६०
१७ काव्यानुशासन	हेमचन्द्र	नि० सा० प्रे० बम्बई	द्वि०स० १९३४
१८. काव्यमालासप्तम-गुच्छक	सम्पादक—दुर्गाप्रसाद एव वासुदेव	नि० सा० प्रे० बम्बई	सस्करण १९२६
१९. कुवलयानन्द	अप्पयदीक्षित	चौ० प्र० वाराणसी	द्वि०स० १९६३
२०. क्षेमेन्द्र की औचित्य-दृष्टि	सम्पादक—रामपाल विदयालङ्कार	मोतीलाल बनारसीदास, पटना	सस्करण १९६०
२१. गुणमन्दारमञ्जरी	रङ्गनाथ दीक्षित	सरस्वतीमुद्रणालय, अयोध्या	प्र० स० १९६१
२२. चन्द्रालोक	जयदेव	चौ० प्र० वाराणसी	च० स० १९६०
२३. चन्द्रप्रभाचरित	शङ्करलाल	चौ० प्र० वाराणसी	तृ० स० १९६२
२४. चन्द्रमहीपति	श्रीनिवास	गुप्ता प्रेस, कलकत्ता	प्र० स० १९५९
२५. चित्रमीमासा	अप्पयदीक्षित	चौ० प्र० वाराणसी	प्र० स०
२६. छन्दोऽनुशासन	हेमचन्द्र	नि० सा० प्रे० बम्बई	द्वि० स० १९३४
२७. छन्दोमञ्जरी	गङ्गादास	चौ० प्र० वाराणसी	च० स० १९५९
२८. जैनसाहित्य और इतिहास	नाथूराम प्रेमी	साहित्यमाला, ठाकुर-द्वार, बम्बई	द्वि० स० १९५६
२९. जैनदर्शन और आधुनिक विज्ञान	मुनि श्री नाग-राज	आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली	प्र० सं० १९५९
३०. जैनभक्तिकाव्य की पृष्ठभूमि	डॉ० प्रेमशङ्कर जैन	भारतीयज्ञानपीठ, काशी	प्र० स० १९६३
३१. जैनधर्म	कैलाशचन्द्र शास्त्री	जैनसघ, मथुरा	प्र० स० १९४८
३२. जैनसाहित्य का वृहद् इतिहास भाग १	बेचरदास दोषी	बी० एच० यू०, वाराणसी	प्र० स०
३३. जैनसाहित्य का वृहद् इतिहास भाग २	डॉ० जैन तथा डॉ० मेहता	बी० एच० यू०, वाराणसी	प्र० स०
३४. तर्कभाषा	केशवमिश्र	चौ० प्र० वाराणसी	स० १९५३
३५. तिलकमञ्जरी	महाकवि धनपाल	नि० सा० प्रे० बम्बई	द्वि० स० १९३८
३६. तिलकमञ्जरी	महाकवि धनपाल	वोटाद (सौराष्ट्र) प्रकाशन	प्र० स०

पुस्तक नाम	लेखक न	प्रकाशक	संस्करण
३७. तिलकमञ्जरीसार	पल्लीपाल धनपाल	अहमदाबाद प्रकाशन	प्र० स० १९६९
३८. तिलकमञ्जरीकथा-सार	लक्ष्मीधर	हेमचन्द्रसभा पाटन, गुजरात	प्र० स० १९१९
३९. दशकुमारचरित	दण्डी	चौ० प्र० वाराणसी	सं० १९४८
४०. दशरूपक	धनञ्जय	चौ० प्र० वाराणसी	तृ० स० १९६७
४१. ध्वन्यालोक	आनन्दवर्धन	ज्ञानमण्डल, वाराणसी	प्र० स० १९६२
४२. नाट्यशास्त्र	भरत	नि० सा० प्रे० बम्वई	स० १९४३
४३. नाट्यदर्पण	रामचन्द्रगुण-चन्द्र	दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली	प्र० स० १९६१
४४. पुराणसारसग्रह	दामनन्दि	भारतीयज्ञानपीठ, काशी	प्र० सं० १९५४
४५. प्रबन्धचिन्तामणि	मेरुतुङ्गाचार्य	जैनग्रन्थमाला, अहमदा-वाद	प्र० सं० १९४०
४६. प्रभावकचरित	प्रभाचन्द्रसूरि	जैनग्रन्थपीठ, बम्बई	प्र० स०
४७ प्राचीन भारतीय अभिलेखो का अध्ययन	वासुदेव उपाध्याय	मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी	सस्करण १९६१
४८. बृहत्कथामञ्जरी	क्षेमेन्द्र	नि० सा० प्रे० बम्बई	द्वि०स० १९३१
४९. भविष्यदत्तकथा	धनपाल धक्कड	गायकवाड ओरियण्टल प्रकाशन	प्र० स० १९२३
५०. भारतीयदर्शन	बलदेव उपाध्याय	नागरीमुद्रणालय, काशी	छ० स० १९६०
५१. भारतीयदर्शन	उमेश मिश्र	भार्गवभूषण प्रेस वाराणसी	द्वि० स० १९६४
५२. भोजप्रबन्ध	बल्लाल	कलकत्ता प्रकाशन	प्र० स० १९२३
५३. मन्दारवती	श्रीकृष्ण शर्मा	वाविल्ला प्रेस, वेलोर	प्र० स० १९२९
५४. मन्दारमञ्जरी	विश्वेश्वर पाण्डेय	पर्वतीय प्रकाशन, काशी	प्र० स० १९३९
५५. मालविकाग्निमित्र	कालिदास	चौ० प्र० वाराणसी	प्र० स०
५६. रसगङ्गाधर	जगन्नाथ	चौ० प्र० वाराणसी	तृ० स० १९७०
५७. राजाभोज	विश्वेश्वरनाथ रेउ	हिन्दुस्तानी अकादमी, इलाहाबाद	प्र० स० १९३२
५८. वक्रोक्तिजीवित	कुन्तक	चौ० प्र० वाराणसी	प्र० स० १९६७
५९. वासवदत्ता	सुबन्धु	चौ० प्र० वाराणसी	स० १९५४

पुस्तक न	लेखक	प्रक क	संस्करण
६०. वीरचरित	धनपाल	जैनपुस्तकोद्धारसस्था, सूरत	सस्करण १९३३
६१. वृत्तरत्नाकर	केदारभट्ट	मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी	द्वि० स० १९६६
६२. व्याकरणमहाभाष्य	पतञ्जलि	चौ० प्र० वाराणसी	स० १९५४
६३. शिवराजविजय (सम्पूर्ण)	अम्बिकादत्त व्यास	कल्याण प्रेस, साक्षी-विनायक, वाराणसी	अ० स० १९५७
६४. शोभनस्तुति टीका	धनपाल	आगमोदय समिति, बम्बई	प्र० स०
६५. श्रीवीरचरित	धनपाल	जैनपुस्तकोद्धार संस्था, सूरत	सस्करण १९३३
६६. शृङ्गारमञ्जरी	राजा भोज	भारतीय विद्याभवन, बम्बई	प्र० स० १९५९
६७. शृङ्गारप्रकाश	राजा भोज	कारोनेशन प्रेस, मैसूर	स० १९५६
६८. सरस्वतीकण्ठाभरण	राजा भोज	नि० सा० प्रे० बम्बई	द्वि० स० १९३४
६९. साहित्यसार	सर्वेश्वराचार्य	त्रिवेन्द्रम् विश्वविद्यालय	सं० १९४७
७०. साहित्यदर्पण	विश्वनाथ	चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी	स० १९५७
७१. सस्कृत हिन्दीकोश	वामनशिवराम आप्टे	मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी	स० १९६६
७२. संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास	पी० वी० काणे	मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी	स० १९६६
७३. संस्कृत आलोचना	बलदेव उपाध्याय	भार्गवभूषण प्रेस, वाराणसी	प्र० स० १९५७
७४. संस्कृत साहित्य का इतिहास	बलदेव उपाध्याय	शारदामन्दिर, वाराणसी	अ० स० १९६८
७५. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास	डॉ० कपिलदेव द्विवेदी	पर्वतीय मुद्रणालय, इलाहाबाद	प्र० स०
७६. सस्कृत साहित्य मे मौलिकता एव अनुहरण	डॉ० उमेश प्रसाद रस्तोगी	चौ० प्र० वाराणसी	प्र० स० १९६५
७७. हर्षचरित	बाणभट्ट	चौ० प्र०,	स० १९५८
७८. हर्षचरित . एक सांस्कृतिक अध्ययन	वासुदेव शरण	राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना (बिहार)	प्र० सं० १९५३

गुजराती ग्रन्थ

क्रम	पुस्तक नाम	लेखक नाम	प्रकाशक	संस्करण
१.	परमार्हत महाकवि श्रीधनपाल	मुनिराजश्री-सुशिलविजय	जैनसस्तासाहित्य, अहमदाबाद	प्र० स० १९४५

प्राकृत ग्रन्थ

क्रम	पुस्तक नाम	लेखक नाम	प्रकाशक	संस्करण
१.	पाइअलच्छीनाम-माला	महाकवि धनपाल	आनन्द प्रेस, भावनगर	सस्करण १९१६

हिन्दी ग्रन्थ

क्रम	पुस्तक नाम	लेखक नाम	प्रकाशक	संस्करण
१.	आचार्य चतुरसेन का कथासाहित्य	डॉ० शुभकर कपूर	किशोर बुक डिपो, अमीनाबाद, लखनऊ	प्र० स० १९६५
२	उपन्यासकला एक विवेचन	जालादि विश्वमित्र	सरस्वती मन्दिर, वाराणसी	प्र० सं० १९६२
३.	उपन्यास तत्त्व एव रूपविधान	डॉ०श्रीनारायण अग्निहोत्री	जर्नल प्रेस, इलाहाबाद	प्र० स० १९६२
४.	उपन्यासशिल्प और प्रवृत्तियाँ	डॉ० सुरेश सिनहा	रामा प्रकाशन, लखनऊ	प्र० स० १९६५
५.	काव्यशास्त्र	डॉ० भगीरथ मिश्र	विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी	तृ० स० १९६६
६.	काव्यमनीषा	डॉ० भगीरथ मिश्र	हिन्दी समिति, सूचना विभाग, लखनऊ	प्र० स० १९६९
७.	किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यासो का वस्तुगत और रूपगत विवेचन	डॉ० कृष्णा नाग	माडर्न प्रेस, नमकमण्डी, आगरा	सस्करण १९६६
८.	पश्चिमी आलोचना शास्त्र	डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय	हिन्दी समिति, सूचना विभाग, लखनऊ	प्र० स० १९६५
९	पौरस्त्य एव पाश्चात्य काव्यसिद्धान्त	डॉ० रामदत्त शर्मा	देवनागर प्रकाशन, जयपुर	प्र० स० १९७३
१०	भारतीय काव्य-शास्त्र की परम्परा	डॉ० नगेन्द्र	नेशनल पब्लिशिग हाउस, दिल्ली	सस्करण १९५६
११.	भारतीय सस्कृति का विकास	विनोदचन्द्र पाण्डे एव के० सिह	प्रकाशन केन्द्र, अमीनाबाद, लखनऊ	सस्करण १९७२

पुस्तक नाम	लेखक नाम	प्रक क	संस्करण
१२. रसमीमांसा	रामचन्द्रशुक्ल	नागरीप्रचारिणी सभा, काशी	च० स० १६६६
१३. समीक्षाशास्त्र	सीताराम चतुर्वेदी	विक्रमपरिषद्, काशी	सस्करण १६५४
१४. संसार के महान् उपन्यास	डॉ० रागेय राघव	राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली	प्र० स०
१५. हिन्दी उपन्यास-कला	डॉ० प्रताप नारायण टडन	हिन्दी समिति, सूचना विभाग, लखनऊ	प्र० सं० १६६५
१६. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद	डॉ० त्रिभुवन सिंह	हिन्दी प्रचारक पुस्त-कालय, वाराणसी	च० सं० १६६५
१७. हिन्दी उपन्यास का शास्त्रीय विवेचन	डॉ०श्रीनारायण अग्निहोत्री	सरस्वती पुस्तकसदन, आगरा	प्र० स० १६६१
१८. हिन्दी उपन्यास · सिद्धान्त और समीक्षा	डॉ० मक्खन लाल शर्मा	प्रभात प्रकाशन, दिल्ली	प्र० सं० १६६५

अंग्रेजी ग्रन्थ

1. An Introduction to the Study of Literature	W. H. Hudson	Morrison & Gibb London	Edition 1958
2. Aspects of the novel	E. M. Forster	Penguin International Great Britain	Edition 1670
3. A History of the Sanskrit Literature	Dr. V. Varadchari	Ramnarayan Lal Beni Prasad, Allahabad	2nd Edition'60
4. A History of Sanskrit Literature	A B. Keith	Oxford University, London	Ist Edition 1920
5. Bana	R. D. Karmarkar	Karnatak University, Dharwar	Edition 1964
6. Banabhatta (A Literary Study)	Dr. Neeta Sharma	Munshi Ram Manoharlal, Delhi	Ist Edition 1968

7. History of Sanskrit Literature	Susheel Kumar De	University of Calcutta	Edition 1947
8. Psychological Studies in Rasa	Dr. Rakesha Gupta	B. H. U. Banaras	Ist Edition 1950
9. The Structure of the novel	Edwin Muir	The Hogarth Press, London	Edition 1963
10. The Craft of Fiction	Percy Lubback	Jonathan Cape, Thirty Bedford Square, London	Edition 1965

•••

अनुक्रमणिका

रस

वर्णन

शुद्धि-पत्र

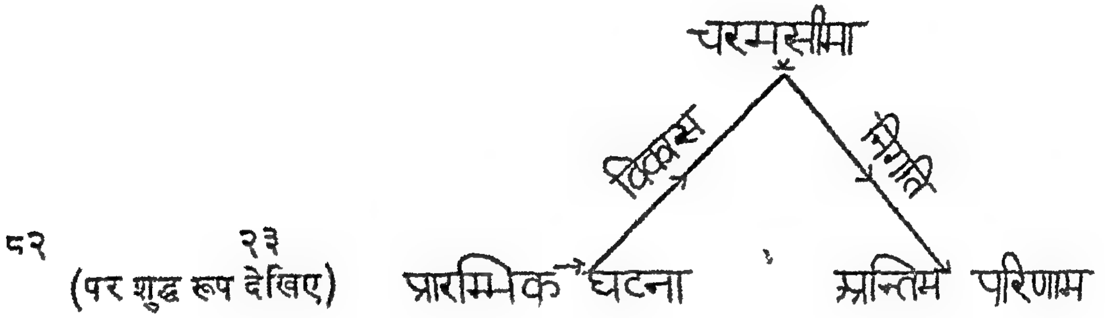
[सूचना—इस 'शुद्धि-पत्र' मे जो पक्तिसख्या गिनी गई है उसके लिए पृष्ठो पर आए हुए शीर्षक आदि को भी पक्ति मानकर जोडा गया है। किन्तु जिस पृष्ठ पर अध्याय या सोपान का प्रारम्भ किया गया है, वहाँ प्रारम्भिक शीर्षक एव उपशीर्षक को पक्ति नही माना गया है।]

पृष्ठ संख्या	पंक्ति	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
—	—	समपण	समर्पण
(ग्यारह)	८	दण्डी, आदि	दण्डी, बाण आदि
(बारह)	११	आशा	आभा
(पन्द्रह)	२०	बाजपेयी, एव	बाजपेयी एव
(सोलह)	७	प्राकृत	प्रकृत
(सोलह)	३६	निर्वाह से	निर्वाह मे
(सत्तरह)	३२	गुशो का	गुणो का
६	१	भौज	भोज
१३	२४	जीवन दशन	जीवन दर्शन
१७	२६	२६५	१६५
१८	८	शुप्क	शुष्क
१६	२८	३२६	३८६
२१	६	परिभाषा	परिमाण
२१	११	ओर	और
२३	२०	Longuage	Language
२५	१८	विज्ञान नही है	विज्ञान से नही है
३०	६	इनके	इनमे
३०	१०	अग्निपुराणकार	अग्निपुराणकार
३२	३१	आलंकारिता	आलङ्कारिकता
३३	२२	पदो	पद्यो
३४	६	बोलवोला	बोल-बाला
३८	२८	पदे'	पदे पदे'

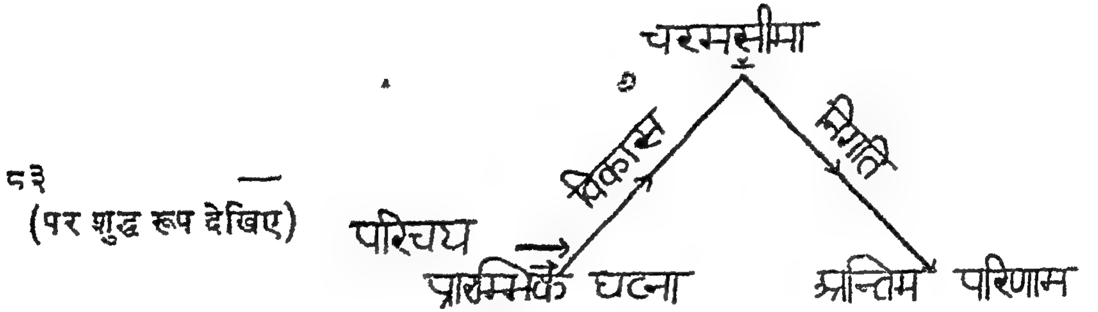
पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
३९	१६	श्रोतृणा	श्रोतृणां
३९	१८-१९	की भरपूर	की भरमार से भरपूर
३९	३६	समान	समान दुरूह है; न बाण की गद्यरचना के समान
४०	१०	होगी	होगी
४१	३०	ईष्यालु	ईर्ष्यालु
४४	२४	अनिवद्ध	अनिबद्ध
४७	४	अवलम्व	अविलम्ब
५०	१९	सगीत	सगीन
५४	१	वन जाएगी,	व्याख्या वन जाएगी,
५५	३	होता है।	हो जाता है।
५६	२०	फार्स्टर	ई० एम० फार्स्टर
५६	२१	कहालने	कहलाने
५६	२५	दिया	दिया है
५७	२	दवी	दवी
५७	३	कह सकते है	कहते है
५८	६	स्वछन्द	स्वच्छन्द
५८	१०	कीट-पतग	कटी पतग
६०	३५	वैश्यावृत्ति	वेश्यावृत्ति
६१	२०	कथा कथानक	कथानक
६१	३१	उपन्यास	उपन्यास मे जान डाल देगा। ऐसे उपन्यास
६४	२८	उपन्यास	उपन्यासकार
६४	२९	उत्सुकता	उत्सुकता की
६४	३४	विदित हो जाएगा,	विदित हो जाए,
६७	१	को	की
६७	२२	दूसरी	दूसरा
६८	१६	बाहर	बारह
६९	३	चाहते है	चाहता हूँ
६९	१३	को भी	को भी 'नावेल्स ऑफ ऑर्गनाइज्ड प्लॉट' एव
७०	२	सुव्यवस्थितता	सुव्यवस्थितता एव अव्यवस्थितता
७०	१२	रखी है।	रखी है। प्रतिपाद्य विषय की स्वरूपगत विविधता की ओर उनका ध्यान नही पहुँचा है।

पृ संख्या	पंक्ति	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
७२	१	सामजिक	सामाजिक
७५	६	प्रदर्शनीपयोगी	प्रदर्शनोपयोगी
७६	१६	कहना है कि	कहना कि
७६	१५	इधर	उधर
८०	३१	ही चल वसे	ही चल न बसे

८२ २३
(पर शुद्ध रूप देखिए)



८३ —
(पर शुद्ध रूप देखिए)



पृ संख्या	पंक्ति	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
८६	३३	वनने लिए	बनने के लिए
८७	१	काय	कार्य
६०	३६	Single."	Single whole."
६१	३	अपने	अपने कोमल
६१	१७	Lacks the	Lacks
६१	३०	२८	६४
६३	२५	२६	२७
६३	३२	१३२	१३६
६६	८	Terminalogy	Terminology
६६	३२	प्राप्तिनयताप्ति	प्राप्तिर्नियताप्ति
६६	३६	आपायाभावत.	अपायाभावत·
६८	३३	३२	६६
१०३	१३	सन्यासी	सन्यासी

पृष्ठ सं ।	पंक्ति संख्या	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
१०३	२०	यहाँ	या
१०३	२१	तुषाराघात	तुषारपात
१०३	३५	सम्राट् को	सम्राट् से
१०४	१०	लगने	लगाने
१०६	१८	लगाव	लगाए
१०८	५	सुकुशल	सकुशल
१०९	१	भट	भेंट
१०९	५	हँसते-हँसते	हँसते-हँसाते
११०	१४	दक्षिणपथ	दक्षिणापथ
११०	३५	काचरक	काचरक और
१११	८	पहिन-	पहिनकर
१११	३१	गुणो मे	गुणो से
११२	२	चले	को चले
११३	१२	और और	और
११४	१	जागृत	जागरित
११६	१५	अपनी	आपकी
११९	२३	सुवेलगिरि	सुवेलगिरि से
१२०	३३	राजसेनाधिकारी	गजसेनाधिकारी
१२१	१५	आखो	आँखो
१२१	२७	सामने	समरकेतु के सामने
१२२	३०	दिए	दे दिए
१२३	८	खोए	सोए
१२३	९	निशाना	निशान
१२३	१७	सुनाया। वह रुके नही;	सुनाया। वह इन्हे अपने राजभवन ले गए। पर यह वहाँ रुके नही;
१२४	२४	आगे	आगे बढ़े
१२६	१६	प्रतिभा	प्रतिमा
१२७	१७	जैसा	जैसी
१२७	२१	विद्याराज	विद्याधरराज
१२८	२९	अपनी	अपना
१३३	८	भिजाया	भिजवाया
१४०	११	पत्रवाहन	पत्रवाहक
१४१	३१	कोई	कोई भी
१४१	३१	और	और कोई
१४३	२४	चढने	चढाने

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
१४३	२४	अगाढ	प्रगाढ
१४३	२५	उत्कण्टा	उत्कण्ठा
१४८	१२	महत्त्वहीन नही	महत्त्वहीन ही नही
१४८	१३	वृत्तान्त को	वृत्तान्त का
१४८	२६	समीपस्थ	समीपस्थ स्वामी
१४९	२३	उतर	उतरा
१४९	२६	लाय ?	लाया ?
१५१	७	उस	उस पर
१५१	८	कथानक के	कथानक की
१५२	३१	श्रीमती है।	श्रीमती होता है।
१५२	३२	वज्रजङ्घ है।	वज्रजङ्घ होता है।
१५३	१६	प्रसग	प्रसंग के
१५३	२७	विद्वानो को	विद्वानो की
१५४	५	कथासर्जनशीलता	कथासर्जनाशीलता
१५४	२२	पहुँचना	पहुँचाना
१६०	१७	मानव मे	मानव के
१६१	१७	संघठित	सघटित
१६२	४	को मिथ्याभिमानी	के मिथ्याभिमान
१६२	५	उड़ती	उमड़ती
१६२	३०	साहित्य	साहित्यदर्पण
१६४	६	मधुर जीव	मधुर जीवन
१६६	२५	अतिरजित	अतिरञ्जितता
१६७	१७	अपेक्षा	उपेक्षा
१७०	१४	व्यक्तिप्रधान पात्रो	व्यक्तित्वप्रधान पात्रो
१७०	३४	एसे	ऐसे
१७१	१८	सस्कृत	सस्कृत
१७२	१	वेना	देना
१७६	२	विव्य	दिव्य
१७७	२१	Converging	Conveying
१८३	६	चित्र	चित्त
१८३	१४	रूप	रूप मे
१८३	२३	इस	इसे
१८३	२४	रूप से	रूप में
१८४	२	चिन्तनशील	चिन्तनशीलता
१८४	२२	रथनूपुरचक्रसाल	रथनूपुरचक्रवाल

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
१८५	१	पाँव	समान कोमल पाँव
१८५	३	कोमलता	काम-लता
१८५	२६	प्रश्नो का	प्रश्नो का भी
१८६	३४	प्रेमाकुर मे	प्रेमाङ्कुर के
१६१	६	उसमे	उसके
१६४	१४	दर्दीले	दर्दीली
१६४	२५	वाक्यो मे	शब्दों मे
१६६	८	रहकर	रहना
१६६	२४	दुर्धर्षा	दुर्धर्ष
१६८	१७	जीवन्ती	जीवन्त
२००	३	विवश	विवाह
२००	३३	तव	जव
२०१	२५	वेटी भावी पति	वेटी के भावी पति
२०२	६	तव पता	तव
२०३	१०	मिलता	मिलाता
२०५	३३	व्यक्ति	व्यक्तिगत
२०६	२५	देती है।	देता है।
२०६	२६	मलयसुन्दरी की	मलयसुन्दरी को
२०८	२६	अपास्रकवलम्	अपास्तकवलम्
२१०	६	दिनान्यनयय्	दिनान्ययापयत्
२११	६	शुष्कशिखरिणी	शुष्कशिखरिणि
२१५	२२	सदेव	सदैव
२१६	२४	कमरे	केमरे
२१८	६	नवेली	नई नवेली
२१८	११	पर कनखियो से	कनखियो से
२१८	३१	चर्वण	चर्वणा
२२०	२५	पारस्परिक	पारस्परिक मानसिक
२२१	१६	परिवाहन	हरिवाहन
२२२	६	ताम्बूलवापिका	ताम्बूलवाहिका
२२३	८	विन्बु	बिन्दु
२२३	१६	दिव्यस्त्री	दिव्यवस्त्रो
२२७	१३	जा	जो
२२८	१४	उससे	उसके
२३०	१५	जो सौ	जो भय से
२३०	२८	हृदय	दृश्य

पृष्ठ या	पंक्ति संख्या	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
२३२	३	वाण-	वाणयुद्ध
२३२	१२	अर्च्यमानमीव	अर्च्यमानमिव
२३३	५	दुरात्मम्	दुरात्मन्
२३३	१३	आए हुए	आए हुए और
२३३	२५	गच्छामीदृशीमपि	गच्छतामीदृशीमपि
२३३	३०	विमुक्त	विमुख
२३७	२५	रस से	रसके
२३७	२६	से	में
२४०	१	सी	भी
२४४	२२	यथा	यदा
२४५	११	१७५	१७४
२४५	३२	वही, ०	वही, पृ०
२४६	१७	८७ यथा	७७ तथा
२४७	५	वाङ्ग	वागङ्ग
२४७	१४	कारजानि	कारणानि
२४७	१६	२४६-२४६	२४६
२४८	१४	८०-६१	८६-६१
२५४	१४	कहाँ	कही
२५५	१३	समुद्रमारुता	समुद्रमरुता
२५७	२०	को ये	को ये सभी आत्मकथाएँ भले ही भिन्न-भिन्न है, पर है ये
२५७	२०	फल	फूल
२५७	२१	पखुड़ियाँ हैं।	पखुड़ियाँ।
२६०	१२	गलद्	गलगलद्
२६०	२६	सख्य.	सख्या
२६१	५	मगच्छन्तीभि	मवगच्छन्तीभि.
२६१	२१	नाग्र	नाम्र
२६२	१७	माति	मति
२६४	८	नही	नही भी
२६५	३०	प्रकृतस्य	प्रकृतस्य समेन
२७१	२०	देते	देते हुए
२७२	२०	नविपुला और	और नविपुला
२७२	२३	तीन-तीन	तीन-तीन वार
२७४	९	कही	कभी
२७४	१३	स्वछन्दता	स्वच्छन्दता

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
२७४	१४	उद्धृत	उद्धृत
२७४	१७	आगई	आगई है
२७४	२३	भावाभिव्यक्ति	भावाभिव्यक्ति
२७५	८	स्वछदता	स्वच्छन्दता
२७५	१३	सम्वाद	संवाद
२७५	१७	सम्वादो	संवादो
२७५	१७	वही	वही
२७५	२०, २४, ३१	सम्वादो	सवादो
२७५	३२	करती है	रहा करती है
२७५	३२	सवादो	संवाद
२७६	१३	सम्वादो	सवादों
२७६	१४, १७	सम्वाद	संवाद
२७६	२७	कोशल	कौशल
२७९	४	विपय .	विपम
२७९	१६	जाता है	जाती है
२७९	२६	लिए	उसके
२७९	३०	वाग्वदग्ध्य	वाग्वैदग्ध्य
२८०	३५	गर्हणापेक्षेण	गर्हणानपेक्षेण
२८३	४	होता है	है
२८५	२७	उद्धृत	उद्धृत
२८५	२९	टोनार्थं	येनार्थं
२८८	१२	२५६	२५९
२८९	१०	पात्रो को	पात्रो की
२९३	१	जगी मोर,	तो युवक-युवतियाँ नृत्य कर रहे थे; और कही जंगली मोर।
२९३	१२	बनाया है	बनाया गया है
२९३	३०	(बम्बुओ)	(तम्बुओ)
२९४	२५	दर्शन हो	दर्शन न हो
२९५	१४	ढरो	ढेरो
२९५	१९	वर्हा	वहाँ
२९६	३४	मालूल	मालूम
२९७	८	अपको	अपनी
२९८	१४	और	और कोई
२९८	२१	लपर्टे	लपटे

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३००	३१	पुष्पो	पुष्पो
३०१	२	वाल	बालू
३०१	४	यहाँ	यहाँ का
३०१	३१	लाल-	लाल-लाल
३०१	३४	अन्धकार-	अन्धकारपूर्ण
३०२	२२	यहाँ	यही
३०४	५	नर्तक	नर्तन
३०५	१३	प्रसग	प्रसगो
३०६	३५	उसी समय	उस समय
३०६	३५	लगता	लगता है
३०७	८	यात्रा से	यात्रा के
३०८	२३	ओर	और
३१६	२१	चुक	चूक
३१७	२७	प्रतिबिम्ब	प्रतिबिम्बित
३२१	२१	मगियो	मणियो
३२२	२१	प्रतिमा	प्रतिमा भी
३२२	३२	पर	पर
३२३	१२	पार	पर
३२३	१५	निष्कर्प	निष्कर्ष
३२४	४	होना	होना ही
३२४	७	प्रसंग से	ग मे
३२४	११	समान	सामने
३२४	२५	किरणो के	किरणो के समान
३२५	१२	धडकड़ा	धडकता
३२६	३५	मेघवाहन के	मेघवाहन के रनिवास मे
३२७	६	काफी	काफी स्वाभाविक
३२७	२१	लम्वी	लम्बा
३२७	२३	नौ-यात्रा	नौ-यात्री
३२७	३५	भट पुत्र	भट्ट पुत्र
३२९	४	वणन	वर्णन
३३१	३२	ओर	और
३३६	२	परिचित है	परिचित ही हैं
३३६	१४	कमलगुप्त	कमलगुप्त
३३७	१४	अपने भावी	अपने
३४०	११	इनमे	इनसे

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
३४१	१८	समझा जाता था।	समझा जाता था। जो पुत्र-हीन होते थे उन्हे भाग्यहीन भी समझा जाता था।
३४१	३५	जिससे	जिसमे
३४२	१७	वोलते-वालते	वोलते-चालते
३४२	३१	पुरोहित	पुरोहितो
३४३	५	दिया	किया
३४३	३१	काजल	काजल
३४५	१३	लडकियो	लडकियो मे गुडियो
३४५	२६	आँख का	दाहिनी आँख का
३४५	३०	प्रजा	प्रजा अपना
३४६	२३	'सोवार'	'सोवर'
३४६	२६	ऐसी	ऐसी ही वेशभूषा मे
३४६	३३	थो	थी
३४७	११-१२	छोर से बांध दिया था	छोर में बांध लिया था
३४७	१६-१७	परितोषनायक पत्र	परितोषनामक पत्रवाहक
३४७	३५	छत्रछाया	छत्रच्छाया
३४९	१०	प्रभाव	प्रकाश
३४९	१६	सिन्धुराज की	सिन्धुराज की भी
३५०	३१	बचाने के लिए	वचने के लिए
३५३	३३	—Ibid, p. 3	—Ibid, p. 2
३५४	२७	७९	६९
३६१	३१	नर्ही	नही
३६२	२६	हलाल	हलाहल
३६५	२३	अर्धवृत्त	अर्ध, वृत्त
३६५	२५	अर्थहरण	अर्धहरण
३६६	१२	पद्य इस प्रकार है—	पद्य इस प्रकार है— मा गा पान्थ प्रिया त्यक्त्वा दूराकृष्टशिलीमुखम् । स्थित पन्थानमावृत्य किं किरात न पश्यसि ? ॥
३६८	१७	सरल	सरस
३६८	२४	प्रतिभा	प्रतिभा का
३७०	११	महाकवि बिल्हण	महाकवि बिल्हण की चेतावनी से काफी बल भी मिलता है। क्योकि बिल्हण

पृ संख्या	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध रूप
३७२	२१	शब्दों	शब्दो
३७३	२६	वणिज	वणिजक
३७३	३१	सलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य ध्वनि	सलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य ध्वनि की
३७४	१	उसमे	उसमे उसे
३७४	१९	महत्त्व	महत्त्व एव
३७५	४	आदान-प्रदान के	आदान-प्रदान के हिमायती है। केवल
३७५	२१	और कौन-कौन से	और कौन-कौन से ऐसे
३७७	२	करता है	कराता है
३८४	२८	मताड्यत्	मताड्यत
३८४	३०	विजाति	द्विजाति
३८७	३४	सरोवर	सरावोर
३८९	६	(जदण्डी)	(ज) दण्डी
३९१	२५	नारि	नाति
३९१	३६	२६-३७	२६-२७
३९२	३६	४६	४५
३९४	६	०१-७	पृ० १-७
३९५	८	नहीं, और	नही,
३९६	५	उनके	उनमे
३९६	१२	पल्लीवाल	पल्लीपाल
३९६	३३	प्रमपात्र	प्रेमपात्र
३९८	२८	भ्रमर	भ्रमर
४००	२	'तिलकमञ्जरी-	'तिलकमञ्जरीप्रबन्ध'
४००	११	श्लोक ४३	आरम्भिक श्लोक ४३
४००	३५	पड़ता है	पड़ा है
४०३	३	किया है	किया गया है
४०४	२८	मन्दरामञ्जरी	मन्दारमञ्जरी
४०५	६	विद्युत	विधुत
४०५	१८	भर्तॄन्	भर्तॄन्
४०७	२	ही हैं	होती हैं
४०७	२७	अत्याहता	अव्याहता
४०८	३३	उपदेश	उपदेश से
४१०	११	इदं	इद
४१०	३६	लग्न	लग्न

पृष्ठ संख्या	पंक्ति	अशुद्ध रूप	शुद्ध रूप
४१३	२	भूमिवलो	भूमिमवलो
४१३	२९	मन्दरावती	मन्दारवती
४१७	६	लिपिपत्र	लिपिपत्र स०
४२३	३	विस्तार	निस्तार
४२८	१०	और मत	और अपने मत
४३०	६	वचने के लिए	वचाने के लिए
४३०	१०	मजदूरो	मजदूर मजदूरो
४३०	११	घर	घर की
४३०	१३	नाभ	नाम
४३०	१७	भविष्य मे	भविष्य मे भी
४३०	३३	प्रथा	प्रथा आदि।
४३२	२५	समाज समान	समाज के समान
४३३	६	युना	युवा
४३३	१८	नए	नए मनुष्यो) मे एकसा ही है। इसलिए अन्तर होने के बावजूद भी हम पुराने जमाने के
४३४	१९	और	आदि
४३५	१६	जकडी हुई	जकडी हुई मानवता को मुक्त करके उसे यथार्थ, आत्म-निर्णय और
४३५	१७	भरे-भरे	हरे-भरे
४३६	६	उपन्यास	उपन्यासकार
४३९	१०	Atlast	Atleast
४४३	२३	गद्यो का	पद्यो का
४४४	२८	सवेदना	सवेदना की
४४५	२१	सब	सबके
४४७	४	मिलता है	लिखा मिलता है
४४८	१३	६	३
४४९	१८	अमन्द	अमन्द मन्दाकिनी
४५१	२२	आरम्भ से	आरम्भ के
४५१	२३	प्रनुख	प्रमुख
४५२	१४	स्तुनि	स्तुति
४५५	८	परिर्णाति	परिणति
४५६	८	एध	एव

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	अशुद्ध	शुद्ध रूप
४५६	१७	वाथा	गाथा
४६२	४	सुशिल	सुशील
४६३	२५	Varadchari	Varadachari
४६४	६	Lubback	Lubbock
४६६	२	कथानक की	कथानक का
४६६	१८	सस्कृत	संस्कृत
४६७	२६	संवादो	मे सवादो
४६९	१	कालिप्रसाद शास्त्री पर ४११	रङ्गनाथ दीक्षित पर ४१२
४६९	२	४११	४१३